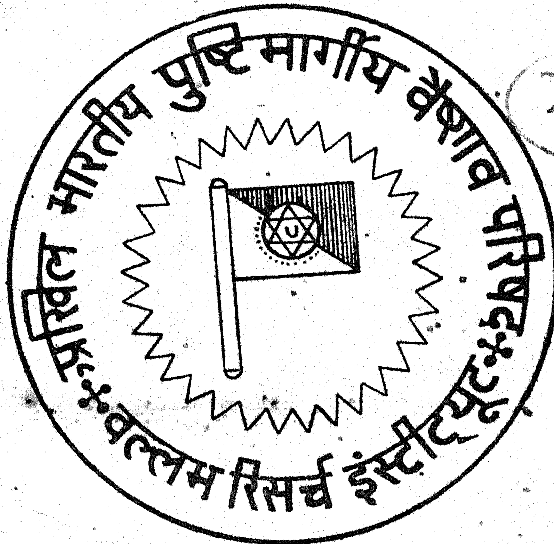
वार्ता-साहित्य

(एक वृहत् अध्ययन)

लेखक

डा० हरिहरनाथ टन्डन



बल्लभ रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जतीपुरा (मथुरा)
के
तत्वावधान में

भारत प्रकाशन मन्दिर,
अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित ।

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मंदिर,
अलीगढ़ ।

मूल्य १५)

मुद्रक
आदर्श प्रेस
अलीगढ़ ।

भूमिका

इस प्रकार के अध्ययन में शैली की व्याख्या और आभार प्रदर्शन के अतिरिक्त और किसी विषय के लिए स्थान नहीं है। अध्ययन के सम्बन्ध में विनीत निवेदन यह है कि प्रस्तुत अध्ययन में केवल वैष्णव वार्ता साहित्य का ही अध्ययन किया गया है। और पुष्टिमार्गीय साहित्य और हस्तलिखित ग्रंथों को ही प्रधानता और प्राथमिकता दी गई है। वार्त्ता साहित्य से प्राप्त सामग्री और व्यक्तियों के वृत को इतिहास की कसौटी पर कसा गया है और इसके आधार पर उस काल के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन की रूप-रेखा प्रस्तुत की गई है।

इस अध्ययन से यह बात प्रमाणित हो गई है कि वार्त्ताओं के आदि प्रणेता पुष्टि-मार्गीय आचार्य ही हैं तथा इनको लिपिबद्ध करने का श्रेय श्रीकृष्ण भट्ट जी को है। यह प्रबंध यह भी प्रमाणित करता है कि वार्त्ताएँ सत्रहवीं शताब्दी में ही लिपिबद्ध हो चुकी थीं और इनके संख्यात्मक, प्रसंगात्मक और भावनात्मक रूप अलग-अलग प्रचलित हुए थे। वार्त्ता-साहित्य के इस अध्ययन में अंत:साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य दोनों की वैज्ञानिक परीक्षा की गई है। आशा यह की जाती है कि इस अध्ययन से वैष्णव साहित्य के सम्बन्ध में फैली बहुत सी भ्रांतियाँ दूर हो जावेंगी और इस धार्मिक जन-साहित्य का सच्चा मर्म समझने में सहायता मिलेगी। यह प्रस्तुत अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि इतिहास और जनश्रुति दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। यह अध्ययन अवश्य ही कुछ बड़ा हो गया है, पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग करना आवश्यक था और प्रबन्ध की रूप-रेखा (सिनाप्सेस) की अपनी सीमा थी।

मुझे यह विषय और इस पर काम करने की प्रेरणा दोनों हिन्दी विश्वकोष के प्रधान सम्पादक, प्रयाग-विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा जी से मिले थे। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा जी से परिचित होना स्वयं एक महाविद्यालय में प्रवेश करना है। उनके पांडित्यपूर्ण गम्भीर व्यक्तित्व में स्नेह का आकर्षण है। इस काम को पूरा करने में मैं जितनी अधिक शिथिलता दिखाता गया, उतना ही वे अपने आग्रह को बढ़ाते चले गए और मेरे लिए उनसे बचना कठिन हो गया और अन्त में उन्होंने मुझसे यह काम पूरा करवा ही लिया। उनके प्रति मेरे मन में जो श्रद्धा और आदर का भाव है, उसी ने मुझसे यह काम पूरा करवाया है अन्यथा मुझ में इसे पूरा करने की योग्यता न थी। मैं उन्हें धन्यवाद देकर उनके उपकार के बोझ को हल्का नहीं करना चाहता हूँ।

बरेली कालेज, हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष आचार्य श्रीधर पन्त जी ने सहर्ष इसके निर्देशन का भार अपने ऊपर लेकर जो कृपा और मेरी सहायता की है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। बरेली कालेज के तत्कालीन प्रधानाचार्य श्री रामकिशोर शर्मा जी ने नि:संकोच भाव से मुझे बरेली कालेज का छात्र बनने की जो अनुमति प्रदान की थी, उसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। मेरे प्रिय छात्र श्री ओमप्रकाश गुप्त, एम० काम०, जो इस समय राजस्थान में कामर्स के अध्यापक हैं, उन्होंने आरम्भ के दिनों में सभी वार्त्ताओं को संक्षिप्त करने में मेरी सहायता की थी। मैं उनकी सफलता चाहता हूँ।

इस अध्ययन को पूरा करने में मुझे और भी बहुत से मित्रों से सहायता लेनी पड़ी है। बड़ौदा ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट के अध्यक्ष मित्रवर गोविन्दलाल भट्ट और उनकी धर्मपत्नी ने मुझे अपने घर 'शाकुन्तल' में शरण दी और अपना निजी पुस्तकालय मेरे लिये खोल दिया जहाँ मुझे बहुत सी अप्राप्य पुस्तकें सहज में प्राप्त हो गईं। मैं उन दोनों का ऋणी हूँ। इस प्रबन्ध को पूरा करने में मेरी सबसे अधिक सहायता पुष्टिमार्ग के अनन्य सेवक परम विद्वान् श्री द्वारकादास परीख जी से मिली है। वार्त्ताओं की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी मुझे उनकी कृपा से ही मिल सकी थीं। श्री परीख जी ने जेठ की कठिन गर्मी में आगरा रहकर, खान-पान की अनेक असुविधाएँ सहकर, मुझसे यह प्रबन्ध लिखवाया है और उनके निजी संग्रह की अप्रकाशित सामग्री से मैंने पूरा लाभ उठाया है। सत्य तो यह है कि यदि वे इस प्रकार कटिबद्ध होकर मेरे सिर पर सवार न होते तो मैं इसे पूरा न कर पाता। इस ग्रन्थ के वल्लभ रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा प्रकाशन की योजना भी उन्हीं की सूझ है। मैं स्वयं इसे संक्षिप्त करके छपाना चाहता था, पर परीख जी इसे अविकल रूप में प्रकाशित देखना चाहते थे और मुझे उनके सामने झुकना पड़ा है। परीख जी की कृपा से ही मुझे कांकरौली विद्याविभाग से अनेक प्रकाशित और हस्तलिखित पुस्तकें घर बैठे मिल सकीं जिनके लिए मैं महाराज श्री और, श्री प्रो० कण्ठमणि शास्त्री दोनों का उपकार मानता हूँ। परीख जी को धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। मैं कृतज्ञ हूँ, बस इतना ही लिखे देता हूँ।

पुष्टिमार्गीय परिषद् के प्रधान सचिव एवं मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के हिन्दी विभाग के रीडर श्री डा० गोवर्धननाथ शुक्ल ने इस ग्रन्थ को अपनी देख-रेख में प्रकाशित करवाने में जो अभिरुचि ली है, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

समस्त सामग्री के संकलन के पश्चात् जब मैं यह सोच रहा था कि इसका आरम्भ किस प्रकार करूँ कि मेरे प्रिय मित्र डाक्टर रांगेय राघव ने सहर्ष मेरी सहायता की और प्रबन्ध का प्रथम अध्याय उनकी ही सूझ का परिणाम है। डाक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, प्रो० गोविन्दलाल मुकर्जी, डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना और बाबूराम सक्सेना ने मेरे अनेक तथ्यों को इतिहास विरुद्ध कहकर निकलवा दिया। मैं इन चारों को धन्यवाद देता हूँ। सबसे बड़ा ऋण है मुझ पर उन लेखकों और प्रकाशकों का, जिनकी रचनाओं से मैंने लाभ उठाया है। अंत में भारत प्रकाशन मन्दिर के अध्यक्ष श्री पं० बद्रीप्रसाद जी शर्मा का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने ऐसी व्यय-साध्य पुस्तक को प्रकाशित करने का भार सहर्ष स्वीकार कर लिया। महाराज श्री प्रथमेश जी ने इसके प्रकाशन के लिए एक हजार रुपये का अनुदान देकर हमारा जो उत्साह बढ़ाया है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। शीघ्रता के कारण प्रूफ की जो भूलें रह गई हैं, उनके लिए क्षमा चाहता हूँ।

हिन्दी विभाग,
सेन्ट जान्स कालेज,
आगरा।
२४-१०-६०

विनीत—
हरिहरनाथ टंडन

वार्त्ता-साहित्य

जब से हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में हिन्दी के गद्य-पद्यों का वैज्ञानिक अध्ययन शुरू हुआ है, तब से ही वल्लभ-सम्प्रदाय के इस वार्त्ता-साहित्य की आलोचना-प्रत्यालोचना भी आरम्भ हुई है। खड़ी बोली की बड़ी बहिन ब्रज भाषा है, उसी ने अपने में कुछ अन्य भाषाओं के शब्द और व्याकरण आदि की प्रक्रियाओं को आत्मसात् कर एक स्वतंत्र जनपदीय भाषा का रूप ले लिया है। आज से ५०० वर्ष पूर्व हिन्दी से तात्पर्य ब्रज भाषा का ही समझा जाता था। उस समय सारे भारतवर्ष में गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में उसी का साम्राज्य था। इसीलिए आज हिन्दी के अनुसंधानकर्त्ताओं ने प्राचीन हिन्दी के इतिहास की खोज के लिये ब्रजभाषा गद्य पर विशेष ध्यान दिया है।

ब्रजभाषा का सुव्यवस्थित और प्रौढ़ गद्यात्मक स्वरूप सर्वप्रथम इस वार्ता-साहित्य में ही प्राप्त होता है। इसमें दो मत नहीं है। वार्त्ता–साहित्य की एक और विशेषता है—हिन्दी के प्राचीन महाकवियों की जीवनी को प्रस्तुत करना। सूर प्रभृति अष्टछाप के महाकवियों के इतिवृत्त इस वार्त्ता-साहित्य में ही प्राप्त होते हैं। अतः इन कवियों की जीवनी और कृतित्व के अनुसंधान के लिए भी वार्त्ता-साहित्य की उपादेयता निर्विवाद सिद्ध है।

उक्त प्रमुख दो कारणों के लिए हिन्दी-साहित्य के अनुसन्धान क्षेत्र में वार्त्ता-साहित्य का स्थान अनिवार्यतः अपेक्षित रहा है। इसके बिना मध्यकालीन हिन्दी के भक्ति-साहित्य के इतिहास पर न तो प्रकाश पड़ सकता है, न उसका अनुसन्धान कार्य ही आगे बढ़ सकता है। अस्तु। भारत धर्म-प्रधान देश है। इसलिए भारतीय जनता की विविध रुचि और देश काल के अनुसार समय-समय-पर कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि अनेक धर्मों का यहाँ प्रचार होता रहा है। किन्तु इन सब धर्मों में भक्ति-मार्ग अत्यन्त सुगम और सरल प्रतीत होता है। इसलिये भारत में पिछले एक हजार वर्षो से भक्ति मार्ग का ही अधिक प्रचार देखने में आता है। इतिहास साक्षी देता है कि प्रारम्भ के पाँच सौ वर्षो में जनता ने वैदिक-विधि-सम्पन्न-भक्ति-मार्ग को जोकि उपासना के रूप में था अपनाया था, किन्तु जैसे जैसे जनता की साधना-शक्ति का ह्रास होता गया, वैसे-वैसे वह उपासना क्षेत्र से बिचकने लगी। धर्म की ग्लानि के ऐसे अवसरों पर ही महान् आत्माओं का आविर्भाव होता है। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के प्रादुर्भाव का भी यही रहस्य है। आपने भारत की तीन प्रदक्षिणाएँ कर जनता की भक्ति-अरूचि को पहचाना। आपने उस समय के भारतीय समाज की बाह्याभ्यांतर परिस्थितियों का यथार्थ और सुचारू वर्णन अपने 'कृष्णाश्रय' ग्रन्थ में करते हुये निःसाधन जनता के लिये सर्वतन्त्र, स्वतन्त्र, शरणागत वत्सल, परमकारुणिक ब्रजाधिप श्रीकृष्ण को ही पूर्ण रूपेण शरण्य स्वीकार करने का बोध दिया। जिस परब्रह्म श्रीकृष्ण ने पूतना जैसी दुष्टभावापन्न महापतित राक्षसी को भी अपने सम्बन्ध मात्र से योगि-जन-दुर्लभ परमोच्च मातृ-गति दी।

ऐसे श्रीकृष्ण ही ससाधन, निःसाधन और दुष्ट साधन युक्त जीवों के लिए शरण्य हैं। वहीं एकमात्र गति हैं। ऐसा उपदेश देते हुये पुष्टि अर्थात् पोषणात्मक अनुकम्पा रूप निर्गुण-भक्ति—सेवा-मार्ग—का विधान किया। इससे वेद-विधियों की जटिल साधनाओं से जनता को त्राण मिला और घर में ही रह कर सभी प्रकार के विषयों को श्रीकृष्णार्पण करके परमानन्द आत्मानन्द की प्राप्ति का अनुभव किया। वेद-विधियों से भी उत्कृष्ट इस शरणरूप विलक्षण-भक्ति-मार्ग का जनता ने अत्यन्त आदर किया। जिसकी प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल चतुर्विध विश्लेषणात्मक अवस्थाओं का सुचारु मनोहर रूप इस वार्ता-साहित्य में निखर आया है। अस्तु।

श्री वल्लभाचार्य जी (वि० सं० १५३५) से लेकर अद्यावधि साढ़े चारसौ वर्षों से यह लोकोत्तर शरणात्मक विलक्षण भक्ति-मार्ग भारत में एक-छत्र राज्य करता चला आ रहा है। उसकी शीतल और सुखद छाया का अनुभव देशी-विदेशी, धर्मी-विधर्मी, शासकों-शास्यों कलाकारों एवं सामान्य जनता के सभी वर्गों ने भी पर्य्याप्त मात्रा में किया है। हिन्दू सम्रा राय कृष्णदेव, मुग़ल सम्राट् अकबर महान् और उसके वंशज भी इस भक्ति-मार्ग की छाया में आध्यात्मिक सुखों का अनुभव कर चुके हैं। इसी प्रकार हिन्दू-संस्कृति के उच्च कवि-शिरोमणि सूर आदि अष्टछाप के कवि एवं पर-धर्मी कवि मियाँ रसखान, अलीखान और बादशाह अकबर की बेगम ताज आदि भी इस भक्ति मार्ग का आश्रय ले कर कृतकृत्य हुये हैं। इन प्रमुख शासकों तथा कलाकारों के अतिरिक्त चारों वर्णों की सामान्य जनता भी इस मार्ग की अनुयायी बन कर अपने जीवन को हिन्दू-संस्कृति-विरोधी शासन काल के घोर निराशा मय वातावरण में आशा और उत्साह को प्राप्त कर सरस बनाते हुये कृत-कृत्य हुई है। इन सब महानुभावों की धर्मगाथाएं (चरित्र) इस वार्त्ता-साहित्य में प्राप्त हैं। इसीलिए भारत की धर्म-प्राण जनता ने इस भक्ति के आदर्श रूप मौलिक साहित्य-को घर-घर में प्रतिष्ठित किया और तब से अब तक नित्य-प्रति उसका भक्ति-मार्गीय दृष्टि से अध्ययन भी 'सत्संग-मंडली' के रूपों में करती आ रही है। इसी का यह फल है कि आज भी भारत के धर्म-प्रधान घरों में चाहे वे वैष्णव हों या न हों वार्त्ता-साहित्य की प्रतियाँ काफी तादाद में उपलब्ध होती हैं। अरे! यहां तक कि अनेक भावुक मुसलमान घरों में भी ये प्रतियाँ हमको प्राप्त हुई है। और तो क्या कहें उसकी पूजा करते भी उन मुसलमानों को हमने देखा है जिसकी चर्चा मैंने अपनी संपादित २५२ वैष्णवों की वार्त्ता के प्रथम खंड की प्रस्तावना में की है। अस्तु।

इस सारे कथन का तात्पर्य यह है कि यह वार्त्ता-साहित्य धार्मिक और साहित्यक दोनों क्षेत्रों में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। इसी से आधुनिक हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में और तद्विषयक अन्य ग्रन्थों में भी उसका आश्रय व अवलंबन लिया गया है और लिया जा रहा है।

कुछ वर्षों से हिन्दी-कवियों के अनुसन्धानार्थं भारतीय विश्वविद्यालयों में भी इसका साहित्यक दृष्टिकोण से अध्ययन शुरू हुआ है। तब से पाश्चात्य तर्क प्रणाली के कारण इस साहित्य की प्राचीनता के विषय में कई एक मत प्रचलित हो गये हैं, जिसके कारण इस

साहित्य के प्रति कई प्रकार के भ्रम भी फैल गये हैं। इन भ्रमों का जब तक पूर्ण निराकरण न हों, तब तक हिन्दी-साहित्य में चल रहे हिन्दी-गद्य और हिन्दी के मध्य-कालीन कवियों के जीवन और काव्यों का अनुसंधान भी भ्रमात्मक ही रहेगा और रहता है। इसी भ्रम को दूर करने के लिये कुछ सुयोग्य, स्थितप्रज्ञ एवं दूरदर्शी उच्च कोटि के विद्वानों ने पी–एच० डी० की उपाधि के लिये वार्ता-साहित्य पर कार्य किया। प्रस्तुत ग्रन्थ भी आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत वैसा ही महत्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध है। विषय को स्वीकृत करा कर इस पर शोध प्रबन्ध (थीसिस) प्रस्तुत करने का गुरुतर कार्य, सेन्ट जान्स कालेज के हिन्दी के सुयोग्य प्राध्यापक श्री हरिहरनाथ जी टंडन ने किया। उन्होंने बड़े परिश्रम से अनेक स्थानों पर भ्रमणकर वार्त्ता-साहित्य की प्राप्त प्राचीन प्रतियों का संग्रह किया और तद्विषयक अपेक्षित अन्य-साहित्य भी जुटाया। फलतः तीन वर्षों में उन्होंने इस बृहद् प्रबन्ध को सम्पन्न किया और आगरा विश्वविद्यालय ने उनको पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

श्री टंडन जी का यह अध्ययन वास्तव में वार्त्ताओं का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन है। उन्होंने वार्त्ताओं में आये हुये सभी सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक तथ्यों और विषयों पर अनुसंधानात्मक नया प्रकाश डाला है। इससे प्रायः हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में फैले सभी भ्रमों की जहाँ निवृत्ति हो जाती है, वहाँ लेखक की विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धानात्मक तटस्थ शैली की योग्यता का भी परिचय प्राप्त होता है। लेखक महोदय ने वार्त्ताओं की और तद् संबन्धित प्राचीन अन्य साहित्य की प्रतियों के छाया-चित्र (ब्लाक-फोटो) देकर अपने शोध को ठोस प्रमाण-भूमि पर प्रस्तुत करने का वाञ्छनीय प्रयास किया है। यह अध्ययन अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए और सम्प्रदायवालों के लिये भी अत्यन्त उपादेय तो है ही; वार्त्ता-साहित्य के नये अध्ययन के लिये नया प्राचीन प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध न हो तब तक इस अध्ययन के निर्णयात्मक तथ्यों में 'ननु नच' करने की कोई गुंजाइश नहीं दीखती है।

मुझे इस प्रबन्ध को आद्योपान्त पढ़ कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। क्योंकि वि०सं० १९९५ से मेरे द्वारा आरम्भ हुआ साहित्य का अध्ययन श्रीहरि-कृपा से आज इस अध्ययन से पूर्ण होता है। जब से हिन्दी साहित्य में वार्त्ताओं के प्रति डाकोर और बम्बई से प्रकाशित अशुद्ध एवं प्रक्षिप्त वार्त्ताओं को प्रतियों के आधार पर बिना अनुसंधानात्मक गवेषणा किये ही अध्ययन के नाम पर अनेक प्रकार के भ्रम फैलाये जाने लगे थे, तब से ही मुझे वह अखरने लगा था और मैंने ही उन भ्रमों के विरुद्ध आवाज उठाई थी। मैंने उसी समय अपनी शोध में प्राप्त हुई वि० सं० १७५२ की हस्तलिखित भावना वाली वार्त्ता प्रति को, जिसको हिन्दी के उच्चतर विद्वानों ने भी प्रामाणिक माना है, प्राप्त कर उसको अनेक भागों में क्रमशः छपवाना भी शुरू किया था। इस कार्य में मुझे कांकरौली विद्याविभाग के अध्यक्ष एवं उसके संचालक महानुभावों द्वारा वि० सं० १६९७ की लिखी संख्यात्मक मूल वार्त्ता प्रति भी उपलब्ध हुई थी। इन प्रतियों के आधार पर मैंने प्राचीन वार्त्ता रहस्य के तीन भाग, जिनमें द्वितीय भाग के रूप में अष्टसखान की वार्त्ताएँ भी थीं, प्रकाशित कराये इस। द्वितीय भाग ने हिन्दी-साहित्य के विद्वानों को वार्त्ता-साहित्य पर पुनः विचार करने के लिये प्रोत्साहित किया। इस प्रोत्साहन के कारण ही लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री दीनदयालु जी गुप्त एम० ए० ने अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' इस नाम से शोध-प्रबन्ध (थीसिस) को कांकरौली रह कर तैयार किया था

और उस पर उन्होंने डी-लिट् की उपाधि प्रयाग विश्वविद्यालय से प्राप्त की। बाद में मथुरा से श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने इसी साहित्य के अनुसन्धान में 'अष्टछाप परिचय' ग्रन्थ प्रकाशित किया था। इसी प्रकार इन पंक्तियों के लेखक ने भी इसी प्राचीन वार्त्ता-साहित्य के आधार पर 'सूर-निर्णय' ग्रन्थ जो हिन्दी-साहित्यरत्न और विश्वविद्यालयों की एम० ए० की परीक्षार्थ स्वीकृत हुआ है, गुजरात में रह कर लिखा था। किन्तु अर्थाभाव के कारण ही उसके प्रकाशन के लिये अग्रवाल प्रेस (मथुरा) के मालिक श्री प्रभुदयाल जी मीतल का सहयोग लेना आवश्यक हो गया था। वार्त्ता की इस अध्ययन—शृंखला में अलीगढ़ विश्वविद्यालय से 'परमानंददास और परमानंद सागर' पर भी एक शोध-ग्रन्थ (थीसिस) डा० श्रीगोवर्धननाथ शुक्ल द्वारा लिखा गया। इस प्रकार प्राचीन वार्त्ता-साहित्य क्षेत्र में हिन्दी के प्रमुख कवियों का प्रामाणिक अध्ययन शुरू हुआ। परिणामतः कुछ व्यक्तिगत प्रभाव से प्रभावित हिन्दी के एकाध विद्वानों को छोड़ कर प्रायः सभी ने वार्त्ता-साहित्य की प्राचीनता और प्रामाणिकता को स्वीकार कर लिया है।

इस साहित्य के प्रति विद्वानों द्वारा की गई अनेक शंकाओं के निवारणार्थ हिन्दी के जिन स्थित-प्रज्ञ विद्वानों ने इस विस्तृत अध्ययन को प्रेरणा दी है, वे वास्तव में हिन्दी-साहित्य के सच्चे सेवकों के रूप में धन्यवार्दाह है। इसी प्रकार श्री टंडन जी भी, जिन्होंने परिश्रम पूर्वक इस ग्रंथ को प्रस्तुत किया है वे न केवल हमारे ही अपितु सभी हिन्दी-साहित्यकों द्वारा अभिनंदनीय हैं। सुज्ञेषु किंबहुना।

अन्नकूटोत्सव
२०१७
कार्तिक शुक्ल १, मथुरा।

द्वारकादास पारीख
(वार्त्ता-साहित्य विशेषज्ञ)

दो शब्द

अखिल भारतीय पुष्टिमार्गीय परिषद् की स्थापना आज से चार वर्ष पूर्व सम्वत् २०१३ में हुई थी। तभी से परिषद् के उपाध्यक्ष एवं धर्माध्यक्ष श्री गोस्वामी रणछोड़लाल जी महाराज प्रथमेश की इच्छा थी कि यह परिषद् जहाँ पुष्टिमार्ग के व्यापक प्रचार, प्रसार एवं अध्ययन के लिए ठोस कार्य करे, वहाँ उसकी अपनी एक उपसंस्था ऐसी भी हो जिसके तीन प्रमुख कार्य हों।

१—पुष्टिमार्गीय साहित्य पर प्रामाणिक ठोस शोध कार्य किया जाय और जिज्ञासुओं से कराया जाय।

२—पुष्टिमार्गीय भक्ति और दर्शन की नियमित अध्यापन की व्यवस्था हो।

३—पुष्टिमार्ग पर लिखे गए उच्च कोटि के शोध-प्रबंधों का प्रकाशन हो।

उपर्युक्त तीन प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उक्त महाराज श्री ने "श्री वल्लभ रिसर्च इंस्टीट्यूट" की स्थापना की और अपने निजी उद्योग से १०००) एकत्र किया। उसको आपने प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिए दे दिया। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ को 'वल्लभ रिसर्च इंस्टीट्यूट' के प्रथम पुष्प होने का गौरव प्राप्त है।

यह प्रयास हिन्दी के मान्य विद्वान् डा० हरिहरनाथ टंडन ने किया है। वार्त्ता-साहित्य को पुष्टिमार्ग में धर्मग्रन्थों का सा आदर प्राप्त है। नित्य स्वाध्याय के पठनीय ग्रन्थों में उसका गौरव पूर्णस्थान है। अतः सम्प्रदाय में उनका महत्व स्पष्ट है, परन्तु सम्प्रदायेतर जगत् में—विशेष कर साहित्यिक जगत् में—उसकी प्रामाणिकता पर विद्वानों में बड़ा भारी मतभेद था। विशेष आश्चर्य की बात यह थी कि अनेक तथ्य वार्त्ताओं से लिये जाकर भी वार्त्ता-साहित्य को प्रमाण कोटि में नहीं समझा गया, यहाँ तक कि स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी तथा स्वर्गीय चन्द्रबली पाण्डेय इस साहित्य को संदिग्ध दृष्टि से देखने लगे थे। संभव है फिर उनसे प्रभावित लेखकों ने इस परंपरा को चालू रखा। ये धारणा इन महानुभावों ने डाकोर संस्करण के आधार पर ही बनायी थी। वास्तव में वार्त्ता साहित्य के प्रति इस प्रकार की धारणाएँ न्यायोचित नहीं कही जा सकतीं। हिन्दी के मूधर्न्य विद्वानों में फैले हुए इस भ्रम को निवारण करने में टंडन जी का यह स्तुत्य प्रयास है। इससे पूर्व श्री द्वारकादास जी परीख ने वार्त्ता साहित्य मीमांसा नामक एक छोटी सी पुस्तिका निकाली थी, परन्तु वह गुजराती में थी। बाद में वह हिन्दी में भी छपी। तदुपरान्त श्री परीखजी ने वार्त्ता-साहित्य का संपादन किया। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि वार्त्ता साहित्य की प्रामाणिकता पर प्रकाश डालते हुये एक विस्तृत प्रबन्ध योग्य अधिकारी द्वारा लिखा जाय। कतिपय हिन्दी साहित्य के उच्च कोटि के विद्वानों तथा श्री टंडन जी ने उनकी इस बलवती इच्छा को पूर्ण किया। श्री टंडन जी ने आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से वार्त्ता-साहित्य पर विचार किया है और आगरा विश्वविद्यालय से इस शोध-प्रबन्ध पर डॉक्टरेट भी प्राप्त की। हर्ष का विषय है कि टंडन जी का दृष्टिकोण आद्योपान्त सम्प्रदाय निरपेक्ष रहा है। उनका शोध-प्रबन्ध शोध की टेकनीक से कहीं भी दूर नहीं हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि वे सम्प्रदायेतर व्यक्ति हैं।

इन कारणों से इस शोध-प्रबन्ध का बहुत बड़ा मूल्य तो है ही, इससे वार्त्ता साहित्य की महत्ता सम्प्रदायेतर क्षेत्र में और भी बढ़ जाती है। विश्वास है कि इससे सम्प्रदाय और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में नवीन दृष्टियों का उन्मीलन होगा और विद्वानों एवं चिन्तकों को विचार करने के लिए अनेक नवीन दिशाएँ मिलेंगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्प्रदाय के अनेक रहस्यों का उद्घाटन एवं प्रकाशन हुआ है। इसमें वार्त्ता साहित्य को ऐतिहासिक, सामाजिक, तथा धार्मिक अनेक दृष्टियों से देखा गया और तथ्यों को वैज्ञानिक पद्धति से तर्क की कसौटियों पर कसा गया है। प्रायः सभी निर्णय प्रमाण के आधार पर दिये गये हैं। उनमें अनुमान, अटकल, अविचारित श्रद्धा अथवा अन्ध-विश्वास का सर्वथा अभाव है। लेखक ने सर्वत्र अपनी विचार शक्ति एवं भावना को सदैव स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष रखा है। अतः इसे यदि संप्रदाय का लघु एन्साइक्लोपीडिया कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। एतदर्थ लेखक अभिनन्दनीय है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अनपेक्षित विलम्ब हुआ है, इसमें अनेक कारण थे। उनकी यहाँ पर चर्चा करना अनावश्यक है। प्रयत्न करने पर भी उसमें प्रूफ सम्बन्धी अनेक भूलें रह गयी हैं, उन्हें भविष्य में दूर करने का प्रयत्न किया जायगा। 'वल्लभ रिसर्च इंस्टीट्यूट' के अन्तर्गत प्रकाशित होने के लिये कतिपय अन्य शोध प्रबन्ध एवं उच्च-कोटि के ग्रन्थ हमारे पास हैं, किन्तु द्रव्याभाव से हम उन्हें शीघ्र प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। संप्रदाय के उदार सेवा भावी श्रीमंत वैष्णवों से आशा है कि वे इस दिशा में हमारी सहायता अवश्य करेंगे। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में पं० बद्रीप्रसाद शर्मा, अध्यक्ष भारत प्रकाशन मंदिर ने जो श्रम और सहृदयता का परिचय दिया है। तदर्थ रिसर्च इंस्टीट्यूट उनका आभारी है।

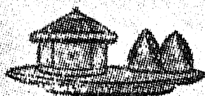
इस ग्रंथ के प्रकाशनार्थ १०००) प० भ० श्री दामोदरदास जी डागा आरसूल गो० श्रीरणछोड़लाल जी द्वारा दिया है जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ विश्वविद्यालय
गीता-जयन्ती, २०१७

गोवर्धननाथ शुक्ल
प्रधान सचिव
अखिल भारतीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव-परिषद्

विषय-सूची

पुष्टिमार्ग के आराध्य
श्रीनाथ जी





महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य



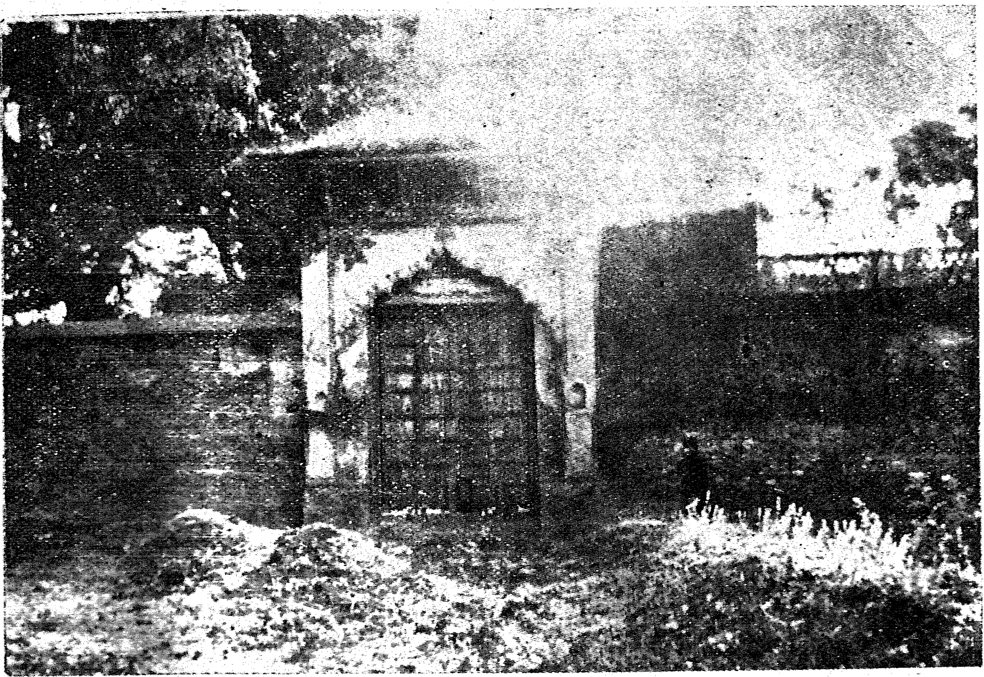
वार्ता साहित्य के आद्य प्रणेता

प्रा० सं० १५३५ वैशाख कृष्णा ११ ति० सं० १५८७ वि०

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी



वार्ता-साहित्य के प्रचारक
प्रा० सं० १५७२ पौष कृष्ण ६, नि० सं० १६४२ वि०



अड़ैल—श्री महाप्रभुजी की बैठक का सिंहद्वार

वार्त्ता साहित्य की परम्परा का आरम्भ

महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न करते समय एक प्रश्न यह भी पूछा था कि 'वार्त्ता' क्या है ?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था :—"काल पृथ्वी के पात्र में आकाश का ढंकना बंद करके, रात-दिन के ईंधन में सूर्य्य की आग जला कर, मास, ऋतु-रूपी डोई चला कर सब प्राणियों को पकाता है, यही वार्त्ता है।"[1]

'वार्त्ता' का अर्थ यहाँ उस विषय से लिया गया है जो कि समाचार है, और जानने योग्य है, अर्थात् जिसका जानना अपने ज्ञान के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इससे प्रकट होता है कि महाभारतकार की दृष्टि में वार्त्ता और कथा में अंतर था, क्योंकि यहाँ वार्त्ता केवल एक गूढ़ विषय के ज्ञान के पर्य्याय के रूप में प्रयुक्त होने वाला शब्द है।

वार्त्ता शब्द का प्रयोग वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि कालांतर में जहाँ इसका अर्थ प्रकारांतर से बदलता गया है, वहाँ इसके दूसरे व्यावहारिक रूप ने इसके इस प्राचीन अर्थ को भी सुरक्षित रखा है। आज भी आलाप में 'वार्त्ता' जुड़ कर 'वार्त्तालाप' शब्द का बनना, दोनों इसी के उदाहरण हैं। प्राचीन ग्रीक अपने विवाद को 'डायलाग्ज़' कहते थे, जिसका अर्थ था—'दो की बातचीत।' काल-व्यवधान से इसीसे 'डायलेक्टिक्स' की उत्पत्ति हुई जिसने व्यवहार में अपने नये रूप में जो व्याख्या समाज में प्राप्त की उसका अर्थ था—'द्वन्द्वात्मकता'। भारतीय परम्परा में भी जब भी दो के बीच जानने योग्य समाचारों का आदान-प्रदान हुआ, उसे 'वार्त्तालाप' कहा गया। किन्तु वार्त्ता उस समय अपना अर्थ बदल चुकी थी।

वार्त्ता वस्तुतः भारत में बहुत पुरानी वस्तु है। वार्त्ता अपने प्रचलित अर्थ में कोई कहानी होती है, जिससे किसी उपदेश का ध्वनित होना आवश्यक है, चाहे वह प्रकट हो या परोक्ष, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, मुखर हो अथवा गुह्य, सहज हो अथवा कठोर या दुरूह।

इसीलिये वार्त्ता को अधिकांश स्थान मिला तो ऐसी भूमि में, जहाँ धर्मभाव की श्रद्धा ने तर्क के कोने घिस दिये और केवल हृदयंगम करने के लिये जो उपदेशात्मक सत्य था वह स्वीकार किया जाने लगा। साहित्य की अन्य अभिव्यक्तियां उससे अलग कही जाने लगीं।

वार्त्ता अपने आदिम रूप में अतीत का स्मरण ही रही होगी, किन्तु उसका कोई प्रमाण हम नहीं जुटा सकते। मैलिनोवस्की आदि जिन एथ्नोलोजी के विद्वानों ने जंगली जातियों के साथ जीवन व्यतीत किया है, उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि वे जातियां अपने यहाँ लिखित साहित्य न होने पर भी प्राचीन कथाओं का स्मरण रखती हैं और उनके रूप ये हैं :—

(१) अतीत के पूर्वजों को महान् मानने की प्रवृत्ति से, आत्मा की उपासना करने से, अथवा पितृपूजा की परम्परा से, उनके यहाँ पूर्वजों की गाथा को दुहराने की प्रवृत्ति है।

(२) पूर्वजों की गाथा दुहराने के मूल में उनका यह विश्वास है कि वे फल के रूप में हैं जो बीज का ही परिणत रूप है।

---

१ महाभारत, वनपर्व अ० ३१३, १५–२०

(३) प्राचीन जादू और ऐसा ही जो तांत्रिक अभ्यास था, उसने भी पुरानी गाथाओं को जीवित रखने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार की पुरानी कथाओं का स्मरण रखने के कारण ही इनका और 'एरोक्वोइस' आदि अमेरिका की रेड इन्डियन जातियां अपनी प्राचीनता को बनाये रख सकीं। भारत में भी किसी समय अलिखित अवस्था में ऐसा होना कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि अब भी जो संथाल, उरांव, मुण्डा तथा ऐसी ही पुरानी जातियां हैं, वे प्रागैतिहासिक काल से अपने परिवर्त्तित होते हुए जीवन में अपनी कथाएं याद रख सकी हैं। तरबूज के बीजों से मुण्डा जाति के जन्म लेने की कथा प्राय: प्रसिद्ध ही है। लिखित जातियों ने अधिक योग्यता से अपनी पुरानी कथाओं को जीवित रखने का प्रयत्न किया है। लिखे जाने के पहले यह प्राचीन कथाएं श्रुति के आधार पर याद कर ली जाती थीं। और सामूहिक उत्सवों अथवा ऐसे ही अवसरों पर जब समुदाय के जीवन का कोई विशेष महत्वपूर्ण कार्य्य होता था तब वे गायी जाती थीं, या सुनाई जाती थीं। इन कथाओं के धीरे धीरे विकसित होने से ही संसार के महाकाव्य हमारे सामने प्रस्तुत हो सके हैं। ग्रीक होमर का काव्य पहले गाया जाता था और भीड़ें उसके गीतों को सुनती थीं। हमारे रामायण और महाभारत भी गाये जाते थे, उनकी कथाएं भी परम्परा से ही एकत्र होती रही थीं, जो अनेक शताब्दियों के उपरांत ही वर्तमान स्वरूपों को प्राप्त कर सकीं।

पितर पूजा के कारण प्राचीन लोग यह विश्वास करते थे कि उनके पूर्वज मर कर भी समाप्त नहीं हुए हैं, जो कुछ वे कर चुके हैं उन्हें दुहराना आवश्यक है, दुहराने से न केवल देवता और स्वयं पितर उन्हें सुनते हैं, वरन् एक वंशानुक्रम अथवा गणानुक्रम के माध्यम से आगे की पीढ़ियां उन्हें सुन कर अतीत के प्रति न केवल जागरूक हो उठती है, वरन् एक ऐसा सान्निध्य उपस्थित होता है, जो वस्तुत: काल के व्यवधान को विलीन करके जाति को समृद्ध करने में सहायक होता है। यह एक और देवताओं के प्रति था :

आत्वा कण्व अहूषत।
गृणन्ति विप्र ते धिय:।
देवोभिरग्न आ गहि।

अर्थात् हे मेधावी अग्नि! कण्वपुत्र तुम्हें बुला रहे हैं, साथ ही तुम्हारे कर्मों की प्रशंसा भी कर रहे हैं, देवों के साथ आओ।[1]

देवता को भी जाति का मित्र माना जाता था, उससे बातचीत होती थी, और उसकी प्रशंसा करते समय उसके प्राचीन महामहिम कार्य्यों का वर्णन भी किया जाता था।

अग्नि की ही स्तुति है—

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता।
विप्रोभिरस्तु सनिता।

अर्थात् समस्त मानव पूजित अग्नि ने घोड़े के द्वारा हमें युद्ध से पार करा दिया।[2]

देवता नये भी बन जाते थे। उस समय पुरानों की उपासना कम होने लगती थी। तब ही कहा है :—

१ ऋगवेद, १, १, १, ४, १४, २
२ ऋ० वे० १, १, २, ६, २७, ६

यजाम देवान् यदि शक्नवाम ।

मा ज्यायसः शंसमावृक्षि देवाः ।

अर्थात् बड़े बालक, युवक और वृद्ध देवों को नमस्कार करते हैं। हो सकेगा तो हम देवों की पूजा करेंगे। देवगण हम वृद्ध देवों की स्तुति न छोड़ दें। [1]

पितर-पूजा का यह पक्ष वार्त्ता—साहित्य की पृष्ठभूमि में विशेष महत्व रखता है, क्योंकि कालांतर में वार्त्ता—साहित्य में हमें एक जन्म की, जन्म जन्मांतर की बात मिलती है।

प्राचीन जाति में देवता के प्रति ही नहीं पूर्वजों के प्रति भी यही मिलता है, जहाँ पुरानी कहानी को दुहराया जाता था। जैसे—

त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरुरव से सुकृते सुकृत्तरः

श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्य से पर्या त्वा पूर्व मन यन्नापरं पुनः। [2]

अर्थात्—

अग्नि! तुमने मनु को स्वर्गलोक की कथा सुनायी थी। तुम परिचर्य्या करने वाले पुरुरवा-राजा को अनुगृहीत करने के लिये अत्यन्त शुभ फलदायक हुए थे। इत्यादि।

तथा—

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा।
अकृण्वन् नहुषस्य विश्वतिम्।
इडामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं।
पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते। [3]

अर्थात्——

अग्नि! देवों ने पहले पुरुरवा के मानव रूपधारी पौत्र नहुष का तुम्हें मनुष्य शरीरवान् सेनापति बनाया। साथ ही उन्होंने इडा को मनु की धर्मोपदेशिका भी बनाया था, जिस समय मेरे पिता अंगिरा ऋषि के पुत्ररूप से तुमने जन्म ग्रहण किया था।

इन ऋचाओं का गायक आंगिरस हिरण्यस्तूप है जो देवताओं और पूर्वजों के पारस्परिक सम्बन्धों को एक साथ देखता है।

इसके अतिरिक्त स्वयं देवताओं के मनुष्य जैसे पुराने पराक्रम यह प्रगट करते हैं कि किसी समय संभवतः देवता भी मनुष्य थे जो इसी पितर-पूजा के कारण तथा स्मृति से अधिक दूर हो जाने के कारण, देवता की संज्ञा प्राप्त कर गये। यथा—

इंद्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं,
यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा
अभिनत् पर्वतानाम्। [4]

अर्थात्——

---

१ ऋ० वे० वही १३

२ ऋ० वे० १, १, २, ७, ३१, ४

३ वही ११,

४ ऋ० वे० १, १, २, ७, ३२, १

वज्रधारक इन्द्र ने पहले जो पराक्रम का कार्य्य किया था, उसी कार्य्य का हम वर्णन करते हैं। इन्द्र ने मेघ का वध किया था। अनन्तर उन्होंने वृष्टि की थी। प्रवहमाना पार्वत्य नदियों को मार्ग भिन्न किया था।

आगे कहा है :

बैल की तरह वेग के साथ इन्द्र ने सोम ग्रहण किया था। बितद्रुक यज्ञ में चुवाये हुए सोम का इन्द्र ने पान किया था। धनवान् इन्द्र ने वज्र का सायक ग्रहण किया था और उसके द्वारा अहियों को मारा था।[1]

दर्पान्ध वृत्र ने पृथ्वी पर अपने समान योद्धा न समझ कर महावीर बहुध्वंसक और और शत्रुंजय इन्द्र को युद्ध में आह्वान किया था। इन्द्र के विनाश कार्य्य से वृत्र त्राण नहीं पा सका। इन्द्रशत्रु वृत्र ने नदी में गिरकर नदियों को भी पीस दिया। जिस तरह भग्न तटों को लांघ कर नद बहता है, उसी तरह मनोहर जल, पतित वृत्र की, देह को अतिक्रम करके जा रहा है। जीवितावस्था में अपनी महिमा द्वारा वृत्र ने जिस जल को बद्ध कर रखा था, इस समय वृत्र उसी जल के पददेश के नीचे सो गया। वृत्र की माता उसकी रक्षा के लिये उसकी देह पर टेढ़ी गिरी थी, परन्तु उस समय इन्द्र ने उसके नीचे के भाग पर अस्त्र प्रहार किया, तब माता ऊपर और पुत्र नीचे हो रहा। अनन्तर बछड़े के साथ गाय की तरह वृत्र माता दनु अनन्त निद्रा में सो गई।[2]

अनेक पौराणिक एवं देशी विदेशी दंतकथाओं की परम्परा से जीवित चले आने से स्पष्ट हो जाता है कि वार्त्ता का मूल उन कथाओं के बार बार दुहराने में था जो पितृ-पूजा के द्वारा भौतिक समृद्धि को बुलाती थीं। इसमें चेतन तत्व को एक जीवन के बंधन में न बाँध कर अनेक जन्म की परम्परा माना गया। भावलोक में वह एक ही व्यक्ति के अनेक जन्मों की गाथा भी बन गया, जो समाज के बौद्धिक विकास की परम्परा माना गया।

भारतीय पुराणों और इतिहास (महाभारत) में जो कथायें प्राचीन कहला कर वर्णित की गई हैं, उनके बीज वेद में ही प्राप्त हो जाते हैं। वैदिककाल में निस्संदेह इन ऋचाओं के अतिरिक्त भी कथायें कहने सुनाने की कोई परम्परा रही होगी। इसका कारण एक तो यही है कि ऋचाओं में किसी विशेष घटना की ओर संकेत मिलता है, समुदाय में गाई हुई ऋचा के पीछे एक विस्तृत ऐसा ज्ञान होना आवश्यक है, जो संकेत को समझ सके। अतः यह स्पष्ट होता है कि घटना का ज्ञान उपस्थित था, तभी उस घटना विशेष को सविस्तार उल्लिखित करने की ऋचाकार को आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। उसकी कोई तिथि अभी तक निश्चित नहीं हो सकी है। उस प्राचीनतम ग्रंथ में कथाओं के बीज का पाया जाना यही प्रमाणित करता

---

१ वृषाय माणो वृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य
आसायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ।
अयोद्ध्वे दुर्मंय आ हि जुहूवे महावीरं तुविबाघमृजीषम्
नातारीदस्य समृतिं वधानां संरुजानाः पिपिषः इन्द्रशत्रुः ।

२ नद न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अतियन्त्यापः
याश्चिद् वृत्रों महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः यत्सुतः शीर्षभूव ।
नीचावया अभवद् वत्रपुत्रेन्द्रा अस्या अवबधर्जभार
उत्तरा सूरधारः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ।

है कि कथा का सृजन मनुष्य ने अपने अनुभवों के भण्डार के रूप में बहुत ही आदिमकाल में कर लिया था।

ब्लूमफील्ड ने दिखाया है कि कथा का समावेश वेद के परवर्त्तीकाल में बढ़ता गया है। अथर्ववेद में कथात्मकता के चिह्न पहले की तुलना में कहीं अधिक प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में प्राचीन देवताओं के नाम तो नहीं मिलते हैं किन्तु उनका स्वरूप हमें बदला हुआ मिलता है। अलौकिकता, आध्यात्मिकता और सृष्टि रहस्य-मूलक व्याख्यात्मकता देवताओं के साथ सन्निविष्ट मिलती है। ऋग्वेद में जो पितर-पूजा की भावना से देवताओं, पितरों और मनुष्यों में पारस्परिक संबन्ध दिखाई देता है जिसकी ओर हम ऊपर इंगित कर आये हैं वह अथर्व में नहीं मिलता। इस युग में दर्शन की दृष्टि का उन्नतरूप प्राप्त होता है। यद्यपि अथर्ववेद की बहुत सी ऋचायें बहुत पुरानी ही हैं, परन्तु फिर भी उसका बहुत भाग परवर्त्ती ही है। किन्तु ब्राह्मण और आरण्यक साहित्य में हमें कथा तत्व पहले से अधिक प्राप्त होता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:

१—पहले जहां स्तुति प्रधानता थी वहां व्याख्यात्मकता का अंश बढ़ जाता है।

२—व्याख्यात्मकता गद्य को ही अधिक प्रश्रय देती है। गद्य में विस्तार से वर्णन की अधिक सामर्थ्य दिखाई देती है।

३—पुरातन में जो साधारण सा है, परवर्त्ती में उसकी अलौकिक व्याख्या करने की चेष्टा की गई है। जैसे वह सब व्यर्थ नहीं था। उसका अर्थ समझने की चेष्टा ही मूलतत्व है। इस प्रवृत्ति ने वार्त्ता की रीढ़ बनाई है और हिन्दी में भी प्राचीन की नवीन व्याख्या, अथवा प्रकारान्तर से पुरातन की व्याख्या करके उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न पाया जाता है।

ब्राह्मण साहित्य भी निश्चय ही बहुत पुरातन है। वह बुद्ध के समय में प्राचीन ही माना जाता था, अतः उसकी भी कोई निश्चित तिथि अभी तक नहीं दी जा सकी है। कर्म काण्ड की ही ब्राह्मण साहित्य में अधिकांश व्याख्या की गई है, जबकि उपनिषदों में उसी कर्मकाण्ड का दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में पुरुरवस् और उर्वशि की वही प्राचीन गाथा अत्यन्त कवित्वमय वर्णन के साथ प्रस्तुत की गई है जिसके कि बीज हमें ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। उर्वशि अप्सरा थी, जिसने राजा पुरुरवस् से विवाह किया था। किन्तु गन्धर्वों ने पुरुरवस् की अग्नियाँ चुरा लीं। पुरुरवस् को रात के समय मेम्ने की आवाज सुनाई दी। वह नंगा ही निकला। उर्वशि ने उसे नंगा देखा तो आकाश में चली गई। राजा विरह से कातर होकर विलाप करने लगा। उर्वशि ने जो शर्त लगाई थी, वह राजा से टूट गई थी। राजा कुरुक्षेत्र में रोता हुआ घूमता रहा। अन्त में वह एक कमल सरोवर के पास पहुँचा जहाँ अप्सरायें हंसों का रूप धर कर तैर रही थीं। उन्हीं में उर्वशि भी थी। उसके कारण गंधर्वों ने पुरुरवस् को अपनी एक विद्या प्रदान की।

शतपथ ब्राह्मण में ही मनु की प्रलय कथा का भी वर्णन है जो इस प्रकार है: हाथ धोते समय मनु के हाथ में मत्स्य आया जिसने कहा: मेरा पालन कर। मैं तेरी रक्षा करूँगा।

मनु ने कहा: तू मुझे किस प्रकार बचायेगा?

एक प्रलय आकर सब जीवों को नष्ट कर देगा। मैं उसी से तुझे बचाऊँगा।

"मैं किस प्रकार तेरा पालन करूँ ?"

मत्स्य ने कहा : जब तक हम लघु हैं, हमारा नाश बहुत है। क्योंकि मत्स्य मत्स्य को खा जाता है। पहले मुझे पात्र में रख। जब में बड़ा हो जाऊँ और उसमें न आऊँ तब तू गड्ढा खोद कर जल भर कर मुझे उसमें रख। जब मैं उसमें न समाऊँ तो मुझे समुद्र में छोड़ दे, तब मैं नाश को प्राप्त नहीं होऊँगा।

शीघ्र ही इन आदेशों के पालन से मत्स्य बहुत बड़ा हो गया। तब उसने कहा : अमुक वर्ष में प्रलय आयेगा। तब तू उसमें जहाज बनाना और जब प्रलय का जल चढ़े तब उसमें प्रवेश करना और मैं तेरी रक्षा करूँगा।

प्रलय आया। मत्स्य मनु के पास आ गया। मत्स्य के शृंग में मनु ने जहाज की रस्सी बाँध दी। मत्स्य उसके जहाज को उत्तरी पर्वत की ओर खींच ले गया।

तब मत्स्य ने कहा : मैंने तेरी रक्षा की। जहाज को वृक्ष से बाँध दे। नौबन्धन में ध्यान रख कि जल से तेरा सम्बन्ध न छूट जाये। जल उतरता जायेगा तब नाव भी उतरती जायेगी। तू फिर नीचे पहुँच जायेगा।

यही हुआ।

प्रलय के बाद संतान के लिए मनु ने यज्ञ किया। उसमें से एक स्त्री निकली। वह इडा थी। उसी से सृष्टि हुई।

पुरुरवस् और इडा की कथाएँ केवल कथाएँ नहीं थीं। उक्त ब्राह्मण में ये कथाएँ विशेष यज्ञ क्रियाओं का महत्व प्रारम्भ आदि समझाने के लिए कही गई हैं कि अमुक क्रियाओं का इस प्रकार आरम्भ हुआ, इनका महत्व यह है, इसे ठीक से किस प्रकार करना चाहिये। कथा के साथ एक उद्देश्य था। मनोरंजन के साथ धार्मिक कर्मकाण्ड का समावेश था। कर्मकाण्ड उसी प्राचीन पितर-पूजा का अवशेष था। बहुत से काम प्राचीन काल में किये जाते थे। समय बीतता गया। लोग उन कार्यों को करते रहे, परन्तु उनके मूल कारणों को भूलने लगे। तब ब्राह्मणवर्ग के सामने समस्या आई। ऐसा क्यों है? तब उन्होंने : ब्राह्मण पुरोहितों ने : पुराने की व्याख्या करने की चेष्टा की। यज्ञ एक संस्था बन चुका था। पहले अग्नि के उपासक उसके चारों ओर एकत्र होते थे। मिल-बाँट कर खाते थे। वह दान था किन्तु अब यज्ञ धार्मिक रूप ले चुका था। उसकी तत्कालीन समाज में पुरानी अवस्थिति नहीं रही थी। अब अग्नि की उपासना, पुराने व्यवहार रीति-रिवाजों का दुहराया जाना, फिर से अपनी व्याख्या चाहते थे ब्राह्मणकाल में वही हुआ और उसके माध्यम से कथाओं को भी समावेश प्राप्त हुआ। प्राचीन ब्राह्मण ग्रंथों के आख्यान गद्य में लिखे गये हैं। अतः वार्त्ताऍं प्राचीन काल से प्रायः गद्य में ही मिलती हैं। यद्यपि गद्य का याद करना कठिन होता है। यद्यपि उपनिषदों का गद्य याद करने की परम्परा नहीं हैं और फिर विशेष पुरोहित कुल ही इनको रट कर जीवित रखते थे, किन्तु अथर्ववेद में जुए के हिसाब लिखे जाने का उल्लेख स्पष्ट करता है कि लेखन तब पुरोहितों तक ही सीमित नहीं था, जनसाधारण में भी प्रचलित था, क्षत्रिय तो जानते ही थे, क्योंकि जुआ क्षत्रियों में अधिक चलता था। और क्षत्रिय पुरोहितवर्ग के लोग नहीं थे। जब क्षत्रियों में ही लेखन प्रमाणित होता है, तब निस्संदेह अधिक जागरूक और विद्या के तत्कालीन अधिकारी ब्राह्मणवर्ग में तो इसका प्रचार रहा ही होगा। तब यही अधिक ठीक लगता है कि लिखे जाने के बाद भी वैदिक

साहित्य को गुरू से क्यों सीखा जाता था और स्वर की शुद्धि पर इतना जोर क्यों दिया जाता था ? इसका कारण ही दूसरा है । वेद में शब्द को मुख्य माना जाता था और माना जाता रहा है, क्योंकि वेद का ब्रह्मा से सम्बन्ध है । बहुत प्राचीन काल में ही स्वर की अशुद्धता को इतना बुरा माना गया है कि वृत्रासुर की तो मृत्यु ही स्वर की अशुद्धि का कारण मानी गई है—

मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमोमाह ।
सा वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रसनुः स्वरतो पराधात् ।[1]

कर्मकाण्ड की व्याख्या के अतिरिक्त बदलती परिस्थितियों को समझाने में भी कथाओं का प्रयोग हुआ है । शुनःशेप की कथा ऐसी ही है । ऐतरेय ब्राह्मण में इसका उल्लेख है ।

वेधस् का पुत्र हरिश्चन्द्र इक्ष्वाकु राजा था । संतानहीन था । उसके सौ पत्नियाँ थीं, पर पुत्र किसी से न था । एक बार उसके पास पर्वत और नारद आये : पर्वत और नारद सामवेद के गायक ऋषि हैं और उनके नाम से ऋचाएं मिलती हैं : हरिश्चन्द्र ने नारद से पुत्र जन्म से लाभ पूछा । नारद ने कहा कि पुत्र के माध्यम से पिता अमरत्व को प्राप्त होता है । स्त्री के गर्भ में प्रवेश करके पति ही पुनः दसवें मास में प्रकारांतर से जन्म लेता है । वृथा वन में जटा दाढ़ी बढ़ा कर अज चर्म ओढ़कर रहने से क्या लाभ है ? जन्म जीवन है वस्त्र से रक्षा होती है, और स्वर्ण के आभूषणों से सौन्दर्य बढ़ता है । विवाह से पशुधन प्राप्त होता है और स्त्री ही मित्र होती है, पुत्री ही विषाद का कारण होती है । पिता के लिये ऊंचे से ऊंचे लोक में पुत्र ही प्रकाश दिखाता है । तू वरुण से प्रार्थना कर कि वह तुझे पुत्र दे । तू कह कि पहला पुत्र तू उसे बलि दे देगा ।

राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से यही प्रार्थना की कि यदि उसके पुत्र होगा तो वह उसे बलि दे देगा । वरुण ने तथास्तु कहा । हरिश्चन्द्र के रोहित नामक पुत्र हुआ ।

वरुण ने कहा : पुत्र हुआ है, मुझे बलि दे ।

राजा ने कहा : दस दिन से छोटा पशु तो बलि के योग्य ही नहीं होता । दस दिन का होने दो ।

वरुण ने कहा : यही सही ।

दस दिन बाद वरुण ने कहा : अब बलि दे ।

राजा ने कहा : तब तक क्या बलि, जब तक पशु के दांत न निकल आयें । दांत निकलने दे ।

वरुण मान गया ।

इसी प्रकार टालते टालते रोहित तरुण हो गया और जब हरिश्चन्द्र ने उसे बलि देना चाहा तो वह जंगल में भाग कर छिप गया, जहाँ लगभग एक वर्ष तक घूमता भटकता रहा । हरिश्चन्द्र पर वरुण का क्रोध उतरा । उसको जलोदर रोग ने घेर लिया । रोहित ने सुना तो लौटने का विचार किया किन्तु इन्द्र ब्राह्मण बन कर आया और उसने यायावर के जीवन की प्रशंसा की और घूमते रहने की राय दी । बार बार उसने लौटने का विचार किया पर इन्द्र ने हर बार उसे बहकाया । इस तरह पांच वर्ष उसे जंगल में घूमते हुए ही व्यतीत होगये ।

---

१ पाणिनीय शिक्षा ।

छठवें वर्ष उसे अजीगर्त नामक ऋषि मिला। वह जंगल में घूम रहा था। बड़ा भूखा था, खिन्न था। उसके तीन पुत्र थे : शुन:पुच्छ, शुन:शेप और शुनोलांगूल।

रोहित ने उससे एक पुत्र मांग कर उसे बदले में सौ गायें देने का वचन दिया। पिता ने बलि के लिये बड़ा बेटा न दिया, मां ने छोटा नहीं दिया। तब बलि के लिये शुन:शेप मिला।

रोहित उसे लेकर पिता हरिश्चन्द्र के पास गया। वरुण से प्रार्थना की गई, वरुण ने रोहित की जगह शुन:शेप—जिसका शब्दार्थ है कुत्ते का लिंग (इससे उस समय के नामों पर भी प्रकाश पड़ता है) की बलि स्वीकार कर ली क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठ होता था। राजसूय यज्ञ में शुन:शेप यूप से बांधे जाने को लाया गया। कोई तैयार नहीं हुआ कि उसे बांधे। अजीर्गत ने कहा—मुझे १०० गाय और दे तो मैं ही बांध दूं।

पितृसत्ता ने समाज की आदिम अवस्था में पिता का पुत्र पर कितना अधिकार था यह इस कथा से प्रमाणित होता है। परवर्तीकाल में इसी अधिकार के अवशेष ने एक दिन राम को भी वन में भेजा था।

रोहित ने १०० गायें और दीं उसने पुत्र को बाँधा। १०० गायें और मिलने पर वही उसकी बलि देने को खड़ा हो गया। वह उसे मारने बढ़ा तो शुन:शेप ने सोचा : ये मुझे बलि पशु की भाँति मारना चाहते हैं, जैसे मैं मनुष्य ही नहीं हूं।

तब उसने वैदिक देवताओं की स्तुति गाई।

ऋग्वेद में इन स्तुतियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ऋग्वेद में भी स्तुति जिस सूक्त में है उसी में शुन:शेप प्राचीन काल का व्यक्ति भी बताया गया है।

शुन:शेप: ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्ध:।
अवैनं राजा वरुण: ससृज्यद्विद्वाँ बद्धो वि ममोक्तु पाशात्॥[1]

अर्थात् शुन:शेप ने घृत और तीन काठों में आबद्ध होकर अदिति के पुत्र वरुण का आह्वान किया था, इसीलिये विद्वान् और दयालु वरुण ने शुन:शेप को मुक्त किया था, उनका बंधन छुड़ा दिया था।

अन्त में उसने गाया :

कस्त उष: स्तवप्रिये मुजे मर्तो अमर्त्ये।
कं नक्षत्रे विभावरि।
वयं हि ते अमन्यह्यान्तादा पराकात्।
अश्वे न चित्रे अरुषि।
त्वं त्येमिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिव:।
अस्मे रयिं नि धारय।[2]

अर्थात् हे स्तुति-प्रिय अमर उषा! तुम्हारे संभोग के लिये कौन मनुष्य है? हे प्रभाव

१ ऋ० वे० १, १, २, ६, २४, १३
२ ऋ० वे० १, १, २, ६, ३०, २०-२३

सम्पन्न ! तुम किसे प्राप्त होगी ? हे व्यापक और विचित्र प्रकाशवती उषा ! हम दूर या पास से तुम्हें नहीं समझ सकते।

हे स्वर्ग पुत्री ! उस अन्न के साथ तुम आओ, हमें धन प्रदान करो।

शुनःशेप की प्रार्थना में परवर्त्ती लोगों की प्रार्थना मिली हुई दिखाई देती है। ऐतरेय ब्राह्मण में यह कथा बहुत प्राचीन कही गई है जो आगे कहती है कि उषा की स्तुति करते ही शुनःशेप के बन्धन खुल गए। हरिश्चन्द्र का पेट रोगहीन हो गया। इस शुनःशेप को हरिश्चन्द्र के यज्ञ के होता विश्वामित्र ने अपना पुत्र बनाया और अपने सौ पुत्र छोड़ दिये।

ऐतरेय ब्राह्मण में यज्ञ के होने वाले कर्म में इस कथा से अनेक क्रियायें भी स्पष्ट की गई हैं। यह कथा राजा को सुनाई जाती थी (राजसूय में) और अध्वर्यु, होता, ऋत्विक आदि को दान दिया जाता था। प्राचीन वरुण की उपासना की बलिप्रथा का स्थान दूसरे प्रकार की उपासना यहाँ ग्रहण करती है।

विंटरनित्स ने मैत्रायणी संहिता से एक उद्धरण दिया है।[1] जो इस प्रकार है :—यम मर गया। देवताओं ने यमी को समझाया कि वह उसे भूल जाय। जब भी वे उससे पूछते वह कहती :—वह आज ही मरा है। तब देवताओं ने कहा :—ऐसे तो यह उसे कभी नहीं भूलेगी। हम रात बनायेंगे। उस समय केवल दिन था, रात नहीं थी। देवताओं ने रात बनाई। उससे कल (दूसरा दिन) हुआ। इस प्रकार वह उसे भूल गई। इसलिये लोग कहते हैं रात और दिन ही दुख भुला देते हैं। (१, ५, १२)

दूसरी कथा है—कि प्रजापति की संतान पर्वत थे और उनके पंख थे। वे उड़ जाते थे और जहाँ चाहे उतर जाते थे। उस समय पृथ्वी डगमगाती थी तब इन्द्र ने उनके पंख काट दिये और पृथ्वी को स्थिर कर दिया। किन्तु पंख तूफानी-बादल बन गये। और तभी वे सदैव पर्वतों की दिशा में घहराते हैं। (१, १०, १३)

कथाओं के रूपकों के तौर पर पुरानी गाथायें ब्राह्मणों में प्रस्तुत हुईं। उपदेशात्मक प्रवृत्ति को प्रकट करने वाली गंधर्वों और वाक् की कथा है। वाक् वाणी थी। शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख है। इस कथा में गन्धर्वों के नृत्यगीत पर वाणी रीझ जाती है। ऋषि इसे बुरा समझते हैं। परन्तु वाक् स्त्री है। तभी स्त्रियाँ भी व्यर्थ की वस्तुओं के प्रति आकर्षित हो जाती हैं। ब्राह्मणों में इसके अतिरिक्त सृष्टि की उत्पत्ति की भी कथायें मिलती हैं, जिनमें दार्शनिक विचार प्रकट होते हैं। मूलतः ब्राह्मण साहित्य में कथायें यज्ञ के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए आती हैं।

विकास क्रम में उपनिषद और आरण्यक ब्राह्मणों के बाद आते हैं, क्योंकि उनमें दार्शनिक व्याख्या है। उपनिषद की कथायें वार्त्ता साहित्य के अधिक निकट हैं, क्योंकि उनमें उपदेशात्मक तत्व अधिक हैं। रूपकों का अधिक सहारा लिया गया है। कंठोपनिषद् में वाजश्रवस् और नचिकेता की कथा है। (१ बल्ली १)

वाजश्रवस् की कथा गद्य और पद्य दोनों में हैं। यह रचनात्मक काल है। गद्य की यहाँ विपुलता है।

---

१ ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर—विंटरनित्स पृ० २१६ भाग १

उश्नह वै वाज श्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।
तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धा विवेश ।
सोऽमन्यत् पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः
आनन्दा नाम ते लोकांस्तान् स गच्छति ता ददत् ।।

अर्थात् निश्चय से यह कथा है कि मोक्ष की कामना करनेवाला वाजश्रवस था। उसने दान में सर्वस्व दे दिया। उसका नचिकेता नामक पुत्र था। उस समय उस कुमार को पुरोहितों को दक्षिणा के पाते देख श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह विचारने लगा--जिन्होंने पानी पी लिया है, तृण खा लिए हैं, जो दूध दे चुकी हैं, सामर्थ्यहीन हैं ऐसी गायों को देता हुआ यजमान सुखरहित लोक को जाता है।

यह सोच उसने कहा—पिता मुझे किसको दोगे ?

तीन बार ऐसा कहने पर पिता ने कहा—तुझे यम को देता हूँ।

नचिकेता यम के पास यह सोचता हुआ गया कि मनुष्य धान की भाँति पकता है और धान्य की भांति ही फिर जन्म लेता है। तीन दिन बाद वैवस्वत (यम) उसके पास आया और अपने घर में से तीन दिन के भूखे अतिथि को उसने वर माँगने को कहा।

नचिकेता ने औद्दालक आरुणि गौतम अर्थात्, अपने पिता की शांति क्रोधहीन अवस्था की कामना की। पहला वर मिला। फिर नचिकेता ने मृत्यु और बुढ़ापे से रहित स्वर्ग के जनों के आनन्द के बारे में पूछा। यम ने उसे अग्नियज्ञ की बात बताई, ईंटों और समिधाओं आदि के बारे में भी बताया। तब यम से नचिकेता ने पूछा—आत्मा है या नहीं, यह भेद बताइए कि जिससे मरे मनुष्य के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन हो।

यम ने कहा कि यह गूढ़ विषय है। पहले भी इस पर देवों ने प्रश्न किया था। अतः दूसरा वर माँग। यह रहने दे।

यम ने उसे अनेक प्रलोभन दिये, पुत्र पौत्रादि, धन-धान्य देने को कहा—

शतायुषः पुत्र पौत्रान् वृणीष्व
बहून् पशून हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयंच
जीव शरदो यावदिच्छसि ।

अर्थात्—सौ वर्ष जीने वाले पुत्र पौत्रादि माँग, बहुत से पशु हाथी, सोना, घोड़े, भूमि का बड़ा भाग माँग, जितने वर्ष चाहे उतनी आयु मांग। पर मरने के बाद की न पूछ।

नचिकेता ने कहा :—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज :
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।

अर्थात् मनुष्य के भोग कल के हैं : क्षणिक हैं : वे इन्द्रियों के तेज को नष्ट करते हैं। निश्चय ही यह जीवन अल्प है। इसलिए ये वाहन और नृत्यगीत तेरे पास ही रहें। मुझे तो मृत्यु के बाद का रहस्य बता।

तब वैवस्वत यम ने उसे मृत्यु के बाद का रहस्य समझाया। उसने आत्मा के विषय में बताया—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं।
कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

अर्थात् यह चेतन न उत्पन्न होता है, न मरता है। न ये कहीं से आया, न किसी का बनाया हुआ है। अतः यह आत्मा अजन्मा, नित्य, अविनाशी और अनादि है। शरीर के हनन होने पर यह हनन नहीं होता।[1]

इस देहधारी मनुष्य के हृदय में सूक्ष्म से सूक्ष्म तम और महान् से महानतम आत्मा छिपा रहता है। उस आत्मा को और आत्मा की महिमा को धातुप्रसाद (ब्रह्म कृपा) से आत्मज्ञानी और बीतशोक ही देखता है:—

अणोरणीयान् महतो महीयान्
आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।[2]

आत्मा रथ का स्वामी और देह रथ के रूप में समझाकर वैवस्वत ने आत्मा को इन्द्रियों का स्वामी बताया।

यद्यपि यह कथा अपने आप में महत्व रखती है, किंतु उपनिषद्-कार ने कहा है—

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय
कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति।[3]

अर्थात्, जो इस परम रहस्यभेद को ब्रह्म-सभा में सुनाये, या संयमशील होकर श्राद्ध काल में सुनाये, तब यह कथा अनन्त फलदायक हो जाती है।

परवर्ती युगों में इसकी उल्टी ही बात हमें शाक्त-संप्रदायों के प्रभावों से मिलती है, जहाँ विषय को गुप्त रखने की ही सलाह दी गई मिलती है। यद्यपि कथा सदैव अपना मत बढ़ाने के लिये बनती है। संभवतः संप्रदायांतर्गत भूमि का विभाजन इस प्रवृत्ति का पोषक बना हो, क्योंकि अयोग्य को उपदेश देना गीता में भी वर्जित कहा गया है। यह विचार ईसा मसीह के उपदेश में भी है कि ऊसर धरती पर बीज बोना व्यर्थ होता है।

भृगुवल्ली में वरुण और भृगु की कथा अत्यन्त ही रोचक है। पुराकाल में वरुण का पुत्र भृगु के पास गया और उसने ब्रह्मजिज्ञासा की। वरुण ने कहा (वह अन्न है) प्राण है, आँख है, कान है, वाणी है, तू तप कर और उसे जान ले।

---

१ यही विचार गीता में विकसित हुआ है—
नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि इत्यादि।

२ आत्मा का सूक्ष्मतम और विशालतम होने का विचार वेद में ही पाया जाता है। उपनिषद् में उसी का विकास हुआ है।

३ कंठोपनिषद्, १, ४, १७,

भृगु ने तप किया। उसने क्रमशः उपर्युक्त के विषय में जाना कि जीव इन्हीं से उत्पन्न होकर, इन्हीं में जीते हैं और अन्त में इन्हीं में जाते हैं। भृगु के मन में मन को उत्पत्ति, वृद्धि और लय का कारण जानकर संताप हुआ उसने फिर संशय किया तो तप किया। तब तप से उसने विज्ञान को ब्रह्म जाना। अन्त में उसने आनन्द को ही ब्रह्म जाना और उसे अपने तप से सफलता प्राप्त हुई।

ब्रह्म के विषय में जो विचार क्षेत्र में निरंतर विकास हुआ, वह इस कथा से स्पष्ट हो जाता है। वरुण का पुत्र भृगु था या नहीं यह विवादास्पद है। परन्तु यह कथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत नहीं करती, इसका दृष्टिकोण दर्शन की व्याख्या को सहज करके प्रस्तुत करना है।

ऐतरेय उपनिषद् में सृष्टि की रचना का क्रम दिया गया है, किन्तु वह पूर्ववर्णित ब्राह्मण उल्लेख से इतर है। इसका मूल वेद में मिलता है। ऐतरेय उपनिषद् ऋग्वेदीय है। ऋग्वेद में नासदीय सूक्त सृष्टि के प्रारम्भ के विषय में केवल अंधकार और जल की कल्पना करता है जो कि प्रसिद्ध ही है, ऐतरेयोपनिषद् की कथा इस प्रकार है :—

पहले यह एक ही आत्मा था। अन्य कुछ भी नहीं मिलता था। उसने इच्छा की कि लोकों को रचूं।[१]

उसने लोक रचे। अम्भस्, मरीची, मर और आपस् नामक जल रचे। फिर उसने इन जलों से निकाल कर पुरुष को मूर्च्छित किया। इस पुरुष (विराट्) को उसने तपाया। उस ज्ञान से विराट् का मुख निर्भेदन हुआ। जैसे अण्डा भेदन होता है मुख से वाणी हुई। वाणी से उसका देवता अग्नि प्रगट हुआ। दोनों नलिकाएं खुलीं, उनसे प्राण भीतर प्रविष्ट हुआ, और प्राण से वायु की सिद्धि हुई। दोनों आँखें खुलीं, और चक्षु प्रगटे, जिनका देवता सूर्य्य हुआ। दोनों कान खुले, सुनने की शक्ति प्रगटी और देवता दिशाएं हुईं। त्वचा बनी, लोम हुए जिनसे अन्न और वनस्पतियाँ हुईं। हृदय खुला, जिससे मन हुआ, मन से चंद्रमा हुआ। नाभि खुली, नाभि से अपान हुआ। और अधोभाग से मलत्याग हुआ। जननेन्द्रिय खुली, और उससे उत्पादन और उत्पादन से जल हुए।

वे सब देवता रचे जाकर महासमुद्र में—(विराट् में) गिरे। उस विराट् काया में भूख प्यास जागी। वे देवता रचने वाले से बोले :—हमें हमारा घर बता, जिसमें बैठकर हम अन्न खायें।

वह विधाता उनके लिये गायें लाया। वे बोले यह हमारे लिये पर्य्याप्त नहीं हैं। तब वह घोड़ा लाया। वे बोले :—यह हमारे लिये पर्य्याप्त नहीं है। तब वह पुरुष लाया। वे बोले : अहो ! ये उत्तम है। पुरुष ही सुकृत है।

तब विधाता ने कहा :—यथायोग्य घर में प्रवेश करो।

---

१ आत्मा वा इदमेक एव अग्र आसीत्।
नान्यत्किंचिन मिषत्।
स ईक्षत लोकान्नुत् सृजा इति।

यह सुनकर अग्नि वाक् बनकर मुख में प्रविष्ट हुई। वायु प्राण होकर नासिका में प्रविष्ट हो गया। सूर्य्य चक्षु होकर आँखों में, दिशायें श्रोत्र होकर कानों में, औषधि वनस्पतियाँ लोम होकर त्वचा में—इस प्रकार अन्यों ने प्रवेश किया चन्द्रमा मन होकर हृदय में, मृत्यु अपान होकर नाभी में तथा जल रेतस् होकर जननस्थान में प्रविष्ट हुए।

तब उसको भूख प्यास ने कहा : हमारे लिये कोई स्थान बता। वह विधाता बोला : इन्हीं देवताओं में मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ इनमें तुमको भागवाला बनाता हूं। इसीलिये जिस किसी देवता के लिये हवि दी जाती है, उसमें क्षुधा और तृषा दोनों भागवाले होते हैं।

इसके बाद उसने इच्छा की :—मैंने लोक और लोकपाल रचे, अब इनके लिये अन्न की रचना करूं।

तब उसने जलों को तपाया। उनके तपने पर उनमें से मूर्ति जन्मी अर्थात् स्थूल जग बना। वही मूर्ति अन्न है।

वह अन्न देवों को देखकर दूर भाग गया।

देवों ने उसे वाणी से पकड़ना चाहा, परन्तु न पकड़ सके। अगर पकड़ लेते तो खाने के स्थान पर उसका नाम लेकर ही तृप्त हो जाते। आँख—देखकर, श्रोत्र—सुनकर, त्वचा—स्पर्श कर, मन—ध्यान कर, जननेन्द्रिय—त्यागकर, असमर्थ रहे क्योंकि उनके गुण उन्हें तृप्त न कर सके।

तब उसने अपान से उस अन्न को पकड़ लिया जो पवन है वह अन्न का ग्रह है।

तब आत्मा ने विचारा कि यह देह मेरे बिना कैसे रहेगी ? आत्मा ने विचारा कि मैं किस द्वार से इसमें प्रविष्ट होऊं ? यदि आँख, नाक, कान आदि अपना अपना कार्य करते हैं तो मैं कौन हूँ ? क्या करूं ? तब वह कपाल फाड़ कर घुसा। उस को ही विकृति-द्वार भी कहते हैं। वह नान्दन भी कहलाता है। उस आत्मा की तीन अवस्थाएँ है, तीन निवास हैं—एक मस्तक, दूसरा कण्ठ, तीसरा हृदय। उसने जन्म लेकर भौतिक को देखा। उसने उस पुरातन पुरुष ब्रह्म को ही व्याप्त रूप में देखा। तब उसने कहा—यह मैंने जान लिया। तभी वह इंद्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो इंद्र है उसे ही गोपनीय रूप में इंद्र कहा जाता है। देव गुप्त हैं, वे रहस्य से प्यार करते हैं।[1]

यह सृष्टि का क्रम अपने पूर्वयुग के वर्णनों से जहाँ भिन्न है, और भिन्नता में उनका सार ग्रहण किये हुये है। [वार्त्ताओं में गोपनीयता की भावना रही है, जो सम्प्रदायपरकता की ओर ले जाती है।]

सामवेदीय छाँदोग्योपनिषद ताण्ड्य महाब्राह्मण का भाग है। उसकी शैली से ही ज्ञात होता है, कि वह बहुत प्राचीन है। उसमें अनेक प्रकार की कथाएँ आई हैं। पशु पक्षियों को भी कथा में पात्र बनाया गया है। यह उसकी प्राचीनता का एक लक्षण है।

---

१ तस्मादिदंद्रो नाम। इंद्रद्रो ह वैनाम,
तानिदंद्र सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण
परोक्षप्रिया इव हि देवा :
परोक्ष प्रिया इव हि देवा : ॥ : एतरेयोपनिषद् ३ खण्ड १४ :

प्रपाठक ४, पहले खण्ड में जान श्रुति पौत्रायण राजा की कथा है।

जानश्रुति पौत्रायण श्रद्धापूर्वक बड़ा अन्नदान देता था। उसने अपने राज्य में सब ओर धर्मशालायें बनवाईं। एक रात उसके यहाँ हंस आये। एक हंस ने दूसरे से कहा—मद्रनायन ! जानश्रुति पौत्रायण का यश दिन के उजाले की तरह फैल रहा है। उसे छूना नहीं, कहीं तू जल न जाये ?

दूसरे हंस ने कहा—अरे यह भी क्या गाड़ीवाला समुग्वारैक्य है ?

जानश्रुति पौत्रायण ने यह सुन लिया। सुबह उठकर सारथि से उसने रैक्य का पता लगाने को कहा। सारथि न खोज सका। राजा ने कहा—वहाँ ढूँढो जहाँ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण होता है।

क्षत्ता ने ढूँढते हुए एक गाड़ी की छाया में अपनी दाद खुजलाते हुए रैक्व को देखा। क्षत्ता ने पास बैठ नमस्कार करके कहा : भगवन् ! क्या तू ही गाड़ी वाला रैक्व है ?

उसने स्वीकार किया, तब सारथि लौट आया।

(प्रपाठक ४ दूसरा खंड) जानश्रुति पौत्रायण ६०० गायें, रत्नमाला और खच्चरों का रथ लेकर दर्शन करने चला। उसके पास जाकर विनय से कहा : ये तू ले। मुझे उस देवता की उपासना सिखा जिसकी तू आराधना करता है।

रैक्व ने यह सुनकर कहा : ओह शूद्र ! ये सब मुझे नहीं चाहिये। तब राजा ने १००० गायें रथ और अपनी पुत्री भेंट की। रैक्व ने स्त्री को ग्रहण कर लिया। राजा ने उसे जो ग्राम दिये वे रैक्व पर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुए। तब रैक्व ने उसे उपदेश दिया।

पंचतन्त्र में तो पशु-पक्षियों की कथायें बहुतायत से मिलती हैं। उपनिषद में इसकी पृष्ठभूमि प्राप्त होती है। यह परम्परा सम्भवतः और भी पुरानी रही होगी। पशु-पक्षियों का जीवित मनुष्यों का सा व्यवहार करना विकास क्रम में उस समय से प्रारम्भ होता है जब मनुष्य समुदाय टाटेम की उपासना करता है।

छान्दोग्य के चतुर्थ खंड प्रपाठक ४ से जो कथा प्रारम्भ होती है वह जहाँ एक ओर अपने युग की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण करती है, दूसरी ओर उसमें प्रकृति के पशु पक्षी समुदाय का व्यक्तीकरण भी दिखाई देता है।

प्राचीनकाल में जाबाल के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता से पूछा—मैं ब्रह्मचर्य धारण करूँगा, मुझे मेरा गोत्र बता। माता ने कहा :— मैं नहीं जानती, क्योंकि यौवन में तुझे पाया और अनेक स्थानों में रहती मैं परिचारिणी थी। जाने तू किसका पुत्र है, कोई पूछे तो मेरे नाम पर जावालसत्यकाम कहना।

सत्यकाम गौतम हारिद्रुमत के पास आया। उसने गोत्र पूछा। सत्यकाम ने कहा—मैं नहीं जानता, और माता के बचन दुहरा दिये। गौतम ने कहा—अब्राह्मण यह बात नहीं कहता। समिधा लेआ। मैं तुझे उपवीति दूँगा।

तब गुरु ने कृश दुर्बल गायों में से ४०० निकालकर उनकी देख-भाल का काम दिया सत्यकाम लेकर चल पड़ा। बोला—इनके हजार हुये बिना न लौटूँगा। कई वर्ष वह बन में रहा अन्त में वे १००० हो गईं।

तब ऋषभ (साँड) ने कहा—अब गुरुकुल में हमें ले चल। इसी ऋषभ ने सत्यकाम को ब्रह्मज्ञान दिया। ज्ञान का दूसरा पाठ अग्नि ने दिया। तीसरा पाठ उससे हंस ने कहा।

जब वह ब्रह्मज्ञानी हो गया तो आचार्य-कुल में लौट आया। अग्नि, ऋषभ और हंस तीनों मनुष्य नहीं हैं। परवर्त्ती साहित्य में तो इनका नाम रूपक के रूप में बहुत आता है। हंस का उपनिषदों में अन्य स्थलों पर आत्मा के लिये भी प्रयोग हुआ है। ये सत्यकाम-जावाल आगे चलकर बहुत बड़ा आदमी हो गया था। उसके पास कामलायन उपकौशल पढ़ा था जिसने ज्ञानियों से ज्ञान पाया था। सत्यकामजाबाल अश्वल जनक की सभा में जाता था और राजा उसका मान किया करता था।

श्वेतकेतु का पिता से विवाद तो प्रसिद्ध ही है कि पंद्रह दिन अन्न छोड़कर सोलहवें दिन वह अन्न को ब्रह्म मान गया। न्यग्रोध का फल फोड़कर जो पिता ने उसे ब्रह्म का रहस्य समझाया, वह बड़ी सरस कथा है, जो दर्शन की उलझन को सहज ही समझा जाती है।[1]

उपनिषद में इसी प्रकार अनेक कथायें हैं जो अपने सूक्ष्म तत्वों को सहज ही उभारती हैं। वैदिक चिंतन उपनिषदों में ही अपनी दार्शनिक व्याख्या कर सका था। इस पृष्ठ-भूमि में हमें न केवल आत्मा और ब्रह्म का रहस्य उद्घाटित होता हुआ मिलता है, वरन् वर्णन-शैली के वे रूप भी प्राप्त होते हैं, जिन्होंने परवर्त्तीकाल में अपना प्रभाव साहित्य की अभिव्यक्ति विशेष पर गहराई से छोड़ा है।

छाँदोग्योपनिषद् (प्रपाठक ५) में देह में कौन शक्ति बड़ी है इस पर आख्यायिका है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अथ ह प्राणा अहं श्रेयसि व्यूदिरे हं
श्रेयानस्म्यहं श्रेयानस्मीति।

जब विवाद हुआ तो वे प्रजापति के पास गए। उनसे पूछा। प्रजापति ने कहा—

यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं
पापिष्ठ तरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति।

अर्थात् तुम्हारे में से जिसके निकल जाने पर शरीर अतिपापा (अर्थात् मरा) सा दिखाई पड़े वही, तुममें श्रेष्ठ है।

पहले वाणी शरीर से चली गई, देह मृत न हुई, गूंगी हो गई।
फिर आँख, फिर कान, मन भी हार कर लौट आये।
तब प्राण निकलने लगा। तब प्राणों की जड़ें हिल गईं।
सबने कहा :—हममें तू ही श्रेष्ठ है। यहाँ से निकल। हमारा स्वामी बन।
तब वाणी ने कहा :—मैं जो वसिष्ठ हूँ वह तू ही है।
आँख ने कहा :—मैं जो प्रतिष्ठा हूँ वह तू ही है।
कान ने कहा :—मैं जो सम्पदा हूं वह तू ही है।
मन ने कहा :—मैं जो आश्रम हूँ वह तू ही है।
प्राण ने कहा—मेरा अन्न क्या होगा ?

---

१ छांदोग्योपनिषद—प्रपाठक ६ से १२

उन्होंने कहा :—सब कुछ ।

प्राण ने पूछा :—वस्त्र क्या होगा ?

उन्होंने कहा :—जल ।

यह उपदेश सत्यकामजावाल ने वैयाघ्रपाद गोश्रुति को दिया था। उपनिषदों के साथ वैदिक युग का अन्त होता है। वह ऐसा लगता है जैसे कोई समुद्र अपनी लहर समेट लेता हो। उसके सिमट जाने से नयी धरती निकलने लगती है। वह धरती महाभारत और रामायण हैं। रचनात्मक काल के दृष्टिकोण से इनका विकास बहुत दिनों तक हुआ और बहुत पुरानी परम्पराएं भी इनमें अन्तर्युक्त हो गईं।

वास्तव में बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य और ब्राह्मणों द्वारा बनाये गये इस साहित्य का प्रणयन अनेक शताब्दियों में हुआ है और वे समानान्तर रूप से बनते रहे। इनमें परस्पर एक दूसरे का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा क्योंकि इन सब ही संप्रदायों के अनुयायी एक दूसरे के पड़ोस में ही रहते थे। यद्यपि संप्रदाय के आचार्यों ने जहाँ तक हो सका है दूसरे का नाम भी बचाया है ।

"वैदिक काल के परवर्त्ती समय में ही कथा और गाथाओं के लिये 'इतिहास पुराण' शब्दों का प्रयोग होने लगा था। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, वाकोवाक्य और इतिहास पुराण की बालक को शिक्षा दी जाती थी। जन्म लेते ही बालक में इनको स्थापित करने का मंत्र भी है।"[१]

"कथाएं सुनाई जाती थीं और पथों पर लोग सुनते थे। चौराहों पर पंडित सुनाते थे। अश्वघोष ने अपने समय के आख्यानक काव्यों का उल्लेख तो किया ही है, किन्तु यह कथा सुनानेवाले और भी पुराने थे। महाभारत में चारण, मागध; सूत आदि का तो स्पष्ट उल्लेख है ही, उससे भी पहले कथाएं सुनाने वालों का एक वर्ग भारत में था।"[२]

सूत महाभारत में ब्राह्मणी के गर्भ और क्षत्रिय के वीर्य्य से उत्पन्न संतान मानी गई है।[३] राजा आदि की स्तुति करना उसका प्रधान काम है। यह एक प्रसिद्ध बात है कि सूत का महाभारत युद्ध से पहले समाज के उच्च वर्णों के सामने मान नहीं था। सूतपुत्र कह कर कर्ण को सब ही चिढ़ाते थे। कर्ण को जिस सूत ने पाला था, वह अधिरथ कथाएं न सुनाकर रथ चलाया करता था। इससे प्रगट है प्रत्येक सूत कथाएं सुनाने वाला नहीं होता था।

महाभारत-युद्ध के उपरांत हमें सूत का मान अधिक मिलता है। नैमिषारण्य क्षेत्र में पुराणवक्ता रोमहर्षण सूत का पुत्र उग्रश्रवा कुलपति शौनक के यज्ञ मण्डप में आया था। उसने हाथ जोड़कर ऋषियों को प्रणाम किया था। उन लोगों ने भी सूत का बड़ा भारी सत्कार किया था। वह जनमेजय के सर्पयज्ञ में तक्षशिला में रहा था। वहाँ वैशम्पायन ने कृष्णाद्वैपायन रचित महाभारत ग्रन्थ सुनाया था, जो इसने भी सुना था। फिर वह यात्रारत हुआ था। उसने अनेक तीर्थ, आश्रम देखे थे और स्यमंतपंचक तीर्थ भी गया था। वह अनेक धर्म-अर्थ

---

१ शांखायन गृह्य सूत्र १, २४, ८

२ वैदिक इंडैक्स कीथ-मैक्डानल पृ० ४६२,

३ अनुशासन पर्व ४८ अ० ८–९

का ज्ञान कराने वाली पवित्र पुराणों की कथाएं, राजाओं के इतिहास, ऋषियों के चरित्र, इत्यादि जानता था। [1]

उग्रश्रवा ने महाभारत ग्रन्थ की सारी कथा सुनाई थी।

सूत के अतिरिक्त बंदी और मागध का नाम आता है। पर वे चारण लगते हैं, जिनका काम स्तुतियां गाना था। ब्राह्मण साहित्य की भांति बौद्ध साहित्य भी बहुत काल तक बना था और इसीलिये उसे समेट लेना भी सहज नहीं है। बौद्ध साहित्य ने अनेक प्रकार की कथाएं प्रस्तुत की हैं। उन्हें तीन प्रकार के शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है।

(१) बुद्ध से पहले भी श्रमण इस देश में थे। अनेक संप्रदायों के साधु लोग वनों पर्वतों में रहते थे। कुटीचक, बहूराक, परमहंस, दन्तोलूखल, वातप, केस कम्बल, जिन, और इसी प्रकार के बहुविधि साधु सन्यासी रहते थे। इस साधु-परम्परा में जीवन के प्रति विरक्ति ही विशेष थी। इन लोगों में अनेक प्रकार की कथाएं भी चलती थीं, जिन्हें वे उदाहरण स्वरूप शिक्षा का माध्यम समझ कर ग्रहण किया करते थे। यह कहना उचित होगा कि यह कथाएं जनता की परम्परा से प्राप्त संपत्ति थीं। इसमें विभिन्न प्रकार की कथाएं थीं। यह साधारण रूप से प्रचलित थीं। इस कोष में से ही बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैनों ने कथाएं लीं और उन्हें अपने अपने रंग में रंगा। यह कथाएं जन साधारण में बनती, जुड़ती रहती थीं। इनमें विदेशों से आये व्यक्तियों द्वारा लाई कथाएं जुड़ जाती थीं, और विदेश जाने वाले व्यक्ति के माध्यम से यह कथाएं बाहर भी चली जाती थीं। यही एक विशेष कारण है कि संसार के अनेक देशों में कालांतर में पंचतन्त्र और ईसप की कथाओं जैसी कहानियाँ प्रचलित हुईं। यात्रा उस समय धीरे-धीरे हुआ करती थी। सार्थ : काफिले व्यापार करने जाते थे। लोग विभिन्न देशों से आ-आ कर मिलते थे। कहानियां सुनाई जाती थीं। और प्रायः पेशेवर कहानी सुनाने वाले उन्हें सुनकर अपने देश की परिस्थिति से उन्हें रंग कर सुनाया करते थे। यदि यह नहीं भी होता था, तो भी जन साधारण में चली हुई कथायें कुछ ही दिनों में स्थानीय रूप में रंग जाया करती थीं। यह एक परिवर्तित हुआ कोष था, जिसमें से सभी अपने लिये कथाएं लेते थे और उन्हें अपने काम के अनुसार प्रयुक्त किया करते थे। प्राचीन कथाएं जनजीवन में प्रचलित थीं ही। उनका भी प्रभाव पड़ता था। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन स्रोतों में निम्नलिखित कथा को इसी प्रकार प्रयुक्त किया गया है :—

एक बार कुछ ब्राह्मणों और साधुओं में आपस में इस बात पर विवाद हो गया कि संसार नित्य है या अनित्य। किसी ने संसार को नित्य कहा, किसी ने कुछ। 'यों आत्मा शरीर एक है।' या विभिन्न है 'मृत्यु के बाद ही पूर्णता है', या 'मृत्यु के पूर्व ही पूर्णता है', इत्यादि कहा सुनी होने लगी।

लड़ाई बढ़ गई। गाली की नौबत आ गई। भिक्खुओं ने जाकर बुद्ध से कहा। बुद्ध ने उस समय कहा :—

---

१ आदि पर्व, महाभारत १–१६

एक बार एक राजा ने सारे जन्मांधों को इकट्ठा किया। जब वे सब आगये तो राजा ने आज्ञा दी और उसके अनुसार एक हाथी लाकर खड़ा किया गया और उन्हें दिखाये जाने के लिये उसका स्पर्श कराया गया। किसी ने उसका सिर छुआ, किसी ने कान यों किसी का हाथ सूंड़ पर पड़ा, किसी का हाथी के दांत पर और एक के हाथ ने पूंछ को छुआ। राजा ने पूछा : हाथी कैसा होता है ?

जिसने हाथी का सिर छुआ था वह बोला : हाथी तो घड़े जैसा होता है। कान छूने वाले ने कहा : डलिया, सूप जैसा होता है। फटकने वाला। दाँत छूने वाले ने कहा—हल की नोंक जैसा होता है।

सूंड़ छूने वाले ने कहा : नहीं, वह हल के डंडे सा होता है।

जिसने पूंछ छुई थी वह कह उठा : मुझे तो वह झाड़ू जैसा ही लगा।

अब तो बावेला मच गया।

हर आदमी अपनी बात पर अड़ा हुआ था।

'नहीं, वह ऐसा है', 'वैसा नहीं ऐसा है', यही तू-तू मैं-मैं होती रही कि आखिर वे मारपीट पर उतर आये और राजा को बड़ा आनन्द आया।

'यही' बुद्ध ने कहा : ब्राह्मणों और मुनियों का भी हाल है। हर एक ने सत्य का एक अंश ही देखा है, और वह अपने देखे हुए अंश को ही सत्य समझ कर बाकी सब को झूठ कह रहा है।

ऐसी कथाएं उदान में आती हैं। महाभारत में गेयता अधिक है, वह गाया जाता था और उस समय में लोग उसकी भाषा को सहज ही समझते थे। ईसा पूर्व संस्कृत लोकभाषा न थी परन्तु उसका समझना तब कठिन नहीं था। बुद्ध से पहले तो लौकिक संस्कृत बोली ही जाती थी क्योंकि लोक की होने के कारण ही उसका नाम लौकिक पड़ा था। बुद्ध पूर्व पाणिनि ने लौकिक संस्कृत व्याकरण बना डाला था, जो प्रमाण है कि तब संस्कृत के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता था। क्योंकि व्याकरण बिना चलती भाषा के नहीं बना करता।

(२) दूसरे प्रकार की कथाएं वे हैं जो बुद्ध के समय की ही हैं, इनमें इतिबुत्तक में बुद्ध के कथन हैं और दूसरी ओर तत्कालीन समाज के चित्र हैं जिनमें राजा, भिक्षु, योद्धा, स्त्री तथा अन्यों की कथाएं आ जाती हैं [बौद्ध कथाओं में भी जहाँ एक ओर संप्रदाय परकता है, वहाँ दूसरी ओर इनमें सामाजिक सत्य भी प्राप्त होता है।]

[इन कथाओं के याद रखे जाने का कारण, जहां एक ओर उस कथा नायक की 'पूजा भावना' हो सकती है, वहाँ दूसरी ओर आदर्श स्थापित करने की भावना भी कही जा सकती है। नायक अपने अनुयायियों की दृष्टि में महान होता है' उसका जीवन आदर्श होता है। अतः उन आदर्शों की सुरक्षा आवश्यक होती है। संसार की प्रत्येक जाति में यही होता रहा है। मूसा, ईसा, मुहम्मद, महावीर से लेकर कबीर, नानक और गांधी तक नायक अथवा नेता कहे जाने वालों की एक-एक बात लिखी जाने की प्रवृत्ति हमारे यहाँ रही है और क्रमशः उन जीवनियों में चमत्कार भी जोड़े गये हैं, या इसके प्रयत्न किये गये हैं।]

बुद्ध का अपना जीवन भी चमत्कारपूर्ण बनाया गया है। बुद्ध जिस समय घर छोड़ कर चलते हैं तब मार रास्ते में मिलता है और चक्ररत्न का प्रलोभन देता है। बुद्ध ने जिस मेधा से तत्कालीन विद्वानों को अपना अनुयायी बनाया था वह तो प्राप्त नहीं होता। बुद्ध योगमाया की शक्ति दिखाते हैं। ऐसी ही कथाएं जैन तीर्थंकरों के साथ भी मिलती है।

हम कह सकते हैं कि यह उस युग विशेष का प्रभाव था, जो बाद में चलता रहा। मनुष्य की प्रकृति चमत्कारों में असाधारणत्व पैदा करके उसमें अपनी श्रद्धा को सन्निहित करने वाली रही है।

(३) तीसरे प्रकार की जो कथाएं बौद्ध साहित्य में प्रचुरता से प्राप्त होती है, वे जातक कथाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे केवल पद्य में हैं। बुद्ध के बाद की हैं। उनका निर्माण उत्तर भारत में हुआ था। वे अशोक से प्राचीन हैं। पहले वे मुंह जवानी याद की जाती थीं तब वे गद्य में रही होंगी। बाद में कविताएं भी बनीं, परन्तु वे तभी समझ में आती हैं जब उनके साथ कहानी भी स्पष्ट हो।[1]

इन जातकों में कथाएँ हैं जो उपदेशात्मक हैं और कल्पनात्मक हैं। वे उदाहरण स्वरूप भी कही गई हैं। पुरानी कथाओं (जातक) में बुद्ध को प्राचीन काल का कोई महान मुनि बताया जाता है, परवर्त्ती कथाओं में वह कभी बंदर, कभी घोड़ा इत्यादि बनता है। जन्म जन्मांतर की यह कथाएं बुद्ध को बोधिसत्व का नाम देती हैं। इनमें बोधिसत्व सदैव बहुत चतुर होता है। ये कथाएं निस्संदेह पुरातन थीं, किन्तु कालांतर में बौद्धों ने उन्हें अपने उपदेश फैलाने के लिये काम में लिया। इनमें कुछ कथाएं केवल कथोपकथन में ही हैं।[2]

उदात्त भावनाओं को जगाने वाली कहानियों की इन जातकों में कमी नहीं है। वेस्संतर जातक की कथा ऐसी ही है, जिसकी समानता धारण करने वाली कहानियां ब्राह्मण साहित्य में भी हैं।

राजा वेस्संतर ने प्रतिज्ञा करली थी कि चाहे जो भी उससे मांगा जाय वह कभी मना नहीं करेगा। वह कहता था कि यदि कोई मेरा हृदय, आंख, मांस, मेरा शरीर भी मांगेगा तो मैं दान कर दूंगा।

अपने देश की चिंता न करके उसने एक अद्भुत हाथी दे दिया। उसे निर्वासन में जाना पड़ा। केवल पतिव्रता मद्दी उसकी स्त्री अपने दो बच्चों को, अपनी अंतिम संपत्ति, एक चार घोड़ों के रथ में ले उसके पीछे चल पड़ी। मार्ग में एक ब्राह्मण मिला जिसे वेस्संतर ने घोड़े और रथ दे दिये। बच्चों को लिये लिये वे जंगल में पैदल भटकने लगे अन्त में वे एक आश्रम में पहुँचे जहां उन्होंने आश्रय लिया। सक्क : शक्र : एक कुटिल और कुरूप ब्राह्मण बन कर आया जिसने बच्चों को मांगा कि वे उसके दास बनें। वेस्संतर ने बच्चे दे दिये। तब उसने उसकी स्त्री मांगी। वेस्संतर ने वह भी दे दी। तब शक्र : इन्द्र : अपने असली रूप में प्रगट हुआ और उसने उसकी प्रशंसा की।

महाभारत में ऐसी ही कहानी शिवि की है जो अपना मांस काट कर देता है।

१—बुद्धिस्ट इंडिया, टी० डब्ल्यू० राइज डेविस १९१७ पृ० २०६,

२—ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर भाग २ पृष्ठ १४४

कहीं कहीं जातक कथाएँ तीखा व्यंग्य करती हैं। एक बार एक बंदर राजा के महल को देख आया। अन्य बंदरों ने उसको चारों ओर से घेर कर सब हाल पूछा। न जाने वह क्या-क्या देख आया होगा ?

बंदर ने उत्तर दिया :

वे : मनुष्य : दिन रात चिल्लाते हैं कि यह बहुमूल्य सुवर्ण मेरा है, मेरी है। ये मूर्ख कभी सत्पथ को दृष्टि उठाकर भी नहीं देखते। उस घर (महल) में दो स्वामी हैं। एक के दाढ़ी नहीं है, बल्कि लम्बी छातियां है, कानों में छेद हैं, बाल बीच में से कढ़े हुए हैं उसका बड़ा मूल्य लगाया जाता है, उसने सब पर आफत ढा रखी है।

विभाण्डक और ऋस्यशृंग की कथा में भी स्त्री का वर्णन आता है, परन्तु महाभारत-कार का दृष्टिकोण पुरुष का रतिभाव जगाने के लिये है, जब कि यह कथा एक गहरा व्यंग्य छोड़ जाती है।

जैन कथाओं में अनेक प्रकार की विविधता है। उनमें न केवल अपने तीर्थंकरों की कथाएं हैं, वरन् डाकू, व्यापारी, राजा आदि का भी वर्णन आता है। परन्तु सम्प्रदायपरक होने के कारण उनमें वह बात नहीं आती जो ब्राह्मण साहित्य में है।

[बौद्ध और जैन साहित्य की कथाओं में भी निम्नलिखित विशेषताएं प्राप्त करते हैं :—

(१) अतीत की कथाओं का नये रूप में विकसित प्रयोग करती हैं।

(२) उनमें उपदेशात्मकता है।

(३) जन्मजन्मांतर के धागे में कथाओं को पिरोकर बौद्ध साहित्य ने एक अभूतपूर्व धरोहर छोड़ी है।

(४) जैन कथाएं व्यापक क्षेत्र को लेती हैं।

(५) ब्राह्मणों की कथाएं जो यज्ञ और कर्मकाण्ड को समझाने के लिये थीं, उनसे अगली मंजिल हमें इन साहित्यों में प्राप्त होती है जहां मानवीकरण की प्रवृत्ति अधिकाधिक दिखाई देती है।]

इन कथाओं का इतना बड़ा भण्डार है। इनको देखकर किसी भी जाति या देश को गर्व हो सकता है। जिस प्रकार ब्राह्मणों ने कथाएं कर्मकाण्ड के लिये प्रयुक्त की कि पुरातन रीतियों को समझा जाय, इन कथाओं में वह बात नहीं है। बौद्ध और जैन मतों के पीछे ब्राह्मण सम्प्रदाय की सी परम्परा नहीं थी। प्रारम्भ में तो जैनों ने ब्राह्मण आख्यानों के चमत्कारवाद का खण्डन करने की भी चेष्टा की थी। हनुमान को इसीलिये उन्होंने वानर न बनाकर पवन का पुत्र बनाया। पवन के पिता को प्रहलादराय। हनुमान की ठोड़ी दबने का कारण भी यह बताया कि बालक हनुमान विमान में जड़े हीरे को सूर्य्य किरण में चमकता देखकर उसे खाने को झुका और उड़ते विमान से गिर गया, जिससे उसकी हनु दब गई। किन्तु यह प्रयत्न सिद्ध नहीं हुआ। जैन कथाएँ, बौद्ध कथाओं की भांति संसार को निरंतर असार ही प्रमाणित करती हैं, किन्तु उनमें जो वाग्वैदग्ध्य है। वह वास्तव में प्रशंसनीय है। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका मोल है ही, इनमें जो कल्पनात्मक तत्व है वह अधिक महत्व-पूर्ण है, क्योंकि वह उनमें सार्वभौम और सार्वजनीन तत्व है और सम्प्रदाय की लघुता के

परे होकर वह सार्वकालिक आनन्द देता है। उस में हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ जाने वाले तत्व प्राप्त होते हैं, जो इसीलिये हैं कि यह कथाएं अंततोगत्वा जैन कथाओं के आधार पर ही बनी थीं।

कालक्रम से महाभारत की अधिकांश कथाओं को विद्वान वाल्मीकि रामायण की कथाओं से पुराना मानते हैं। महाभारत और रामायण की कथाएं अनेक प्रकार की है जिन्हें निम्नलिखित विभाजन के अंतर्गत रखा जा सकता है :—

(१) ऐतिहासिक कथाओं में भी जो चरित नायकों से सम्बन्ध रखती हैं और 'उनके जीवन, को प्रगट करती हैं—ऐसी कथाओं में चमत्कार भूरिशः प्राप्त होता है। इसका कारण है कि 'वीर पूजा' के भाव ने जहाँ नायकों को असाधारण बनाने की प्रवृत्ति दी है, दूसरी ओर उदात्त भावनाओं के सृजन के लिये भी चमत्कारों का प्रयोग हुआ है। महाभारत और रामायण के चरित नायकों में मुख्य भेद यह है कि महाभारत का नायक युधिष्ठिर अथवा कृष्ण अपनी परिस्थितियों के अन्तर्गत ही बने रहते हैं, चाहे उनका पराक्रम कितना भी हो, जब कि रामायण का चरित नायक भाग्य के बंधनों को काटता है और विजयी होता है।

(२) किन्तु उभय पक्ष में विजय का अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिक माना गया है और ऐहिक वैभव को आवश्यक मानकर भी पारलौकिक सुख को ही ऊँचा स्थान दिया गया है। संसार की असारता तो परिलक्षित होती है, किन्तु वैराग्य को जीवन के भोग से संतुलित करने की चेष्टा हुई है, किसी एक के पक्ष में दूसरे को छोड़ देने का परामर्श नहीं दिया गया है।

(३) इन काव्यों की कथाएं संप्रदायपरक नही हैं, बल्कि कहीं कहीं सम्प्रदायों की अन्तर्मुक्ति से एक व्यापक भूमि बनी है, जो आस्तिकता की दीवारों में घिरी हुई है। बाकी किसी प्रकार का भी व्यवधान उन्हें नहीं रोकता।

(४) ज्ञानपरक, नीतिपरक, उपदेशात्मक, रूपकात्मक तथा विचारात्मक अनेक प्रकार की कथाएं इनमें आता हैं जो पशु, पक्षी, तथा देवताओं को भी पात्र बनाती हैं।

(५) [इन दोनों काव्यों में अतीत की गाथाओं को जीवित रखने का घोर प्रयत्न किया गया है और उनके प्रति श्रद्धा की भावना भी अत्यधिक प्राप्त होती है।]

महाभारत वन पर्व (५५० अ) में भीम और हनुमान का मिलन ऐसा ही है जहाँ भीम हनुमान की पूँछ भी टस से मस नहीं कर सकता। उसका बलिष्ठ होने का गर्व खण्डित हो जाता है। कारण यह है कि वह द्वापर का व्यक्ति है और त्रेता के व्यक्ति से छोटा है। वह उतनी शक्ति भी नहीं रखता। हनुमान फिर चारों युगों की कथा सुनाता है और इस प्रकार आते हुए क्षय की ओर संकेत करता है।

महाभारत की कथाओं में सबसे अधिक ऐतिहासिक बीज है, जो घटना के बहुत बाद में लिखे जाने से चमत्कारों से सबसे अधिक आच्छादित हो गया है। अनेक कथाएं तो केवल तीर्थों का महात्म्य और ब्राह्मण की विशेषता प्रगट करने के लिये कही गई हैं,] जो उतनी दिलचस्प नहीं बन पड़ी हैं। वेद और ब्राह्मणों की कथाएं भी सविस्तार वर्णित हैं। मनु की कथा ऐसी ही है।

दार्शनिक चिंतन कहीं कहीं अत्यंत ही काव्यमय रूप लेकर प्रगट हुआ है। मार्कण्डेय की कथा[1] ऐसी ही है जो तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को देखती हुई अन्त में दर्शन पर पहुँचती है :—

मार्कण्डेय ने कहा—(१५० अ) मैं ऐसे ही एक बीते हुए प्रलयकाल का हाल कहता हूँ। सुनिये। मैं बहुत समय तक मारा-मारा फिरता रहा। इतने में बहते पानी में एकाएक उस जलराशि पर मुझे एक विशाल बरगद का वृक्ष दिखा। उसकी एक बड़ी भारी शाखा पर पलंग था— जहाँ एक सुन्दर बालक देख पड़ा— वह श्रीवत्सधारी था— उसने कहा— मेरे शरीर में प्रवेश करके विश्राम करो— मैं विवश सा उसके मुँह में चला गया— वहाँ राज्यों और नगरों सहित मैंने समूचा पृथ्वी मंडल देखा। उसके भीतर गंगा, शतद्रुसिता, यमुना— अनेक नदियाँ थीं— रत्नाकर था— आकाश मण्डल था— पर्वत वन थे— ब्राह्मण यज्ञरत थे— चारों वर्ण अपने अपने धर्म का पालन कर रहे थे— इंद्र देवता आदि थे—तब उसने जमुहाई लेकर मुँह खोला:— मैं बाहर आया।

[महाभारत में ही गीता का उपदेश देते समय कृष्ण अपना विराट् रूप दिखाते हैं। बाद में सूरदास की यशोदा भी अपने पुत्र के मुँह में त्रैलोक्य देखती है।]

राजा शिवि की कथा आत्मत्याग का उदाहरण प्रस्तुत करती है।[2] राजा बाज की भूख मिटाने के लिये अपने मांस को काट काट कर देता है ताकि कबूतर के प्राणों की रक्षा हो सके। अंत में पता चलता है कि वह बाज इन्द्र था और कबूतर अग्नि देवता था। दोनों उसके त्याग की परीक्षा लेने आये थे।

शिवि की एक और कथा भी है जो अधिक प्रभावशाली है। (१९८ अ)

एक बार एक ब्राह्मण शिवि के पास आया और बोला : मैं भूखा हूँ।

शिवि ने कहा : आज्ञा दें। क्या करूं।

ब्राह्मण ने कहा : आपके जो बृहद्रथ नामक पुत्र है, उसका मांस खिलावें तो ठहरें।

राजा ने उसका मांस पकाया और उसके पास गये। ब्राह्मण वहां था नहीं। वे ढूंढ़ने लगे तो एक व्यक्ति ने कहा कि देर हो जाने से ब्राह्मण नगर के भीतर जाकर राजा के घर, कोषागार, शस्त्रशाला, रनिवास, घुड़साल, हस्तिशाला आदि सब स्थानों में आग लगा रहा है।

यह समाचार सुनकर भी राजा को क्रोध नहीं आया। राजा वहीं पहुँचे और ब्राह्मण से कहा :— लीजिये ! भोजन तैयार है।

ब्राह्मण अकपका गया। उसने सिर झुका लिया। तब राजा उससे भोजन करने के लिये बारम्बार प्रार्थना करने लगे।

ब्राह्मण ने कहा— इसे तुम्हीं खाओ।

शिवि ने तुरन्त आज्ञा मान ली और बालक के सिर की हड्डी हटा कर ज्यों ही राजा ने खाना चाहा कि ब्राह्मण ने हाथ पकड़ लिया और कहा— हे राजन् ! तुम क्रोधजित हो गये हो। ऐसा कोई काम नहीं जो तुम ब्राह्मण के लिये नहीं कर सकते।

१—वनपर्व १८८ अ
२—वनपर्व १९७ अ

ब्राह्मण ने पुत्र जिला दिया। वह ब्राह्मण नहीं था वह स्वयं विधाता था, जो परीक्षा लेने आया था।

ऐसी कथाओं में मनुष्य के सामने देवता भी पराजित हो जाते हैं। दमयंती का पातिव्रत देख कर देवता भी स्वयंवर में लज्जित हो गये थे। वैष्णव वार्त्ता साहित्य में भी वैष्णव के सत्संग के लिये अपने पुत्र को मार देने की कथा है।

इंद्रद्युम्न की कथा बड़ी रोचक व मनोरंजक है। मार्कण्डेय[1] के पास एक बार इन्द्रद्युम्न आया। वह पुण्यक्षीण होने पर स्वर्ग से भ्रष्ट होकर आया था उसने मार्कण्डेय से पूछा—इस समय मेरी सब कीर्ति लुप्त हो गई है। तुम चिरंजीव हो। मुझे जानते हो?

मार्कण्डेय ने कहा—नहीं, मैं नहीं जानता। मैं तो एक ग्राम में रात भर रहता हूँ। लगातार तीर्थों में घूमता हूँ। अपने ही संकल्पों को पुण्यकार्य में लगे रहने से मैं भूल जाता हूँ।

'तो' इंद्रद्युम्न ने पूछा—तुमसे बढ़कर भी कोई चिरजीवी है?

मार्कण्डेय ने कहा—हाँ, हिमाचल पर्वत पर प्रावारकर्ण नाम का एक उलूक है। पर हिमालय बहुत दूर है।

इन्द्रद्युम्न झट घोड़ा बन गया और मार्कण्डेय को पीठ पर बिठा कर ले चला। वहाँ पहुँच राजर्षि इन्द्रद्युम्न ने उलूक से भी यही पूछा। उलूक ने कहा—मैं नहीं पहचानता।

और भी अधिक आयु वाले का पता पूछने पर उसने इन्द्रद्युम्न नामक सरोवर में रहने वाले नाड़ीजंघ नामक बगुले का नाम बताया। अब तीनों नाड़ीजंघ के पास गये।

नाड़ीजंघ भी नहीं जानता था। उससे पूछा गया कि उससे भी प्राचीन कोई था?

नाड़ीजंघ ने उसी तालाब में रहने वाले कच्छप अकूपार को पुकारा। सब कच्छप के पास गये। उससे पूछा।

पल भर सोचने के बाद आँखों में आँसू भर कर, घबराकर उसने काँपते काँपते, हाथ जोड़कर कहा—मैं इन राजर्षि को अच्छी तरह जानता हूँ, इन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ करके हजारों बार पृथ्वी पर अग्निचयन कर्म में यज्ञयूप स्थापित किये हैं। इन्होंने जो असंख्य गायें यज्ञों में दक्षिणा में दी थीं उन्हीं के चलने फिरने से खुद कर यह सरोवर बना है। मैं बहुत दिनों से इसमें रहता हूं।

कच्छप के यों कहने पर उसी समय देवलोक से एक दिव्य रथ आया और इन्द्रद्युम्न के लिये आकाशवाणी हुई कि स्वर्ग आ जाओ, अभी पृथ्वी पर तुम्हारी कीर्ति बनी हुई है।

पुण्यात्मा मनुष्य की कीर्ति जब तक स्वर्ग में और पृथ्वी पर बनी रहती है तब तक वह सुख का अधिकारी रहता है और जिसकी अकीर्ति लोक में फैलती है वह, जब तक अकीति रहती है तब तक, नरक में पड़ा रहता है।

वाल्मीकि रामायण (उत्तर काण्ड ७२ सर्ग) में वन में रहने वाले एक गीध और एक उल्लू ने राजा राम की सभा में एक दूसरे पर दावा किया। बात यह हुई कि एक दिन गीध के मन में पाप समा गया। बहुत दिनों से दोनों एक ही वन में रहते थे। वह गीध उल्लू के पास जाकर कहने लगा—यह तो मेरा घर है।

१—वनपर्व १९९ अ०

उल्लू पुराना निवासी था। बोला—चलो राजा राम से न्याय करावें। चुनाचे दोनों आये। दोनों क्रुद्ध थे। घबराये हुये थे। महाराज के पाँव छुये। गीध पहले बोला—राजन् मैंने बाहुबल से घर बनाया था। इसकी इच्छा है कि उसे दबाले।

तब उलूक ने कहा—यह गीध मेरा घर लेना चाहता है। आप न्याय करें।

राजा राम ने मंत्री बुलाये। धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राष्ट्रवर्द्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमन्त आ गये। राम अपने पुष्पक नामक राज्यासन से उतरे और गीध से पूछा—कितने वर्ष से यह तुम्हारा घर है ?

गीध ने कहा—महाराज ! सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुये लोगों से जब यह पृथ्वी भर गई तभी से यह मेरा घर है।

फिर उलूक से पूछा गया।

उलूक ने कहा—जिस समय यह पृथ्वी वृक्षों से भर गई थी, तभी से यह मेरा घर है।

राम ने मंत्रियों से न्याय करने को कहा।

मंत्रियों ने कहा—उलूक पुराना है वही सत्य कहता है।

तब राम ने पुराणों की बात कही :—

प्रारम्भ में चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रादिसहित आकाश, पर्वत, और महावनों सहित यह पृथ्वी चर और अचर सहित तीनों लोक, यहाँ समुद्र के जल में डूबे हुए एक राशिभूत मेरु के समान थे। लक्ष्मी और यह सब भगवान विष्णु के उदर में था। इस सबको लिये हुए वे समुद्र में वर्षों तक सोते रहे। इनके सोने पर, चारों ओर से जल के स्रोतों को रुका देख कर महायोगी ब्रह्मा विष्णु के गर्भ में घुस गये। फिर विष्णु की नाभि से सुवर्णभूसित एक कमल पैदा हुआ। उसमें से योग बल से ब्रह्मा निकले। उन्होंने पृथ्वी, वायु, पर्वत और वृक्ष एवं मनुष्य, सांप जरामूल, और अण्डवों को तपस्या करके जन्म दिया। उस समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ उत्पन्न हुए। ये दोनों दानव बड़े वीर घोर रूप और बड़े दुर्लंघ्य थे। वहाँ ब्रह्मा को देखकर वे बड़े क्रुद्ध हुये और उन्हें खाने दौड़े। ब्रह्मा चिल्लाये। विष्णु ने तब चक्र से मधु के शरीर को काट डाला। उनकी चरबी से पृथ्वी ढक गई। विष्णु ने फिर उसे शुद्ध कर वृक्षों और वनस्पतियों से भर दिया। फिर इसमें से तरह तरह के अन्न उत्पन्न हुए। अतः वृक्ष मनुष्य से पहले थे। अतः गीध भूँठा है, उलूक सत्य कहता है।

इस कथा में काल व्यवधान का विकास दिखाने की चेष्टा की गई है। चाहे जिस प्रकार भी हो, यहाँ यह प्रकट होता है कि प्राचीन भारतीय भी वृक्षों की उत्पत्ति को मनुष्य की उत्पत्ति से पुराना मानते थे। उक्त कथा में जहाँ एक ओर राजधर्म बताया गया है, वहाँ प्रजा के अधिकार भी नियत किये गये हैं।

महाभारत शान्ति पर्व (अ० २२३) में एक बड़ी मनोरंजक कथा है।

इन्द्र एक बार ऐरावत हाथी पर घूम रहे थे। वे न्याय की बात पूछना चाहते थे। ब्रह्मा ने देवासुर संग्राम विजयी इन्द्र को यही परामर्श दिया था। राजा बलि उस समय गधा बनकर रहते थे। उनको उस योनि में देख इन्द्र हँसने लगा।

(२२४ अ) बलि ने कहा—हँसो मत ! काल ही भले बुरे कर्मों का कर्त्ता होता है। जो है वह भाग्य ही है।

(२२५ अ) बलि के यह कहने पर उसकी देह से एक सुन्दरी निकली।

इन्द्र ने पूछा—तू कौन है ? दानव राजा को छोड़कर मेरे पास क्यों आ रही है ?

स्त्री ने कहा—मैं लक्ष्मी हूँ। मेरा नाम दुस्सह, विधित्सा, भूति, लक्ष्मी और श्री है। मुझे कोई नहीं जानता। मुझे एक स्थान से दूसरे स्थान पर धाता और विधाता भी नहीं हटा सकता। मैं काल के प्रभाव से ही एक को छोड़कर दूसरे के पास जाती हूँ।

इसके आगे ब्राह्मणों की महिमा का वर्णन किया गया है।

काल की महिमा बताने वाली कथाएँ भाग्यवाद का मूल बनी हैं, जिन्होंने परवर्त्तीकाल में अपना गहरा प्रभाव डाला है और दर्शन पर भी अपना असर छोड़ा है। मध्यकालीन वेदान्त प्रभावित जनता पर इसका काफी प्रभाव था, जिसने समाज में एक अध्यात्मकता को जन्म दिया; और फिर ऐसी ही कथाएँ बनने लगीं।

[अपने आत्मरूप और पररूप में वार्त्ता में भेद प्रारम्भ से ही रहा है। वह भले ही समाजपरक होकर जन्मी हो, किन्तु उसका मूल-सन्देश व्यक्तिपरक रहा है। यह वार्त्ता की एक विशेषता ही है क्योंकि व्यक्ति ही उस चिन्तन का पात्र रहा है जिसके द्वारा मनुष्य के जीवन स्तर को उठाने का प्रयत्न किया गया है। पुराणों में यह परम्परा और भी आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है। पुराणों के युग तक भक्ति और श्रद्धा की पहले से कहीं अधिक माँग की जाने लगी थी। पुराणों ने जहाँ एक ओर अन्धभक्ति को प्रश्रय दिया, दूसरी ओर उन्होंने मनुष्य को यह विश्वास भी दिया कि मनुष्य का जीवन माधुर्य और सत्य पर स्थित है। पुराणकालीन वार्त्ताएँ इन दो पर ही विशेषतः आश्रित हैं।] महाभारत में सामाजिक जीवन अपने अनेक पहलुओं को लेकर प्रकट हुआ है। अनुशासन पर्व (अ २) में ऐसी ही एक कथा है—माहिष्मती नगरी के इक्ष्वाकु वंशीय दुर्योधन राजा का देवनदी नर्मदा से विवाह हुआ जिससे सुदर्शना नामक अत्यन्त रूपवती कन्या ने जन्म लिया। जब वह युवती हुई तो अग्नि देव उस पर आसक्त हो गए। वे ब्राह्मण वेश धारण करके उसके पिता से उसे विवाह में मांगने गये। उसने इन्हें दरिद्र और अपना असवर्ण समझकर उनकी बात न मानी। कुछ दिन बाद दुर्योधन ने यज्ञ किया किन्तु अग्नि यज्ञ में प्रज्वलित नहीं हुए। राजा ने ब्राह्मणों से कारण पूछा। रात में अग्नि देव ने ब्राह्मणों को अपना अभिप्राय बताया। ब्राह्मण विस्मित हुए। सबेरे राजा से कहा। राजा ने सहर्ष स्वीकार किया पर शर्त लगाई कि अग्नि देव को सदैव राजा के ही घर पर रहना पड़ेगा। अग्नि ने मान लिया। विवाह हो गया। वे सुख से रहे। कुछ दिन बाद उनके पुत्र हुआ वह सुदर्शन कहलाया। उसी समय नृग के पितामह राजा ओघवान् के ओघवती नामक कन्या और ओघरथ नामक पुत्र हुए। ओघवती का विवाह ओघवान् ने सुदर्शन जैसे वेद-वेदांग पारंगत से किया। सुदर्शन गृहस्थाश्रम में ओघवती के साथ कुरुक्षेत्र में रहने लगे।

सुदर्शन ने एक दिन प्रतिज्ञा की कि गृहस्थाश्रम में रहकर मृत्यु को जीत लूँगा। ओघवती से कहा कि—प्रिये ! तुम कभी अतिथि—सेवा से विमुख न होना। विना आगा पीछा किये अतिथि को संतुष्ट रखना। यही गृहस्थ का सर्वोपरि धर्म है।

ओघवती ने स्वीकार कर लिया। मौत सुदर्शन के पीछे घूमने लगी।

एक दिन सुदर्शन ईंधन लेने गये थे कि धर्म ब्राह्मण का वेश धरकर उनके घर आये और उससे संभोग का सत्कार मांगा। राजकुमारी ने समझाया। वह न माने। तब वह पति की बात याद करके मान गई और उनके साथ भीतर गई।

तभी सुदर्शन ईंधन लिये लौटे। वे स्त्री को बार-बार पुकारने लगे पर वह न बोली। अतिथि ने उसका हाथ पकड़ लिया था। इसलिये अपने को अशुद्ध समझकर वह बहुत लज्जित हो गई थी। सुदर्शन के बहुत बुलाने पर भीतर से अतिथि ने कहा—मैं ब्राह्मण अतिथि आपके घर आया हूँ। वह मेरी इच्छानुसार काम कर रही है। जो उचित समझें सो करें।

मौत सुदर्शन के पीछे लगी थी कि अतिथि-सत्कार की प्रतिज्ञा अब क्रोध में सुदर्शन तोड़ेंगे और मैं उन्हें मार डालूंगी। इसी विचार से वह लोहे का मूसल ताने पीछे खड़ी थी।

परन्तु सुदर्शन को तनिक भी क्रोध न आया। वे मुस्कराकर बोले—आप अपनी इच्छा पूरी करलें। पृथ्वी, वायु ,आकाशादि पाप-पुण्य देखते हैं। यदि मेरी प्रतिज्ञा सत्य हो तो वे मेरी रक्षा करें अन्यथा भस्म करदें।

तभी आकाशवाणी हुई। उसने कहा—ब्रह्मन् ! तुम्हारी प्रतिज्ञा कभी मिथ्या न होगी।

तब वह अतिथि अपने तेज से पृथ्वी-आकाश को व्याप्त करता, वायुवेग से निकलकर बोला—सुदर्शन मैं धर्म हूँ ! मैं तेरी परीक्षा लेने आया था। यह मौत तेरा दोष ढूंढ रही थी सो हार गई। तेरी स्त्री पवित्र है। यह ब्रह्मवादिनी स्त्री अपने तपोबल से, सब लोकों को पवित्र करने के लिए, ओघवती नदी के नाम से उत्पन्न होगी। इसका आधा शरीर तो नदी हो जायेगा और आधा तुम्हारे साथ रहेगा। तुम अक्षय लोकों को स्त्री सहित इसी देह से पाओगे।

धर्म के यों कहने पर इन्द्र हजार सफेद घोड़ों वाला रथ लाया और पति-पत्नी को सवार कराके देवलोक ले गया।

इस कथा में मानवीय तत्व है, किन्तु कुछ कथाएँ ऐसी हैं जहाँ केवल अलौकिक ही का साक्षात्कार होता है। महाभारत, (अनुशासन पर्व अ० ५) में वर्णन है :—

काशिराज के राज्य में प्राचीनकाल में एक बहेलिया विषमय बाण लेकर गांव के बाहर शिकार किया करता था। वह एक दिन शिकार ढूँढते-ढूँढते घने वन में गया। वहाँ मृग को देखकर उसने विषैला बाण मारा, किन्तु वह मृग को न लगकर एक बड़े वृक्ष में जाकर धँस गया। उस बाण के विष से वह वृक्ष सूखने लगा। धीरे-धीरे उसके फल और पत्ते गिर गये।

उस वृक्ष के कोटर में बहुत दिनों से एक धर्मात्मा कृतज्ञ तोता रहता था। वह तोता अपने आश्रयदाता वृक्ष को सूखते देखकर, उसे छोड़कर न गया वरन् उसी पर भूखा प्यासा निवास करता हुआ सूखने लगा।

इन्द्र को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि यह पक्षी अपने आश्रयदाता वृक्ष के दुःख से बड़ा दुखी है। क्या पशु-पक्षियों में भी इस प्रकार का ममतापूर्ण व्यवहार होता है ? या ये सद्गुण मनुष्य में ही संभव हैं ? यों सोच इन्द्र ब्राह्मण-वेष धारणकर उसके पास गया। बोला—हे पक्षिराज ! तुम अपनी माता के सुपुत्र हो। अब तुम इस वृक्ष को छोड़कर क्यों नहीं चले जाते ?

धर्मात्मा तोते ने उन्हें प्रणाम करके कहा—देवराज ! मैंने ज्ञान-दृष्टि से आपको पहचान लिया है। आप सकुशल हैं न ?

देवराज मन ही मन जान गये। फिर पूछा—पर यही वृक्ष क्यों पकड़े बैठे हो ? इसे छोड़ देना चाहिये।

तोते ने लम्बी सांस छोड़कर कहा—देवताओं की आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। पर इस वृक्ष पर मुझे पाला पोसा गया। तब से यहीं हूँ। यहाँ मेरे शत्रु मुझे सता न सके। इसी से इस पर मेरी भक्ति है और मैं अनृशंसताधर्म का पालन कर रहा हूँ। आप दया करके क्यों मुझे अधर्म की ओर प्रेरित कर रहे हैं ? दया ही सर्वोपरि है।

इन्द्र ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा।

तोते ने वृक्ष हरा भरा हो जाय यह वर मांगा।

इन्द्र ने अमृत छिड़क वृक्ष को जिला दिया।

तोता वहीं रहकर मरा और अंत में इंद्रलोक को गया।

पद्मपुराण आदि में कथाओं का अलघुत्व कम होता गया है। और उनमें से वार्त्ता तत्व भी कम होता गया है। परवर्त्ती पुराणों में प्रायः ऐसा ही मिलता है। श्रीमद्भागवत जो कि लगभग ५ वीं शती के पूर्वार्द्ध का ग्रन्थ है। उसमें भी लम्बे-लम्बे आख्यान प्राप्त होते हैं। बीज रूप में उनमें यही लघुकथाएँ हैं जो विस्तार से कथा सुनाने के लिए और भी रोचक बनाने को लम्बी कर दी गई हैं। किन्तु इससे एक दोष आ गया है कि जहाँ उन कथाओं में काव्यानन्द अधिक आता है, वहाँ वार्त्ता की सी चुभन उनमें नहीं रह गई है। यद्यपि अलौकिक तत्व का भी उनमें समावेश है। इन आख्यानों में जो यत्र-तत्र उदाहरण-स्वरूप छोटी कथायें प्रस्तुत की गई हैं, वे अपनी नीतिपरकता के कारण लघुकथा की परम्परा में ही आती हैं और उनमें शक्ति की भी कमी नहीं है।

विकास का यह क्रम और भी आगे जाकर धर्म का हाथ छोड़ने की भी चेष्टा करता है। वार्त्ता अपने आप में स्वतन्त्र हो जाती है। पंचतन्त्र ऐसी ही रचना है जो कि संसार में अद्वितीय मानी गई है।

पंचतन्त्र एक क्लासिक है, एक 'मास्टरपीस' है। वह किस युग में बनी, किसने बनाई, यह सब तथ्य उसके अपने 'भीतरी भाव' के सामने नगण्य से दिखाई देते हैं।

पंचतन्त्र के कथामुख में बताया गया है कि दक्षिण देश में महिलारोप्य नामक नगर में अमरशक्ति नामक राजा रहा करता था। उसके बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनन्तशक्ति नामक तीन पुत्र थे। वे तीनों इतने मूर्ख थे कि उनका पिता अपने राज्य और ऐश्वर्य के रहते हुए भी बहुत दुखी था। उसने सोचा—

अजात मृत मूर्खेभ्यो मृताजातो सुतो वरम्।
यतस्तौ स्वल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्॥

अर्थात् हुए ही नहीं, होकर मर गये और मूर्ख, इन तीन प्रकार के पुत्रों में पहले दो ही अच्छे हैं क्योंकि वे दोनों थोड़ा ही दुःख देते हैं, मूर्ख सबसे बुरा है क्योंकि वह जीवन पर्यन्त हृदय को जलाया करता है।

उस राजा के यहाँ आजीविका भोगते हुए पांच सौ पण्डित रहा करते थे। उसने उनके समक्ष पुत्रों को शिक्षित करने की समस्या रखी। पण्डित पुराने कायदों से बारह-बारह

साल में ज्ञान दान देना जानते थे। वहाँ एक यशस्वी विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। राजा ने उससे प्रार्थना की कि वह उसके पुत्रों को अर्थशास्त्र का पण्डित बना दे। विष्णु-शर्मा ८० वर्ष का वृद्ध था। उसे धन का लोभ नहीं था। उसने मनु, शुक्र और प्रसिद्ध विद्वानों के बनाये नीतिशास्त्र पढ़े थे। उसने ६ महीनों में राजा के पुत्रों को पण्डित बना देने की प्रतिज्ञा की। और फिर उन पुत्रों को असाधारण रूप से विज्ञ बना भी दिया। उसने उन कुमारों के लिये पाँच तंत्र बनाये जो इस प्रकार थे—मित्र भेद, मित्र संप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्ध प्रकाश और अपरीक्षितकारक इनका संग्रह ही पंचतंत्र कहलाया जो जगत में प्रसिद्ध हुआ।

पंचतंत्र में कुछ विशेषतायें हैं :—

(१) इसमें कथा अपने आप नहीं खुलती। वह किसी नीति (moral) के पहले उपस्थित हो जाने पर उसका प्रमाण बनकर उपस्थित होती है।

(२) इस क्रिया में कथा का स्वत्व अपनी सीमाओं में ही समाप्त नहीं हो जाता, उसका काम शृंखला फोड़ने का भी हो जाता है।

(३) इस पद्धति में क्रम जुड़ा रहता है, धारावाहिक रूप बना रहता है और बजाय ऊबाने वाले तत्व के, वैविध्य का जन्म होता है।

(४) बिखरी हुई कहानियों को एक तारतम्य प्राप्त हो जाता है और उनकी कड़ियां जुड़ जाती हैं। यही कथाएँ अलग-अलग भी लिखी जा सकती थीं किन्तु ऐसा न करके उनको एक मोहक व्यवस्था दी गई है। परवर्त्तीकाल में सिंहासन-बत्तीसी (द्वात्रिंशंत्पुत्तलिका) और शुक बहोत्तरी, किस्सा तोता मैना भी इसी परम्परा में लिखी गई रचनाएँ हैं, जिनमें सिलसिला कहीं टूटने नहीं पाता। इस परम्परा का प्रभाव विदेशों में भी पड़ा था। अलिफलैला में शहजादी की कथाएं भी इसी प्रकार एक में से दूसरी निकलती हैं। इसका कारण यही है कि प्राचीनकाल में कहानियां सुनाई जाती थीं। प्रायः मुँहजबानी सुनाने की परम्परा थी और वह भी रात को; जबकि लोग अवकाश प्राप्त करके बैठते थे। प्राचीन काल में रात का मतलब ही शान्ति से था। सांझ होते ही प्राय: अंधेरा छा जाने पर गांवों में, और काफी अंशों में नगरों में भी सुनसान छा जाता था। उस समय आज की भाँति बिजली और व्यस्तता नहीं थी। तभी हिन्दी में आज तक मुहाविरा चला आता है कि— 'दिया बले, मर्दमानस घर में भले।' जो लोग इकट्ठ होकर बैठते थे और धार्मिक कथाएँ आदि वे चौराहों पर बैठे (व्यासपीठ पर आसीन) पण्डितों से सुनते थे। तो बाकी प्रकार की कथाएँ अलावों या घरों के चबूतरों (ओटलों) पर सुनते थे। गाँवों और नगरों में कथा सुनाने वाले लोगों का विशेष मान था। ईरान में तो चलते-फिरते कथा सुनाने वाले लोग रावी कहलाते थे। भारत में भी मुग़लकाल तक ऐसे किस्सागोह हुआ करते थे। वे गद्य में कथा सुनाते थे, किन्तु कथा की रोचकता बढ़ाने को बीच-बीच में पद्यांश भी सुनाते थे। इन पद्यांशों का याद करना सरल था। प्रायः सर्वमान्य रूप में लिखित गद्य-रूप के प्रचलित होने के पहले यह पद्यांश तो सुनने वाले रट भी लेते थे। और फिर गद्य को अपनी विशेषता के अनुसार बदल लेते थे, या अपनी भाषा में कहा करते थे। इससे कथा का धुरा नहीं बदलता था, न बाहरी चक्र ही बदल पाता था, भीतर के धुरे और बाहर के चक्र को मिलाने वाले

धुरों की संख्या में भले ही भेद हो जाता हो। हम यह निश्चय से नहीं कह सकते कि पंचतंत्र में भी ऐसा ही हुआ है या नहीं।

(४) पंचतंत्र की प्रत्येक कथा अनर्गल वाक्य संदर्भ से दूर है और विस्तारवाद उसमें नहीं है, यद्यपि कथा में से कथा निकलती है। एक कथा में दूसरी कथा का प्रारंभ जहाँ सहसा एक कथा निर्वाह को आघात पहुँचाता है, वहाँ वह एक नयी जिज्ञासा अवश्य खड़ी कर देता है, जिसके उत्थान और क्रम के लुप्त होने पर या जिसका समाधान हो जाने पर पाठक या श्रोता भटकता नहीं, अपने पुराने सूत्र को पकड़ लेता है और उसकी उत्सुकता पहले से भी अधिक जागृत हो जाती है, क्योंकि वह अब इस नयी कथा का अपने सामने के पात्रों पर प्रभाव देखना चाहता है, और समझता है कि अब कुछ परिवर्तन विशेष उपस्थित होगा।

(५) पंचतंत्र में अलौकिक का सहारा लिया गया है, इसके पात्र मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी आदि भी हैं। तत्कालीन लोककथाओं को आत्मसात् कर लेने की चेष्टा है। संभवतः ऐसी कथाएं बहुत चलती थीं। बुद्धि की अपरिपक्व अवस्था में ऐसे पात्र अच्छे लगते हैं, विशेषकर बाल्यावस्था में रुचि इस प्रकार की कथाओं में अधिक रमती है क्योंकि बालक का परिचय जब इन पशु-पक्षियों से होता है तब अपने सहज सौकुमार्य्य और प्रत्येक वस्तु में आश्चर्य्य की भावना निहित होने से वह उनके प्रति अधिक जागरूक होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व की महत्ता पर उसे आश्चर्य्य नहीं होता, वह आश्चर्य्य उसे अवस्था के बढ़ जाने पर ही अधिक प्राप्त होता है। इस प्रकार बालबुद्धि और अपरिपक्व बुद्धि के लिये तो यह चीज़ अच्छी है ही, किन्तु अपने भीतर भरे हुए सारतत्व में सार्वजनीन सत्यों को प्रतिपादित करने के कारण यह उदाहरण रूप में प्रस्तुत होने से, परिपक्व बुद्धि वालों के लिये भी सहज प्रेषणीयता रखता है। यह सार्वजनीन सत्य एक ओर देशकाल के सत्यों का पालन करते हैं और दूसरी ओर मनुष्य की मूल-प्रवृत्तियों को विचार सान्निध्य से भाव में परिणित करने के साधन होने के कारण अपना अस्तित्व कालव्यवधान को लांघकर भी रखते हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास ने भी इसी परम्परा में ज्ञान चर्चा का प्रतिपादन करते समय गरुड और काकभुशुण्डि का संवाद कराया है।

(६) पंचतंत्र के पशु पात्र अपने पशुत्व के धर्म का निर्वाह करते हुए भी ऐसे हैं जैसे वे मूलतः मनुष्य समाज के पर्य्याय है, या कहें कि वे मनुष्य के स्वार्थ का ही निर्वाह करते हैं।

इस रेखाचित्र के उपरांत हमें अब पंचतंत्र की कथावस्तु को भी देखना चाहिये जिससे उसके मनोरंजक और उपदेशात्मक तत्व का अद्‌भुत सामंजस्य स्पष्ट दिखाई दे जाय।

कथा का प्रारंभ एक सूक्ति से प्रारंभ होता है कि—

वर्द्धमानो महान्स्नेहः सिंहगोवृषयोर्वने।
पिशुनेनातिलुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ।

अर्थात् एक सिंह और बैल का वन में अत्यन्त बढ़ा हुआ स्नेह एक पिशुन यानी चुगलखोर और लालची गीदड़ ने नष्ट कर दिया था।

अब गद्य प्रारम्भ होता है जो इस प्रकार हठात् उत्सुकता को जन्म देकर सामने आता है—

तद्यथा अनुश्रूयते—अस्ति दक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्य नाम नगरम्——— इत्यादि———

अर्थात् सुना जाता है कि दक्षिण देश में महिलारोप्य नाम का एक नगर था—और कथा बढ़ चलती है।

संभवतः कथा में से कथा निकलने की परम्परा उन दिनों भारत में बहुत करके चल रही थी। किस अंश तक इसके पीछे सम्प्रदायों की आत्मरक्षा की भावना का भाव था यह भी विचारणीय है। कालान्तर में जिस प्रकार वैष्णववार्त्तायें स्वधारावाहिकता का निर्वाह करने की चेष्टा करती हैं, उसी प्रकार हमें पंचतन्त्र की सी परम्परा में, अवश्य ही ध्येय भेद लेकर, जैन पुराण मिलते हैं, जिनमें भी जन्म जन्मान्तर की कथाएँ एक दूसरी में आगुंफित हैं। एक जन्म में ही अनेक जन्मों की युक्ति या विकास जैन पुराणों में कर्मविपाक को दिखाने वाली वस्तु है, जिसका इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि कभी-कभी मूलकथा का ढूंढ़ना—जब श्रद्धा को त्याग दिया जाता है—तब, कठिन हो जाता है। तीर्थंकरों और बोधिसत्वों की जो जन्मान्तर की कथायें हैं वे इसी क्रम में रखी जा सकती हैं जो कि सम्प्रदाय कथित या पोषित उपदेशों का परिवहन करती हैं।

पंचतन्त्र की मित्रभेद की कथा यों चलती है कि वर्द्धमान नामक दक्षिण देश का बनिया व्यापार करने चला। उसने अपने काफिले में अपने दो बैल लिये जिनका नाम संजीवक और नंदक था रास्ते में यमुना के रेतीले प्रदेश में दलदल में फँस जाने के कारण उसका संजीवक नामक बैल लंगड़ा हो गया। अब यही संजीवक इस कथा का एक नायक बनेगा। उसे अपनी अपनी रक्षा में लगे सब छोड़ गये। वह बिचारा वहीं दूब चरने लगा और लंगड़ा हो गया। एक दिन एक सिंह वहाँ यमुना में जल पीने आया। उसने जो वृषभ का डकराना सुना तो डरकर अपने साथियों को लेकर बैठ गया। सिंह का नाम पिंगलक था। उसके दो श्रगाल मंत्रिपुत्र थे-करटक, और दमनक। वे अब किसी कारण से अधिकार-भ्रष्ट थे। उन्होंने फिर अधिकार प्राप्त करने का मौका देखा, आपस में सलाह की और अंत में दमनक राजा पिंगलक के पास गया। उसने बातों में चतुरता दिखाकर, राजा का मन अपनी ओर करके भय का कारण जान लिया और इधर राजा पिंगलक तो भागने की सोचने लगा, उसने डकराने का कारण ढूँढ़कर वृषभ को जानकर उसे डांटा। वृषभ ने कहा—भाई! मुझे अभयदान दिला दे। चतुरता से दमनक ने राजा और वृषभ की मैत्री करा दी। सिंह देवीवाहन और बैल शिववाहन कह दिया गया। करकट और दमनक मंत्री हो गये। इधर संजीवक ने पिंगलक को वनधर्म से हटा ग्राम्यधर्म में लगा दिया। वे आपस में मंत्रणा करते, करकट और दमनक भी वहाँ नहीं जा पाते और वे पीड़ित हो गये। तब उन्होंने संजीवक और पिंगलक में फूट डलवाने की सोची। अंत में दमनक ने संजीवक को मरवा दिया और आप मंत्री बन गया।

मित्रभेद की मूलकथा इतनी ही है। किन्तु इसमें लगभग बाइस अन्तर्कथायें हैं—मूर्खवानर की कथा, गोमायुश्रगाल और नगाड़ा, दन्तिल वैश्य, देवशर्मापरिव्राजक, विष्णुरूपधारी कौलिक, काकी और कनक सूत्र, बगुला और केकड़ा, भासुरक सिंह, अग्निमुख मत्कुण और मन्दविसर्पिणी यूका, चण्डरव श्रगाल, मदोत्कट सिंह, टिट्टिभदम्पति और समुद्र, कम्बुग्रीव

कच्छप, अनागत विधाता, प्रत्युत्पन्नमति और यद्भविष्य मत्स्य, चटकदम्पति और काष्ठकूट, वज्रदन्ष्ट्र सिंह और चतुरक श्रगाल, मूर्ख वानर यूथ, वानर तथा चटक दम्पति, धर्मबुद्धि और पापबुद्धि, मूर्ख बक और कृष्णसर्प, जीर्णधन और वणिक्पुत्र, तथा मूर्खवानर और राजा की कथायें हैं जो अपने उपदेशों को अत्यन्त रोचकता से प्रतिपादित करती हैं। इन कथाओं की भांति ही पंचतन्त्र के आगे के चारों तन्त्र भी हैं। कोई एक कथा ही यहां उद्धृत करना काफी होगा। वानर और चटक दम्पति की कथा में बरसते पानी में, एकचटक-चटका ने बन्दर से कहा कि तू क्यों पुरुषार्थ नहीं करता ? क्यों भीगता है ? बन्दर उसका घोंसला उजाड़ देता है। प्रायः यह कथायें बहुत ही प्रसिद्ध हैं और हिन्दी कथायें भी उन्हें आत्मसात् कर चुकी हैं। कहा भी है—

सीख तो वाकों दीजिये जाकों सीख सुहाय,
सीख जो दीनी वानरा, घर बया को जाय।

किन्तु इन कथाओं का परिचय इतने से ही समाप्त नहीं हो जाता। इनमें जो तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब है वह ऐसी ही अन्य कथाओं में बहुत कम प्राप्त होता है। दूसरी विशेषता इनमें यह है कि कथाओं में जो बातें सरल तथा मनोरंजक बनाकर कह दी गई हैं, वे वास्तव में बड़ी कठिन और गूढ़ हैं। तीसरी विशेषता यह है कि इनमें समाज का प्रायः सांगोपांग चित्रण अपनी सांकेतिक अवस्था में विद्यमान है। चौथी बात यह है कि तत्कालीन शास्त्रीय ज्ञान को व्यावहारिक जीवन से मिला दिया गया है। इस प्रकार जो बातें केवल पंडितों के लिये थीं वे सर्वसाधारण के लिये हो गई। अन्तिम विशेषता के रूप में यह है कि यह कथाएँ एक अच्छे जीवन व्यतीत करने के भाव की ओर ले जाती हैं और इसलिये हम इन्हें उदात्त भावनाओं का वाहन कह सकते हैं।

पंचतन्त्र का कितना प्रभाव रहा है यह इसी से जाना जा सकता है कि हितोपदेश में कहा है—

मित्र लाभः सुहृद्भेदो विग्रहः संधिरेव च।
पंचतंत्रात् तथान्यस्माद् ग्रंथादाकृष्यलिख्यते ।।

अर्थात् पंचतन्त्र आदि से हितोपदेश में अंश संग्रहीत किये गये हैं। फ्रांसिस जान्सन ने लिखा है कि—"ईसवी छठी शती में ही हितोपदेश का अनुवाद ईरान के सम्राट् नौशेरवाँ की आज्ञा से फ़ारसी में किया गया था। नवीं शती में फ़ारसी भाषा से इसका अनुवाद अरबी में किया किया गया। और बाद में हिब्रू और ग्रीक भाषा में हुआ। उसके बाद मध्यकालीन यूरोप की विभिन्न भाषाओं में हुआ।"

हाफ़िज की रचनाओं में इस प्रकार उपदेशात्मक सूक्तियां जो प्राप्त होती हैं, वह भी यही भारतीय उपदेशात्मक तथा सरस काव्य की परम्परा प्रतीत होती है।

हितोपदेश की कथा के आरम्भ में भागीरथी तीर पर पाटलिपुत्र नगर में सुदर्शन राजा है जिसके पुत्र मूर्ख हैं। उन्हें विष्णुशर्मा पढ़ाकर बुद्धिमान बनाता है।

विष्णुशर्मा दोनों ग्रंथों में है। यह स्पष्ट करता है कि हितोपदेश में पंचतन्त्र के विष्णुशर्मा को लिया गया है, क्योंकि पंचतन्त्र हितोपदेश से पुराना है।

इन दोनों ग्रंथों की विशेषता इनके सदैव याद रखे जाने योग्य श्लोक हैं, जिनमें गागर में सागर भरा है। हम यहाँ उनमें से कुछ उदाहरणार्थ उद्धृत करते हैं।

पंचतंत्र :—

वरमिह वा सुत मरणं मा मूर्खत्वं कुलप्रसूतस्य ।
येन विबुध जनमध्ये जारज इव लज्जते मनुजः ॥

जगत में पुत्र का मरण अच्छा है, परन्तु ऐसे मूर्ख पुत्र का होना अच्छा नहीं, जिससे विद्वानों के बीच में मनुष्य जारज पुत्र के समान लज्जित होता है ।

इह लोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते ।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां सर्वदा दुर्जनायते ॥

इस संसार में पर (पराये) भी धनिकों के स्वजन हो जाते हैं और गरीबों के कुटुम्बी भी दुर्जन हो जाया करते हैं ।

कृता भिक्षाऽनेकैवितरति नृपो नोचितमहो ।
कृषिः क्लिष्टा विद्या गुरु विनय वृत्यतिविषमा ॥
कुसीदाद्दारिद्रयं परकरगतग्रन्थि समनान् ।
न मन्ये वाणिज्यात्किमपि परमं वर्त्तनमिह ॥

पहले भी अनेक पुरुष भिक्षा मांग चुके हैं, राजा योग्य वृत्ति नहीं देता, खेती का धंधा क्लेशदायक है, विद्या गुरु के प्रति विनयवृत्ति के कारण अत्यन्त विषम है, ब्याज से भी अंत में गरीबी आती है क्योंकि अपना धन दूसरों के हाथ में दब जाता है । इसलिये मैं तो जीविका के रूप में वाणिज्य को ही श्रेष्ठ समझता हूँ ।

वैश्यकर्म का सुन्दर परिचय यों दिया है—

पण्यानां गांधिकं पण्यं किमन्यैः कांचनादिभिः ।
यत्रैकैन च यत्क्रीतं तच्छतेन प्रदीयते ॥
निक्षेपे पतिते हर्म्ये श्रेष्ठी स्तौति स्वदेवताम् ।
निक्षेपी म्रियते तुभ्यं प्रदास्याम्युपयाचितम् ॥
गोष्ठिकर्मनियुक्तः श्रेष्ठी चिन्तयति चेतसा हृष्टः ।
वसुधा वसुसंपूर्णा मयाद्य लब्धा किमन्येन ॥
परिचितमागच्छन्तं ग्राहकमुत्कण्ठ्या विलोक्यासौ ।
हृष्यति तद्धनलुब्धो यद्वत्पुत्रेण जातेन ॥

अन्यञ्च—

पूर्णापूर्णमाने परिचितजन वंचनं तथा नित्यम् ।
मिथ्या क्रमस्य कथनं प्रकृतिरियं स्यात्किरातानाम् ॥

अन्यञ्च—

द्विगुणं त्रिगुणं वित्तं भाण्डक्रयविचक्षणः ।
प्राप्नुवन्त्युद्यमाल्लोका दूर देशान्तरं गताः ॥

अर्थात् बेचने योग्य वस्तुओं में सुगंधित वस्तुओं का व्यापार सर्वश्रेष्ठ होता है, जो कि एक से मोल लिया जाय तो भी सौ का बेचा जा सकता है । तब बाकी सुवर्णादि वस्तुओं के व्यापार से क्या लाभ है ? धरोहर घर में रखकर सेठ अपने देवता की स्तुति करता है कि यदि धरोहर रखने वाला मर जाये तो मैं अधिगत वस्तु से तुम्हारा पूजन

करूंगा । गाय बैल के व्यापार में लगा सेठ प्रसन्नमन विचारता है कि मैंने धन से पूर्ण पृथ्वी की प्राप्ति करली, मुझे और क्या चाहिये ? जाने पहचाने ग्राहक को आता देखकर उसके धन का लोभी व्यापारी इस प्रकार प्रसन्न होता है, जैसे उसके यहाँ पुत्र ने जन्म लिया हो । फिर भी, कम ज्यादा तोलकर नित्य पहचाने लोगों को ठगना और मिथ्या दाम माँगना, यह किरातों की प्रवृत्ति है । और भी, बरतनों के बेचने में चतुर और दूर देश में ले जाने वाले व्यापारी अपने उद्यम से दूना तिगुना धन प्राप्त कर लेते हैं ।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं ।
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।।
जीवत्यनाथोपि वने विसर्जितः ।
कृतप्रयत्नोपि गृहे विनश्यति ।।

अरक्षित वस्तु भी दैव से रक्षित होकर बच रहती है और भली प्रकार रक्षित हुई वस्तु भी दैव से अरक्षित होकर नष्ट हो जाती है । वन में त्यागा हुआ अनाथ भी जीवित रहता है और यत्न करने पर भी अपने घर में जीवित नहीं रहता ।

वामदक्षिणयोर्यत्र विशेषोनास्ति हस्तयोः ।
कस्तत्र क्षणमप्यार्यो बुद्धिमान् गतिर्वसेत् ।।

जहाँ दांये बांये हाथ में विशेषता नहीं देखी जाती, वहां कौन बुद्धिमान क्षणभर भी रह सकेगा ।

पंचतंत्र की ही भाँति जीवन के विविध रूपों पर ऐसे ही चुने हुए बोल हितोपदेशों में भी प्राप्त होते हैं :—

ऋणकर्त्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ।।१।।
अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनंविषम् ।
विषं सभा दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम् ।।२।।
आहार निद्रा भय मैथुनं च ।
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो ।
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।३।।
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।
दैवेन देयमिति कापुरुषाः वदन्ति ।।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ।।४।।
काव्यशास्त्रविनोदेन कालोगच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ।।५।।

१—कर्ज करने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता, सुन्दर स्त्री, और मूर्ख पुत्र शत्रु होते हैं ।

२—अनभ्यास से विद्या, अजीर्ण में भोजन, दरिद्र के लिये सभा, और वृद्ध के लिये युवती पत्नी—विष के समान हैं ।

३—आहार, निद्रा, भय, मैथुन यह तो पशु और मनुष्य सबमें सामान्य है । धर्म ही मनुष्यों में एक अधिक है, अन्यथा मनुष्य और पशु में भेद ही क्या है ?

स्पष्ट ही जिस युग में ये रचनाएँ बनीं उस समय काव्य, शास्त्र—विनोद से समय काटने की बात थी, आजकल की भांति रुपये के लिये हाहाकार मचा हुआ नहीं था।

कथा-साहित्य में संस्कृत में कथासरित्सागर का भी अपना महत्व है किन्तु वार्त्ता-साहित्य की परम्परा को हम उससे नहीं जोड़ सकते, क्योंकि उसकी कथाएँ मनोरंजन को प्राधान्य देती हैं।

परवर्त्तीकाल की कथाओं में अपभ्रंश साहित्य के भीतर संभवतः अभी अनेक शृंखलाएँ मिलें, क्योंकि जैनचिंतकों ने उसे ग्रहण किया था। जैनग्रन्थ—प्रबन्ध-चिन्तामणि में अनेक कथाएँ हैं किन्तु वे उपदेशात्मक नहीं हैं।

[हमें यह याद रखना आवश्यक है कि वार्त्ता-साहित्य की पृष्ठभूमि हमें समृद्ध युगों का परिचय देती है। उस शृंखला में हमें एक वस्तु महत्वपूर्ण मिलती है—वह है उसकी सरलता। इस सरलता के कारण वह बुद्धि को सुबोध होती है और उसका लोककथा से बहुत सान्निध्य रहता है। वार्त्ता के जिस रूप में रूपक का आश्रय लेकर व्यंग्य प्रधानता रखी जाती है वहां हमें यद्यपि प्रेषणीयता के सान्निध्य में तो वही आनन्द आता है, परन्तु हमें एक अभाव वहां अवश्य मिलता है—वह अभाव है—कल्पना के रंगीन बने रहने का। व्यंग्य जितना मृदुल होगा या दबा रहेगा उतना ही वह अपना सशक्त प्रभाव डालने में समर्थ होगा।]

[शताब्दियों तक ये कथा-वार्त्ताएँ भारत में चलती रही हैं और इनकी सार्व-भौमिकता ने यद्यपि इनके निर्माणकर्त्ताओं को याद नहीं रखा है, परन्तु यह सामूहिक रूप से मनुष्य को परिमार्जित (refined) बनाती रही हैं। परम्परा सहज ही नहीं बन जाती। और जब वह बनती है तो अपने स्थायित्व में वह समाप्त नहीं हो जाती। उसकी गतिशीलता उसके पीछे की शक्ति की ओर निरंतर इंगित किया करती है। संस्कृत-साहित्य एक परिष्कृत समाज की ऐसी ही रुचि का विकास कर सका था, जिसको परवर्त्ती भारतीय विकसित भाषाओं ने अपने भीतर ग्रहण किया। इस्लाम के आने पर भारतीय व्यवस्था का मूल ढाँचा नहीं बदला, केवल सांस्कृतिक संघर्ष पैदा हो गया और इसीलिए पारस्परिक विद्वेष में बहुत सा मूल्यवान साहित्य तो नष्ट हो गया जो यदि आज जीवित होता तो न जाने संस्कृत के कितने ढके हुये रत्न उघड़ आते और आँखें उन्हें देखती ही रह जातीं। राजपूती युग प्रयत्न करके भी उस सबको हमारे लिए जीवित नहीं छोड़ सका। काल ने उसे खा ही लिया। संक्षेप में यही वार्त्ता की पृष्ठभूमि है। वार्त्ता की विशेषताओं और महत्व पर विवेचन करते हुए हमें निम्नलिखित बातें दिखाई पड़ती हैं—

(१) कठिन से कठिन विषय भी वार्त्ता का विषय हो सकता है। और अधिकांश में परवर्त्तीकाल में विषय गम्भीर ही रहा है किन्तु वार्त्ता के लिए आवश्यक है कि उसका विषय अत्यन्त सरलता से प्रस्तुत किया जावे, ताकि कठिन से कठिन बात भी सहज रूप से

(पृष्ठ ३३ का शेष)

४—उद्योगी पुरुषसिंह के पास ही लक्ष्मी जाती है। कायर ही कहते हैं कि दैव हमें देगा। दैव वाद को समाप्त कर पौरुष दिखाओ, आत्म-शक्ति से काम लो। यदि यत्न करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती, तब वहाँ दोष कहाँ रहा? इसी भाव को तुलसी ने भी 'दैवदैव आलसी पुकारा' में व्यक्त किया है।

५—काव्य-शास्त्र के आनंद से बुद्धिमान् का समय कटता है, मूर्ख का निद्रा, कलह और व्यसन से।

समझ में आ जावे। किसी भी गहन विषय के विवेचन अथवा विश्लेषण के लिए शास्त्रीय क्षेत्र उपस्थित रहते हैं, किन्तु वार्त्ता को सुनने या पढ़ने वाला व्यक्ति शिक्षित ही हो यह आवश्यक नहीं है। बल्कि वार्ता ऐसों के ही लिए प्रयुक्त हुई हैं जो बहुत अधिक पण्डित नहीं थे। इसीलिए जो विषय सहज नहीं होगा वह वार्त्ता का रूप भी धारण नहीं करेगा। वह जो कि बातों के ही वाहन पर यात्रा कर सके, वही (विषय) वार्त्ता बनने की योग्यता रख सकता है।

(२) विषय की सुगमता उसके रूप की सरलता पर आश्रित होती है। यदि सहज विषय को भी दुरूह रूप से प्रस्तुत किया जायेगा तो वह समझ में नहीं आयेगा। सुगमता के लिए अपेक्षित है अधिक से अधिक चित्रीकरण। चित्रीकरण से बालसुलभ बुद्धि भी समझ जाती है। चित्रीकरण बड़ा व्यापक होता है क्योंकि वह कल्पनाशक्ति को जगाता है। जीवन के व्यापार में यदि सीधा व्यंग्य किया जाता है तो वह उसी प्रकार अधिक विरोधी भावना को जन्म देता है, जिस प्रकार सीधा उपदेश नीरसता के कारण इस कान से घुसकर उस कान से निकल जाता है। इन्हीं कारणों से कथा में मानवीय भावनाओं को जगाने का प्रयत्न होता है और मनुष्य ने अपने सामाजिक विकास में पशु-पक्षियों को भी बुलवाया है, ताकि कल्पना के द्वारा दृष्टान्त स्पष्ट किये जा सकें।

(३) वार्त्ता की तृतीय विशेषता यह होती है कि विषय अपने आप में पूर्ण नहीं होता। जब कहीं की कथा किसी विशेष स्थान में आती है, तो उसे अपने आप स्थानीय विशेषताओं से रंग दिया जाता है। लोककथाओं की यह विशेषता वार्त्ता की रीढ़ होती है। स्थानीय रंग से ही वार्त्ता की वस्तु अपने निकट आजाती है और पाठक या श्रोता उसमें अपनत्व का अनुभव करते हुए, तादात्म्य सुख प्राप्त करता है। जहाँ रीतिरिवाज, धार्मिक तथा भौगोलिक वर्णन के प्रभाव पड़ते हैं, स्थानीयता की मूलवाहक भाषा होती है, जो अपनी आवश्यकता के अनुसार कथा पर अपना प्रभाव डालने में सदैव समर्थ हुआ करती है।

(४) वार्त्ता का विस्तार उसके कथनोपकथन से हुआ करता है। नाटकीयता से प्रतिपाद्य विषय सरल हो जाता है। अब भी जो गाँवों में कहानियां सुनाने वाले होते हैं वे बीच-बीच में पद्य का भी प्रयोग करते हैं। बौद्धयुग में भी यही प्रवृत्ति थी। पंचतन्त्र में भी यही मिलता है। किन्तु पद्य केवल एकरसता को तोड़ने के लिए होता है। वह अपने आप में पूर्ण नहीं होता। कथा अपनी कौतूहलवृत्ति की पूरकता के कारण जीवित रहती है। उसके उपदेश से जो मनोरंजन होता है वह कथा के बाहर न होकर उसके प्रति होने वाली जिज्ञासा में निहित होने से ही उसमें प्राण रहते हैं। कथनोपकथन में वर्णनात्मकता अपने साथ वर्तमान का चमत्कार देती है, जो सहजता की सहचरी बन जाती है।

(५) वार्त्ता की विशेषता उसकी प्रेषणीयता (Communicability) होती है। साथ ही वह यात्रा भी करती है। अवकाश के समय में ही उसे सुनाया जाय ऐसा आवश्यक नहीं है। वह तो चलते-फिरते भी सुनाई जा सकती है। घटना विशेष पर उसका सुनाया जाना अधिक प्रचलित रहा है। धर्मगुरू विशेषकर यही करते थे। बुद्ध और ईसा के साथ ऐसी कथाएँ बहुत प्रचलित हैं। इसलिए वार्त्ता का लघुत्व उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। उस समय तो श्रोता को कम से कम यही लगता है कि उसके लिये यही श्रेय मार्ग है। वार्त्ता प्रस्तुत करने में अधिक परिश्रम उसके कहने और सुनने वाले उभय पक्ष को ऊबा देने वाला प्रमाणित होता है। वार्त्ता की आत्मा उसकी लघुता है।

(६) वार्त्ता की श्रेष्ठता उसके व्यंग्यार्थ प्रतिपादन में है। वह सब कुछ कहकर समाप्त नहीं कर देती। वह तो एक प्रकार से श्रोता के मस्तिष्क रूपी हाथी को अंकुश चुभाती रहती है। विचार का अंकुश, जिससे वह स्वयं सोचने को विवश हो। वह उदाहरण के माध्यम से बुद्धि को जागृत करती है और कल्पना को जागरूक करके अपने आप अन्त खोजने की ओर प्रेरित करती है।

(७) वार्त्ता का काम है कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक उपदेश देना, कम से कम श्रम में अधिक से अधिक विवेकशक्ति को जागृत करना।

(८) यदि वार्त्ता नीरस हो तो जीवित नहीं रह सकती। वह सदैव सरस वस्तु को खोजती है और इस प्रकार से साधारण से साधारण वस्तु को असाधारणता देकर प्रस्तुत करती है कि श्रोता उससे मुग्ध हो जाता है। पशु और पक्षियों का प्रयोग वार्त्ता-साहित्य में इसी सम्बन्ध में होता है, क्योंकि उसमें कुछ ऐसा अलौकिक व्यापार होता है जो हृदय को अपनी ओर आकर्षित करता है।

(९) वार्त्ता देश अथवा काल की सीमा का बन्धन नहीं मानती, वह एकता बढ़ाती है। सार्वभौम मनुष्य उसका पात्र है, क्योंकि उनकी वस्तु पर किसी का विशेष अधिकार नहीं है, न सांस्कृतिक भेद ही उसकी व्यापकता में व्याघात डालता है।

(१०) वार्त्ता उनके लिये सबसे बड़ा सम्बल सिद्ध हुई है जो अशिक्षित जन हैं। उस समय जबकि उच्च वर्णों के हाथ में ही शिक्षा के सर्वाधिकार थे, तब जनसमाज में यह वार्त्ता ही उनकी शक्ति थी और उसी ने उन्हें मानवीय शक्ति, सौन्दर्य का शिवत्व ग्रहण कराया था।

(११) वार्त्ता जनजीवन में जिस प्रकार फैलती है, उसी प्रकार नई वार्त्ताओं का विषय जनसमाज में से ही जन्म लेता है। यदि वार्त्ता का माध्यम न होता तो आर्य-साहित्य का उच्चादर्श जनता तक कभी भी नहीं पहुँच पाता, जिसने विषमतर परिस्थितियों में भी भारतीय संस्कृति को जीवित रखा। बल्कि यही कहना उचित है कि मानवतावाद की जो सुदृढ़ नींव इस माध्यम के द्वारा जनसमाज में गहराइयों तक उतर गई है उसे आज तक कोई भी हिला नहीं सका है। संसार के अन्य देश जहाँ अपने प्राणभूत जीवन के मौलिक सिद्धान्तों को भूल चुके हैं, वहाँ भारत आज भी अपनी संस्कृति के मूलभूत सन्देशों को लेकर जीवित रह सका है।

(१२) वार्त्ता ने न केवल जनसमाज को शिक्षित किया है, उसका कार्य इतिहास से भी बड़ा रहा है। माँ के मुख से राम सम्बन्धी वार्त्तायें कृष्ण ने भी सुनी थीं। बुद्ध, शंकर, शिवाजी, झाँसी की रानी, तात्याटोपे, गांधी, नेहरू आदि वार्त्ता सुनकर ही परदुखकातर हुए थे। इसी प्रकार भक्त कवियों में से भी कई ऐसे हुए हैं जो केवल वार्त्ताएँ सुन-सुनकर ही महान् भक्त हो गये। वार्त्ता का इस प्रकार का साहित्य संसार की प्रायः प्रत्येक भाषा में है। वह भी सार्वजनीन, सार्वकालिक और सार्वभौम ही है। क्योंकि वार्त्ता की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी नीतिपरकता में उन मूलभूत सत्यों की ओर प्रेरित करना जो सच्ची मानवता के आधार हैं। वे आधार जातीयता या राष्ट्रीयता की सीमाओं में बद्ध हो जाने वाले नहीं होते।

(१३) वार्ता बहुमुखी एवं सांस्कृतिक होती है। वह पर्व, जयन्ती, इत्यादि को तो वर्णित करती ही है, उनको सजीव भी बनाती है। प्रायः प्रत्येक रिवाज के साथ एक वार्त्ता अवश्य जुड़ी मिलती है, जो अधिकांश रिवाज के बन जाने के बाद ही जुड़ती है। वार्त्ताओं का विकास सभ्यता के विकास की ही कहानी है।

(१४) वार्ता में तीन बातें होती हैं—

(अ) कथनोपकथन

(आ) इतिवृत्तात्मकता

(इ) वर्णनात्मकता

जो वार्ता केवल इतिवृत्तात्मक होती है उसमें यथातथ्य चित्रण होता है अतः उसमें अधिक सजीवता नहीं आने पाती। केवल कथनोपकथन से वार्त्ता में तारतम्य नहीं बैठता। कोरी वर्णनात्मकता से कथा की रोचकता पर व्याघात पड़ा करता है। और ऊब या उकताहट जन्म लेती है।

(१५) वार्त्ता में कथनोपकथन, इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता के सम्यक् संतुलन से ही वार्त्ता में एकता होती है। केवल कहते चले जाने की रीति से—वर्णनात्मकता से, श्रोता ऊबता है। तीनों की एकता से वार्त्ता में नाटकीयता, सरसता और जिज्ञासावृत्ति को जगाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है और वार्ता सफल कहलाती है।

(१६) वार्त्ताएँ अनेक प्रकार की होती हैं :—

(अ) महाभारत की वार्त्ताएँ ऐतिहासिक अधिक हैं। ऐतिहासिक वार्त्ता में पात्र ऐतिहासिक होते हैं किन्तु उनके साथ प्रायः अलौकिक तत्व मिले रहते हैं।

(आ) कल्पित वार्त्ताओं का उदाहरण गुणाढ्य की रचनाओं में मिलता है। उसने अपनी कल्पना से ही पात्रों को सजाया है।

(इ) तीसरे प्रकार की वार्त्ता नाट्य—प्रभाव छोड़ती है। उसमें कल्पना और ऐतिहासिकता का सम्मिश्रण होता है।

(उ) प्रायः वार्त्ता गद्यात्मक होती हैं क्योंकि उनके सुनाने में फैलाव की गुंजायश होती है।

(ऊ) किन्तु प्राचीन वार्त्ताएँ लिखित रूप में पद्य में ही मिलती हैं। जिसका कारण है पद्य की सहज प्रेषणीयता और शीघ्र स्मरण हो जाने की समर्थता।

(ए) वार्त्ता में गद्य और पद्य दोनों का सम्मिश्रण श्रोताओं के लिए अधिक रोचक प्रमाणित होता है क्योंकि उससे एकरसता मिटकर, उसमें आकर्षण बढ़ जाता है।

(ऐ) वार्त्ता का प्रादुर्भाव मनुष्य की अवकाश बेला का प्रयोग था, अनुभवों के संचय की प्रयुक्ति थी। कालांतर में ब्राह्मण-साहित्य में वह धर्म के रीति-रिवाजों के लिए प्रयुक्त हुई। अपनी सम्प्रदाय-चर्चा के लिए बौद्ध और जैनों ने भी उसका प्रयोग किया है।

रीतिपरकता, प्रायश्चित्त-वृत्ति और सदाचारपूर्णता का यान बनाकर शताब्दियों तक वार्त्ता ने इतिहास में अपना महत्वपूर्ण कार्य किया है। धर्म-गाथाओं ने अतीत के इतिहासों को अपने भीतर समाविष्ट कर लिया है। जब समाज में विषमता का प्रसार हुआ तब शिक्षित वर्ग ने उसका प्रयोग अपने महत्व प्रतिपादन के लिए किया। जैसे महाभारत में ब्राह्मण महिमा का गान किया गया है। किन्तु जनसमाज के प्रति जो उत्तरदायित्व था वह प्रत्येक परिस्थिति में जीवित रहा और इसीलिए उन

मानवीय गुणों को ही वार्त्ताओं में श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है जो कि व्यक्ति को लघुता से परे होने का संदेश देते हैं।

(१७) वार्त्ताएँ परम्परा से आती रीतियों को आत्मसात् करके उन्हें पुनः नवजीवन देती रही हैं और मौखिक रूप से उसका अस्तित्व बना रहा है। किन्तु लोककथा और वार्त्ता में दो भेद हैं। लोककथा केवल मनोरंजनार्थ होने वाला आख्यान है, जबकि वार्त्ता एक उपदेशात्मक आख्यान है। मनोरंजन तत्त्व के कारण से वार्त्ता का कलेवर नीरस नहीं बनने पाता। उसके द्वारा जड़ में चैतन्य का संचार होता है। लोककथा के पीछे सिद्धान्त नहीं होता। वार्त्ता में कोई न कोई सिद्धान्त ध्वनित होता है चाहे वह कितना ही अप्रत्यक्ष और गौणरूप से प्रस्तुत किया हुआ क्यों न हो। लोककथा केवल कौतूहलपरक होती है उसमें केवल एक ही तत्त्व होता है 'कि इससे आगे क्या है ?' परन्तु वार्त्ता में परिणाम तक पहुँचते-पहुँचते जिज्ञासा अपने आप विचार को उभार देती है और व्यक्ति अपने भीतर उतरने लगता है।

(१८) वार्त्ता के भीतर अनेक तत्व आते हैं :—

(अ) पात्र चमत्कारों से युक्त आते हैं।

(आ) प्रकृति के अनेक रूपों का मानवीकरण होता है। पशु-पक्षी बोलने लगते हैं।

(इ) देवता मनुष्यों के से व्यवहार करते हैं।

(ई) वेदकालीन सूर्य तथा अग्नि आदि दैवी तत्व भी मानवीय भावभूमि पर उतर आते हैं।

(उ) इसी प्रकार जड़ प्रकृति, जैसे—नदी, पर्वत, आदि भी सजीव हो उठते है। जड़ को चेतन देखने की प्रवृत्ति संसार की अनेक जातियों की वार्त्ताओं में विद्यमान है।

(१९) वार्त्ता का विषय स्वानुभाव पर निर्भर होता है। संस्कारों का मानदण्ड उसका मूल्यांकन करता है। पाठक या श्रोता को उसकी समस्या में आत्मा का स्वरूप दिखाई देता है।

(२०) विषय की कोटि के दृष्टिकोण से वार्त्ता को तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) सात्विक, (आ) राजस, (इ) तामस।

वार्त्ता के विषय की दृष्टि से यह त्रिधा-विभाजन होता है। और मानवीय मूल्य या सार्वभौमिकता ही उसका उच्चतम स्तर कहला सकती है। संसार के प्रायः सभी धर्मों ने वार्त्ता को अपनाया है। मध्यकालीन भारत में गोरख, शंकर, कबीर और नानक के साथ अनेक वार्त्ताएँ जुड़ी हुई हैं। उनमें तथ्य भी हैं, सिद्धान्त भी। और इनके अतिरिक्त मानव की मूलभूत उन निर्बलताओं पर प्रहार भी हैं, जो कि उसे मनुष्यत्व की सर्वस्वीकृत सीढ़ी से नीचे गिराती हैं। तामस वार्त्ता अपनी संकुचित सीमा में इतनी आबद्ध होती है कि वह एक विशेष सम्प्रदाय की ही होती है, उससे सम्प्रदायेतर व्यक्ति मनोरंजन नहीं प्राप्त कर सकता। वैष्णव-साहित्य ने वार्त्ता की मूलभूमि को अधिकाधिक प्रशस्त किया था. अधिकाधिक रूप से मनुष्य की कोमलतम रसमयी वृत्तियों को जगाने की चेष्टा की थी और जिसने हिन्दी में अवतरित होकर मानव को उदात्ततम होने की गहरी प्रेरणा प्रदान की है।

वार्त्ता-साहित्य का अध्ययन

अध्ययन का उपक्रम—यहाँ जिस वार्त्ता-साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है, वह वल्लभ-सम्प्रदाय का वार्त्ता-साहित्य है। यह वार्त्ता-साहित्य वि० सं० १५३५ से प्रारंभ होता है।

प्रस्तुत अध्ययन महाप्रभु वल्लभाचार्य जी एवं गुसाँई श्री विट्ठलनाथ जी विषयक साहित्य का है। इस साहित्य के प्रधान ग्रन्थ हैं :—

(१) ८४ वैष्णवन की वार्त्ता, (२) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता, (३) निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, बैठक चरित्र (आचार्य द्वय के) (४) श्री आचार्य जी की प्राकट्य वार्त्ता (५) भावसिंधु, (६) श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्त्ता। इन छः ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है :—

(१) ८४ वैष्णवन की वार्त्ता—इस वार्त्ता में आचार्यजी के उन महानुभाव सेवकों (शिष्यों) के चरित्र दिये हुए हैं जो पुष्टिमार्ग की भक्ति के आदर्श थे। इनमें से कई एक महाकवि भी थे जिन्होंने अपने अलौकिक भाव-साहित्य से हिन्दी-साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि की थी।

(२) २५२ वैष्णवन की वार्त्ता—इस वार्त्ता में गुसांई श्री विट्ठलनाथ जी के उन महानुभाव सेवकों (शिष्यों) के चरित्र दिये हैं जिन्होंने अपने आदर्श चरित्रों द्वारा पुष्टिमार्ग को जनसमाज में प्रकाशित किया है। इनमें भी कई एक महाकवि हुए जिनकी दिव्य रचनाओं से हिन्दी-साहित्य समृद्ध हुआ है। ब्रजभाषा गद्य के ये दोनों महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

(३) निजवार्त्ता—घरूवार्त्ता, बैठक चरित्र—इन तीन ग्रन्थों में आचार्य द्वय के विशेष-चरित्र प्रसंग दिये हुए हैं। इन चरित्र प्रसंगों से जहाँ पुष्टिमार्ग के प्रारम्भिक इतिहास का निर्माण हो सकता है वहाँ हिन्दी के मध्यकालीन धार्मिक इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

४—श्री आचार्यजी के प्राकट्य की वार्त्ता—इसमें आचार्यजी के प्राकट्य विषयक एवं जीवन के अन्य वृत्तों का प्रसंगात्मक किन्तु क्रमबद्ध रूप में वर्णन हुआ है।

(५) भावसिंधु—इस ग्रन्थ में आचार्यजी के ८४ में के और श्री गुसांई जी के २५२ में के कई वैष्णवों के चरित्रों के साम्प्रदायिक रहस्यमय भावों का उद्बोधन किया गया है। जो मूलवार्त्ताओं में नहीं हैं (१) यह बहुत बड़ा ग्रन्थ है, (२) किन्तु उसका एक खण्ड ही अभी तक प्रकाशित हुआ है, जिसमें २१ वार्त्ताएँ हैं। इन २१ वार्त्ताओं में राजा कृष्णदेव की, चंदाबाई की, ताज की और कुछ वार्त्ता के प्रसंग विशेष रूप से मिलते हैं। अन्य वार्त्ताएँ ८४, २५२ में से ही ली गई हैं (जिनमें निजवार्त्ता प्रसंग में के कुछ प्रक्षिप्त अंश भी हैं)।

६—**श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्त्ता**—इस ग्रन्थ में श्रीनाथजी के प्राकट्य से लेकर श्रीनाथजी के मेवाड़ पधारने तक (वि० सं० १७२८ तक का) का ऐतिहासिक ढंग से वर्णन किया गया है। इसमें कई सम्वत् मिलते हैं। इससे उस समय के बाह्य इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इसका वि० सं० १५३५ से वि० सं० १६४२ तक का चरित्र-वर्णन प्रायः ८४ एवं २५२ वैष्णवों की वार्त्ताओं के आधार पर हुआ है।

इन ग्रन्थों के अध्ययन से पुष्टिमार्ग का प्रारम्भिक इतिहास सम्पूर्ण रूप में ज्ञात हो जाता है।

इन छः ग्रन्थों का सुविधा की दृष्टि से दो रूपों में विभाजन किया गया है। एक श्री आचार्यजी के चरित्र एवं दूसरा श्री गुसांईजी के चरित्र के रूप में। एक, तीन, चार, संख्यात्मक ग्रन्थ श्री आचार्य-चरित्र को परोक्ष एवं साक्षात् रूप से स्पष्ट करते हैं। दूसरी संख्या वाला २५२ वैष्णवन की वार्त्ता का ग्रन्थ श्री गुसांईजी के चरित्र के महत्व की व्याख्या करता है। जिस प्रकार आचार्यजी की निज-वार्त्ता आदि प्राप्त है उसी प्रकार श्री गुसांईजी की भी निजवार्त्ता—घरूवार्त्ता एवं बैठक चरित्र सम्प्रदाय में मिलते हैं। वे भी श्री गुसांई जी के चरित्र को स्पष्ट और विस्तृत रूप से प्रस्तुत करते हैं। भावसिंधु एवं श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता तो दोनों चरित्रों (श्री महाप्रभु और श्री गुसांईजी) के सहायक ग्रन्थ हैं। इसलिए इन दो ग्रन्थों को पृथक् विभाजन में नहीं लिया गया है।

इस प्रकार इन दो रूपों को "वल्लभ-विट्ठल-वार्त्ता" नाम से संयुक्त संबोधन भी कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण की पुष्टि "सम्प्रदाय कल्पद्रुम" के इस उल्लेख से होती है :—

"वल्लभ-विट्ठल वारता, प्रगट कीन नृप मान !"

आरम्भ—अब वल्लभ-विट्ठल वार्त्ता-साहित्य का आरम्भ कब और कैसे हुआ उस पर सर्वप्रथम वार्त्ताओं के अन्तःसाक्ष्य से विचार किया जायगा।

अन्तःसाक्ष्य से पुष्टि—इसमें कोई सन्देह नहीं कि वल्लभ-विट्ठल-वार्त्ता में सर्वप्रथम वल्लभाचार्यजी विषयक वार्त्ताओं का ही समाज में आरम्भ हुआ है। श्री विट्ठलनाथजी महाप्रभुजी के द्वितीय पुत्र थे अतः उनका चरित्र बाद में ही आ सकता है। वल्लभ-वार्ता में भी सबसे प्राचीन चौरासी वैष्णवों के चरित्रों का आरम्भ हुआ है। उसके प्रचार करने वाले स्वयं श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी थे। इस मन्तव्य की पुष्टि वार्ता के निम्नलिखित उद्धरणों से होती है—

१—और एक समै श्री आचार्यजी सों कृष्णदास ने प्रश्न पूछयो जो भक्त होइ कै श्री ठाकुर जी की लीला को भेद नाहिं जानत सो काहे तें ? तब श्री आचार्य जी ने कह्यो, जो ये विधिपूर्वक समर्पन ज्यों कह्यौ है त्यों नाहि करत।—तहाँ गज्जनधावन आदि वैष्णव

भावसिंधु १—"श्रीमद् गोस्वामी श्री गोकुलनाथ जी माला प्रसंग वाला—पोते कृपा करी ८४ ने २५२ वैष्णवन नी वार्त्ता वैष्णवों ना हित-कल्याण ने माटे प्रगट करी लखावी छे। पोताने वैष्णवों पर अत्यन्त हाल हतु पोते श्री महाप्रभु जी श्री गुसांई जी ना सेवक जी नी का राखता, वैष्णव ना स्वरूपनी भावना समजता, तेमणे आधुनिक जीवों उपर परम कृपा करी, चौरासी अने बसोबावन वैष्णव नी वार्त्ता मां जेना भाव अतिगूढ़ छे, जेनी वार्त्ताओं मां उत्तम भावनानु उंचु रहस्य रहेलु छे नै जे मूल वार्त्ता माँ दर्शाव्यु नथी, तेवी वार्त्ताओं ना भाव पोते जणाबेला ते आ ग्रंथां माँ छे। (२) प्राचीन भवगदीयाना मुख थी श्रवण कर्यु छे के आ ग्रंथ ते भावसिंधु नो एक भाग छे, आ ग्रंथ नो बीजो भाग हजु। अप्रकटित छे।

उपोद्घात–पृ० १ प्रकाशक–लल्लूभाई-देसाई अहमदाबाद द्वितीय आवृति

को दृष्टांत दीनो। जिन-जिन ने भावपूर्वक सेवा करी तिन-तिन के सकल मनोरथ सिद्ध भये।
[—कृष्णदास मेघन की वार्त्ता २ प्रसंग ६]

२—"सो इनकी सेवा देख के श्री आचार्यजी बहोत प्रसन्न भये। तब आप अपने श्रीमुख तैं कहे, जो जिन राजा अंबरीष न देख्यो होइ सो दामोदरदास कों देखो। राजा अंबरीष तो मर्यादा मार्गीय हुतो और ये पुष्टिमार्गीय है। इनमें इतनी अधिकताई है।"
[—दामोदरदास संभल वाले की वार्त्ता ३ प्रसंग १]

३—तब श्री आचार्यजी रामदास सौं देखि कै कहे, धन्य है। तब वैष्णव पास बैठे है सो कहन लागे, महाराज! अब याकौ धन्य क्यों कहत हो? या की अपरस तो छुटी, सिपाइन में रहत है, हथियार बाँधत है? तब श्री आचार्यजी कहे, यह धन्य है। श्री ठाकुरजी कों स्रम नाहिं करावत है। तातें या समान धीरज काहू कों नाहि, यह स्री मुख तें कहे।
[—रामदास सारस्वत की वार्त्ता ७ प्रसंग १]

४—तब माधौदास ने सब समाचार श्री आचार्यजी महाप्रभुन सों कहे तब आचार्यजी सगरे वैष्णवन कों कहे,जो—देखो यह वही माधौदास है, कैसी टेक कौ वैष्णव भयो। ता दिन तें माला कौ नाम "माधवदास कहें,[1] सो सगरे कहत है [—माधौदास वैणीदास की वार्त्ता ९ प्रसंग २]

वार्त्ता के इन अन्त:साक्ष्य रूप उद्धरणों से यह निश्चय होता है कि आदर्श वैष्णवों के चरित्रों को प्रसंग रूप में आचार्यजी स्वयं अपने सामान्य वैष्णवों के समक्ष कहते थे। और उनके द्वारा मार्ग की रीति, मर्म, रहस्य वा सिद्धान्त उन लोगों को समझाते थे।

आचार्यजी ने अपने पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों को संस्कृत में अनेक छोटे बड़े ग्रन्थों को रचकर विद्वद्वर्ग के सम्मुख उपस्थित किये थे। किन्तु उनको जन सामान्य में समझाने के लिये इस प्रकार के चरित्रों में भाषा में उपस्थित करना भी आवश्यक था। गम्भीर से गम्भीर सिद्धान्त, दृष्टांत और चरित्र द्वारा शीघ्र समझ में आ जाता है। इसीलिए दार्शनिक ग्रन्थों में भी "घटपटादि" के दृष्टांत दिये गये हैं। पुराणों में उसी को चरित्र द्वारा समझाया गया है। कैसा भी मूर्ख आदमी हो उसको यदि दृष्टांत चरित्र द्वारा गम्भीर से गम्भीर विषय भी समझाया जाय तो वह शीघ्र समझ सकता है। इसलिए जन सामान्य में चरित्र का विशेष महत्व होता है। इस तथ्य को आचार्यजी ने अपनी दृष्टि से ओझल न होने दिया। आपने स्वयं इन सिद्धान्तों को भगवत् सेवा द्वारा व्यवहार रूप से अपने जीवन में स्पष्ट करते हुए अपने चरित्र का निर्माण किया और अपने अंतरंग सेवकों को भी उसका अनुसरण कराकर आदर्श सेवकों के चरित्र प्रसंगों को सामान्य जनसमाज आप में उपस्थितकर आदर्श सेवामय जीवन बनाने का उपदेश करते थे। जैसा कि पद में कहा है—

"मारग रीति बताई, प्रगट व्है मारग रीति बताई।
परमानन्दस्वरूप कृपानिधि, श्री वल्लभ सुखदाई॥
कर सिंगार गिरिधरनलाल को, जबकर वेनु गहाई।
ले दर्पन सन्मुख ठाड़े व्है निरख-निरख मुसकाई॥"

आचार्यजी के आदर्श चरित्रों का संग्रह आपके मुख्य एवं अंतरंग सेवक दामोदरदास हरसानी ने, जो कि निरंतर आपके पास रहते थे, किया था जिसका वर्णन उन्होंने श्री विट्ठल-

१ यह माला आज भी श्रीनाथद्वार में श्री नवनीत प्रिय जी के यहाँ इसी नाम से विख्यात है।

नाथजी के समक्ष पीछे से भी किया था। आचार्यजी के सभी चरित्र प्रसंगों को दामोदरदास जी देखते थे और उनके द्वारा कथित प्रसंगों को सुनते थे। क्योंकि उनको आचार्यजी के वचनों के सुनने के सिवाय अन्य कोई कार्य न था। अतः आचार्यजी से कथाएँ, वचनामृत आदि वे नित्य प्रति श्रवण करते थे। आचार्यजी दामोदरदास से रहस्य लीला और भगवान के गोलोक धाम आदि की लीला, की बातें कहते थे। इसका कथन उनकी वार्त्ता में इस प्रकार प्राप्त होता है"—और कथा कहत में श्री आचार्यजी दामोदरदास सों कहते, जो—दमला! बड़ी बार भई है, श्री ठाकुरजी की वार्त्ता नाहिं करी। भाव—टीका— "ताको तात्पर्य यह है जो श्री ठाकुरजी की वार्त्ता आपु श्री स्वामिनी रूप दामोदरदास ललिता सखी रूप सों नाहीं करी। ललिता सों एकान्त रहस्य वार्त्ता श्री ठाकुरजी को मिलन को प्रसंग जा प्रकार लीला करी है सो नाहीं करी। सो करने के लिये सबन के आगे ऐसे कहतें, कथा कहत समय जो ठाकुर जी की वार्त्ता नाहिं करी।" इससे यह स्पष्ट होता है कि दामोदरदास को आचार्यजी सम्प्रदाय की "लीला भावना" का भी ज्ञान कराते थे। इस प्रकार भौतिक आचार्य-चरित्र एवं आदर्श सेवकों के चरित्र, आध्यात्मिक श्री सुबोधिनी प्रभृति के भक्ति सिद्धान्त एवं आधिदैविक लीला के प्रसंग ऐसे तीनों प्रकारों से आचार्यजी ने दामोदरदास को सम्प्रदाय का सम्पूर्ण ज्ञान दिया था। दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता प्रसंग दो से इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि—

"श्री आचार्यजी महाप्रभु आप सन्यास ग्रहण करिवे को विचार मन में करे। ता समे श्री गोपीनाथजी तथा श्री गुसाईंजी दोऊ भाई बालक हते। तातें मार्ग की वार्त्ता श्री आचार्यजी महाप्रभु दामोदरदास को समझाइ के थापी। दामोदरदास सों कछु गोप्य न राख्यो। और श्री आचार्यजी श्री भागवत अहर्निश देखते, कथा कहते और दामोदरदास सुनते। और मार्ग को सब सिद्धान्त भगवद्लीला रहस्य श्री आचार्यजी ने दामोदरदास के हृदय विषे स्थाप्यो। दामोदरदास के हृदय विषे मारग स्थापि के केतेक दिन पाछें श्री आचार्यजी आप सन्यास ग्रहण किये। तब केतेक दिन पाछे श्री गुसांईजी ने श्री अक्का जी सों पूछी जो आचार्यजी मार्ग प्रगट कियौ है सो उत्सव कौ कहा प्रकार है? हम तो कछू जानत नाहिं। तब अक्का जी ने कह्यो, जो मार्ग तथा उत्सव को प्रकार सब दामोदरदास सों कह्यो हैं, सो उनसों तुम पूछौ। तुमसों दामोदरदास सब कहेंगे। तब श्री गुसांईजी दामोदरदास के घर पधारे। तब दामोदरदास ने बहुत सन्मान करि भक्ति भाव सों घर में पधराये। ता पाछे श्री गुसांईजी ने उत्सव के प्रकार पूछे सो सब दामोदरदास श्री गुसांईजी सों कहे।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि आचार्यजी ने अपने पुत्रों को समझाने के लिये मार्ग की सब वार्त्ता (अर्थात् चरित्र व सिद्धान्त) भक्ति का ज्ञानात्मक स्वरूप (और भगवद्लीला रहस्य) भावना को दामोदरदास के हृदय में रखा था। उनसे श्री गुसांईजी ने ये बातें प्राप्त की थीं। इस प्रकार आचार्य जी के द्वारा कहे हुए वैष्णवों के प्रसंगों को दामोदरदास ने श्रवण किया था और उन्होंने इन प्रसंगों को श्री विट्ठलनाथ जी से कहा था।

बहिस्साक्ष्य से पुष्टि—कृष्णदास अधिकारी ने जब वि० सं० १६०५ में आचार्यजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथजी के पुत्र और श्री विट्ठलनाथ जी के भतीजे, श्री पुरुषोत्तमजी का मन्दिर पर अधिकार कराने के लिये, श्री विट्ठलनाथजी को श्रीनाथजी के मन्दिर में आने से रोका था, तब श्री विट्ठलनाथजी ने चन्द्रसरोवर पर छः मास पर्यन्त अन्न-जल के

त्यागपूर्वक श्रीनाथजी का विरहानुभव किया था। उस समय श्री भागवत पारायण के अनंतर नित्य प्रति दामोदरदास प्रभृति आचार्यजी के अंतरंग सेवक श्री विट्ठलनाथजी के सम्मुख आकर बैठते थे। तब दामोदरदास से आप मार्ग की वार्त्ता, लीला का प्रकार आचार्यजी के प्राकट्य आदि के प्रकार को पूछते थे। उस समय दामोदरदास आप से सब सुनी और देखी हुई बात निवेदन करते थे। उन वृत्तान्तों को श्री विट्ठलनाथजी ने एक सहस्र श्लोकों में ग्रंथ बद्ध किया है जो श्री गुसांईजी और दामोदरदासजी के 'संवाद' नाम से सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं। यह संस्कृत ग्रंथ सम्प्रदाय में अप्राप्य है किन्तु उसकी अपूर्ण टीका ब्रजभाषा की सम्प्रदाय के अनेक स्थानों पर मिलती है जो बहिस्साक्ष्य रूप है। इसका समय वि० सं० १६०५ का है। ग्रंथ में इसका समय स्पष्ट दिया है। इस ग्रन्थ में दामोदरदास द्वारा कहा हुआ आचार्यजी का प्राकट्य और अपना चरित्र भी मिलता है।

"ता पाछें श्री गुसांईजी ने दामोदरदास सों कह्यो, जो दामोदरदास! तुम हमकों श्री आचार्यजी को प्राकट्य कहो और दैवी जीव क्यों बिछूरे ताको कारण और जीवन के अंगीकार को प्रसंग। ये सब विस्तार करिकै कहो। काहे तें, जो तुम्हारे हृदय में श्री आचार्यजी विराजत हैं और यह प्रसंग श्री आचार्यजी बिनु कौन कहे और कैसे जानि परै? याते हम तुमसों प्रसंग कियो है।"

यह ग्रंथ अपूर्ण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आचार्य चरित्र, वैष्णव चरित्र और लीला भावना ये तीनों के प्रसंग तथा वार्त्तायें दामोदरदास द्वारा श्री विट्ठलनाथजी को प्राप्त हुई थीं। तब से श्री विट्ठलनाथजी ने अपने सेवकों में श्री आचार्यजी के एवं अपने आदर्श सेवकों के चरित्र, प्रसंग एवं लीला भावना आदि कहना प्रारम्भ किया था। इस बात की पुष्टि वार्त्ता के इन उद्धरणों से होती है—

१—"सो श्री गुसांईजी रुक्मनि कों देख कै कहते, जो इन सों श्री ठाकुरजी उरिन कबहू न होइंगे। पाछे भगवदीच्छा सों देह छूटी, तब काहू वैष्णव ने श्री गुसांईजी सौं कही, महाराज! रुक्मनि गंगा पाई, तब श्री गुसाँईजी कहें। ऐसे मत कहो, ऐसे कहो, जो गंगाजी ने रुक्मनि पाई।" (रुक्मनि की वार्त्ता)

२—"तब श्री गुसांईजी ने चाचा हरिवंश सों कह्यो..........जैसे श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक रामदासजी अपरस छोडि के सिपाई गिरि की चाकरी करें परि श्री ठाकुरजी को श्रम तो नहीं करवाए। तब रामदासजी को देखि कै श्री आचार्यजी महाप्रभु श्री मुखते रामदासजी को धन्य-धन्य कहे। तासों वैष्णवन को गोवर्द्धननाथजी विषे ऐसो रामदास को सो स्नेह राखनौ।" (चाचा हरिवंश की वार्ता)

ऐसे और भी प्रसंग हैं जिनमें श्री गुसाँईजी ने श्री आचार्यजी के सेवकों की प्रशंसा की है। इन उद्धरणों से यह निश्चित होता है कि वार्त्ता-साहित्य का आरम्भ श्री वल्लभाचार्यजी के समय में उन्हीं के द्वारा मौखिक रूप में हुआ था। उसका विस्तार पीछे से दामोदरदास हरसानी एवं श्री विट्ठलनाथजी द्वारा हुआ था। इसीलिए इन मौखिक प्रसंगों का उल्लेख गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी ने, जो श्री विट्ठलनाथजी के चतुर्थ पुत्र थे, अपने संस्कृत ग्रन्थों की टीकाओं में भी किया है। जैसा कि—(१) वल्लभाष्टक की टीका में कृष्णदास मेघन का अग्नि उठाने का प्रसंग—

"अनुभव निगमाद्युक्तमानैरिति, तत्रानुभव उच्यते,—क्षत्रिय : कृष्णदास इति आचार्य सेवक: स्थितस्तत्कृता साधारण सेवया प्रसन्नैराचार्यैस्त्वं त्वदभिमतं प्रार्थयेत्युक्तस्त्रयं प्राथितवान्, सर्वात्मना त्वन्मार्गीय सिद्धान्त ज्ञानं ममास्त्वित्येकं स्वस्मिन्वर्धमानमौरवर्य क्षमापन रूपं द्वितीयं, आचार्य शरण गमनात्पूर्व वैष्णव मंत्रोपदेष्टृस्वगुरू गृह गमन प्रार्थन रूपं तृतीयं आचार्यैः प्राथितत्रयमपिदत्तं । आचार्य गमनात्पूर्वं मे कदा स्वगुरू गृहे स गतवान् तं नमस्कृत्योपविष्टं गुरूः पृष्टवान 'मां विहाय कथं त्वयान्यो गुरूः कृत' इत्युक्तः स उत्तरं दत्तवान् मद्गुरूस्त्वमेव गुरू प्रसादस्य भगवत्प्रापकत्वात्वत्प्रासादान्मम पुरुषोत्तम प्राप्तिर्जातित्याचार्याः पुरुषोत्तमा एव न गुरवः पुनस्तद्गुरुणोक्तं ते पुरुषोत्तमा इति त्वदुक्ते किं प्रमाणं इत्युक्तः कृष्णदासो ज्वलदग्निमंजलिना गृहीत्वेदमुक्तवान्। यदिते पुरुषोत्तमास्तदा मामग्निर्न ज्वालयिष्यति नो चेज्ज्वालयिष्यतीत्युक्त्वामुहूर्तमात्रं तथा स्थितवान् तदा गुरूस्तदुक्तेर्थे सत्यत्वं ज्ञाता तद्गृहीतमग्निं भीतः स स्थान-स्थितं कारितवान्, इत्यनुभव रूपमेकं प्रमाणं—

तथा

"अनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशय इति अनन्या अन्तरंगाभक्ताः पद्मनाभदास प्रभृतयो विरलास्तेषु ज्ञापितः।"

इसमें आचार्यजी के अग्निस्वरूप के कथन की पुष्टि कृष्णदास मेघन के प्रसंग से की गई है। तथा पद्मनाभदास को 'विरला' कहा है इसी प्रकार अन्य वैष्णवों के प्रसंगों के उल्लेख भी श्री गोकुलनाथजी एवं श्री पुरुषोत्तमजी के ग्रन्थों में मिलते हैं। उनको आगे वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता के प्रकरण में उपस्थित किया जायगा। इससे इन मौखिक प्रसंगों का महत्व और उनकी प्रामाणिकता जानी जा सकती है। आचार्य द्वय के मुखों से ये प्रसंग प्रचलित हुए थे इसीलिए श्री गोकुलनाथजी व श्री पुरुषोत्तमजी जैसे संस्कृत भाषा के सुभट विद्वान् एवं सम्प्रदाय के आचार्यों ने उन प्रसंगों को महत्व दिया है। अन्यथा सामान्य जनों के प्रचलित प्रसंगों को सम्प्रदाय के विद्वान् आचार्य इस प्रकार का महत्व नहीं दे सकते थे। "सम्प्रदाय-प्रदीप" जिसकी रचना संवत् १६१० में हुई थी उसमें भी कुछ प्रसंग लिये गये हैं। इससे उनकी प्रामाणिकता और प्राचीनता जानी जा सकती है।

इस सारे कथन का तात्पर्य यह है कि चौरासी-वार्त्ता के प्रचलित प्रसंगों का आरम्भ श्री वल्लभाचार्य जी, तत्पश्चात् दामोदरदास हरसानी और गुसांई विट्ठलनाथजी द्वारा वैष्णव जनसमाज में व्यापक रूप से हुआ था। इसीसे सम्प्रदाय में इन वार्त्ता प्रसंगों का महत्व आज तक सम्प्रदाय के आचार्यगण एवं विद्वान् वैष्णवों द्वारा माना जाता है। इन वार्त्ता प्रसंगों से महत्व की पुष्टि तब और भी हो जाती है जब हमें इनके संस्कृत में किये हुए अनुवाद भी मिलते हैं। जिस समय विद्वान् प्राकृत भाषाओं को "भाखा" कहकर तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे उस समय सामान्य ब्रजभाषा में लिखे हुए इन वार्त्ता प्रसंगों का श्रीनाथ मठेश जैसे एक महान् विद्वान् द्वारा संस्कृत में अनुवाद होना कोई साधारण बात न थी।

वार्त्ता-साहित्य के प्रचलित रूप

चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ताओं की सम्प्रदाय के ग्रन्थालयों में, वैष्णवों की मंडलियों में, वैष्णवों के घरों में अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। गुजरात,

मथुरा, मध्य प्रदेश आदि भारत के प्रदेशों में जहाँ कहीं वल्लभ सम्प्रदाय के लोग रहते हैं वहाँ के प्राय: छोटे बड़े प्रत्येक ग्राम में रात को भगवद्वार्त्ता होती है; और वहाँ चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ताएँ प्रधानत: बाँची जाती हैं। उन सब स्थानों में उक्त दोनों वार्त्ताओं की एक-एक हस्तलिखित प्रति होती है। बड़ौदा में मैंने बड़ौदा जिले की कुछ प्रतियाँ प्राप्त की थीं, जिनमें चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की मूल एवं भावना वाली प्रतियाँ थीं। इनका परिचय एक अलग प्रकरण में आगे दिया गया है। इसी प्रकार कांकरौली सरस्वती भंडार और नाथद्वारा तथा अहमदाबाद में भी अनेक प्रतियाँ हैं। इन हस्तलिखित प्रतियों में तीन प्रकार की प्रतियाँ हैं जिनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

प्रसंगात्मक रूप की प्रतियां—(१) कुछ प्रतियाँ प्रसंगात्मक हैं। उनमें न तो कोई क्रम है और न प्रसंगों का ही एकीकरण हुआ है। दामोदरदास हरसानी का एक प्रसंग यदि आरम्भ में है तो दूसरा अंत में मिलता है। इसी प्रकार और वैष्णवों के भी प्रसंग हैं। इसमें चौरासी, दो सौ बावन की विभिन्नता का क्रम भी नहीं मिलता है। इस प्रकार की प्रतियों को मैं वार्त्ता-साहित्य का प्रथम संस्करण मानता हूँ। इसके लेखक एवं लेखनकाल पर आगे विचार किया जायगा। इस प्रथम संस्करण वाली अनेक प्रतियों में से कई एक में लेखन संवत् प्राप्त नहीं है। जिन प्रतियों में उनके लेखन संवत् हैं उनमें से १७४६ वि० सं० (कार्तिकी) की लिखी हुई प्रति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह कांकरौली सरस्वती भंडार हिन्दी बंध संख्या १०।१ में प्राप्त है। इसमें कुल २१६ पृष्ठ हैं। तथा वार्त्ताओं के १२८ प्रसंग हैं। पुस्तक के अन्त में श्री वल्लभ कुल को प्रागट्य नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। उसमें लेखन संवत् व परिचय इस प्रकार दिया है—'संवत् १७४६ (कार्तिकी) वर्ष श्रावण सुदी ७ सुकरे पोथी लखी छे प्रति गोविन्ददास ब्राह्मणनी पोथी थी लख्युछें।" इसमें एक प्रसंग ऐसा है जो भावनात्मक वार्त्ता साहित्य के आरंभिक इतिहास व लेखनकाल पर भी प्रकाश डालता है। इससे इस पोथी का महत्व और भी बढ़ जाता है। इस पोथी का वार्त्ता-साहित्य के आरंभिक इतिहास व लेखनकाल पर प्रकाश डालने वाला प्रसंग इस प्रकार है :—

"एक समै गोवर्द्धनदास परम भागवतोत्तम उज्जैन में कृष्ण भट्ट के घर आये। सो कृष्ण भट्ट ने आगो भलो कीनो। भोजन करवायो। भोजन करि बैठे तब भट्टजी ने कह्यो कछु सुनावो—रात्रि दिवस वैष्णवन की वार्त्ता करे। सो करते-करते तीन दिन तीन रात वितीत भई। चौथे दिवस देह की सुधि भई तब भट्टानी ने उनको स्नान करवायो। महा प्रसाद लिवायो। सो आज्ञा मांगि कें अपने देश कों चले। तब कृष्ण भट्ट ने ऐ बातें लिखी। सो प्रतिदिन इनको पाठ करें। और कोऊ भगवदीय वैष्णव आवें तासों कहे। यों करते भट्टजी को सरीर थक्यो। तब गोविन्द भट्ट बेटा सों कह्यो, बाबा! ऐ पोथी अरू घर की सोंज सब गोकुल पठइओ। तद् उपरांत गोविन्द भट्ट श्री गोकुलनाथ जी के सेवक—सो ऐसे करत बहुत वर्ष बीते तब नेत्र बल घट्यौ। तब विचार कियो—श्री भागवत श्री सुबोधिनी टीका टिप्पनी सब पोथी अरु भेट वैष्णव जब चले तब उनकों सोंपी कही श्री वल्लभ (श्री गोकुलनाथ जी का नाम है) के आगे धरियो। अरु कही बाप की वस्तु बेटा पावे। वे वैष्णव चले सो श्री गोकुल आये श्री गोकुलनाथजी के आगे राखी भेट अरु पोथी। पत्र श्री महाप्रभु (श्री गोकुलनाथजी) ने बांच्यो। तब हृदौ भरि आयो। अरु कही यह निवेदन। इतनी कही

तब पोथी श्री हस्त सों खोली। तब बीच छोटी चोपरी निकसी तब बांची। बांचि कै आंख सों लगाई अरु हृदौ भरि आयो। सो नित ग्रन्थ पाठ करते। एक वार्त्ता अरु दोई। बांधि के पेटी में धरि के तारो मारिकें भोजन कों पधारे। यों करत बहुत बरस बीते। तब नेत्र को प्रकाश भयो। तब श्री रायजू (श्री गोकुलनाथजी के पुत्र श्री विट्ठलरायजी) सों कही जो पोथी पेटी में है सो लावो। तब श्री रायजू ने पेटी खोलिके पोथी हाथ में दीनी। लेकर नेत्र सों लगाय। फेरि रायजू कों दीनी रायजू ने पेटी में धरी सों नित्य यों करे। सो एक दिवस रायजू ने देखी सो नीकी लागी तब इनके प्रिय श्री गोपालजू (श्री गोकुलनाथजी के प्रथम पुत्र) ने कही, जो देखिये तब इन नाहीं कीनी। वह देखी न जाय, अन्नाजी (श्री गोकुलनाथजी) बहुत जतन करि राखत हैं। तारे में है। और मो पास माँगत हैं तब आनि देत हूँ। फिरि कहत हैं जो धरी? तब कहूँ जो हाँ जू। तब भोजन कों पाऊँ धारत हैं। तब फिरि गोपालजू ने कही, कि तुम एक बात करो। जब उनकों देत हो तब तुमकों वे फिरि देत हैं तब इतनी करो जो और में धरि कें पेटी को तारा दीजो। अरु वे पूछे तारो दियो तब कहियो जो दीयो। तब कही जो भले। फिरि जब दूसरे दिन श्री गोकुलनाथजी माँगी तब रायजू ने आय दीनी। तब श्रीजू नेत्र सों लगाय के फेरि दीनी तब रायजु और में धरि भोजन को पधारे। तब पोथी गोपालजू कों दीनी। तब पोथी वांचि बांचि के गद-गद कंठ भये। पाछें नरायणदास लेखक कों बुलायो। तब पोथी लिखवाई। सो उनने दो प्रति कीनी। एक उनको दीनी दूसरी लेखक पास रही। सो गोपालजू रायजू ने जानी नाहीं। सनेही के आगे कहें। सो वाके एक और सनेही रहे सो वा ने उनको कही। तब उन कह्यो यह सिखाय देऊ। तब उनने लिख दीनी। ऐसे पाँच सात प्रति भई। तब एक प्रति घनजी भाई चोपरा के तिन देखी। तब श्रीजू (श्री गोकुलनाथजी) के आगे बात करी। तब श्रीजू चौंके खोज कियो वे सब बुलाये। परस्पर पूछे पाछे जानी जो रायजू को काम है। तब कह्यो गोप्य वस्तु प्रगट भई भगवत् इच्छा जानी। (प्रसंग १२८)

इससे भावनात्मक वार्त्ता-साहित्य के प्रारंभिक इतिहास व लेखनकाल पर इस प्रकार प्रकाश पड़ता है :—

१—आचार्यजी द्वारा प्रवर्तित हुए वैष्णवों के चरित्रों के प्रसंग वैष्णवों में परस्पर कहे सुने जाते थे।

२—गोवर्द्धनदास एवं कृष्ण भट्ट दोनों की वार्त्ताएँ २५२ वैष्णवों की वार्त्ता में मिलती हैं उनसे जाना जा सकता है कि वे दोनों विद्वान् थे। उनका इन वार्त्ता-प्रसंगों में तीन दिन, तीन रात मग्न हो जाना आचार्य एवं उनके सेवकों के प्रति श्रद्धा के अतिरिक्त वार्त्ता प्रसंगों के रहस्यमय भाव तथा रसात्मकता भी मुख्य कारण थी।

३—कृष्ण भट्ट द्वारा पूर्वोक्त मौखिक प्रचलित प्रसंगों का सर्वप्रथम लेखन हुआ था।

४—इसको श्री गोकुलनाथजी बड़ी श्रद्धापूर्वक कथा के अनन्तर अपने सेवकों से कहते थे।

५—श्री गोकुलनाथजी के समय में उस भाव वाले वार्त्ता-प्रसंगों के संस्करण की अनेक प्रतियां लिखी गईं।

६—यह पोथी श्री गोकुलनाथजी के लिखे हुए प्रसंगों का परिवर्द्धित संस्करण है। क्योंकि इसमें कृष्ण भट्ट का भी प्रसंग है। इन कथनों का क्रमबद्ध तात्पर्य आगे वार्त्ता-साहित्य के ग्रंथकारों के प्रकरण में स्पष्ट किया जायगा।

इस प्रति की पूर्वोक्त पुष्पिका से यह सिद्ध होता है कि यह प्रति जिस प्रति की प्रतिलिपि है वह गोविंददास की प्रति—श्री गोकुलनाथजी के विद्यमानकाल की थी। इस कथन की पुष्टि इस प्रति में प्राप्त इस लेख से होती है :—

"श्री आचार्यजी के सुसर के घर ते श्रीनाथजी (ठाकुर गोकुलनाथ की मूर्त्ति) पधारे) श्री अक्का जी (श्री आचार्यजी के बहूजी) के साथ पांव धारे सो प्रथम सेवा श्रीनाथजू की श्री आचार्यजी करते। सो श्री गुसाँईजी ने करी। सो श्री गोकुलनाथजू की सेवा में श्रीनाथजू विराजत हैं। बात अनिर्वचनीय है"

इसमें "विराजत है" यह वर्तमानकाल की क्रिया है। इससे यह ज्ञात होता है कि पुस्तक लिखते समय श्री गोकुलनाथजी विद्यमान थे। श्री गोकुलनाथजी का समय सं० १६०८ से सं० १६९७ तक है।

इस प्रसंगात्मक रूप की वार्त्ता का एक नमूना यहाँ दिया जाता है :—

"श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक की वार्त्ता लिखी है ॥श्री॥श्री॥ दामोदरदास हरसानीजी तासों महाप्रभु दमला कहते। अरु कह्यो, जो यह मार्ग तेरे काज प्रगट कियो है। श्री आचार्य जू ऐसे वासों कहते। अरु श्री भागवत अर्हनिश देखते वासों कथा कहते। अरु दामोदरदास सों कहते बड़ी वार भई हैं सो श्री ठाकुरजी की वार्त्ता नाहिं करी। सो करिए। बहोरों श्री आचार्यजु कों श्री ठाकुरजी ने श्री गोकुल में ब्रह्म सम्बन्ध कराइवे की आज्ञा दीनी। श्रावण सुदी ११ एकादशी अरध निसा समे। तब दामोदरदास नेक दूरि सोवत हुते। श्री आचार्यजी ने पूछ्यो जो तें कछू सुन्यो। तब दामोदरदास ने कह्यो, जो—मैं श्री ठाकुरजी के वचन सुने परि समुझे नाहिं। तब श्री आचार्यजु ने कह्यो, जो मोकुं श्री ठाकुरजी ने आज्ञा दीनी है। जो तुम जीवन को ब्रह्म सम्बन्ध करो हमारो संबंध कराओ। तब श्री (आचार्यजी) कही, जो तुम गुन निधान, जीव दोष निधान, ए क्यों संगति होय। तब श्री ठाकुरजी कही, तुम ब्रह्म सम्बन्ध करावो। हों तिनको अंगीकार करूंगो। तिनके सकल दोष निवृत होइगे। सो श्री आचार्यजी ने सिद्धान्त रहस्य ग्रन्थ में लिख्यो है। 'सर्वदोष निवृत्ति हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः'।

"बहोरों श्री आचार्यजु ने श्री ठाकुरजी पास मांग्यो जो मेरे आगे दामोदरदास की देह न छूटे। अरु दामोदरदास तें कछु गोप्य न राख्यो।"

वार्त्ता-साहित्य का द्वितीय संस्करणात्मक रूप चौरासी, दो सौ बावन संख्याओं में विभाजित की हुई मूलवार्त्ताएं हैं। इन वार्त्ताओं की अनेक हस्तलिखित प्रतियां सर्वत्र उपलब्ध हैं। उनमें से कुछ का परिचय 'वार्त्ता-साहित्य की प्रकाशित तथा हस्तलिखित प्रतियों की सूची और विवरण' में दिया गया है। इन प्रतियों में सबसे प्राचीन प्रति वि० सं० १६९७ की लिखी हुई कांकरौली सरस्वती भंडार हिन्दी बंध संख्या ९८।२ में देखने में आई हैं। इसका निरीक्षण प्रो० श्री दीनदयालजी गुप्त ने भी किया है। इसकी प्राचीनना

में कोई संदेह नहीं है। इसमें चौरासी वार्त्ता के अनन्तर निजवार्त्ता और श्री गुसांईजी के सेवक अष्टछापी चार सेवकों की वार्त्ताएं भी दी गई हैं। इसका लेखन वि० सं० १६९७ के चैत्र शु० ५ को श्री गोकुल में श्री चुन्नीलाल सनाढ्य ब्राह्मण ने किया था। श्री गोकुलनाथजी की भूतलस्थिति वि० सं० १६०८ से वि० सं० १६९७ के माघ वदी ९ तक थी। अतः यह प्रति श्री गोकुलनाथजी के विद्यमानकाल की है।

इन मूल चौरासी वार्त्ता की प्रतियों में "श्री गोकुलनाथजी कृत" लिखा होने का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। इसलिए यह द्वितीय संस्करण श्री गोकुलनाथजी द्वारा लिखा व कहा गया था यह ज्ञात होता है। इस कथन की पुष्टि अंतः, बाह्य साक्ष्य रूप श्री गोकुलनाथजी कृत चौरासी वैष्णवों की 'संस्कृत नामावली' एवं अलीखान पठान (दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में वार्त्ता) द्वारा रचा हुआ "चौरासी वैष्णवों का सूचीपत्र" और 'यदुनाथ दिग्विजय' से भी होती है। इसका भी विवरण वार्त्ता-साहित्य की प्रमाणिकता के प्रकरण में आगे दिया जायगा। इस संस्करण में जहाँ संख्या का निर्माण हुआ है वहाँ प्रसंगों का एकीकरण भी। इसमें कुटुम्ब की वार्त्ताओं का भी समावेश उसके मूलपुरुष की वार्त्ता की संख्या के अंतर्गत किया गया है। जैसा कि पद्मनाभदास की वार्त्ता के अंतर्गत किया गया है। उनके कुटुम्ब की पुत्री तुलसा, नाती रघुनाथदास एवं उसकी माता पार्वती की वार्त्ताएँ भी दी गयी हैं। इसी प्रकार सेठ पुरुषोत्तमदास की वार्त्ता के साथ उनके पुत्र गोपालदास एवं बेटी रुक्मिनी की वार्त्ता दी गई है। इसी प्रकार अन्य वार्त्ताओं में भी है। उन सबको पृथक्-पृथक् गिनने पर उनकी संख्या बानवे होती है। किन्तु चौरासी संख्या के निर्माण में कुछ साम्प्रदायिक रहस्य होने से उसकी वार्त्ता भिन्न नहीं मानी गयी है। चौरासी संख्या का रहस्य गोस्वामी श्री हरिरायजी ने अपनी टीका रूप भावना वाली वार्त्ता में स्पष्ट बतलाया है, जो इस प्रकार है :—

"चौरासी वैष्णवन को कारन यह है, जो दैवी जीव चौरासी लक्ष योनि में परे हैं, तिनमें ते निकासिवे के अर्थ चौरासी वैष्णव किये। सो जीव चौरासी प्रकार के हैं। राजसी, तामसी, सात्विकी, निर्गुण, ये चार प्रकार के (भूतल में) गिरे। तामें ते गुणमय राजसी, तामसी, सात्विकी रहन दिये, सो श्री गुसांईजी उद्धार करेंगे। श्री आचार्यजी बिना श्री गोवर्द्धनधर रहि न सके, तातें अपने अंतरंगी निर्गुण पक्ष वारे चौरासी वैष्णव (प्रगट) किये। सो एक-एक लक्ष योनि में तें एक-एक वैष्णव निर्गुण वारे को उद्धार इन वैष्णवन द्वारा किये। और रसशास्त्र में रसादिक बिहार के आसन चौरासी वर्णन किये हैं। सो न्यारे-न्यारे अंग के भाव रूप ये चौरासी वैष्णव रस लीला संबंधी निर्गुण हैं। श्री ठाकुरजी के अंग रूप तातें शास्त्र रीति सों आसन चौरासी या भाव सों अलौकिक हैं। और आचार्यजी के अंग द्वादश हैं सो स्वरूपात्मक हैं। एक-एक अंग में सात-सात धर्म हैं। ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, ये छः धर्म एक धर्मी सातवों। या प्रकार बारह सत्ते चौरासी वैष्णव श्री आचार्यजी के अंग रूप अलौकिक सर्वसामर्थ रूप हैं। और साक्षातपूर्ण पुरुषोत्तम की लीला चौरासी कोस ब्रज में है सो एक-एक जीव को अंगीकार करि दैवी जीव जो चौरासी लक्ष योनि में गिरे हैं तिनको उद्धार करि चौरासी कोस ब्रज में जो जीव (जा) लीला संबंधी हैं तिनको तहाँ प्राप्त करिबे के अर्थ चौरासी वैष्णव अलौकिक प्रगट किये। या भाव ते चौरासी वैष्णव श्री आचार्यजी के हैं।"

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि चौरासी की संख्या का निर्धारण साभिप्राय हुआ है। अन्यथा आचार्यजी के तो असंख्य अंतरंग सेवक थे। श्री भट्ट कवि जिनका परिचय आगे कवियों के जीवन प्रकरण में दिया गया है और जो निंबार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट से भिन्न थे उनका भी उल्लेख चौरासी वार्त्ता में नहीं है। ऐसे अन्य बहुत से सेवकों के नाम, जो साम्प्रदायिक साहित्य में अन्यत्र प्राप्त होते हैं, वार्त्ता में नहीं है। इस चौरासी संख्यात्मक मूलवार्त्ता में केवल कहे हुए व आचार्य सेवकों के प्रसिद्ध प्रसंगों में से कुछ का ही संग्रह मिलता है। इसमें जीवन का सम्पूर्ण चरित्र नहीं है। जिसका प्रमाण पद्मनाभदास आदि की वार्त्ताएं हैं। पद्मनाभदास एक बहुत बड़े और सुप्रसिद्ध कवि थे उनके काव्य का आज भी सम्प्रदाय के मंदिरों में प्रचार है। ऐसे कवि के महत्वपूर्ण काव्य का भी उनकी वार्त्ता में उल्लेख तक नहीं मिलता है। यही शैली अन्य कवियों की वार्त्ताओं में भी अपनायी गई है। अतः यह निश्चित है कि ये वार्त्ताएँ प्रसंगों का संग्रहमात्र हैं। इसीलिये हस्तलिखित प्रतियों में प्रत्येक वार्त्ता के प्रसंगों की संख्याएँ भी लिखी गई हैं, जो प्रकाशित वार्त्ता संस्करणों में भी दी गई हैं।

इस वार्त्ता-साहित्य का तृतीय संस्करणात्मक रूप 'भावना वाला' मिलता है। वह वार्त्ता का व्याख्यात्मक रूप है। इसमें पूर्व मूलवार्त्ताओं में उत्पन्न होने वाले सैद्धान्तिक प्रश्नों का साम्प्रदायिक रीति से जहाँ समाधान किया गया है वहाँ उसके ऐतिह्य की पूर्ति का भी प्रयत्न किया गया है। तदुपरांत प्रत्येक वैष्णव की मूल आधिदैविक लीला के स्वरूप का भी वर्णन हुआ है। यह वार्त्ता की टीका रूप भावना वाला संस्करण 'तीन जन्म वाली वार्त्ता' नाम से सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। तीन जन्म का तात्पर्य यह है कि उसमें आधिदैविक, आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक, इस प्रकार के तीन जन्म माने गये हैं और तीनों चरित्रों का उसमें उल्लेख है। उसमें सबसे पहले जीव के आधिदैविक मूल लीला स्वरूप का वर्णन है। साम्प्रदायिक सिद्धांत के अनुसार षडैश्वर्य सम्पन्न 'आनन्दमात्र करपादमुखोदरादि' शुद्ध एवं साकार परब्रह्म में से जो जीव अग्नि के विस्फुलिंगों की तरह भगवदिच्छा से व्युच्चरित होते हैं वे सब साकार एवं आनन्द रूप होते हैं। उन जीवों का भगवान् के साथ गोलोक धाम में नित्य विहार माना गया है। उपनिषद्, पुराण, संहिता, तंत्र आदि शास्त्रीय ग्रंथों से इस विहार की पुष्टि होती है। यह उनका आधिदैविक जन्म कहलाता है। भगवद्रूपसेवा वा भगवन्मार्ग के प्रचारार्थ भगवदिच्छा से जब उन जीवों का यहाँ भूमि पर अवतरण होता है तब उनके ऐश्वर्यात्मक मूल आनन्द स्वरूप तिरोभूत हो जाते हैं।[1] इस भूतल के जन्म को उनका आधिभौतिक जन्म माना गया है। इस संस्करण में आधिदैविक लीला स्वरूप के वर्णन के पश्चात् इस भौतिक स्वरूप का ऐतिह्य चरित्र कहा गया है। इसमें वह जीव कहां किसके यहाँ और किस जाति में जन्म और कैसे तथा कब आचार्यजी की शरण में आया, उसका वर्णन हुआ है। यह उसका आधिभौतिक जन्म हुआ। इसके बाद जब वह आचार्यजी की शरण में आता है तब आचार्यजी उसको ब्रह्म संबंध कराते हैं और तभी ब्रह्म के साथ उसका साक्षात् सम्बन्ध होता है। यह ब्रह्मसम्बन्ध आत्म-निवेदन प्रणाली से होता है। अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण उसके धर्म, दार, आगार, पुत्र, आप्त वित्त, इहलोक, परलोक, आत्मा सहित अपने आपको प्रभु को निवेदन कर, कृष्ण मैं तुम्हारा हूँ, इस प्रकार कहकर दास बन जाना

१—देखिए–पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद—श्लोक १२–१९ —लेखक

ही आत्मनिवेदन कहलाता है। इससे वह विष्णु का हो जाता है और वैष्णव संज्ञा को प्राप्त होता है। इस मंतव्य की पुष्टि श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध अध्याय ४ के ५६ वें श्लोक में भगवान विष्णु के दुर्वासा के प्रति कहे हुए वचन से होती है :—

"ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं यातः कथं तांस्त्युक्तुमुत्सहे ।।"

भगवान कहते हैं जो जीव दारागार पुत्राप्त प्राण, वित्त आदि सहित मेरी शरण में आता है उसे छोड़ना मैं कैसे सहन करूँ ? कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार आत्मनिवेदन करने से भगवान् उसको अपना स्वकीय भगवदीय अथवा तदीय मान लेते हैं। उससे माया का सम्बन्ध दूर होकर भगवान् का साक्षात् सम्बन्ध हो जाता है इससे वह भगवान् का सेवक बन जाता है। फिर साम्प्रदायिक मंतव्य के अनुसार भगवत्स्वरूप सेवा एवं स्मरण आदि से वह जीव भगवदीयत्व की सिद्धि प्राप्तकर भगवान् का साक्षात्कार कर लेता है। इसलिए वार्त्ता के आरम्भ में "अब श्री आचार्यजी महाप्रभु के सेवक····की वार्त्ता कहत हैं" ऐसे लिखा है। फिर भगवत् सेवा स्मरण आदि से भगवदीय की सिद्धि का उल्लेखकर वार्त्ताकार ने प्रत्येक वार्त्ता के अन्त में "सो— ऐसे कृपापात्र भगवदीय भए तातें इनकी वार्त्ता कहा ताईं कहिये" लिखा है। ब्रह्मसम्बन्ध होने पर इस भौतिक देह में उसी प्रकार 'आध्यात्मिक वैष्णवत्व' की शक्ति प्रगट होती है जिस प्रकार एक ब्राह्मण के बालक में गायत्री मन्त्र के उपदेश से ब्रह्मण्य देवता का प्रवेश होता है और उसमें अनेक चामत्कारिक कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार वैष्णवत्व की सिद्धि प्राप्त होने से उसमें विष्णु की स्थिति होती है और उसका नया जन्म माना जाता है। उस नये जन्म के अनुसार उसका खान-पान, रहन-सहन आदि भी विशेष प्रकार के नियमों से बंधा रहता है इस प्रकार के नये जन्म की सिद्धि की चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ताओं में खम्भात के एक वैश्य तथा मोची की वार्त्ताओं में है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मसम्बन्ध से आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। अतः इसे वार्त्ताकार आध्यात्मिक स्वरूप मानते हैं। इस प्रकार इसे 'तीन जन्मों की भावना' ऐसा नाम दिया गया है। इसका सबसे अधिक महत्व यह है कि इसमें वार्त्ता के व्यक्तियों के चरित्रों को जहाँ तक हो सका है पूर्ण करने का प्रयत्न किया गया है जो कि मूलवार्त्ता में नहीं है। इस संस्करण का हेतु आदि से अन्त तक वार्त्ता को पूर्ण रूप में उपस्थित करना है। सैद्धान्तिक प्रश्नों का समाधान भी इसमें किया गया है। वार्त्ता के चरित्र-पूर्णता के प्रयत्न पर आगे मूलवार्त्ता और उसकी भावना वाले प्रकरण में प्रकाश डाला जायगा। इसकी अनेक प्रतियाँ सर्वत्र प्राप्त होती हैं। किन्तु उनमें विक्रम संवत् १७५२ और विक्रम संवत् १७७८ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। विक्रम संवत् १७५२ की प्रति सिद्धपुर पाटन की है; जिसको प्रो० दीनदयालु गुप्त ने भी प्रामाणिक माना है। वि० सं० १७७८ की प्रति गोकुल के मुखिया गौरीलालजी के सुपुत्र श्री राधाकृष्णजी के पास है। साम्प्रदायिक बन्धनों के कारण इन दोनों प्रतियों का फोटो अभी नहीं लिया जा सका है।

जिस प्रकार ८४ वार्त्ता के तीन रूप कहे गए इसी प्रकार २५२ के भी हैं। इस प्रकार उल्लिखित समस्त वार्त्ता-साहित्य के तीन रूप मिलते हैं।

निजवार्त्ता-घरूवार्त्ता, और आचार्यजी के प्राकट्य की वार्त्ता में कहीं-कहीं भाव-टीका दिखाई देती है।

इस संस्करण के कर्त्ता गोस्वामी श्री हरिरायजी थे . इस पर 'वार्त्ता के रचयिता' के प्रकरण में विचार किया जायगा। यहाँ तो केवल यह बतलाना आवश्यक है कि गोस्वामी श्री हरिरायजी का समय विक्रमी संवत् १७७२ तक है। अतः संवत् १७५२ की प्रति गोस्वामी हरिरायजी के समय की लिखी होने से वार्त्ता-साहित्य में उसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। विक्रमी संवत् १७७८ की प्रति में एक अन्य विशेषता है और वह है प्रत्येक वैष्णव के उसमें चित्र दिये गये हैं। ये चित्र जयपुरी कलम के हैं। इन प्रतियों का विवरण अन्यत्र दिया गया है। विक्रमी संवत् १७५२ की प्रति का प्रकाशन अग्रवाल प्रेस मथुरा से वि० सं० २००५ में वार्त्ता-साहित्य के विशेषज्ञ श्री द्वारकादासजी परीख द्वारा हो चुका है। इस प्रति को प्रो० श्री दीनदयालुजी गुप्त एम० ए०, डी० लिट्० ने प्रामाणिक माना है और इस अनुसंधान में भी इसकी प्रामाणिकता को संदिग्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं मिला है।

जिस प्रकार उधर गोवर्द्धनदास और कृष्ण भट्ट जैसे उद्‌भट विद्वानों में आचार्य द्वय द्वारा प्रचलित प्रसंगों का आदान-प्रदान होता था उसी प्रकार इधर श्री गोकुलनाथजी भी अपने शिष्यवर्ग में आचार्य द्वय और उनके सेवकों के प्रसंगों को नित्य प्रति शयनोत्तर सेवा के अनोसर में कहते थे। इन वचनामृतों को श्री गोकुलनाथजी के सेवक शीघ्र लिख लेते थे और पुन: घर जाकर समय, स्थान, व्यक्ति आदि उल्लेखों के साथ उसे ग्रन्थ का रूप देते थे। हमारे इस कथन की पुष्टि अंतः-बाह्य-साक्ष्य रूप प्रमाणों से होती है। (वचनामृत से)

"श्रीजी ये पोते वैष्णव नी वात कही छे ते वात ।।"

एक समें कथा ने आरम्भे श्रीजी ने पंचोली ए सीरंधना दामोदरदास हरसानी नी बात पूछी ते वार श्रीजी तेणे रसे आव्या ते कही त्यारे कोइ वैष्णवे पूछयु जे श्री ठाकुरजी शु कथा कही रह्या छे ? ते वार उद्धव त्रवाडीये तेहने कह्यु जे आज तो कथा न कही रे भाई ! त्यारे श्रीजी ये कह्यु जे हम तो–कथा को फल कहत हैं।'

ऐसे वचनामृतों के अन्य दिए हुए श्लोकों से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। जैसा कि—

'एक दिवसे कह्यु जे, सीरोही को रामानो लाडबाई को भर्तार तासु ब्राह्मण ने कह्यो जे ए तोकू अरिष्ट हैं जे तेरे रहत ए सेवा करत हैं। सो लाडबाई ने सुणी। ओ बुरी दुष्ट जात हतो सो लाडबाई तिनसों तरबार ले एक मते होये रही जब आवत देख्यो तब कह्यो जे "आधा संभाल कै आइयो मेंहूँ रजपूताणी छां" पाछें झक मारके ठटक रह्यो उहाँ न गयो उनें अपनी टेक न छाड़ी।" ये लाडबाई की वार्त्ता २५२ में संख्या १९९ की है। इस प्रकार श्री गोकुलनाथजी चौरासी एवं दो सौ बावन वैष्णवों के वार्त्ता-प्रसंगों को अपने सेवकों के आगे कहते थे इस बात की इन अंतःसाक्ष्यों से अच्छी रीति से पुष्टि होती है। अब 'प्राकट्य मांगल्य' ग्रंथ तथा चौरासी वार्त्ता की भाव वाली टीका से इसकी पुष्टि बहिस्साक्ष्य रूप से भी इसी प्रकार होती है—

१—प्राकट्य मांगल्य—यह एक गुजराती काव्यग्रन्थ है। उसकी रचना श्री गोकुलनाथजी के सेवक गोपालदासजी व्यावरे वाले ने वि० सं० १७०० के आस-पास की है। उसमें आचार्य चरित्र दिया गया है। उसका तृतीय "मांगल्य" अहमदाबाद से प्रकाशित 'अनुग्रह' पत्र के वर्ष चार अंक एक में छपा है। उसमें आचार्य सेवकों के नामों को देते हुए उनकी प्रामाणिकता में कहा है कि—

"मैं लख्यू छे श्री महाप्रभु ना वचन ने अनुसार"

यहाँ महाप्रभु से श्री गोकुलनाथजी का उल्लेख है। श्री गोकुलनाथजी के सेवक आप को श्रीजी, श्रीनाथजी, ठाकुरजी एवं महाप्रभु कहते थे। इससे यह निश्चित होता है कि 'प्राकट्य सिद्धान्त' में दिया हुआ 'आचार्य चरित्र' श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों के आधार पर लिखा गया था। इसमें प्रायः पिचहत्तर वैष्णवों के नाम आते हैं। उनका उल्लेख 'वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता' में विस्तारपूर्वक किया जायगा।

२—चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के तृतीय संस्करण रूप—भाव वाली टीका जिसकी रचना श्री गोकुलनाथजी के समकालीन, निकटवर्ती एवं सहयोगी, आपश्री के भतीजे गोस्वामी श्री हरिरायजी (१६४८–१७७२) ने की है—के प्रारम्भिक उल्लेख से इसकी पुष्टि होती है।

इस प्रकार श्री गोकुलनाथजी द्वारा चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता के प्रसंग अपने सेवकों में नित्य कहे जाते थे इस बात की पुष्टि होती है। जिस प्रकार वैष्णव–प्रसंगों को श्री गोकुलनाथजी अपनी कथा के अनन्तर कहते थे उसी प्रकार आचार्य एवं तदात्मज विट्ठलनाथजी के चरित्र–प्रसंगों को भी आप नित्य-प्रति कहते थे। इन प्रसंगों का संकलन निजवार्त्ता-घरूवार्त्ता, बैठकचरित्र एवं श्री आचार्यजी की प्रागट्य वार्त्ता आदि ग्रन्थों में हुआ है।

संक्षेप में यह उनके वचनामृत का ही विस्तार है। अतः इसकी प्रामाणिकता निस्संदिग्ध हो जाती है।

बहिस्साक्ष्य में गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी के समकालीन एवं उनके अनुज श्री रघुनाथजी के पुत्र श्री देवकीनन्दनजी (वि० सं० १६३४) के रचे हुए 'प्रभुचरित्र चिन्तामणि' ग्रन्थ से आचार्यजी एवं श्री गुसांईजी के चरित्र-कथन-निजवार्त्ता-घरूवार्त्ता आदि की भी इस प्रकार पुष्टि होती है—

तदपि भगवत्सेवापरैः श्री गोकुलनाथैः शयनभोगसेवोत्तारलब्धगाथावसरैः सुबोधिन्यादिना श्रीभागवतकथाकथनान्तरं श्रीमदाचार्यतदात्मजचरितकथा नित्यनियमेनपरिगृहीता वक्तुम्।"

इस प्रकार वार्त्ता-साहित्य का प्रथम रूप प्रसंगात्मक रहा। उसके निर्माणकर्त्ता श्री गोकुलनाथजी थे। विक्रमी संवत् १७४६ की पूर्वोक्त प्रसंगात्मक वार्त्ता प्रति इस संस्करण की ही प्रतिलिपि रूप है।

वार्त्ता-साहित्य का विषय

वार्त्ता-साहित्य के विषय में दो मत हो ही नहीं सकते। प्रत्येक वार्त्ता के अन्त में लिखा है 'दामोदरदास तथा उनकी स्त्री ये दोउ श्री आचार्यजी के सेवक ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते तासों इनकी वार्त्ता कहां ताईं कहिये।" इससे ही वार्त्ताकार का उद्देश्य प्रकट हो जाता है। परम भगवदीय जनों का गुणगान उनकी श्रेष्ठता के द्वारा इतर जनों को अपना जीवन सुधारने और उन्हें आदर्श रूप से सामने रखने की प्रेरणा देना ही इसका मुख्य विषय प्रतीत होता है। भक्तों की महिमा से अधिक भगवान को कुछ और प्रिय नहीं है।

इसे कहने में भी एक विशेष रस और आनन्द का अनुभव होता है। 'आदर्श और नीरस निराकार सिद्धान्त को अपने व्यवहार द्वारा साकार, सरस और सरल बनाने का श्रेय केवल आचरण को है।' दूसरे शब्दों में आचरण की श्रेष्ठता का महत्व प्रकट करना ही वार्त्ताओं का मुख्य विषय है। तुलसीदासजी ने भी लिखा है कि 'पर उपदेश कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे ॥' —इस युग के सर्वश्रेष्ठ मानव युगपुरुष गांधीजी ने भी 'कल्याण' के गीतांक के लिए संदेश देते हुए लिखा है "कि यदि गीता की शिक्षा के कई टन तराजू के एक पलड़े पर रक्खे जायें और दूसरी ओर उनमें से किसी एक सिद्धान्त के अभ्यास को रख दिया जावे तो पहले पलड़े की अपेक्षा दूसरा भारी ठहरेगा।" वार्त्ताकार का चौरासी और दो सौ बावन के लिखने में यही उद्देश्य प्रतीत होता है और उन्होंने विषयों का संकलन भी इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर किया है। वार्त्ता के विषय में जिस प्रकार विविधता है, उसी प्रकार उसके चरित्रों में भी है। उसमें जाति-पांति, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन किसी का भेद नहीं किया गया है और गणना करने पर साधारण श्रेणी के लोगों के चरित्र ही अधिक मिलेंगे। इस दृष्टि से वार्त्ता-साहित्य जनसाधारण की वस्तु है और उसका सम्बन्ध लोक साहित्य से है। एक चरित्र को लेकर लेखक ने उसके द्वारा यह प्रकट किया है कि साधना के मार्ग में क्या-क्या कठिनाइयां आती हैं और उनका सामना करने के लिए साधक को किस दृढ़ता से काम लेना पड़ता है। उसका धर्म क्या है और लोकव्यवहार में उसे उसके पालन करने में पग-पग पर किस प्रकार सावधान रहना पड़ता है। वार्त्ता-साहित्य में जहाँ चौरासी और दो सौ बावन सेवकों का विवरण है, वहाँ इनके सम्बन्ध से और अनेक व्यक्तियों का भी उल्लेख आपसे आप हो गया है। इन व्यक्तियों में देशाधिपति से लेकर चमार तक सभी का समावेश हुआ है। तत्कालीन परिस्थिति भी वार्त्ता के विषय की सीमा के भीतर आबद्ध है। वार्त्ता में जहाँ अनेक व्यक्तियों के चरित्र हैं वहाँ वार्त्ता मणिमाला के सुमेरु हैं पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक आचार्य महाप्रभुजी, और उसके पोषक और आत्मा गोस्वामी विट्ठलनाथजी। चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता श्री महाप्रभुजी के शिष्यों के कृत्यों और कीर्ति को लेकर चली है और २५२ श्री गोस्वामी विट्ठलनाथजी के २५२ सेवकों को एक सूत्र में पिरो देती है। निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता में महाप्रभुजी के जीवन की आध्यात्म प्रेरक झांकियां हैं। चाहे चौरासी और चाहे दो सौ बावन या निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता, षड्ऋतुवार्ता या भावसिंधु, सब में उन्होंने सिद्धान्त के महत्व को चरित्र द्वारा प्रकट किया है। भक्त के चरित्र के साथ श्री महाप्रभुजी का चरित्र या श्री गुसांईजी का चरित्र अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। इसलिये समस्त वार्त्ता-साहित्य में या उससे सम्बन्ध रखने वाले समकालीन और सामयिक साहित्य में इन दो महाप्रभुओं—महापुरुषों के चरित्र चित्रण को प्रधानता दी गई है। पिछले तीन सौ वर्षों में काल की गति इस द्रुतता से बदलती गई है कि आगामी कल के साथ पिछले दिन का लगाव बनाए रखना कठिन हो गया है फिर भी इतिहास की परम्परा अक्षुण्ण है और इन दो व्यक्तियों ने अपने समय में हिन्दू जाति और हिन्दुस्तान का जो उपकार किया है समस्त वार्त्ता-साहित्य उसकी एक लोक रुचि के अनुकूल अमर कहानी है। श्री महाप्रभुजी और श्री विट्ठलेशजी ने अपने धर्म की जिस प्रकार रक्षा की और उसे विशेष से आरम्भ करके लोकव्यापक रूप दिया, वार्त्ता-साहित्य उसका इतिहास न होते हुए भी साहित्यिक और प्रामाणिक विवरण है। समाज, शिक्षा और सम्मान में अपने को हीन समझने वाले को निराशा में आशा की जो झलक

इन दो महात्माओं ने दिखाई उससे लोक से अलग रहने वाले प्रज्ञाचक्षु "सूर" "सूरदास" हो गए और उनका घिघियाना 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो' में बदल गया। परमानन्ददास भी 'सागर' हो गये। इस प्रकार निराशा में आशा का संचार, विषम में सम की खोज ही वार्त्ता का विषय है। कबीर ने आत्मज्ञान के प्रकाश में जो 'बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो दिखाय" की ध्वनि की थी और जो निराकार की नीरसता में उस समय अपना उतना प्रभाव न दिखा सकी कि जितना उसमें बल था। वल्लभ-विट्ठल की बुद्धि श्रीगिरिराज और श्रीनाथजी का संबल पाकर एक बार लोगों के विश्वास की वस्तु बन गई।

वार्त्ता-साहित्य खुलकर यह दिखाता है कि कैसे इन प्रतिभासम्पन्न नर-देवों ने बाल कृष्ण का हंसता-खेलता रूप हमारे सामने रखकर देश के नैराश्य को दूर किया। इस प्रकार आशा का संचार और माधुर्य का मिठास दोनों ही वार्त्ता-साहित्य के अनन्य विषय हैं। अष्ट-सखाओं की वार्त्ताओं में इस विषय का समावेश विशेष रीति से किया गया है। श्री गोविन्द स्वामी की वार्त्ता तो इसके लिए उदाहरण रूप से प्रस्तुत की जा सकती है। भगवान् के साथ गिल्ली डण्डा खेलना और 'सानुभाव' अनुभव करना सहज नहीं है। इसी प्रकार यदि चौरासी और दो सौ बावन दोनों की ३३६ वार्त्ताओं में से प्रत्येक को ध्यान से देखा जाय तो चरित्र सम्बन्धी विषयों की ही एक लम्बी तालिका बन जायगी। उदाहरण के लिए दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता का विषय है कि वे महाप्रभुजी को ठाकुरजी से बड़ा मानते थे। अर्थात् गुरु और गोविन्द में गुरु को बड़ा समझते थे। इस प्रकार गुरु माहात्म्य इसका विषय है। पद्मनाभदास के चरित्र का विषय है 'आचार्य की आज्ञा में विश्वास और वैष्णव के प्रति आस्था।' तुलसा की वार्त्ता का विषय है 'वैष्णवों की अभेदता।' पार्वती की वार्त्ता 'सेवा के समान अधिकार' के विषय को लेकर चलती है। रघुनाथदास की वार्त्ता गुसांईजी के पांडित्य के विषय में है। अडेल की क्षत्राणी की वार्त्ता में 'महाप्रभुजी की उदारता' के विषय में चर्चा की गई है। पुरुषोत्तमदास क्षत्री का वार्त्ता-विषय 'शैवों और वैष्णवों का भेद' बताना है। कृष्णदास मेघन की वार्त्ता में 'गुरु आज्ञा को गरीयसी' बताया गया है। 'दामोदरदास संभल बारे' की वार्त्ता में 'सेवा धर्म कठिन है' इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

रुक्मिनी की वार्त्ता में 'सेवक का महत्त्व' दिखाया गया है। गोपालदास की वार्त्ता में 'कीर्तन और सद्ग्रन्थों के पाठ' का महत्व दिखाया गया है। रामदास सारस्वत की वार्त्ता का विषय 'भक्त पर भगवान की असीम कृपा' है। गदाधरदास की वार्त्ता में भगवद्सेवा से 'अपवित्र का पवित्र होना' दिखाया गया है। वेणी माधौदास की वार्त्ता में 'प्रयत्न का महत्व' दिखाया गया है। हरिवंश पाठक की वार्त्ता का विषय यह है कि 'भक्ति प्रचार करने की नहीं, गुप्त रखने की वस्तु है।' गोविन्ददास भल्ला की वार्त्ता का विषय है 'भक्ति विरोधी स्त्री का त्याग'। गज्जन धावन की वार्ता का विषय है कि 'भगवान् और भक्त एक है'। सच्चे भक्त को भगवान से एक क्षण अलग रहना अच्छा नहीं लगता। नारायणदास ब्रह्मचारी की वार्त्ता में महाप्रभुजी का गोकुल से महावन प्रतिदिन जाना लिखा है और भगवद्दर्शन में द्रव्य बाधक होता है, ऐसा लिखा है। महावन की क्षत्राणी की वार्त्ता का विषय है 'चार ठाकुरजी का चार स्थानों पर पधराना'। जीवदास क्षत्री की वार्त्ता में भी एक अन्य ठाकुरजी 'लाडिलेशजी' की चर्चा है। देवा कपूर की वार्त्ता में श्री 'ललित त्रिभंगी

ठाकुरजी' का विवरण है। दिनकर सेठ की वार्त्ता में 'कथा के प्रति अनुराग और महाप्रभुजी का सेवकों का ध्यान' इन विषयों का उल्लेख है। मुकुन्ददास कायस्थ की वार्त्ता में 'एक कवि की चर्चा है और सुबोधिनीजी का महत्व' बताया गया है। प्रभुदास जलोटा की वार्त्ता का विषय 'श्री महाप्रभुजी की और रूप सनातन की भेंट तथा श्रीकृष्ण चैतन्य का समकालीन होना' है और प्रसाद लेने के लिए बाह्य शौच की अनावश्यकता है। प्रभुदास भाट की वार्त्ता का विषय है कि 'भक्त के लिए तीर्थ का महत्व विशेष नहीं है' पुरुषोत्तमदास आगरे वाले की वार्त्ता का विषय है 'श्री महाप्रभुजी की आगरा यात्रा और 'राजघाट' का उल्लेख' मात्र है। त्रिपुरदास कायस्थ में 'भगवान भक्त के भाव का आदर करते हैं।' इस विषय पर प्रकाश डाला गया है और 'भक्त का कष्ट भगवान सहन नहीं कर पाते हैं' इसकी चर्चा है।

पूरनमल क्षत्री की वार्त्ता का विषय है 'भक्त की आस्था और भगवान का उसकी मर्यादा रखना।' यादवेन्द्रदास कुम्हार की वार्त्ता 'महाप्रभु के इस सेवक के पराक्रम, को प्रदर्शित करने के भाव से लिखी गई है। गुसांईदास की वार्त्ता का विषय है 'विश्वास भक्ति की रीढ़ है।' माधौ भट्ट काश्मीरी की वार्त्ता का सम्बन्ध तीन विषयों से है—

'(१) भगवदीय को जो कुछ करना हो सोच विचार कर करे।
(२) गुरू चरणों का ध्यान महत्वपूर्ण है।
(३) सेवा में सावधानी रखनी चाहिये।'

वाँसवाड़े के गोपालदास की वार्त्ता महाप्रभुजी के "अलौकिक महत्व" को प्रकट करती हैं। पद्मारावल सांचोरा ब्राह्मण की वार्त्ता का विषय 'महाप्रभुजी की कृपा से विद्या और बुद्धि की प्राप्ति और ठाकुरजी का भक्त के प्रसाद को सहर्ष स्वीकार करना है'। पुरुषोत्तम जोशी की वार्त्ता का विषय है 'महाप्रभुजी की प्रभावपूर्ण कथा का प्रभाव'। जगन्नाथ जोशी की वार्त्ता का विषय 'अलौकिक और भावपूर्ण है'। नरहरि जोशी की वार्त्ता 'अपने लिए भगवान को कष्ट न देने, का उपदेश देती है। राणा व्यास की वार्त्ता में 'वैष्णव का सच्चा धर्म' दिखाया गया है और ठाकुरजी की सेवा ही सच्चा धर्म है ऐसा प्रमाणित किया गया है। राजनगर के रामदास सारस्वत की वार्त्ता का विषय है कि 'स्व इच्छा से गुरु आज्ञा और प्रभु की आज्ञा बड़ी है।' गोविन्द दुबे की वार्त्ता का विषय 'महाप्रभुजी का प्रभाव' चित्रण है। राजा दुबे, माधौ दुबे की वार्त्ता का विषय है कि 'महाप्रभु के सेवक में भी बड़ी शक्ति रहती है' दूसरे 'अष्टाक्षर मंत्र का प्रताप' बताया गया है, तीसरे 'भक्त का दैन्य' दिखाया गया है। उत्तमश्लोकदास की वार्त्ता में 'सेवा धर्म की महत्ता' दिखाई गई है। ईश्वर दुबे की वार्त्ता का विषय भी यही है। वासुदेवदास छकड़ा की वार्त्ता में एक सेवक की 'द्रुतगामिता की सराहना' की गई है। बाबा वेणुदास की वार्त्ता में 'भक्त की तल्लीनता' की सराहना की गई है। जगदानन्द सारस्वत की वार्त्ता में 'महाप्रभुजी का पांडित्य' बताया गया है। आनन्ददास विशम्भरदास की वार्त्ता में 'वार्त्ता शब्द का रहस्य' बताया गया है। 'एक ब्राह्मणी की वार्त्ता' का विषय है कि ठाकुरजी प्रेम के वश में हैं। एक क्षत्राणी की वार्त्ता में 'सेवा किस प्रकार करनी चाहिए'—इस विषय को लिया गया है। सास गोरजा की वार्त्ता का विषय है कि 'महाप्रभुजी सरस्वती पार नहीं करते थे'। कृष्णादासी की वार्त्ता में 'श्री गोकुलनाथ के जन्म' की चर्चा है और कृष्णादासी का गुसाँईजी कितना ध्यान रखते थे इसके उल्लेख हैं। मीराबाई के पुरोहित रामदास की वार्त्ता में 'महाप्रभु पर आस्था' प्रकट होती है। रामदास

चौहान की वार्त्ता में 'श्रीनाथजी की स्थापना' का विषय है। रामानन्द सारस्वत की वार्त्ता का विषय है कि 'वैष्णव के प्रति किया गया छोटे से छोटा अपराध महाप्रभुजी को सहन नहीं है' और 'वैष्णवों को सोच समझकर बात करनी चाहिए।' विष्णुदास छीपा की वार्त्ता में 'एक सेवक की निष्ठा' की कथा है। जीवनदास क्षत्री की वार्त्ता 'भक्त के विश्वास' पर बल देती है। भगवानदास सारस्वत की वार्त्ता में 'सेवक का सम्मान' है। भगवानदास भीतरिया और अच्युतदास की वार्त्ता 'वत्सलता और सेवक के गुणगान का' विषय लेकर चली है। अच्युतदास गौड़ की वार्त्ता में यह दिखाया गया है कि 'भक्ति मार्ग में विरह भक्ति श्रेष्ठ है'। अच्युतदास सारस्वत की वार्त्ता में महाप्रभुजी के 'सन्यास' का उल्लेख है। 'नारायणदास अम्बाले वाले' की वार्त्ता 'भक्त की आस्था' की वार्त्ता है। नारायणदास भट्ट की वार्त्ता-गौडियों, बंगालियों के सेवा में आने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। नारायणदास चौहान की वार्त्ता बादशाह की उदारता दिखाती है। चौरासी की शेष वार्त्ताएँ वैष्णवों के संतोष, त्याग, सच्चरित्र और उसके संग के महत्त्व इत्यादि को सिद्ध करती हैं।

इस प्रकार वार्त्ता-साहित्य में चौरासी और दो सौ बावन वार्त्ताओं के अध्ययन के आधार पर तथा साम्प्रदायिक चरित्र के आधार पर वार्त्ता के निम्नलिखित विषय ठहरते हैं।

(१) ईश्वर भक्ति
(२) गुरु भक्ति
(३) वैष्णव भक्ति
(४) दास्य भावना
(५) शरण भावना
(६) सख्य भावन
(७) आश्रय, अनाश्रय
(८) लीला भावना
(९) असमर्पित त्याग
(१०) निवेदन पुकार
(११) ब्रजभूमि
(१२) श्री यमुनाजी का माहात्म्य
(१३) गिरिराज माहात्म्य
(१४) सत्संग
(१५) दुस्संग
(१६) सेवा प्रणाली
(१७) सेवा भावना
(१८) लोक धर्म
(१९) वेद धर्म
(२०) पुष्टिमार्ग के आधार ग्रन्थ
(२१) आचार महत्व
(२२) पुष्टिमार्गीय त्याग-भावना
(२३) वैराग्य
(२४) पुष्टि-भक्ति स्वरूप
(२५) पुष्टिमार्गीय व्यवहार
(२६) विचार शैली
(२७) यात्रा
(२८) गृहस्थ धर्म
(२९) भाव भावना
(३०) स्वरूप भावना

यह सब पुष्टि-भक्ति के अंग हैं।

वार्त्ता के मूल में धार्मिक प्रवृत्ति

वार्त्ता इतिहास के ग्रन्थ नहीं हैं। वे मूलतः धार्मिक ग्रन्थ हैं। चित्त-वृत्ति को सुधारने के लिए जिन व्यक्तियों के आचरण रूप में, आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता था और उनके जीवन के

जिन प्रसंगों से साधकों को प्रेरणा मिल सकती थी उसका कथन ही वार्त्ताओं का मूल विषय है अतः इस साहित्य की मूल प्रेरणा धार्मिक ही है। पुष्टिभक्ति सिद्धान्तों का प्रचलन देश में हो इस भाव से प्रेरित होकर शास्त्रीय विषयों का सरलतम वैज्ञानिक रूप आचार्य चरणों ने प्रचलित किया था। वार्त्ताओं की संख्यात्मक और भावनात्मक प्रतियाँ भी इसका प्रमाण हैं कि धर्मभीरु पुरुषों और स्त्रियों के ही चरित्रों को उनके अनेक जन्म के वृत्तान्तों सहित इसमें संकलित किया गया है। पुष्टि दर्शन के सिद्धान्त सब दार्शनिक सिद्धान्तों की तरह साधारण विद्या बुद्धि के लोगों के लिये कदाचित् सरल न प्रतीत होते, इस कारण उन्हें असद् से सद् की ओर लाने की इच्छा से ही वार्त्ताओं का सर्जन किया गया है। इसके अतिरिक्त चौरासी तथा दोसौ बावन दोनों की सभी वार्त्ताओं का सम्बन्ध किसी न किसी पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त की व्याख्या या विश्लेषण से है। इसे वार्त्ता-साहित्य के विषय के अन्तर्गत लिखा जा चुका है। अतः यह सिद्ध होता है कि इन वार्त्ताओं के बार-बार कहने, सुनने और लिखने के पीछे एक धार्मिक प्रवृत्ति काम कर रही थी, और आज भी काम करती है।

वार्त्ता-साहित्य में जो धार्मिक प्रवृत्ति कार्य कर रही है वह है दैवी जीव को उनके मूल स्वरूप का ज्ञान कराते हुए उनको बद्धावस्था से मुक्त कराने की भावना। गीता के सोलहवें अध्याय में श्रीकृष्णजी ने दैवी और आसुरी सृष्टि के लक्षण बताए हैं, उन्हीं को पुष्टिमार्ग में प्रवाही, मर्यादा और पुष्टि माना है पुष्टिमार्ग में आसुरी को प्रवाही माना है और दैवी के दो भेद किए गए हैं : एक—मर्यादा और दूसरा पुष्टि।

पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रन्थ के आधार पर पुष्टि सृष्टि को वार्त्ता में भगवान् के श्री अंग से उत्पन्न माना गया है। भगवान् स्वयं आनन्द-विग्रह माने गए हैं, अतः उनसे विस्फुलिंगात्मक रूप से उत्पन्न हुई पुष्टि सृष्टि भी आनन्दरूप मानी गई है। वह स्वरूप से, गुण से, क्रिया से, सभी प्रकार से भगवत् तुल्य है, ऐसा कहा गया है। फिर भी लीला सिद्धचर्थ उसमें विविधता, विचित्रता भगवदिच्छा से प्राप्त हुई है। अतः निर्गुण, राजस, तामस, सात्विक, इस भेद के अनुसार अनेकानेक प्रकार के जीव माने गये हैं। यह राजस, तामस, सात्विक गुण माया कृत नहीं माने गये हैं। पुष्टिमार्ग में ये निर्गुण के ही तीन भेद हैं। वार्त्ताओं में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि जब भगवान् की इच्छा इस भूतल पर क्रीड़ा करने की हुई तब उक्त चतुर्विध आनन्दरूप दैवी जीवों को इस भूतल पर भेजा गया और भगवान् स्वयं भी आविर्भूत हुए। उन भावात्मक में आनन्द स्वरूप दैवी जीवों का आविर्भाव श्रुति रूपा एवं ऋषि रूपा, गोपिकाओं में हुआ है। इसी प्रकार भगवान् के आनन्द धाम का भी आविर्भाव ब्रज में हुआ। तब वे सब आनन्द स्वरूप होकर भगवान् की क्रीड़ा के योग्य (ब्रज और गोपिकाएँ) हुए। यही क्रम श्री वल्लभाचार्यजी के समय में भी चलता रहा है। संवाद में लिखा है कि श्रीकृष्णावतार में जिन दैवी जीवों का उद्धार करना इष्ट था उनमें से कुछ को इस भूतल पर छोड़ दिया गया था।[1] वे ही जीव भूतल पर रखे गए थे जिनका चित्त रास के समय चंचल हो गया था। वे आसुरी सृष्टि से मिलकर आसुरावेषी हो गये तब इस बार उनके उद्धार के लिए भगवान् कृष्ण ने अपने मुखावतार स्वरुप वैश्वानर, वाक्पति, वल्लभ को इस भूतल पर भेजा। क्योंकि कृष्णावतार में अपने स्वरूप सम्बन्ध से

१ कांकरौली विद्या विभाग सरस्वती भंडार-बंध संख्या ६/४ ३ [पृ० ५] संवाद की प्रति से तथा महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता से भी इस तथ्य की पुष्टि इस प्रकार होती है :—

'सो जब रासलीला सम्पूर्ण रात्रि श्री ठाकुरजी करें पाछे··· श्री ठाकुरजी छोड़ि के निजधाम पधारे।'

आप अनेक जीवों का उद्धार स्वयं कर चुके थे। स्वरूप सम्बन्ध से तात्पर्य यह है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जिस किसी भाव से किसी भी जीव का भगवान् कृष्ण से तनिक भी सम्बन्ध हुआ कि आपने उसका यथायोग्य उद्धार किया था। पूतना आदि राक्षसी योनि के जीव और गोपिका आदि दैवी जीव इसके उदाहरण हैं।

अब अपने नाम के माहात्म्य को भूतल पर प्रकट करने के लिए आपने नाम, लीला प्रकट करने की इच्छा की तब अपनी वाणी के अधिपति अग्निरूप श्री वल्लभ को जो इस नाम, लीला के अधिष्ठाता हैं, उनको आज्ञा दी—आप आचार्य-अवतार स्वरूप से प्रकट हों। और स्वयं आप श्रीनाथजी के विग्रह से गोवर्द्धन में से प्रादुर्भूत हुए। उस समय लीलात्मक वैष्णवों के भावों को श्री वल्लभाचार्यजी अपने साथ लेते आये। ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षा के समय उन्हीं भावों की स्थापना उन जीवों में की गई जिससे लक्ष योनियों में स्थित दैवी जीव नाम, लीला के अधिकारी होकर बद्धावस्था से मुक्त हुए। वार्त्ता के विषय के अन्तर्गत इनसे मुक्त होने के साधनों का विस्तृत उल्लेख हो चुका है।

दैवी जीवों का उद्धार ही वार्त्ता की मुख्य प्रवृत्ति है और यह मूलतः धार्मिक है। इस कारण वार्त्ता ने जिस रूप में अपना विकास किया है वह भी मूलत: धार्मिक ही बना रहा। इसमें दूसरे दृष्टिकोण के लिये स्थान नहीं था और न आगे हो सका है। वार्त्ताओं में इस दृष्टि से भावनात्मक वार्त्ताओं की ही पूर्णता प्राप्त है। शेष छोटे-छोटे उल्लेखमात्र हैं, जिनसे मन उत्साहित होता है और अधर्म की ओर न जाकर धर्म की ओर मुड़ता है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ६६ में इटावे के एक ब्राह्मण स्त्री-पुरुष की वार्त्ता है जिसमें लिखा है कि चाचा हरिवंश के एक प्रसादी उपरणे (दुपट्टे) के प्रभाव से इस ब्राह्मण को और इस ब्राह्मणी को सब मनुष्य पशु जैसे दीखने लगे थे और केवल दो वैष्णव ही मनुष्य जैसे दीखे। समस्त वार्त्ता यह निर्देश करती है कि सच्चा वैष्णव ही मानव है अन्य तो सब पशु कोटि के जीव हैं। इसी वार्त्ता के प्रथम अंश में एक देवी जो इस ब्राह्मण के यहाँ आया करती थी उसने भी अपने मुख से यही कहा है 'अनन्य वैष्णव सबतें बड़े हैं, इनते बड़ो कोई नाहिं तेतीस करोड़ देवता विराट के रोम-रोम में हैं सो विराट भगवान् ब्रह्माण्डस्वरूप हैं। ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड श्री ठाकुरजी के एक एक रोम में हैं। ऐसे भगवान् को जिनने बस में करे हैं ऐसे जो वैष्णव तिन सों बड़ो कौन है जिनके पीछे पूर्ण पुरुषोत्तम फिरे हैं।' इस वार्त्ता द्वारा वैष्णव और वैष्णव धर्म का महत्व प्रकट किया गया है। इसी प्रकार अन्य वार्त्ताओं के आधार पर भी समस्त वार्त्ता-साहित्य की आदि प्रेरणा धार्मिक ही ठहरती है। एक और उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि करना आवश्यक है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २१४ (बम्बई संस्करण) में मुरारी आचार्य की वार्त्ता में लिखा है कि मुरारी आचार्य ने श्री गोकुल में श्री गुसांईजी से पूछा कि जगत सत्य है कि असत्य ? तब श्री गुसांईजी ने उन्हें प्रमाण देकर बताया कि जगत सत्य है मिथ्या नहीं। केवल संसार मिथ्या है, इस पर आचार्य से फिर प्रश्न पूछा है कि यदि जगत सत्य है तो फिर जन्म-मरण कैसा है और नाश होने वाली वस्तु दीखती क्यों नहीं है। तब श्री गुसांईजी ने कहा भगवान् अनन्त शक्तिमान हैं, उन शक्तियों में एक आविर्भाव तिरोभाव की भी शक्ति है। जिससे प्रकट होने वाली वस्तु दीखती है और तिरोधान होने वाली नहीं दीखती। यदि जगत असत्य होता तो ब्राह्मण के जिमाने का पुण्य क्यों होता। सद्कर्म से सद्गति क्यों होती, पाप

करने से नरक में क्यों जाता ? जगत झूंठा होता तो कृती झूंठी होनी चाहिए और झूंठे पदार्थ का फल झूँठा होना चाहिये, इस प्रकार इस वार्त्ता में शुद्धाद्वैतवाद के उस धार्मिक सिद्धान्त का समर्थन किया गया है जो शंकर के मायावाद का खंडन करता है। इसलिए वार्त्ताओं की समस्त पृष्ठभूमि को धार्मिक ही ठहराना होगा।

वार्त्ता-साहित्य में जिन ग्रंथों का उल्लेख किया गया है वे सब धार्मिक पहले हैं और साहित्यिक पीछे। इन ग्रंथों की विचारधारा धार्मिक है। इनकी सूची परिशिष्ट में दी गई है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २५२ (बम्बई संस्करण) में जाड़ा कृष्णदास की वार्त्ता में जाड़ा कृष्णदास ने चाचा हरिवंश से पूछा है कि एतन्मार्ग में कौन से शास्त्र के वचन प्रमाण हैं ? तब चाचा हरिवंशजी ने कहा जो—"वेद और श्रीकृष्णजी के वाक्य और व्यास-सूत्र और श्रीमद्भागवत। श्रीभागवत में तीन भाषा हैं एक लौकिक भाषा और दूसरी स्मृति भाषा (परमत भाषा) और तीसरी समाधि भाषा। सो वेद और श्रीकृष्ण के वाक्य और व्यास सूत्र और समाधि भाषा और धर्मशास्त्र ये प्रमाण हैं। "इन सूं मिलते पुराण के वाक्य और स्मृति के वाक्य हूँ प्रमाण हैं, इन सूं विरुद्ध है सो प्रमाण नहीं है।"

इन ग्रंथों का प्रमाण स्वरूप उल्लेख यह सिद्ध कर देता है कि वार्त्ताओं की प्रेरणा धार्मिक ही है। धर्म विशेष के अतिरिक्त सामान्य लोक धर्म में जो सर्वमान्य सिद्धान्त हैं उन पर भी सभी वार्त्ताओ में बल दिया गया है। धर्म के जो सर्वमान्य लक्षण हैं उन सब पर वार्त्ताकारों ने भी दृष्टि रखी है। सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान, जनसेवा, अतिथिसत्कार, गुरुओं का आदर, अलोभ, निरहंकार, आत्मसंतोष, सात्विकता आदि गुणों को इन्होंने बार-बार महत्व दिया है। वार्त्ताओं में से निम्नलिखित वार्त्ताएँ इन गुणों के स्पष्टीकरण की दृष्टि से विशेष महत्त्व की हैं :—

सत्य

वा० सं० २३५। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। सहजपाल दोशी की वार्ता—

"और सहजपाल दोशी ने वीनती करी जो महाराज व्यापार में झूंठ बोले हैं जो दोष लगे हैं के नहीं ? तब श्री गुसांईजी ने आज्ञा करी" 'नानृतात्पातकं परं' इति—
(बम्बई संस्करण पृष्ठ ४१०)

सत्य

वा० सं० ७६। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। एक चोर की वार्त्ता—

"श्री गुसांईजी ने आज्ञा करी जो अब तू चोरी मत करे जब वा चोर ने कही जो महाराज चोरी करे बिना मोसूं रह्यो नहीं जायगो तब श्री गुसाँईजी ने कही जो तु निर्दय होय के चोरी मत कर............और सत्य भाषण करे तो श्री प्रभुजी दयालु हैं तेरे मन कों फेरि डारेंगे।" (पृष्ठ संख्या २२४ बम्बई संस्करण)

दया

वा० सं० १०। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। कायस्थ विट्ठलदास की वार्त्ता—

"तब नारायणदास ने वीनती करी, महाराज इन कूँ मैंने मार दिवाई हैं, मैंने इन कूं वैष्णव जान्यो न हतो। सो अपराध आप क्षमा करेंगे। तब श्री गुसांईजी ने कही जो

नहीं जान्यों परन्तु जीव तो हतो। वैष्णव कुं जीवमात्र ऊपर दया राखी चाहिए और जिनके मन में दया, विवेक, धैर्य और भगवदाश्रय नहीं है विनके चित में भगवदावेश नहीं होवे हैं।"

(पृष्ठ संख्या ७५ बम्बई संस्करण)

दया

वा० सं० ४६। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। कुंजड़ी की वार्त्ता—

"एक दिन श्री गुसांईजी गोपालपुर तें श्री गोकुल पधारते हते रस्ता में एक कुंजरी प्यास सों घबराय के पड़ी हती। तब श्री गुसांईजी ने खवास सों कहि ये कौन पड़ी है, तब खवास ने कहि प्यास के मारे या लुगाई के प्रान निकसे हैं। तब आपने खवास सुं कही, अपनी झारी में ते जल प्यावो। तब खवास ने कही झारी छिवाय जायगी। तब श्री गुसांईजी ने आज्ञा करी जो झारी तो दूसरी आवेगी, परन्तु याके प्राण तो बचेंगे। तब वाकूं जल प्यायो।" (पृष्ठ संख्या १३४ बम्बई संस्करण)

अहिंसा

वा० सं० १८९। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। पारधी की वार्त्ता—

"पर अब में जीव हत्या न करूंगो। ताते कृपा करि अब मोको नाम देहु। तब आपने कही तो तू जीव हत्या कबहूँ मति करियो और चाकरी खेती करके निर्वाह करियो।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ ७९)

वा० सं० १३६। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। मेहाधीमर की वार्त्ता—

"तब श्री गुसांईजी मेहा सों कहे जो जीव की तू हत्या करत है तेरो अंगीकार कैसे करों? तव मेहा ने कही जो महाराज, आज पीछे जीव कबहूँ न मारूंगो—खेति करके निर्वाह करूंगो।"

(पृष्ठ २५४ भावनात्मक संस्करण)

परोपकार

वा० सं० १७८। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। कबूतर-कबूतरनी की वार्त्ता—

"तब कबूतर ने कहो जो अपुनो राजा कोढ़ी है। सो वैद्य ने कही है, जो कबूतर, कबूतरनी को मारि कै औषधि करेंगे, तब कोढ़ जायगो। सो आपनो सरीर आज दूसरे के काम आवेगो।"

(पृष्ठ संख्या ४३ भावनात्मक संस्करण)

परोपकार

वा सं० २४। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। कृष्णदास की वार्त्ता—

'कृष्णदास एक म्लेच्छ पास चाकर रहते। तिन कृष्णदास पास जो कोऊ वैष्णव आवतो, ताकों सरकार में चाकर रखवाई काम सौंपते—अपनी गांठ ते द्रव्य देके व्योपार करावते— परि द्रव्य दै के काहू पास मांगते नाहीं।"

(पृष्ठ संख्या २३४ भावनात्मक संस्करण)

दान

वा० सं० ६६ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। नारायणदास की वार्त्ता—

"जो मो कों श्री आचार्यजी की कृपाते बंदीखाने में हूँ वैष्णवन को दर्शन भयो। इतने में नारायणदास घरते पांच थैली पांच हजार रुपैयन की आई।—तब विन ने पांचों थैली पांच हजार की उन दोऊ भाई ब्राह्मण वैष्णवन के हवाले करि दीनीं।"

(चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता भावनात्मक संस्करण)

जन-सेवा

वा० सं० २८ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। गोपालदास वांसवाडा की वार्त्ता—

"सो गोपालदास ने अपने घर के दरवाजे पास मारग में मिलिवे वारे के लिये एक विश्रामस्थल करि राखे—सो मारग चलिवे वारे उहाँ आई उतरते सो सांझ को उह स्थल में गोपालदास जाते जो उतरें होंई तिनसों पूछते। तामें कोई भूखो होई तिनको खाइवे कों देते। और कोई वैष्णव होई तो उनकों अपने घर ल्याई प्रीति सो महाप्रसाद लिवाते। दोई चार दिन राखते। खरचा न होय ताकों खरचा देते।"

(पृष्ठ संख्या ३०० भावनात्मक संस्करण)

जन-सेवा

भाव सिंधु। दो भाई कुम्हार की वार्त्ता—

"द्रव्य महिना में जोरे तामे सो तीन विभाग करें। एक भाग तो श्री गुसांईजी के चरणार्विद में धरे। दूसरे भाग सों आप घर में निर्वाह करें और तीसरे भाग में सू वैष्णवन की सेवा करें।"

(संवत् २०१२ बजरंग पुस्तकालय, मथुरा-संस्करण)

अतिथि सत्कार

वा० सं० ७५ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। कृष्णदास स्त्री पुरुष की वार्त्ता—

'सो एक समै दस पन्द्रह वैष्णव मेलि होई अडैत श्री आचार्यजी के दरसन कों चले सो कृष्णदास के घर आय उतरे। ता दिन कृष्णदास के घर कछू सीधों सामग्री न हतो और कृष्णदास घर न हते—सो वा गाम में एक बनियां हतो सो या स्त्री कों सुन्दर देखि कै वह बनिया कबहूँ कबहूँ या स्त्री सों टोंक करे—तब वा स्त्री ने बिचारी जो वा बनियां के पास जाऊं सो वा बनियाँ की हाट पर आई—तब वा बनियां प्रसन्न होयकै जो इन मांग्यो सो दियों। तब वह स्त्री सामग्री घर लाई। स्नान करि रसोई करि, श्री ठाकुरजी को भोग धरि सब वैष्णवन को महाप्रसाद लिवाये। बचो सो गायन को खवाय दियो। आप वामें ते कछु न लियो।'

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ ६७६)

अतिथि सत्कार

वा० सं० ७४ । दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। दो भाई सांचोरा ब्राह्मण—

'एक दिन वैष्णवन को साथ गोकुल जात हतो तब वा ग्राम में वा सांचोरान के घर में जाय के उतरे विन के घर कछु हतो नाहीं, तब वीनने ऐसो विचार कियो जो अमुक बनिया की दुकान अपने परोस में है—जितनी सामग्री चाहिये काढ़ लेउ—जब सरकार के मनुष्य ने वाको चोर जानि के पकरयो—मार डारयो और गाम के दरवाजा पर बाको माथो टांग दियो।

गुरु सम्मान

वा० सं० ३८ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। महीधर फूलबाई की वार्त्ता—

'तब फूलबाई सों कहीं श्री गुसाँईजी पधारे हैं तब दोउ भाई-बहिन अत्यन्त प्रसन्न भये तब महीधरजी ने नरहरि जोशी सों कहो जो मैं गुसांईजी को खाली हाथन कैसे पधराऊं। तब महीधर ने रुपैया मोहरन की खीचिरी करवाई कें न्योछावर करि कै श्री गुसांईजी को अपने घर पधराये ता पीछे.......नाम दिवायो।'

गुरु आदर

वा० सं० ८२६ । दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। हरिदास बनियां मेड़ता की वार्त्ता—

"तब जैमलजी ता मार्ग में हरिदास को साथ ले दौरि जाइं के श्री गुसांईजी के रथ के आगे राजा जैमल लेटि गयो।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ २५०)

निर्लोभ

वार्त्ता सं०—८८ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता । सूरदास की वार्त्ता—

"श्री ठाकुरजी के चरणार्विंद ऊपर सदा स्नेह रहैं देशादि के ऊपर आसक्ति न होय ऐसो पद देशाधिपति कों सुनायो सो सुनि के देशाधिपति बहुत प्रसन्न भयो और कहो जो सूरदासजी मोकों परमेश्वर ने राज दीनों है सो सब गुनीजन मेरो जस गावत हैं, ताते मेरो जस कछु गावो तब सूरदासजी ने यह पद गायो। सो पद-नाहि न रह्यो मन में ठौर""""

सो सुनि के देशाधिपति अकबर बादशाह अपने मन में विचारयों ये मेरो जस काहे को गावेंगे जो इनको कछू मेरी बात को लालच होय तो गावे ये तो परमेश्वर के जन हैं।"

निर्लोभ

वा० सं० ४० । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। कुंभनदास गोरवा की वार्त्ता—

'भक्तन कहा सीकरी काम'

तथा............'तब वह कसैंडी में पानी लायके कुंभनदासजी के आगे धरयो तब कुंभनदास बाये देखि के तिलक करन लागे इतने में राजा मानसिंह ने अपनी सोने की आरसी कुंभनदास के आगे धरी और कहो जो बावा यामें देखि के तिलक करिये तब कुंभनदासजी बोले याको कहा करूंगो। हमारे तो यहाँ छानी के घर है ताते कोऊ या के पीछे हमारो जीव लेयगो।'

संतोष

वा० सं० ८४। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। संतदास की वार्त्ता –

'एसे ढाई पैसा में निर्वाह करते ऐसे करत कितनेक दिन बीते तब नारायणदास""" गौड़ देश के सूनी जो संतदास के द्रव्य को बहुत संकोच है ताते नारायणदास कौ पत्र लिख्यो और एक मोहरन की थैली पठाई..............सो तो अडैल श्री गुसांईजी को पठाय दीनी।'

(बम्बई संस्करण पृष्ठ संख्या २५६)

संतोष

वा० सं० १३ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। गदाधरदास की वार्त्ता—

'एक जिजमान ने एक वागो और चार रुपैया और कुछ सामग्री गदाधरदास को दिये"""सब महाप्रसाद वैष्णवन कौ लिवायो और आप भूखे ही सोय रहे।'

दैन्य

वार्त्ता सं० ५ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता । तुलसा की वार्त्ता—

श्री गुसांईजी ने तुलसा से पूछौ जो त्ती ठाकुरजी सानुभावता जतावत हैं ? तब तुलसा ने कहों जो महाराज अब तो पेट भर खाइयत हैं और नींद भर सोइयत हैं, और आचार्यजी महाप्रभुन के ग्रन्थन को पाठ करियत है ।

(बम्बई संस्करण पृष्ठ संख्या ४८)

दैन्य

वा० सं० ६ । चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता । श्री पुरुषोत्तमदास की वार्त्ता—

'पांछे सेठ से बातें पहोंचि के वाहिर आए । तब वा ब्राह्मण ने दंडवत् कियो । तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही तुम यह अनुचित क्यों करत हो, हम छत्रिय हैं । तुम ब्राह्मण होइ के दंडवत् करत हो ।'

(भावनात्मक संकरण पृष्ठ संख्या ११५)

सात्विकता

वा० सं० १९६ । दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता । नारायणदास की वार्त्ता ।

"तब वह ठग नारायनदास के पांवन परयो........तब उन ठग वैष्णवन को नारायण दास ने कही जो हाय-हाय । तुम ऐसो अनुचित क्यों करत हो ? जो तुम वैष्णव होय के हमको अपराध में क्यों डारत हो । और तुम तो बड़े भगवदीय हो । सो तुमतें ऐसी बात कबहूँ होई नाहीं आवे । जो यह तो इनको कोई भोग होइगो । सो याको सब दोष निकृत भयो ।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ १००)

त्याग

वा० सं० १२२ । दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता । सन्यासी की वार्त्ता—

'सो तहां एक सन्यासी आइ के कह्यो जो यह ठौर तो मेरे बैठिबे को है ये कौन है जो यहाँ बैठिके संध्या वंदन करत हे ? तब मनुष्यन कह्यो जो यह श्री गुसांईजी हैं । तब वा सन्यासी ने कहो यह कैसे गुसांई है ? इनके तो संग्रह बहुत हैं । सब दान करि देऊ । सो यह बात श्री गुसांईजी आप सुनें । तब श्री गुसांईजी वा सन्यासी के देखत ही जो कछू वैभव हतो सो सब ब्राह्मणन को बुलाई कै दियो । कछु गंगा में डार दियो ।'

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ संख्या १८४)

वार्त्ता सं०—५५ । दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता । निहालचंद भाई की वार्त्ता ।

"ता पाछे वा साथ निहालचन्द भाई के संग में श्री गोकुल जांई श्री गुसांईजी को सेवक भयो । और एक-एक वस्त्र सगरेन अपने पास राखत भए और सब श्री गुसांईजी की भेंट करत भये ।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ ४०४)

वैराग्य

वा० सं० ६५ । दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता । गंगाबाई क्षत्राणी की वार्त्ता—

"परि मन में वाके विषय भयो । तातें नित्य विचारे, जो एकान्त कदाचित पाऊं तो मेरो मनोरथ पूरन होई । परि दांव पावें नाहीं । ऐसे केतेक दिन बीते दाव पावे नाहीं ।

ता पाछे एक दिना वानै समयो विचारि कै श्री गुसांईजी के छीवे पधारिवे के पहले ही आप उहाँ जांइ के छिपि रही ता पाछे श्री गुसांईजी सो कही जी·······मेरो मनौरथ पूरन करो। तब श्री गुसांईजी ने नांहीं करी और कही या बात में हम नाहीं हैं।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ ४४५)

वैराग्य

वा० सं० ५। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। नारायणदास दीवान कायस्थ की वार्त्ता—

"और एक समें श्री गुसांईजी श्री रुक्मिनी बहूजी, सोभा बेटीजी और श्री गिरधरजी या प्रकार सब कुटुम्ब सहित श्री जगन्नाथराय के दरसन को पुरुषोत्तम क्षेत्र पधारे। सो प्रभू श्री जगन्नाथजी में महिना एक लों पुरुषोत्तमपुरी में विराजे। सो जा समे श्री गुसांईजी श्री जगन्नाथरायजी सों विदा भए तब जो कछु अपने साथ सामान हतो, सामग्री डेरा, पात्र, घोड़ा, बरद, ऊँट, यह सब श्री गुसांईजी श्री जगन्नाथरायजी की भेंट करि कै पुरीसौं विदा भए। जो जो अंग ऊपर अंग-वस्त्र पहिरे हते सो तो रहे।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ ११३)

सहनशक्ति

प्रसंग सं० १५। श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता। एक ब्राह्मणी अडेल की वार्त्ता—

"या प्रकार एक दोय गागरि नित्य छुवावे, जल धरिया नित्य श्री आचार्यजी पास पुकारे सो नित्य श्री महाप्रभु क्षमा करि दें, जाने बड़ी मूर्ख है।"

सहनशीलता

वा० सं० ८६। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। खंडन ब्राह्मण की वार्त्ता—

"ता पाछे सब वैष्णव बैठें हते, तहां जाइ के ऊपर ते भाटान की मार करन लाग्यो। ता पाछे सब वैष्णव उटि कै अपने घर आए।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ संख्या २०७)

सत्संग

वा० सं० १४०। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। हरिदास, जाने बेटा को मारयो—

"सो एक समे हरिदास के घर मोहनदास आए—तब दोऊ मिल के भगवद्सेवा करते और भगवद् वार्त्ता करते तब हरिदास ने चलत चलत मोहनदास कों और हू पांच सात दिन अपने घर आग्रह करि के राखे। तो हरिदास ने अपनी स्त्री सों कही जो अब तो ये सवेरे जांइगे, तो राखिवे को कहा उपाय करनो? तब स्त्री ने कही जो तुम कहो सो करैं। तब हरिदास के वरस सात कौ एक लरिका हतो। सो हरिदास ने अपनी स्त्री सों कहीं, जो अपने बेटा को मारि। तब इन वैष्णव कों सोच होइगो ये रहेंगे। तब स्त्री ने ऐसे ही करचो।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ संख्या २६२)

सत्संग

वा० सं० १५२। दोसौ वावन वैष्णवन की वार्त्ता। एक श्रोता वक्ता की वार्त्ता—

"सो भगवद्वार्ता करन लागे। सो श्रोता सुनें वक्ता कहे।··········ऐसे करत ६ महीना व्यतीत भए ता पाछे दोऊ वैष्णवन की भगवद्वार्ता करत देह छूट गई। दोऊ भगवल्लीला में प्राप्त भए।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ संख्या ३५७)

अभय

वा० सं० २६ । दोसौ बावन । हरिदास बनिया—

"तब राजा जैमलजी रिस करि हरिदास सों कहें जो क्यों रे हरिदास ! तु हमारे मंदिर में दरसन क्यों नाहीं करत ? तू पाछिली एकादशी क्यों करे है ? तब हरिदास ने रिस करि के जैमलजी सों कहो, जो जैमल या तेरे गाम में रहे तासों कहा तेरो धर्म करेंगे ? तो सरिखे राजा हमारे प्रभुन के दरसन के अभिलाषा करत अनेक द्वार पर परे हैं। तू यहाँ अपने मन को बड़ो राजा कहावत है।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ २४५)

अभय

वा० सं० ८६ दोसौ बावन एक कुणवी पटल—

"तब वा कुणवी ने कही जो अब तू मोको सुखेन खा। तब वा राक्षस ने कहो जो अब तो में तुम को नहीं खाऊंगो। जो तुम तो वैष्णव हो सो तुम्हारो वचन तो साँचो है। अपने धर्म के लिए तुमने मृत्यु को भय नाहीं कियो।"

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ संख्या २८)

सत्व–संशुद्धि

वा० सं० ११०। दोसौ बावन। उपरावारी—

"तब ऐसे वचन सुनि कै श्री गुसांईजी वा परचारणी के ऊपर बहुत रिस कीनी। तब वा व्रजवासी को आज्ञा किये जो या ब्राह्मणी को अडेल के घाट पर अब ही नाव में बैठारि कै पार उतारि आवों।........तऊ वा ब्राह्मणी को श्री गुसांईजी के ऊपर नेकहूँ दोस बुद्धि न आई। मन में कही जो प्रभू हैं, फेरि कृपा करिकें बुलावेंगे।

(भावनात्मक संस्करण पृष्ठ संख्या १४१)

सत्व-संशुद्धि

वा० सं० १११ । दोसौ बावन । मां बेटा—

"सो एक दिना साग सम्हारत मन में ऐसी आई, जो बेटा आवे तो सेवा में सहायक होई। पाछे सामग्री सिद्ध करि कै भोग समर्पे। तब श्री गुसांईजी ने साग को कटोरा सरकाय दीनो। सो वा बाई ने कीर्तन करि समय भयो तब भोग सरायो। तब वाने देखो तो साग को कटोरा दूरि धरयौ है। तब वा बाई ने आचमन मुख वस्त्र करावत विनती करों, जो राज ! साग क्यों नाहीं आरोगे ? तब श्री गुसांईजी ने कहो जो साग सम्हारत में तेरो चित्त कहाँ हतो ? तब इन कही जो बेटा में हतो। तब आपने कहीं जो लौकिक में मन को चलायो ? ताते साग नाहीं आरोगे।"

(भावनात्मक संस्करण भाग २ पृष्ठ संख्या १५०)

व्रजयात्रा

वा० सं० १६० । दोसौ बावन । पीताम्बरदास—

"पाछे एक समय पीताम्बरदास को मनोरथ यह भयो जो व्रजयात्रा करिए। सो श्री गुसांईजी सों वीनती कीनी। तब श्री गुसांईजी आप कहे, जो हमहूँ व्रजयात्रा करिवे को चलेंगे।"

(भावनात्मक संस्करण भाग ३ पृष्ठ ८७)

क्षमा

वा० सं० ८४। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता। कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता—

"तब बीरवल ने कृष्णदास कों बंदीखाने में ते बुलाय के कह्यो जो देखि, श्री गुसांईजी की कृपा। तेरे बिना भोजन नाहीं करत हैं और तैंने उनसौं ऐसी करी तासों अब तोकों छोड़त हूं और आज पाछे जो तू श्री गुसांईजी सों बिगारेगौ तब मैं तोकों फेरि कबहूँ नाहिं छोड़ूंगो। सो या प्रकार बीरवल ने कहिके कृष्णदास कों श्री गिरधरजी के हवाले कर दियो।"

(चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता भावनात्मक संस्करण)

क्षमा

वा० सं० १० । दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। भाइला कोठारी की वार्त्ता—

"तब वा लाछावाई ने यह हुक्म वा समय कियो जो जाने यह चुगली करी है वा चुगल को अब ही खरच करि डारो। जो कोई फेरि ऐसो काम न करे। यह हुक्म करयो। सो यह बात वा चुगल की माता ने सुनी, जो याकों मारिवे को हुक्म भयो हैं। तब यह अपने बेटा कों लेके श्री गुसांईजी की सरनि में आईके विनती करी, जो महाराज! मेरे बेटा कों तो ठौर मारत हैं। ताते अब आपकी सरनि में पुत्र अपने कों लैकै आई हों। तब श्री गुसांईजी बाजबहादुर कों कहवाई पठाए जो तुम काहू कों मारियो मत।"

(भावनात्मक प्रति दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता)

वार्त्ता-साहित्य और धर्मगाथाएँ

लोकसाहित्य में कुछ ऐसी कथाएँ प्रचलित हो जाती हैं जो देखने, कहने और सुनने में तो कहानी के आकार प्रकार की होती हैं पर जिनका उद्देश्य होता है—किसी प्राकृतिक या अलौकिक व्यापार का वर्णन। इनमें धार्मिक भावना का पुट होता है। ये कथाएँ ही धर्मगाथाएँ कहलाती हैं।

ये धर्मगाथाएँ लोकसाहित्य के अन्तर्गत एक प्रकार की लोककथाएं होती हैं जो विकास की अनेक अवस्थाओं में से होती हुई धार्मिक अभिप्राय से सम्बद्ध हो जाती हैं और इनका प्रचलन कथा के रस के लिए नहीं उसके अभिप्राय के लिये होता है। इस प्रकार ये कथाएं लोकसाहित्य होते हुए भी उसकी परिधि के भीतर रहते हुए अपने लिए कुछ विशेषताएँ संकलित कर लेती हैं और इनका स्थान कथासाहित्य के क्षेत्र से कुछ बाहर हो जाता है। यह धार्मिक अभिप्राय आरम्भ में तो कथा में सरल और सहज रूप में आता है पर ज्यों-ज्यों कथा का धार्मिक मूल्य बढ़ता जाता है त्यों-त्यों यह अभिप्राय गूढ़ और जटिल होता जाता है। रस्किन ने धर्मगाथा की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए अपनी 'क्वीन आफ दी पेपर' में लिखा है कि 'धर्मगाथा' अपनी सरलतम परिभाषा में एक कहानी है जिसके गर्भ में एक अर्थ सन्निहित है और वह अर्थ उसके सहज अर्थ से भिन्न होता है। ऐसी कहानी में ऐसा कोई अभिप्रेत अर्थ है यह उस कहानी की उन परिस्थितियों से विदित होता है जो असाधारण होती हैं अथवा किसी हद तक अस्वाभाविक होती हैं। रस्किन ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि ऐसी गाथा का मूल बीज किसी प्राकृतिक सत्ता में होता है और उसमें एक नैतिक महत्व भी संलग्न होता है।

ये धर्मगाथाएँ एक प्रकार से 'कारण निरूपक कहानियाँ' होती हैं जिनमें विश्व, उसकी उत्पत्ति, प्रलय, जीवन, मरण, मनुष्य, पशु, जातीय भेद, और रहस्यमय कारणों की व्याख्या रहती है। यह कारण प्राय: असम्भव ही होता है पर जो उन धर्मगाथाओं को मानते हैं, वे उन पर विश्वास भी करते हैं। अपने 'हिस्ट्री एण्ड फेबिल' नामक सुन्दर ग्रंथ में लायल महोदय ने धर्मगाथाओं के सम्बन्ध में लिखा है कि धर्मगाथा का विकास किसी मानवी घटना से अथवा ऐतिहासिक तत्व से नहीं है। यह मत ठीक नहीं है। उनका मत है कि चाहे कितना लघु रूप ही क्यों न हो उसमें इतिहास का पुट विद्यमान रहता है। धर्म-गाथाएँ प्राकृतिक व्यापारों के कल्पना प्रसूत रूपक मात्र नहीं हैं। वे तथ्य पर निर्भर हैं। उनमें निरंतर इतिहास गौण होता गया है और कल्पना प्रधान होती गई है। लायल का कहना है कि ज्यों-ज्यों मानव में ज्ञान की अभिवृद्धि होती गई है उसने इतिहास और कल्पना को एक दूसरे से अलग कर लिया है पर धर्मगाथाएं उस समय आरम्भ हुई हैं जब मानवमात्र अपनी मानसिक विकास की उस अवस्था में था जब मनुष्य इतिहास और कल्पना में अन्तर नहीं करना जानता था।

लायल ने धर्मगाथाओं के मूल में ऐतिहासिक तथ्य और घटना की उपस्थिति को मान्यता दी है और इस दृष्टि से ही उसके मूल्य को आंका है। इस दृष्टि से वार्त्ता-साहित्य एक प्रकार का धर्मगाथा-साहित्य ही है जिसमें श्री महाप्रभुजी और श्री गोसांईजी दोनों का प्राकट्य अलौकिक है, जो अपने समय में लोगों से घुल मिल गये थे और जिन्होंने अपनी सामर्थ्य भर एक निर्दिष्ट पथ से लोगों का उद्धार किया है और इनमें जो चरित्र वर्णित है अथवा जिन घटनाओं का उल्लेख है वे सब प्रकार से कारण निरूपक कहानियां भी हैं और जिनमें असम्भव को सम्भव बनाया गया है। फिर भी श्री वल्लभ मतानुयायी लोग उन पर विश्वास करते हैं। इन वार्त्ताओं में इतिवृत्त के अतिरिक्त जो कुछ और है वह सब धर्मगाथाओं का विषय हैं और उसी रूप में स्वीकृत भी हैं। (इन धर्मगाथाओं में से ही लोकवार्त्ता का जन्म हुआ है क्योंकि इनके प्रभाव से बचना कठिन है भले ही धार्मिक आस्था निरंतर घटती जाय और उसका अभाव हो जाय। ज्यों-ज्यों आस्था कम हुई है धर्म का अंश पीछे रह गया है और कथा का रूप प्रधान होता गया है)। धर्मगाथाओं ने लोक-साहित्य के सर्जन में प्रेरणा दी है यह बात लोकवार्त्ता साहित्य के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित हो जाती है। (अत: इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि लोक-वार्त्ता-साहित्य का आधार धर्मगाथा-साहित्य ही है। धार्मिक आस्था के कारण इन गाथाओं को एक विशेषवर्ग ने विशेष सम्पत्ति की भांति सुरक्षित रखा है और जिन उपादानों और व्यापारों से धर्मगाथाओं का जन्म हुआ है उन्हीं से लोक-वार्त्ता-साहित्य की लोकगाथाओं का भी हुआ है। दोनों के विकास में भी अद्भुत साम्य हैं। लोकवार्त्ता में भी वही तत्व मिलते हैं जो धर्मगाथाओं में हैं। अर्थात् इनमें भी प्रकृति के व्यापारों में मानवी भावना है, भय, हर्ष है, उनसे उपदेश ग्रहण करने की प्रवृत्ति है)।

इन तत्वों का ऐसा सम्मिश्रण इन गाथाओं में हुआ कि इनके कई वर्ग बन गए और इनसे नैतिक शिक्षा के स्थान पर मनोरंजन का भाव लिया जाने लगा। धर्मगाथाएं जब लिखित-साहित्य के अभाव में जनसाधारण में फैलीं तो अपने मौखिक रूप में इनमें परिवर्तन होते गए और चरित्र और घटना की रक्षा तो बनी रही पर लोकवार्त्ता के रूप में आते-आते नामों की रक्षा न हो सकी और क्रमश: उनके महत्व को कम कर दिया गया। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जब यह कथाएँ फैलीं तो इनमें स्थानों के नाम भी बदल दिए गए

और इनके अनुरूप दूसरी कहानियाँ भी कल्पित कर ली गई जिनमें नाम यदि दूसरे हैं तो घटनाएं वही हैं और यदि नाम वही हैं तो फिर घटनाएं दूसरी हैं। इसी प्रकार लोकगाथाओं का रूप स्थिर होता रहा है और वह अनेक परिवर्तन सहन करके आधुनिक रूप में प्रगट हुई है। उसके पीछे मानव मन की मानसिक उन्नति का इतिहास होता है और होती है वह जनरुचि जिसका आधार मूलतः सामाजिक होता है। धर्मगाथाओं और अधिकांश लोकगाथाओं में एक भाव प्रधान होता है वह है 'पूज्य बुद्धि'। यह कहीं देव पूजा, कहीं महत्वपूर्ण व्यक्ति की पूजा और कहीं सिद्धान्त के प्रति श्रद्धा का ऐसा रूप धारण कर लेता है कि ऊपर से देखने में इस भाव का पाठक को बिलकुल पता नहीं चलता है। वार्त्ताओं में इन सब सिद्धान्तों का सम्मिश्रण मिलेगा।

धर्मगाथाओं के रूप में हम अपने प्राचीन साहित्य की विशेषता के रूप में कथा की प्रवृत्ति के दर्शन कर सकते हैं। इस प्रवृत्ति ने धीरे-धीरे बढ़कर कला का रूप धारण कर लिया है। भारत का प्राचीन कथा-साहित्य वैदिक-संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश आदि अनेक भाषा युगों की महत्वपूर्ण सम्पत्ति है। इन सब भाषा-युगों में कहानी-कला की एक अपनी निजी विशेषता रही है जो उसने दूसरे युग को परम्परारूप में प्रदान करके उस युग के कथा-साहित्य के विकसित होने में सहायता की है।

जिन विद्वानों ने ऋग्वेद-साहित्य का अध्ययन किया है उनका मत है कि ऋग्वेद में कथाएँ नहीं मिलती हैं वरन् कथाओं के बीज या प्रसंग बिंदु मिलते हैं। इन कथाओं में कथा का वह रूप नहीं मिलता है जो उपनिषदों और ब्राह्मणों में सुरक्षित है। ऋग्वेद के 'संवाद सूत्रों' के आधार पर विद्वानों ने उनसे भारतीय साहित्य के अनेक अंगों का संबंध जोड़ा है और इन सूत्रों को ही भारतीय साहित्य के इन रूपों (नाटक, कथा, इत्यादि) का मूल स्रोत कहा है। इनके अनुसार कथा की प्रवृत्ति इन सूत्रों में भी है। इसके अतिरिक्त अन्य सूत्रों में भी अनेक छोटे-छोटे शिक्षाप्रद आख्यानों के सूत्र मिलते हैं। संहिता में जिन आख्यानों की सूचना या संकेत मात्र है उनका विस्तृत वर्णन 'वेदार्थ दीपिका टीका' में किया गया है। यास्क और सायण ने भी इन कथाओं के रूप और प्राचीन आधार पर बल दिया है। अतः यह निर्विवाद रूप से मानना होगा कि संस्कृत में जो आख्यान साहित्य है उसका आदि प्रेरक ऋग्वेद है और इनमें से कितने ही आख्यान और आख्यायिकाएं संहिता से बीजरूप से प्रारम्भ होकर उपनिषदों में और वहां से फिर पुराणों में से होती हुई एक लम्बी यात्रा के बाद आख्यायिका या आख्यानकरूप में पूर्ण हुई हैं। वार्त्ता-साहित्य की परम्परा के प्रारम्भ में इस पर लिख चुके हैं। उपनिषदों की कल्याणकारी उच्च-कोटि की मानसिक भूमि के बीच-बीच में कथाएं आई हैं जैसे कठोपनिषद् में 'नचिकेता के साहस की कथा' इत्यादि ऐसे ही अन्य उपनिषदों में भी कई महत्वपूर्ण कथाएं हैं। छांदोग्य उपनिषद् में सत्यकाम की गो-सेवा बृहदारण्यक में 'गार्गी और याज्ञवल्क की कथा', छान्दोग्य में 'श्वेतकेतु और उद्दालक की कथा', तैत्तरीय में अश्विनीकुमार और उनके गुरु की कथा'। तथा प्रश्नोपनिषद् में कबंधी 'कौशल्य और सुकेशा इत्यादि की कथाएं'। ये कथाएं बड़ी मार्मिक हैं। इनका दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। यह प्रतिपाद्य तत्वों को लेकर उदाहरण रूप से प्रस्तुत की गई हैं। आध्यात्मिक और अमूर्त विषयों को लेकर उन्हें प्रतिपादित करने के लिए यहां कथाओं को ही उनका माध्यम बनाया गया है। इन कहानियों में एक अलौकिक पवित्रता के दर्शन होते हैं। इन कथाओं का मूल विषय आत्मा और परमात्मा के संबंध को

लेकर चला है और इसमें दर्शन और समाज की अनेक गुत्थियां सुलझाई गयी हैं। इन कथाओं के पात्र ब्राह्मण, ऋषि राजा और पुरोहित हैं। ये कथाए आदर्श और शिक्षाप्रद हैं। समस्त कथाओं का आरम्भ जिज्ञासा और प्रश्न से हुआ है और कथानक के भीतर दर्शन जैसे गहन तत्वों पर प्रवचन किया गया है। अपनी शैली के कारण ही उपनिषद् की इन कहानियों में एक रोचकता है और आकर्षण है जो आदि से लेकर अन्त तक एकसा पाया जाता है।

ऋग्वेद के इस छोटे से बीज (संवाद सूत्र) और उपनिषद् के इस प्रसंगात्मक उल्लेख का आगे चलकर इतना प्रचार हुआ कि कालान्तर में इन कथाओं के 'सागर' तैयार हो गये। इस काल में धर्मभावना, लोकभावना और साहित्यिक रुचि कथा में एक साथ चलती रही। आगे चलकर इन्हीं कथानकों को लेकर विद्वानों को आख्यानक काव्यों की सृष्टि करनी पड़ी जिनमें उन्हें अपनी कल्पना का पुट भी देना पड़ा था क्योंकि मूलकथा तो बहुत छोटी रही होगी। इन्हीं कथाओं में अन्य कथाओं को गूंथकर आगे चलकर महाकाव्यों की सृष्टि हुई और इनमें भी धार्मिक लोगों को तृप्त करने के लिए कितने ही प्रसंगों को प्रश्नोत्तर रूप से जोड़ा गया है। समस्त गीता का संवाद इसी प्रकार का प्रश्नोत्तर और जिज्ञासा शान्ति का साधन बनकर महाभारत के भीतर आया है। पं० बलदेव उपाध्याय ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखा है कि महाभारत को अपना वर्तमान स्वरूप भगवान् बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् प्राप्त हुआ है पर रामायण और महाभारत दोनों महात्मा बुद्ध से पूर्व की रचनाएँ हैं। इस प्रकार महाभारत और रामायण दोनों का समय बौद्ध जातक कथाओं से पहले हैं और यह मानना पड़ेगा कि रामायण और महाभारत के माध्यम से आख्यानकों और पौराणिक कथाओं का आरम्भ जातकों से बहुत पहले हो चुका था। रामायण और महाभारत दोनों में मूल कथा के साथ प्रासंगिक रूप से बहुत सी अन्तर्कथाएँ जुड़ी हुई हैं। वाल्मीकिजी ने अपनी अलौकिक काव्य-प्रतिभा द्वारा राम-कथा को लोक-भावना के मेल में रख दिया और सजीव पात्रों के चित्रण द्वारा संस्कृत कथा-साहित्य में एक नया आदर्श उपस्थित कर दिया।

पुराण का अर्थ होता है 'पुराना आख्यान'—'पुराणमाख्यानम्' और इस दृष्टि से पुराणों में महाभारत बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें कई आख्यान हैं जैसे आदिपर्व में शकुन्तलोपाख्यान, वनपर्व में मत्स्योपाख्यान, रामोपाख्यान और नलोपाख्यान। कथा-साहित्य की दृष्टि से महाभारत की कथाओं की विशेषता यह है कि इस पुराण की कथाओं में इतिहास, धर्म और कल्पना का उचित मात्रा में सामंजस्य है। महाभारत से ही यह आख्यानकों और कथाओं की शैली शेष सब पुराणों में प्रचलित हुई और फिर ये कथाएँ प्राचीन साहित्य में एक अद्वितीय सफलता को प्राप्तकर पूर्णता को प्राप्त हुई। इनके विविध रूप साहित्य में प्रचलित हो गये। इनमें अनेक अवतारों से लेकर राजाओं, वीर पुरुषों, वीर-कर्मों, व्रतों, उत्सवों तक का आश्रय लिया गया है।

धर्मगाथाओं में जातक कथाओं का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि भदन्त आनन्द कौसल्यायन के अनुसार इन जातकों का रचनाकाल ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से लेकर ईसा के पश्चात् दूसरी शताब्दी तक है। जातक शब्द का अर्थ है, जन्म सम्बन्धी। जातक कथाओं में भगवान् बुद्ध के ५४७ जन्मों का उल्लेख है और उनकी कथाएँ हैं। यह कथाएँ चार भागों में बाँटी जा सकती हैं—

(१) पंचुपन्तवत्थु कथा	वर्तमान कथा।
(२) अतीत वत्थु	अतीत कथा।
(३) अत्थ वरणना	गाथाओं की व्याख्या।
(४) समोधन	अन्त में आने वाला भाग।

इनमें से अतीत वत्थु में पुनर्जन्म की कथा है और समोधन में भगवान् बुद्ध स्वयं बताते है कि वे उस समय किस योनि में थे।

कुछ वचनों का एक प्राचीन वर्गीकरण स्वयं तिपिटक में हैं। जिसके अनुसार बुद्ध वचन नौ भागों में विभक्त हैं। जिसमें से सातवें भाग का नाम जातक है। तिपिटक के सातवें भाग में जिस जातक ग्रन्थ का उल्लेख है वह केवल कथाओं का एक संग्रह है। जातक और जातकट्ठकथा में भी अन्तर है। अट्ठकथा का अर्थ है अर्थ सहित जातक। इसमें और मूल जातक कथा में अन्तर यह है कि इसमें आरम्भ में कथा प्रारम्भ होने से पहले निदान कथा नाम का एक लम्बा उपोद्घात है। इस निदान कथा में गौतम बुद्ध से पूर्व के २१ बुद्धों का भी जीवन चरित्र है। जातकट्ठकथा में २२ परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद में १५० ऐसी कथाएं हैं जिनमें एक ही एक गाथा या श्लोक है। दूसरे में भी १५० कथाएँ हैं। इनमें प्रत्येक में दो-दो गाथाएँ हैं। तीसरे और चौथे में पचास कथाएँ हैं। गाथाओं की संख्या तीसरे में तीन और चौथे में चार हैं। पांचवें निपात से तेरहवें निपात तक यही क्रम चलता है। शेष नौ निपातों में जातक संख्या कुल १३३ है। यह कथा-संग्रह कम से कम दो हजार वर्ष पुराना है। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन का तो यह मत है कि आधुनिक रूप में रामायण 'दशरथ जातक' 'देव छम्भ जातक' को लेकर रचा गया है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पांचवी शताब्दी में आचार्य बुद्ध घोष रामायण और महाभारत से परिचित थे। क्योंकि उन्होंने लिखा है, कि आख्यान का अर्थ है—भारत रामायण इत्यादि की कथा जहाँ हो रही हो वहाँ जाना योग्य नहीं। फिर दूसरी जगह सीता हरण आदि को निरर्थक भी कहा है। 'श्री भदन्तजी के मत में जातक कथा की कहानियों ने ही महाभारत और रामायण में विकास पाया है। गुणाढ्य की बृहत्कथा के आधार पर रचित सोमदेव के कथासरितसागर में अनेक जातक कथाएँ विद्यमान हैं। इसके आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि बृहत्कथा का आदि स्रोत जातक कथाएँ ही होंगी। भदन्तजी पंचतन्त्र की कहानियों की अधिकांश कथाओं का मूल जातक कथाओं को ही बताते हैं क्योंकि इनमें 'वक जातक' और 'वानरिन्द जातक' 'मिन्तामित्त जातक' आदि की कथाओं में समानता है। हितोपदेश में भी जातक कथाओं का कुछ न कुछ अंश अवश्य वर्तमान है। श्री रीज डेविस के मत में 'ईसप' की कहानियाँ जिनका योरोप में बड़ा प्रचार है उनमें से अधिकांश का मूल स्थान ये जातक कथाएँ ही हैं। इस प्रकार हमारे देश का प्राचीनतम कथा-साहित्य जातकों का ऋणी है। जातक कथाएँ संसार के साहित्य में प्राचीनता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कथाओं का वह सबसे बड़ा संग्रह भी है। जातक कथाओं के सम्बन्ध में श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन का यह निष्कर्ष महत्वपूर्ण है। 'यदि मनोरंजन के साथ-साथ उपदेश ग्रहण करना हो यदि हृदय को उदार तथा शुद्ध बनाने वाली कथाओं के साथ-साथ बुद्धि को प्रखर करने वाली कथाएँ पढ़नी हों, यदि अपने देश की प्राचीन धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, तथा सामाजिक अवस्था से परिचित होना हो तो हम जातक कथाओं से बढ़कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नहीं कर सकते।'

इस प्रबन्ध का विषय जातकों की प्राचीनता या देन नहीं है फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता है कि भारतीय कथा-साहित्य में जातकों का महत्वपूर्ण स्थान होते हुए भी यह स्वीकार करना कठिन है कि सारा भारतीय कथा-साहित्य जातकों का ऋणी है। बात कुछ ऐसी है कि बौद्ध और अबौद्ध अभी भारतीय कथा-साहित्य इस देश में चलती हुई एक परम्परा का ऋणी है जिसमें संहिता, उपनिषद्, आख्यानक काव्य, स्वतंत्रकथाओं का निर्माण और सबका सम्मिश्रण सम्मिलित है।

जातक कथाओं की प्राचीनता सिद्ध करके और यह सिद्ध करके कि भारतीय कथा-साहित्य पर जातकों का बहुत बड़ा प्रभाव रहा है अब इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं है कि इन कथाओं का मूल उद्देश्य धार्मिक था। यह बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ लिखी गई थी। वह पौराणिक कथाओं की अपेक्षा कहानी कला की दृष्टि से अधिक व्यवस्थित है। ये सीधे वर्णन न होकर इनमें अतीत कथा, वर्तमान कथा, गाथा की व्याख्या और समोधन का एक श्रेणीबद्ध क्रम है। और कथा के उद्देश्य की भी रक्षा और निर्वाह ठीक से हुआ है। जातक की यह कथाएँ इसलिए विशेष रीति से महत्वपूर्ण हैं कि एक छोटी सी घटना से एक कथा का जन्म और उस कथा से फिर अन्य कथा का जन्म होने की विधि हमें इन्हीं कथाओं में प्राप्त है। कला की दृष्टि से यह कथाएँ भारतीय वाङ्मय में सबसे अधिक पूर्ण हैं। इन कथाओं में कल्पना की प्रधानता है। अतीत कथा में इतिहास के बीज मिलते हैं। कल्पना और इतिवृत्त दोनों का अपूर्व सामंजस्य सबसे पहले इन्हीं कथाओं में मिलता है। मन को प्रभावित करने की इनकी शक्ति अपूर्व है। ये कथाएँ वास्तव में जनसाहित्य हैं। इनमें केवल राजा साहूकारों का ही उल्लेख नहीं है अपराधियों का भी उल्लेख है, हमारे रहन-सहन का सच्चा वर्णन है और हमारे सांस्कृतिक विकास का इतिहास भी है।

जातक की कथाएँ 'पूर्व काल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था' वाक्य से आरम्भ होती हैं।

वार्त्ता-साहित्य और धर्मगाथाओं की तुलना

इन दोनों की यदि तुलना की जाय तो दोनों में बहुत साम्य मिलेगा। उपनिषद् और संहिता ग्रन्थों के बीजरूप इन कथा-प्रसंगों का उल्लेख किया जा चुका है उनका ही विकसित रूप और पूर्णतया उसी परम्परा में वार्त्ता-साहित्य की प्रसंगात्मक वार्त्ताएँ आती हैं। ये प्रसंग और इनका रूप ऋग्वेद के संवाद-सूत्र श्रेणी में रखना इसलिए उचित होगा कि इसमें भी लघुतम रूप में संवाद और कथा दोनों का बीज उसी प्रकार वर्तमान है; जैसे दामोदर-दास हरसानी की वार्त्ता में श्री महाप्रभुजी ने उनको 'दमला' सम्बोधन करके उनसे कहा है यह मार्ग मैंने तेरे लिए ही प्रचलित किया है।

यह वाक्य इसलिए और उचित लगता है कि जैसे उपनिषदों में कथाएँ कथा-साहित्य की दृष्टि से नहीं आई हैं वरन् प्रतिपाद्य विषय के उदाहरणरूप से प्रस्तुत की गई हैं उसी प्रकार प्रसंगात्मक वार्त्ताओं के प्रसंग भी एक विषय विशेष के प्रतिपादन में ही अपनी सार्थकता सिद्ध करते प्रतीत होते हैं जैसे तीसरे प्रसंग में; दामोदरदास की वार्त्ता का उद्देश्य ब्रह्म-सम्बन्ध दीक्षा की आज्ञा की घोषणा और महत्व प्रदर्शन करना है। अमूर्त विषय को प्रति-पादित करने के लिए ही इन कथाओं को साधन बनाया गया है। प्रसंगात्मक वार्त्ताओं में

प्रसंगों की अभिवृद्धि हुई है और कथाओं की भी अभिवृद्धि उसी प्रकार हुई है जैसे निरुक्त बद्ध देवता अथवा सर्वानुक्रमणी में कथाओं की वृद्धि हुई है। और भावनात्मक वार्त्ताएं तो पूर्णतया पौराणिक आख्यानक का आधार लेकर निर्मित हुई हैं।

जातक कथाओं से वार्त्ताओं की तुलना करने पर इस प्राचीन धर्मगाथा-साहित्य में और वार्त्ताओं में बहुत सा साम्य दिखाई पड़ता है। भेद केवल इतना ही है कि यह परम्परा वार्त्ता-साहित्य तक आते-आते बहुत मिश्रित हो चुकी थी। इसलिये इसमें उस शैली का रूप परिवर्धित होकर आया है।

वार्त्ता का तीन जन्म वाला जो भावनात्मक संस्करण श्री हरिरायजी ने किया है उसकी शैली पर तो प्रत्यक्ष ही जातक शैली की छाप है। इसमें जिस प्रकार पूर्व जन्म का वृत्तांत है उसी प्रकार जातकों में भी है।

वार्त्ताओं का आरम्भ भी उसी प्रकार एक निश्चित वाक्य समूह से होता है जिस प्रकार जातकों का। वार्त्ताओं के अन्त में भी वही बात है। सभी वार्त्ताओं के अन्त में लिखा है "सो वे ·· ··········श्री गुसांईजी के कृपापात्र परम भगवदीय हते तिनकी वार्त्ता कहाँताईं कहिए।"

अवदान शतक :—बौद्ध साहित्य में हीनयान वर्ग के एक ग्रंथ अवदान शतक का लीडन यूनिवर्सिटी के डाक्टर जे० एस० स्पीअर का संस्करण अत्यन्त प्राचीन प्रतियों के आधार पर सम्पादित है। जो सेंट पीटर्सवर्ग से १९०६ में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में दस वर्ग हैं और दस-दस कथाएं प्रत्येक वर्ग में हैं। पहले वर्ग में यशोमति और सार्थवाह की कथा महत्वपूर्ण है। इसकी शैली जातकों से भिन्न है। इसमें इतिवृत्त की अधिकता है। वार्त्ता-साहित्य की शैली पर कुछ-कुछ इसका भी प्रभाव है।

जैन साहित्य :—जातकों के पश्चात अब वार्त्ता की तुलना जैन धार्मिक-गाथाजी से करना आवश्यक है क्योंकि उन ग्रंथों में भी यह शैली अपनाई गई है और इनमें से 'उपमित भव प्रपञ्च कथा' 'सिद्धर्ष प्रणीत' एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें चार प्रस्ताव हैं और इसी प्रकार के आख्यान हैं। दूसरा ग्रंथ 'आराधना कथा कोष' है जिसके प्रथम खण्ड में एकसौ पन्द्रह कथाएं हैं। सबमें इसी प्रकार किसी धार्मिक सिद्धान्त की व्याख्या किसी व्यक्ति के सहारे की गयी है। तीसरा ग्रंथ 'भावनाशतक' है। जिसके मूल रचयिता शतावधानी मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज हैं। इस ग्रंथ में बारह भावनाओं का उल्लेख है और इसी प्रकार की शैली में वर्णन की अपेक्षा सिद्धान्त को अधिक महत्व दिया गया है।

राजस्थानी गद्य और वार्त्ता-साहित्य

ब्रज-भाषा में जिस प्रकार अनेक वार्त्ताएं मिलती हैं उसी प्रकार राजस्थानी में ख्यात, बात, और वार्त्ताओं के लिखने का चलन भी बहुत पुराना है। राजस्थानी में गद्य लिखने की परम्परा भी प्राचीन है। महाराज पृथ्वीराज चौहान के समय के कुछ पट्टे और छन्दों की प्रतिलिपि मैंने श्री स्वर्गीय डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी के पास देखी थी जो राजस्थानी गद्य में लिखी हुई है। श्रीमान् महामहोपाध्याय पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ के पास जोधपुर राज्य से सम्बन्ध रखने वाली कुछ ऐसी सनदें हैं। जिनकी भाषा राजस्थानी है। इसके सिवाय कुछ अन्य जैन ग्रंथ भी राजस्थानी गद्य में लिखे देखने को मिले हैं। संवत् १६८० के

लगभग की लिखी हुई जटमल नामक कवि की 'गोरा बादल की बात' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध ही है। जिसमें पद्य के साथ गद्य भी दिया हुआ है। जैपुर में दामोदरनाथ नामक दादूपन्थी साधु का लिखा हुआ 'मार्कण्डेय पुराण' राजस्थानी गद्य अनुवाद सहित सुरक्षित है। यह ग्रन्थ विक्रम की १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का लिखा हुआ है। उसके गद्य साहित्य में और भी अनेक "ख्यातें" और "बातें" प्रसिद्ध हैं।

राजस्थानी में ख्यात शब्द का प्रयोग यश और इतिहास सम्बन्धी ग्रंथों के लिये होता है और बात का अर्थ कहानी है। ख्यातों में 'मुँह णोत नैणसी री ख्यात', जोधपुरा रा राठोड़ां री ख्यात, बीकानेर रा राठौड़ां री ख्यात, अत्यन्त प्रसिद्ध ख्यात की पुस्तकें हैं।

वार्त्ता-साहित्य इससे अधिक व्यापक और अधिक है ये 'बातें' ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक, आदि विविध विषयों पर लिखी गई हैं। मारवाड़ के कवि राजा बांकीदास ने तो लगभग तीन हजार बातें लिखी हैं। राजस्थानी साहित्य में यह परम्परा बराबर संवत् १९०४ तक इसी प्रकार चलती रही है। फतेराम वैरागी कृत "पंचाख्यान" में राजस्थानी गद्य का एक सुन्दर रूप मिलता है :—

"वारता"—"एक गाँव में रास मंडवा लागो। जाजम बिछाई, झालर बजाई। तर मरदंग्या ने तस लागी तर गाँव का छोरा नें पूछे अरे डाबढापली री जुगत बताओ। तब छोरा कीयो। ऊ कड़ो आंवा कांरूख हेटे छै। तब मरदंग्यो कुड़े गीयो। आगें देखे तो एक अस्त्री पाणी क किनार रूठी बैठी छे।" यहां स्वयं वार्त्ता शब्द का प्रयोग कहानी के लिए हुआ है।

राजस्थानी "बात" शब्द केवल कहानी का पर्यायवाची नहीं है। इस शब्द से कहानी की रोचकता, कहने वाले की विद्वत्ता, और सुनने वाले की जिज्ञासा, इन तीनों का एक मिश्रित रूप सामने उपस्थित होता है। "बात" और आधुनिक कहानी में अन्तर है। "बात" का वातावरण कुछ भारतीय है कहानी का पाश्चात्य संस्कृति की विशेषताओं से प्रभावित और मिश्रित। "बात" में वही "राजा रानी" वाला वातावरण है। इन सब में "घटना" को प्रधानता दी गई है। और घटना बाहुल्य इनकी सबसे अधिक विशेषता है। इसका कारण यह है कि 'वार्त्ता' की भाँति यह भी पहले कही गई थीं, लिखी नहीं गई थीं, अतः इसमें सुनने वाले के लिए सामग्री अधिक है, पढ़ने वाले के लिए कम। कहने में बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है पर लिखते समय उसका रूप आपसे आप संक्षिप्त हो जाता है। दूसरे, जो चीज लिखी जाती है उसकी भाषा आदि पर भी अधिक ध्यान दिया जाता है और जो केवल कहने के लिए होती है उस पर अपेक्षाकृत उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। राजस्थानी बातों में पाठक को मन्त्रमुग्ध रखने की क्षमता है। इसमें घटना का क्रम बराबर अन्त तक चलता रहता है। समस्त जीवन में फैली हुई जिन घटनाओं को लेकर आज उपन्यासों की रचना हो रही है वे सब घटनाएँ राजस्थानी "बात" में सरलता के साथ कह दी गई हैं। कहीं-कहीं तो बात में लेखक ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है और वह अपने घटना-क्रम में अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों का निर्देश करना नहीं भूला है। युद्ध के चित्रण में घाव, बार, छूट, पकड़ इत्यादि सब छोटी-छोटी घटनाओं का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार शिकार में शिकारी की शिथिलता, दक्षता, पटुता और पशु की चतुराई अथवा मूर्खता सबका समावेश किया गया है। कहीं-कहीं तो विषय का ऐसा विस्तार किया गया है कि पाठक "श्रोता नहीं"

उस लम्बी लिस्ट से घबरा उठता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि "बात" कहने और सुनने वाले दोनों के पास समयाभाव न था इसीलिए सरस विषय को अपनी वाक् शक्ति के प्रभाव से वक्ता और भी मनोरंजक बनाने की चेष्टा करता था और शुष्क विषय का वर्णन सीधी सादी रीति से कर दिया जाता था। "बात" साहित्य के भीतर राजस्थानी में ऐसी बात भी है जिनमें शताब्दियों का इतिवृत्त संक्षेप में कहा गया है और ऐसी भी हैं जिनमें एक दिन में घटित होने वाली घटनाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इस "बात" साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बोलचाल की भाषा में कहे गए इस साहित्य का रसास्वादन सब ही समान रूप से कर सकते हैं। इसके लिए पर्याप्त भाषा ज्ञान की पूर्व पीठिका की आवश्यकता नहीं है। इसकी भाषा में लेशमात्र को भी कृत्रिमता नहीं है। इससे बात के सुबोध होने के अतिरिक्त पद रचना में एक अद्भुत सरसता आ गई है, जो लिखे हुए साहित्य की भाषा में नहीं मिलती है। यही सरसता बात में रोचकता का संचार करती है और उसमें प्राण प्रतिष्ठा करती है। भाषा की सरलता और गम्भीरता के साथ प्रतिपाद्य विषय के विश्लेषण और वर्णन के अतिरिक्त इस साहित्य में एक रोमांचकारी (रोमान्टिक) तत्व का अस्तित्व भी मिलता है। इस साहित्य में इस तत्व ने एक नई-जान डाल दी है। ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के "बात-साहित्य" में इस तत्व का मिश्रण मिलता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कहीं-कहीं बात में यह तत्व साधारण सीमा का अतिक्रमण कर गया है और अप्राकृतिक और अलौकिक बन गया है। पर अधिकतर बात-साहित्य की प्राण प्रतिष्ठा में इस तत्व ने मर्मस्पर्शी, मोहक और मादक तत्व का ही काम किया है। "बात" का आकर्षण इस तत्व की धुरी पर घूमा है।

इस साहित्य की एक और विशेषता की ओर ध्यान देना आवश्यक है और वह है इसके 'बीच वार्तालाप' की न्यूनता का आभास। इसका कारण यह है कि इसमें कहने वाला एक है और सुनने वाले एक या अनेक हैं, और कहने वाला सब कुछ कहे चला जाता है, सुनने वाले अपनी सुनने की इच्छा की तृप्ति करते हैं। इस साहित्य में वार्त्तालाप (डायलॉग) को वहीं स्थान दिया गया है जहाँ "बात" लिखने वाले ने उसे नितांत मौलिक और मार्मिक समझा है, अन्यथा "बात" कहने वाला अथवा लिखने वाला मध्यस्थरूप से अपने श्रोता तक वे सब बातें पहुँचाता है। बात, राजस्थानी कहानी का चिर संचित भंडार है। इसकी चौदहवीं शताब्दी तक के रूप प्राप्त हैं। राजस्थानी में अन्य गद्य रचनाओं के लिये अन्य नाम हैं जैसे :— ख्यात, विगत, पीढ़ी, पट्टावली, पीढ़ियावली, बंसावली, कथा, कहानी, याद, हाल, हकीकत, वृत्तान्त और इतिहास। "बात" साहित्य के विषय की दृष्टि से भी अनेक विभाग हैं—

(१) प्रेम, (२) वीरता, (३) हास्य, (४) शान्त।

इनके उदाहरण के लिए (१) प्रेम सम्बन्धी बात-साहित्य—सोना री बात, ढोला मारवाणी री बात।

(२) वीरता के लिए—गोरा बादल री बात, राजा पृथ्वीराज चौहाण री बात।

(३) हास्य के लिए—बीरवल री बात, चार मूर्खां री बात।

(४) शान्त—राम दे तुंवर री बात, भांडर गाम रे पीर री बात।

इसी प्रकार कथानक की दृष्टि से भी बात-साहित्य के निम्नलिखित प्रकार दृष्टिगोचर

होते हैं :—

(१) ऐतिहासिक—रावरिणमल री बात, सिद्धराज जयसिंह री बात।

(२) अर्द्धऐतिहासिक—मूमल री बात, राजा मानधाता री बात।

(३) शुद्ध काल्पनिक—दुआरका महातम री बात, राजा नल री बात।

वार्त्ता-साहित्य और बात-साहित्य की परस्पर तुलना करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि राजस्थान में प्रचलित इस 'बात-साहित्य' का ही दूसरा या ब्रजभाषारूप यह वार्त्ता-साहित्य है। जिस प्रकार वार्त्ता-साहित्य के कथानक की दृष्टि से तथा विषय की दृष्टि से अनेक भेद किए जा सकते हैं उसी प्रकार वार्त्ता-साहित्य के भी। बात-साहित्य में भी घटना को प्रधानता दी गई है और वार्त्ता में भी। जैसे बात में क्रम को विशेष महत्व नहीं दिया गया है उसी प्रकार वार्त्ता में भी घटना विशेष पर बल देकर शेष का उल्लेख मात्र कर देने की प्रवृत्ति सर्वत्र गोचर होती है। जैसे बात में कहने वाला कहता है और श्रोता सुनता है वही हाल वार्त्ता-साहित्य का है कि कहने वाला कहता है और श्रोता सुनता है। बात-साहित्य में जिस प्रकार वार्त्तालाप मध्यस्थ कहने वाले के माध्यम से आया है उसी प्रकार वार्त्ता-साहित्य में। सीधा सादा वार्त्तालाप इसमें भी बहुत ही कम है। जिस प्रकार बात-साहित्य में अलौकिक या रोमाञ्चकारी इतिवृत्त को देकर रोचकता को बढ़ाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है उसी प्रकार वार्त्ता-साहित्य में यह प्रवृत्ति आदि से अन्त तक समान रूप से वर्तमान है। ऐतिहासिक और काल्पनिक का सम्मिश्रण वार्त्ता में वैसा ही है जैसा बात-साहित्य में। धारावाहिकरूप में कथन की एकता का तत्व भी दोनों में समान है। भाषा की स्वाभाविकता, बोलचाल का रूप भी दोनों में एक ही है। बात भी सर्वसाधारण का साहित्य है और वार्त्ता भी। दोनों समान रूप से पांडित्य और साहित्यिक जटिलताओं से दूर हैं। दोनों के मर्मस्पर्शी और मोहक तत्त्व भी एक से हैं। व्यक्ति का उपयोग भी दोनों प्रकार के साहित्य में एक सा किया गया है।

इतनी समानताओं के होते हुए यह मानना पड़ता है कि राजस्थानी गद्य में जिस प्रकार बात-साहित्य प्रचलित है उसी प्रकार ब्रजभाषा गद्य में वार्त्ता-साहित्य। अन्तर केवल इतना है कि ये धार्मिक अधिक हैं। इस वार्त्ता-साहित्य की तुलना राजस्थानी पौराणिक बात-साहित्य से ठीक बैठती है। दोनों की रूप परम्परा एक सी ही है। इतना ही नहीं राजस्थानी में कुछ ब्रजभाषा मिश्रित है। इस प्रकार का बात-साहित्य है जिनमें—पूर्णमासी री कथा, नासिकेत री कथा, इसी प्रकार की कथाएँ हैं।

बात-साहित्य और वार्त्ता-साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों प्राचीन कथा-साहित्य के ही दो रूप हैं जो एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं।

किस्सा गोई और मुगल दरबार तथा वार्त्ता-साहित्य

वार्त्ता के समान ही मुगल दरबार के अंतिम दिनों में 'किस्सा गोई' नाम की कला का जन्म हो गया था और यह भले आदमियों का एक व्यवसाय हो गया था। ये 'किस्सा गोई' लोग अवकाश के समय में अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन प्रेमकथाओं अथवा आकस्मिक

घटनाओं के अतिरंजित वर्णनों द्वारा किया करते थे। दास्ताने—अमीर—ए—हमजा सात भाग फारसी का ग्रन्थ है और इसे पढ़ने के लिए पूरी आयु चाहिए। कलाविद का मस्तिष्क भी कथानक को बढ़ाने से ऊबता नहीं। प्रो० मजनू गोरखपुरी ने अपनी एक प्रकाशित 'अफसाना' नामक पुस्तक में इस दास्तान को मुहम्मद गजनवी के समय की रचना बताया है। अन्य लोग इसे अकबर के समय का मानते हैं। इसकी शैली की छाप वार्त्ता-साहित्य पर अवश्य है क्योंकि जहाँ भी वार्त्ताकार ने इतिवृत्त के अतिरिक्त और कुछ लिखना आवश्यक समझा है अलौकिक और अद्‌भुत का आश्रय लिया है। आइने-अकबरी में भी अबुलफजल कहीं-कहीं इस प्रचलित शैली की छाप से नहीं बच सका है परन्तु वार्त्ता की संक्षिप्तता उसकी निजी मौलिकता है। पात्रों की न्यूनता की दृष्टि से भी वह फारसी दास्तान 'गोई' से स्वतंत्र है। उसमें उस तरह की दूर की कौड़ी भी नहीं लाई गई है जैसी इन ग्रन्थों में है। वार्त्ता में केवल एक ही पुरुष का अलौकिकत्व प्रकट किया गया है। वार्त्ता इस दृष्टि से स्वतंत्र है।

वार्त्ता-साहित्य में प्रकृति का मानवीकरण

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रकृति के मानवीकरण का जो विशद रूप हमें मिलता है उसकी एक हलकी सी परम्परा धारा वीरगाथाकाल में भी दिखाई पड़ती है और राम एवं कृष्ण काव्य में तो यह धारा देश, काल की परम्परा के अनुकूल उन्मुक्त रूप में बही है। वार्त्ता-साहित्य का सम्बन्ध कृष्ण काव्य से है इस साहित्य के गद्यरूप में हमें प्रकृति का चित्रण मानवी भावनाओं से ओतप्रोत मिलता है। वार्त्ता-साहित्य में केवल प्रकृति का मानवीकरण ही नहीं किया गया है उसे नित्य लीला विस्तारक भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध से देवत्व कोटि में भी स्थान दिया गया है। वार्त्ता-साहित्य में प्रकृति को जिन रूपों में लिया गया है उनमें श्री गिरिराजजी, (गोवर्द्धन पर्वत) श्री यमुनाजी, ब्रज के बारह वन और बारह उपवन, अनेक कुंड, पशु (गउएं), पक्षी (मोर, हंस, शुक, कबूतर), वृक्षों में करील, छोंकर कदंब, ढाँक को ही अधिकतर ऐसा रूप दिया गया है। इनके मानवीकरण में यह सब सजीव हो उठे हैं। इनमें मानवी आकार के आरोप की भावना प्रचलित की गई है। विशेष रीति से साहचर्य भावना से ही प्रकृति के यह तत्व हमारे भावों के आलम्बन हुए हैं। प्रकृति का मानव से चिरंतन सम्बन्ध चला आ रहा है। उसके सौन्दर्य में अपने अनुकूल और प्रतिकूल भावों की छाया देखना मनुष्य का स्वभाव हो गया है। ऐसी स्थिति में तथा जीवन की प्रत्येक स्थिति में मानव प्रकृति से समभाव स्थापित कर सकता है और उससे भावात्मक प्रेरणा भी प्राप्त कर सकता है। प्रकृति के जिन प्रतीकों का मानवीकरण भावानुभूति को तीव्र और गहरी करने के लिए किया जाता है उनसे आत्मतल्लीनता और आनन्दानुभूति प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से वार्त्ताकार ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों की अनुभूति को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से हृदयंगम कराने के लिए इस उपाय का सहारा लिया है। दूसरे प्रकृति के इन तत्वों के महत्व से वार्त्ताकार का हृदय उल्लसित हो उठा है और उसे श्रीकृष्णजी की लीला के सम्बन्ध से उनमें वह सजीवता दीखी है जिसका प्रभाव अचूक है। इन प्रकृति रूपों से भाव व्यंजना के भीतर प्रकृति का वह भव्य रूप आता है जिसमें अनन्त चिर सौंदर्य की भावना ब्रह्म विषयक महत्व और आनन्दोल्लास का आभास प्राप्त होता है। वार्त्ता-साहित्य के इस मानवीकरण और प्रकृतिवादी दृष्टिकोण में कुछ अन्तर है। वार्त्ता-साहित्य

में प्रकृति के सौन्दर्य का मूर्त रूप भी प्रत्यक्ष होकर दृष्टिगोचर हुआ है। वार्त्ताकार का दृष्टिकोण वैष्णव कवियों का दृष्टिकोण है जिसमें अज्ञात कुछ नहीं है, जो कुछ अज्ञात है वह सभी ज्ञात है। भगवान् श्री कृष्ण के जिस रूप का चित्रण करना इसके लेखक को इष्ट है उसमें जिस सौन्दर्य का, अनन्त दर्शन का आभास उसे मिला है, उसमें प्रकृति के इस तत्व विशेष का, जिसका मानवीकरण किया गया है सारा सौन्दर्य अपने आप प्रत्यक्ष हो उठा है। क्योंकि सगुणोपासना और सगुणभक्ति, रूप की साधना है, उसमें भगदान् के व्यक्तित्व की स्थापना है, जो अपने मानवी स्तर पर रूप को लेकर ही स्थित है। यहां यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि वार्त्ताकार का उद्देश्य अलंकार विधान की योजना या रस निरूपण न होकर साधना का विषय है। इसलिए भगवान् के रूप को इन अनेक अवस्थाओं और परिस्थितियों के बीच रखकर उस चिर नवीन की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम द्वारा की गई है। यहाँ एक आपत्ति यह हो सकती है कि वह मानवीकरण आदर्श है अथवा आदर्श से भी ऊँचा और दैवीकोटि का है। इसका कारण यह है कि भगवान् के संसर्ग से प्रकृति को आदर्श रूप में उपस्थित किया गया है। इस मानवीकरण में लीला की भावना प्रमुख है इसलिए गिरिराज, यमुनाजो, गोकुल की आदर्श कल्पना की गई है। यह स्थल भगवान की लीला (नित्य लीला) से सम्बन्धित होने के कारण चिरंतन प्रकृति के रूप हैं इसलिए इनकी कल्पना भी एक आदर्श कल्पना है। इस लीलाभावना का सम्बन्ध पुष्टिदर्शन से भी है। जिसके अनुसार चित् और आनन्द से अलग प्रकृति सत्मात्र है और जिस प्रकार जीव भगवान की लीला से सम्बन्धित होकर आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार प्रकृति भी इस लीला की स्थली होकर अपने भीतर स्थित (तिरोभूत चित्) और आनन्द को प्रकट कर उठती है। वार्त्ता के इस मानवीकरण के भाव के समर्थन में श्री नन्ददास, सूरदास और गोविन्द स्वामी के अनेक पद उद्धत किये जा सकते हैं।

नन्ददास :—

भक्त पर करो कृपा श्री जमुना जू ऐसी।
छाड़ि निजधाम विश्राम भूतल कियौ।
प्रगट लीला दिखाई हो तैसी॥
परम परमारथ करत हैं सबन कों।
देति अद्भुत रूप आप जैसी।
नन्ददास जो जन दृढ़ि करि चरनन गहै।
एकु रसना कहा कहै विसेसी।[1]

गोविन्द स्वामी :—

स्याम संग स्याम ह्वै रही री जमुने।
सुरति स्रम बिंदुतें सिंधु सी बहि चली मानो आतुर अली रही न भवने।
कोटिकाम वारौं रूप नैनन निहारो लाल गिरधरन संग करत रमने।
हरखि "गोविन्द" प्रभु देखि इनकी ओर मानो नव दुलहनि आई गमने।[2]

---

१ नन्ददास ग्रंथावली, काशी।
२ गोविन्द स्वामी—कांकरौली प्रकाशन—प्रथमावृत्ति।

सूरदास :—

श्री यमुनाजी अपनो दरस मोहि दीजै,
आस करौं गिरधरनलाल की, इतनी कृपा मोहि कीजै।
हौं चेरी महारानी तेरी चरन कमल रखि लीजै।
विलंब करहु जनि बोलि लेहु मोहि, दरसपरस बारि पीजै।
करौ निवास उर अंतर मेरे स्रवन सुजसि सुनि लीजै।
प्रान प्रिया की खरी ये प्यारी, पानि पकरि मेरो लीजै।
हौं अबूझ मूढ़मति मेरी अनत नहीं चित भीजै।
सूरदास मोहि यह आस, है निरखि निरखि मुख जीजै।[1]

वार्त्ता–साहित्य में 'षट् ऋतु वार्त्ता' के अंतर्गत श्यामढाक बिलछू कुण्ड, श्याम तमाल का उल्लेख तो है ही–साथ ही लिखा है कि श्री स्वामिनीजी ने श्री यमुनाजी को पास बुलाय के कहा कि 'हम तुम मिलि कै गान करें'और उन्होंने श्री गिरिराज पर प्रत्येक ऋतु के दो निकुंजों का मनोरथ किया। इस पर श्री ठाकुरजी ने छः सखियों को आज्ञा दी कि श्री गिरिराजजी के भीतर जाकर बारह कुंजों की योजना करें। इस पर यह सखियां प्रसन्न होकर श्री गिरिराज के पास आईं और प्रणाम करके बोलीं कि हमारे लिए श्री ठाकुरजी और स्वामिनीजी की ऐसी आज्ञा है। आगे लिखा है कि श्री गिरिराज ने छओं सखियों को दर्शन दिए और बहुत प्रसन्न हुए तथा वे स्वयं इन निकुंजों की रचना के लिए पधारे और 'चरनघाटी' से 'दंडौती शिला' तक उन्होंने बसंत ऋतु की दो कुंजों की रचना की। यहाँ सूर्योदय से दस घड़ी दिन तक बसंत ऋतु रहती है। दूसरी निकुंज ग्रीष्म ऋतु बनायी गई जो 'दंडौती शिला' से 'मानसी गंगा' तक रही। जहां १० बजे दिन से २ बजे तक ग्रीष्म ऋतु रहती है। १० घड़ी सूर्यास्त से १० घड़ी पूर्व–तीसरी निकुंज मानसी गंगा से श्री कुण्ड तक बनी वर्षा ऋतु की, जहाँ दो बजे दिन से सायंकाल तक सदा वर्षा ऋतु रहती है। चौथी निकुंज राधा कुण्ड (श्री कुण्ड) से चन्दसरोवर तक बनी–जहाँ सायंकाल से १० बजे रात तक शरद् ऋतु सदा रहती है। पाँचवीं कुंज चन्द सरोवर से अन्यौर तक बनी जहाँ १० बजे रात से दो बजे रात तक हेमन्त ऋतु रहती है। इन निकुंजों में एक पन्ने और सोने की थी और एक फूल पत्तियों की थी। इनके बनवाने के पश्चात् श्री ठाकुरजी ने स्वयं श्री गिरिराजजी में इनको देखा और यमुनाजी को आज्ञा दी कि, 'आप दोऊ स्वरूप सों श्री गिरिराज भीतर बिराजो।' इसके पश्चात् श्री ठाकुरजी और स्वामिनीजी ने सब कुंजों में प्रवेश किया और ३६ राग रागिनियों को ६-६ के यूथ में बाँटकर प्रत्येक कुंज में जाने की आज्ञा दी। इस वार्त्ता के अंत में लिखा है कि एक दिन सरद निकुंज में रास करते हुए श्री ठाकुरजी को भूतल के दैवी जीवों की सुधि आई और श्री स्वामिनीजी ने ठाकुरजी के मन की जानी कि यह भूतल पर प्रगट होंगे। उसी समय उन दोनों के मुख से एक साथ विरह की स्वांस निकली जिससे एक मनोहर सुन्दर स्वरूप प्रगट हुआ और यह स्वरूप श्री महाप्रभु वल्लभाचार्यजी थे। इस वार्त्ता में ही श्री गिरिराज और यमुनाजी के स्वरूप का दर्शन दिया हुआ है।

इस वार्त्ता के विवरण से स्पष्ट हो गया कि वार्त्ता में श्री गिरिराजजी, श्री यमुनाजी का ही मानवीकरण नहीं किया गया है वरन्, षट् ऋतुओं और ३६ राग रागिनियों का भी

१ सूर निर्णय पृष्ठ २८९—प्रथम संस्करण।

मानवीकरण किया गया है। प्रत्येक ऋतु और निकुंज का वर्णन चैतन्य से अनुप्राणित है और उसमें सम्प्रदाय के सिद्धान्त विशेषों की छाया भी है। भक्त का हृदय भावुक होता है वह प्रकृति के अंगों-उपांगों से अपने हृदय का सम्पर्क स्थापित कर सकता है। उसकी माधुर्य भावना की उपासना उसे सहानुभूति और सहृदयता प्रदान करती है इसलिए वह जड़ में चेतन के दर्शन करने का अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक अधिकारी होता है। भावभूमि में बिना हार्दिक सम्पर्क के सजीवता का अनुभव नहीं होता है और यह बिना तादात्म्य अनुभव किए बोधगम्य नहीं होती है। इस प्रकार कालांतर में जिन अनेक कृष्ण भक्तों ने ब्रज के "लतापता" होने की इच्छा की है, वे प्रकृति विभूतियाँ ब्रज में सर्वश्रेष्ठ हैं :—श्री गिरिराजजी जिनके सम्बन्ध में श्री गोविन्द स्वामी ने इस प्रकार गाया है :—

'धनि-धनि हो हरिदास राई।'
सानुग सेवा करत सकल विधि तातें बलि मोहन जिय भाई।
कंद मूल फल फूल पत्र लै सिला सिंहासन रुचिर बनाई।
कोमल तृन गायन चरिबे कों सीतल जल के झरना बहाई।
विविध केलि क्रीड़त जो सखन संग छिन उतरत छिन चढ़त है धाई।
राम-कृष्ण के चरन परस तें पुलकित पौहपित रहत सदाई।
इनको भाग कहां लगि बरनों कोमल कर पर लियौ उठाई।
प्रेम मुदित यों कहत गोपिका इन पर गोविंद बलि बलि जाई।[1]

षट्ऋतु-वार्त्ता में श्री गिरिराजजी के स्वरूप के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है :— "सों श्री गिरिराजजी को स्वरूप कैसो है ? सो बारह बरस के बालक को सो, और लाल वस्त्र पहेरे हैं। और लाल छरी श्री हस्त में लिए हैं। और श्याम स्वरूप हैं। सो मंद-मंद मुसिकाय के छओं सखीन सों पूछें जो कहा आज्ञा है ?" [2]

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में श्री अच्युतदास गौड़ की वार्त्ता (वार्त्ता संख्या ५४) में लिखा है कि इनको गिरिराज के प्रति बड़ी श्रद्धा थी और महीने में दो चार परिक्रमाएं दिया करते थे। इस पर एक दिन श्री महाप्रभुजी ने इनसे तीन परिक्रमाएं एक साथ देने को कहा। कई बार प्रयत्न करने पर जब यह तीनों परिक्रमाएं एक साथ दे सके तो इन्हें पहले एक ग्वारिया दीखा फिर एक सिंह दीखा और अन्त में एक गाय दीखी। यह इसका अर्थ न समझ सके तो श्री महाप्रभुजी ने बताया कि ग्वारिया तो श्री ठाकुरजी आप थे। सिंहजी श्री गिरिराजजी थे जो स्वयं गाय हो गए थे, क्योंकि तुम डरे नहीं। इस प्रकार श्री गिरिराज में अनेक स्वरूपों की कल्पना की गई है।

श्री गर्गसंहिता और श्रीमद्‌भागवत ग्रंथों में श्री गिरिराजजी का माहात्म्य दिया हुआ है। गर्गसंहिता में श्री गिरिराजजी किस प्रकार ब्रज पधारे इसका उल्लेख है और श्रीमद्‌भागवत में अन्नकूट का प्रसंग है। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २४ पूरनमल क्षत्री जेवल की वार्त्ता में इस प्रकार लिखा है........."तब आचार्यजी श्री गिरिराजजी सों पूछें जो—प्रभु-इच्छा तुम्हारे ऊपर मंदिर बनाइबे की है। सो मंदिर बनेगो तब लौकिक

---

१ गोविंद स्वामी - कांकरौली प्रकाशन - प्रथमावृत्ति
२ षट्ऋतु वार्त्ता पृष्ठ ७—अहमदाबाद संदेश प्रेस

रीति सों तुमको श्रम बहौत होयगो । तब गोवर्द्धनजी कहें, हमको परम सुख है । हमारे ऊपर हमारे प्रभु के लिए जो करें तापर मैं प्रसन्न हों—तातें सुख तें मंदिर के लिए लौकिक रीति सब करो। मोकों कछु दुःख नाहीं ।" १

इस उद्धरण से भी श्री गिरिराजजी में मानव भावना की उद्‌भावना की गई है और उन्हें एक सजीव व्यक्ति माना गया है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १६१ 'ब्राह्मण विरक्त वैष्णव, गुजरात को', की वार्त्ता में इस प्रकार लिखा है :—

"सो एक समै श्री गुसांईजी आप श्रीजी द्वार पधारे हैं। यहाँ सब वैष्णव साथ हुते। सो तहाँ देखे तो श्री गुसांईजी आप या वैष्णव कों पर्वत के ऊपर चढ़त देख्यो। सो उतार पर दोऊ गैल पर गोबर देख्यो। तब वह वैष्णव राह छोड़ि कै गोवर्द्धन कौ पग लगाय ऊपर चढ़्यो । तब श्री गुसांईजी देखिकै सिर हिलायों। तब और वैष्णव पास बैठे हुते तिन पूँछी, जो महाराजाधिराज ! यह सिर हिलाया सो कारन कहा है ? सो कहनो चाहिए। तब श्री गुसांईजी आप श्रीमुख से कहे जो श्री गोवर्द्धन मनिमय जटित साक्षात् भगवद् स्वरूप हैं । तापर मूढ़ मूरख है सो या भांति सों गिरिराज ऊपर चढ़त है। और श्री गोवर्द्धन के ऊपर दौड़त है। सो तहाँ 'ब्रह्म वैवर्त' पुरान कौ एक इतिहास है सो श्री गुसांईजी आप कहे—जो एक बार श्री कृष्णचन्द्रजी और नारदजी आय बैठे हते। तब श्री कृष्णजी ने नारदजी से कह्यो, हम पानी के प्यासे हैं। तब श्री नारदजी पानी कों चले। सो आगे जाइके देखें तो एक बड़ो सरोवर है। ताके पास दोई लरिका बैठे हैं। सो तपस्या करत हैं। और पास बड़ो पर्वत हाड़न कौ ढेर पड़ौ है। जो वह देखि के नारदजी फिर आए तब श्री ठाकुरजी पूछें, जो जल ल्याए नाहीं तब इन सब वृत्तान्त कह्यो। सो सुनि के आप मुसिकाये। तब श्री नारदजी ने पूछ्यो जो महाराजाधिराज ! या को कारन कौन भाँति है ? सो आप कहिए। तब श्री ठाकुरजी आप श्री मुख से कह्यो जो ये दोऊ योगेश्वर हैं, सो गोवर्द्धन पर्वत के दर्शन के लिए तपस्या करत हैं। सो एते जन्म भए हैं। सो इनकी अस्थिन कौ पर्वत भयौ है। सो जब कृपा होइगी तब दर्शन होंइगे। अजहूं ढील है। सो श्री गोबर्द्धन लीलात्मक भगवत्स्वरूप आनन्दमय हैं। सो गोवर्द्धन पर्वत आपुन कों आचार्य महाप्रभुन आपकी कानि करि कै दरसन देत हैं। परि जीव को ज्ञान नाहीं है। तातें हमने माथो हिलाये। जो गोवर्द्धन-हरिदास वर्य है। सो एसे कहिके या वैष्णव के मिस सबकों सिक्षा दीनी।" २

इन दोनों वार्त्ताओं से भी यह सिद्ध हो गया कि श्री गिरिराज के स्वरूप में एक ऊँची और आदर्श भावना का मानवीकरण किया गया है। ब्रजभूमि में श्री गिरिराज का बड़ा भारी महत्व है। प्रतिमास की एकादशी, अमावस्या, पूर्णिमा को विशेष रीति से यहाँ परिक्रमा देने लोग आते हैं। यों तो प्रतिदिन ही परिक्रमा होती रहती है पर इन दिनों विशेष भीड़ होती है। आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन यहाँ बड़ा भारी मेला जुड़ता है। जनश्रुति यह है कि जब श्री नाथजी यहाँ विराजते थे तब यहाँ श्रावण वदी तीज को मेला लगता था क्योंकि—ऊर्ध्वभुजा—श्रीनाथजी का प्राकट्य उसी दिन हुआ था पर जब से वे मेवाड़ चले गए तब से यह मेला आसाढ़ी पूर्णिमा को होने लगा है। दीपावली के दिन यहाँ हजारों दीपों का दीपदान

१ ८४ वैष्णवन की वार्त्ता–पूरनमल जेंवल क्षत्री की वार्त्ता

२ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता १६१

प्रतिवर्ष होता है और अन्नकूट के दिन जतीपुरा में बम्बई के भाटिया लोगों की ओर से बृहद् अन्नकूट होता है। गोवर्द्धन की दिवाली और अन्नकूट दोनों अपने ढंग के अनोखे उत्सव हैं। इसके अतिरिक्त ब्रजयात्रा के समय गत वर्ष मैंने श्री गिरिराज के एक भोग का दर्शन किया जिसे साम्प्रदायिक भाषा में 'कुनवारे का भोग' कहते हैं। इसमें लगभग ५०,००० रु० का भोग लगाया गया था। भोग के मूल्य के अतिरिक्त उसके कलात्मक ढंग से सजाने की कला भी दर्शनीय थी। इसके सजाने में बहुत से व्यक्तियों को कई घण्टे लगे थे और रातभर वैष्णवों ने भोग का दर्शन किया था। श्री गिरिराज की भूमि में प्रतिवर्ष छोटे-छोटे भोग लगते रहते हैं एवं प्रतिवर्ष मनों दूध चढ़ाया जाता है। स्वयं भरतपुर नरेश बड़ी आस्था से परिक्रमा करते हैं, और दूध चढ़ाते हैं। श्री गिरिराज के भक्त लोग १४ मील की एक विशेष प्रकार की परिक्रमा करते हैं जिसे 'दंडौती' परिक्रमा कहते हैं जिसमें दंडवत् लेटकर हाथ से निशान करके फिर दंडवत् करते हुए आगे बढ़ा जाता है। एक दंडौती परिक्रमा कम से कम आठ दिन में पूरी होती है ऐसे भी लोग हैं जो १०८ दंडौती परिक्रमाएं करते हैं। ये परिक्रमाएं तीन वर्ष में पूरी होती हैं। ब्रज में, श्री गिरिराजजी श्री कृष्णजी के ही स्वरूप माने जाते हैं और इनका प्रतिदिन गोवर्द्धन और जतीपुरा दो स्थानों में मुकुट काछनी आदि से शृंगार होता है। यह है श्री गिरिराज का मानवीकरण।

श्री यमुनाजी—श्री यमुनाजी का विवरण 'पुष्टिमार्ग' शीर्षक में दिया गया है। यहाँ वार्त्ताओं में उनके मानवीकरण का जो उल्लेख है उसमें २५२ वैष्णवों की वार्त्ता (संख्या २०६) किशोरीबाई की वार्त्ता में लिखा है कि इसकी देह शीतला में रह गई थी और यह केवल 'यमुनाष्टक' के आधे चरण का पाठ करती रहती थी इससे प्रसन्न होकर श्री यमुनाजी ने स्वयं इसकी परिचर्या का भार अपने ऊपर ले लिया था और श्री गुसांईजी ने स्वयं श्री यमुनाजी को इसके पास बैठे देखा। २५२ वैष्णवन की वार्त्ता—श्री गोविन्द स्वामी सनोढिया ब्राह्मण की वार्त्ता (संख्या २४७) में लिखा है कि यह कभी भी यमुनाजी में पैर नहीं रखते थे और यमुनाजी को साक्षात् स्वामिनीजी का स्वरूप जानते थे। 'एक सनाढ्य ब्राह्मण तिनकी वार्त्ता' में (संख्या २९) २५२ वैष्णवन की वार्त्ता में लिखा है कि यह ब्राह्मण स्नान करके श्री यमुनाजी का स्पर्श करता था। श्री यमुनाजी में पैर नहीं धरता था। एक दिन बालकों ने उसे नाव पर बैठाकर उस पार छोड़ दिया इस पर यमुनाजी ने प्रकट होकर उसको कमल दिए जिन पर पैर धरकर वह इस पार आया। 'श्री बैठक चरित्र' में गोकुल की बैठक के प्रसंग में लिखा है कि जब श्री महाप्रभुजी को 'ठकुरानी घाट' और 'गोविन्द घाट' की सीमा निश्चय करने में कठिनाई हुई और वे असमंजस में पड़े सोच ही रहे थे कि अकस्मात एक स्त्री आई जो ऊपर से नीचे तक हीरे पन्ने के आभूषण पहने थी उसने महाप्रभुजी से कहा आप इस छोंकर के वृक्ष के नीचे विराजिए। यही गोविन्द घाट है। इस प्रसंग को श्री महाप्रभुजी ने दामोदरदास हरसानी से श्री यमुनाजी की उदारता के रूप में कहा है। इससे यह सिद्ध हो गया है कि नदी शिरोमणि ब्रजकूल वाहिनी श्री यमुना का वार्त्ता-साहित्य में मानवीकरण किया गया है और पुष्टिमार्ग में स्वामिनीजी का स्वरूप, श्री कृष्ण की चतुर्थ प्रिया के रूप में माना गया है। इनका भी शृंगार होता है और विश्राम घाट मथुरा पर प्रतिदिन दर्शनीय आरती होती है।

८४ बैठकों के चरित्र में बैठक (सं० ५४) 'भड़ौच की बैठक' के चरित्र में लिखा है कि श्री नर्मदाजी ने एक सुन्दरी का रूप धरकर श्री आचार्य महाप्रभुजी के दर्शन किए थे। ऐसे

ही बैठक (सं० ८०) हिमाचल पर्वत की बैठक पर स्वयं हिमाचलजी कथा सुनने आते थे ऐसा लिखा है ये सब प्रकृति के मानवीकरण के ही उदाहरण हैं। साधारण सृष्टि में जो जड़ है पुष्टि सृष्टि में वे चैतन्य भी हो सके हैं। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता (संख्या १३५) में आगरे के एक क्षत्री ने बहुत से वस्त्र श्री गुसांईजी की भेंट किये थे और उन्होंने उनको श्री यमुनाजी में डाल दिया था। इसके संदेह करने पर श्री गुसांईजी ने वही वस्त्र श्री ठाकुरजी के शरीर पर दिखाए थे।

इसके अतिरिक्त ब्रज में बारह वन और चौबीस उपवन हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१२ वन—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, कामवन, खिदिरवन, भद्रवन, भाण्डीरवन, बेलवन, वृंदावन, महावन, लोहवन।

२४ उपवन—अराट, शांतनकुण्ड, गोवर्द्धन, वरसाना, परमदरा, नंदगांव, संकेत, मानसरोवर, शेषशायी, खेलनवन, श्री गोकुल, परासोली, आन्योर, आदिबद्री, विलासगढ़, पिसायो, अंजनखोर, करेला, कोकिला, दधिवन, रावल, वच्छवन, कौरववन, गोपालपुर।

इन वनों की रक्षा के लिए इनके वृक्षों का मानवीकरण किया गया है। ८४ वैष्णवन की वार्त्ता में (संख्या २०) प्रभुदास जलोटा क्षत्री की वार्त्ता में लिखा है :—वृन्दावन में प्रत्येक वृक्ष वेणुधारी भगवान् श्री कृष्ण का स्वरूप है और उन वृक्षों का एक-एक पत्ता चतुर्भुज स्वरूप है।[1]

भाव-प्रकाश में इसका विवरण इस प्रकार है :—

"वृक्ष वृक्ष के नीचे साक्षात् श्री गोवर्द्धनधर भक्तन के संग लीला करत हैं। ऐसे वृक्ष भगवदीय हैं। तिनके पत्र कैसे हैं? चतुर्भुज स्वरूप हैं। तथा वृन्दावन के वृक्ष-वृक्ष वेणुधारी गोवर्द्धनधर स्वरूप हैं।"

ऐसे अलीखान पठान की वार्त्ता में (संख्या ३७) दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में अलीखान पठान ने वृक्षों के पत्तों को तोड़ने की बड़ी मनाही है। इन वनों और उपवनों को एक व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है और इनमें समवेदना का अनुभव किया गया है। वनों का परिचय—वनयात्रा प्रकरण में दिया गया है। विज्ञान से भी आज वृक्षों का चैतन्य होना सिद्ध हो चुका है।

पक्षी—नदी, पहाड़ और वृक्षों की भाँति रंग विरंगे कलरव करने वाले पक्षी—शुक, पिक, कपोत, मयूर, कीटपतंग आदि भी मानव के पुराने सहचर हैं और इनके द्वारा मानव मन को अनेक प्रकार से सुख मिलता है। प्रकृति के यह बोलते हुए अग्रदूत हैं। प्रातःकाल ये अपनी चहचहाट से दिनमणि के आगमन की सूचना देते हैं। सन्ध्या समय आतुरता से अपने नीड़ों को लौटते हुए यह दिवस के अवसान की सूचना देते हैं। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग इन मूक पक्षियों की लीलाओं में उनके रंग बिरंगे परों में, उनकी संतुलित उड़ान में उस महाप्रभु सर्वशक्तिमान की महामहिमामयी लीला के दर्शन करते हैं जिसका बहुत थोड़ा सा

---

१ वृक्षे वृक्षे वेणुधारी पत्रे पत्रे चतुर्भुजः
यत्र वृन्दावने तत्र लक्ष्यालक्ष्य कथा कुतः।

भी अंश वे अनेक प्रयत्न करने पर नहीं जान पाते हैं। मानव से उपकृत होकर ये छोटे किन्तु सुन्दर जीव उसका अपकार और उपकार दोनों करते हैं। सामूहिक रूप से ये खेत के खेत खा जाते हैं और अपनी क्रीड़ाओं द्वारा मानव का मनोविनोद करते हुए उसकी वाटिका की शोभा भी बढ़ाते हैं। ये प्राणी जीव-जगत के विकास में किस क्रम में आते हैं इसका विवरण देना तो जन्तु-जगत के विशेषज्ञ का काम है। वार्ताकार ने इन्हें भी उसी भावना से अनुप्राणित किया है जिसके अधिकारी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ जीवधारी हैं। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता (संख्या ११८) में लिखा है कि गुजरात यात्रा में मही नदी के किनारे श्री गुसांईजी ने एक बार एक कबूतर कबूतरनी को नाम सुनाया था सो वह गांव में वैष्णवों की मंडली में बैठकर कथा वार्ता सुनते थे और कोढ़ी राजा के द्वारा पिंजड़े में बन्द होने पर इस बात से प्रसन्न थे कि उनका शरीर अपने राजा के काम आएगा। इस वार्ता में कबूतर और कबूतरनी आपस में बातें करते बताए गए हैं और उनकी बीट से राजा का कोढ़ अच्छा हो गया ऐसा लिखा है। यह उपाय भी स्वयं कबूतर ने ही राजा को बताया था। इसी प्रकार दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता (संख्या १८८) में लिखा है कि हंस दम्पति को श्री गुसांईजी ने नाम सुनाया था और वे वैष्णवों के पाँवों की रज में लोटते थे और उनके साथ से एक पारधी की बुद्धि निर्मल हो गई थी। यह हंस दम्पति इस वार्ता में परस्पर सम्भाषण करते दिखाए गए हैं।

इसी प्रकार 'एक सेठ राजनगर कौ जो कीड़ा भयो' की वार्ता (संख्या १७९ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता) में यह सेठ मरने के पश्चात् सर्प होता है तब वैष्णव से बात करता है, फिर कुत्ता होता है तब भी बोलता है और अन्त में कीड़ा होकर भी बोलता है और अपने मन का भाव कहता है। इसका इसी रूप में श्री गुसांईजी द्वारा उद्धार कर दिया जाता है। इन उद्धरणों से यह प्रकट है कि पशु-पक्षी, कीट-पतंग सब को वार्ताओं में एक व्यक्तित्व दिया गया है जिसके द्वारा प्राणीमात्र की समानता की भी घोषणा की गई है। वैष्णव का इन अधम योनियों के प्रति अनुराग इस मानवीकरण की भाव-भूमि है।

फूल—दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता (संख्या ४४) में श्यामदास अंजड़ा कुनवी की वार्ता में इस प्रकार लिखा है कि "तब श्यामदास ने श्री गुसांईजी को विनती करी, जो महाराजाधिराज! फूलन को कहा स्वरूप है? तब श्री गुसाँईजी ने आज्ञा करी, जो ब्रजभक्त जो गोपीजन हैं तिनके चित्त हैं सो ये फूल हैं। सो ठाकुरजी के अंग को स्पर्श करते हैं। सो सुनि कै श्यामदास बोहोत प्रसन्न भये। सो फूलन को ब्रजभक्तन को चित्त जानि कै पाँव लगन न देते। और धोए बिना हाथ न लगावते।............सो एक दिन श्यामदास देखे तो ब्रजभक्तन के यूथन के यूथ फूल घर में दीसे। तब श्यामदास ने पूछी, जो मैं तुमको पहचानत नाहीं हूं। तब ब्रजभक्तन ने आज्ञा करी, जो पुष्पन की माला तू अंगीकार करावत है सो हमारो स्वरूप है। हम तेरे भाव सों प्रसन्न होइ कै श्री गुसाँईजी की कानि तें तोको दरसन देत हैं।" (भावनात्मक संस्करण)

गाय—गाय को पुष्टिमार्ग में विशेष महत्व दिया गया है। उसे भी ब्रजभक्तों का स्वरूप ही माना गया है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता (संख्या २०) में दो भाई पटेल गुजरात में रहते थे उनकी वार्ता में लिखा है कि इस पटेल को भगवान् स्वयं अपने भोजन में से भोजन कराते थे। भाव प्रकाश में लिखा है कि "जो कोऊ गायन की सेवा अच्छी भांति करे तो श्रीनाथजी आपही तें वा पर प्रसन्न होंइ।" इसकी ७७वीं वार्ता 'एक कुनवी जाने गोपाल घास

में नाचत देखे' की वार्त्ता में लिखा है कि 'बाकों गांइन में श्री गोवर्द्धननाथ कौ दरसन भयौ।' तथा जो गाइन की सेवा अन्तकरनपूर्वक आछी रीति सों करे, ताकों श्री गोवर्द्धननाथजी इहाँई दरसन देत हैं।' इसी प्रकार कुम्भनदासजी की वार्त्ता में गो सेवा का महत्व बताया गया है। अतः यह सिद्ध हुआ कि पुष्टिमार्ग में गो को भी वही महत्व दिया गया है जो एक मानव को। वार्त्ता में ऐसे उदाहरण भी हैं जिनसे उनका पूर्ण मानवीकरण सिद्ध किया जा सके। इस प्रकार श्री गिरिराज, श्री यमुनाजी, वन, उपवन, करील, छोंकर, कबूतर, फूल इन सबको जो वार्त्ता-साहित्य में सजीव संज्ञा दी गई है वही उनका मानवीकरण है।

श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में लिखा है—"और आन्योर में माणिकचंद और सद्दू पांडे दो ब्रजवासी हते तिनके एक सहस्र गाय सदा रहतीं। तामें एक गाय श्री नंदरायजी की गायन के कुल की हती ताको नाम धूमर सो सब दिवस गायन में रहै घड़ी चार दिन पाछिलौ रहै ता बिरिया सब गायन के समूह में से न्यारी छांटि कै और श्री गिरिराज के ऊपर चढ़ि कै श्रीनाथजी के श्री मुखारविंद के ऊपर स्तन करिकै दुग्ध स्रवे। सो दूध आप आरोगे और प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त होई ता समय फेर दूध स्रवन श्री मुखारविंद में करि आवे। या प्रकार छ महीना पर्यन्त ऐसे ही दुग्ध आप आरोगे परन्तु काहू ब्रजवासी कौ ज्ञान न भयो सो एक दिन कृष्णचन्द्र और सद्दू पांडे गो को दूध स्वरुप देखि के गाय के पीछे पीछे चले गए और यह सब अलौकिक प्रकार देखिकै दंडवत करी।"[1]

इसी के आगे लिखा है कि धरमदास ब्रजवासी जो जमुनावतो गाँव के रहने वाले थे उनके यहां भी एक गो नन्दराय की गउओं के कुल की थी। वह एक दिन श्रीनाथजी के पास बैठ गई और लाख उपाय करने पर घर न गई। तब श्रीनाथजी ने धरमदास को उसको सद्दू पांडे के खिरक में कर आने की आज्ञा दी। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता (संख्या १३६) में भी गाय का महत्व दिखाया गया है।

वृक्षः—छोंकर, श्यामतमाल, पीपल, बड़ इनका महत्व तो सम्प्रदाय में है ही। वार्त्ता संख्या ८१ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में 'एक वैष्णव की वार्त्ता के अंतर्गत लिखा है कि वह एक पेड़ के नीचे जाकर उससे भगवद्वार्त्ता करता था और वृक्ष अलौकिकता से उत्तर देता था। फिर जब श्री गुसांईजी उसके समीप गए तब उस वृक्ष ने चरण स्पर्श करके देह छोड़ दी और गुसांईजी ने उस वृक्ष के पूर्व जन्म का हाल कहा। यह है वार्त्ता में वृक्ष के मानवी रूप का वर्णन जिसमें उसे पूरी मानव संज्ञा दी गई है।

ब्रजः—दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता (संख्या १६०) पीताम्बरदास की वार्त्ता के भाव प्रकाश में लिखा है "सो या वार्त्ता को अभिप्राय यह है जो वैष्णव कों एक बेर ब्रज की यात्रा अवश्य करनी। जातें ब्रज को स्वरूप हृदयारूढ़ होई। सो ब्रज भगवदीय है। तातें उनके दरसन, मानसी, किए तें भगवद्भाव उत्पन्न होई।"

---

१ श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता

वार्त्ता-साहित्य की भाव-भूमि

वार्त्ता-साहित्य में भगवदनुग्रह ही उसकी भावभूमि है। यद्यपि यह अनुग्रह-तत्व लोक-अनुभूत है फिर भी महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी से पूर्व किसी भी आचार्य ने इस तत्व की सम्यक् और सुचारु रूप से धर्म-क्षेत्र में संपूर्ण रूप में प्रतिष्ठा नहीं की थी। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के समय में जबकि ईश्वर-प्राप्ति के सभी वैदिक साधन व मार्ग नष्ट प्राय हो चुके थे, इस तत्व की परम आवश्यकता थी। इसीलिए आपने इस कालादि से अबाधित अनुग्रह-तत्व को अपनाया और उसको ज्ञान और विज्ञान रूप से पुष्टिमार्ग में प्रतिफलित किया है। आचार्य चरण ने स्पष्टतः अपने मार्ग के नियामक रूप से 'अनुग्रह' तत्व का निर्घोष किया है।

अर्थ—पुष्टिमार्ग में अनुग्रह ही नियामक है ऐसा माना गया है।[1]

इस महान् तत्व को उसके फलितार्थ रूप में दृष्टान्तों सहित जन-समाज में उपस्थित करना ही वार्त्ता-साहित्य की भाव-भूमि है। इसमें 'अनुग्रह' के रूप का, उसकी अलौकिक और विचित्र सामर्थ्य का, यही नहीं उसके लोक-वेद विरुद्ध रूपों का भी प्रत्यक्षीकरण किया गया है। इस प्रकार की भावभूमि के सुचारु अध्ययन किये बिना वार्त्ता-साहित्य का आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा उसकी विशिष्ट शैली का परिचय प्राप्त नहीं हो सकता। पुष्टि-मार्ग में 'इसी अनुग्रह तत्व' को परमफल रूप कहा है। क्योंकि पुष्टिमार्ग में अनुग्रह से ही भगवान के स्वरूप की प्राप्ति होना कहा गया है। इसलिए यह तत्व फल का भी फल है। वार्त्ता-साहित्य की इस भाव-भूमि का संकेत गोस्वामी श्री हरिरायजी ने अपने ८४ वैष्णवन की वार्त्ता के "भाव प्रकाश" में इस प्रकार किया है :—

"सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता करत कल्याण भट्ट आदि वैष्णव के संग रसमग्न होय गए। सो श्री सुबोधिनीजी की कथा कहन की सुधि नाहीं। सो अर्द्ध रात्री होय गई। तब एक वैष्णव ने श्री गोकुलनाथजी सों विनती कीनी, जो महाराजा-धिराज! आज कथा कब कहोगे? अर्द्ध-रात्री गई। तब श्रीमुख तें श्री गोकुलनाथजी ने कही, जो आज कथा कौ फल कहत हैं। वैष्णव की वार्त्ता में सगरो फल जानियो।"[2]

इस कथन में श्री गोकुलनाथजी ने वैष्णव की वार्त्ताओं को सुबोधिनीजी की कथा का फल कहा है। श्री सुबोधिनीजी निगम कल्पतरु के गलित फल रूप श्री भागवत की सर्वश्रेष्ठ रसात्मक भावमयी टीका है। उसको पढ़ वा सुन लेने के पश्चात् श्रीमद्भागवत् की प्राप्त अन्य टीकाएं नीरस, अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती हैं। श्रीमद्भागवत् का यथार्थ और सरस अर्थ जैसा श्री सुबोधिनीजी में व्यक्त है ऐसा अन्य किसी भी आचार्य वा विद्वान् की टीका में नहीं हुआ है। इससे श्रीमद्भागवत् जैसे गम्भीर रसोदधि का रसास्वाद सुबोध रीति

१ 'अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इतिस्थितिः। सि० मु०

२ (पृ० ३८४ वै० भा० वार्त्ता)

से होता है। इसमें श्रीमद्भागवत की सर्ग विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय, इन दशविध लीलाओं का विस्तार सरल, सरस और सुचारु रूप से किया गया है। इसके सम्पूर्ण सुन लेने या पढ़ लेने से श्रीमद्भागवत स्थित आनंदात्मक हरि और उसकी परमानंदमयी लीलाओं का हृदय में स्फुरण होता है और स्थिति होती है। इसीलिए श्रीमदाचार्य चरण ने आज्ञा की है कि "भागवत श्रवणमात्रेण हृदयारूढ़ो भवति विचारचिन्तनव्यतिरेकेणापि।"[1]

अर्थात् श्री भागवत के श्रवण मात्र से विचार और चिन्तन के बिना ही ईश्वर हृदयारूढ़ हो जाता है। यह श्री सुबोधिनीजी के अनुसार श्री भागवत सुनने का फल है। यही फल अनुग्रह स्वरूप है। अनुग्रह हुए बिना अनेक प्रयत्न करने पर भी हजारों वर्षों में भी ऋषि-मुनियों के हृदय में जिस ईश्वर की स्थिति नहीं होती है वह केवल श्री सुबोधिनीजी की कथा सुनने पर हृदयारूढ़ किस प्रकार हो सकती है ? इसके विषय में श्रुति कहती है........ ..... 'नायमात्मा वचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेना।' 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' अर्थात् प्रवचन से, बुद्धि से, और बहुश्रुत होने पर भी यह आत्मा प्राप्त नहीं होता है। वह तो जिसका वरण करता है, जिस पर कृपा करता है, उसी को लभ्य होता है। इसलिए वैष्णवों की वार्त्ताओं में अनुग्रह रूपी फल का निर्देश है। अर्थात् इन वार्त्ताओं में अनुग्रह का सम्यक् विवेचन है जिसे सुनकर अलौकिक भावों की प्राप्ति होती है।

भाव का अर्थ भक्तिमार्ग के आचार्यों ने 'देवादि विषयक स्थायी रति' किया है। यह स्थायी रति की सत्ता इतनी प्रबल होती है कि वह प्रेत, पिशाच, मानव, दानव तथा देव ही नहीं वरन् पशु, पक्षी और परमात्मा को भी अपने सन्निकट उपस्थित कर लेती है और वश में भी कर लेती है। यह बात लोक में भी प्रसिद्ध है। भगवान् जो किसी भी साधन से प्राप्त नहीं होते हैं वे इस भाव-भक्ति के साधन से वश में हो जाते हैं।

अनेक भक्तों के चरित्र इसके दृष्टान्त हैं और गीता में भी कहा है........

'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परतंप ॥५४॥

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान् एक अनन्य भक्ति भाव से ही प्राप्त हो सकते हैं अथवा अनुभूत होते हैं। इस प्रकार का यह दिव्य भाव भगवदनुग्रह से ही प्राप्त हो सकता है। मानवी साधन से नहीं। वैष्णव चरित्रों के सतत श्रवण से इस प्रकार के भाव की अनुभूति श्रोता के हृदय में अवश्य होती है। इससे वैष्णव की वार्त्ता कथा के फलरूप अर्थात् अनुग्रह रूप ही है। पूर्वोक्त उद्धरण में कहा है कि वैष्णव की वार्त्ता में सगरो फल जानियो।' इससे यह भी सूचना मिलती है कि वैष्णव की वार्त्ताओं में अनुग्रह के विविध रूपों वा समस्त फल प्रकारों का निर्देश किया गया है। यही वार्त्ता की भाव-भूमि है।

(१) वार्त्ता-साहित्य में अनुग्रह का रूप और भगवत् सामर्थ्य।

"अब श्री आचार्यजी महाप्रभु भूतल में प्रकट भए। दैवी जीवन के उद्धारार्थ। सो दैवी जीवन कों भगवान ते बिछुरे बोहोत काल भयो है। वासों गद्य के श्लोक में श्री आचार्यजी

१ सु० १–१–२
२ गीता अ० ११

महाप्रभु कहे हैं,[1] 'सहस्र परिवत्सर'। सो (तब) श्री ठाकुरजी कों लीला में दया उपजी। तब श्री आचार्यजी महाप्रभु कों आज्ञा दीनी, जो तुम भूतल में पधारो और दैवी जीवन को उद्धार करो।" (घरू वार्त्ता सं० १८३६—पृ० १)

इसमें भगवान् को दया उत्पन्न होना लिखा है। यही 'अनुग्रह' का स्थायी भाव है। जब किसी पर दया आती है तभी उस पर अनुग्रह किया जाता है। अतः पुष्टिमार्ग में किंवा अनुग्रह मार्ग में कारुणिक प्रभु ही बीज रूप से प्रतिष्ठित हैं। वे सभी पर करुणा ही करुणा करते हैं। इसलिये पुष्टिमार्ग में स्थित प्रभु भी 'पुष्टिस्थ' कहे गए हैं। जब प्रभु को भूतल के जीवों पर दया आई तब उन पर अनुग्रह करने के लिए अपने मुख के अधिष्ठाता वाणी के अधिपति श्री वल्लभ को जीवों को अंगीकार करने के लिए भूतल पर भेजा। आप भी श्री गोवर्द्धननाथजी के अर्चावतार रूप से गोवर्द्धन पर्वत में से प्रकट हुए। इसका उल्लेख परमानन्ददासजी की वार्त्ता में इस प्रकार हुआ है—

"सो जब श्री आचार्यजी महाप्रभु भूतल ऊपर प्रकट भए श्रीनाथजी की आज्ञा तें दैवी जीवन के उद्धारार्थ। और तैसेई श्री ठाकुरजी को परिकर सब प्रकट भयो। और श्री आचार्यजी महाप्रभु के लिए श्री गोवर्द्धननाथजी गोवर्द्धन में ते प्रकट भए।"[2]

इस कथन का तात्पर्य यह है कि दैवी जीवों के उद्धार के लिए आचार्य चरण 'लीला परिकर' सहित प्रकट हुए तब श्री गोवर्द्धननाथजी भी पर्वत में से श्री आचार्यजी महाप्रभु के लिए प्रकट हुए। श्री आचार्यजी महाप्रभु के लिए श्री गोवर्द्धननाथ इसलिए प्रकट हुए कि भूतल पर सेवा मार्ग प्रकट करना है उसमें स्वामी-सेवक भाव की स्थिति आवश्यक है। स्वामी भाव से श्री गोवर्द्धननाथजी और सेवक भाव से श्री आचार्यजी महाप्रभु रूप से प्रकट होकर स्वामी–सेवक भाव की सेवा आपने प्रकट की। इस भाव की सेवा द्वारा "अनुग्रह" को प्रकट किया है। जिसका प्रायः प्रत्येक वार्त्ता में उल्लेख मिलता है।

'आचार्य मां विजानीयात्' इत्यादि वचनों से आचार्य भगवान् के अवतार हैं। और अर्चा–भगवद्‌विग्रह–भी भगवान् का एक अवतार ही माना गया है। इसलिए दैवी जीवों के उद्धारार्थ आचार्य और अर्चा दोनों रूपों से भगवान् का आविर्भाव भूतल पर हुआ। यह जीवों के प्रति भगवान् का अनुग्रह सूचित करता है। इस अनुग्रह का स्फुट वर्णन 'निजवार्त्ता' में इस प्रकार मिलता है—

"तब आप अपने मन में बिचारे, जो-पृथ्वी पावन कों चलनो क्यों जो दैवी जीव अनेक ठौर हैं। सर्वदूर देशान्तर में।"[3]

इन पंक्तियों में आचार्य-अवतार का परम अनुग्रह रूप दिखाया गया है। क्योंकि उन्होंने स्वयं जिस जिस जगह पर दैवी जीव थे उस उस जगह पधारकर उनको अंगीकार किया और जिस तरह की प्रकृति के जीव थे उनको उसी तरह से आकर्षित करके अंगीकार किया। यह मर्यादामार्ग से पुष्टिमार्ग का वैलक्षण्य है। मर्यादामार्ग में जीव को भगवान् के पास तदनुरूप शुद्ध होकर जाना पड़ता है तब प्रभु उसको अंगीकार करते हैं। पुष्टिमार्ग में

---

१ नवरत्न
२ चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता–प्र० ७१ (सं० १८५१।)
३ निजवार्त्ता प्र०—२६।

भगवान् जीव की प्रकृति के अनुरूप होकर उसे स्वयं अंगीकार करने के लिए स्वयं प्रयत्न करते हैं। यही भगवान् का विशिष्ट अनुग्रह है।

आचार्यचरण ने चमत्कार, प्रचार और व्यवहार जिस किसी भी रीति से जीव का मन आकृष्ट हो सकता था उसी रीति से उसे अपनी ओर खींचा है और उसे अपनाया है। इस प्रकार की भक्त सापेक्षता 'अनुग्रह' का सर्वोत्तम लक्षण है। यद्यपि भगवान् सर्व निरपेक्ष है किन्तु पुष्टिस्थ होने पर वे भक्तसापेक्ष होते हैं। तब वे कारुणिक होकर अपनी ऐश्वर्य मर्यादा का भी उल्लंघन करते हैं। यही अनुग्रह का स्वरूप है। आचार्यावतार में इस प्रकार का अनुग्रह प्रकट किया गया है। अब अर्चावतार रूप श्रीनाथजी के अनुग्रह को वार्त्ता-साहित्य में कैसा रूप दिया है उसका दिग्दर्शन भी आवश्यक है।

"तहाँ श्री आचार्यजी कों चिन्ता उपजी। क्यों जो श्री ठाकुरजी ने आज्ञा दीनी है जो जीवन को ब्रह्मसम्बन्ध करवावो। तातें श्री आचार्यजी ने विचारयो जो जीव तो दोष सहित है। और पूर्ण पुरुषोत्तम तो गुण निधान हैं। ऐसे सम्बन्ध कैसे होय। तातें चिन्ता उपजी। सो अत्यन्त आतुर भये। ता समै श्री ठाकुरजी तत्काल प्रगट होइ कें श्री आचार्यजी सों पूछे, जो तुम चिन्तातुर क्यों हो? तब श्री आचार्यजी महाप्रभु आपु कहे, जो जीव कौ स्वरूप तो तुम जानत ही हो दोषवंत है। जो तुम सो सम्बन्ध कैसे होय? तब श्री आचार्य महाप्रभुजी सों ठाकुरजी ने कह्यो, जो तुम जीवन कों ब्रह्मसम्बन्ध करावो ताकों हों अंगीकार करूंगो। जो तुम जीवन कों नाम देउगे ताके सकल दोष निवृत होइगे। तातें तुम जीवन को अंगीकार अवश्य करो।"[1]

इस प्रकार सदोष जीवों का अंगीकार करना ही निर्दोष ब्रह्म का जीवों के प्रति परम अनुग्रह है।

"सो एक समै श्री आचार्यजी थानेश्वर पधारे तहाँ रामानन्द के घर उतरे। सो रात्रि को श्री आचार्यजी पौढ़े हुते। सो जब पिछली रात्रि भई तब रामानन्द ने स्त्री सों कह्यो जो बेगि उठि गोबर ठिकाने करि। नातर वैष्णव उठेंगे सब गोबर ले जाइंगे सो यह बात आचार्यजी ने सुनी ता समें श्री आचार्यजी हाथ पाँव धोई के उठे हुते तब अति क्रोधवंत भए। तब रामानन्द कों बुलायो तब आप गडुवा में ते जल लै करि रामानन्द के हाथ में मेलिकै वेद मंत्र पढ़िकें वह जल वाके हाथ में फिर लेके वाकों छिरक्यो। और श्रीमुख तें कह्यो—जो—मैं तेरो त्याग कियो। तू मेरे सेवकन सों यों कहे जो गोबर ले जाइंगे। तो तू सवारे रसोई को सामान कहाँ ते करेगो। यों कहिके आचार्यजी वाही क्षण तहाँ ते उठि चले। सो थानेश्वर सों तीन कोस उपर एक "अमीतीर्थ" है तहाँ आइ स्नान कियो।— पाछें रामानन्द की अवस्था बिकल भई देह की सुधि गई। बाजार में जो वस्तु देखे सो खाइ। कछू मर्यादा नाहीं। परि इतनी करे जो खाइ सो समर्पि के खाइ। जो—श्री गोवर्द्धननाथजी तुम आरोगियो। यों कहिके मुँह में लेइ। सो एक दिन बाजार में चल्यो जात हतो सो एक हलवाई की हाट में जलेबी आछी देखी। सो जलेबी मोल लेके कह्यो जो श्रीनाथ जो आरोगियो। ऐसे कहि के खाई। सो तब ता समै इहाँ श्री आचार्यजी श्रीनाथजी को भोग समर्पित हते। तब श्री आचार्यजी सों श्रीनाथजी ने कह्यो, जो हम आज जलेबी

---

१ चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता पृ० १ सं० १८५१।

आरोगी है। तब श्री आचार्यजी ने पूछयो जो किन समर्पी हो ? तब श्रीनाथजी ने कह्यो, जो रामानन्द पण्डित ने समर्पी ही। तब श्री आचार्यजी ने कह्यो जो मैंने तो वाको त्याग कियो है। तुम वाके यहाँ क्यों आरोगत हो ? तब श्रीनाथजी ने कह्यो, तुम मोकों काहे कों सोंप्यो हो ? हम तुम्हारी कानि तें अंगीकार करत हैं। तुम जाकों सोंपत हो ताकों त्याग (तुम) करो परि तुम्हारे सोंपे को हम नाहीं छोड़त।"[१]

इस प्रकार अर्चावतार श्रीनाथजी के द्वारा जीव के सुदृढ़ अंगीकार को वार्त्ताकार ने सुस्पष्ट किया है, वही उनका असीम अनुग्रह है।

अनुग्रह का शब्दार्थ है—अनु+ग्रह अर्थात् मुक्ति आदान (मुक्ति के अनन्तर ग्रहण) स्वीकार करना। जिसका तात्पर्य है आद्योपांत सुदृढ़ अंगीकार। अनुग्रह लोक सिद्ध है। लोक में भी इस प्रकार का अनुग्रह देखा जाता है। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी ने 'निबंध' में भगवदनुग्रह का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

'पुष्टिः कालादि बाधिका'। 'कालादि निवर्तको अनुग्रहापरनामा। वीर्य विशेष रूपो भगवद्धर्मः।'[२]

'पोषणं तदनुग्रहः' इस भागवत-वाक्य के अनुसार भगवान् का पोषण एवं पुष्टि ही अनुग्रह है। वह अनुग्रह कालादि अर्थात् काल, कर्म और स्वभाव का निवर्तक पुष्टि का अपर नाम है। वह भगवान् का एक विशेष वीर्य (पराक्रम) रूप धर्म है। भगवान् नित्य है इसलिए उनका यह धर्म भी नित्य है। जैसे सूर्य और सूर्य का धर्म रूप प्रकाश। यह धर्म इतना बलवान् है कि वह काल, कर्म और स्वभाव इन तीनों अजेय तत्वों पर भी विजय प्राप्त करता है। जिस पर भगवान् का अनुग्रह होता है उसको काल, कर्म और स्वभाव बाधा नहीं कर सकते हैं। भगवान् की प्राप्ति में यही तीन प्रबल तत्व बाधक हैं। भगवान् का अनुग्रह होने पर ये सब अनुकूल हो जाते हैं।

अनुग्रह विविध अवस्थाओं में षट् स्वरूप सम्पन्न होता है। उसके वे षट् स्वरूप ये हैं—१ रक्षा, २ कृपा (पुष्टि), ३ प्रवेश, ४ अभिवृद्धि, ५ स्थिति, ६ आश्रय। इसका परिचय इस प्रकार है—

(१) रक्षा—पुष्टि—भगवान् भक्तों की अलौकिक रीति से रक्षा करते हैं यह उनका अनुग्रह ही है। भगवान् की दृष्टि ही रक्षा—पुष्टि है।[३]

(२) कृपा—पुष्टि,—यह प्रभु की प्रमुख शक्तियों में से एक है। यह जिसमें प्रवेश करती है वही पुष्ट होता है। यह काल आदि का भी उल्लंघन कर सकती है। आचार्यजी श्री सुबोधिनीजी में आज्ञा करते हैं—"पुष्टिर्नाम यथा सर्वे पुष्टा भवन्ति, सा यत्र न प्रविशति ते वृहदहारा अपि न पुष्टा भवन्ति।"[४]

(३) प्रवेश—कार्य-सिद्धि के लिए भगवान् का जगद्वर्तीपदार्थों में प्रवेश करना यह पुष्टि है। आचार्यचरण आज्ञा करते हैं—"पुष्टि : कार्यसिद्धचर्थं सर्वसामर्थ्यस्य तत्र प्रवेशः।"[५]

---

१ रामानन्द पण्डित की वार्त्ता ८४ वै० वार्त्ता।

२ तत्वदीप निबंध

३ 'रक्षण पुष्टि'—श्री सु० २-७-२६ :

४ पुष्टिः कालादि बाधिकाः (निबंध) "१०-३६-५५"

५ तृतीय स्कंध सुबोधिनी

(४) अभिवृद्धि —स्थित पदार्थों की अभिवृद्धि भी पुष्टि है। आचार्य चरण आज्ञा करते हैं "स्थितानामभिवृद्धिः।"[१]

(५) स्थिति—इसमें पोषण,ऊति और मन्वंतर इस प्रकारकी भागवत् की तीन लीलाओं का समावेश है। "अर्थादिते उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयात्मानो भवन्ति" इसका तात्पर्य यह है कि 'सर्ग' 'विसर्ग' और 'स्थान' ये तीन लीला उत्पत्ति रूप हैं। पोषण, ऊति और मन्वन्तर ये तीन स्थिति रूप हैं शेष तीन निरोध रूप।[२]

(६) आश्रय—यह स्वयं भगवान् कृष्ण ही है और उनकी आश्रय लीला रूप 'अनुग्रह-आश्रय' (प्रकाश)[३]

इस प्रकार आचार्यचरण आज्ञा करते हैं :—

"सर्वा लीला पुष्टिमध्ये प्रविशन्तीति मे मतिः।

अतः सृष्टिस्तु निखिला कृष्णार्थेति विनिश्चयः।" (निबन्ध)

इस प्रकार सारे जगत के उत्पत्ति, स्थिति, संहार आदि व्यवहार भगवान् की पुष्टि लीला से ही चल रहे हैं। सारे विश्व की स्थिति (पालन) भगवान् के अनुग्रह से ही चल रही है। द्रव्य, कर्म, काल और जीव आदि सब पदार्थों की भगवान् के अनुग्रह के बल से ही स्थिति है जो थोड़ी भी उपेक्षा भगवान् करदें तो कुछ भी न रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् की पूर्वोक्त दशविध लीलाओं का पुष्टि में ही समावेश होता है। अतः निखिल सृष्टि कृष्ण के अर्थ ही है इसमें कोई संदेह नहीं।

अब अनुग्रह के इन षट् रूपों का वार्त्ता-साहित्य में दिग्दर्शन कराना भी आवश्यक है।

(१) रक्षा—जगन्नाथ जोषी की वार्त्ता में रक्षा का अलौकिक रूप इस प्रकार स्पष्ट हुआ है.......... "पाछें एक दिन जगन्नाथ जोषी बहिः भूमि आवत हते तब उन गिरासिया रजपूत ने जगन्नाथ जोषी उपर पाछें तें तरवार चलाई। तब श्री ठाकुरजी ने पाछें ते तरवार हाथ सों थामी। और श्री मुख तें कह्यो, जो याकों मारे मति। तब वह रहि गयो। जगन्नाथ जोषी पाछें सो देखे तो ठाकुरजी श्रमित से पाछे ठाढ़े हैं। तब वा जगन्नाथ जोषी ने वा गिरासिया राजपूत सों कह्यो फिर रे पापी तें यह कहा कियो।"[३]

(२) कृपा—पुष्टि की अलौकिक सामर्थ्य, जिससे आत्मा की पुष्टि की प्रतीति होती है और काल पर विजय पाने की पुष्टि भी—

"बहुरि सेठ पुरुषोत्तमदास एक दिन मन्दिर में बैठे-बैठे मन्दिर वस्त्र करत हते। इतने ही में बेटा गोपालदास श्री ठाकुरजी कों शयन करायवें को न्हाय के मन्दिर में आये। तब देखे तो सेठ पुरुषोत्तमदास बैठे-बैठे मन्दिर में वस्त्र करत हैं। तथा गोपालदास के मन में आई जो सेठजी वृद्ध भए हैं। तो अब हों सेवा में तत्पर होऊँ तो आछो। यह बात सेठ पुरुषोत्तमदास ने गोपालदास के मन की जानी। तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कह्यो—बेटा! आगे आउ। तब गोपालदास आगे आइ देखे तो सेठ पुरुषोत्तमदास ने कह्यो, जो बेटा भगवदीयन

---

१ द्वितीय स्कंध-उद्देशाध्याय

२ सुबोधिनी

३ चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता, सं० १८५१

सों काल की कछू न चले। भगवदीय हैं सो सदा तरुन हैं। परि जो अवस्था होय ताकों मान दीयो चाहिये।"[1]

काल पर विजय पाने की अन्य भी कई वार्त्ताएँ हैं जिनमें से एक का उद्धरण यहां दिया जा रहा है—

"सो वह बालपने तें विधवा भई हती। सो बालपने तें सेवा करत-करत वृद्ध भई। तब एक दिना काल आयो। सो अन्नकूट पै आयो। सो वा डोकरी कों श्री गुसाँईजी की कृपा तें वह काल मूर्तिमान दीसे। तब काल ने कही, जो अब यहाँ ते चलो। तब डोकरी ने कही, जो मेरे श्री ठाकुरजी के अन्नकूट कौ उत्सव आयो तातें मैं नाहीं आऊँ। तब काल तो फिरि गयो। सो अन्नकूट पाछें फेरि काल आयो। तब डोकरी ने कही, जो अब तो प्रबोधिनी आई तातें मैं नाहीं आऊँ। तब काल पाछौ गयो।.........तब काल तो दिक्क होई कै धर्मराज तें कही, जो महाराज! वा डोकरी ने तो बरस दिन में आठ फेरा करवाए। जब मैं जाऊँ तब कहे, जो अब तो फलानो उत्सव है। तातें नाहीं आउंगी।"[2]

इसी प्रकार गोविन्द स्वामी ने सदेह भगवल्लीला में प्रवेश किया है। यह भी काल के ऊपर पूर्ण विजय है। इसमें पुष्टि शक्ति का अलौकिक प्रभाव दिखाया गया है।

(३) प्रवेश—मूर्तियों में तथा जड़ जीवों में भगवान् का प्रवेश होना और उनमें भगवान् वा भगवद्धर्मों का साक्षात् होने का वार्त्ता में इस प्रकार वर्णन है—

"और एक समै श्री आचार्यजी महाप्रभु मथुरा पधारे सी मथुरा के बाजार में होय निकसे। सो एक भरिया कसेरा अपनी जीविका अर्थ बहोत स्वरूप सिद्ध करके हाट पै बैठावत हतो। तामें अनेक बड़े छोटे लालजी बैठे हते। अनेक श्री मदनमोहनजी के बड़े छोटे कितनेक चतुर्भुजस्वरूप हते। सो श्री आचार्यजी, सगरे भगवद्स्वरूपन की ओर देखि कै कहै, जो भली मण्डली भेजी भई है। यह कहि आगे पधारे। सो श्री आचार्यजी की दृष्टि सों पुरुषोत्तम को आवेस सगरे स्वरूपन में भयो। सो सगरे स्वरूप श्री आचार्यजी के पास दौरि आई कै कहे, जो हमारी पुष्टिमार्ग में सेवा करो। यह सबन ने कही।"[3]

इसी प्रकार पुष्पों में भगवद्भाव का प्रवेश होने का एक दृष्टान्त यहां उपस्थित किया जाता है—

"सो एक दिन स्यामदास देखे तो ब्रजभक्तन के यूथन के यूथ फूल घर में दीसे। तब स्यामदास ने पूछी जो मैं तुमको पहचानत नाहीं हूँ। तब ब्रजभक्तन ने आज्ञा करी, जो पुष्पन की माला तू अंगीकार करावत है। सो हमारो स्वरूप है। हम तेरे भाव सों प्रसन्न होइ कै श्री गुसांईजी की कानि तें तोकों दरसन देत हैं। इसी प्रकार कृष्णदास मेघन, चाचा हरिवंशजी आदि सेवकों में भगवान् के दिव्य धर्मों का प्रवेश हुआ था जिससे उन्होंने कई अलौकिक कार्य किये हैं। कृष्णदास मेघन की वार्त्ता में बद्रीनारायण के पर्वत की एक शिला को उठाना, तीन दिन व्यासाश्रम में निरंतर खड़ा रहना, अग्नि हाथ में उठाना और आचार्यजी महाप्रभुजी का मन जानकर गंगा सागर को रात्रि में तैरना।

---

१ ८४ वार्त्ता १६, सं० १८५१

२ भा० सि० २५२ वै० की वार्त्ता–सं० १४४

३ महाप्रभुजी का प्राकट्य वार्त्ता-पृष्ठ ८१

इस तरह चाचा हरिवंशजी का जमुना पार चलना इत्यादि यह सब कार्य अनुग्रह रूप भगवान् के धर्म के प्रवेश बिना असंभव है।[1]

(४) अभिवृद्धि—भगवान् के समर्पे हुए पदार्थ की अभिवृद्धि होती है। वह कभी घटता नहीं है। इस तथ्य को चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में सुन्दरदास माधवदास की वार्त्ता में तथा कोकिलावन की बैठक के चरित्र में इस प्रकार दिखलाया है—

(अ) पाछे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी ने माधवदास सूं कह्यो, जो माधौदास! या गाम में जितने वैष्णव होइ तिन सबन कों महाप्रसाद लेन कों बुलाइ ल्याव। तब माधौदास ने श्री आचार्यजी महाप्रभु सों कही, जो महाराज! महाप्रसाद तो थोरो है। और या गाम में वैष्णव तो बोहोत हैं। सो सबको कैसे पहुँचेगो? तब श्री आचार्यजी महाप्रभु कहे, जो तू मूर्ख है। महाप्रसाद कबहू निघट्यो है? जा वैष्णव को बुलाइ ल्याव।.........तब श्री आचार्यजी महाप्रभु सबन के आगे महाप्रसाद की पातरि धरि कै सबन कों महा-प्रसाद लिवाय दियो और महाप्रसाद कौ थार भरयो को भरयो ही रह्यो। तब श्री आचार्यजी महाप्रभु ने माधौदास सूं कह्यो, जो माधौदास देखि वैष्णव कों दृढ़ विश्वास चाहिए। महाप्रसाद कबहूँ न घटे।"[2]

(ब) "तब सब नागान कों जिमाई दिए। ता पाछे सब वैष्णव भली भाँति सों जें उठे। और खीर पाँच सेर ज्यों की त्यों रही। सो निघटी नाहीं। ता पाछे आप आज्ञा कियो, जो इहाँ के बंदरन कों तथा इहाँ के मोरन कों खवाय देऊ। सो तब उनहूं कों खवाइ दई। तो हू खीर ज्यों की त्यों रही।"[3]

(५) स्थिति—इसकी पोषण, ऊति और मन्वन्तर इन तीन लीलाओं का इस प्रकार वार्त्ता-साहित्य में उल्लेख हुआ है :—

(क) पोषण—पोषण का तात्पर्य है यहाँ भगवद्भाव के पोषण से भगवान् भक्तों के भावों का हरेक प्रकार से पोषण करते हैं, जिनसे उनकी देहादि की स्थिति बनी रहती है। यदि उनके भाव का पोषण न हो तो उनकी स्थिति प्रत्येक रूप में असंभव हो जाती है। इस विषय में दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता का यह प्रसंग दृष्टव्य है:—

"और दामोदरदास को श्री आचार्यजी तीसरे दिन दरसन देते। मारग की रहस्य वार्त्ता कहते। ऐसी कृपा करते और कदाचित् तीसरे दिन दर्शन न होतो ता दिन दामोदरदास के पेट में पीड़ा बहुतै होती। अत्यन्त कष्ट पावते। और पाछे दरसन होतो तब तत्काल कष्ट निवृत्ति होती। ऐसी भाँति केतेक वर्ष पर्यंत श्री आचार्यजी दरसन दीनो। ऐसी कृपा करते।" ....पृष्ठ २३।

(ख) ऊति—ऊति का तात्पर्य है सद्वासना, असद्वासना और सदसद् वासना। यही सद्वासना असद्वासना और सदसद् वासनाएँ जब भगवान् के सम्बन्ध वाली होती हैं तब वह 'भावना' का रूप धारण करती हैं। यह उसका पुष्टि रूप है। "भावो भावनया सिद्धे साधनं नान्यदिष्यते।"[4]

---

१ प्र० वि० पृ० ३४

२ भावना वाली प्रति पृ० ७०४–५

३ बैठक चरित्र

४ सिद्धान्त निर्णय

इसका तात्पर्य यह है कि भावना से सिद्ध हुआ भाव ही एकमात्र साधन है। भावना का विशेष परिचय आगे दिया जा रहा है। अस्तु इस प्रकार की भावनाओं का स्वरूप पद्मनाभदास आदि की वार्त्ताओं में इस प्रकार मिलता है—

(क) सद्भावना···· "····परिद्रव्य कौ संकोच बहुत हतौ तातें श्री ठाकुरदासजी कों भोग समर्पे सो छोला तरि कें समर्पे। सो छोला आछी रीति सों बीनि पहिले दिन भिजोए राखे दूसरे दिन नीकी भाँति सों तलि कै समर्पे। सो या भाँति पातरि में एक मुठी दारि की भावना करते। एक मुठी भात की। एक मुठी खीर की। सागादिक सबको नाम ले न्यारी न्यारी मुठी धरते। सो श्री ठाकुरजी सगरी सामग्री कों भाव सों आरोगते।"[1]

इसी प्रकार 'परे' ब्रजवासी की वार्त्ता में भी सद्भावना का वर्णन है :—

"सो श्री गुसांईजी ने वाकौ हाथ पकरि कै कह्यो, जो-परे। तब ब्रजवासी ने मन में विचार्‌यो, जो सब वैष्णवन को सेवा पधराय देत हैं। सो तैसे ही मोकों परे ठाकुर दियो। सों उहां सों ब्रजवासी भण्डारी पास आयो। सो भण्डारी सों कह्यो, जो-आज मोकों दोय पेटिया दीजियों। ············सो याने दोइ पेटिया दीने। पाछे वह ब्रजवासी सीधा दोई लेके "बिलछू कुण्ड" पर गयो। तहां वाने रसोई करी। पाछे दोई पातरि बराबरि की धरी। पाछें पुकारन लाग्यो, जो परे भैया बेगि आऊ। ············तब यह चित्त में विचारि के श्री गोवर्द्धननाथजी बेगि ही पधारे।"[2]

(ख) असद् भावना—उज्जैन से चार कोस उरे में रहती उस ब्राह्मणी की वार्त्ता में असद् भावना का इस प्रकार वर्णन हुआ है—

"तब वा बाई ने वा साक्त सों कह्यो, जो—पूत! तैं मोकों जिवाई। ऐसे वा बाई ने वा साक्त सों कह्यो, तब वाके घर तें श्री ठाकुरजी श्री गुसांईजी के घर पधारे।"

इसमें भगवान् के अतिरिक्त अन्य के प्रति कर्त्तव्य बुद्धि होना ही असद्भावना है।

(ग) सद्-असद् भावना—सद्-असद् भावना का वर्णन दामोदरदास संभल वाले और जगन्नाथ जोषी आदि की वार्त्ताओं में इस प्रकार हुआ है :—

"बहुरि एक दिन दामोदरदास श्री ठाकुरजी कों राजभोग समय सैया मंदिर में सैया संबारन गये। तब वे देखे जो दुलीचा ऊपर बिलाई ने बिगारो है। तब दामोदरदास ने कह्यो, जो श्री ठाकुरजी अपनी सैया हूं राख सकत नाहिं, ऐसे कह्यो, तब श्री ठाकुरजी ने थार चौकी ऊपर सूं लात मार कै डार दीनों और दामोदरदास सों श्री ठाकुरजी ने कह्यो जो सेवक तू के मैं ?" जगन्नाथ जोषी की वार्त्ता में—"एक दिन जगन्नाथ जोषी श्री ठाकुरजी कों शृङ्गार करि बानो पहिनाय के राज भोग को थार साजि कै श्री ठाकुरजी के आगे भोग धर्‌यो। पाछे बाहिर आये तब जगन्नाथ जोषी के मन में ये आई जो श्री ठाकुरजी बानो पहरि आरोगत हैं सो थार छुई जायगो। यह बात श्री ठाकुरजी ने जगन्नाथ जोषी के मन की जानी। सो थार लात मार कै चौकी सों नीचे डार दिये।[3]

---

१ भावनावाली प्रति पृ० ८५

२ पृ० ख० पृ० ३१८

३ भावना वाली प्रति पृष्ठ ३२४

इन दोनों उद्धरणों में सद्वासना रूप श्री ठाकुरजी के साक्षात् रूप की हार्दिक स्वीकृति है और अन्य भाव उनकी असद् भावना रूप में। पुष्टिमार्ग में असद् भावना और असंभावना विपरीत भावना है जिनका विस्तृत वर्णन जगन्नाथ जोषी की वार्त्ता के भाव प्रकाश में हुआ है। ये असंभावना, और विपरीत भावना असद्वासना रूप से बाधक मानी गई हैं।

मन्वन्तर—मन्वन्तर का तात्पर्य है समय से अच्छे कर्मों की प्रवृत्ति। अलीखान, रसखान आदि विजातीय विधर्मी पुरुषों की भी प्रवृत्ति उस समय अच्छे कर्मों की थी। यही नहीं पुष्टिमार्ग में शरण आने वाले प्रायः सभी के कर्म भगवान् के प्रति निवेदन किये जाते थे। इसलिए वे सब अच्छे रूप वाले ही होते थे। विक्रम की १६वीं शताब्दी में भक्ति का साम्राज्य था। इसलिए वह समय (मन्वंतर) पुष्टि रूप ही था। इतिहास और भक्त चरित्र इस बात की साक्षी देते हैं; जैसा कि पीछे कहा गया है कि—सभी लीलाओं का समावेश पुष्टि में होता है। इस व्यापक दृष्टिकोण से उस समय की सभी धार्मिक प्रवृत्ति पुष्टि-भगवदनुग्रह से सम्बन्धित ही थी। वह काल ही धार्मिक विकास का काल था। इस प्रकार पोषण, ऊति और मन्वंतर ये तीनों लीलाओं की स्थिति (अनुग्रह) रूप से दिखाई गई है।

(६) आश्रय— आश्रय द्विविध रूप वाला है एक आधार स्वरूप दूसरा लीला स्वरूप। आधार रूप से आश्रय को भगवान् का ही स्वरूप माना है और लीला स्वरूप में अनुग्रह रूप। ये दोनों रूप वार्त्ताओं में हैं।

आचार्य चरण आज्ञा करते हैं—

प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत्॥
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात् कृष्ण एव गतिर्मम॥[1]

इसमें सर्वदेव को प्राकृत (प्रकृति के अधीन) कहा है। अक्षर को गणितानंद कहा है। केवल हरि ही पूर्णानन्द स्वरूप है अतः वही कृष्ण ही मेरी गति हो।

इस प्रकार का एक आश्रय आधार रूप का दृष्टान्त नन्ददासजी की वार्त्ता में इस प्रकार वर्णित है:—

"तब तुलसीदास ने नंददास सों कही, जो तुम हमारे संग चलो। सो गाम रुचे तो अयोध्या में रहो, पुरी रुचे तो काशी में रहो। पर्वत रुचे तो चित्रकूट में रहो। वन रुचे तो दण्डकारण्य में रहो। ऐसे बड़े-बड़े धाम श्री रामचन्द्रजी ने पवित्र किये हैं। तब नंददास ने उत्तर देयबे कों यह पद गायो:—

जो गिरि रुचे तो बसों श्री गोवर्द्धन, गाम रुचे तो बसों नंद गाम।
नगर रुचे तो बसों श्री मधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम।
सरिता रुचे तो बसों श्री यमुना तट, सकल मनोरथ पूरन काम।
'नंददास' कानन रुचे तो बसों भूमि वृन्दावन धाम'।"

इसमें कृष्ण का एकाश्रय दिखाया गया है।

अनुग्रह लीला-आश्रय का द्वितीय रूप है। अनुग्रह का अर्थ मुक्ति के बाद भी ग्रहण अर्थात् आदान स्वीकार करना है। वार्त्ता-साहित्य में ऐसी अनेक वार्त्ताएँ हैं जिनमें

१ कृष्णाश्रय—श्लोक ८

शरण में आने के पश्चात् उस मुक्तिरूप मूल स्वरूप स्थिति के पश्चात् भी उसका अर्थ लीला में ग्रहण किया गया है। कृष्णदास अधिकारी की समर्पित वेश्या को लीला प्राप्ति के अनन्तर अर्थात् मुक्तिरूप मूल स्वरूप स्थिति के पश्चात् भी ब्रह्मसंबंध द्वारा ग्रहण किया गया था—

"सो वेश्या की छोरी देह तजि कें लीला में गयी तहाँ लीला में ललिता श्री स्वामिनीजी विराजत हैं। सो कृष्णदासजी लीला में ललिता रूप होय जगत तें काढ़ि कें लीला में पठाये सो, लीला में ललिताजी ने श्री स्वामिनी जी द्वारा ब्रह्मसम्बन्ध कराय अपनी सेवा में राखे।"[1]

ऐसे ही अलीखान पठान की बेटी की वार्त्ता है जिन पर लीला का साक्षात्कार हो जाने के बाद भी ब्रह्मसम्बन्ध देकर विशेष अनुग्रह किया गया है। शरणस्थ जीवों के भ्रष्ट हो जाने पर भी उनके अनुग्रह से लीला में ग्रहण करने के भी अनेक दृष्टान्त वार्त्ता-साहित्य में मिले हैं। गुलाबदास गुलाबखाँ होकर भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय और अगमनागमन आदि करता था फिर भी उसको शीघ्र ही लीला में प्रवेश कराया गया था।[2]

इस प्रकार भगवान् के अनुग्रह किम्वा पुष्टि के षट्विधि रूपों के स्वरूप और उसकी दिव्य सामर्थ्य को भी वार्त्ता-साहित्य में प्रतिफलित किया गया है। इनसे आत्मा की उन्नति में निराश हुए निस्साधन दैवी जीवों के जीवन में पुनः दृढ़ विश्वास प्राप्त कराते हुए उत्साहित करना ही वार्त्ता-साहित्य की भाव-भूमि है। भगवान् के अनुग्रह की महिमा अनन्त है। इसके लिए प्रसिद्ध है :—

"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वंदे परमानन्द माधवम्॥"

के स्थान पर सम्प्रदाय में इस प्रकार कहा गया है —

"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वंदे श्रीमद् वल्लभनंदनं॥"

वास्तव में इस श्लोक को श्री गुसांईजी ने चरितार्थ किया है। आपने मूक गोपालदास की वार्त्ता में अपना चर्बित ताम्बूल देकर केवल वाचाल ही नहीं किया वरन् शास्त्र ज्ञान में भी पारंगत किया है इसी प्रकार पंगु किशोरीबाई को आपने कृपा करके चलने की शक्ति ही नहीं दी वरन् भगवान् की नित्य लीला भी इसी देह से अनुभव करा दी। यह है भगवान् के अनुग्रह की महिमा। सूरदास ने भी अपने सूरसागर के आरम्भ में भगवान् के इसी परम विलक्षण और विचित्र स्वभाव वाले अनुग्रह का इस प्रकार स्मरण किया है—

"बन्दों श्री हरि पद सुखदायी
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे,
अंधे को सब कछु दरसाई,
बहरो सुने, गूंग पुनि बोले, रंक चले सिरछत्र धराई।"

इस अनुग्रह की अपरिमित शक्ति को कोई भी बुद्धिशाली तथा अनुभवी व्यक्ति किसी काल में अस्वीकार नहीं कर सकता है। वार्त्ता-साहित्य में प्राप्त अलौकिक चमत्कारी घटनाएँ सभी इसी अनुग्रह शक्ति की देन हैं। अनुग्रह सामान्य और विशेष, शक्ति वाला है। उसका

१ भाव प्रकाश कृष्णदास की वार्त्ता—पृष्ठ ८५२
२ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता—संख्या १५८

सामान्य-शक्ति-रूप प्राणीमात्र का पालन पोषण करता है। इसका विशेष शक्ति-रूप केवल दैवी जीवों के उद्धारार्थ है। इसलिए वार्त्ता-साहित्य में दैवी जीवों का उल्लेख बार-बार आता है। ये दैवी जीव तीन प्रकार के हैं। ससाधन, निस्साधन, दुष्टसाधन। इनका परिचय इस प्रकार है—

(१) **ससाधन**—ससाधन जीव वे हैं जो वैदिक साधनों द्वारा परम फल की प्राप्ति करना चाहते हैं।

(२) निस्साधन—निस्साधन जीव वे हैं जो लोक वेद के किसी भी साधन पर अवलम्बित नहीं रहते हैं। वे केवल भगवान् की कृपा पर ही निश्चिन्त रहते हैं। उनके मन की गति परम तत्व श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी भी साधन, धर्म, अवतार, विभूति आदि में नहीं होती है। वे एक मात्र श्रीकृष्ण में ही अनन्य गति वाले होते हैं।

(३) दुष्ट साधन—दुष्ट साधन वाले जीव परमात्मा से दूर रखने वाले साधनों में रत रहते हैं फिर भी भगवान् उनको अपनी विशिष्ट कृपा द्वारा शरण में लेते हैं और उन पर विशेष अनुग्रह करते हैं। वार्त्ता-साहित्य में इन तीनों प्रकार के जीवों का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

ससाधन जीवों पर किस प्रकार अनुग्रह किया गया है उसका दिग्दर्शन इस प्रसंग से होता है—"वा पाछें श्री आचार्यजी महाप्रभु उत्तर दिशा पधारे। सो ऊपर दोय हाड़ के पर्वत दूर तें सूरज की किरन तें झलके, सो दामोदरदास कृष्णदास ने देखे। तब आचार्यजी महाप्रभु सों कृष्णदास ने कही, जो महाराज! ये दोऊ पर्वत चमके हैं सो जाने नाहीं जात हैं ये पर्वत काहे के हैं? तब श्री आचार्यजी महाप्रभु कहे, जो ये हाड़न के पर्वत हैं। इहां दोय महापुरुष तपस्या करत हैं। सो केई जुग होय गये। तपस्या करत-करत देह छूटि जात है। सो ये ब्राह्मण के घर जन्म पावत हैं। काहे तें जो ये पापाचरण तो करत नाहीं—सो जब यज्ञोपवीत होत है तब इनको ज्ञान होत है। जो हम तपस्वी हैं सो दोऊ या ठिकाने आइ अपने हाड़ उठाइ डारत हैं। वाही ठिकाने पुनः भूमि सिद्धि करि ब्रह्म की तपस्या करत हैं। ये गायत्री जपत हैं सो ये दोऊ तपस्वी उनके हाड़ के पर्वत है सो इनने ऐसी तपस्या करी परन्तु यह फल सिद्ध न भयो। तब दामोदरदास ने विनती कीनी, जो महाराज, ताको कारन कहा? तब श्री आचार्यजी कहे जो मुक्ति तो कहा परन्तु और भी जो फल मांगते सो मिलतो। परन्तु ये यह चाहते हैं जो श्री गोवर्द्धन पर्वत के पास हम जन्म पावें, तहाँ श्री ठाकुरजी की लीला को अनुभव होय। श्री गिरिराज के निकट स्वरूप लीला है सो साधन साध्य नाहीं। मन में कितनो ही साधन करौ परन्तु ब्रजलीला महा दुर्लभ है। तातें यह लीला को अनुभव नाहीं। तब कृष्णदास ने कही जो महाराज इनको कोई प्रकार फल सिद्धि होइ ऐसी कृपा करौ। काहे ते जो आपु तों दैवी जीवन के उद्धारार्थ प्रकट भये हैं। सो दैवी जीव होय तो कृपा करो। तब श्री आचार्यजी कहे, जो दैवी बिना यह फल रूप अलौकिक मनोरथ हूँ न होई। कदाचित् काहू को मनोरथ उठे तो तुच्छ फल स्वर्ग धनादिक मिलै मनोरथ हू छूटि जाई। परन्तु ये दैवी जीव हैं। ब्रह्मा, विष्णु कई बार आये स्वर्ग फल, मुक्ति देन लागे परन्तु ये काहू फल की ओर देखे नाहीं। अष्ट सिद्धि आई के लुभाये परन्तु ये काहू फल में लुभाये नाहीं। काहे तें ये रास लीला के दोऊ भ्रमर हैं परन्तु साधन करयो तातें ढील बहुत भई। ब्रज लीला को फल कृपा साध्य है।—अब इनको उद्धार करिबे आये हैं, अब करेंगे।"[1]

१ श्री महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता पृष्ठ ६४–६५।

निस्साधन—जिनको किसी भी साधन का बल न था ऐसे निस्साधन दैवी जीवों में भी अतीव निस्साधन हंस-हंसनी, कबूतर-कबूतरनी आदि की वार्त्ताएँ निस्साधन दैवी जीवों के उद्धार की पुष्टि करती हैं। इन जीवों को न तो कोई लौकिक न वैदिक और न कोई अन्य साधन ही थे। केवल श्री गुसांईजी की कृपामात्र से इनका उद्धार हुआ था। ये प्रभु की शरण होकर अलौकिक ज्ञान सम्पन्न हो गये थे।

१—"सो चुगो चुगते-चुगते आपके आगे आये सो वहाँ चुगा कों लगि गए। तब आपने कृपा करिकै दोऊ कबूतर-कबूतरनी को नाम सुनायो। तब दोऊन कों अपने स्वरूप को ज्ञान भयो।"[1] तथा

२—"सो एक दिन श्री गुसांईजी आप मानसरोवर पै संध्यावंदन करत हते। सो तहाँ एक हंस-हंसनी को जोड़ा श्री गुसांईजी के आगे आई के जल पीवत हतो। तब आपने कृपा करिकै वाको नाम सुनायो। सो वे हंस-हंसनी मानसरोवर के वृक्ष ऊपर बैठे रहते। सो जो कोई वैष्णव आवै तो ताकी पाँवन की रज में लोटते। ऐसे सदैव करते। पाछें हंस-हंसनी की देह छुटी। तब भगवद्चरणारविंद को प्राप्त भये।"[2] वार्त्ता-साहित्य में ऐसे अन्य कई निस्साधनों पर अनुग्रह करने का उल्लेख हुआ है।

दुष्ट साधन—इनमें पारधी, चोर, ठग आदि की अनेक वार्त्ताएँ हैं, जिनको श्री गुसांईजी ने शरण में लिया था और उन पर अनुग्रह कर उनका उद्धार किया था जैसे—"तब पारधी ने आय कै दंडवत् कीनी, और विनती करी, जो महाराज मैं आपकी शरण आयो हूँ तातें मा पर कृपा करि नाम सुनाइये। ········तब आपने आज्ञा करी जो तू श्री जमुनाजी में नहाइ आउ। ····तब आपने कृपा करि कै नाम सुनायो सो····यह पारधी भलो वैष्णव भयो।"[3]

२—"पाछे विनती कीनी, जो महाराज, मैं चोर हूँ, आपकी शरण आयो हूँ····तब श्री गुसांईजी ने वासों आज्ञा करी जो तू चोरी तो छोड़ सकें नाहीं। पर तू दया राखिये, सांच बोलिये। तो तेरो काज होइगो। तब श्री गुसांईजी आप वा चोर कों कृपा करि कै दूसरे दिन नाम दै सेवक कियो।"[4]

इस प्रकार विशेष शक्तिस्वरूप अनुग्रह से दैवी जीवों का उद्धार होना वार्त्ता-साहित्य में दिखाया गया है। अनुग्रह के विविध रूप और शक्तियों का निरूपण करते हुए अनुग्रह के देवगुह्य रूप को उपस्थित करना ही वार्त्ता-साहित्य का लक्ष्य रहा है। भगवान् ने पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा इस प्रकार तीन सृष्टि उत्पन्न की हैं। तीनों के मार्ग भी भिन्न हैं। उनमें भी मर्यादा मार्ग से पुष्टि का मार्ग अति भिन्न है। कभी-कभी विरुद्ध भी है। मर्यादा मार्ग में कर्म, ज्ञान और उपासना भक्ति तथा उनके प्रकार ये सब जीवोद्धार के साधन हैं। वहाँ थोड़ी भी अनुग्रह की ढिलाई नहीं होती; क्योंकि वह शासन मार्ग है, थोड़ी सी भूल भी सब साधनों को फलहीन कर देती है, किन्तु अनुग्रह मार्ग में भक्ति आदि सभी साधन साधन नहीं, वहाँ तो अनुग्रह ही साधन है। कृपा से ही जीव का उद्धार होता है। जहाँ कुछ भी साधन नहीं हो सकता वहाँ दिखाने के लिए व्यापार की जगह कुछ साधन की तरह दिखा दिया जाता है। लोग समझते हैं कि भगवान् का नाम लेने से या अन्य भक्ति साधन से जीव

१ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता भाव प्रकाश १७८
२ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता ,, १८८
३ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता ,, १८
४ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता ,, ११२

का उद्धार हुआ। क्योंकि इस प्रकार यदि यह न दिखाया जाय तो सभी लोग अनुग्रह के भरोसे मर्यादा आदि मार्गों को छोड़ दें। तब विभिन्न मार्गों का चलना सम्भव नहीं रहे। इसलिए भगवन्नाम स्मरण आदि को आगे रखकर भगवदनुग्रह अपना कार्य करता है। लोग जानते हैं कि सेवा व स्मरण आदि करने से जीव का उद्धार व भगवद् प्राप्ति होती है। वस्तुतः, उद्धार आदि तो भगवदनुग्रह से ही होता है। इसलिए भक्ति, सेवा, स्तुति, कीर्तन आदि करने से अनुग्रह छिपा रहा आवे यही अनुग्रह का देवगुह्य रूप है। ऐसा अनुग्रह देवताओं की भी समझ में नहीं आता है, इसलिए आचार्यचरण ने आज्ञा की है— "अनुग्रहो लोक सिद्धो गूढ़भावान्निरूपितः।" वार्त्ता-साहित्य में अनुग्रह के इस देवगुह्य रूप का इस प्रकार निरूपण हुआ है—

१—"तब श्री गुसांईजी गोविन्द स्वामी को बुलाइ कहें, जो गोविन्ददास आसकरन कोंहू कछू सिखावो याकों राजमद नाहीं है। आसकरन वैष्णव हैं। और तुम्हारे कीर्तन के प्रभाव सों सरनि आये हैं। ......तब गोविन्द स्वामी ने कही जो महाराजाधिराज ! आप जब जीवन कों सरनि लियो चाहत हो तब अनेक उपाय कर लेत हो। सो मेरो नाम क्यों लेत हो ?"[१]

२—"तब श्री गुसाँईजी आज्ञा किये जो स्नान करि आऊ। तोकों हम नाम दे सरनि लेंगे फेरि तेरे मन में आवे सो करियो। हम तोकों कबहूं न छोड़ेंगे।"[२]

इस प्रकार अनुग्रह के देवगुह्य रखने से ही वही अनुग्रह "मार्ग" रूप से सम्मुख आया; जिसमें शरण, सेवा, नवधाभक्ति और भावना आदि तत्व साधन रूप से सम्मिलित हुए। अब इस अनुग्रह मार्ग के लोक-वेद विरुद्ध के विविध रूपों को दिखाना भी इष्ट है।

अनुग्रह मार्ग के लोक-वेद विरुद्ध रूप—यह अनुग्रह मार्ग की सर्वोत्तम अवस्था है। इसमें प्रेम और विश्वास की सिद्धि है इसमें भक्त लोक-वेद का उल्लंघन करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। लोक-वेद से विरुद्ध चलने वाले व्यक्तियों को इस अनुग्रह मार्ग में स्थान मिला है और उनके वेद विरुद्ध कृत्यों से श्री ठाकुरजी प्रसन्न हुए हैं।

१—"सो वेस्या ने सुनी तब श्री गुसांईजी सों आइ विनती करी, महाराज ! मेरो अंगीकार करिये तब श्री गुसांईजी कहे हम वेस्या कों सेवक नाहीं करत। ....तब वेस्या ने कह्यो आज नौमों दिन है बिना अन्न जल मेरे अब प्रान छुटेंगे। जो महाराज अंगीकार नहीं करोगे ; तब श्री गुसाँईजी ने वेस्या को नाम सुनायो। ....ब्रह्मसम्बन्ध कराए। लालजी पधराय दिए वैष्णवन सो कहे ;याको रीति भाँति सब बताए दीजो। ता प्रकार यह सेवा करे। ऐसे करत वेस्या को अटकाव भयो। सो वैष्णव तो बरजे जो चार दिन लों कछू मति जलादि छुवो। परन्तु वाको बरजे प्रेम बोहोत सो रह्यो न जाइ, अटकाव में सेवा करे। तब सबन ने श्री गुसांईजी सों कही, जो महाराज वह वेस्या अटकाव में हू बहोत बरजे परन्तु मानत नाहीं सेवा करत है तब श्री गुसाँईजी याके ऊपर श्री ठाकुरजी प्रसन्न देखि कै कहे, जैसे करत है तैसे ही करियो।"[३]

२—"पाछें वीरबाई के गर्भ रह्यो तब घरी दोय रात्रि पिछली रही तब बेटा भयो सो लोग सगरे बेटा की बधाई व्यवहार में लागे। श्री ठाकुरजी कों चारि घरी दिन चढ़ि

---

१ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १

२ श्मशान वाला वैष्णव

३ वीरबाई की वार्त्ता

गयो । तब वीरबाई बहोत दुख करन लागी । जो मेरे ठाकुरजी को अबेर भई । सब सों कहे जो श्री ठाकुरजी को कोऊ जगाओ सो कोऊ जगावे नाहीं ऐसे करत प्रहर दिन चढ्यो तब तो वीरबाई मन में महाताप करि कै रोवन लागी— तब श्री ठाकुरजी सैया में से बोले जो तू रुदन काहे कों करत है, कोऊ नाहीं जगावत तो तू ही मोकों जगाव। तब वीरबाई उठि कै गोबर लगाय आछे न्हाय काँछ मारि कै श्री ठाकुरजी कों जगाये। मंगला करि कै शृंगार करि कै रसोई करि भोग धरि प्रसाद लै पड़ि रही—तब श्री ठाकुरजी प्रसन्न होय वीरबाई सों कहे—मैं तो पर बहोत प्रसन्न हों।"[1]

(२) देवी का अनादर—"पाछे दोऊ भाई पटेल ने कह्यो, अब कहा करिये। दोऊ रुपया श्री ठाकुरजी के वृथा जात हैं—पाछें जब अर्द्धरात्रि भई तब दोऊ भाई पटेल उह तालाब पै जाय कै अंध्यारे कुआँ में देवी कों धरि आए। तब देवी वाही समै विकराल रूप धरि कै वा गाम के राजा पास वाही समै रात्रि कों गई। सो जाइके राजा कों जगायो। राजा रानी दोऊ विकराल स्वरुप कों देखि कै डरपे—तब देवी ने राजा सों कही। मन्दिर तो जब बनवाओगे तब सही परि मैं तो अंधियारे कूप में परी हों। तेरे गाम के दोइ भाई पटेल हैं सो तेने उनके ऊपर दंड क्यों कर्यो—तब राजा पटेल की बोहोत बड़ाई करि कै अपने घर आयो।........"[2]

(३) वैदिक धर्म का उल्लंघन—"सो एक दिन चुकटी मांगिवे को गयो, सो अबेर भई। सो घर आइ कै ताप उपज्यो सो बेगि न्हाय कै मन्दिर में बुहारी करत हतो सो बुहारी की जेबरी टूटि गई। सो जनेऊ तोरि कै बुहारी उतावली सों बाँधी। सो जनेऊ की कछु सुधि नाहीं रही। पाछें श्री ठाकुरजी कों जगावन गयो। तब श्री ठाकुरजी प्रसन्न भए।"

(४) पति की हत्या—"तब वह सेठ की बेटी ने चाचाजी के वचन मानि कै अपने धनी को जहर दियो। सो वह धनी मर्यो। सो घर के सब रोवन लगे।—तब हरिवंशजी ने चरनामृत दियो। सो उनने लै जाइ कै वाके मुख में घोरि कै डार्यो तब वह जीयो।—ता पाछें चाचाजी उन सबन सों कहे, जो अब जैसे यह बहू कहे तैसेई तुम करियों तो सुख पाओगे।"[3]

ये सब उद्धरण मर्यादा मार्ग के विरुद्ध हैं। किन्तु मर्यादा में जो दूषण माना गया है उसी को पुष्टिमार्ग में भूषण माना जाता है। एक मार्ग का विरोध दूसरे मार्ग के लिए बाधक नहीं कहा जा सकता।[4]

इन उद्धरणों में वेद-विरुद्ध आचरण में भी अनुग्रह दिखाया गया है ।

अनुग्रह की अलौकिक और विचित्र सामर्थ्य—यद्यपि अनुग्रह की विशिष्ट सामर्थ्य पूर्व बतला चुके हैं किन्तु यहाँ पर उसके अलौकिकत्व और वैचित्र्य एवं सामर्थ्य के कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं जो वार्त्ता-साहित्य की भाव-भूमि की चरम सीमा है इससे वार्त्ताकार यह निस्संकोच प्रतिपादित करता है कि भगवदनुग्रह अघटित घटनाओं को उसी प्रकार घटा सकता है जिस प्रकार भगवान् की माया शक्ति घटा सकती है। भगवान्

१ वीरबाई की वार्त्ता
२ दोसौ बावन वै० की वार्त्ता १३३,
३ वार्त्ता सं० ३१
४ "मार्गान्तर विरोधो मार्गान्तरे नोपयुज्यत इति मर्यादा भंगोऽत्र न दूषणम्।"

की योगमाया ने देवकी में से बलभद्र के गर्भ को मथुरा से गोकुल लाकर रोहिणी में स्थापित किया था। यह एक अघटित घटना है इसी प्रकार की अन्य भी कई घटनाएँ श्रीमद्भागवत में योगमाया शक्ति की मिलती हैं। ठीक वैसे ही भगवदनुग्रह, जो भगवान् की द्वादश शक्तियों में से ही एक पुष्टि शक्ति है, ऐसी अनेक अघटित घटनाओं को भी घटा सकता है। उसके कई उदाहरण वार्त्ता में इस प्रकार दिए गए हैं—

(१) तीन तुंबा वाले वैष्णव की वार्त्ता—"तब वह ब्राह्मण राजा सों आई कै पूछ्यो, जो तुम्हारे पुत्र कौन प्रकार सों भए। मोसों तो महादेव ने कह्यो हतो, जो राजा के भाग्य में पुत्र नाहीं है और श्री ठाकुरजी हू पुत्र की नाहीं कीनी हती। सो अब ये पुत्र तुम्हारे कैसे भये। सो कहो। तब राजा कहे, जो हम तो जानत नाहीं, जो फलानों वैष्णव कहि गयो हतो। ताके वचन सत्य भए———पाछे वह ब्राह्मण जाइकै महादेव सों कह्यो, जो श्री गुसांईजी के सेवक के आसीरवाद तें पुत्र भए हैं। तब महादेवजी जाइके श्री ठाकुरजी सों कहे, जो श्री गुसांईजी के सेवक के आसीरवाद तें पुत्र भए हैं। तब श्री ठाकुरजी कहे, जो वैष्णव ने मेरे ऊपर कृपा करी है। जो वैष्णव यह कहतो जो राजा के घर श्री ठाकुरजी प्रगट होइंगे तो मोकों प्रगट होनो परतो। यह तो पुत्र भए ताकौ कहा आश्चर्य।"[१]

(२) दो सांचोरा भाइयों की वार्त्ता—"पाछें सब वैष्णव उहाँ ते धड़ छोरि ल्याए। और सीस तें छोरि ल्याये। सो सीस धड़ के ऊपर धरचो। ता पाछें श्री आचार्यजी महाप्रभु श्री गुसांईजी कौ स्मरन करि कै नाम ले चरनोदक, और महाप्रसाद कंठ में मेल्यो। और मुख में मेल्यो। ता पाछें महाप्रसादी-उपरना हतो सो कंठ में बांध्यो। तब वह सीस धड़ मिलि गयो।"[२]

अनुग्रह की इन अलौकिक एवं विचित्र सामर्थ्य की बातों की पुष्टि आचार्यचरण के इस वाक्य से भी होती है—"त्वत्सेवका नामलौकिक कर्तृत्वं यत्र तत्र त्वयि किं वक्तव्यम्।"[३]

अर्थ—जहाँ आपके (भगवान् के) सेवकों ने अलौकिक कार्य किए हैं वहाँ आपके लिए तो क्या कहना ? इससे भगवान् और भगवान् के अनुगृहीत सेवकों की तर्कागोचर महिमा को स्पष्ट करना ही वार्त्ता-साहित्य की भाव-भूमि का प्रधान अंग होना प्रतीत होता है।

अनुग्रह की विपरीत गति—कैसा भी अनुगृहीत जीव हो और कैसी भी निष्काम सेवा करता हो किन्तु यदि उसमें थोड़ा सा भी अभिमान का अंश हो तो अनुग्रह उसके लिए विपरीत गति रूप बन जाता है। उसकी सभी सेवायें अभिमान के कारण भगवान् की अप्रसन्नता का कारण बन जाती हैं–जैसा कि, गोविन्ददास भल्ला नारायणदास आदि की वार्त्ताओं के निम्नलिखित उद्धरणों से प्राप्त होता है—

"गोविन्ददास भल्ला ने अहंकार करि कहें देव अंस गुरु अंस कैसे लेहुँ ? तब श्री आचार्यजी महाप्रभु ने कही जो सेवा छोड़ि देउ।" अहंकार के कारण ही इनकी मृत्यु हुई। इसी प्रकार नारायणदास ने भी श्री गुसांईजी के घर का खर्च पूछा था।

अनुग्रह का प्रतिफलन—अनुग्रह से भाव की प्राप्ति होती है। यह भाव प्रथम सत्ता रूप से और फिर स्थायी रति रूप से फलित होता है। जिस पर जिसका अनुग्रह होता है उसका उसके प्रति भाव होना स्वाभाविक है। भाव अनुग्रह कर्त्ता के प्रति रुचि उत्पन्न करता

१ २५२ वै० वा० पारिख संस्करण ख सं० ६३

२ वार्त्ता संख्या १०३, पृ० ६७ पारिख सं० ख

३ दोसौ बावन १०–२५–५

है और फिर श्रद्धा से उसका स्मरण कराता है। भावात्मक स्वरूप दृढ़ होने पर उसके भीतर वह भाव अपनी स्थायी सत्ता बना लेता है। यह स्थायी सत्ता ही क्रमशः आगे चलकर अनुग्रह कर्त्ता के प्रति स्थायी रति (स्नेह भक्ति) उत्पन्न करती है। यह भाव का मनोवैज्ञानिक रूप है। वार्त्ताकार ने "अनुग्रह" के विवेचन में इसे ही अपनी भाव-भूमि बनाया है। वार्त्ता-साहित्य में 'सत्ता स्वरूप भाव' को व्यापक ब्रह्म बतलाते हुये उसी को स्थायी रति के आलम्बन रूप में पुरुषोत्तम कहा है। यह पुरुषोत्तम स्थायी रत्यात्मक भक्त के हृदय के निरोधात्मक देव हैं। वह उस भक्त के हृदय रूपी शेष पर स्थित है और लीला क्षीराब्धि में विराजमान शक्तियों (लक्ष्मी) से सेवित सेव्यमान कलानिधि स्वरूप हैं। अतः उसे भावात्मक भक्त हृदय के भाव स्वरूप कृष्ण अथवा पुरुषोत्तम माने हैं। सूरदास की वार्त्ता के आरम्भ में दिया हुआ यह श्लोक "नमामि हृदये शेषे" उक्त निरोधात्मा-भाव स्वरूप पुरुषोत्तम के स्वरूप का सूचन करता है। यह पुरुषोत्तम लोक-वेद प्रसिद्ध पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के विग्रहों में भक्त के हृदय की भावना से प्रवेश कर सेवक की सेवा अंगीकार करते हैं और यह अनुग्रह उसको सर्वोद्धारक रूप से प्रतिफलित होता है। यही जब सेवक के विशुद्ध हृदय पर जाकर बैठते हैं और साक्षात् दिव्य आकृति वाले द्वादशांग रूप से सेवक के सम्मुख हंसते, बोलते और खाते पीते भी हैं तब ये केवल भक्तोद्धारक रूप में अपने अनुग्रह को प्रतिफलित करते हैं। इस बात को वार्त्ता साहित्य में इस प्रकार कहा गया है—[1]

"सो भगवत्स्वरूप में दो प्रकार कौ स्वरूप है। एक भक्तोद्धारक और एक मर्यादा पुष्टि रीति सों सब कों दर्शन दें सो सर्वोद्धारक। सो भक्तोद्धारक स्वरूप के विषे सबको दर्शन नाहीं। जो जहाँ तांई वैष्णव को प्रेम न होय तहाँ तांई मर्यादा पुष्टि रीति सों अंगीकार और दर्शन है। भक्तोद्धारक स्वरूप, सर्वोद्धारक मर्यादा पुष्टि रूप तो सिंहासन पै बिराजि कैं सब कों दर्शन देत हैं। सो स्वरूप में ते बाहर प्रगट होय।"

भावना से श्री विग्रह में प्रवेश करने का उल्लेख भी कृष्ण भट्ट की वार्त्ता में है। हरिरायजी ने "भावनात्रय निरूपण" में 'आवेश' का निरूपण किया है। इस प्रकार वार्त्ताकार ने, अनुग्रह के वैज्ञानिक रूप को भी उसकी भाव-भूमि में स्थान दिया है। उसके अनुसार वार्त्ताओं में लोक वेदातीत भक्त के स्वतन्त्र भावरूप पुरुषोत्तम की ही सेवा को पुष्टि का अनुग्रह रूप कहा है और इस भावनारूप सेवा के लिए लोक-वेद सुप्रसिद्ध पुरुषोत्तम को ही आधार रूप में ग्रहण किया है अर्थात् लोक-वेद प्रसिद्ध पुरुषोत्तम के ही लीलात्मक श्री विग्रहों में इस भावात्मक पुरुषोत्तम की स्थापना सिद्ध भक्त के द्वारा की जाती है। वही पुरुषोत्तम वार्त्ता में 'निधि' के रूप से कहे गये हैं और उनकी शरीर और द्रव्यादि से की जाने वाली सेवा ही पुष्टि की तनुजा वित्तजा मानी गई है। यहाँ पुरुषोत्तम की सेवा अनुग्रहात्मक स्वधीना व स्वतन्त्र भक्ति सेवा भावना का पोषक है। इस प्रकार वार्त्ता-साहित्य की भाव-भूमि में अनुग्रह की शुद्ध अद्वैतता का बोध कराना ही लक्ष्य रहा है।

---

१ गोविन्द स्वामी की वार्त्ता—(भाव प्रकाश)

वार्त्ता की हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रंथों की सूची

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता की हस्तलिखित प्रतियाँ—

(१) सं० १६९७ की विद्या विभाग सरस्वती भंडार, कांकरौली की हस्तलिखित प्रति जिसका उल्लेख डाक्टर दीनदयालु गुप्त ने अपने 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' में किया है।

(२) त्रिकमलाल सेठ घिया बड़ौदा की प्रति जिसमें प्रारम्भ में श्री हरिरायजी कृत छियासठ अपराध हैं। फिर ४० पृष्ठ तक निजवार्त्ता है। इसके आगे चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता पृष्ठ २५२ तक है। इसके पश्चात् निजवार्त्ता के ३६ पृष्ठ हैं फिर सुआ की वार्त्ता के नौ पृष्ठ हैं। इसके आगे ऊधो प्रति भक्तन के वचन हैं फिर सूरदास के पदों की अनुक्रमणिका है, जो तीनसौ पृष्ठ पर समाप्त होती है। अन्त में श्री गुसांईजी की सेवक अजबकुंवरिबाई की वार्त्ता के चौदह पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में तीस लाइनें हैं। इसमें लिपि काल नहीं दिया है पर स्याही और कागज की दशा देखने से यह सं० १८०० से पूर्व की प्रति प्रतीत होती है।

(३) हरिकृष्ण व्यास मथुरा की सं० १८३६ की लिखी ८४ वैष्णवन की वार्त्ता की प्रति, पृष्ठ संख्या २३६।

(४) जेठानंद आसनमल ट्रस्ट मुंबई की प्रति—११५ पृष्ठ तक ८४ वार्त्ता, प्रसंगात्मक निजवार्त्ता घरू, गुसांईजी के सेवकन की वार्त्ता तथा चौरासी के फुटकर प्रसंग—पुष्पिका—'इति श्री आचार्य महाप्रभुन के चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता सम्पूर्णं। समाप्तं। शुभंभवतु कल्याणमस्तु:। शुभमस्तु:। श्रीरस्तु। संवत् १८५१ मिती वैशाख सुदि छटी शनौ दिने लिखितं ब्राह्मणज्ञाति पुष्करणा वास्तु भीमसेन मेघराजात्मजेन लिपीकृतं श्रीनगर धाम मध्ये लिषी हे॥ श्री। श्री। श्री। श्री।'

तथा—

इति शिक्षा मार्ग सम्पूर्णा इतिश्री गुसांईजी महाप्रभु के सेवकन की तथा श्री गुसांईजी की वार्त्ता ॥ शुभंभवतु ॥ शुभमस्तु । श्रीरस्तु । आरोग्यमस्तु। संवत् १८५१ (१८५१) मिती वैशाष वदी २ द्वितीया बुधे लिखितं श्रीनगर ठट्ठाधाम मध्ये ब्राह्मण ज्ञात पुष्करणावास्तु भीमसेन मेघराजात्मजेन लिपीकृतं। लेखक-पाठकयो:। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री। श्री।'

आलोचना—पुस्तक काली स्याही से लिखी है। केवल अन्त में वार्त्ता का नाम तथा पुष्पिका लाल स्याही से है। पहले ग्रन्थ में ११५ पृष्ठ हैं और दूसरे में ६३ पृष्ठ हैं। दूसरा अंश प्रसंगात्मक वार्त्ता का है जिसमें केवल ५४ प्रसंग हैं। पुस्तक का साइज़ ९ × ५ इंच है और प्रत्येक पृष्ठ में लगभग १८ लाइनें हैं। लिपिकार की लिपि अत्यन्त सुन्दर है।

(५) बड़ौदा—श्री द्वारकादासजी परीख के संग्रह में। पृष्ठ संख्या ३१४। आकार १० × ५½ इंच। प्रति पृष्ठ में २३ लाइनें। इसमें निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता सब हैं। पुष्पिका इस प्रकार है :-'मिती वैसाख सुदी पंचमी के दिन श्रीजीद्वार मध्ये लिखित त्रवाड़ी बलदेवज्ञाती

सनोढिया ब्राह्मण जो बांचे ताको जय श्रीकृष्ण। सम्वत् १८७७ के पोथी वैष्णव लषमीदास की है।' अन्त में अजबकुंवरबाई की वार्त्ता के १४ पृष्ठ हैं और अनुक्रमणिका के तीन पृष्ठ हैं।

(६) श्री गोवर्द्धननाथजी पुस्तकालय बड़ौदा। पृष्ठ संख्या ३३ तक निजवार्त्ता, पृष्ठ ३३ के नीचे से पाँचवीं पंक्ति से श्री दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता आरम्भ हुई है। किन्तु मूल से पृष्ठ ३६ तक निजवार्त्ता हांसिये पर लिखा गया है। इसकी पृष्ठ संख्या १५६ तक नीचे की ओर से दसवीं पंक्ति तक ८४ वैष्णवों की वार्त्ता है फिर इसी पृष्ठ से "घरू वार्त्ता" आरम्भ हुई है जो १७२ पृष्ठ पर १६वीं पंक्ति के पश्चात् समाप्त हुई है। इस प्रति का लेखक है माखनलाल ब्राह्मण। उसने अपने सम्बन्ध में लिखा है 'गोकुल में खिरकी वाले मुहल्ला' में लिखी। सम्वत् १९२९ मिती चैत वदी सप्तमी शुक्रवार। प्रत्येक पृष्ठ में २८ पंक्तियाँ हैं और पुस्तक में दोनों ओर हांसिया छोड़ा गया है। आकार १२×७ इंच है।

हस्तलिखित प्रतियाँ—

संस्कृत—८४ तथा दोसौ बावन और निजवार्त्ता—घरूवार्त्ता और बैठक-चरित्र के कुछ प्रसंग संस्कृत वार्त्तामणिमाला नाम की एक पोथी में सरस्वती भंडार कांकरौली बंध संख्या ८०/१ में सुरक्षित है। इसकी एक दूसरी प्रति भी कांकरौली सरस्वती भंडार में उपलब्ध है। इसमें श्लोक संख्या ३७०० है।

प्रसंगात्मक—चौरासी तथा दोसौ बावन वैंष्णवन की वार्त्ता की हस्तलिखित प्रतियां

(१) कांकरौली विद्या विभाग, सरस्वती भंडार बंध संख्या $\frac{१०१}{१}$ की संवत् १७४६ वि० की प्रति। इसका विशेष विवरण ग्रंथ परिचय में लिखा गया है। प्रसंगात्मक प्रतियों में यह सबसे प्राचीन उपलब्ध प्रति है जिसमें तिथि वार सहित दी गई है।

(२) छगनभाई कीर्तनियाँ बहादुरपुर के संग्रहालय में सुरक्षित सं० १८०४ की प्रति।

हस्तलिखित दोसौ बावन वार्त्ता—

(१) बहादुरपुर श्री गोवर्द्धननाथजी—के मंदिर की प्रति सम्वत् १८७१ माघ सुदी परवा को यह पोथी पूर्ण श्रीगोकुलजी मध्ये भई। यह पौथी लिखी दयाचन्द ब्राह्मण गुजराती औदीच्य वासी श्री गोकुलजी के ने जो या पोथी कूं बांचे ताकू दयानन्द की भगवत् स्मरण बांचने। इस पोथी में २५२ वैष्णवन की भावना की प्रति के अनुसार वार्त्ताएं हैं। बीच के कुछ कागज अप्राप्य हैं।

(२) बड़ौदा—ईश्वर भाई सेठ (श्री झवेरचन्द लक्ष्मीचन्द वाले) की प्रति। स्वस्ति श्री सिंहाड मध्ये पुस्तक लिखितं ब्रजवासी लालदास हीरामन जो पढ़े ताकुं भगवत्स्मरण है। कष्टेन लिखितेयं पुस्तकं यत्नेन परिपालयेत्। शुभं भवतु। संवत् १८८८। तिथौ माद्धो आसाढ़ शुक्ल १५॥ लिखीतः स श्री गोपीजन वल्लभायनमः।

बड़ौदा—श्री द्वारकादास पारिख के संग्रह में। पुष्पिका। यह पुस्तक लिखी गोकुल मध्ये श्री यमुना तटे श्री बालकृष्णजी के मन्दिर में ब्राह्मण सनाढ्य विरधरे मूलचन्द ने लिखी—मिती कार्तिक वदी १३—धन तेरसि शुक्रवार संवत् १९०४। इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या ३६३ है और प्रत्येक पृष्ठ में २९ पंक्तियां हैं और पोथी १४×१२ इंच के आकार की है।

(४) बड़ौदा—श्री द्वारकादास पारिख के संग्रह में। एक अपूर्ण प्रति आकार १४×११ इंच। प्रत्येक पृष्ठ में तीस पंक्तियां। पुष्पिका नहीं और न अंतिम पृष्ठ है। कागज, स्याही और अक्षरों को ध्यान में रखकर यह पोथी नं० १, २, ३, सबसे पुरानी लगती हैं। अनुमान से यह संवत् १८०० के आसपास लिखी गई होगी। इसकी लेखन शैली भी गोकुलीय है।

(५) बड़ौदा—श्री द्वारकादास पारिख के संग्रह में। यह हस्तलिखित प्रति भी अपूर्ण या खंडित सी है इसकी पुष्पिका और अन्तिम पृष्ठ नहीं हैं। इसकी पृष्ठ संख्या ४७७ है। प्रति पेज में केवल १७ पंक्तियां हैं और किसी-किसी में केवल पन्द्रह भी पंक्तियां हैं पोथी का आकार १२×७ इंच है। देखने से नं० ४ की ही प्रतीत होती है।

(६) बड़ौदा—श्री द्वारकादास पारिख के संग्रह में। बड़े अक्षरों में लिखी अपूर्ण और खंडित प्रति। आकार १३×१२ इंच प्रति पृष्ठ पर तीस पंक्तियां हैं। कागज पुराना है लगभग १९०० की प्रति प्रतीत होती है।

(७) बड़ौदा—श्री चुन्नीलाल पारिख बड़ौदा की प्रति। पृष्ठ संख्या २९८ (२९६ मूल, २ पेज अनुक्रमणिका) अंत के पेज पोथी के बड़े आकार के कारण और स्याही के गोंद के कारण एक में चिपट गए हैं। प्रति पेज में ३० पक्तियां हैं। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

"अब श्री गुसांईजी के सेवक दोयसे बावन पर कृपा पात्र भगवदीय अंतरंग तिनकी वार्त्ता लिखी सो संपूर्ण ।। मूलचन्द सुत गिरधरदास ने लिखी जो बांचे सुने तिनकूं भगवत स्मरण। श्री वल्लभ कुल बांचे तिनकूं दंडवत ।। मिति माह वदी १० ।। संवत् १९१६ ।। श्रीकृष्णाय नमः ।। श्री गोपीजनवल्लभायनमः ।। श्री गुरुभ्योनमः ।। दोहा ।। जग में मिलन अनूप हे भगवदीयन को संग। तिनके संग प्रताप तें होत स्याम सूं रंग। श्री। श्री। श्री।

(८) बम्बई—श्री जेठानन्द आसनमल ट्रस्ट बम्बई से प्राप्त इस पुस्तक का आकार २४×१८ इंच है और पृष्ठ संख्या २९० है। अन्तिम पृष्ठ को छोड़कर शेष पृष्ठों पर २६ पंक्तियां हैं। अन्त में इस प्रकार लिखा है :—इति श्री गुसांईजी के सेवक दोयसे बावन वेस्नव परम कृपापात्र भगवदीय अंतरंग लीला मध्य पाती तिनकी वार्त्ता लिषी सो भासा में सम्पूर्ण। लिषितम् श्री गोकुल मध्ये ब्राह्मण संसाराम सुत श्री गुपाल ने जो वेस्नव बांचे तिनकूं हमारी दंडवत।

दोहाः—जैसी देषी प्रत्य में तैसी दई उतार।

सुद्ध असुद्ध कूं राखि के लीजो प्रत्य समारि। मिती क्वार सुदी १ सम्वत् १९२९—

(९) बड़ौदा—श्री मोतीलाल गोवरधनदास काठवाला के संग्रह में। यह प्रति १४×१३ इंच के आकार की है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में २८ पंक्तियां हैं और पृष्ठ संख्या ३०४ है। इसकी तिथि संवत् १९५२ श्रावण वदी ५ है। और लेखक ने लिखी पन्नालाल ब्राह्मण—सात स्वरूप के मन्दिर में लिखी।

(१०) बड़ौदा—श्री रतनलाल चुन्नीलाल परीख बड़ौदा के संग्रह में। पृष्ठ संख्या २७०। जिसमें २६६ पृष्ठ तक वार्त्ता है। शेष चार पृष्ठों में अनुक्रमणिका है। प्रत्येक पृष्ठ में ३० और किसी किसी पृष्ठ में ३१ पंक्तियां हैं। इसके अक्षर सुन्दर हैं। पृष्ठ के दोनों ओर हांसिया छूटा हुआ है। कागज सफेद है और आकार १६×१३ इंच है। इसके अन्त में इस प्रकार लिखा है :— 'इति श्री गुसांईजी के सेवक दोयसे बावन वेस्नव परम कृपापात्र भगवदीय तिनकी

वार्त्ता लिषी सो सम्पूर्ण। यह पुस्तक लिषी श्री गोकुल मध्ये श्री यमुनातटे, श्री सात स्वरूप के मन्दिर के आगे ब्राह्मण सनोढ़िया लाला रामप्रसाद ने लिषी जो कोई वेस्नव बांचे तासों हमारी जै श्रीकृष्न। मिती पौष वदी ॥८॥ संवत् १९५४॥

(११) आगरा—श्रीनाथजी की बैठक—पृष्ठ संख्या ४२७। पुष्पिका इस प्रकार है। "इति श्री गुसांईजी के सेवक दोयसे वामन वैष्णवन तिनकी वार्त्ता सम्पूर्ण। यह पुस्तक भाटिया सिंधूमलजी की है। दसकत लिखिया सेदूके श्री गोकुलजी में राजा ठाकुरजी के मन्दिर आगे बैठिके लिखी है। मिती चैत्र सुदी ॥१॥ संवत् १८९७ के साल में लिख्यो।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता की प्रकाशित प्रतियां

(१) नवलकिशोर प्रेस मूल ८४ दूसरा संस्करण १८८३ ई०।

'श्रीमदाचार्याणां परमानुकम्पास्पदभगवदीयचतुरशीतिसंख्याका वैष्णवानांवार्त्ता।'

श्रीयुत् मुंशी नवलकिशोर भार्गव मालिक अवध समाचारपत्र की आज्ञानुसार।

स्थान मथुरा

मुन्शी कन्हैयालाल, सम्पादक; बंशीधर, मैनेजर के प्रबन्ध से मुंबै उल उलूम नाम शिला यंत्र में छापी गई। दूसरी बार १००० पुस्तक—

नम्बर सन् १८८३ ई० (विक्रम सं० १९४०) पृष्ठ संख्या ३८४ सचित्र संस्करण।

(२) इसी का इसी प्रेस में छपा पहला या उसके बाद का संस्करण क्योंकि उसमें सम्वत् या सन् नहीं दिया है और पृष्ठ संख्या ३५२ है।

(३) लक्ष्मी बेंकटेश्वर प्रेस कल्याण मुंबई द्वारा प्रकाशित संवत् १९८५ शाके १८५० की संख्या ३६८, मोटा टाइप।

(४) डाकौर संस्करण, वैष्णव रामदासजी गुरु श्री गोकुलदासजी ने ऋणहर पुस्तकालय डाकौर से प्रकाशित सम्वत् १९६०, पृष्ठ संख्या २८८, बड़ा टाइप।

(५) डाकौर संस्करण, जिसमें चौरासी, दोसौ बावन तथा पुष्टि दृढ़ाव एक साथ सम्मिलित हैं। बड़ा टाइप।

(६) 'श्री गोस्वामी गोकुलनाथजी कृत, श्री आचार्यजी महाप्रभु (श्री वल्लभाचार्यजी) की निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र आदि गद्य पद्यात्मक विविध विषयालंकृत चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता—बहुत प्राचीन ग्रंथन पैते बड़े परिश्रम सूं शुद्ध करके यदुवंशीय गोवर्द्धनदास लक्ष्मीदास प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशक इनने मुंबई में श्री जगदीश छापेखाने में छपवाय प्रसिद्ध करी संवत् १९५१ ज्येष्ठ शुक्ल परिवा १ (पृष्ठ संख्या ५७०) श्री गोविन्दलाल भट्ट, डाइरेक्टर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा के निजी पुस्तकालय से प्राप्त।'

(७) हरीदास झवेरचंद बम्बई द्वारा प्रकाशित प्रति।

(८) गुजराती में अहमदाबाद से प्रकाशित श्री महादेव रामचन्द्र जागुष्ठे तथा लल्लूभाई छगनलाल देसाई द्वारा प्रकाशित संस्करण।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता की प्रकाशित प्रतियाँ

(१) नवलकिशोर भार्गव द्वारा प्रकाशित, सचित्र लिथो प्रेस की पुस्तक सम्वत् १८८३ का संस्करण ।

(२) डाकौर का संस्करण ।

(३) ठाकुरदास सूरदास बम्बई वाले का संस्करण—इदं पुस्तकं मोहमय्यां जगदीश्वर-राख्य मुद्रणालये मुद्रापितं । संवत् १९६२ मार्गशीर्ष शुक्ल ७ सोमवार शाके १८२७ ।

"सब श्री वल्लभ कुल के बालकन कूं और भगवदीय वैष्णवन कूं हाथ जोड़ के वीनती करुँहुँ जो दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता मैंने पचास एक प्रत जन्म आखा है बचाय के सुनी है परन्तु कोई की संगती साखी मिलती देखी नाहीं । जासूं मैंने गोस्वामी श्री गोविन्दलालजी कामवन वाले और गोस्वामी द्वारकानाथजी जूनागढ़ वाले, परम वैष्णव मथुरादास भट्टजी और बिहारी चौबे और लक्ष्मीदास भंडारीजी और ठक्करधनजी दामोदरदास मुख से बातें सुनी हैं सो 'वार्त्ता दोसौ बावन' की शोध के मैंने छापी हैं । कोई ठिकाणे भूल चूक होवे सो क्षमा करेंगे और अशुद्ध होवे सो शोध सुधाय लेवेंगे । लिखितम् ठाकुरदास सूरदास ।" बड़ा साईज, बड़े, ३७० पृष्ठ और अन्त में 'पुष्टि दृढ़ाव' नामक ग्रंथ और सूरदास के गूढ़ पदों की टीका भी है ।

(४) श्री गुसांईजी के निज सेवक २५२ वैष्णवन की वार्त्ता पुष्टिमार्गीय श्री वल्लभ संप्रदायी वैष्णव रामदासजी द्वारा सम्पादित । गंगाविष्णु श्री कृष्णदास मालिक लक्ष्मी बेंकटेश्वर प्रेस कल्याण बम्बई द्वारा प्रकाशित सम्वत् १९८८ शके १८५३ । इसकी पृष्ठ संख्या ५१२ है और इसके अन्त में भी 'पुष्टि दृढ़ाव' नामक ग्रंथ लगभग २७ पृष्ठ में छपा हुआ है । बड़ा टाइप है ।

(५) गुजराती में श्री महादेव रामचन्द्र जागुष्ठे और लल्लूभाई छगनलाल द्वारा अहमदाबाद से प्रकाशित संस्करण ।

चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता भावना वाली प्रकाशित प्रतियाँ

(१) हिन्दी—श्री द्वारकादास पारिख द्वारा संपादित, अग्रवाल प्रेस मथुरा से प्रकाशित प्रथम संस्करण सम्वत् २००५ । इसी का दूसरा हिन्दी गुजराती मिश्रित संस्करण सम्वत् २००६ में प्रकाशित हुआ है ।

गुजराती—८४ वैष्णवन की वार्त्ता का शुद्धाद्वैत संसद अहमदाबाद द्वारा गुजराती संस्करण ।

निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, बैठक चरित्र, भावसिंधु, श्री गोवर्द्धनाथजी की प्राकट्य वार्त्ता, श्री महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता

(१) निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, बैठक चरित्र—जगदीश्वर छापाखाना मुम्बई से सम्वत् १९५१ में प्रकाशित ।

(२) अहमदावाद से लल्लूभाई छगनलाल द्वारा प्रकाशित हिन्दी और गुजराती संस्करण ।

(३) बैठक चरित्र प्रकाशित (अहमदाबाद, बम्बई)

भावसिंधु—(१) प्रथम संस्करण आनन्द जीवेलजी परमार राजकोट स्थानीय दी रायसिंह स्टार प्रेस में छपा सम्वत् १९६५।

(२) सम्वत् १९७८, ९३ के लल्लूभाई देसाई के दो संस्करण।

(३) सम्वत् २०१२ का श्री बजरंग पुस्तकालय मथुरा द्वारा प्रकाशित संस्करण।

श्री गोवर्द्धननाथ की प्राकट्य वार्त्ता

(१) श्रीनाथद्वारा से प्रकाशित।

(२) लक्ष्मी बेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित।

(३) मुंशी नवलकिशोर भार्गव की आज्ञानुसार मथुरा में सम्वत् १८८४ ईसवी में प्रकाशित लिथो प्रेस की प्रति।

(४) श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंडया द्वारा सम्पादित सम्वत् १९३५ वैशाख कृष्ण ११ गुरुवार की प्रति। इस प्रति में ८२ पृष्ठ हैं और कागज छूने से टूटता है।

श्री महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता

(१) कांकरौली विद्याविभाग द्वारा प्रकाशित श्री द्वारकादास पारिखजी द्वारा सम्पादित, संवत् २००१, पृष्ठ संख्या १२२। इस ग्रंथ के पीछे केशवकिशोर कृत वंशावली नामक पद्य ग्रंथ भी छापा गया है।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता-भावना वाली हस्तलिखित प्रतियाँ

(१) पाटन गुजरात—श्री मणिलाल ईश्वर भाई की प्रति दो खंड। एक में अस्सी वार्त्ता, दूसरे में अष्ट सखान की आठ वार्त्ताएँ। प्रथम खंड में २६० पृष्ठ और दूसरे में १३६ पृष्ठ। आकार १८×१४ इंच प्रत्येक पृष्ठ पर २६ पंक्तियां हैं। पुष्पिका का पत्र नीचे से फटा हुआ है और इस प्रकार लिखा है—'इति श्री चौरासी वैस्नवन की वार्त्ता तथा अष्ट छाप की वार्त्ता श्री गोकुलनाथजी प्रगट किये ताको भाव श्री हरिरायजी कह्यो। सम्पूर्णम्। संवत् १७५२ मिती—'

(२) श्रीगोकुल—श्री गौरीलालजी मुखिया के आत्मज श्री राधाकृष्ण की संवत् १७८५ वैशाख कृष्ण १३ रविवार की सचित्र प्रति। यह प्रति जिस समय श्री दीनदयालुजी गुप्त ने देखी थी उस समय यह गोकुल में मोर वारे मंदिर के मुखिया के अधिकार में थी। आज यह श्रीराधाकृष्णजी की निजी सम्पत्ति है। पुस्तक की लिपि और उसके चित्र अत्यन्त सुन्दर हैं। ये चित्र जयपुर की कलम के हैं जिनका प्रचार सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में रहा है। इस प्रति को देखकर यह लगता है कि यह पुस्तक दो या तीन लेखकों ने मिलकर लिखी है और पीछे से उसमें चित्र बनाये गये या साथ साथ ही बहुरंगी चित्र भी बनते गये हैं। पुष्पिका में जहाँ संवत् लिखा है वहाँ की स्याही कुछ हल्की (हल्के रंग की) है जिसे देखने से यह संदेह होने लगता है कि तिथि वाला अंश बाद में लिखा गया है पर ध्यान से देखने पर यह संदेह भ्रमपूर्ण ठहरता है क्योंकि इसी प्रकार हल्की स्याही का प्रयोग इस प्रति में अन्यत्र भी मिलता है। यह प्रति भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि श्री हरिरायजी संवत् १७७२ तक विद्यमान थे और यह दोनों प्रतियाँ उनके वर्तमान काल में ही लिपिबद्ध हो चुकी थीं और वार्त्ता के भावनात्मक रूप की प्रामाणिकता की पुष्टि करती हैं।

(३) पाटन—बालकृष्णजी के मन्दिर की प्रति। इसमें गुजराती बोड़िया अक्षरों में ८४ वैष्णवन की वार्त्ता, षट्ऋतु वार्त्ता–भाव भावना इत्यादि लिखे गए हैं। इस प्रति के लेखक रामदास बरहानपुर वाले हैं। इसमें लिपिबद्ध करने का समय नहीं दिया है पर प्राचीनता की दृष्टि से यह पोथी अट्ठारहवीं सदी की प्रतीत होती है। आकार २३ × १८ इंच के लगभग है।

(४) बहादुरपुर—श्री गोवर्द्धननाथजी के मन्दिर की प्रति। पृष्ठ संख्या ३३५। कागज पुराना। पीछे घरूवार्त्ता। प्रति पृष्ठ पर २४ पंक्तियां हैं और लिपिकाल सम्वत् १८७१ है। माघ वदी १ लेखक दयाचन्द ब्राह्मण अवदीच वासी। इसके अन्त में २५२ की वार्त्ता है जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है।

(५) मथुरा—दंडीघाट के आनन्दमंगल चतुर्वेदी की प्रति लिपिकाल सम्वत् १९१४ पृष्ठ संख्या ३७२, आकार १६ × १४ इंच। इस प्रति में अष्टसखान की वार्त्ता है और पुष्टि, प्रवाह,मर्यादा की गद्य टीका भी है। अन्त में लिखा है "सम्वत् १९१४ ना वर्ष फाल्गुन मासे कृष्णपक्षे तिथि द्वादशी भृगुवासरे लिखितेयं श्रीमाली ज्ञातीय दवे श्री भगवानूजी सुत डोशा लिषी। कृते लिषविता भाटीया जातीय श्री शिवजी सुत श्यामजी पठनार्थ।"

(६) मथुरा—श्री ध्रुवजी मुखिया, मन्दिर श्री दाऊजी महाराज मथुरा। हस्ते दंडीघाट पर आनन्दमंगल चतुर्वेदी की प्रति, लिपिकाल संवत् १९४० पृष्ठ संख्या २२० आकार १८ × १४ इंच। पुष्पिका इस प्रकार है—यह पुस्तक लिखी श्रीमदगोकुलजी में नाज की मंडी पास तलाव पडखे श्री यमुनाजी के तट लेखक कल्याणदासजी तथा रामलाल सनाढ्य ब्राह्मण ने जो श्री ब्रह्म कुल बांचे तिनको दंडवत और वैष्णव बांचे तथा श्रवण करे तिनकों हमारे श्री कृष्ण स्मरण बंचनाजी। किमधिकं। मिती श्रावण कृष्ण पंचमी भौमे संवत् १९४० में।

दोसौ बावन की भावनात्मक हस्तलिखित प्रतियाँ

(१) खेरा-नन्दगाँव के समीप—सखाराम ब्रजवासी की प्रति इसमें १४०७ पृष्ठ हैं। आकार १० × ७ इंच है। विशेषता यह है कि इसकी भूमि काली है और अक्षर सफेद हैं। विक्रम संवत् १७९७ की लिखी है। प्रत्येक पृष्ठ पर चारों ओर सुनहला बारडर है।

(२) मथुरा—श्री द्वारकादास परीख के संग्रह में। पृष्ठ संख्या ७३४ आकार १० × ६ इंच। प्रत्येक पृष्ठ पर दोनों ओर हांसिया और दोहरी लाल लकीरें। पुष्पिका इस प्रकार है—'वैष्णव दोसौ बावन। इति श्री गुसांईजी के सेवक दोयसौ बावन वैष्णव तिनकी वार्त्ता श्री गोकुलनाथजी प्रगट कीये ताकों भाव श्री हरिरायजी कहे सो सम्पूर्ण। श्री शुभम् भवतु। यह पुस्तक लिषी पठनार्थ बाबा श्री द्वारकेसजी। संवत् १८७१ के फागुण वदी ७ कू यह पोथी पूर्ण भई। श्री गोकुलजी मध्ये। श्री ठकुरानी घाट समीपे। लिषीया माधवदास सनाढ्य ब्राह्मण। जो बांचे ताकू भगवत स्मरण। मंगलं लेषकानां च। पाठकानां च मंगलं। मंगलं सर्व जंतूनां भूमौ भूपतिमंगलं।' यह पोथी गोस्वामी श्री द्वारकेशजी उपनाम घन्नूजी महाराज के संग्रह की प्रतीत होती है क्योंकि (सम्वत् १८७१) में इनकी आयु बीस वर्ष की थी। उस समय यह उनके लिए लिखी गई होगी।

(३) मथुरा—श्री द्वारकादासजी परीख के संग्रह में। पृष्ठ संख्या ४३८। आकार १४ × १२ इंच। प्रत्येक पृष्ठ में २८ पंक्तियाँ। लेखक गंगाराम सुत जमुनादास गोकुल मध्ये लिखी संवत् १९०७ कार्तिक सुदी १ प्रतिपदायां शुभम्। पुस्तक पठनार्थ पारिष मूलजी भाई सांतीदास सुत ईश्वरदास श्री गोकुल आए तब ले गए।

(४) इसके अतिरिक्त चार और अपूर्ण और खंडित प्रतियाँ मुझे श्री द्वारकादासजी परीख के संग्रह में देखने को मिली हैं। जिनमें मैंने अपने अध्ययन में ४ अ, व, र, स की संज्ञा दी है।

(१) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की तीन प्रतियों के विवरण—

(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता—

भाषा—ब्रज (राजस्थानी मिश्रित)

पूर्ण किन्तु प्रारम्भिक कुछ पत्र जीर्ण

लिपि नागरी

प्राप्ति स्थान—जोधपुर–राजस्थान

पृष्ठ संख्या ५३ (दोनों ओर के गिनकर नहीं तो २६ + १) लिपिकाल १९३२ वि० (संवत् १९३२ का वर्ष भादरा वदी ११ शुक्र वासरे)

१०० खोल

प्रारम्भ—

….श्री वल्लभ श्री……….एमना चरणकमलनी रज मस्तक धरूँ। जासे मारा जनम तणा कलेश जो॥ चौरासी वैष्णव ता गुण गाऊँ प्रेम सूं॥

मध्य :—

जगन्नाथ जोसी नी माता वैष्णव कहिये जो। अंणे बेभ्रतने श्री महाप्रभु पासे मोकल्या। सेवक थयी ने आव्या पोताने धरे जो।

अन्त:—

(२) अपूर्ण

नागरी

लिपिकाल

ग्रन्थकाल

पृष्ठ ९६

प्राप्ति-स्थान—कोटा, राजस्थान

(३) अपूर्ण

भाषा हिन्दी (प्राप्ति स्थान कोटा–राजस्थान)

लिपि कैथी

पृष्ठ १५४

अन्य हस्तलिखित ग्रन्थ

(१) 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो' की टीका हस्तलिखित प्रति, हरदा के सेठ हरिशंकरजी सुखदेवजी रायसाहब।

(२) ब्रजभाषा के पुष्टिमार्गी कवि नाम संग्रह—श्री द्वारकादास परीख के निजी संग्रह से।

(३) श्री गोकुलनाथजी की भाव भावना । श्री द्वारकादास परीख के निजी संग्रह से
(४) श्री हरिरायजी की भाव भावना । ,,
(५) चौरासी अपराध हस्तलिखित प्रति ,,
(६) पद्मनाभदास, कुम्भनदास, प्रभुदास की वार्त्ता ,,
(७) कीर्तन की प्राचीन प्रति ,,
(८) कीर्तन की प्राचीन प्रति ,,
(९) भक्त नामावली ,,

(१०) सरस्वती भंडार विद्या विभाग कांकरौली बंध संख्या ३/२ संवत् १८४६, कार्तिक वदी दूज (लेखक द्वारकादास भगवानदास गोपाल की हस्तलिखित प्रति)

(११) सरस्वती भण्डार विद्या विभाग कांकरौली बंध संख्या ५/६
(१२) ,, ,, ,, ,, १/२

(१३) श्री कन्हैया प्रभु पुष्टि पुस्तकालय मुडासा, नित्य पद और आश्रय के पद की हस्तलिखित प्रति प्रति संख्या ६ ।

(१४) श्री छगनभाई बहादुरपुर वाले की हस्तलिखित कीर्तन की पोथी श्री पुरुषोत्तमदास देसाई बहादुरपुर वाले के पास सुरक्षित ।

१३ (अ) सरस्वती भंडार विद्या विभाग काँकरौली बंध संख्या ५१/३ । ४५
(ब) ,, ,, ,, ,, ५१/३ । ५०

(१५) वल्लभ वंशावली श्री जगतानन्द कृत—कांकरौली विद्या विभाग बंध संख्या ८६ पुस्तक संख्या ३ ।

(१६) कांकरौली महाराज ब्रजभूषणलाल के निजी संग्रह की विविध धौल पद संग्रह की हस्तलिखित प्रति ।

(१७) काँकरौली विद्या विभाग, सरस्वती भण्डार बंध संख्या ८१/१ संस्कृत वार्त्ता मणिमाला ।

(१८) निजवार्त्ता घरूवार्त्ता प्रति संवत् १८३६ ,, कांकरौली
(१९) काँकरौली सरस्वती भण्डार बन्ध संख्या ११३/६
(२०) ,, ,, ,, १/२
(२१) ,, ,, ,, ,, ६३/४
(२२) कांकरौली बंध संख्या ५/६

(२३) कांकरौली गोस्वामी श्री ब्रजाभरणजी दीक्षित द्वारा लिखित वल्लभाख्यान की हस्तलिखित अप्रकाशित टीका ।

(२४) अहमदाबाद नटवरलालजी के मन्दिर की वल्लभाख्यान की हस्तलिखित सटीक प्रति ।

(२५) मथुरा—'गंगाबाई के पद' मथुरा के एक वैष्णव के पास जो अपना नाम प्रकाशित नहीं कराना चाहता है ।

(२६) कांकरौली सरस्वती भण्डार बंध संख्या ४२/१६
(२७) ,, ,, ,, ५/६ पृष्ठ ९६

(२८) ,, ,, ,, ५१/३

४२/१२ जाडा कृष्णदास के पद

(२९) काँकरौली बंध संख्या ४३/९६ टोडरमल के पद

(३०) ,, ,, १००/३३१

(३१) कांकरौली सरस्वती भंडार बंध संख्या ५१/३ वीरबल के पद

(३२) ,, ,, ,, ५१/३ ब्रह्मदास के पद

(३३) काँकरौली सरस्वती भंडार बंध संख्या ३६/७ रामरायहित भगवानदास के पद।

(३४) ,, ,, ,, ६७/१ मेहा धीमर के पद

(३५) ,, ,, ,, ४७/१ मथुरादास के पद

(३६) ,, ,, ,,

(३७) ,, ,, ,, ७४/१ राघौदास के पद सम्वत् १६९६ की लिखी प्रति

(३८) ,, ,, ,, ५/६, १७८/२ हृषीकेश के पद

(३९) ,, ,, ,, ४१/७ मथुरादास के पद

(४०) ,, ,, ,, ३८/७ रामराय भगवानदास के पद

(४१) ,, ,, ,, ४२/१५ रुकमिणी मंगल ग्रंथ

(४२) ,, ,, ,, १०१/१ प्रसंगात्मक वार्त्ता की प्रति।

वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता और काल निर्णय

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता—

प्रामाणिकता के आधार :—वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए अन्तस्साक्ष्य और बाह्यसाक्ष्य दोनों प्रकार के साधनों का उपयोग आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अनुश्रुति के द्वारा वार्त्ता के जिस सिद्धान्त की पुष्टि, आचरण-व्यवहार, उल्लेख या दृष्टान्त द्वारा की गई है उसका भी सहारा लेना आवश्यक होगा। इनके अभाव में वंश, घर, बैठक परम्परा के आचार तथा हस्तलिखित प्रतियों और अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थों के सहारे से भी इसकी मान्यता की पुष्टि करना अनिवार्य है।

प्रामाणिकता :—सर्वप्रथम इस विषय का निर्णय करना आवश्यक है कि चौरासी वार्त्ता में जिन सेवकों का उल्लेख है वे सब महाप्रभुजी की शरण में आए थे, अथवा नहीं। इसके सम्प्रदाय में अनेक प्रमाण हैं जिनके आधार पर इन सबका श्री महाप्रभुजी की शरण में समय-समय पर आना सिद्ध है। वार्त्ता-ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं है। इसकी शैली पौराणिक है। यह सम्प्रदाय के किसी सिद्धान्त की पुष्टि के लिए समय-समय पर इसलिए श्री गोकुलनाथजी द्वारा कही गई थी कि साधारण विद्याबुद्धि के लोगों के मन में आचरण का जितना प्रभाव पड़ता है उतना कोरे सिद्धान्त-वाक्य का नहीं। दूसरे पुष्टिमार्ग में वैष्णव को भगवान् से अधिक मानने की प्रथा है। इसलिए उनकी श्रद्धापूर्वक चर्चा-वार्त्ता स्वयं एक धार्मिक कृत्य है। इस कारण से इसमें व्यक्तियों के जीवन के उतने अंश का ही समावेश है जितने से उस सिद्धान्त की पुष्टि होती है और उस पर प्रकाश पड़ता है तथा वह जनसुलभ बनता है। वार्त्ता में प्राप्त नामों के सम्बन्ध में उसी के आधार पर ऐतिहासिक वृत्त लिखने में यह सबसे बड़ी कठिनाई है। श्री हरिरायजी कृत भाव प्रकाश से इसकी पूर्त्ति में बहुत कुछ सहायता मिलती है पर उस भाव प्रकाश का भी एक मात्र उद्देश्य तीन जन्म के वृत्तान्त को सिद्धान्त के अनुरूप उपस्थित करना ही है। भाव प्रकाश वार्त्ता की टीका नहीं है। वे स्वतंत्र व्याख्यात्मक ग्रंथ हैं। इस कारण इन चरित्रों के विषय में उनके साधारण जीवन के सम्बन्ध में लिखने के लिए दूसरे साधनों का उपयोग करना पड़ता है, और इससे वार्त्ता के प्रसंगों की पुष्टि होती है, और इसकी प्राचीनता समकालीन अथवा उत्तरकालीन प्रमाणों से सिद्ध होती है। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता तथा दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता, घरूवार्त्ता, निजवार्त्ता इत्यादि से प्राप्त व्यक्तियों और कवियों की सूची में अन्यत्र उनके सम्बन्ध में लिखा जायगा। अपने कथन के समर्थन में यहाँ दो दृष्टान्त देना अनुचित न होगा क्योंकि चौरासी अथवा दोसौ बावन उदाहरणों से यह प्रकरण बोझिल हो जायगा।

समकालीन कवि और सेवक—अलीखान पठान के चौरासी वैष्णव की वार्त्ता के सूचीपत्र नामक ब्रजभाषा पद्य ग्रन्थ में इसका उल्लेख मिलता है—

अलीखान का यह सूचीपत्र अहमदाबाद से महादेव रामचन्द्र जागुष्ठे ने आज से ७० वर्ष पूर्व के अपने 'विविध धोल पद संग्रह" में प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ लल्लूभाई

छगनलाल देसाई द्वारा भी प्रकाशित हो चुका है। इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति कांकरौली के महाराज श्री ब्रजभूषणलालजी गोस्वामी के निजी संग्रह में सुरक्षित है जिसमें यह पद ज्यों का त्यों लिखा है।[1]

अब गाऊँ हों निज जनन के गुन सूचीपत्र प्रकट करों।
निज भक्त चौरासी भए अब नाम तिनके उच्चरों॥

अब श्री हरसानीदास दामोदर कहों हो एक प्रथम ही दामोदरदास हरसानी तथा कृष्णदास मेघन—

महाप्रभुजी के प्रथम सेवक श्री दामोदरदास हरसानी के सम्बन्ध में जो कुछ 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' में लिखा है उसकी पुष्टि श्री गोकुलनाथजी के समकालीन लेखक लघुभ्राता यदुनाथजी कृत वल्लभ दिग्विजय से इस प्रकार होती है—'तदनन्तर वृद्धिनगर पहुँचे, वहाँ एक सेठ के चार पुत्र थे उनमें सबसे छोटा दामोदर भगवान की लीला में से गुरु की सेवा के लिए ही आया था और गुरु श्री वल्लभ की प्रतीक्षा कर रहा था और उसने जब आपको आता हुआ देखा तो अपना हक छोड़कर आपके चरणों में आया और आपने उसे ग्रहण किया और तुलसी की माला देकर कृतार्थ किया।'[2]

स्वयं श्री गोकुलनाथजी ने अपनी चौरासी वैष्णवों की संस्कृत नामावली में इनका उल्लेख इस प्रकार किया है।

श्री विट्ठलमहं वन्दे स्वकीयजन वल्लभं चतुरशीति भक्तानां व्यक्तिकुर्वे यथार्थतः।
दामोदरकृष्णदासौ पुनः दामोदरस्तथा, पद्मनाभश्च तुलसा पार्वती रघुनाथकः[3]॥

संवत् १९७४ की लल्लूभाई छगनलाल देसाई द्वारा अहमदाबाद से प्रकाशित प्रति के आधार पर।

इससे पूर्व के प्रमाणस्वरूप स्वयं विट्ठलेशजी ने अपने 'शृंगाररसमंडन' ग्रंथ में श्री दामोदरदास हरसानी का उल्लेख इस प्रकार किया है—

'यस्मात् सहायभूतौ दामोदरदास हरिवंशौ विट्ठलरचितमिदं शृंगाररस मंडनंसंपूर्णम्।'[4]

इससे भी पूर्व श्री महाप्रभुजी के सेवक पद्मनाभदास कन्नौज वाले के पदों में इनके नाम का उल्लेख इस प्रकार हुआ है :—

'तहां प्रवेश द्वै भ्रमर को दामोदर प्रभुदास'[5]

दूसरा पद:—

श्री लक्ष्मण सुत नेकहु गावे।
दमला प्रभु दास बड़भागी तिनकों पुनि पुनि आय सिखावें।

---

१ कांकरौली की प्रति।

२ "ततो वृद्धि नगरे कस्यच्छ्रेष्ठिनश्चत्वारस्तनयास्तेषांकनिष्ठो दामोदरो हरेर्लीलातो गुरोः सेवार्थमत्राऽवतीर्णो गुरोर्मार्गं प्रतीक्षमाणस्तं दृष्ट्वा दायं त्यक्त्वा समागतः पादयोर्निपतितो गुरुभिरंगीकृतो मनुमालाभ्यां संस्कृतः सिद्धाऽर्थोजातः। (वल्लभ दिग्विजय पृष्ठ ११)

३ चौ० वै० नामावली गोकुलनाथ कृत।

४ शृंगाररस मंडन।

५ पद्मनाभदास के पद

प्रेम विबस भए श्री वल्लभ प्रभु नैन सैन में अर्थ जनावें ।
प्रगट प्रसिद्ध जसोदानंदन रसिक सोभामय सकल जतावें ।
वृन्दावन रमनीक रमन प्रति उर सम्पुट की कोउ न पावे ।
'पद्मनाभ' गिरधर रस लीला वेणु नाद की बतियां भावें ।'[1]

इसके अतिरिक्त इनकी अपनी रचनाओं से भी इनका सेवक होना सिद्ध है । पद है :—

श्रीनाथजी को ध्यान मेरे निशि दिना री माई ।

अंतिम पंक्ति :—

वल्लभ पद किंकर दामोदर बलि जाई ।"

वि० सं० १५६७ में सिकन्दर लोदी ने जो महाप्रभुजी का चित्र अपने चित्रकार द्वारा तैयार कराया था उसमें भी चित्रकार 'होनहार' ने महाप्रभुजी के साथ तीन और सेवकों का चित्र अंकित किया है उनमें साष्टांग प्रणाम करने वाले श्री दामोदरदास हरसानीजी हैं। इसका उल्लेख 'संप्रदाय कल्पद्रुम' और 'नागरसमुच्चय' में मिलता है ।

गोकुल और वृन्दावन की कई सौ वर्षों से प्रतिष्ठित बैठकें भी इनके ऐतिहासिक व्यक्तित्व और सेवक होने की पुष्टि करती हैं ।

कृष्णदास अधिकारी—यदि एक और व्यक्ति का उदाहरण लें तो 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' के अंतिम सेवक श्री कृष्णदास अधिकारी का भी उल्लेख इन सभी प्रमाणों में है। इसके अतिरिक्त श्रीनाथद्वारा में 'कृष्णभंडार' (दफ्तर) आजतक इन्हीं के नाम पर प्रसिद्ध है और आज तक इनकी वहाँ गद्दी बिछी रहती है। जिस पर साधारण रूप से कोई बैठता नहीं है। इस 'कृष्णभंडार' में आपके चलाए नियम के अनुसार आज भी बहीखाते गुजराती भाषा में लिखे जाते हैं। ऐसे प्रामाणिक व्यक्तित्व की उपस्थिति से मुख मोड़ना सहज नहीं है ।

श्री विट्ठलेशजी ने अपने संस्कृत-पत्रों में इनका उल्लेख 'अधिकारी' रूप से किया है।

"सर्वे कृष्णदासस्याज्ञायां स्थातव्यम् ।"

इसके अतिरिक्त उनके अपने पद भी इनके इतिहास की पुष्टि करते हैं। कृष्णदास जी का पद :—

खेलत बसंत वर विट्ठलराय, निज सेवक सुख देखत आय × × × ×
सब अपने मनोरथ करत आय, तहाँ कृष्णदास बलिहारि जाय ।

इन दो व्यक्तियों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को प्रमाणिक सिद्ध करके यह सिद्ध करना है कि वार्त्ता-साहित्य के प्रणेताओं ने जो समय-समय पर रचनाएँ की हैं उनके रचयिता कौन-कौन महानुभाव हैं और उनके लिपिबद्ध होने का समय क्या है ? जहाँ तक चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता का सम्बन्ध है वहाँ तक मुझे इसकी तीन प्रकार की प्रतियाँ अपनी खोज में मिली हैं। एक प्रसंगात्मक, दूसरी संख्यात्मक तीसरी भावनात्मक। इनमें प्रसंगात्मक वार्त्ताओं के सम्बन्ध में सर्वप्रथम विचार करना है। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता की इन प्रसंगात्मक पोथियों में से एक भी प्रति अभी प्रकाशित नहीं हुई है। मैंने कांकरौली, बड़ौदा, बहादुरपुर में इस प्रकार की हस्तलिखित प्रतियां देखी हैं। जिनका विवरण मैंने हस्तलिखित प्रतियों की सूची में दिया है। इन वार्त्ताओं की विशेषता यह है कि

१ पदमनाभदास के पद

इन्हें श्री गोकुलनाथजी के नित्य प्रति के वचनामृतों के आधार पर उनके सेवकों ने उनके सामने ही संकलित कर लिया था। इनके प्रसंगों की विविधता ही इनकी महत्वपूर्ण विशेषता है। दूसरे ये संक्षिप्त हैं। तीसरे क्रमबद्ध नहीं हैं। एक व्यक्ति का एक प्रसंग यदि एक स्थान पर है तो उसी व्यक्ति का दूसरा प्रसंग पुस्तक के मध्य और कभी-कभी अन्त में भी मिलता है। इस प्रकार इस पुस्तक भर में किसी-किसी सेवक के प्रसंग पुस्तक के कई भागों में फैले हुए हैं। इन पोथियों में चौरासी वैष्णव की वार्त्ता तथा दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता, तथा निजवार्त्ता इत्यादि के सम्मिलित प्रसंग हैं। उनका वर्गीकरण नहीं किया गया है। इन हस्तलिखित पुस्तकों में से ऐसे बहुत से सेवकों के नाम और प्रसंग हैं जिनके नाम चौरासी और दोसौ बावन की सूची में नहीं मिलते हैं। इन प्रसंगात्मक वार्त्ताओं की परम्परा का पता लगाने पर यह प्रमाणित होता है कि पहले श्री महाप्रभुजी ने श्रीमद्भागवत की कथा में आए हुए वैष्णवों के दृष्टान्तों के साथ-साथ पुष्टि भक्ति के आदर्शों को स्पष्ट करने के लिए जन सामान्य वैष्णव समाज में अपने सिद्ध कोटि के सेवकों के भी दृष्टान्त देना आरम्भ किया था। श्री महाप्रभुजी कृत 'जलभेद' आदि ग्रन्थों में यह दृष्टान्त शैली बहुतायत से मिलती है। इन ग्रन्थों में व्यास, नारद, जड़भरत, वायु, अग्नि इत्यादि के दृष्टान्त पूर्ण भगवदीय रूप में दिए हैं। इसी प्रकार 'नवरत्न' एवं 'भक्तिवर्धिनी' में कहे हुए 'तादृशी जनों' के संग और सहवास की पुष्टि आपने गज्जन धावन आदि अपने सेवकों के दृष्टान्त देकर की थी। 'नवरत्न' में लिखा है:—'निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः' [1] अर्थात्—निवेदन (ब्रह्मसम्बन्ध मंत्र) का स्मरण तादृश जनों के साथ सर्वथा करना चाहिए। तादृश का अर्थ 'श्रेष्ठ वैष्णव' से है। भक्तिवर्धिनी में लिखा है :—'(अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सहतत्परै)' [2] अर्थात् हरिस्थान (मन्दिर इत्यादि) में तदीय जनों के साथ सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

यह तो हुई सिद्धान्त रूप में आज्ञा। इसी को आपने अपने सेवकों को वार्त्ता रूप में समझाया है। कृष्णदास मेघन की वार्त्ता में उनके प्रश्न करने पर श्री आचार्यचरण ने इस प्रकार कहा है :—'तब श्री आचार्यजी ने कह्यो जो यह विधिपूर्वक समर्पन ज्यों कह्यो है त्यों नाहि करत।........और अपनी योग्यता मानि भगवदीय को संग नाहि करत है।............ तहाँ एतन्मार्गीय वैष्णवन ताके हृदय में श्री ठाकुरजी विराजत हैं। ताको संग करनो। तहाँ गज्जन धावन आदि वैष्णवन को दृष्टान्त दीनो' [3]

इसी प्रकार अन्य कई वार्त्ताओं में भी तदीयों की पहचान कराई गई है। दामोदरदास सम्भल वाले की वार्त्ता में 'सो इनकी सेवा देखिकें श्री आचार्यजी बोहोत प्रसन्न भए तब आप श्रीमुख तें कहे, जिन राजा अंबरीष कों न देख्यो होय सो दामोदरदास कों देखो। राजा अम्बरीष तो मर्यादामार्गीय हुतो और ये पुष्टिमार्गीय हैं। इनमें इतनी अधिकता' है। [4] तथा माधौदास की वार्त्ता में भी इस प्रकार का उल्लेख है।

---

१ नवरत्न

२ भक्तिवर्धिनी।

३ कृष्णदास मेघन की वार्त्ता प्रसंग—६

४ दामोदरदास सम्भल वाले की वार्त्ता।

'तब माधौदास ने सब समाचार श्री आचार्यजी महाप्रभुन सों कहे। तब आचार्यजी सगरे वैष्णवन सों कहे, जो देखो, यह वही माधौदास है, कैसे टेक को वैष्णव भयो।'[१] श्री रामदास सारस्वत की वार्ता में भी इसी की पुष्टि इस प्रकार से है :—'तब श्री आचार्यजी कहे, यह धन्य है। श्री ठाकुर जीको श्रम नाहीं करावत है। ताते याके समान धीरज काहू को नाहीं। यह श्रीमुख ते कहे।

श्री महाप्रभुजी द्वारा चलाई हुई वार्ता की यह परम्परा क्रमशः आगे बढ़ती दिखाई पड़ती है। श्री विट्ठलेशजी ने स्वयं श्री दामोदरदासजी से 'मारग' की प्रणालिका इत्यादि सुनी थी। जिसका उल्लेख 'संवाद' की हस्तलिखित प्रति में इस प्रकार है :—"सो वा समे तहाँ दामोदरदास हरसानी आये। तब दामोदरदास बैठक कों दंडौत करके बैठे। पीछे श्री भागवत को परायण संपूरण भयो। ता पाछे श्री गुसांईजी ने दामोदर सों कह्यो। जो दामोदरदास तुम हमको श्री आचार्यजी को प्राकट्य कहो और दैवी जीव क्यों बिछुरे ताको कारण और जीवन के अंगीकार को प्रसंग ये सब विस्तार करिके कहो। काहेते जो तुम्हारे हृदय बीच श्री आचार्यजी बिराजे हैं और यह प्रसंग श्री आचार्यजी बिनु कौन कहै। और कैसे जानि परै। तातें हम तुम सों प्रसंग कियो है। तब दामोदरदास ने कह्यो जो सो तो सांची बात है, जो आचार्यजी की लीला की बात तो श्री आचार्यजी ही जाने। और जीव की तो गम्य नाहीं। जो श्री आचार्यजी की बात कहे। परि मोंसों ही श्री आचार्यजी महाप्रभुन ने कृपा करि कही है सो मैं हू श्री आचार्यजी महाप्रभुजी सौं सब बात पूछी, सो आप सब कृपा करिके कही है। सो प्रसंग हों तुमसों कहों, सो सुनिये।"[२]

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि वार्ता की यह परम्परा स्वयं श्री आचार्यजी की चलाई हुई थी। और श्री विट्ठलनाथजी ने भी उसे सजीव रक्खा। संवाद के इस कथन की पुष्टि वार्ता के निम्नलिखित उद्धरण से भी होती है। "ताते मारग की वार्ता श्री आचार्य महाप्रभुजी दामोदरदास सों समझाय के थापी। दामोदरदास सों कछु गोप्य न राख्यो। और श्री आचार्यजी श्रीभागवत अहर्निश देखते, कथा कहते और दामोदरदास सुनते और मारग को सब सिद्धान्त भगवल्लीला रहस्य श्री आचार्यजी ने दामोदरदास के हृदय में स्थाप्यो।[३] इससे यह स्पष्ट होगया कि श्री गुसांईजी ने तथा दामोदरदास हरसानी ने इसे संचालित रक्खा। चाचा हरिवंश की वार्ता (दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता, संख्या ७, वैंकटेश्वर प्रेस संवत् १९८८ संस्करण) के निम्नलिखित उद्धरण से इस कथन की और भी पुष्टि होती है :—

"एक दिन श्री गुसांईजी लघुशंका करके पधारे सो चाचाजी सों भगवत्वार्त्ता करन लगे सो ऐसे रसावेश भए जो आधी रात चली गई हाथ में से नीचे झारी धरिवे की शुध न रही और चाचाजी कूँ तो तीन दिन तांई (आवेश) रह्यो वे ऐसे भगवद् रस के पात्र हते।" (प्रसंग ६)

कांकरौली सरस्वती भंडार हिन्दी ग्रन्थ बंध ११०/१ में जो हस्तलिखित दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता है उसमें चाचा हरिवंशजी की वार्त्ता में एक स्थान पर इस प्रकार लिखा है।[४] तब श्री गुसांईजी ने चाचा हरिवंशजी सों कह्यो……जैसे श्री आचार्यजी महाप्रभुन के

१ माधोदास की वार्त्ता।

२ संवाद की कांकरौली की प्रति से।

३ हरिरायजी कृत वार्त्ता—१

४ कांकरौली की दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता की प्रति।

सेवक रामदासजी अपरस छोड़िके सिपाईगीरी की चाकरी करें परि श्री ठाकुरजी कों श्रम तो नहीं करवाए तब रामदासजी कों देखिके श्री आचार्यजी महाप्रभु श्रीमुख तें रामदासजी कों धन्य धन्य कहे। तासों वैष्णवन को गोवर्द्धननाथजी विषे रामदास को सो स्नेह रखनो।"

ऊपर के पहले उद्धरण में जहाँ भगवद्वार्त्ता है वहाँ यह अर्थ लगाया जा सकता है कि वह शास्त्रीय विषय की चर्चा थी। पर हस्तलिखित प्रति के दूसरे उद्धरण से इस भ्रम के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता है। उसमें तो स्पष्ट रीति से सेवक रामदास की सराहना की गई है उसके आचरण को अनुकरणीय बताया गया है। समस्त वार्त्ता साहित्य के मूल-सूत्र इस उद्धरण में केन्द्रित हैं। वार्त्ता का उद्देश्य ही है किसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण और उसे किसी सेवक के आदर्श आचरण के उदाहरण से बोधगम्य और साध्य बनाना। इस प्रकार के अनेक उद्धरण दिए जा सकते हैं। जिनसे यह आपसे आप सिद्ध हो जावेगा कि श्री विट्ठलेशजी श्री महाप्रभुजी के तथा अपने सेवकों के आदर्श आचरण की चर्चा और सराहना करते हुए कभी नहीं थकते थे। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में श्री पुरुषोत्तमदास सेठ की बेटी श्री रुकमिनीजी के सम्बन्ध में उनकी वार्त्ता में ही श्री गुसांईजी ने जो कहा है वह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है :— 'और रुकमिनी को देखिकै श्री गुसांईजी कहते जो यासों श्री ठाकुरजी उरिण कब होंयगे।' (प्रसंग १) प्रसंग ३ में एक वैष्णव ने श्री गुसांईजी सों कही जो महाराज रुकमिनी ने गंगा पाई। तब श्री गुसांईजी श्री मुख तें कहे जो ऐसे मति कहो जो रुकमिनी ने गंगा पाई। ऐसे कहौ जो रुकमिनी गंगा ने पाई।[1]

इस प्रकार सेवकों के यह चरित्र संप्रदाय में प्रतिष्ठा पा रहे थे। यह निस्संदेह है। श्री गुसांईजी के समकालीन अष्टछाप के तथा अन्य कवियों की रचनाओं में जिनके उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं वार्त्ताओं के प्रसंगों का समावेश सूचनात्मक संकेत रूप से आपसे आप हो गया है। जो यह सिद्ध कर देता है कि वार्त्ताओं में संकलित प्रसंग उस समय सम्प्रदाय में प्रचलित होगए थे।

उद्धरण :—श्री नंददासजी ने अपने एक पद में वार्त्ता के (दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के) हतित-पतित का उल्लेख इस प्रकार किया है।

'विश्व विदित दीन्ही गति प्रेतन क्यों न जगत उद्धरौ।'[2]

गुजराती 'वल्लभाख्यान' के लेखक श्री गोपालदास रूपपुरा वाले ने भी अपनी पुस्तक के आठवें आख्यान में इसी हतित-पतित का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"हतित-पतित नूँ जुओ तमें प्रगट ए थाने"[3]

अर्थात् 'हतित-पतित का स्पष्ट दृष्टान्त देखिए।' गोपालदासजी श्री गुसांईजी के २५२ वैष्णवों में से थे।

श्री गोपालदासजी गुसांईजी के सेवक और समकालीन थे। इनका हतित-पतित का उल्लेख श्री गुसांईजी के महत्व की पुष्टि करता है। और यह बात सूचित करता है कि यह प्रसंग इतने प्रचलित हो चुके थे कि इनके काव्य में अनायास स्थान पा सके। श्री गुसांईजी के दूसरे सेवक श्री सगुणदास ने अपने काव्य (पद) में खंडन ब्राह्मण का उल्लेख किया है। यह खंडन ब्राह्मण श्री गुसांईजी का सेवक था और इसकी वार्त्ता दोसौ बावन में इक्यानवीं वार्त्ता है।

---

१ रुकमिणी की वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता।

२ नंददास

३ वल्लभाख्यान

उद्धरण—प्रगट भये तैलंग कुल दीपक ।
श्री लक्षमन भट्ट आनन्द की निधि सुत मुख, निरखन आए समीप ।।
मात एलम्मा कोख उदय भयो ज्यों उपजत मुक्ताफल सीप ।
सगुणदास मुख कहत न आवे गुन गावत खंडन बसत समीप ।। [1]

छीत स्वामी की वार्त्ता २४४ में भी लिखा है :-
जै जै श्री वल्लभ राजकुमार
....

'दुरत दुरित अचेत प्रेत गति हतित-पतित उद्धार ।

वार्त्ताओं को देखकर निष्कर्ष यह निकलता है कि श्री गुसांईजी की उपस्थिति में ही श्री गोकुलनाथजी ने वैष्णवों पर अपनी असीम श्रद्धा और स्नेह के कारण इन प्रसंगों का पुष्टिमार्ग में प्रचलन प्रारम्भ कर दिया था। अष्टछाप के द्वितीय सागर कन्नौज निवासी श्री परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में इस बात का प्रत्यक्ष संकेत है । उद्धरण :—

'प्रात समै उठि करिए श्री लक्षमणसुत गान ।
प्रगट भए श्री वल्लभ प्रभु देत भक्ति दान ।।
श्री विट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान ।
श्री गिरिधर श्री गिरिधर उदय भयो भान ।।
श्री बालकृष्ण बाल केलि रूप ही सुहान ।
श्री गोकुलनाथ प्रगट कियो मारग बखान ।।
श्री रघुनाथलाल देख मन्मथ ही लजान ।
श्री यदुनाथ महाप्रभु पूरन भगवान ।।
श्री घनश्याम पूरन काम पोथी में ध्यान ।
पांडुरंग विट्ठलेश करत वेद गान ।।
परमानन्द निरखि लीला थके सुर विमान । [2]

इस पद में 'श्री गोकुलनाथ प्रगट कियो मारग बखान' से श्री गोकुलनाथजी का मार्ग की वृद्धि में योग देना निर्विवाद सिद्ध है। यह वृद्धि पुष्टि-साहित्य के प्रचार द्वारा पुष्टि सिद्धान्त के दृढ़ाव द्वारा ही की जाती थी। श्री गोकुलनाथजी के जो असंख्य वचनामृत आज भी उपलब्ध हैं उनमें वार्त्ताओं के प्रसंग ज्यों के त्यों मिलते हैं। इन वचनामृतों ने ही निस्संदेह आगे चलकर वार्त्ताओं का रूप धारण किया है । डाक्टर दीनदयाल गुप्त के कथनानुसार उक्त पद का रचनाकाल सम्वत् १६४१ है । यह श्री परमानन्ददासजी का निधन संवत् भी है । क्योंकि यह पद उनकी अंतिम रचना है। अतः सिद्ध हुआ कि श्री विट्ठलेशजी की उपस्थिति में ही श्री गोकुलनाथजी वार्त्ता-प्रसंगों के द्वारा मार्ग की श्रीवृद्धि कर रहे थे। स्वयं श्री गोकुलनाथजी रचित संस्कृत ग्रन्थ भी इसकी पुष्टि करते हैं। श्री सर्वोत्तम स्तोत्र की संस्कृत टीका में पद्मनाभदास का उल्लेख:—भक्तेषु ज्ञापिताशयः' नाम की व्याख्या में 'कोटिष्वपि दुर्लभः' अर्थात् करोड़ों में भी दुर्लभ करके किया गया है । [3] और श्री वल्लभाष्टक

१ सगुणदास के पद हस्तलिखित प्रति बंध १/२/२१ कांकरौली सरस्वती भण्डार ।
२ कीर्तन पद संग्रह ।
३ सर्वोत्तम स्तोत्र की संस्कृत टीका ।

की संस्कृत टीका में कृष्णदास मेघन का अग्नि उठाने वाला प्रसंग ज्यों का त्यों इस प्रकार दिया हुआ है :—"इत्युक्तः कृष्णदासो जलमग्निर्ज्वालयितनो चेज्ज्वालयिष्यतीत्युक्त्वा मुहूर्तमात्रं तथा स्थितवान् ।"[1]

महाप्रभुजी के समय से लेकर १८०० विक्रमी सम्वत् तक सम्प्रदाय के साहित्य और सेवा दोनों अंगों पर (सम्वत् १८०० विक्रमी तक अर्थात् श्री पुरुषोत्तमजी सूरत वालों के विद्यमान काल तक) गोस्वामीजी के वंशजों का पूर्ण आधिपत्य था। उनकी स्वीकृति के बिना कोई ग्रन्थ सम्प्रदाय में प्रचलित नहीं हो सकता था। श्री परमानन्ददासजी पद बनाते थे वह पहले श्री महाप्रभुजी को सुनाते थे पीछे महाप्रभुजी की आज्ञा से उसका प्रचार होता था। अन्तःकरण प्रबोध की टीका में सुबोधिनीजी की अपूर्णता पर ऐसा संकेत भी मिलता है।

ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है वह यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि वार्त्ता में जिन प्रसंगों का उल्लेख संक्षेप से या विस्तार से हुआ है वे सब महाप्रभुजी के समय विक्रम संवत् १५५० से लेकर श्री विट्ठलेशजी के तिरोधान समय सम्वत् १६४२ विक्रमी तक संप्रदाय में प्रचलित हो चुके थे। वचनामृत यह सिद्ध करते हैं कि इनके प्रचार का उस समय तक सम्पूर्ण श्रेय श्री गोकुलनाथजी को ही प्राप्त था। इस काल निर्णय में प्रारम्भ सम्वत् १५४६ इसलिए माना गया है कि पुष्टिमार्ग का प्राकट्य इस संवत् में ही हुआ था। संवत् १५४६ श्रावण शुक्ल एकादशी की अर्द्धरात्रि को साक्षात् भगवान् ने प्रगट होकर श्री आचार्यजी को ब्रह्मसम्बन्ध का जो उपदेश दिया था उसकी वार्त्ता का प्रसंग सबसे पहले श्री आचार्यजी ने दामोदरदास हरसानी से कहा था। और वार्त्ता में भी इसका उल्लेख इसी प्रकार है। यही सबसे पहला प्रसंग है। यहीं से वार्त्ता के प्रसंगों का श्रीगणेश होता है।

श्री गोकुलनाथजी के समकालीन भ्रातृज गोस्वामी श्री देवकीनंदनजी (श्री रघुनाथजी के पुत्र) कृत 'प्रभुचरित्र चिंतामणि' नामक कांकरौली से प्रकाशित संस्कृत ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है कि आप नित्य नियम से शयनोत्तर कथा अवसर में श्रीमद्भागवत की कथा के अनंतर श्री आचार्यजी और श्री विट्ठलेशजी के चरित्र को भी कहते थे :—

तदपि भगवत्सेवापरैः (श्री गोकुलनाथैः) शयन भोग सेवोत्तर लब्धगाथावसरैः सुबोधिन्यादिना श्रीभागवतकथा कथानान्तरं श्रीमदाचार्य तदात्मज चरित कथापि नित्यनियमेन परिगृहीता वक्तुम्[2]

श्री देवकीनंदन जी का जन्म समय संवत् १६३४ विक्रमी है और निधन काल मिलता नहीं है अतः भाषा के आधार पर यह इनकी काव्यकाल की प्रारंभिक रचना प्रतीत होती है। इस पुस्तक का रचनाकाल संवत् १६६० के आस पास ही ठहराया जा सकता है।

निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता के प्रारम्भ में गोस्वामी श्री हरिरायजी द्वारा भावरूप में लिखित जो उपक्रम है वह स्पष्ट कहता है कि चौरासी वार्ता के अनन्तर श्री गोकुलनाथजी ने निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता कहना प्रारम्भ किया था।

---

१ 'वल्लभाष्टक की टीका'।

२ प्रभु चरित्र चिंतामणि—कांकरौली प्रकाशन।

उद्धरण :—"और श्री गोकुलनाथ जी आपु नित्य कथा कहते सो दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता कहते। तब वैष्णव ने पूछी जो महाराज, आजु कथा न कहोगे, तब श्री गोकुलनाथजी आपु श्रीमुख ते कहे, जो आजु तो कथा को फल कहतु हैं। तातें भगवदीय को अवश्य चौरासी वार्त्ता कहनी सुननी।"[१] तथा 'श्री गोकुलनाथजी सर्वोत्तम की टीका में पद्मनाभदास कौ स्वरूप लिखे हैं। जो जैसे भगवान् के गुन गाए ते जीव कृतार्थ होय हैं तैसे भगवदीयन के गुण गाए तें हू जीव कृतार्थ होत हैं। याही तें शुकदेव जी नवम स्कंध में सब राजान की कथा कही हैं। सो वे राजा सब भगवदीय हैं। ताहि तें प्रथम भगवदीयन की कथा कहिए तो भगवद् कथा को अधिकारी होय।'

ये दोनों उद्धरण महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि यह वार्ता-साहित्य के प्रारम्भ और विकास दोनों की दिशा का निर्देश करते हैं। इनसे स्पष्ट है कि श्री गोकुलनाथजी ने पहले चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता कही थी और बाद में निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता कहना प्रारम्भ किया था।

श्री देवकीनन्दन गोस्वामी के 'प्रभुचरित चिंतामणि' का रचनाकाल संवत् १६६० वि० के आसपास ठहरता है। और इसमें महाप्रभुजी और श्री गुसांईजी के चरित्रों के कथन का उल्लेख है। श्री देवकीनंदन के लेख को यदि श्री हरिरायजी के कथन के साथ मिलाकर पढ़ा जाय तो फिर निष्कर्ष निकलता है कि चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता की रचना सं० १६६० वि० से पूर्व समाप्त हो चुकी थी। यदि इनको न माना जाय तो ये दोनों समकालीन लेखकों के कथनों की संगति न बैठ सकेंगी।

सम्वत् १६५८ विक्रमी की रचना 'श्री यदुनाथजी रचित वल्लभ दिग्विजय' द्वारा इन दोनों की पुष्टि होती है। उदाहरण :—

चतुरशीतिस्तद् ग्रन्थाश्चतुरशीतिरासिका :
चतुरशीतिस्तद्भक्ता आहुरार्यास्तुतत्कथाः।[२]

अर्थात् आचार्यजी के चौरासी ग्रन्थ, आचार्यजी के चौरासी भक्त और उनकी चौरासी कथाएँ आर्य लोग कहते हैं।

इससे भी यही सिद्ध होता है कि सम्वत् १६५८ विक्रमी तक चौरासी भक्त और उनकी वार्त्ताएँ सम्प्रदाय में प्रचलित और प्रतिष्ठित हो चुकी थीं, और श्री गोकुलनाथजी ही उस समय इनके मुख्य प्रेरक थे।

श्री गोकुलनाथजी के स्वरचित 'चौरासी वैष्णवों की नामावली' से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि वे इस प्रणाली के प्रवर्त्तक थे और उन्होंने ही पूर्व प्रचलित प्रसंगों के आधार पर चौरासी वैष्णवों की नामावली निर्धारित की थी। और उनके प्रचलित प्रसंगों को परिष्कृत और परिवर्धित करके इस वार्त्ता को संख्यात्मक वार्त्ताओं का रूप दिया था। इसकी संख्यात्मक वार्त्ता की सूची संख्या, नाम और कथा की पुष्टि श्री गोकुलनाथजी के 'समकालीन लेखक और अनुज श्री यदुनाथजी रचित' वल्लभदिग्विजय के ऊपर दिए हुए उद्धरण से भी

१ निजवार्त्ता उपक्रम हरिराय कृत निजवार्त्ता घरूवार्त्ता भावना वाली हस्तलिखित प्रति संवत् १८३६ श्री द्वारिकादास परीख के निजी संग्रह से प्राप्त।
२ यदुनाथ दिग्विजय—नाथद्वारा से मुद्रित प्रति।

होती है। इस ग्रन्थ में बत्तीस से अधिक वैष्णवों के नाम और शरण आदि के प्रसंग हैं जो वार्त्ता के अनुसार ही प्राप्त हैं। इसी प्रकार अलीखान के 'चौरासी वैष्णवों के सूचीपत्र' नाम के प्रसिद्ध ब्रजभाषा काव्य ग्रंथ से भी इन नामों की पुष्टि हुई है। एक और समकालीन लेखक जो श्री गोकुलनाथजी के सेवक भी थे उनके गद्य-पद्यात्मक तीन ग्रंथों से इन नामों का समर्थन हुआ है। इस समकालीन लेखक (श्री गोपालदास व्यारा वाले) ने 'श्री वल्लभ कुलनो चरित्र' प्राकट्यसिद्धान्त (काव्यग्रन्थ) तथा 'तत्वार्थबोध' नाम के तीन ग्रन्थ, गुजराती भाषा में रचे हैं जिनसे प्राकट्य सिद्धान्त का एक अंश प्रकाशित भी हो चुका है। शेष अप्रकाशित हैं। पर इनकी बहुत सी हस्तलिखित प्रतियाँ सम्प्रदाय के पुस्तक भंडारों में प्राप्त हैं। इनके आधार पर भी इन नामों और कुछ प्रसंगों की पुष्टि हो जाती है।

श्री गोकुलनाथजी के समकालीन और एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक श्री श्रीनाथ भट्ट की 'संस्कृतवार्त्तामणिमाला' द्वारा चौरासी, दोसौ बावन, निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, बैठक चरित्र आदि के नाम और वार्त्ताओं की पुष्टि होती है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ कांकरौली सरस्वती भंडार से बंध संख्या ८० में सुरक्षित हैं। जिस पद द्वारा श्रीनाथ भट्ट के श्री विट्ठलनाथ जी के सेवक होने की पुष्टि होती है वह इस प्रकार है:—

'प्रगटे श्री विट्ठल ब्रज के नाथ
पंच शब्द धुनि बजत बधाई निज जन भए सनाथ।
मंगल कलस लिए ब्रजभामिन गावत गीत सुगाथ।
सकल मनोरथ भए जु 'नाथ' के निज पद धरे जु माथ।'[1]

श्री गोकुलजी के अन्य समकालीन लेखक, श्री केशवकिशोरजी कृत ग्रन्थ 'आचार्य वंशावली' नामक ब्रजभाषा काव्य ग्रन्थ से निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता के प्रसंगों की पुष्टि होती है।

श्री हरिरायजी तथा उनके समकालीन लेखकों द्वारा वार्त्ता के प्रसंगों की पुष्टि

श्री हरिरायजी सम्प्रदाय में बहुत बड़े लेखक प्रसिद्ध हैं। यह जैसे बड़े लेखक थे वैसे ही विद्वान् थे, वैसे ही पुरातत्व अन्वेषक भी थे और दीर्घजीवी तथा अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले महापुरुष थे। उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों की तथा ब्रजभाषा के गद्य-पद्य और गुजराती गद्य और पद्य ग्रन्थों की रचना की थी। इनकी पंजाबी और मारवाड़ी भाषा की रचनाओं का उल्लेख भी इसी प्रबन्ध में 'जीवनवृत्त' में किया जा चुका है। इनका जन्म संवत् १६४७ है और निधन संवत् १७७२ है। आपने चौरासी और दोसौ बावन, निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता सब पर भावप्रकाश लिखे हैं। इन रचनाओं में कुछ ऐसे उल्लेख और प्रसंग हैं जो इनकी अन्वेषक रुचि विशेष के ही परिणामस्वरूप इन ग्रन्थों में आ सके हैं। इन ग्रन्थों में चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों की संख्या का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। और वार्त्ताओं के प्रवक्ता के रूप में श्री गोकुलनाथजी का नाम इस

१ सरस्वती भंडार की हस्तलिखित प्रति।

प्रकार मिलता है :—सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता करत कल्याण भट्ट आदि वैष्णवन के संग रसमग्न होइ गए।'[1]

दोसौ बावन वैष्णवों की संख्या का उल्लेख भी इसी ग्रन्थ में इस प्रकार मिलता है :—

अब रहे राजसी, तामसी, सात्विकी गुणमय तिनके उद्धारार्थ श्री गुसांईजी ने चौरासी वैष्णव राजसी किए, चौरासी वैष्णव तामसी किए और चौरासी वैष्णव सात्विकी किए। ये तीनों जूथ मिलि के दोयसौ बावन श्री गुसांईजी के अंगसंबन्धी हैं।[2]

इस उल्लेख के अनुसार वार्त्ता-साहित्य के श्री गोकुलनाथजी रचित होने के लिए कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

परम्परा—श्री हरिरायजी के समकालीन और सेवक श्री विट्ठलनाथ भट्ट ने अपने 'सम्प्रदायकल्पद्रुम' ग्रन्थ में वार्त्ताओं के रचयिता के रूप में श्री गोकुलनाथजी का उल्लेख इस प्रकार किया है :— 'वल्लभ विट्ठल वार्त्ता प्रगट कीन्ह नृपभान।'[3]

इस पद में प्रायः सभी वार्त्ताओं की ओर इंगित कर दिया गया है। केवल चौरासी या दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता से ही वार्त्ता-साहित्य की इतिश्री नहीं होती है उसके अतिरिक्त निजवार्त्ता घरूवार्त्ता, श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्त्ता, भावसिंधु, श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनसे इन दो विभूतियों के जीवन वृत्त, कार्य-क्षेत्र, दार्शनिक सिद्धान्तों पर प्रकाश पड़ता है।

संवत् १७०३ विक्रमी में जन्मे श्री काका वल्लभजी श्री हरिरायजी के सेवक थे और संप्रदाय के एक प्रतिष्ठित विद्वान् माने जाते हैं। इनके सुबोधिनीजी पर भी संस्कृत लेख मिलते हैं; और हिन्दी में भी उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में रचनाएं की हैं। श्री हरिरायजी के संबंध से इनमें दास भाव की प्रधानता थी; और इन्होंने अपने काव्य में श्री वल्लभ और 'श्रीवल्लभदास' छाप या उपनाम रक्खा था। इनके अनेक पद संप्रदाय के कीर्त्तन संग्रहों में प्रकाशित हैं। इनकी गुजराती भाषा की रचनाएं भी उपलब्ध हैं। इन्होंने चौरासी दोसौ बावन वार्त्ता के भावना स्वरूपों के अनुसार ही गुजराती के पद रचे हैं और भिन्न-भिन्न रूप से भी बहुत से वैष्णवों के पद रचे हैं। इस प्रकार इनकी रचनाएं श्री हरिरायजी की कृति का समर्थन करती हैं और चौरासी तथा दोसौ बावन की परम्परा की पुष्टि करती हैं। इस स्वीकृत और प्रचलित परम्परा को मान्यता प्रदान करते हुए आपने अपने गुजराती पदों में श्री हरिरायजी के नाम का भी उसी प्रकार समादर भाव से उल्लेख किया है जैसे अपने भाव प्रकाश में श्री हरिरायजी ने गोकुलनाथजी का। आपने स्पष्ट लिखा है कि इन भावना के नामों को श्री हरिरायजी ने कृपा करके आपसे कहा है।

चौरासी चितलावी ने करे पाठ नित्य धरि नेम।
पुष्टि पंथ प्रभु प्रसन्न थाये हृदये बाढ़े प्रेम॥

---

१ भाव प्रकाश चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता पृष्ठ ४ द्वा० दा० परीख संस्करण २०१०।
२ भावप्रकाश चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता पृष्ठ सं० ६ द्वा० दा० परीख संस्करण
३ सम्प्रदाय कल्पद्रुम।

कृपा श्री हरिरायजी करी दीन जाणी दास।
मूल चौरासी भक्तनां ते नाम कर्या प्रकास ।।
श्री आचार्यजी महाप्रभुनां अंग द्वादश नेह।
धर्म साधे धर्मी कहिए सात द्वादश तेह ।।
ए भगवदीयनां स्वरूप जे लीलामां विद्यमान।
कृपा करी श्री हरिरायजी संभलाव्यां सहुनाम ।।

× × ×

चौरासी ब्रज कोस माटे चौरासी ए भक्त।
प्रेम लक्षणा पूरी करे श्री वल्लभ पद आसक्त ।।
ए वैष्णव पद कमलरज रती तेणीछे आस।
गाय गुण हरिदास ना पद रज 'श्री वल्लभदास'[1] ।।

श्री ब्रजभूषणजी प्रथम, जन्म संवत् १७१५ विक्रमी के संबंध में कांकरौली के इतिहास पृष्ठ संख्या १४८ के फुटनोट से लिखा है कि हरिरायजी उत्कृष्ट विद्वान् होने के कारण कांकरौली से ब्रजभूषणजी भी इनके पास अध्ययन करने खमनौर जाया करते थे। इन महानुभाव की गुजराती रचना प्राप्त हैं, और उनमें एक ऐसा पद है जिसमें चौरासी वैष्णवों की नामावली है और जो कई जगह से प्रकाशित भी हो चुकी है। इस पद द्वारा भी चौरासी वैष्णवों के संख्यात्मक रूप के प्रचार की पुष्टि होती है।

× × ×

श्री गोपेश्वरजी ने श्री हरिरायजी के शिक्षापत्रों की ब्रजभाषा गद्य में जो टीका की है उसमें कई स्थानों पर चौरासी और दोसौ बावन के वैष्णवों के प्रसंग उदाहरण रूप में दिए गए हैं।

श्री पुरुषोत्तमजी १७१४ से १८०० संवत् के आसपास विक्रम संवत् की अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रथम पूर्वार्ध में सम्प्रदाय में श्री गोस्वामी पुरुषोत्तमजी नामक एक कुशल लेखक और दश दिगंत विजयी धुरन्धर विद्वान हुए हैं। जिनका जन्म संवत् १७१४ विक्रमी में हुआ था। आपने अपनी पुष्टि प्रवाह मर्यादा ग्रन्थ की संस्कृत टीका में दोसौ बावन के अलीखान पठान का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

अत: परं प्रवाहेपि समागत्य पुष्टिस्थ स्वैर्नयुज्यते।
सोऽपितैस्तत्कुले जात: कर्मणा जायते यत इत्युक्तोविशिष्यते।
यथा अलिखानादि अतस्ताद्दशंतद्देश्यं प्रति वायमुपदेश। इति [1]

ऐसे ही अन्य ग्रन्थों में कई और वैष्णवों के नामों का उल्लेख है। श्री आचार्यजी के बनाए चार ग्रन्थों से, श्री गोपीनाथजी के एक वृतिपत्रक, श्री गुसांईजी के पांच ग्रन्थ, चौंतीस समकालीन कवियों की रचनाओं, सात गुसांईजी के समकालीन ग्रन्थों से, पांच श्री गोकुलनाथजी के ग्रन्थों से और पाँच श्री गोकुलनाथजी के समकालीन लेखकों की रचनाओं में से उद्धरण देकर यह सिद्ध किया गया है कि चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ताओं में तथा

१ काका वल्लभ।
२ श्री पुरुषोत्तमकृत—पुष्टि प्रवाह मर्यादा की संस्कृत टीका।

निजवार्त्ता और घरूवार्त्ताओं में जो प्रसंग आए हैं, वे सब किसी न किसी रूप में इन आचार्यों की अन्य रचनाओं में भी वार्त्ताओं के निर्माण होने से पहले स्थान पा चुके थे तथा यह प्रसंग सम्प्रदाय में इतने महत्वपूर्ण थे कि इनका उल्लेख सम्प्रदाय के समकालीन कवियों की रचनाओं में भी हुआ है। जैसा कि श्री गुसांईजी के समकालीन चौंतीस और श्री गोकुलनाथजी के समकालीन पांच कवियों की रचनाओं के उद्धरणों से सिद्ध हो जाता है। समकालीन तथा पूर्ववर्त्ती साहित्य में वार्त्ता सम्बन्धी जो उल्लेख हैं उनका इन उद्धरणों के साथ मिलान करके भी यही निष्कर्ष निकलता है कि वार्त्ता साहित्य की सामग्री का प्रचलन श्री महाप्रभुजी के समय से ही सम्प्रदाय में हो गया था और उन्हें मान्यता मिल चुकी थी। केवल उनका पुस्तकाकार रूप श्री गोकुलनाथजी के समय से पूर्व प्रचलित न हो पाया था। पीछे से श्री गोकुलनाथजी और हरिरायजी ने इनके उस ख्याति-प्राप्त और प्रचलित रूपों को महत्वपूर्ण ग्रन्थों का रूप दे दिया। लोक रुचि ने वार्त्ताओं के ये विभाजन पहले ही स्वीकार कर लिए होंगे, क्योंकि उस वर्गीकरण से संप्रदाय के दोनों महान् आचार्यों के व्यक्तित्व और उनके कार्य की सीमा का ज्ञान हो जाता है। वार्त्ताओं के प्रसंग इस दृष्टि से प्राचीन हैं, और सम्प्रदाय में उनकी एक प्रतिष्ठा है और वार्त्ताओं के रचयिता श्री गोकुलनाथजी और श्री हरिरायजी हैं। श्री गोकुलनाथजी का समय संवत् १६०८ से संवत् १६९७ तक है और हरिरायजी संवत् १६४७ से १७७२ तक विद्यमान थे। इसलिए सभी वार्त्ताएँ संवत् १६०८ के पश्चात् और १७७२ से पूर्व की रचनाएँ हैं। चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के पीछे घरूवार्त्ता और निजवार्त्ताएँ बनी हैं और फिर दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता। इस प्रकार चौरासी और निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता सं० १६९७ के पूर्व की रचनाएँ है और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ताएँ सभी संवत् १६९७ से पूर्व की रचनाएँ हैं। और भावनात्मक संस्करण उससे पीछे की रचनाएँ है जिनका रचनाकाल संवत् १७७२ तक ही ठहरेगा।

वार्त्ता के लेखक और निर्माणकाल

काल निर्णय—अपने अनुसन्धान में मैंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वार्त्ताओं के जो तीन रूप इस समय प्राप्त होते हैं उनमें प्रसंगात्मक वार्त्ताएं ही सबसे पहले की रचानाएँ हैं। संख्यात्मक वार्त्ताएँ उससे पीछे की और भावनात्मक अन्तिम रूप में प्राप्त हैं। प्रसंगात्मक वार्त्ताओं का निर्माणकाल निश्चित करने में सबसे पहली कठिनाई यह है कि इनके जन्मदाता और प्रवक्ता तथा रचयिता के लिए लेखक शब्द का प्रयोग सार्थक रूप से नहीं हो सकता। इसके रचयिता दूसरे हैं और लिपिबद्ध करने वाले या लेखक अन्य पुरुष हैं। स्वयं श्री आचार्य महाप्रभुजी की सुबोधिनी श्री माधव भट्ट द्वारा लिखी गई है। परन्तु किसी ग्रन्थ को लिपिबद्ध कर देने से ही कोई उसका रचयिता होने का श्रेय नहीं प्राप्त कर सकता है। अतः इस रचना के आदि प्रवर्तक, महाप्रभुजी, को ही माना गया है। श्री सुबोधिनीजी को तो महाप्रभुजी ने आदि से अन्त तक श्री माधव भट्ट को बोलकर लिखाया था। वह शब्द प्रति शब्द अपने रचयिता के शब्दों में ही लिखी गई है।

वार्त्ताओं के साथ दूसरी कठिनाई यह है कि इनके प्रवक्ता के शब्दों को भक्तगण संग्रह करके अपनी बुद्धि के अनुसार लिखते थे और स्वयं उनका मनन करते थे तथा अन्य वैष्णवों के बीच उनकी चर्चा चलती थी। ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि

श्री महाप्रभुजी के समय में ये प्रसंग मौखिक ही रहे थे इनको सर्वप्रथम लिपिबद्ध करने का श्रेय श्री गुसांईजी के सेवक उज्जैन निवासी श्री कृष्ण भट्ट को है। श्रीकृष्ण भट्ट लिखित वार्त्ता की यह सर्वप्रथम पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं है परन्तु १७४६ की लिखी कांकरौली विद्या विभाग की प्रति में इनके इस साहित्य के आदि लेखक अथवा लिपिकार करने वाले होने का अच्छा प्रमाण उपलब्ध है। तथा ये ही प्रसंग वचनामृत रूप में दूसरे ढंग से लिखे जाते थे जिनमें लिपिकार अपनी ओर से समय, स्थान व्यक्ति आदि का अनुसन्धान जोड़ देते थे। वचनामृत में प्रवक्ता के शब्द ज्यों के त्यों रखने की चेष्टा की जाती थी पर उसमें संदर्भ और प्रसंग की पूर्ति के लिये अपनी ओर से अपनी ही भाषा में पूर्ति की जाती थी। इसीलिये वचनामृतों के लेखक और प्रवक्ता दोनों की भाषाओं के रूप सर्वत्र मिलते हैं।

उपर्युक्त श्रीकृष्णभट्ट जी श्री गुसांईजी के भक्त थे यह निर्विवाद सिद्ध है। यह उज्जैन के रहने वाले थे जहाँ उनका घर, और वंश आज भी विद्यमान है। इनके पिता का नाम पद्मारावलजी था और वे भी महाप्रभुजी के सेवक थे। इनके शरणकाल के सम्बन्ध में यह उल्लेख है कि गुसाईंजी के उज्जैन पधारने पर यह कुटुम्ब सहित उनके सेवक हुए थे। श्री गुसांईजी के उज्जैन पधारने की घटना वि० सम्वत् १६०० के पश्चात् की है क्योंकि श्री गुसांईजी ने इस सम्वत् में ही सबसे पहले गुजरात की यात्रा की थी। प्राप्त सामग्री के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि ये इस प्रथम यात्रा में ही शरण आये थे। श्री गुसांईजी की दूसरी गुजरात यात्रा का समय सम्वत् १६१३ वि० है और तीसरी यात्रा का सम्वत् १६१९ वि० है और इसी प्रकार १६२३, १६३१, १६३८ में भी गुसांईजी ने गुजरात की यात्राएँ की थीं।

श्री गुसांईजी के गोकुलवास का समय सं० १६२२-१६२८ वि० से लेकर सं० १६४२ विक्रमी तक है। स्वयं श्रीकृष्ण भट्ट की वार्त्ता में यह उल्लेख है कि अपने गोकुलवास में श्री गुसांईजी ने इन्हें कई बार गोकुल बुलाया है। और यह स्वयं उनके दर्शनार्थ वहाँ आये हैं अतः इनका शरणकाल संवत् १६२२ से पूर्व ही ठहरता है। संवत् १६१९ विक्रमी (की गुजराता यात्रा गढ़ा से हुई थी। अतः इस यात्रा में उज्जैन जाने का प्रसंग ही नहीं आता है) के बीच श्री गुसांईजी की किसी गुजरात यात्रा का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है। इसलिये गुसांईजी की दूसरी यात्रा में ही इनके शरण आने की अधिक सम्भावना है। ये कुटुम्ब सहित शरण आये थे। इनके दो पुत्र गोकुल भट्ट और गोविन्द भट्ट का उल्लेख भी मिलता है। इस प्रकार सम्वत् १६१३ वि० में जब इनके दो पुत्र थे तो अनुमानतः इनकी आयु लगभग २०-२१ साल की अवश्य रही होगी। अतः इनका जन्म सम्वत् १५८५ के पश्चात् ही मानना होगा। क्योंकि महाप्रभुजी की अन्तिम द्वारिका यात्रा सम्वत् १५८५ वि० में कही गई है और उस समय यदि ये विद्यमान होते तो अवश्य ही इनके पिता जो स्वयं श्री महाप्रभुजी के शिष्य थे इन्हें समर्पण करवाते। इनके अंतिम समय के विषय में इनकी वार्त्ता में लिखा है, इनका शरीर उज्जैन से चार 'मंजिल' दूर, 'लहरज' ग्राम में रुग्णावस्था में गोकुल यात्रा करते समय छूट गया था। ठीक इसी समय श्रीनाथजी का श्रृंगार करते हुए गोकुलनाथजी को इसका आभास मिल गया था।

इनकी निधन तिथि निश्चय करने के लिये श्री गोकुलनाथजी की प्रधानता के कारण यह तो निश्चित ही है कि उस समय विट्ठलनाथजी वर्तमान नहीं थे। श्री गुसांईजी का

तिरोधान समय विक्रम सम्वत् १६४२ है और ये घटना उससे पीछे की है; कब और कितने पीछे की इसका पता न तो वार्त्ता से चलता है और न सम्प्रदाय के अन्य किसी ग्रन्थ से। इस अवस्था में इनका सम्वत् १५८५ वि० से सं० १६४२ विक्रमी तक विद्यमान रहना निश्चित होता है। और इसी आधार पर हम ये भो निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि प्रसंगात्मक वार्त्ताओं के लिपिबद्ध होने का समय भी सं० १६१३ से १६४२ विक्रमी सम्वत् के बीच ठहराया जा सकता है।

अपने इस निष्कर्ष का समर्थन हमें वार्त्ता के प्रसंगों से भी प्राप्त होता है। चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में कृष्णदासी की वार्त्ता (संख्या ५२ डाकौर संस्करण) में श्री गुसांईजी के चौथे पुत्र श्री गोकुलनाथजी और सातवें पुत्र श्री घनश्यामजी के जन्म प्रसंगों का उल्लेख है। पहली घटना सम्वत् १६०८ विक्रमी की है और दूसरी सम्वत् १६२८ की है। श्रीकृष्णदास अधिकारी के निधन की तिथि सं० १६३३ के पश्चात् है जिसका कि चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में उल्लेख है। डा० दीनदयालुजी ने इसे सम्वत् १६३१ से ३८ विक्रमी के बीच इसलिए माना है कि श्री गुसांईजी की सं० १६३८ की द्वारिका यात्रा में श्री चांपा भाई साथ नहीं थे। वे कृष्णदास के स्थान पर अधिकारी नियुक्त हुए थे। स्वयं कृष्णदास रचित निम्नलिखित पद से उनका कम से कम संवत् १६३८ तक तो वर्त्तमान रहना निश्चित ही है, साथ ही डा० दीनदयालु के कथन की पुष्टि होती है।

खेलत बसंत वर विट्ठलेश राय निज सेवक सुख देखत आय।
श्री गिरधर राजा बुलाय, श्री गोविन्दराय पिचकारी लाय।
श्री बालकृष्ण छवि कही न जाय, श्रा गोकुलनाथ लीला दिखाय।
रघुनाथ लाल अरगजा लाय, श्री जदुनाथ चोबा मंगाय।
घनश्याम धाय फेंटन भराय, सब बालक खेलत एक दाय।

× × ×

सब अपने मनोरथ करत आय, तहाँ कृष्णदास बलिहारि जाय।[1]

श्री घनश्यामजी का जन्म संवत् १६२८ विक्रमी है, और उनके होरी खेलने में दौड़ने की घटना कुछ वर्ष पीछे पूर्ण बाल्यावस्था की होनी चाहिये। इस होली के समय उनकी आयु कम से कम पाँच वर्ष की तो माननी ही पड़ेगी श्री कृष्णदास इस पद के रचयिता हैं और वे उस समय वर्त्तमान थे। अत: उनका निधन इसके पीछे सिद्ध होता है।

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में सूरदास के निधन का प्रसंग मिलता है। श्री दीनदयालुजी ने सूरदास का निधन सम्वत् १६३८ अथवा सम्वत् १६३९ में माना है परन्तु स्वयं सूरदासजी के एक प्रकाशित पद के आधार पर जिसमें राजभोग का विस्तार से वर्णन है, 'सूर निर्णय' के लेखक द्वय ने इसे सम्वत् १६४० के पश्चात् और संवत् १६४२ के पूर्व माना है। इस प्रकार चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में श्री गुसांईजी के तिरोधान से पूर्व अर्थात् सम्वत् १६४२ से पूर्व तक की घटनायें हैं।

इसी प्रकार यदि दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता के कुछ प्रसंगों की परीक्षा की जाय तो उसके रचना काल का भी निर्णय हो जायगा। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता

---

१ श्री द्वारकादास परीख की निजी हस्तलिखित कीर्तन संग्रह की प्रति से।

में जो प्रसंग या घटनायें आई हैं उनमें कोई भी ऐसा प्रसंग या घटना नहीं है जिसे सम्वत् १६४५ विक्रमी के पश्चात् सम्प्रदाय के इतिहास का अथवा जनश्रुति का समर्थन प्राप्त हो। केवल महावन की गंगाबाई और लाडबाई धारबाई की वार्त्ताओं में श्रीनाथजी के मेवाड़ पधारने की घटना है जो पीछे से बढ़ाई है। इसे आगे प्रमाणित किया जायगा।

सम्वत् १६३८ में सात स्वरूपों का ऐतिहासिक बंटवारा श्री गुसांईजी ने अपने बालकों में किया था। पर सम्वत् १६४५ विक्रमी श्री गुसांईजी के तिरोधान के तीन वर्ष बाद तक सब बालक एक साथ रहे और ज्येष्ठ भ्राता श्री गिरधरजी का परिवार के 'कर्त्ता' रूप में प्राधान्य रहा है, पीछे सब भाई अपने अपने सेव्य स्वरूपों को लेकर अलग हो गये। यही बात दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १६९ में कान्हबाई की वार्त्ता में इस प्रकार लिखी है कि एक बार श्री गोकुलनाथजी यज्ञ करना चाहते थे और इसके लिए वे अपने ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा लेने गये थे बीच में कान्हबाई इन्हें यज्ञ करने से मना किया। यह आज्ञा लेने का प्रसंग भी सम्वत् १६४६ के पूर्व का है क्योंकि सम्वत् १६४६ में अलग हो जाने के बाद फिर आज्ञा की उतनी आवश्यकता ही नहीं रह जाती है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि बड़े भाई होने के नाते उनकी आज्ञा लेने के लिए सबका एक में रहना जरूरी नहीं है। यह कार्य अलग हो जाने के बाद भी हो सकता है। इसके लिए कान्हबाई की उपस्थिति के काल की परीक्षा आवश्यक है। कान्हबाई श्री गुसांईजी की सेविका थीं और गोविंद स्वामी की बड़ी बहन थीं। यह पैंतालीस वर्ष की आयु पर सेविका हुई थीं। तब जिस समय की यह बात है उस समय वे वृद्ध होगई होंगी। कारण कि ये लगभग सम्वत् १६०० में शरण में आई थीं और सम्वत् १६४५ में नब्बे वर्ष की रही होंगी। इस घटना के समय वह उपस्थित थीं। इसलिए यज्ञ के लिए आज्ञा लेना बटवारे के पूर्व ही निश्चित रहेगा, पश्चात् नहीं। सम्प्रदाय कल्पद्रुम के आधार पर श्री गोविन्द स्वामी संवत् १५९२ में ब्रज आए थे और यह भी उनके साथ या उनके दो चार वर्ष पश्चात् पीछे आई होंगी और उस समय पैंतालीस वर्ष की रही होंगी।

'श्री गोकुलेशजी नूँ जीवन चरित्र' (गुजराती), के लेखक श्री मगनलालजी भाई गांधी बी० ए० ने श्री गोपालदास व्यारा (श्री गोकुलनाथजी के समकालीन) के 'तत्वार्थ दोहन' और 'प्राकट्य सिद्धान्त' नामक ग्रन्थों के आधार पर इस घटना का समय माघ सुदी पंचमी सम्वत् १६४६ विक्रमी ठहराया है।

इस प्रकार दोसौ बावन की प्रसंगात्मक वार्त्ताओं का लेखन काल (लिपिबद्ध होने का काल) भी सम्वत् १६४६ से पूर्व ही ठहरता है।

लेखन

प्रसंगात्मक वार्त्ताओं का संभावित काल निर्णय करने के पश्चात् यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि अपने इस रूप में इन वार्त्ताओं का प्रचलन सम्प्रदाय के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों तक ही सीमित था और यह 'सामग्री', 'अधिकारी' को ही उपलब्ध की जाती थी। क्योंकि इनकी भावभूमि को समझने के लिए पुष्टिमार्गीय पृष्ठभूमि आवश्यक थी, अन्यथा यह सम्भावना थी कि इनको समझे बिना लोग इनका मनमाना आशय निकालेंगे,

जैसा कि ग्राउस महोदय ने अपने मथुरा डिस्ट्रिक्ट मेमॉयरस सन् १८८० वाले ग्रन्थ में कृष्णदास स्त्री पुरुष की वार्त्ता का अनर्थ किया है । इसी प्रकार आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लजी ने 'रामदास पुरोहित' की वार्त्ता में 'राँड' शब्द के ही आधार पर यह लिख दिया कि 'श्री वल्लभाचार्य की शिष्या न होने के कारण मीराँबाई को बहुत बुरा भला कहा गया है और गालियां तक दी गई हैं' । [1] श्रद्धेय आचार्य शुक्लजी ब्रज की व्यावहारिक भाषा से अपरिचित थे । अन्यथा उनसे ऐसी भूल होने की सम्भावना नहीं थी । ब्रज में 'राँड' शब्द एक सामान्य एवं नित्य की बोलचाल का शब्द है और वहाँ घरों में बहू-बेटियों तक के लिए ताड़ना के काम में आता है । इसी प्रकार भावना वाली ८४ वैष्णवों की वार्त्ता में कुम्भनदास की वार्त्ता में कुम्भनदास ने अपनी भतीजी को 'बैठ राँड'—कहा है । कीर्तन के पद में भी श्री कुंभनदास ने 'लाल तोहि भावे टोड़ को घनो' इस पद की अंतिम पंक्ति में कहा है—"कुंभनदास प्रभु गोवरधन घर वह कौन रांड ढेडनी कौ जनो" इत्यादि ।

संख्यात्मक वार्त्ताएँ:—इन प्रसंगों को ही आगे चलकर श्री गोकुलनाथजी ने किंचित् परिष्कृत और परिवर्धित करके संख्यात्मक वार्त्ताओं का रूप दिया जिसे विस्तार से वार्त्ता की प्रामाणिकता वाले प्रकरण में लिखा जायगा । अलीखान पठान के पदों और श्री यदुनाथजी कृत 'वल्लभ दिग्विजय' के अनुसार सम्वत् १६५८ विक्रमी के पूर्व चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता का संख्यात्मक रूप प्रचलित हो चुका था, इसलिए इनका संकलन और सम्पादन काल इन तेरह वर्षों के भीतर ही मानना पड़ेगा । सम्वत् १६४६ विक्रमी से लेकर सम्वत् १६५८ विक्रमी तक श्री गोकुलनाथजी ने इनकी संख्या और क्रम दोनों निश्चित कर दिए तथा इन्हें अपने सेवकों के समक्ष नित्य प्रति कहना आरम्भ कर दिया और इनको धार्मिक पुस्तकों के समकक्ष महत्व प्रदान कर दिया था ।

इस प्रकार चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के प्रचलित संख्यात्मक संस्करण संवत् १६४६ वि० और संवत् १६५८ विक्रमी के बीच की रचनायें हैं ।

निजवार्त्ता घरूवार्त्ता -- चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के पश्चात् ही इन वार्त्ताओं की रचना हुई है ऐसा घरूवार्त्ता के भावनात्मक संस्करण के उपक्रम से प्रतीत होता है :—

उपक्रम—और सेवक तो श्री आचार्यजी महाप्रभु के सहस्रावधि हैं, काहे तें ? श्री आचार्यजी महाप्रभु आप तीन बेर पृथ्वी परिक्रमा करी ।

और गुसांईजी जब भगवानदास श्री गोवर्द्धननाथजी 'बालभोगिया, तिनसों सामग्री दाझी तब त्याग कियो । तब श्री आचार्यजी महाप्रभु के सेवक अच्युतदास श्री गुसांईजी सों कहें जो ठाकुरजी दैवी जीवन के उद्धार के लिए श्री आचार्यजी महाप्रभुन कों आज्ञा दीनी । तासों श्री आचार्यजी महाप्रभुन भूतल पै अवतार लिये, और दैवी जीवन कों अंगीकार किये हैं । और दैवी जीव तो बोहोत हैं । सब साठि लाख जीवन कों अंगीकार करनो है सो श्री आचार्यजी महाप्रभु तो तुमकों सौंपे हैं, और आप तो जीवन के दोष विचारत हों, और जीव तो दोष भर्यो है । सो यह बात अच्युतदास के मुख तें सुनिकै श्री गुसांईजी संकल्प किये, जो आज पाछें काहू सों खीजनो नाहीं, और काहू के दोष देखने नाहीं, ता पाछें छें भगवानदास कौ हाथ पकरि के श्री गुसांईजी आपु लै आए, और कहे, जो सेवा सावधानी सों करियो ।

---

१ — — संस्करण — पृष्ठ १६२

सो श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक तौ बोहोत हैं। परि श्री गोकुलनाथजी ने चौरासी सेवकन की वार्त्ता कही है ताकौ हेतु यह है, जो ये चौरासी सेवक हैं सो मुख्य हैं। जिनको श्री आचार्यजी महाप्रभु प्रेमलक्षणाभक्ति को दान किये हैं। सो कैसे जानिये ? सो गोविन्द स्वामि गाये हैं :—

"भक्ति मुक्ति देत सबहिन कौं निज जन कों कृपा प्रेम बरखत अधिकाई।"

सो कृपा प्रेम को कहा स्वरूप है ? जो जिनसों श्री ठाकुरजी साक्षात् याही देह सों बोलत हैं, बातें करत हैं, जो चाहिये सो मांगि लेत हैं।

और श्री गोकुलनाथजी 'सर्वोत्तम की टीका' में पद्मनाभदास कों स्वरूप लिखे हैं। सो जैसे भगवान् के गुन गाये ते जीव कृतार्थ होय हैं, तैसे भगवदीयन के गुण गायें तें हू जीव कृतार्थ होत हैं। याही तें शुकदेवजी 'नवम-स्कंध' में सब राजान की कथा कही हैं। सो वे राजा सब भगवदीय हैं। ताहिते प्रथम भगवदीयन की कथा कहिये तो भगवद्कथा को अधिकारी होंय। ताहि तें शुकदेवजी ने नवमस्कंध में भगवदीयन कौ चरित्र कह्यो। सो श्री गोकुलनाथजी ने हू चौरासी वैष्णव भगवदीयन की वार्त्ता प्रगट कीनी।

और श्री गोकुलनाथजी आपु नित्य कथा कहते। सो दामोदरदास संभल वाले की वार्त्ता कहत है तब वैष्णव ने पूँछी, जो महाराज आजु कथा न कहोगे ? तब श्री गोकुलनाथजी आपु श्रीमुख तें कहें, जो आजु तो कथा कौ फल कहत हैं। तातें भगवदीयन कों अवश्य चौरासी वार्त्ता कहनी, सुननी। तातें भगवद्भक्ति होई, और ठाकुरजी के चरनारविन्द की प्राप्ति होई, और ठाकुरजी सदा प्रसन्न रहे।"

इस उपक्रम से तो स्पष्ट है कि चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता को निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता में प्राथमिकता दी गई है। इनके लेखक अथवा रचयिता श्री गोकुलनाथजी हैं।

निज और घरूवार्त्ता में महाप्रभुजी के निजी और घरू जीवन के प्रसंगों का संग्रह है। उनके द्वारा श्री महाप्रभुजी के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकाश से सीधे-सीधे पुष्टिमार्ग की वह ज्योति फैलाई गई है जो स्वयं मूलस्रोत है। चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता द्वारा परोक्ष रूप से आचार्य चरित्र की शिक्षा मिलती है, निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता से प्रत्यक्ष रूप से उस भव्य जीवन की झांकी मिलती है जो पुष्टिमार्ग का सर्वस्व है।

सम्वत् १६९७ की जो प्रति कांकरौली विद्याविभाग में मिली है उसमें निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता भी लिखी हुई हैं। इसलिए सम्वत् १६९७ विक्रमी तक इनका निर्माण इस रूप में होगया था, यह निर्विवाद सिद्ध है।

इससे पूर्व सम्वत् १६५८ की 'यदुनाथ दिग्विजय' में इनके कुछ प्रसंग दिये गये हैं और सम्वत् १६८० की श्री केशवकिशोर की 'आचार्य वंशावली' में दिग्विजय से अधिक प्रसंग दिये हुये हैं जिससे इनकी (निजवार्त्ता-घरूवार्त्ता) की रचना सम्वत् १६८० तक तो अवश्य होगई थी ऐसा मानना पड़ता है। सम्वत् १७०० के आसपास की रचना श्री गोपालदास व्यारा वाले के 'प्राकट्य सिद्धान्त' में इनके उल्लेखों से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ भी श्री गोकुलनाथजी द्वारा अपने समय में ही क्रमबद्ध होकर प्रचलित हो चुके थे। निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता के प्रसंगों की परीक्षा करने पर यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है कि निजवार्त्ता

घरूवार्त्ताओं में प्रसंग की वार्त्ता के कई प्रसंग ज्यों के त्यों मिलते हैं। उदाहरण के लिए श्रीनाथजी के प्राकट्य का प्रसंग, सद्दू पाँडे की वार्त्ता में आया है, 'सेवा व्यवस्था' का प्रसंग कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में आया है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चौरासी के प्रसंगों को ही विस्तृत और व्यापक बनाकर महाप्रभुजी से सम्बन्ध रखने वाली अन्य घटनायें इन वार्त्ताओं में संकलित करली गई हैं। यह बात यह सिद्ध करती है कि चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के निर्माणकाल के बाद ही इनकी रचना हुई और उसके प्रसंगों का प्रयोग इसकी रचना में कर लिया गया। 'भावसिंधु' जो संवत् १६८० की रचना है उसमें भी इनके प्रसंग आगए हैं। इससे संवत् १६८० तक इनकी रचना हो जाना सिद्ध है। चौरासी वैष्णवों में से एक, श्री विष्णुदास छीपा, की एक रचना "चौरासी वैष्णवों के चोखरा" सम्प्रदाय में प्रचलित और प्रकाशित हैं और इनका समय सम्वत् १६८० के मालाप्रसंग तक है। इसमें भी इनके प्रसंग हैं।

महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता—मेरे विचार से यह ग्रन्थ निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता की भांति चौरासी वार्त्ता के कुछ प्रसंगों को लेकर विस्तृत और व्याख्यात्मक रूप में पीछे से प्रस्तुत किया गया है। जब मैं यह कहता हूँ तो मेरा आशय यह कदापि नहीं है कि चौरासी की रचना के पूर्व यह प्रसंग प्रचलित नहीं थे। तात्पर्य केवल यह है कि इसके सब वृत्त क्रमपूर्वक श्री गोकुलनाथजी के समय में ही संकलित किये गये हैं। इस संकलन का निजी उद्देश्य और महत्व है। यह उस महाप्रभु का चरित्र है जो पुष्टिमार्ग का सुमेरू है। इसलिये इसको शेष से पृथक् करने की आवश्यकता थी और इसको सर्वोपरि करके दिखाना था।

इस सम्बन्ध में एक और प्रमाण देना आवश्यक है। श्री गुसांई देवकीनन्दनजी जोकि गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी के भतीजे थे और श्री गुसांईजी के पंचम पुत्र श्री रघुनाथजी के आत्मज थे और जिनका जन्म संवत् १६३४ (मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी) है, उन्होंने अपने ग्रन्थ 'प्रभु चरित्र चिन्तामणि' में इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

'तदपि भगवत्सेवापरैः श्री गोकुलनाथैः शयनभोग सेवोत्तरे लब्ध गाथावसरैः सुबोधिन्यादिना श्री भागवत कथा कथनानन्तरं श्रीमदाचार्यतदात्मज चरित कथापि नित्य नियमेन परिगृहीता वक्तुम्।[1]"

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिदिन श्री गोकुलनाथजी शयन आरती के पश्चात् सुबोधिनी और भागवत कथा के अनन्तर महाप्रभुजी और श्री गुसाँईजी के चरित्र को भी नित्य नियम से कथा रूप से कहा करते थे। विद्या विभाग कांकरौली के संचालक श्री कंठमणि शास्त्रीजी ने इस ग्रन्थ का रचनाकाल संवत् १६६० के लगभग ठहराया है। इस आधार पर इन दोनों वार्त्ताओं का निर्माणकाल सम्वत् १६६० के आसपास ठहराया जा सकता है।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता—ऊपर लिख चुके हैं कि दोसौ बावन के प्रसंगात्मक रूप संवत् १६४६ विक्रमी से पूर्व ही प्रचलित थे। इसका समर्थन भक्तमाल से जो सम्वत् १६४२—७७ की रचना है उसमें इनमें से कुछ वैष्णवों के नामोल्लेख से होती

१ प्रभु चरित्र चिन्तामणि—पृष्ठ २ कांकरौली प्रकाशन

है। श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत जो उनकी १६६७ तक की रचनायें हैं उनमें इन सब प्रसंगों का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि दोसौ बावन की प्रसंगात्मक वार्त्ताओं की रचनाएँ सम्वत् १६६७ विक्रमी तक तो हो ही चुकी थी। क्योंकि इनको वचनामृतों का आधार प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त इसके संख्यात्मक प्रचलित रूप का रचनाकाल निर्णय करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि संख्यात्मक वार्त्ता का उल्लेख हरिरायजी के ग्रन्थों को छोड़कर उससे पूर्व के किसी समकालीन ग्रन्थ में नहीं मिलता है। दूसरी कठिनाई यह है कि इसकी कोई हस्तलिखित प्रति सम्वत् १८५० के पूर्व की लिखी हुई मेरे देखने में नहीं आई है जिसके आधार पर इसका इससे पूर्व इस रूप में लिपिबद्ध होना प्रमाणित किया जाय।

अब केवल एक ही उपाय है और वह यह कि श्री हरिराय जी के संकलन के आधार पर इसका लिपिबद्ध होना निश्चित किया जाय। श्री हरिरायजी के संस्करण में यह प्रसंग नहीं है जो दूसरे संस्करणों में मिलते हैं यद्यपि वे प्रसंग वार्ताओं में भी हैं और वचनामृतों में भी हैं।

तीसरी कठिनाई यह है कि दोसौ बावन की प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियों में भी कई वार्त्ताओं का अन्तर है। और फिर हरिरायजी के संस्करण की वार्त्ताओं में और इन वार्त्ताओं में भी भेद है।

इससे यह परिणाम निकलता है कि हरिरायजी ने अपने मूल वार्त्ता संस्करण में उन सब प्रसंगों को छोड़ दिया है जिनका साम्प्रदायिक महत्व नहीं है। और अन्य संस्करणों में ऐसे भी प्रसंग सम्मिलित हैं। इससे इनका लिपिबद्धकाल सम्वत् १७७२ विक्रमी के पूर्व ही मानना पड़ेगा।

एक सम्भावना यह भी हो सकती है कि दोसौ बावन की संख्यात्मक सूची और प्रसंगों की पूर्ति वचनामृतों के आधार पर श्री गोकुलनाथजी के शिष्यों द्वारा हुई हो क्योंकि इनमें कई वार्त्ताओं में उनका नाम आदर के साथ आया है और कई प्रसंग जैसे 'गंगाबाई' की वार्त्ता में श्रीनाथजी के मेवाड़ पधारने की वार्त्ता, 'लाड़बाई धारबाई' की वार्त्ता में गोकुल के मंदिरों के टूटने के वर्णन वाला अंश, यह सब श्री गोकुलनाथजी के तिरोधान होने के पीछे की घटनायें हैं जो बाद में इसमें जोड़ी गई हैं। यह सम्भावना केवल हरिरायजी के पक्ष में ही सम्भव है, क्योंकि उन्होंने गोकुलनाथजी के बाद सर्वप्रथम अपने दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के मूल और भावनात्मक दोनों संस्करणों तथा चौरासी के भावनात्मक संस्करण में दोसौ बावन की संख्या को स्वीकार किया है। और सात्विक, राजस, तामस प्रत्येक के ८४, ८४ के तीन भाग माने हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि या तो २५२ की संख्या का निर्धारण श्री गोकुलनाथजी स्वयं कर चुके थे और वे अपने समय में सब वार्त्ताओं को लिपिबद्ध नहीं करा सके थे। जिससे उनके पीछे कुछ वार्त्तायें उनके वचनामृतों के आधार पर दोसौ बावन की संख्या की पूर्ति के लिए बाद में जोड़ी गई। यह भी सम्भव है कि हरिरायजी ने स्वयं इस संख्या को निश्चित किया हो। पर यह इसलिए सम्भव प्रतीत नहीं होता कि यदि २५२ की संख्या के निर्धारक स्वयं हरिरायजी होते तो उनके अपने संस्करण और शेष संस्करणों में अट्ठाइस वार्त्ताओं का अन्तर नहीं पड़ता।

हरिरायजी की चलाई हुई संख्या वार्त्ता में सर्वमान्य हो जाती जैसा कि चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता की भावनात्मक प्रतियाँ मूल के अनुसार ही मिलती है। इसके अनुसार यह निश्चित किया जा सकता है कि दोसौ बावन की संख्या का निर्धारण स्वयं श्री गोकुलनाथजी का किया हुआ है अन्यथा हरिरायजी को यह इतनी मान्य न होती।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के लिखने का आरम्भ श्री गोकुलनाथजी की उपस्थिति में हो चुका था। इसका अकाट्य प्रमाण विक्रम सम्वत् १६९७ की वार्त्ता की हस्तलिखित प्रति है, इसमें अन्त में श्री गुसांईजी के सेवक चार अष्टछापी सखाओं की वार्त्ता लिखी हुई मिलती है। यही वार्त्ताएँ सामान्य मुद्रित और हस्तलिखित प्रतियों में प्रारम्भ में ही मिलती हैं। इससे यह तो सिद्ध हो ही गया कि कम से कम ये चार वार्त्तायें श्री गोकुलनाथजी के समय में ही लिपिबद्ध हो गई थीं।

दूसरे सामान्य प्रतियों में और भावना वाली प्रतियों में जो वार्त्ताएँ एक-सी लिखी मिलती हैं उनके सम्बन्ध में भेद न होने के कारण उनकी प्राचीनता भी असंदिग्ध है और वे भी श्री गोकुलनाथजी की उपस्थिति में लिपिबद्ध हो गई होंगी। इसमें सन्देह इसलिए नहीं है कि श्री हरिरायजी के पहले के संस्करण में वे मौजूद हैं, जहाँ भेद है वही संदेह के लिए भी स्थान है।

तीसरे हरिरायजी का भावप्रकाश इस बात का स्वयंसिद्ध प्रमाण है कि श्री हरिरायजी सम्प्रदाय के किसी शिष्य की लिखी पुस्तक की व्याख्या तो नहीं करेंगे और न इतना महत्व देंगे जितना अपने पूर्वज एवं गुरू के वचनों को उनकी वार्त्ताओं—चौरासी, दोसौ बावन, निज, घरू, महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता—को भावनात्मक रूप में प्रस्तुत करना ही सिद्ध करता है कि यह उनसे पूर्व लिपिबद्ध हो चुकी थीं, और इनको लिपिबद्ध कराने वाले कोई पूज्य चरण, आचार्य और गोस्वामी बालक ही थे और इनसे कुछ पहले श्री गोकुलनाथजी को छोड़ कर इस सम्प्रदाय में और कोई इस यश का भागी नहीं हो सकता है। क्योंकि यही सबसे निकटवर्त्ती विद्वान् एवं ब्रजभाषा के प्रचारक थे।

चौथे ब्रजभाषा पद्य को प्रोत्साहन जहाँ श्री विट्ठलनाथजी ने दिया था वहाँ ब्रजभाषा गद्य के प्रोत्साहित करने का श्रेय श्री गोकुलनाथजी को ही है। इनके ग्रन्थों के अतिरिक्त इनके अनेक पत्र सेवकों के यहाँ और मंदिरों में सुरक्षित हैं। जिनमें ब्रजभाषा गद्य की बहुतायत है।

इनके पूर्व श्री महाप्रभुजी के पत्र संस्कृत में हैं और श्री गुसांईजी के पत्र भी संस्कृत से ही हैं। श्री गुसाँईजी के केवल एक पत्र में एक स्थान पर एक पंक्ति ब्रजभाषा गद्य की लिखी मिलती है। इसलिए भी इनके प्रणेता श्री गोकुलनाथजी ही सिद्ध होते हैं।

कुछ गुजराती पद 'विविध धौलपद' मथुरा लिथो प्रेस से प्रकाशित हुये हैं। जिनसे वार्त्ताओं के प्रसंगों की पुष्टि होती है तथा उसके पश्चात् दयाराम के भी इसी प्रकार के पद मिलते हैं।

श्री महाप्रभु के अतिप्रिय चौरासी जे भक्त
श्री राधावर रूप में, जिनको मन आरक्त।

सो श्री गोकुलनाथजी, कहे सबन के नाम।
बरनी सबकी वार्त्ता, जाति ज्ञाति, अरु गाम।
तामें कुछ सन्देह रहे, लीला में को रूप।
सो हू श्री हरिरायजी, कहें प्रगट स्वरूप।

इसमें उल्लिखित 'सो श्री गोकुलनाथजी कहे सबन के नाम' की पंक्ति श्री गोकुलनाथजी कृत चौरासी वैष्णवों की संस्कृत नामावली की ओर भी संकेत करती है।

भावनात्मक संस्करणों की जो हस्तलिखित एवं प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हैं उनमें से चौरासी की दो प्राचीन तिथि वाली हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख पहले हो चुका है और दोसौ बावन की सात ऐसी प्रतियों का विवरण हस्तलिखित प्रतियों के विवरण (१) में दिया जा चुका है।

इन हस्तलिखित प्रतियों में सम्वत् १७९७-१८७२ वाली प्रतियाँ सबसे पुरानी तिथि वाली प्रतियाँ है यद्यपि, 'कागज और स्याही' के आधार पर इनसे भी प्राचीन प्रतियाँ देखने में आई हैं जिनका उल्लेख हस्तलिखित प्रतियों के सम्बन्ध में किया गया है। प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में तिथि के अभाव के कारण केवल हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर ही नहीं यह नहीं कहा जा सकता कि यह पुस्तक निश्चय ही किस समय लिपिबद्ध हो गई थी। किन्तु समकालीन उल्लेखों से यह ठहराया जा सकता है कि यह भी श्री हरिराय जी के समय तक अवश्य ही लिपिबद्ध हो चुकी थी। सम्प्रदाय में भी आचार्य चरणों में अथवा अन्य सेवकों में भी इनसे पीछे ऐसा कोई प्रतिभाशाली भाषा का लेखक नहीं हुआ है जिसको इसका श्रेय दिया जा सके। श्री हरिरायजी के किसी हद तक समकालीन, श्री द्वारिकेशजी (जन्म सम्वत् १७५१ वि०) ने भाषा में 'भाव भावना' ग्रंथ का निर्माण अवश्य किया है किन्तु वे इतने दीर्घजीवी ही न थे जो इस लम्बे चौड़े काम को कर सकते। उनके तिरोधान का समय सम्वत् १८०० के आसपास माना जाता है। अत: भावनात्मक संस्करणों के रचयिता श्री हरिराय जी हैं और उनकी ये कृतियां केवल टिप्पणियों सहित नवीन संस्करण मात्र नहीं हैं। इनमें कुछ प्रसंग नये हैं। इनमें तीन जन्म की भावना सम्प्रदाय के एक विशिष्ट सिद्धान्त का प्रकाशन है। इस संस्करण में जहाँ एक ओर ऐतिहासिक अनुसंधान मिलता है तो दूसरी ओर ब्रह्म सम्बन्ध और पुष्टि सृष्टि का गौरव झलकता है। पुष्टि सृष्टिका महत्व, इस ग्रंथ का एक निर्दिष्ट दृष्टिकोण है और वार्त्तायें उसकी पुष्टि कर्त्ता या समर्थक हैं। भावनात्मक वार्त्ताएँ मूल प्रसंगात्मक और संख्यात्मक वार्त्ताओं के बृहद् संस्करण हैं। संख्यात्मक की संक्षिप्तता पर इसमें खुलकर प्रकाश डाला गया है, सच तो यह है कि साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को ठीक ठीक समझने के लिये भावनात्मक संस्करण ही महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में, चौरासी, निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता के रचयिता श्री गोकुलनाथजी हैं तथा दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के भी मूल रचयिता वही हैं केवल पूरक हरिरायजी हैं। जिन्होंने स्वतंत्र रूप से इन वार्त्ताओं का भावनात्मक संस्करण प्रस्तुत किया है।

भावनात्मक संस्करण :—वार्त्ताओं के जो भावनात्मक संस्करण उपलब्ध हैं वे स्वतंत्र ग्रन्थ हैं, टीकायें नहीं हैं क्योंकि उनमें केवल मूल वार्त्ता के भाव ही नहीं खोले गये हैं उस व्यक्ति के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली तीन जन्म की कथायें भी लिखी गई है और

अन्य प्रसंग छोड़े गये हैं । बौद्ध जातक कथाओं के समान ये स्वतंत्र ग्रन्थ ही ठहरते हैं, टीकायें नहीं । क्योंकि प्रत्येक जातक कथा में पूर्व जन्म का हाल है और फिर इस जन्म का हाल देकर कथा पूरी हुई है । इनके रचयिता श्री हरिरायजी हैं । गोस्वामी श्री द्वारिकेशजी (भावना वाले) तथा काका वल्लभजी प्रथम घर के, जो दोनों श्री हरिरायजी के समकालीन थे, उनकी रचनाओं से भी यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि श्री हरिरायजी ही इनके आदि कर्त्ता हैं। श्री द्वारिकेशजी ने अष्टछाप के लीला स्वरूपों के सम्बन्ध में कुछ छप्पय और कुछ रचनायें की हैं । इनके भाव संग्रह नामक ग्रन्थ में यह छप्पय इस प्रकार है :—

'सूरदास सो कृष्ण, तोक परमानन्द जानो ।
कृष्णदास सो ऋषम छीत स्वामी सुबल बखानो ।
अर्जुन कुंभनदास चत्रभुजदास विशाला ।
नंददास सो भोज स्वामी गोविन्द श्रीदामा ।
अष्टछाप आठों सखा, द्वारकेश परमान ।
जिनके कृत गुनगान करि, होत सुजीवन थान ।'

[बम्बई बेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण में नंददास के स्थान पर विष्णुदास छपा है जो अशुद्ध है]

भावनात्मक वार्त्ता का उदाहरण :–

"ये गोविन्द स्वामी लीला में श्री ठाकुरजी के अंतरंग सखा श्रीदामा तिनको प्राकट्य है । सो श्रीदामा सखा श्री स्वामिनीजी को भाई है ताते श्री ठाकुरजी कों अधिक प्रिय है । सो एक दिन खेल में श्रीदामा ठाकुरजी के कंधा ऊपर चढ्यो सो श्रीस्वामिनीजी ने देख्यो । तब श्री स्वामिनी ने उनकों शाप दियो जो भूमि ऊपर गिरो । उह समय श्रीजी ने श्रीस्वामिनीजी सों कह्यो । जो ये तो मेरी माला रूप है । परि आपने नाहीं मान्यों । ता पाछें ये आंतरी गाम में जन्मे और गोविन्द स्वामी के नाम सों प्रसिद्ध भये । परि इनको भगवन्मिलन की चाह बहोत तातें ये ब्रज में आये ।"

इन दोनों उद्धरणों से यह प्रमाणित होता है कि श्री द्वारिकेशजी के समय में (सम्वत् १५७१ में) यह भाव भावना सम्प्रदाय में प्रचलित हो गई थी । और यह हरिरायजी के भी समकालीन हैं तथा उस समय हरिरायजी के समय में वार्त्ता के सम्बन्ध में वैष्णवों के स्वरूप की लीला भावना का प्रचार हो चुका था । इससे पूर्व की और कोई लीला भाव की रचना सम्प्रदाय में प्राप्य नहीं है । गोकुलनाथजी की भावना सेवा विषयक है । जिसमें स्वरूप, लीला और भावों की भावना का स्पष्टीकरण किया गया है ।

वैष्णवों के स्वरूप की लीला भावना का सर्वप्रथम सूत्रपात करने का श्रेय इसी शैली पर हरिरायजी को है । श्री काका वल्लभजी के दो गुजराती धौल मिलते हैं जिन्हें अन्यत्र उद्धृत कर चुके हैं जिनके आधार पर श्री हरिरायजी की चौरासी तथा दोसौ बावन सम्बन्धी भावनात्मक नामों की पुष्टि होती है । तथा इस संस्करण के कर्त्ता के रूप में हरिरायजी सिद्ध होते हैं । और वार्त्ताओं का रचनाकाल सम्वत् १६०८ से लेकर १७७२ के बीच निश्चय हो जाता है ।

हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर वार्त्ता की प्रामाणिकता

१७४६ की प्रति—इसकी अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है :—वि० सं० १७४६ वरषे मीती सांवण शुदी ७ सुकरे पोथी लीखी छे। प्रती गोविन्ददास ब्राह्मणनी पोथी थी लख्युछे ।। पृ० ६८

यह पोथी कांकरौली सरस्वती भंडार हिन्दी बंध संख्या १०१–१ की है। इसमें कुल १०८ पृष्ठ हैं जिसकी पृष्ठ संख्या आज के हिसाब से २१६ होती है। इसमें श्री आचार्य महाप्रभुजी के सेवक श्री गुसांईजी के सेवकों की वार्त्ताओं के प्रसंग १२८ हैं। कुछ स्वतंत्र वार्त्ताएं भी हैं। कुछ श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत भी हैं। और अन्त में श्री आचार्यजी से लेकर श्री गोकुलनाथजी तक संवत्‌वार संक्षिप्त चरित्र भी हैं। इसके प्रत्येक पत्र में १८ से २० तक की पंक्तियां हैं। लेखक ने लिखा है यह पोथी किसी गोविन्ददास ब्राह्मण की पोथी से लिखी है। इसका लेखन संवत् वि० सं० १७४६ श्रावण शुक्ल ७ शुक्रवार को पूर्ण हुआ था इसी प्रति के कई उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रति से इसका लेखन हुआ है वह श्री गोकुलनाथजी के विद्यमान काल की थी। वे उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं :—

पृष्ठ १५—नारायणदासजु के पाछे श्री गोकुलनाथजु (श्री गोकुलचन्द्रमाजी प्रसिद्ध नाम) कृष्णदास स्वामी पास कितेक दीन सेवा करवाई। ता पाछे श्री गुसांईजी के घर पांऊ धारे। मथुरा मांझ। सो श्री रघुनाथजी के सेव्य अब हैं। वार्त्ता २०।

पृष्ठ २७:—श्री आचार्यजु के सुसर के घर ते श्रीनाथजु (श्री गोकुलनाथजी ठाकुर) पांऊ धारे। श्री अक्काजी साथ पांव धारे। सो प्रथम प्रथम सेवा श्रीनाथजु की श्री आचार्यजु करते। सो श्री गुसांईजी ने करी। सो श्री गोकुलनाथ जु माथें सेवा श्रीनाथ जु बीराजत हे। बात अनिर्वचनीय है। वार्त्ता ५०।

इन दो उल्लेखों में "सो श्री रघुनाथजी के सेव्य अब हैं"। तथा "श्री गोकुलनाथजु माथें सेवा श्रीनाथजु बीराजत है"। इस प्रकार वर्तमानकाल की क्रियाएँ होने से यह निश्चित होता है कि गोविंददास ब्राह्मण की पोथी श्री गोकुलनाथजी की विद्यमानता में—सं० १६९७ के पूर्व लिखी गई थी।

इस पोथी का लेखक तथा उसकी लेखन पद्धति भी इन उल्लेखों से जानी जा सकती है—

पृष्ठ १४—तब श्री आचार्यजु ने कही सीधो दीयो ताते गयो। जो सीधो न पठवते तो न जातो। ए वार्त्ता लिखे पाछे सूनी जो पद्मनाभदास ने सेव्य श्री मथुरानाथ जु सों पूछी जो—महाराज! श्री आचार्यजी महाप्रभु के घर सकल सामग्री सिद्ध है जो राज को उहाँ पाउ धरिवे की इच्छा होये तो वैसी कहो। तब श्री मथुरानाथजु ने कही जो मेरी इच्छा नांही। तू मोकों प्रीय है। तेरी कीयो भावत है। पाछे चलिवे को विचार कियो। इतनी बात बड़ी ठोर ते अधिक सुनी तातें लिखी है। पद्मनाभदास ऐसे बड़े भगवद्भक्त हते जिनसे ठाकुर प्रत्यक्ष बोलते। बातें करते। [यहाँ 'बड़ी ठोर' का तात्पर्य है श्री गिरिधरजी प्रथम पुत्र के गृह से।]

नोट— इन हस्तलिखित प्रतियों को काल-क्रम के हिसाब से न लगाकर विषय क्रम, प्रसंगात्मक, संख्यात्मक और भावनात्मक के अनुसार इस प्रकरण में लिया गया है। विषय के अन्तर्गत इनके काल-क्रम का भी ध्यान रक्खा गया है।

—संपादक

पृष्ठ ६५ :—"रामदासजी की स्वतंत्र बात"

बोहोरि कृष्णदास अधिकारी कुआ में गिरयो । ऊपर ते कुआ गिरयो । सो खबरि सुनी तब रामदासजी ने कही के "अधोगच्छति तामसा:" ऐसे वचन याते कह्यो जो गुसांईजी सों दूसरी करी । परि ता समें श्री गुसांईजी ने इह कही जो रामदासजी ऐसी याकों न कहियो श्री आचार्यजु को सेवक हे । सो आप ऐसे कही । अरु इह बात सब अधिकारी की बात में है । ताते इहाँ कछु वीस्तार नाहीं ।

पृष्ठ ६६ :—श्री कृष्णायनमः । एक समे गोवर्द्धनदास परम भागवत उत्तम सों उज्जेन में कृष्णभट्ट के घर आए सो कृष्ण भट्ट ने आगो भलो कीनो । भोजन कीयो । भोजन करिके बैठे तब भट्टजी ने कह्यो कछु सुनावो । रात्रि दिवस वैष्णवन की वार्त्ता करें सो करते करते तिन दिवस तिन रात्री वीतित गई । चौथी दिवस देह की सुधि भई तब भट्टाणी ने उनको स्नान करवायो महाप्रसाद लीवायो सो आज्ञा मांगि के अपने देश को चले । तब कृष्णभट्ट ने ए बातें लिखि सो दिन प्रति इनको पाठ करे । और कोऊ भगवदीय वैष्णव आवे तासों कहे । यों करते भट्टजु को सरीर थक्यो । तब गोविन्द भट्ट बेटा सों कह्यो । बाबा ए पोथी अरु जो घर की सोंज सब श्री गोकुल पठइओ । तदउपरांत गोविंदभट्ट श्री गोकुलनाथजु के सेवक सो जब श्री गोकुल आए तब कृष्णभट्ट ने श्री गोकुलनाथजु दीखाये । तब श्री गुसांईजु प्रसन्न भए । भट्टजु ने श्रीजु के मनकी वृत जांनि । सो प्रथम नाऊँ निवेदन श्री वल्लभ ने दियो । श्री गुसांईजी को आसै जान्यो । सो गोविन्दभट्ट ने बोहोत भेट पठई । भाँति-भाँति के मनोरथ किये । सो ऐसे करते बोहोत वर्ष बीते । तब नेत्रबल घट्यो । तब विचार कीयो । पोथी श्री गुसांईजु ने श्री भागवत श्री सुबोधिनी टीका टीपनी सब पोथी अरुभेट वैष्णव जब चले तब उनको सौंपी । कही श्री वल्लभ के आगे धरिओ अस कही बाप की वस्तु बेटा पावै । वे वैष्णव चले सो श्री गोकुल आए । श्री गोकुलनाथजु के आगे राखि भेट और—पोथी । जब महाप्रभु ने बांच्यो तब हृदो भरि आयो । अरु कही यह निवेदन यीतनी कही । तब पोथी श्रीहस्त सों खोली तब बीच छोटी चोपरी नीकसी ।। तब बांची ।। बांचि के आंखि सों लगाई । अरु हृदो भरि आयो । सो नित ग्रन्थ पाठ करते । ता पाछे और को पाठ करते । एक वार्त्ता अरु दोई बांचि के पेटी में धरिकै तारो मारिके भोजन कों पधारे । यों करते बहुत बरस बीते तब नेत्र को प्रकार भयो । तब श्री रायजु सों कही के पोथी पेटी में है सो लाओ । तब श्री रायजु ने पेटी खोलकर पोथी श्री हस्त में दीनी सो लीनी । लेकरि नेत्र सों लगाई फेरि रायजु को दीनी रायजु ने पेटी में धरी । सो नित्य यों करे सो एक दीवस रायजु ने देखी तब नीकी लागी । तब इनके प्रिय श्री गोपालजु हुते । सो बात श्री रायजु ने कही हमारे वैष्णवनि की बात है । तब गोपालजु ने कही के दिखीए । तब इनन कही, वह देखी न जाए । अन्नाजी बहुत जतन करि राखत है । तारे में है । और मो पास मांगत है । तब आनके देत हें । फिरके कहत है जो धरी तब कहूँ । हां जो तब भोजन कू पाउँ धरत है । तब फिर श्री गोपालजु ने कही, तुम एक काम करो । जब उनको देत हो तब तुमको वे फिर देत हैं तब इतनी करो आरे में धरिके पेटी में तारो दीजो । अरु वे पूछे तारो दियो तब कहियो दियो । तब कहिज्यो भले । फिर जब दूसरी दीन श्री गोकुलनाथजु ने मांगी तब रायजु ने आये दीनी । तब श्रीजु ने नेत्र सों लगाय के फेरि दीनी । तब रायजु ने आरे में धरी पाछे [illegible] —ते लीने । पाछे श्री रायजु तो गोपालजु के घर पधारे ।

तब पोथी गोपालजु को दीनी। तब पोथी बांच-बांचकर गद्गद् कंठ भये। पाछे नारायणदास लेखक को बुलायो तब पोथी लिखाई सो उन दोये प्रति कीनी। एक उनको दीनी दूसरी लेखक के पास रही। सो गोपालजु रायजु ने जानी नाहीं। सो सनेहिन के आगे कहे। सो बाकै एक और सनेही रहे सो बाने आन के कही तब उनकों यह लीखाये देहू। तब आयके कही तब उन लीखी दीनी। ऐसे प्रति पाँच सात भई। तब इक प्रति धनजी भाई चोपरा के तिनि देखी। तब श्रीजु के आगे बात कही। श्रीजु चौके खोज कियो परका पूछे। पाछें जानी जो रायजु के काम हैं तब कह्यो गोप्य वस्तु प्रगट भई भगवदिच्छा मानी। वार्त्ता २६

इस वार्त्ता से यह निष्कर्ष निकलता है :—

१—गोवर्द्धनदास और कृष्णभट्ट के तीन दिन और तीन रात के अखंड सत्संग के फलस्वरूप वैष्णवन की वार्त्ता का एक गद्य रूप तैयार हुआ। जिसके आदि लेखक कृष्णभट्ट थे।

२—इसका प्रचार कृष्णभट्ट स्वयं देसी परदेसी भगवदीय वैष्णवों में करते थे।

३—कृष्णभट्ट के द्वितीय पुत्र गोविंदभट्ट ने यह पुस्तक श्री गोकुलनाथजी को दी है।

४—श्री गोकुलनाथजी इस पोथी को बांचकर गद्-गद् हो जाते थे और ताले में रखते थे। इसका नित्य पाठ भी करते थे। यह सुबोधिनी की अपेक्षा छोटी थी।

५—इस पोथी में से नित्य एक या दो वार्त्ताएँ अपने सेवकों के समक्ष कथा में कहते थे।

६—श्री गोकुलनाथजी की वृद्धावस्था में इसकी प्रतिलिपियाँ हुई।

७—इसके प्रतिलिपिकर्त्ता नारायणदास नाम के व्यक्ति थे।

इन निष्कर्षों से इस पोथी का स्वरूप और समय निर्धारित करना आवश्यक है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्री गोकुलनाथजी अपनी बाल्यावस्था से ही सम्प्रदाय की वार्त्ताओं का, वैष्णवों, के समक्ष प्रचार करते थे। श्री सर्वोत्तम श्री वल्लभाष्टक और अतःकरण प्रबोध आदि ग्रन्थों की अपनी संस्कृत टीकाओं में श्री गोकुलनाथजी ने क्रमशः पद्मनाभदास के कृष्णदास के प्रसंग तथा श्री आचार्य के अन्य सेवकों का व्यौरा लिखा है। अष्टछाप के सेवकों का परमानन्ददास के अन्तिम पद 'प्रातः समे उठि करिए श्री लक्ष्मणसुतगान' में भी 'श्री गोकुलनाथ प्रकट कियो मारग बखान' इस प्रकार कथन मिलता है। इससे वि० सं० १६४१ के पूर्व भी जहाँ श्री गोकुलनाथजी के अपने मार्ग का विविध वचनामृतों में वर्णन करने की पुष्टि होती है वहाँ सम्प्रदाय के वार्त्ता-साहित्य का प्रचलन होना भी जाना जाता है और इन्हीं प्रचलित प्रसंगों का संग्रह गोवर्द्धनदास और कृष्णभट्ट द्वारा गद्य रूप में उपस्थित किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं रहता। अष्ट छाप के तथा तत्कालीन साम्प्रदायिक अन्य कवियों के पद्यों में हतित पतित आदि के भी उल्लेख मिलते हैं। जैसा कि—'श्री गोकुल जुग जुग राज करो' इस पद में नन्ददासजी ने कहा है—"विश्व विदित दीनी गति प्रेतन क्यों न जगत उद्धारो" इसी प्रकार वल्लभाख्यान के कर्त्ता श्री गोपालदासजी ने भी अपने वल्लभाख्यान में उसी को इस प्रकार कहा है :—

"हतित पतित नु' जुग्रो तमे प्रकट ए धारण" इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि श्रीगुसांईजी की विद्यमान अवस्था में ही वैष्णवों की वार्त्ताओं के महत्वपूर्ण प्रसंग समाज में प्रचलित हो चुके थे। इन प्रसंगों में ८४, और २५२-दोनों वार्त्ताओं के वैष्णवों के प्रसंगों का समावेश होता है। अतः कृष्णभट्ट द्वारा लिखी गई वार्त्ता इन प्रसंगों का संग्रह थी। इन प्रसंगों का प्रचलन केवल सम्प्रदाय के अंतरंग समाज में ही कृष्णभट्ट तथा श्री गोकुलनाथजी द्वारा होता था। बाह्य समाज से उसे गोप्य रखा जाता था। इन प्रसंगों को पढ़कर श्री गोकुलनाथजी जैसे एक प्रकांड शास्त्रज्ञ का गद्-गद् होना और उसके प्रति अति श्रद्धा को प्रकट करना इस बात को स्पष्ट करता है कि वे प्रसंग केवल चरित्रात्मक नहीं थे। किन्तु उसके निगूढ रहस्यों, भावों के साथ लिखे गये होंगे। तभी वे अनधिकारी जनता से इसे छिपाते थे और उस पोथी को अपनी अन्तिम अवस्था तक माथे चढ़ाते थे और आँखों से लगाते थे। इसकी प्रतिलिपियाँ होने का समय श्री गोकुलनाथजी के काश्मीर यात्रा के पश्चात् का निश्चित होता है। उस अवस्था में ही श्री गोकुलनाथजी का नेत्र-बल घटने की सम्भावना हो सकती है उससे पूर्व नहीं। अतः वि० सं० १७७८ के पश्चात् यह पुस्तक सामान्य वैष्णव समाज में प्रचलित हुई थी। गोविन्दभट्ट द्वारा इस पोथी का श्री गोकुलनाथजी को प्राप्त होने का समय वि० सं० १६५८ के पूर्व का था। क्योंकि उस समय तक जैसाकि हम अन्यत्र कह आए हैं ८४-२५२ वार्त्ताओं की संख्या तथा ८४ कथाओं का निर्माण हो चुका था।

इन निष्कर्षों के आधार पर कृष्णभट्ट की पोथी का स्वरूप भाववाली कुछ वार्त्ताओं के संग्रह रूप में निश्चित होता है। सम्प्रदाय में ऐसी भाव वाली वार्त्ताएँ मिलती हैं। "भाव सिन्धु" इस प्रकार का एक संग्रह है जिसमें ८४, २५२ तथा कुछ स्वतंत्र वार्त्ताएँ भाव के साथ लिखी गई हैं। श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों से भी उन प्रसंगों की पुष्टि होती है। इसलिये निश्चय तो यह होता है कि यह कृष्ण भट्ट वाली पोथी निश्चित ही भाव-पूर्ण थी। तीन दिन और तीन रात में भावों के साथ इसी का वर्णन हो सकता था समग्र वार्त्ताओं का नहीं।

इधर ८४ वार्त्ताओं के निर्माण का समय उससे पूर्व हो चुका था। उसका संकेत पूर्व उद्धरित इस गोविन्ददास ब्राह्मण की पोथी के उन उद्धरणों से जाना जा सकता है जिनमें लिखा है कि—

(१) रामदास जी की स्वतन्त्र बात

(२) अरु इह बात सब अधिकारी की बात में है ताते इहां कछु विस्तार नाहीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस गोविन्ददास की पोथी लिखने से पूर्व ८४ वार्त्ताएँ लिखी जा चुकी थीं। और रामदास का प्रसंग उससे भिन्न होने के कारण उसे स्वतंत्र बतलाया गया है। इस पोथी में जिन वैष्णवों की वार्त्ता-प्रसंगों का संग्रह किया गया है वे लेखक के मनोवांछित प्रसंग ही हैं समस्त प्रसंग नहीं। इस पोथी में लिखा है कि—इतनी बात बड़ी ठौर से सुनी ताते लिखी है। "और ए वार्त्ता लिखे पाछे सुनी" ये पंक्तियां इस बात का निर्देश करती हैं कि इन वार्त्ताओं का आधार श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है। सेवक के लिए "बड़ा ठौर" गुरू द्वार ही है। अतः प्रथम वार्त्ता का स्वरूप श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत हैं।

८४ और २५२ की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्रामाणिकता

सरस्वती भण्डार कांकरौली विद्या विभाग की १६९७ की प्रति हिन्दी बंध संख्या ९८।२ संख्यात्मक वार्त्ता के प्राचीनतम हस्तलिखित तिथियुक्त प्राप्त प्रति—

इस प्रति का उल्लेख डा० दीनदयालु गुप्त ने अपने "अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय" के पृष्ठ संख्या १३० पर किया है और इसे प्रामाणिक माना है और श्रीगोकुलनाथजी के समय का लिखा हुआ माना है। आपने इस वार्त्ता के दो पृष्ठों के महत्त्वपूर्ण अंशों के चित्र भी प्रकाशित किये हैं जिनमें रचना संवत् १६९७ चैत्र सुदी पंचमी इस प्रकार दिया हुआ है— "श्री कृष्णायनमः। श्री गोपीजनवल्लभायनमः। श्री विट्ठलेशोजयति। श्री संवत १६९७ मिती चैत सुदी ।५। लिखित श्री गोकुलजी मध्ये श्री यमुनाजी तट ब्राह्मण सनाढ्य चुन्नीलाल। जो बांचे सुने सुनावे ताकूं भगवत स्मरण। श्री अवनी रवनी मधुपुरी जमुना जाको केश। गोवर्द्धनधर भाल है तिलक श्री विट्ठलेश ।२। श्री हरिः ।।" २५३

इस प्रति में दोसौ त्रेपन पृष्ठ हैं और जहाँ चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता समाप्त हो गई है उसके बाद निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता के प्रसंग लिखे हैं और अन्त में दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में से चार सखाओं की वार्त्ता दी गई है। इस प्रति का डाकौर और बम्बई के संस्करण से मिलान करने पर जो एकता और भेद प्राप्त हुआ है उसका विवरण अन्यत्र दिया गया है। इस प्रति को देखने पर यह सन्देह नहीं रह जाता है कि वार्त्ताओं में चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता, निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता श्री गोकुलनाथजी के समय में लिपिबद्ध हुई थी। यह पुस्तक सर्वथा प्रामाणिक है। मुझे इसके संवत् १६९७ लिपिकाल को देखकर प्रथम यह सन्देह हुआ कि १६९७ के ८ को ६ बनाकर १८९७ को १६९७ किया गया है। परन्तु समस्त पुस्तक में जहाँ जहाँ लेखक ने ६ का अंक बनाया है वहाँ एक ही प्रकार की शैली से ६ अंक लिखा हुआ मिला तब इस सन्देह के लिए कोई स्थान न रह गया। मैंने फिर यह सन्देह किया कि सम्भव है कि प्रति को प्राचीन करने के लिए पीछे से किसी ने सभी जगह ६ का अंक ऐसा बनाया हो पर वह सन्देह भी प्रति की परीक्षा के बाद दूर हो गया। प्रथम तो सब जगह आठ के ६ किए ही नहीं जा सकते। उससे संख्या में भूल पड़ जायगी। दूसरे इसमें ६ का अंक कई जगह इसी प्रकार से लिखा हुआ मिलता है और जहाँ इतना बड़ा अंक नहीं है वहाँ वह छोटा है। इसलिये जब तक कोई और विरुद्ध प्रमाण न मिले तब तक इसका लिपिकाल संवत् १६९७ ही मानना पड़ेगा और यह मानना असंगत न होगा कि श्री गोकुलनाथजी के समय में ही चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता लिपिबद्ध हो गई थी और इसका श्री गोकुलनाथजी रचित होना असंदिग्ध है। यह प्रति संख्यात्मक वार्त्ता की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति है। इसके कागज और स्याही दोनों इसकी प्राचीनता का समर्थन करते हैं।

भावना वाली—वार्त्ता की ८४ वैष्णवों की वार्त्ता की प्राचीनतम हस्तलिखित दो पोथियाँ। प्रथम संवत् १६५२ की है जो सिद्धपुर पट्टन के मणिलाल ईश्वर भाई की प्रति है।

इसके अतिरिक्त सम्प्रदाय में भावना की अनेक प्रतियाँ गुजरात, काठियावाड़, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के मन्दिरों में मिलती हैं। वास्तव में इसकी हस्तलिखित प्रतियों का

प्रचार मूल वार्त्ता की अपेक्षा अधिक है। यह प्रति रचयिता के जीवनकाल के समय में ही लिपिबद्ध हो चुकी थी इसलिये यह विशेष रीति से महत्वपूर्ण है और इसकी प्राचीनता के विषय में सन्देह करने के लिए स्थान नहीं है। इस प्रति से वार्त्ताओं का जो वर्गीकरण रचना और लिपिकाल दोनों के हिसाब से इस प्रबन्ध में किया गया है उसकी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। यह प्रति डा० दीनदयालु गुप्त ने देखी है और उन्हें भी इसकी प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं है।

ठकुरानी घाट के श्री गोरीलालजी मुखिया के आत्मज श्री राधाकृष्ण की संवत् १७५८ वैसाख कृष्ण १३ रविवार की सचित्र प्रति।

यह प्रति जिस समय श्री दीनदयालुजी ने देखी थी उस समय गोकुल में मोरवाले मन्दिर के मुखिया के पास थी। आज यह उनके पुत्र की निजी सम्पत्ति है और उनके पास ही है।

इस प्रति के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस पुस्तक को कई लेखकों ने लिपिबद्ध किया है क्योंकि इसमें कई प्रकार से लिखे अक्षर मिलते हैं। इतना ही नहीं इसके सुन्दर चित्र यह सन्देह उत्पन्न करते हैं कि लिखवाने के पश्चात् यह प्रति किसी चित्रकार के पास चित्र बनवाने के लिए भेजी गई है अथवा यह भी सम्भव है कई लिपिकारों "लिखियाओं" में से कोई एक चित्रकार भी रहा हो। इसकी पुष्पिका में जहाँ संवत् लिखा है वहाँ की स्याही उसी पृष्ठ के अन्य अक्षरों की स्याही से कुछ भिन्न है जिससे इसके सम्बन्ध में कुछ सन्देह उत्पन्न हो जाता है और इसकी प्राचीनता संदिग्ध लगने लगती है पर ध्यान से देखने पर इस प्रकार की पतली अथवा हल्की स्याही का प्रयोग इस पुस्तक में अन्यत्र भी मिलता है जिससे भ्रम निराधार भी हो जाता है।

श्री हरिरायजी संवत् १७७२ तक विद्यमान थे अतः यह प्रति भी उनके समय में हो चुकी थी और वार्त्ता के भावनात्मक संस्करण की प्रामाणिकता की पुष्टि करती है। इसके चित्र जिस कलम के बने हैं वह इसकी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए यथेष्ट हैं।

दोसौ बावन की प्राचीनतम प्रसंगात्मक लिखित प्रतियाँ—('वचनामृत') १७९६ की दोसौ बावन की प्रसंगात्मक हस्तलिखित कोई पृथक् समकालीन प्रति प्राप्त नहीं हुई है पर इसके सभी प्रसंग समकालीन साहित्य, "वचनामृतों" में आगए हैं। जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। इनकी जो प्राचीनतम प्रति मेरे देखने में आई है वह संवत् १७९६ की प्रति है जो श्री द्वारिकादास परीख के निजी संग्रह में सुरक्षित हैं जिनका फोटो संलग्न है। अन्य दो प्रतियाँ जो देखने को मिली हैं उनमें कोई संवत् नहीं दिया है।

२५२ की संख्यात्मक प्राचीनतम प्रति—संवत् १८७१—यह प्रति बहादुरपुर में श्री गोवर्द्धननाथजी के मन्दिर में सुरक्षित है। इसमें आरम्भ में तीन जन्म-वाली चौरासी वार्त्ता की प्रति है। फिर निजवार्त्ता घरूवार्त्ता है। फिर अन्त में दोसौ बावन की प्रति है। इसका फोटो भी संलग्न है। इस प्रति का लिपिकाल लेखक के तिरोधान से एकसौ वर्ष पीछे का है।

२५२ की संख्यात्मक वार्त्ता के १८८८ की बड़ौदा के सेठ ईश्वर भाई की प्रति। यह प्रति सामान्य प्रतियों से मिलती है।

२५२ की भावनात्मक हस्तलिखित प्रतियाँ—नन्दगाँव के समीप रेवरा के सखाराम ब्रजवासी की विक्रम संवत् १७९७ की प्रति के आधार पर और श्री द्वारिकादासजी के संग्रह से प्राप्त संवत् १८७१ की प्रति के आधार पर जो श्री द्वारिकेशजी धन्नूजी महाराज जतीपुरा वाले की प्रति है, यह सिद्ध हो जाता है कि पहली पोथी श्री हरिरायजी के निधन के ठीक २५ वर्ष बाद किसी दूसरी पोथी से लिखी गई थी और दूसरी उसके सौ वर्ष बाद की है। अतः यह मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये कि दोसौ बावन का भावनात्मक रूप १६९७ तक प्रचलित हो गया था और प्रसंगात्मक में चौरासी और दोसौ बावन, निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता सब सम्मिलित है अतः उनका समय इससे पूर्व है।

निष्कर्ष—जिन हस्तलिखित प्रतियों का विवरण यहाँ दिया गया है उनमें ८४ और निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता की जो सबसे प्राचीन प्रति है वह सम्वत् १६९७ की है। जिसके आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि इसकी प्रतिलिपि वार्त्ताकार ने श्री गोकुलनाथजी के निधन से लगभग साल भर पहले किसी अन्य पोथी से करली है। ८४वें की वार्त्ता के रचनाकाल का हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इससे बढ़कर अभी तक दूसरा प्रमाण नहीं मिला है। दूसरी प्रति संवत् १८५१ की है और दोनों प्रतियों में अद्भुत साम्य है और यह भी नहीं है कि यह एक दूसरे की प्रतिलिपियाँ हों। इससे यह पता चलता है कि संवत् १६९७ से १८५१ तक लगभग १३४ वर्ष तक इसी प्रकार की ८४ वैष्णवों की वार्त्ता की प्रतियों का चलन सम्प्रदाय में बराबर रहा है और आगे भी संवत् १९५० तक इसी प्रकार की प्रतियाँ होती रही हैं।

दोसौ बावन वैष्णवों की मूलवार्त्ता की सबसे प्राचीन प्रति संवत् १८७१ और १८८८ की मिली हैं। इनका परिचय और विस्तृत विवरण पहले दे चुके हैं। इनके आधार पर यह मानना पड़ता है कि दोसौ बावन का प्रचार भी चौरासी की भांति समाज में सम्वत् १८७१ से पूर्व हो चुका था। इसके मानने में कोई आपत्ति इसलिये नहीं होती है कि इसके भावनात्मक संस्करण की एक हस्तलिखित प्रति सम्वत् १७९७ की प्राप्त होती है जो यह सिद्ध करती है कि संवत् १७९७ वि० तक मूल २५२ का प्रचलन समाज में हो चुका था। अतः अन्य किसी हस्तलिखित प्रति के अभाव में दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता (सख्यात्मक) का रचनाकाल संवत् १७९२ के पूर्व ठहराया जाना आवश्यक है क्योंकि भावनात्मक संस्करण के रचयिता आचार्य श्री हरिरायजी की निधन तिथि संवत् १७७२ विक्रमी है और यह ग्रंथ उनका रचा हुआ है और संवत् १७९७ की प्रति ही इसकी प्रथम प्रति नहीं है। यही काल चौरासी के भावनात्मक संस्करण का भी है। जिन दो प्रतियों का उल्लेख इस प्रसंग में हैं वे संवत् १७५२ और संवत् १७५८ की हैं जिनके लेखक अथवा लिपिकार आचार्य हरिरायजी के समकालीन थे और यह सिद्ध करते हैं कि संवत् १७५२ के पहले ही यह दोनों भावनात्मक संस्करण लिखित रूप प्राप्त कर चुके थे।

निजवार्त्ता घरूवार्त्ता—इसके प्रसंग संवत् १६९७ वि० की प्रति में प्राप्त हैं इसलिए इनकी प्राचीनता उसी प्रति के आधार पर सिद्ध होती है और यह निर्णय करने में कोई कठिनाई नहीं है कि सत्रहवीं शताब्दी तक इनका प्रचार पुष्टिमार्ग में हो गया था और ये लिपिबद्ध हो चुके थे।

ग्रंथ परिचय

सुबोधिनी—लेखक-श्री महाप्रभुजी,-रचनाकाल १५४९ से १५८७ तक, विषय-

श्रीमद्भागवत की व्याख्या, प्राप्त अंश–प्रथम स्कंध, द्वितीय स्कंध, तृतीय स्कंध और चतुर्थ स्कंध के केवल चार अध्याय, दशम स्कंध, एकादश स्कंध अपूर्ण। भाषा–संस्कृत, प्रकाशित–बम्बई–वाडीलाल, मूलचन्द तेलीवाला, वार्त्ता-साहित्य सम्बन्धी उल्लेख–दशम स्कंध के मंगलाचरण में अपने वंश का परिचय इस प्रकार दिया है :–

श्रीमद्वल्लभविद्वदीश विलसदंशाब्धि पूर्णेन्दिवे
श्री गोपीपति वन्दिने सुमनसि ब्रह्मामृतस्यन्दिने
श्री लक्ष्मण भट्ट सूरिरिति यन्नामाऽखिलाऽभीष्टदं
तस्मैतात महाशयाय हरये कुर्मोनमः सिद्धये ।

इसमें महाप्रभुजी ने अपनी तीन पीढ़ियों के नाम लिखे हैं। आपके पितामह श्री वल्लभभट्ट, पिता श्री लक्ष्मणभट्ट की वन्दना की गई है। लक्ष्मणभट्टजी इसके अनुसार विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की परम्परा में थे। 'गोपीपति वन्दिने' से यही ध्वनि निकलती है। इस उदाहरण से महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता, निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता की नामावली की पुष्टि होती है। इसी प्रकार सभी वार्त्ताओं में श्री आचार्य महाप्रभुजी को वैश्वानर, वाक्पति कहकर उनके ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया गया है उसकी भी पुष्टि इस ग्रन्थ के निम्नलिखित श्लोक से होती है :—

अर्थं तस्य विवेचितुं न हि विभु-वैंश्वानराद्वाक्पते ।
रन्यस्तत्र विधाय मानुष तनुं मां व्यास वच्छ्रीपतिः
दत्त्वाऽऽज्ञां च कृपावलोकन पटुर्यस्यादतोऽहे मुदा
गूढार्थं प्रकटीकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम्

निबन्ध में भी आचार्यजी ने अपने अग्नि रूप का इस प्रकार उल्लेख किया है:–

अग्निश्चकार तत्वार्थदीपं भागवते महत्
तच्चापि येन संसिद्धये व्याख्यानं तन्निरूप्यते ।

ग्रंथ

सिद्धांत रहस्य-ग्रन्थकर्त्ता श्री महाप्रभुजी। रचनाकाल १५४६ श्रावण शुक्ल द्वादशी। विषय-पुष्टिभक्तिसिद्धान्त का ब्रह्मसम्बन्ध [समर्पण विषय] प्रकाशित-बम्बई, गुजराती प्रेस। भाषा-संस्कृत।

वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख-दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता के प्रथम प्रसंग में जो ब्रह्मसम्बन्ध देने की बात लिखी है उसका समर्थन इस ग्रंथ के निम्नलिखित उद्धरण से होता है :—

"श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि
साक्षात्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते
ब्रह्मसम्बन्ध करणात्सर्वेषां देह जीवयोः ।
सर्व दोष निवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः ॥२॥

इसके अतिरिक्त अनेक वार्त्ताओं में जो समर्पण विधि, व्यवहार, भावना की चर्चा है उन सबका समर्थन इस ग्रन्थ द्वारा होता है। जिन श्लोकों से यह समर्थन प्राप्त है वे निम्नलिखित हैं :—

(१) अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन
असमर्पित वस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत्
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः
न मतं देव देवस्य सामिभुक्तं समर्पणम्
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्

× × ×

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः
सिद्धान्त रहस्य श्लोक ४-७

भाव यह है कि ब्रह्मसम्बन्ध प्राप्त करने से जीव निर्दोष होकर भगवत् सेवा का अधिकारी होता है। ब्रह्मसम्बन्ध के बिना अन्य और किसी भी साधन से सर्व दोष की निवृत्ति नहीं मानी गई है। ब्रह्मसम्बन्ध के अनंतर नये दोष उत्पन्न न होने के लिये भगवत् समर्पित पदार्थों के ही ग्रहण करने की आज्ञा है। भगवान् को समर्पित किए हुए पदार्थों से ही लौकिक व वैदिक कार्य सिद्ध करना चाहिये। अपने या अपने कुटुम्बियों के उपयोग में आई हुई कोई भी वस्तु भगवान् को समर्पित न करनी चाहिये। सभी कार्य के प्रारम्भ में सब पदार्थों का समर्पण करना आवश्यक है।

सेवकों का समर्पण का व्यवहार लोक में प्रसिद्ध स्वामी सेवक के व्यवहार के सदृश होना चाहिये। वार्त्ता में भी सेवकों के व्यवहारों से ऐसा सिद्ध होता है और ऊपर उद्धृत अन्तिम श्लोक से भी इस प्रकार ब्रह्म के सम्बन्ध से सभी पदार्थों को ब्रह्मरूपता प्राप्त होती है और इससे नये दोषों की प्राप्ति होती ही नहीं है। वार्त्ताओं में इस ब्रह्मसम्बन्ध का उल्लेख और उसके महत्व का अनेक रूप से विस्तार किया गया है।

अन्तःकरण प्रबोधः—लेखक–श्री महाप्रभुजी, रचनाकाल–सन्यास से पूर्व संवत् १५८७ के लगभग, विषय–अपने अन्तःकरण के बहाने से सेवकों को उपदेश।
प्रकाशित–गुजराती प्रेस, बम्बई भाषा–संस्कृत।

वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख :—घरूवार्त्ता (प्रसंग) दस में लिखा है कि—"एक समय महाप्रभुजी अडैल में विराजत हते। तहाँ श्री भागवत के दसम स्कंध की श्री सुबोधिनीजी सम्पूर्ण भई और एकादश स्कन्ध चलतो हतो। वामें नव योगिन को प्रसंग है। सो श्री ठाकुरजी ने उद्धव जी के आगे कह्यो है। सो आठ योगिन के ऊपर तो सुबोधिनीजी भई। और नवमों योगी करभाजन ताके प्रसंग की सुबोधिनीजी को आप बिचारें। ता समय आपकौ श्री ठाकुरजी की आज्ञा भई (तृतीयो लोकगोचरः) सो श्री ठाकुर जी आप श्री महाप्रभुन सों कहें जो तुम जगत में अगोचर हो।" इसका समर्थन अन्तःकरण प्रबोधः के श्लोक ५ और ६ से इस प्रकार होता है:–

आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगासागर संगमे।
यापि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्वयं मया।
देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोक गोचरः।
(अन्तःकरण प्रबोधः ५–६)

यह आज्ञा संकेत घरूवार्त्ता के प्रसंग १२ में भी है। इसप्रकार घरूवार्त्ता के प्रसंगों की पुष्टि इस ग्रन्थ द्वारा होती है।

पत्रावलंबन–ग्रंथ। लेखक-श्री महाप्रभुजी, रचनाकाल-संवत् १५६३ के आसपास। विषय-ब्रह्मवाद समर्थन। भाषा-संस्कृत, प्रकाशित-न्यू प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई।

वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख—निजवार्त्ता प्रसंग १४ में उल्लेख इस प्रकार है :— तब आप एक "पत्रावलंबन" ग्रन्थ कीयो। सो ग्रन्थ एक पत्र पर लिख कै एक वैष्णव कों दीयो और कहें जो यह पत्र लै जाय कै विश्वेश्वर महादेव की भींत सों लगाय आउ। ता पत्र के नीचे आप लीखे जो या पत्र को बांचि कै ता पीछें हम सों चर्चा करिवे कों आइयो।" और पत्रावलंबन ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है :–

स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदांतगोचरः
काशीपतिस्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु
कस्यचित् त्वथ संदेहः स मां पृच्छुत सर्वथा
न भयं तेन कर्तव्यं ब्राह्मणानामियं गतिः
डिंडिमस्तु वादितो द्वारि विश्वेशस्यमयात्र हि
विद्वद्भिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्ग रक्षकाः
पत्रावलंबन ग्रन्थ ३–४–५

जिससे निजवार्त्ता के इस प्रसंग की पुष्टि होती है।

वृत्तिपत्रक—(१) श्री बद्रीनाथ का

लेखक	—श्री महाप्रभुजी तथा उनके भाई रामकृष्णजी
रचनाकाल	—संवत् १५६८
विषय	—दान
भाषा	—संस्कृत तथा नागरी लिपि
प्रकाशित	—कांकरौली के इतिहास में (पृष्ठ ४६)

वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेखः—

वार्त्ताओं में कृष्णदास मेघन की वार्त्ता के प्रसंग एक में महाप्रभुजी की दो भिन्न-भिन्न यात्राओं का उल्लेख हुआ है उसकी पुष्टि इस वृत्तिपत्रक से होती है।

वृत्तिपत्रक–श्री बालकृष्णवात्सल्यनिष्ठा निमग्न मानसः श्री वेदव्यास विष्णुस्वामी मतानुवर्त्यः श्री वल्लभाचार्यः

(श्री वल्लभाचार्य के हस्ताक्षर तेलगु लिपि में हैं)

जुलाई सन् १९३४ में कांकरौली नरेश गोस्वामी श्री ब्रजभूषणलालजी महाराज को अपनी जगन्नाथपुरी की यात्रा में खोज करने पर पंडा गुच्छिकार 'श्री कृष्णरघुनाथ दामोदर' के पास प्राचीन पत्रों में वल्लभाचार्यजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथजी का यह लेखपत्र प्राप्त हुआ :—

श्री गोपीजन वल्लभो जयति।

एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतमेको देवो देवकी पुत्र एव।
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नमानि यानि, कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥१॥

इति श्री जगदीशेन महाप्रभु कृते स्वयम् ।
लिखितं पद्यमेतद्धिमायावादनिवृत्तये ।।२।।
बहिर्मुखो यदा नैव मेने विद्वज्जनातिगः ।
पत्रं निरूप्यतां भूयः प्राहैनं कृष्णसेवकः ।।३।।
तदा श्रीवल्लभाः प्रोचुर्वयं नाग्रहवादिनः ।
त्वन्नः पुरोहितः साक्षी यथेच्छसि तथा कुरु ।।४।।
गुच्छिकारस्तदा तस्य प्रत्ययार्थं हरेः पुरः ।
पत्रं संस्थापयामासमसीपात्रं च लेखनीम् ।।५।।
'यः पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम् ।
यः पुमानीश्वरं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यजोद्भवम् ।।६।।
भूयो पि जगदीशेन पत्रे विलिखतंत्विदम् ।
तदा बहिर्मुखो ध्वस्तस्तथा ज्ञातश्च सज्जनैः ।।७।।
इति श्रुत्वैव सद्वार्ता कृष्णसेवक पण्डितम् ।
श्री वल्लभात्मजी गोपीनाथो मन्ये तथाह्यमुम् ।।८।।
खं रस श्रुति भू (१४६०) संख्ये भासमाने शकेश्वरात् ।
लिखितं माधवामायां पूर्वेषां संमतं दलम् ।।९।।

उज्जैन का वृत्तिपत्रक

यह वृत्तिपत्रक विक्रम संवत् १५४६ के चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को आचार्यजी द्वारा नरोत्तम पुरोहित को दिया गया था। इसकी भाषा संस्कृत और लिपि तेलगु है। इस लेख पत्र का हाईकोर्ट बम्बई ने अंग्रेजी अनुवाद भी किया है।

श्री विष्णुस्वामी मर्यादानुगामिना वल्लभेन अवन्तिकायां नरोत्तम शर्मा पौरोहित्येन सम्माननीयः। सं० १५४६ चैत्र शुक्ल प्रतिपदि।

श्री बद्रिकाश्रम का वृत्तिपत्रक

"गोभिर्वृतं प्रकृतिसुन्दरमन्दहास भासासमुल्लसित मंजुलवक्र बिम्बम् ।
श्री नन्दनन्दनमखण्डितमण्डलाभं बालार्यमिश्रयमहं हृदि भावयामि ।।१।।
ग्रामे 'कांकरबाल' नाम्नि विमले देशे तथा दक्षिणे
पंच द्राविड भूसुरान्वय—भवस्तैलंग जाति-प्रथैः ।
भारद्वाज कुलैरलंकृत-गुणापस्तम्ब सूत्रैस्तथा
गृह्यैराश्रिततैत्तिरीयविटपैर्यः सोमयज्ञः कृतः ।।२।।
यज्ञे यज्ञे यज्ञनारायणोऽस्मिन् साक्षाद्विष्णुर्विप्रवंशावतंसः ।
तस्माल्लोके सोमयाजीति वाच्यः प्रोचां रक्षन् कीर्तिमार्तिञ्च धुन्वन् ।।३।।
तस्मात् जातः सोमयाजी पदान्तः सिन्धोश्चन्द्रः श्रील गंगाधराख्यः ।
तस्मान्मान्यः श्री गणेशाभिधान स्तस्माच्छ्रीमान् वल्लभोऽजायतात्र ।।४।।
ततो भवल्लक्ष्मणभट्टनामा महानुभावो विदुषां वरिष्ठः ।
श्री वल्लभाचार्यवरस्ततोभून्नराकृतिब्रह्म निगूढ़ तत्वः ।।५।।

तं वैष्णवं सकल सम्मत सम्प्रदायं यो वल्लभाह्वयतया वितनोतुमिच्छन् ।
बाल्ये विहाय निजदेशमुदारवेशः श्रीमद्व्रजे स्वयमुवास स मन्दहासः ।।६।।
वृन्दावनान्तर-महीरूहराजिरम्यं श्री गोकुलेन विमलेन च शोभमानम् ।
आमन्द यामुन-तरंग समीरणाढ्यं गोलोकतोऽधिकंममंस्त च तं सुरार्च्यम् ।।७।।
तत्र स्वयंवर-समागत हृद्य विद्या-विद्योत्तमान-विभवो भवतापहीनः
श्री गोकुले चिरकृतस्थितिरात्म संस्थः श्री नन्दनन्दन मुपाचरदार्य भावः ।।८।।
विद्वद्भिः किल कृष्णदासक मुखैः शिष्यैरनेकैर्वृतः
सोऽहं श्री बद्रीवनान्तमगमं शुक्रे (ज्येष्ठ) शकाब्दे तथा ।
देवाम्भः पति भू [१४३३] मिते सह नरं नारायणं वीक्षितुम्
(१४३३+१३५=१५६८ वि० सं०)
तत्र 'व्यास मुनीश'-संगतिरभूदाकस्मिकी मे शुभा ।।९।।
अत्र श्री वासुदेवाख्य पौरोहित्ये वृतो मया ।
तैलंग-वंश-संभूतः स्वाध्यायाचार–चंचुरः ।।१०।।
श्री वल्लभाचार्य महाप्रभुणाम् नियोगतो बुद्धिमतां विभाव्यः ।
श्री रामकृष्णाभिधभट्ट एतं लेखं व्यतामीत्पुरतश्च तेषाम् ।।११।।

श्री वल्लभाचार्यजी ने दो बार बद्रिकाश्रम की यात्रा की थी। एक बार संवत् १५६८ ज्येष्ठ मास में और दूसरी बार कभी वामन द्वादशी पर। एक बार में उन्होंने 'वामबाहु कृत' (युगलगीत) की सुबोधिनी की रचना की थी।

आन्ध्रदेशीय–दीक्षित–वल्लभाचार्येण स्वपूर्व पुरुष सोमयाजि गंगाधर दीक्षितादीनां सम्मानितः श्रीमत्पुरुषोत्तम क्षेत्रे श्री जगन्नाथ सपर्या कुशलः गुच्छिकार कृष्णसेवकाख्य सेवा पण्डितः, सोमयाजि गंगाधर दीक्षितादीनां स्वपूर्व पुरुषाणां सम्मानित इति स्वकीयैरवधार्य विष्णुपदेन्दु श्रुति धरा शके (१४१०) समागतेन वल्लभदीक्षितेन वृत्तिदलं निरूपितं श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु वंश संभूतैः कृष्ण सेवक-वंशीयाः सम्मान्याः। लिखितं दलमिदं ख रसश्रुति भूमिते (१४६०) शालिवाहन शके वैशाख कृष्णमादिने।

(७) तत्वदीप निबंधः

लेखक – महाप्रभुजी
भाषा – संस्कृत
रचनाकाल – १५८७ से पूर्व
विषय – भागवतार्थ, शास्त्रार्थ, एवं सर्वनिर्णय
प्रकाशित – सूरत से

वार्त्ता सम्बन्धी उद्धरण–

वार्त्ता में श्रीनाथजी महाप्रभुजी के इष्ट देव हैं और यह ग्रंथ उसका समर्थन करता है। भागवत के द्वादश स्कंधों का मिलान श्रीनाथजी के द्वादश अंगों से इस ग्रन्थ में इस प्रकार किया गया है।

इतीदं द्वादशस्कंधं पुराणं हरिरेव सः।
पुरुषे द्वादशत्वं हि सक्थौ बाहू शिरोऽन्तरम् ।।१।।

हस्तौ पादौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वं पादौ करौ ततः ।
सक्थौ हस्तस्ततश्चैकौ द्वादशश्चापरः स्मृतः ।।२।।
उत्क्षिप्तहस्तः पुरुषो भक्तमाकारयत्युत ।
स्तनौ मध्यं शिरश्चैव द्वादशांग तनुहरिः ।।३।।
पादौ सक्थौ कटिर्गुह्यं उदरं हृदयं करौ ।
मुखं ललाटो मूर्धाच केचिदेवं हरिंजगुः ।।४।।

(निबन्ध—भागवतार्थ प्रकरण श्लोक—६, ७, ८, ९)

(८) यमुनाष्टक

लेखक — महाप्रभुजी
रचनाकाल — १५५० सं०
भाषा — संस्कृत
विषय — यमुनाजी की स्तुति
प्रकाशित — न्यूज प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई

वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख :—

वार्त्ताओं में किशोरीबाई आदि की वार्त्ता में श्री यमुनाजी का महत्व वर्णन दिया गया है। उसका समर्थन इस स्वतंत्र ग्रन्थ से होता है :—

यमुनाष्टक :— नमामि यमुनामहंसकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारिपदपंकज स्फुरदमन्दरेणूत्कटाम्
तटस्थनव कानन प्रकट मोद पुष्पाम्बुना ।
सुरासुरसुपूजित स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् ।।१।।
कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्द पूरोज्ज्वला
विलास गमनोल्लसत्प्रकट गण्डशैलोन्नता ।
सघोषगतिदन्तुरासमधिरूढदोलोत्तमा
मुकुन्दरतिवर्द्धिनी जयति पद्मबंधोः सुता ।।२।।
भ्रुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः ।
तरंगभुजकंकण प्रकट मुक्तिका बालुका
नितम्बतट सुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम् ।।३।।
अनन्तगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते
घनाघननिभे सदा ध्रुव पराशराभीष्टदे ।
विशुद्ध मथुरा तटे सकल गोप गोपीवृते
कृपा जलधि संश्रिते मम मनः सुखं भावय ।।४।।
यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियम्भावुका
समागमनतो भवत्सकलसिद्धदा सेवताम् ।
तया सदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यद् ।
हरिप्रिय कलिंदया मनसि मे सदा स्थीयताम् ।।५।।

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः
यमोऽपि भगिनी सुतान्कथंमूहन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः ॥६॥
ममास्तु तब सन्निधौ तनु नवत्वमेतावता ।
नदुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये ॥
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं संगमात्
तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः ॥७॥
स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि प्रिये
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः
इवं तब कथाधिका सकलगोपिकासंगमः
स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः ॥८॥
तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ॥
तया सकल सिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्यति
स्वभावविजयो भवेद्वदतिवल्लभः श्रीहरेः ॥९॥

श्री गोस्वामी विट्ठलनाथजी रचित ग्रंथ

(१) श्रृंगार रस मंडन—
रचयिता— श्री विट्ठलेश
रचनाकाल—१६१३
विषय—श्रृंगार रस का विवेचन-व्रतचर्या, दानलीला, उल्लास ।
भाषा—संस्कृत
प्रकाशित—मूलचन्द तेली वाला, बम्बई
उल्लेख—ग्रन्थ के अन्त में चौरासी और दोसौ बावन के तीन व्यक्तियों के नामों का इस प्रकार उल्लेख है :—

यस्मात् सहायभूतौ दामोदरदास हरिवंशौ ।
विट्ठल रचितमिदं श्रृंगाररसमंडनंपूर्णम् ॥

(२) विट्ठलेशजी के संस्कृत पत्र—
रचयिता—श्री विट्ठलेश
रचनाकाल—संवत् १६१६ के लगभग
भाषा—संस्कृत
विषय—अपने पुत्रों को तथा अन्य व्यक्तियों को लिखे पत्र
प्रकाशित—पुष्टि भक्ति सुधा, बम्बई तथा कांकरौली के इतिहास पृष्ठ संख्या ९९ ।

वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख

श्री गोपीजनवल्लभायनमः । स्वस्ति श्री विट्ठलदीक्षितानां नागजी प्रभृतिष्वाशिषः । शमहि भावत्कमाशास्महे ।
इस उद्धरण में नागजी भट्ट का उल्लेख है ।
दूसरा पत्र :—(पुष्टिभक्ति सुधा-वर्ष ३ अंक १, १२ में प्रकाशित)

श्रीमद्गोस्वामीनाम् स्वसेवकेभ्यः पत्रम्—

स्वस्ति श्री गोवर्द्धननाथपादपद्मपरागेषु श्री कृष्णदास, श्री रामदास, ग्वाल भट्ट, नरसिंहदास, यादवदास, राघवदास, गोपीदास, केशवदास, माधवदास, संतदास, हरिदास, गोपालदास, स्वामीदास, पन्नालालदास, भीष्म गोवर्द्धनधरदास, अजया, दामोदरदास, सधु कुंभना प्रभुतिषु श्री विट्ठलनाथ नामाशिषां कोटि ———— तत्रत्यः सर्वं समाचारो लेखनीयः हरिवंशस्यतनयः। अत्राहं दुग्धं बहु पिवामि। रामदासः पायसादिकं सर्वं ग्रह्णातु। दुग्धोदन प्रसादः कृष्णदासस्यापि मध्ये मध्ये देयः। सर्वे कृष्णदासस्याज्ञायां स्थातव्यम्।

इसमें वार्ता के लगभग १४ नामों का उल्लेख है। इसमें कृष्णदास के अधिकारी होने का भी संकेत है।

तीसरा पत्र :—जो इसी पत्र में प्रकाशित हो चुका है। उसमें भी इन सेवकों का उल्लेख है। यह पत्र कृष्णदास अधिकारी को लिखा गया है। और सं०१६०० के आसपास का है। इस पत्र में सत्यभामा बेटी (गोपीनाथजी की बेटी) के विवाह की चर्चा का उल्लेख है। तथा काशी नरेश अथवा काशी नाम (काशीश्वरेसु) का भी उल्लेख मिलता है। वह पत्र इस प्रकार है :—

स्वस्ति श्रीमच्छ्रीगोवर्द्धनोद्धरणधारि चरण सेवकेषु श्री कृष्णदास, रामदास, माधवदास, केशवदास, गौतमदास भगवद्दास, राघवदास, लक्ष्मणयादवदास, खनु नरसिंहदास, गोपालदास, श्रीमतः खीलू प्रभृतिषु विट्ठलानां कुशल वार्त्ताभिज्ञापकोयं लेखः। भद्रमिह भावतकमाशास्महे। गृहोपविष्टं भगवत्यहमागच्छन् स्थितः तदा सत्यभामायाः विवाह वार्त्तोपस्थिता तेनागमन मधुनैवनाभूत्। माघेयदि—विवाहो भविष्यति तदातदनन्तरं भाव्यं चेद्भविष्यति। मया आगन्तव्यम्। अन्योन्यं प्रीत्या सेवा कर्तव्यां पुरुषोत्तमादयः कुशलिनः। काशीश्वरेषु रघुनन्दने च नतयो निवेदनीयः। किमधिकं। श्री गोपीजनवल्लभायनमः। मार्ग वदी १३— मथुरा मल्लनां नतयः।

चौथा पत्र—पुष्टि भक्ति सुधा 'पृष्ठ ७६' वर्ष ३—

श्री कृष्णायनमः। स्वस्ति श्री विट्ठल दीक्षितानां गिरधर श्री गोविन्द, बालकृष्ण श्री वल्लभ रघुनाथ, यदुनाथ, घनश्याम मुरलीधर कल्याणराय गोकुलोत्सव द्वारकेश्वरादिष्वाशिषः। शमिह-भवदीयं भद्रं-सततमाशास्महे। प्रभु सेवा सम्यक् कर्तव्या। भोगादि विषयको विचारः सावधानतया कर्तव्यः। सेवकाः सर्वे यथा मर्यादां न त्यजन्ति तथा कार्यम्। स्थलं विचारं कृत्वा यदुनाथ गृहं शरणीयम्। अत्रत्य समाचारः सर्वश्चम्पादिमुखाच्छ्रोतव्यः। तत्रापि वीरवर राजस्य पूर्वापेक्षया भूयसी प्रपत्तिर्दृष्टव्या। राय पुरुषोत्तमस्यापि तथैव प्रपत्तिर्दृष्टा वीरवरेणोक्तमस्ति मह्यं सदाज्ञापत्रं गिरिधरा यथा लिखन्ति तथा भवद्भिर्लेखनीयम्। इति तेन यद्यात्यावश्यकं कार्यं भवति तदा तथा लेखनीयम्।....

इस पत्र का लेखन काल संवत् १६३० के बाद का है। इससे वीरबल की श्री गुसांईजी के प्रति श्रद्धा प्रगट होती है। इसमें राय पुरुषोत्तमदास का भी उल्लेख है।

इसी प्रकार पुष्टि भक्ति सुधा के पृष्ठ १०७ पर चैत्र वदी चतुर्थी का लिखा हुआ एक अन्य पत्र है उसमें ये नाम मिलते हैं:—(१) गोविन्द भट्टेषु, गणेश भट्टेषु, वासुदेव भट्टेषु, चाशिषः पदकृद्गोविंदेषु भगवत्स्मरणं वाच्यम्। मदनसिंहादिषु, कृष्णदासादिष्वाशिषो वाच्याः। वासुदेव भट्टेश न गन्तव्यं पुरोहितगृहात्। बेंकट प्रभृतिषु कृष्णरायदिष्वाशिषः।

इसमें गोविन्द स्वामी को आशीष के स्थान पर भगवत स्मरण लिखा है और कान्हबाई की वार्त्ता में आए कृष्णराय का भी उल्लेख है। भगवत् स्मरण से इनका सख्य

भाव प्रगट होता है और गोविन्द स्वामी के स्थान पर गोविंददास शब्द के प्रयोग से वार्त्ता के उस कथन की पुष्टि होती है कि उन्होंने अपना नाम गोविंद स्वामी के स्थान पर गोविंददास रक्खा था।

पाँचवाँ पत्र––कांकरौली के इतिहास पृष्ठ ८९ से—

स्वस्ति श्रीमज्जयेष्ठभ्रातृचरणकमलेषु यवीयरनो विट्ठलस्य प्रणाम कोटि-निवेदकोऽयं पत्रदूतः। अहं भगवदाज्ञया रासोत्सव पर्यन्त श्री गोवर्द्धनचरणारविन्दनिकटे स्थितोऽस्मि। हरिद्वारं प्रत्याज्ञा न जातेति न गतं। अत्र ममास्वास्थ्यं बहु जातमासीत्। उपवास दशकं कृतम्। अधुना भगवत्कृपया च नैरुज्यं जातमस्ति कापि चिंता न कार्या। अक्का अम्मा अत्ताचरणेषु नतयः। अक्का यथा दुःखं न करोति ममास्वास्थ्यं श्रुत्वा तादृक् कर्तव्यम् भवतापि कापि चिंता न कार्या मम भगवति सर्वत्र। यादवेन्द्र पुरिवु ब्रह्मानन्देषु दीक्षितेषु हरिहर नागनाथ (श्रीनाथ) चूडादिषु नमस्काराः। द० विष्णुदासादिष्वाशिषः। अत्रत्य वैष्णवानां नतयः।

यह पत्र अपने बड़े भाई श्री गोपीनाथजी को श्री गुसांईजी द्वारा लिखा गया है। इसलिए इसका लेखनकाल संवत् १६०० से पूर्व ही होना चाहिए। इससे यह भी प्रतीत होता है कि श्री विट्ठलेशजी को भगवद् सानुभाव था और भगवद् आज्ञा न मिलने से वे उस बार हरिद्वार न जा सके। इसमें श्री विष्णुदास और 'नाथ' [श्रीनाथ] का भी उल्लेख है।

छठा पत्र—स्वस्ति श्री विट्ठल दीक्षितानां धर्मसिंह वैष्णवेषु सायरणा कृष्णदासादिष्वाशिषः। शमिह भावत्कमाशास्महे। 'तुम्हारे समाचार तुम्हारे पत्र तें पाये'।

गोविंद द्विवेदि पुत्र कृष्णदासस्य व्यावहारिकी—चिन्ता न कार्या—यादवपण्डितेषु कृष्ण स्मरणम्। हरिजी भाईलादिष्वाशिषः।

इसमें वार्त्ता के यादवेंद्र तथा भाईला हरजी के नामों का उल्लेख है।

इस पत्र में श्री गोविंद दुवे, हरिजी भाईला कोठारी यादव पंडित, गोविंद दुबे के पुत्र कृष्णदास आदि के नाम मिलते हैं।

श्री गोकुलनाथजी तथा उनके समकालीन कवियों द्वारा वार्त्ता प्रसंगों की पुष्टि :—

श्री गोकुलनाथजी के ग्रन्थों में वार्त्ता के निम्नलिखित व्यक्तियों और प्रसंगों की पुष्टि होती है :—

संस्कृत ग्रन्थः—चौरासी वैष्णवों की नामावली।

श्री वल्लभाष्टक की टीका :—अनुभव निगमाद्युक्तमानैरिति, तत्रानुभव उच्यते, क्षत्रियः कृष्णदास इति आचार्य सेवकः स्थितस्तत्कृतसाधारण सेवया प्रसन्नैराचार्यस्तवं त्वदभिमतं प्रार्थयत्युक्तस्त्रयं प्रार्थितवान्, सर्वात्मना त्वन्मार्गीय सिद्धान्त ज्ञानं ममास्त्वित्येकं त्वस्मिन् विद्यमान मौर्ख्यक्षमापन रूपं, द्वितीयं, आचार्य शरण गमनात्पूर्व वैष्णवमंत्रोपदेषु स्वगुरु गृहगमन प्रार्थना रूपं तृतीयं आचार्यैः प्रार्थितत्रयमपि दत्तं आचार्यगमनात्पूर्वमेकदा स्वगुरुगेहे स गतवान् तं नमस्कृत्योपविष्टं गुरु पृष्टवान् 'मां विहाय कथं त्वयाऽन्यो गुरुः कृत इत्युक्तः स उत्तरं दत्तवान्, मद्गुरुस्त्वमेव गुरु प्रसादस्य भगवत्प्रापकत्वात्तत्प्रसादो नाम परुषोत्तम प्राप्तिर्जातेत्याचार्याः पुरुषोत्तमा एव न गुरवः पुनस्तद्गुरुणोक्त' ते पुरुषोत्तमा इति

त्वदुक्ते किं प्रमाणं ? इत्युक्तः कृष्णदासो ज्वलदग्निमंजलिना गृहीत्वेदमुक्तवान् यदि ते पुरुषोत्तमाः स्वदासमग्निर्न ज्वालयिति नो चेज्ज्वालयिष्यतीत्युकत्त्वा मुहूर्तमात्रं तथा स्थितवान्, तदा गुरुस्तदुक्तेर्थे सत्यत्वं ज्ञात्वा तद्गृहीतमग्निंमीतः स स्थानस्थितं कारितवान् इत्यनुभव रूपमेक प्रमाणं । निगमे पुरुषोत्तमस्यैव ब्रह्म शब्द वाच्यत्वात्तस्या नंदमयत्वऽऽनिरूपणा-दत्रापि ।

कृष्णदास मेघन की वार्त्ता में जो हाथ पर अग्नि लेकर परीक्षा देने का उल्लेख है उसकी पुष्टि ऊपर के उद्धरण से पूर्णतया हो जाती है। सर्वोत्तम स्तोत्र की टीका में श्री पद्मनाभदास का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :—

'अनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशय इति, अनन्या अन्तरंगा भक्ताः पद्मनाभदास प्रभृतयो विरसास्तेषु ज्ञापितः ।

'अन्तःकरण प्रबोध की संस्कृत टीका से महाप्रभुजी को तीन बार भगवद्धाम में आने की आज्ञा का उल्लेख जो वार्त्ता-साहित्य में है, उसकी पुष्टि होती है :—'आज्ञा प्रभ्वाज्ञा पूर्वं प्रथमतो गंगासागर संगमे या जाता पश्चाद्वितीया या आज्ञा मधुवने मथुरायां जाता तदाज्ञाद्वयमपि मया न कृतम् । —तृतीयो लोकगोचरः ।

श्री गोकुलनाथजी कृत नामावली

यह नामावली श्री लल्लूभाई छगनलाल द्वारा प्रकाशित है। सम्वत् १९७४ की चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के गुजराती अनुवाद के प्रथम संस्करण में सर्वप्रथम प्रकाशित हुई।

नामावली

'श्री विट्ठलमहं वंदे स्वकीयजनवल्लभं । चतुराशीति भक्तानां व्यक्तिं कुर्वे यथार्थतः ।१।
दामोदरकृष्णदासौ पुनः दामोदरस्तथा । पद्मनाभश्च तुलसां पार्वतीरघुनाथकः ।२।
रजो पुरुषोत्तमो रुक्मिणि गोपालदासकः । सारस्वतो रामदासो गदाधर महांस्तथा ।३।
वेणीमाधवदासौ च अम्मा क्षत्राणी वैष्णवी । हरिवंशश्चगोविंदो क्षत्री गज्जनधावनः ।४।
नारायणो ब्रह्मचारी क्षत्राणी जीवदासकः । देवा कपूर क्षत्री च दिनकरः पुरुषोत्तमः ।५।
मुकुन्दः प्रभुदासश्च प्रभुत्रिपुरदासकौ । पूर्णमल्लो यादवेंद्रः काश्मीरो माधवस्तथा ।६।
गुसांईदास गोपालो श्रीपद्मारावल स्तथा । जोषी पुरुषोत्तमो ज्ञेयो जगन्नाथो समन्वयः ।७।
नरहरि राणो व्यासः क्षत्राणी रामदासकौ । गोपालो कृष्णदासश्च प्रोहितो रामदासकः ।८।
बुलामिश्ररामानंदौ विष्णु जीवनदासकौ । सारस्वतो भगवान्, भगवान् मुख्य सेवकः ।९।
गौडो अच्युतदासश्च अच्युतश्चक्रतीर्थकः कन्हैयाशालक्षत्री च नरहरीदासकस्तथा ।१०।
लघु पुरुषोत्तमो गोपालदास जनार्दनौ । कविराजो गड्डुस्वामी उत्तमश्लोकदासकः ।११।
ईश्वरोत्तमश्लोकाख्यो राजा माधवको तथा । सिंहनदे सासु बहू परमानंदसूरकौ ।१२।
बाबा वेणु कृष्णदास छकडा वासुदेवकः एक-क्षत्राणी आनंददासो विश्वंभरस्तथा ।१३।
ब्राह्मणी अथ कायस्थ नारायण स्त्रियस्तथा । अन्य मार्गीय कायस्थ दासो दामोदरस्तथा ।१४।
सिंहनंदे च क्षत्राणि जगतानंदक स्तथा । इन्द्रप्रस्थे चैकक्षत्री जटा गोपालदासकः ।१५।
कृष्णदासः कुंभनश्च वाडवो बादरायणः । वैष्णवो संतदासश्च सुंदरदास मावजी ।१६।

नरहरिदास संन्यासी पांडे सद्दू भवानिका । श्रीमदाचार्य भक्तानां नामानि बहवस्तथा ।१७।
तथापि स्वात्मपाठार्थे लिखितानितिक्षम्यतां । वार्त्तायां परिशोध्यानि सर्वदा वैष्णवैर्जनैः ।१८।
इति श्रीमद्वल्लभाचार्य भक्तानां श्रीमद्गोकुलनाथजी कृत नामावली-सम्पूर्ण ।

नामावली की सूची

इसमें उल्लिखित वैष्णवों के नाम :—

(१) दामोदरदास (२) कृष्णदास (३) दामोदर (४) पद्मनाभ (५) तुलसा (६) पार्वती (७) रघुनाथ (८) रजो (९) पुरुषोत्तम (१०) रुक्मणि (११) गोपालदास (१२) रामदास सारस्वत (१३) गदाधर (१४) वेणीमाधोदास (१५) अम्मा (१६) हरिवंश (१७) गोविंद (भल्ला) (१८) गज्जनधावन (१९) नारायण ब्रह्मचारी (२०) क्षत्राणी (महावन) (२१) जीयदास (२२) देवाकपूर (२३) दिनकर (२४) पुरुषोत्तम (आगरे) (२५) मुकुन्द (२६) प्रभुदास (जलोटा) (२७) प्रभुदास (भाट) (२८) त्रिपुरदास (२९) पूर्णमल्ल (३०) यादवेन्द्र (३१) माधव काशी को (३२) गुसांईदास (३३) गोपालदास (वांस वाड़ा) (३४) पद्मारावल (३५) जोषी पुरुषोत्तम (३६) जगन्नाथ (नरहरदास समन्वय) (३७) नरहरि (जोषी) (३८) राणा व्यास (३९) क्षत्राणि (सिंहनंद व प्रयाग) (४०) रामदास (अहमदाबाद) (४१) गोपालदास (४२) कृष्णदास (स्त्री पुरुष) (४३) प्रोहित रामदास (४४) बुलामिश्र (४५) रामानंद (४६) विष्णुदास (४७) जीवनदास (४८) सारस्वत भगवानदास (४९) भगवानदास भीतरिया (५०) गौड अच्युतदास (५१) अच्युतदास (मानसी गंगा वाले) (५२) कन्हैयाशाल (५३) नरहरिदास (गोडिया) (५४) लघु पुरुषोत्तमदास (५५) गोपालदास (५६) जनार्दनदास (५७) कविराज (५८) गड्डू स्वामि (५९) उत्तमश्लोकदास (६०) ईश्वर (उत्तम श्लोक) (६१) राजा दुबे माधो दुबे (६२) सासू बहू सिंहनंद की (६३) परमानंददास (६४)सूरदास (६५) बाबा वेणु, कृष्णदास (६६) वासुदेवदास छकडा (६७) एक क्षत्राणी (सामग्रीवारी) प्रयाग—१ (६८) आनंददास विश्वंभरदास(६९) एक ब्राह्मणी (कृष्ण—२) (७०) कायस्थ नारायणदास (७१) एक स्त्री (१) ब्राह्मणी मूसा-बिलाई वाली अडेल ? (७२) अन्य मार्गीय (७३) कायस्थदास दामोदर (७४) क्षत्राणी सिंहनदे की (७५) जगतानंद (७६) एक क्षत्री इन्द्रप्रस्थ का (७७) गोपालदास जटाधारी (७८) कृष्णदास (७९) कुम्भनदास (८०) बादरायण (८१) संतदास (८२) सुन्दरदास (८३) मावजी (८४) नरहरिदास संन्यासी (८५) सद्दू पांडे भवानी ।

इसमें ८४ वार्त्ता के निम्नलिखित पाँच नाम नहीं मिलते हैं। जिसमें दो नामों में छपने की भूल है।

(१) अच्युतदास सारस्वत (२) नारायणदास अंबाले के (३) नारायणदास भट्ट मथुरा (४) स्त्री पुरुष सिंहनंद के (५) सुतार अडैल ।

इस ग्रन्थ से भी चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के अधिकांश नामों की पुष्टि होती है और यह सिद्ध होता है कि वार्त्ता के भक्तों की नामावली और वृत्त उस समय प्रचलित हो चुका था ।

वचनामृतः—हिन्दी—दोसौ बावन वार्त्ताओं में २४० की पुष्टि इन वचनामृतों के द्वारा होती है। कुछ वार्त्ताओं के नामों का समर्थन प्राप्त होता है और कुछ के नाम और प्रसंग दोनों का और कुछ में केवल प्रसंगों का क्योंकि उन वार्त्ताओं में नाम दिए ही नहीं हैं।

वचनामृत से ११२ वार्त्ताएँ।

(१) नागजीभट्ट (२) कृष्णभट्ट (३) चाचा हरिवंशजी (४) मुरारीदास (५) नारायणदास (६) विट्ठलदास (७) रूपमुरारीदास (८) माधोदास (९) हरिजी कोठारी (१०) भाइला कोठारी (११) गोपालदास (१२) माणिकचंद (१३) गणेश व्यास (१४) हरिदास (१५) मधूसूदनदास (१६) रूपचंद नन्दा (१७) माधोदास (१८) कृष्णदास (१९) जनार्दन गोपालदास (२०) हरिदास (२१) मानिकचन्द (२२) गोविंददास (२३) परजाती (२४) मथुरादास (२५) श्यामदास (२६) छज्जो (२७) वेणीदास (२८) दुर्गादास (२९) पुरुषोत्तमदास (३०) लक्ष्मीदास (३१) ध्यानदास (३२) निहालचंद (३३) ज्ञानचंद (३४) जदुनाथदास (३५) पाथो (३६) दया (३७) गंगाबाई (३८) जोतसिंह (३९) हतित पतित (४०) वाघाजी (४१) वीरबल की बेटी (४२) गोपीनाथदास (४३) पर्वतसेन (४४) गोपालदास (४५) खंडन (४६) परमानन्द (४७) रामदास (४८) रेडां उदम्बर (४९) अजवकुंवर (५०) देवाभाई (५१) जनभगवान (५२) कल्याण भाट (५३) तानसेन (५४) वेणीदास दामोदरदास (५५) माधोदास (५६) ताराचन्द भाई (५७) आशकरण (५८) दामोदर झा (५९) मधुसूदनदास (६०) मुरारी आ० (६१) मेहा (६२) हृषिकेश (६३) हरिदास (६४) देवजी (६५) उद्धवत्रिवाडी (६६) रूपा (६७) प्रेमजी (६८) वृन्दावनदास (६९) सीतावाई (७०) कान्हबाई (७१) भीष्मदास (७२) नारायण पांडे (७३) बालकृष्ण (७४) माधुरीदास (७५) धर्मदास (७६) जमनादास (गुलाब के फूल वाले) (७७) मुकुन्ददास सेखड (७८) मान (७९) भीम (८०) पीताम्बरदास (८१) बेनीदास (८२) गोपालदास (८३) गोवर्द्धनदास (८४) उत्तमश्लोकदास (८५) आनन्ददास (८६) गोकुल भट्ट (८७) चांपाभाई (९२) मदनगोपालदास (९३) रूपमंजरी (९४) जाड़ा कृष्णदास (९५) राघवदास (९६) कटहरिया (९७) ब्रह्मदास (९८) पृथ्वीसिंह (९९) तुलसीदास (१००) वृन्दावनदास (१०१) नंददास (१०२) सगुणदास (१०३) धोवीं (१०४) छीतस्वामी (१०५) रसखान (१०६) यादवेन्द्रदास (१०७) गोविंदस्वामी (१०८) चतुरविहारी (१०९) चतुर्भुज मिश्र (११०) चतुर्भुजदास (१११) माधवदास (११२) भगवानदास रामराय।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में इनकी वार्त्ता-संख्या इस प्रकार है:—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १४, १५, १६, १७, १८, २४, २५, २६, २७, ३३, ३७, ३९, ४४, ४५, ४६, ४८, ४९, ५०, ५१, ५५, ५६, ५७, ५८, ६५, ६६, ७०, ७४, ७५, ७९, ८६, ८७, ८९, ९४, ९५, ९६, ९८, १०१, १०७ १०८, ११३, ११५, ११६, ११७, १२३, १२७, १२८, १३०, १३६, १३७, १४०, १४१, १५०, १५१, १५७, १५८, १६६, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५ १७६, १७७, १८३, १९०, १९१, १९४, १९८, २०१, २०६, २०७, २०८, २०९, २११, २१५, २२९, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, - २५२।[1]

इन एकसौ बारह नामों में, बयालीस कवियों के हैं जिनका विस्तृत विवरण कवियों के प्रसंग में मिलेगा। तथा चालीस सामान्य वचनामृत के हैं। तीस निधि स्वरूप वाले वैष्णवों के हैं।

---

१ देखो—द्वारिकादास परीख द्वारा संपादित-वार्त्ता संस्करण—सन् १९५३

इनके अतिरिक्त १२८ प्रसंगात्मक वचनामृत में हैं। इस प्रकार दोसौ बावन में से दोसौ चालीस वैष्णवों के नाम अथवा प्रसंग किसी न किसी रूप में उपलब्ध होते हैं।

श्री गोकुलनाथजी के २४ वचनामृत :—

ग्रन्थ – संग्रहीत,
प्रवक्ता – श्री गोकुलनाथजी,
भाषा – ब्रज,
प्रकाशित – अहमदाबाद से,
विषय – विविध उपदेश।

इस ग्रन्थ में पुष्टिमार्ग की सेवा आदि धर्मों का निरूपण है। इसके प्रारम्भ में संकलनकर्त्ता ने इस प्रकार लिखा है। "एक समय पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त श्री गोकुलनाथजी ने श्री गुसांईजी सों पूछयो तब श्री गुसांईजी ने चाचा हरिवंश तथा नागजीभट्ट आदि अनेक भगवदीयन के अर्थ श्री गोकुलनाथजी के प्रति आप अपने पुष्टिमार्ग को सिद्धान्त श्रीमुख सों कहे। सुनि के चाचा हरिवंश तथा नागजीभट्ट आदि अंतरंग भगवदीय अपने मन में बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछे श्री गोकुलनाथजी आय अपनी बैठक में पधारे सो श्री गुसांईजी के वचनामृत को अनुभव सिद्धान्त अपने मन में करत हुते ता समें श्री गोकुलनाथजी के सेवक श्री कल्याणभट्ट ने आयके श्री गोकुलनाथजी सों दंडौत किए। तब श्री गोकुलनाथजी बोले नहीं। आपु तो पुष्टिमार्गीय-सिद्धान्त-रस में मग्न होइ अनुभव करत हे। तब कल्याणभट्ट हाथ जोड़ के ठाड़े होय रहे ता पाछे चार घड़ी में श्री गोकुलनाथजी ऊँची दृष्टि करिके कल्याणभट्ट की ओर देखे तब फेरि कल्याणभट्ट दंडवत किए तब श्री गोकुलनाथजी आप कल्याणभट्ट सो आज्ञा किए जे तुम कबके आए हो तब कल्याणभट्ट ने आपसौ बिनती कीन्हीं हे महाराज ! मोकों आये तो चार घड़ी भई है तब श्री गोकुलनाथजी प्रसन्न होयके श्रीमुख सों आज्ञा कीन्हीं जे आज श्री गुसांईजी ने अपने पुष्टिमार्ग को सिद्धान्त मोसों कहे हैं सो पुष्टि-मार्ग की रीति तो महा कठिन है सो बनत नाहिं है।"

इससे यह प्रमाणित होता है कि वार्त्ता की यह परम्परा प्रवचन का ही रूपान्तर है और श्री गुसांईजी से गोकुलनाथजी को पैतृक सम्पत्ति रूप से प्राप्त हुई थी और उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा ने उसे और भी उन्नत रूप दे दिया था। ये वचनामृत वैष्णवों के महत्व को तथा सेवा, अनन्याश्रय आदि को अच्छे ढंग से सरल भाषा में स्पष्ट करते हैं। जैसे "और वैष्णवन ते दीन होय प्रीति राखे" 'और वैष्णवन पास मान छोड़कर जाय' और निशंक हो कर भगवत स्मरण करे जहाँ भगवत् वार्त्ता में संकोच होय तहाँ भागवत् धर्म न बढ़े और सन्देह रहे।'[1]

'और कोई वैष्नव सो इर्षा करिके भगवत सेवा भगवत धर्म कीर्तन आदि में प्रतिबंध करके छुड़ावे सो वह कुम्भीपाक नरक को कीड़ा साठ हजार वर्ष ताईं होत है।'[2]

'और वैष्णव सों क्रोध करत हैं तिनको सिगरो सुकृत धर्म नाश होत है।'[3]

'पाछे रात्रि कों वैष्नवन सों मिलि कै भगवद् वार्त्ता कीर्तन अवश्य करनो और कोई वैष्णव न मिलै तो एतन्मार्गीय ग्रन्थन की टीका देखे। एतन्मार्गीय वैष्नव में जायके वार्त्ता

---

१ वचनामृत ४ में से उद्धृत
२ वचनामृत ५
३ वचनामृत ५

करे। सुने। जैसे सेवा में आलस्य न करे ऐसे वैष्नव मिलाप में आलस्य न करे। दोउ होय तब भक्ति बढ़े जो भगवद् सेवा न बने तोहू वैष्नव संग न छोड़े।'[१]

इन वचनामृतों से वैष्णव की महत्ता का दिग्दर्शन भली भाँति हो जाता है और इनमें वैष्णवों से मिलकर वार्त्ता करने का आदेश भी है। सच बात तो यह है कि वार्त्ता-साहित्य की भाव भूमि में वचनामृत ही हैं। इन्हीं की पुष्टिस्वरूप वार्त्ता-साहित्य का प्रारम्भ हुआ और पीछे से विस्तार और संकलन हुआ। इस प्रकार मूल रूप में इसके आदि प्रणेता श्री महाप्रभुजी व गुसांईजी के अतिरिक्त श्री गोकुलनाथजी भी हैं।

दास्याष्टक-पुष्टि दृढाव :—

लेखक — श्री हरिरायजी,
रचनाकाल — सं० १७२६ वि० से पूर्व,
विषय — दास्यभाव, तथा पुष्टि भक्ति,
प्रकाशित — डाकौर से।

इस ग्रन्थ से आपके भाव प्रकाश में लिखे हुए तादृशी वैष्णवों के स्वरूप की पुष्टि होती है। दास्याष्टक 'जीवनी' वाले प्रसंग में उद्धृत किया गया है। इसलिए यहां इसके केवल दो पद लिखकर वैष्णवों के प्रति आपके भावों की पुष्टि की जा रही है:—

दास्याष्टक—

(१) ये नित्यं परिभावयन्ति चरणौ श्री वल्लभ स्वामिनो
ये वा तद्गुणगानसेवनपरा ये सन्निधिस्थापना:
ये वा तद्गतभाव भावितमनो मोदान्विता सन्ततं
तेषामेव सदास्तु दास्यमपरं किंवा फलं जन्मनः।

(२) ये तद्रूपमहर्निशं स्वहृदये तापात्मकं सुन्दरं।
साकारं सरसे रसात्मतया ख्यातं हि जातं भुवि।
नित्यं तत्परिचिन्तयन्ति सततं संकीर्तयन्त्यादरात्
तेषां दैन्य भरेण मे प्रतिभवं दास्यं हि भूयात्फलम्।

पुष्टि दृढ़ाव—इस ग्रन्थ की एक एक पंक्ति वार्त्ता के भाव का समर्थन करती है। यहाँ केवल कुछ पंक्तियों द्वारा वार्त्ता का समर्थन दिखाया जा रहा है:—

'ऐसो पतिव्रता को धर्म है। तैसे वैष्णवन कों पतिव्रता की न्याई टेक राखनी। जैसे मीराबाई के घर कीर्तन होत हते। तहाँ श्री आचार्यजी के पद गावत हुते। तब मीराबाई बोली। जो अब श्री ठाकुरजी के पद गावो तब रामदास वैष्णव ने कही जो दारी राँड ये कौन के पद गावत हैं। जा तेरो मुख ना देखुंगो। तब सब अपनो कुटुम्ब लेके और गाम गयो फेर मीराबाई को मुख न देख्यो।'

तथा—

"जैसे श्री आचार्यजी के सेवक त्रिपुरदास कायस्थ ने चरणामृत प्रसाद बिना जल न लीनों। पाछे श्री ठाकुरजी ने जानी याकी देह गिरेगी परि वह जल न लेगो। तब श्री ठाकुरजी बरस दस के बालक को रूप धरि के थैली दोय, एक तो चरणामृत की, एक महाप्रसाद की देय गए।"[२]

---

१ वचनामृत ६
२ यह दोनों प्रसंग वार्त्ता में ज्यों के त्यों मिलते हैं। —संपादक

शिक्षापत्र की ब्रज भाषा टीका :—

लेखक—श्री गोपेश्वरजी (प्राकट्य संवत् १६४७ वि०),

रचनाकाल—संवत् १७०० वि० के लगभग,

विषय—टीका,

वार्त्ता की पुष्टि करने वाले अनेक उल्लेखों में से केवल एक उल्लेख :—

"तब भगवानदास ने मन्दिर के किवार खोलि या वैष्णव को श्री आचार्यजी के दर्शन कराए आप बैठे पोथी बांचत हे तब या वैष्णव के मन को सन्देह गयो। तातें तादृशी वैष्णव तें श्री आचार्यजी महाप्रभुजी एक क्षण न्यारे नाहीं रहत हे ऐसे वैष्णव को संग अवश्य करे।"[1]

बहिस्साक्ष्य :—

प्रभुचरित्र चिन्तामणि :—लेखक-श्री देवकीनन्दन गोस्वामी, (श्री रघुनाथजी के पंचम पुत्र), भाषा—संस्कृत, विषय–वल्लभ-विट्ठल चरित्र, प्रकाशक—कॉंकरौली विद्या विभाग सं० १९९८, लेखन समय, संवत् १६५० के आसपास।

उपक्रम—प्रथम आख्यायिका—श्री विट्ठलनाथजी के स्वरूप में कृष्ण का हनूमानजी को दर्शन होना।

द्वितीय आख्यायिका—गोकुलेश का दैनिक कथा के अनन्तर श्री वल्लभ विट्ठल चरित्र कहना।

इस ग्रन्थ के आरम्भ में—पौराणिक शैली के अनुसार शिव पार्वतीजी से चारों सम्प्रदायों का उद्गम वृत्त कह रहे हैं और आचार्यों का स्वरूप भी। इसके पश्चात् प्रवाह मर्यादा और पुष्टि सृष्टि का वृत्तान्त और शास्त्रीय मर्यादारक्षण और पुष्टि सृष्टि के उद्धार के लिए श्री आचार्यजी का प्रादुर्भाव। महाप्रभुजी के अग्नि रूप का महाप्रभुजी के वाक्यों और शास्त्रों से प्रतिपादन। जन्म प्रसंग। पाँचवें वर्ष में श्री आचार्यचरण का यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, और भू परिक्रमा, गोवर्द्धननाथजी का उद्धरण, बिल्वमंगल कथा, विद्यानगर का शास्त्रार्थ, ब्रह्म सम्बन्ध प्रकरण।

इसमें विट्ठल चरित्र के निम्नलिखित प्रसंग हैं—

(१) एक सेवक को गुसाईजी में गोपीजनवल्लभ का दर्शन और उसकी शंका की निवृत्ति। (यह वृत्त २५२ में प्राप्त है)।

(२) गदाधर द्विवेदी आदि के ग्रन्थों द्वारा श्री आचार्यचरण तथा गुसाँईजी के चरितों का ज्ञान।

(३) गोपीनाथजी का जगन्नाथपुरी में लीला प्रवेश।[2]

(४) श्री गुसांईजी के सात पुत्रों का उल्लेख।[3]

अन्त में इस प्रकार लिखा है :—

'श्री वल्लभो मां स्व बलाधृत्वैव ह्युपादिशद् गोकुलनाथ नामा प्रभु चरित्रचिन्तामणि-नामधेयं निबंधयामास तथैवचाहम्। इति श्री वल्लभ चरणैकतान श्री गोस्वामी देवकी नन्दन कृतः प्रभु चरित्र चिन्तामणि ग्रन्थः समाप्तः ॥'

पुष्टि प्रवाह मर्यादा ग्रन्थ की संस्कृत टीका

लेखक—श्रीगोस्वामी पुरुषोत्तमजी लेखवाले, रचनाकाल—अज्ञात, विषय-पुष्टि भक्ति, प्रकाशित—अहमदाबाद से।

---

१ शिक्षापत्र—४—श्लोक २८

२ वार्त्ता में प्राप्त।

३ वार्त्ता में प्राप्त

इस ग्रन्थ की इन पंक्तियों से वार्त्ता के अलीखान पठान के उल्लेख की पुष्टि होती है :—
'अतः परं प्रवाहेपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्नयुज्यते । सोपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यत् इत्युक्तोवशिष्यते । यथा अलीखानादि अतस्तादृशंतद्देश्यं प्रतिवायुमपदेश । इति

श्री वल्लभ दिग्विजयम्

(श्री यदुनाथ दिग्विजय नाम्ना प्रसिद्धम्)

गोस्वामि श्री यदुनाथजी महाराजैः प्रणीतम् ॥

श्रीनाथद्वारस्थ विद्याविलासि गोस्वामि तिलक श्री गोवर्द्धनलालजी महाराजा नामाज्ञया शीघ्र कवि नन्दकिशोर शर्मणा शोधितम् चतुर्वेदि पुरुषोत्तम शर्मणा हिन्दी भाषाया-मनूदितम् ।

श्रीनाथद्वारे श्री सुदर्शन यन्त्रालये मुद्रितम्—श्री विद्या विभाग मूल्यम् १) संवत् १९७५ मिती कार्तिक कृष्ण १३ शुक्रे ।

अनुक्रमणिका—

"इति प्रथमावच्छेदः"

अथ द्वितीयावच्छेदः

इति द्वितीय भावच्छेद:

वल्लभदिग्विजय में वार्त्ता संबंधी उल्लेख

वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख—८४ में से ३२ नाम और उनका परिचय इस ग्रन्थ में मिलता है।

वल्लभदिग्विजय के ३२ नामों की सूची

(१) दामोदरदास हरसानी (२) कृष्णदास मेघन (३) नरहरियति (४) नारायणदास दीवान (५) दामोदरदास संभरवाले (६) सेठ पुरुषोत्तमदास (७) सारस्वत भगवानदास (८) नरहरि गोडिया (९) रामदास (१०) नारायणदास कायस्थ (११) भगवानदास भीतरिया (१२) राजा दुवे, माधो दुवे (१३) एक क्षत्राणी महावन की (१४) सुन्दरदास माधोदास (१५) पद्मनाभदास कनौजिया (१६) नारायणदास ब्रह्मचारी (१७) कुंभनदास गोरवा (१८) रामदास पुरोहित (१९) पूरणमल क्षत्री (२०) गज्जन धावन क्षत्री (२१) हरिवंश पाठक (२२) सूरदास सारस्वत (२३) कृष्णदास अधिकारी (२४) रामदास सांचोरा (२५) रामानंद पंडित (२६) परमानन्ददास (२७) कविराज भाट (२८) सन्तदास क्षत्री (२९) गोपालदास (३०) गंगाबाई क्षत्राणी (३१) उत्तमश्लोकदास (३२) अम्मा क्षत्राणी।

'श्री यमुनाजी नां ४० पद' की रसात्मक टीका

'पुष्टिमार्ग माँ श्रीयमुनाजी नु महत्व अनिर्वचनीय छे। श्री यमुनाजी विना मुकुन्द मां रति थती नथी। नवीन देह भगवत्सेवोपयोगी थतो नथी, अने ब्रजलीला मां प्रवेश थतो नथी। श्री महाप्रभुजी श्री सुबोधिनीजी मां श्रीयमुनाजी ने भक्तिना साधन तरीके पण ओलखावे छे तेमनामां मुरारी ना चरण कमल नी उत्कट रेणु विराजमान छे। ए उत्कट रेणूज भक्ति नुं स्वरूप छे एटले श्रीयमुनाजी भक्ति नुं साधन अने भक्ति नूंज स्वरूप पण छे आ भक्तिते पुष्टि भक्ति। आ भक्ति नी प्राप्ति थी अलौकिक अष्टसिद्धि जीव माँ तादृश थाय छे ए आठ सिद्धिओ आछे (१) प्रभुनी लीलानां आ चक्षुओं थी ज दर्शन करवां (२) श्री लीलाना आनंद नो साक्षात् अनुभव करवो (३) सर्वात्म भाव प्राप्त करवो (४) भगवदावेशवाला देहनी प्राप्ति करली (५) अंत:करण मां आविर्भूत भगवल्लीला नां साक्षात् दर्शन करवां (६) भावनात्मक भगवान का स्वरूप मां तन्मय थवुं (७) विरहानुभव समये कृष्णमयता थवी (८) भगवन्

ना उपास्य स्वरूप थी निरपेक्ष बनी अन्तर मां स्वाधीना स्वतंत्र भावना नो सदा अनुभव करवो आ आठे सिद्धि श्री यमुनाजी नी कृपा बिना सिद्ध थतीज नथी। भगवल्लीला ना साक्षात् दर्शन माटे महादेवजी अने ब्रह्माए वृन्दावन मां आवीने श्रीयमुनाजी नी स्तुति करी छे त्यारे एमने अलौकिक चक्षु प्राप्त थयां अने बंसीबट ऊपर रासनां दर्शन थयां। आ एकज सिद्धि घणा ताप-क्लेश थी महादेवजी अने ब्रह्मा जेवा समर्थ देवताओं ने श्री यमुनाजी नी कृपा वडे प्राप्त थयी ते श्री यमुनाजी कृपा ने श्री महाप्रभुजी ए आधुनिक सर्वसाधन शून्य सर्व दोष निधान जीव माटे श्री यमुनाष्टक नी रचना करी सुगम करी हती छेवट तेना नित्य नियमपूर्वक श्रद्धा संयुक्त पाठ वडे समस्त दोषो ना नाशना साथे मुकुन्द मां सहज रति उद्‌भवेछे अने ते हरिनो प्रिय थई उक्त आठों सिद्धि नो अधिकारी बने छे। आचार्यवाणी ने बधुँ सरल बनाववा माटे सखाओं श्री गंगाबाई तथा श्री हरिराय महाप्रभुए ते यमुनाष्टकनाज रहस्यार्थ रूपे ब्रजभाषा मां पद रच्यां जेनो संग्रह ४० पदो ना नाम थी श्री शोभा जीए आधुनिक जीवो माटे कर्यो छे तेमां आचार्य श्री नी अलौकिक वाणी केवी रसमय अने गूढ छे तेनो साक्षात्कार कराव्यो छे। रसिक रसना रसिक वाणी जाणी सर्व नव खंड 'रसपुंज पुरुषोत्तम प्रमाण्या सरस्वती त्यजि आधी' इत्यादि वल्लभाख्यान नां कथनो थी ए सिद्ध छे के आचार्य श्री ए पुरुषोत्तमनां रसात्मा रूपे प्रतिपादन करी तेना वर्णन रूप आपनी वाणी पण रस रूपेज प्रकट करी छे ए थी षोडश ग्रन्थ आदि साहित्य पण ए प्रकार नी रूप वाणीज छे।"

भक्तमाल—लेखक—नाभादास, रचनाकाल—गिरधरजी की उपस्थिति में १६४०–१६८० तक, विषय—भक्त चरित्र, प्रकाशित—अनेक स्थानों से।

वार्ता के ३४ नामों को भक्तमाल के कवियों की नामावली से समर्थन प्राप्त हैं :—
(१) सूरदास (२) परमानन्ददास (३) कृष्णदास अधिकारी (४) अवधूतदास (५) कटहरिया (६) चाचा हरिवंशजी, (७) कुम्भनदास (८) ब्रह्मदास (९) चतुरबिहारी (१०) गोविंददास (११) प्रियदयाल (१२) राजा आशकरण (१३) भीष्म (१४) रघुनाथ (१५) गोपीनाथ (१६) यदुनन्दन (१७) भगवानदास (१८) मुकुन्द (१९) चतुर्भुज (२०) विष्णुदास (२१) गदा (२२) ईश्वर (२३) तुलसी (२४) नन्ददास (२५) जाडा कृष्णदास (२६) पृथ्वीसिंह (२७) रत्नावली (२८) छीत स्वामी (२९) जन भगवान (३०) स्यामदास (३१) लाखा (३२) प्रेमनिधि (३३) कान्हरदास (३४) रामराय।

भाव-भावना :–रचयिता–श्री द्वारकेशजी (प्राकट्य संवत् १७५१), रचनाकाल–१८०० से पूर्व, विषय–सेवा, प्रकाशित–कांकरौली विद्या विभाग, भाषा–हिन्दी गद्य, संवत् १९९३ विक्रमी। यह १०४ पृष्ठ का ग्रन्थ है। इसमें सेवा प्रकार, स्वरूप भावना, लीला भावना, भाव-भावना, का विश्लेषण है। इसमें साठ विषयों की चर्चा है। इसमें पृष्ठ ५१ पर तुलसीदास का प्रसंग है जो वार्त्ता के कथन की पुष्टि करता है। प्रसंग—'श्री गोकुलनाथजी विशे यश है। चिद्रुप माला को प्रतिद्वन्दी भयो तब माला स्थापन किये।' यह यश प्रसिद्ध ही है। 'श्री रघुनाथजी विषे श्री है। तुलसीदास श्री गोकुल में आये तब श्री गुसांईजी सों कहे, सीताजी सहित श्री रामचन्द्रजी को दर्शन होय यह कृपा करो। तब ही रघुनाथजी को व्याह भयो हतो सो श्री जानकी बहूजी पास ठाड़े हते। तब आपु आज्ञा दिये जो तुलसीदास को दर्शन देउ। तब श्री राघुनाथजी जानकी बहूजी वेसों ही दर्शन दिये। तब तुलसीदासजी कीर्तन कहे 'बरनों

अवध श्री गोकुल गाम । उहाँ सरजू इहाँ श्री यमुना एक ही लख ठाम ।' एसो श्री गुसांईजी की आज्ञा को विश्वास "श्रियो हि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि ।" [१]

भाव भावना के इस उल्लेख से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि संवत् १८०० से पूर्व यह प्रसंग सम्प्रदाय में प्रचलित हो गया था ।

अंतस्साक्ष्य

महाप्रभुजी के तथा श्री गुसांईजी के सेवकों की रचनाओं द्वारा ।

वार्त्ता का समर्थन

परमानंददास ३७(आ)

परमानन्ददास की वार्त्ता की इन पदों से पुष्टि होती है :—

१—श्री कृष्णस्वरूप के दर्शन :—और मोकों श्री आचार्यजी आपु कृपा करिके श्री कृष्णजी के स्वरूप को दरसन दियो है ।

पद—प्रात समै रसना रस पीजै लीजै श्री वल्लभ प्रभुजी को नाम ।
आनन्द में बीतत निस बासर मन वांच्छित शुधरे सब काम ।
सुजस गान मन ध्यान आन उर जे राखे हृदय आठो याम ।
परमानंददास को ठाकुर जे बल्लभ ते सुन्दर स्याम ।

देवा कपूर के साथ से श्री आचार्यजी की प्राप्ति :—

२—मैं श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो ।
बह्यो जात मोंहि राखि लियो है पिय संग हाथ गहायो ।
दुसंग संग सब दूरि किए हैं चरनन सीस नवायो ।
परमानन्ददास को ठाकुर नैनन प्रगट दिखायो ।

श्री नवनीतप्रियजी के दर्शन :-

३—'श्री नवनीतप्रियजी की सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो'

४—समर्पन

(१) 'अब तो जिय एसी वनि आई, कियो समर्पन देहरा'

(२) मैं तो प्रीति स्याम सों कीनी
कोउ निंदौ काउ बंदौ अबतो या घर दीनी
जो पतिव्रत तौ या ढोटा सों इन्हें समर्प्यो देह
जो व्यभिचार तौ नंदनंदन सों बाढो अधिक सनेह
जो व्रत गह्यो सो निबाहो मर्यादा कौ भंग
परमानंद लालगिरधर कौ पायौ मोटो संग

श्रीनाथजी के कीर्तन की सेवा अडैल से ब्रज जाने की अभिलाषा :—

६—'ब्रज के दरसन की प्रार्थना कीनी'

---

१ श्री द्वारकेशजी की भाव-भावना पृष्ठ संख्या ५६ से उद्धृत—श्री वसंतराम शास्त्री अहमदाबाद वाले की ——— से साभार ।

पद—जइये वह देस जहाँ नंद नंदन भेंटिए।
निरखिए मुख कमल कांति विरह ताप मेंटिए।
इह अभिलाष अंतरगत प्राननाथ पूरिए।
सागर करुना उदार विविध ताप चूरिए।
छिनु-छिनु पल कोटि कलप बीतत अति भारी।
'परमानन्द' प्रभु कल्पतरु दीनन दुःखहारी।

७—गोकुलघाट उतरते समय की विकलता।

(२) खेवटियारे बीर अब मोहे क्यों न उतारे पार।
मेरे संग की सबहि उतरिकैं भेंटी नन्दकुमार ।।
अति गहरी जमुनाजु बहति है मैं जु रही चलि बार।
'परमानन्द' प्रभु सों मिलाय दे तोहि देऊं गले कौ हार।

८—वार्त्ता प्रसंग में तीन दिन तक महाप्रभुजी के परमानन्ददास के घर पर विराजने की पुष्टि :—

हरि तेरी लीला की सुधि आवे।
....
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गँवावे।

यहाँ 'परमानन्द प्रभु' शब्द का अर्थ श्री महाप्रभु वल्लभाचार्यजी से है।

कृष्णदास

इस पद से श्री महाप्रभुजी के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है :—

पद—सेवा करन प्रगट ब्रज आए।
श्री लक्ष्मण गृह बल्लभ प्रगटे तिनके विट्ठलनाथ कहाए।
श्रुति मति को अग्र भाष्य विचार श्री भागवत अर्थ प्रगटाए।
मायावाद अन्य धर्म खंडन करि विष्णु स्वामि पथ जग जोति चलाए।
श्री गोपाल मंत्र चारु अष्टाक्षर को स्रवन कराए।
गद्य मंत्र सब जीवन को कृष्ण चरन सबके चित लाए।
तीन परिक्रमा करके द्वारका देसहु श्री रनछोरहि छाए।
नवधा भक्ति विचारहि चित्त, नव स्वरूप को दर्श दिखाए।
श्री नवनीत चन्द्र, श्री नटवर, मदनमोहन, गिरधरन भाए।
द्वारिकेश मथुरेश श्री विट्ठल बालकृष्ण गिरिधरन सुहाए।
सबकौ सेवा कारन श्री जमुना जल पान कराए।
श्री गोवरधन राम कृष्ण कों विमल विमल जस गाए।
दास भाव सों आप बिराजत सुनि बचनामृत कोउ न अघाए।
श्यामसुन्दर रज प्रताप ते कृष्णदास यह दरसन पाए।[1]

इस पद में ग्रन्थ, मंत्र, चरित्र और ठाकुरजी, चारों का संक्षिप्त उल्लेख है।

---

१ ध संख्या ५/६ कांकरौली सरस्वती भंडार से संकलित।

श्री कृष्णदासजी एक दूसरे प्रचलित पद का यह अंश :—

प्रगटे श्री विट्ठलनाथजी जग भयो उजियारा ।
पौष कृष्ण नौमी दिना प्रभु लिया औतारा ।।

+ + +

'कलियुग में द्वापर भयो सब जीव उद्धारे'

भक्तमाल में इस प्रकार लिखा है :—

श्री विट्ठलनाथ भजन प्रताप बल कलियुग में द्वापर कियो ?

वल्लभ शरणागत :—

तबतें श्याम सरन हों पायो
जब तें भेंट भई श्री वल्लभ निजपति नाम बतायो ।

कृष्णदास

और अविद्या छोडि मलिन मति श्रुति पथ आय दृढ़ायो ।
'कृष्णदास' जन चहूं जुग खोजत अब निहचै मन आयो ।।

सूरदास

जन्मांधता—जो जन्में पाछे नेत्र जाय तिनको आंधरो कहिए सूर न कहिए । और ये तो सूर हैं सो सूरदास को जन्मत हीं सों नेत्र नाहीं हैं—वार्त्ता के इस कथन की पुष्टि इन पदों से भी होती है:—

(१) कहावत ऐसे त्यागी दानि ।
चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरु गुरु के सुत आनि ।।
रावन के दस मस्तक छेदे सर गहि सारंगपानि ।
लंका दई विभीषन जन कों पूरबलीं पहिचानि ।।
विप्र सुदामा कियो अजाची प्रीति पुरातन जानि ।
सूरदास सों बहुत निठुरता, नैननि हू की हानि ।।

(२) किन तेरो गोविंद नाम धर्‌यो
सांदीपन के सुत तुम ल्याये जब बिद्या जाय पढ्यो ।।
सुदामा की दारिद तुम काटी तंदुल भेंट धर्‌यो ।
द्रुपद सुता की लाज तुम राखी अंबर दान कर्‌यो ।।
जब तुम भए लेवा देवा के दाता हमसूं कछु न सर्‌यो ।
सूर की बिरियाँ निठुर होइ बैठे जनम-अंध कर्‌यो ।।

(३) हरि बिन संकट में को काको ।
तुम बिन दीनदयाल कृपा निधि नाम लेहुँ धौं काकौ ।

× × ×

कोटि कोटि तुम पतित उधारे कहौ हूँ कवन कहाँ कौ
रह्यो जात एक पतित जनम कौ आंधरौ सूर सदा कौ

(२) ग्राम और जाति

"सूरदासजी दिल्ली पास चारि कोस उरे में एक सीही गाम है—सो ता गाम में एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रगटे।' (वार्त्ता) सीही की पुष्टि श्री गोकुलनाथजी के समकालीन 'प्राणेश' कवि के 'अष्ट सखामृत' से इस प्रकार होती है :—

'श्री वल्लभ प्रभु लाड़िले सीही सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सफल, सूर भगत विख्यात।

वल्लभशरणागतिः--

श्री वल्लभ अबकी बेर उबारो
सब पतितन में विख्यात पतित हों पावन नाम तिहारो।
सूर अधम को कहुँ ठौर और नाहीं बिना एक सरन तुम्हारो।

कुंभनदास

पद— लाल तोहि भावै टोड को घनो
कांटा भागै गोखरु भागै फट्यो जात यह तन्यो
सिंहै कहा लौकटी को डर यह कहा बानिक बन्यो
कुंभनदास तुम गोवरधनधर वह कौन रांड ढेडनी को जन्यो

पद— भगत को कहा सीकरी सो काम
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरि नाम
जाको मुख देखे दुख उपजै ताकों करनि पर्यो प्रनाम
कुंभनदास लाल गिरधर बिनु यह सब झूठो धाम।

८४ और २५२ दोनों वार्त्ताओं में कवियों के अतः साक्ष्य वाले पद 'वार्त्ता के कवियों' के वृत्त में दिए गए हैं इसलिए उन्हें यहाँ नहीं लिखा जा रहा है। पर उन सब उद्धरणों से वार्त्ता के नाम, संख्या, प्रसंग सबकी पुष्टि होती है।

ऊपर के पदों में पहले पद में वार्त्ता के श्रीनाथजी के टोड़ के घने में रहने की पुष्टि होती है और दूसरे में श्री कुंभनदास से अकबर की भेंट का जो उल्लेख वार्त्ता में है उसकी पुष्टि होती है।

चौरासी वैष्णव के चौखरा

रचयिता—विष्णुदास छीपा, प्रकाशक—लल्लूभाई छगनलाल—अहमदाबाद ग्रंथकार काल—संवत् १५७० से लेकर १६८० तक, प्रकाशन समय—संवत् १९९६।

प्रारम्भ—राग विलावल

श्री दामोदरदास हरसानी प्राणपति पद रज रति मानी
तन मन प्राण समर्पण कीन्हा निज प्रभु सत्य अनन्य व्रत लीना।

छद - लीना अनन्य नाथ नित्य संग अर्थ जग के त्याग ही
गूढ़ भाव सों भजन कीन्हें पराकाष्ठ अनुराग ही
जिनकी कृपा पद रज प्रतापै प्राण वल्लभ पाइए
चौरासी महा भाग निज जन के विमल गुन गाइए।

अन्तिम—लीला में अंगीकार कीन्हें गाय गुन अष्टछाप ही।
महाकवी की मंद बुद्धि बलि जाय विष्णुदास ही।

भक्त जन पद रज प्रतापैं सकल काज सराइए
चौरासी महाभाग निज जन के विमल गुन गाइए।

विशेष - दिखायो अपनो धाम आप ही कियो महारस दान ही।
विष्णुदास प्रभु श्रीवल्लभ कियो मुख मधुपान ही।
मिली इनकी कृपा कणिका तेहि जीव जिवाइए
चौरासी महाभाग निज जन के विमल गुन गाइए।

नोटः—'कृपा कनिका' से इनके चौरासी के ही सेवक सूची के होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। यह चोखरा चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के संवत् १६८० से पूर्व रचे जाने की ओर इंगित करता है।

२७—विष्णुदास छीपा

महाप्रभुजी के प्रगट समय सूचक पद :—

आज माई प्रगटे हैं श्री बल्लभ
जगत जीव उद्धारन कारत जगत चतुर्दश के विभु।
सचुपाए पतितन सब जिय में अब छूट हैं सब सुलभ।
बद वैसाख मास बद्द रवि तिथि एकाद सी सुभ।
विष्णुदास, जननी निधि पाई जग्य पुरुष जे दुर्लभ।[1]

इससे श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता की पुष्टि होती है।
विष्णु स्वामी सम्प्रदाय का उल्लेख :—

वंदेऽहं त्वं विमल हुताशं।
जातें प्रगट प्रदीप श्री विट्ठल अमल अद्भुत तिमिर भ्रम नाशम्
× × × ×
श्रीलक्ष्मण सुत विष्णु स्वामि पथ श्रुति वच मंडन कहे विष्णुदासं।[2]

२८—श्रीभट्ट

इनका नाम वार्त्ता-साहित्य में नहीं है। लेकिन यह श्री महाप्रभुजी के सेवक थे और कवि थे। इनका उल्लेख श्री गोकुलनाथजी के सेवक गोपालदास ब्यावरा वाले ने अपने 'प्राकट्य सिद्धान्त' में किया है। उसके अनुसार यह सनोढ़िया ब्राह्मण और गंगा के किनारे के रहने वाले थे। इनके पचास पद सम्प्रदाय में प्राप्त हैं जिनमें से कई तो श्री आचार्यजी विषयक हैं और कई सेवा विषयक हैं। इनके दो निम्नलिखित पदों से श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य-काल पर प्रकाश पड़ता है और श्री महाप्रभुजी द्वारा प्रगटित मधुर भाव पर प्रकाश पड़ता है।

पद— रंग-रासि मधु-रासि श्री वल्लभ श्री लक्ष्मण-गृह आये।
विविध मधुर प्रतिपल वपुधर शृंगार सघनता वेणु रंध्र मधि पाये हो।[2]

---

१ कांकरौली सरस्वती भंडार-बंध संख्या ३।२ सम्वत् १८४६ कार्तिक वदी दूज लेखक द्वारकादास, भगवानदास गोपाल की हस्तलिखित प्रति से

२ वर्षोत्सव कीर्तन के पद संग्रह से

व्रजजन विरह अग्र फल लुब्धित अति आतुर उठि धाये हो।
उत गिरधर मुख इत प्राकट्य सुख श्री भट दुहुविधि गाए हो।

इससे वार्त्ता के इस कथन की पुष्टि होती है कि श्रीनाथजी के मुखारविन्द के प्राकट्य के समय ही चम्पारण्य में श्री महाप्रभुजी का आविर्भाव हुआ था। श्रीनाथजी के मुखारविन्द के प्राकट्य का समय विक्रम संवत् १५३५ वैसाख कृष्ण एकादशी सर्वमान्य है।

मधुरभाव का पद :—

श्री वल्लभ प्रगटत सब प्रगटी लीला स्याम घन की।
रसिकन उर अति उल्लास उद्भव भयो रास विलास,
प्रकास प्रेम पुंज कुंज सम्पत्ति वृन्दावन की।
आनन्द द्रुम उरझि रह्यो सुरझाय लई,
कही फेर उरझाय दई बातें ब्रज जनकी।
और दिखाई ठौर ठौर, दानमान नित प्रसंग।
त्रिभंग तीनों लोक मांझ प्रेम-पन की।
कटितें लें ग्रीव स्याम गोपीजन भाव।
भूषण शीस मुकुट जटित आभा नील पीतन की।
विरह वसन लसत देह यही भेष नेह गेह।
आसा सब भांति पूरी श्रीभट्ट के मन की[1]।

अलीखान-चौरासी वैष्णवों की नामावली

श्री विट्ठलवर नित्यप्रतिगाऊ, जाही विधि श्री वृन्दावन पाऊँ।
श्री वल्लभ प्रभुकों करों प्रणाम, सुमरों श्रीगिरिवरधर नाम।१।
सुमरों श्री गिरिवरधरण वर, नित्य शरण श्री वल्लभहरि।
श्री विट्ठलेश कृपाल सागर, चरण रज मस्तक धरी।२।
अब गाऊ हों निज जनन के गुण, सूचिपत्र प्रकट करों।
निज भक्त चौरासी भए, अब नाम तिनके उच्चरों।३।
अब श्रीहरसानी दासदामोदर, कहों हों एक प्रथम ही।
कृष्णदास मेघन गाय के, सुखपाय के आनन्द लही।४।
कन्नौज के एक दास दामोदर, संभलवार ही सुख लहों।
एक पद्मनाभ विसाल प्रति कवि, कौन को समता कहों।५।
रघुनाथ, तुलसां पार्वती के, गुण कहो चित लायके।
एक रामदासजी बडे भीतरिया, लसत रजो चायके।६।
तहाँ सेठ पुरुषोत्तम कहो, गोपाल बेटा रुकिमिनि।
तहाँ सारस्वत एक रामदासजी, कहों अम्मा क्षत्राणी।७।
सुमरों गदाधरदास वेणीदास, माधवदास को।
हरिवंश पाठक जानिए गजनघावन गोविंददास को।८।

१ वल्लभीय सुधा वर्ष ३ अंक ३

जहाँ ब्रह्मचारीदास नारायण, महावन में बसें।
तहाँ सेठ दिनकरदास कायस्थ, दास दिनकर जग लसे।९।
कायस्थ मुकुन्दही सुमरिए जु, मुकुन्दसागर जिन कियो।
कहिए जलोटा प्रभुदास ही, एक मन निश्चय हियो।१०।
सिहनदवासी भक्त उत्कट, भाट एक प्रभुदास है।
क्षत्रीजु पुरुषोत्तमदास सोभित, राजघाट निवास है।११।
कायस्थ बरनों त्रिपुरदास ही भक्त रत्न उदार है।
जैमल पूरणमल्ल सोभित, यादवेन्द्रदास कुम्हार है।१२।
के भट्ट माधो कास्मीरी, लिखी जिन सुबोधिनी।
वरनों गुसांईदास के गुण, दया सागर वर्द्धिनि।१३।
पद्माजु रावल वरन हों, जोषी कहो पुरुषोत्तम।
जगन्नाथ जोषी सुमिर हो, श्री रामदासजी उत्तम।१४।
गोविन्द दुबे बडाली के कृष्णदास अधिकारी कहो।
प्रोहित जु मीराबाई के भज रामदास ही सुख लहो।१५।
बुलाजु मिश्र सारस्वत, एक रामानन्द पंडित गनो।
एक वैष्णव विष्णुदास छीपा, जीवदास कृपा घनो।१६।
भगवानदास सीहोत्तरा, कवीराज भाट बडे भए।
लघु एक पुरुषोत्तमदास महामति, धीरज अनवसर सहे।१७।
अब कहों श्री गोपालदासजी नरोडा जाके छंद है।
और क्षत्री एक जु सेठ चोपड़ा, जनार्दन आनन्द हैं।१८।
श्रीमदनगोपाल प्रकट नारायण, सदन ही में अवतरे।

\+ \+ \+

गरुडस्वामी परम कहिए, देवा कपूर बिराजही।
श्रीललितलाल त्रिभंग मूरत, मोद सों जहाँ राजही।१९।
क्षत्री कन्हैयाशाल नरहरीदास, ब्राह्मण बरनिए।
श्लोक उत्तमदास कही, हरीदास पुष्कर्णा कहीए।२०।
सुनो अब चोहाण बड़े एक रामदास कहावही।
प्रथम बादरायण भट्ट जनार्दन पावही।२१।
राजादुवे माधोदुबे द्वै विप्र उनके संग लसे।
व्यास राणादास पिताम्बर मुकुट मणि रसमय असे।२२।
गोपालदास ब्रजवासि, जटाधारी महा अनुभव झरे।
गोरजा समराइ कहो, नंदलाल जिनपर ढरे।२३।
कहि सूर हरमानंद छकड, वासुदेव बखाणिये।
बाबाजु वेणु कृष्ण जादवदास के, गुण गाइए।२४।
भागो जु क्षत्राणि कहो, एक अच्युन आनन्ददास है।
दूजे जी अच्युतदास द्विजवर, हरिचरण विश्वास है।२५।
आनन्द विश्वंभरदास, श्यामसुतार के गुण गाइए।
बासी अडेल सदा निरंतर, सुन्दर हरि मन लाइए।२६।

दिवान ठठ्ठाको नारायणदास प्रगट लुवाण है ।
माता कहिए सिंहनद क्षत्राणी पुत्र वत्सल गान है ।२७।
कहे संतदास महा विरल आसक्त नित गिरिधरन सों ।
आनन्द जगतानन्द द्विजवर दिनकर हरि शरण सों ।२८।
कुंभनदास महारसमत्त जिन प्रीत प्रभु सों सची ।
कृष्णदास ग्वाल कहिए, जिन गौ नाहर तें बची ।२९।
ए भक्त चौरासी भए, तब स्याम स्यामा गाइए ।
बिनति सुनो 'अलीखान की' ब्रजवास कब धों पाइए ।३०।
अब जात दिन बीते सबै मेरी आस कब धों पूरही ।
के दीन या जगमाँझ निशदिन त्रासहि में घूमही ।३१।
ये भक्त जन सों हेत ताही छिन तुम्हें जानही ।
जब दीनको गिरिराज वृन्दाविपिन के सुख मानहीं । ३२

लेखक–अलीखान,

भाषा–हिन्दी,

विषय–८४ वैष्णवों की नामावली, शरणकाल–१६३४ ।

अलीखान के दूसरे पद भी मिलते हैं ।

इसमें चौरासी वैष्णवों की नामावली है श्री गुसांईजी के समकालीन कवि की रचना होने से यह महत्वपूर्ण है ।

अलीखान का समय—गोकुल में मोरवाले मंदिर के बगीचे (रमणरेती) में इनकी छतरी है । इस छतरी के सामने ही रसखान की छतरी है । यह श्री गुसांईजी के सेवक थे इसलिए इनका शरणकाल संवत् १६४२ से पूर्व ही होना चाहिए । इनकी बेटी की वार्त्ता से यह सिद्ध होता है कि यह युवावस्था में ही शरण आए थे । इसके अतिरिक्त इनके नित्य कथा सुनने आने के प्रसंग से उस समय श्री गुसांईजी का स्थायी रूप से गोकुल में रहना प्रतीत होता है और यह अकबरी दरबार के परगनाधीश थे । वार्त्ता में लिखा है कि इसने श्री गुसांईजी के वारी को पत्ते तोड़ने की आज्ञा दे दी थी और उसको 'बड़े घर' का कहा था । इससे यह ध्वनि निकलती है कि यह घटना श्री गुसांईजी के शाही दरबार में सम्मानित होने के पीछे की होनी चाहिए और श्री गुसांईजी के राजकीय सम्मान का समय है सम्वत् १६३४ से १६३८ तक का । इसलिए यह घटना इसके पीछे या इस समय की ही होनी चाहिए । श्रीमती शोभा मांजी कृत वनयात्रा की पुस्तक में श्री गुसांईजी की एक संवत् १६३४ की "वनयात्रा" का उल्लेख है । उसमें उस समय ही अलीखान के शरण आने की बात लिखी है ।

इसके अतिरिक्त दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १६० (भाव प्रकाश) में एक और सम्वत् १६२८ की वनयात्रा का उल्लेख है । यह वार्त्ता डाकौर संस्करण या मुंबई संस्करण में नहीं है । जगतानन्द कवि रचित 'वनयात्रा' में श्री गुसांईजी की एक वनयात्रा का उल्लेख है जिसका समय सम्वत् १६२४ है । श्री गुसांईजी की प्रथम वनयात्रा सम्वत् १६०० की एक स्वतंत्र पुस्तक है जो मथुरा के लिथो प्रेस से छप चुकी है । इन यात्राओं के आधार पर उनका शरण संवत् संदिग्ध रहता है पर यह निश्चित है कि यह सम्वत् १६२८ में शरण आ चुके थे । यह सूचीपत्र इनके शरण में आने के पीछे की रचना है इसमें तो सन्देह ही नहीं इसलिए

इस पुस्तक का रचनाकाल सम्वत् १६४२ के पश्चात् ही ठहरेगा क्योंकि श्री गोकुलनाथजी ने चौरासी भक्तों की नामावली को निश्चित किया था ।

सूचीपत्र की सूची

(१) दामोदर (२) कृष्णदास मेघन (३) दामोदरदास (४) पद्मनाभ (५) रघुनाथ (६) तुलसां (७) पार्वती (८) रामदासजी (बडे भीतरिया) (९) रजो (१०) सेठ पुरुषोत्तमदास (११) गोपालदास (१२) रुकमनि (१३) रामदासजी सारस्वत (१४) अम्मा क्षत्राणी (१५) गदाधरदास (१६) वेणीदास माधवदास (१७) हरिवंश पाठक (१८) गज्जन धावन (१९) गोविंददास (२०) नारायणदास महावन (२१) सेठ दीनकरदास (२२) दीनकरदास मुकुन्ददास (२३) प्रभुदास जलोटा (२४) प्रभुदास भाट (२५) क्षत्री पुरुषोत्तमदास (आगरा के) (२६) त्रिपुरदास (२७) पूरणमल (२८) यादवेन्द्रदास (२९) माधोभट्ट (३०) गुसांईदास- (३१) पद्मारावल (३२) पुरुषोत्तम जोषी (३३) जगन्नाथ जोषी (३४) रामदासजी (३५) गोविंद दुवे (३६) कृष्णदास अधिकारी (३७) रामदास प्रोहित (३८) बुलामिश्र (३९) रामानन्द पंडित (४०) विष्णुदास छीपा (४१) जीयदास (४२) भगवानदास (४३) कविराजभाट (४४) लघु पुरुषोत्तमदास (४५) गोपालदासजी नरोडा (४६) जनार्दनदास चोपड़ा (४७) नारायण (४८) गरुड स्वामी (४९) देवा कपूर (५०) कन्हैयाशाल (५१) नरहरिदास (५२) उत्तमश्लोकदास (५३) हरिदास पुष्करण (५४) रामदास (५५) बादरायण (५६) जनार्दन (५७) राजादुवे माधोदुवे (५८) राणा व्यास (५९) पितांबर दास (६०) गोपालदास ब्रजवासी जटाधारी (६१) गोरजा समरार (६२) सूर (६३) परमानंद (६४) वासुदेवदास छकडा (६५) बाबा वेणु, कृष्णदास जादवेन्द्रदास (६६) भागो क्षत्राणी (६७) अच्युतदास (६८) आनन्ददास (६९) अच्युतदास (७०) आनन्द विश्वंभरदास (७१) श्याम सुतार (७२) नारायणदास दीवान (७३) सिंहनंद क्षत्राणी (७४) संतदास (७५) आनन्द (७६) जगतानंद (७७) दीनकर (७८) कुंभनदास (७९) कृष्णदास ।

इस सूचीपत्र में ८४ के पाँच वैष्णव नहीं हैं।

गंगाबाई

पुस्तक—'वल्लभ कुल को प्राकट्य'
लेखनकाल—१६८० से पूर्व,
विषय—श्री वल्लभवंश परिचय,
प्रकाशित—'षट् ऋतु वार्त्ता'—संदेश प्रेस, अहमदाबाद ।

इस पुस्तिका में श्री महाप्रभुजी और गुसांईजी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का संवत्वार नोट है । इससे श्रीनाथजी के स्वरूप की, महाप्रभुजी और गुसांईजी के चरित्र की पुष्टि होती हैं ।

ग्रन्थ परिचय—अथ श्रीमद्वल्लभ कुल को प्राकट्य लिख्यो है :—
श्री गंगाबेटीजी ने पत्र विष्णुदास को लिख्यो सो लिख्यते—

श्री हरिः । तैलंग देश में काकर कुंभ गाम है । तहाँ मूल पुरुष यज्ञनारायण सोमयागी । तत्सुत गंगाधर सोमयागी । तत्सुत गणपति सोमयागी । तत्सुत वल्लभभट्ट । तत्सुत लक्ष्मनभट्ट

तिनकी स्त्री लक्ष्मीजी नाम विधान इल्लम्माजी। तत्सुत श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु प्राकट्य चंपारण देशे। संवत् १५३५ शाके १४०० वैशाख वदि ११ दिने सोमवारे। वर्ष ५२ दिन ६७। सुख दरसन दियो है। संवत् १५८७ अन्तर्धान लीला दिखाई। असाढ़ सुदि ३ (लोक) त्याग किये। अक्का महालक्ष्मीजी स्त्री को नाम। तत्सुत दोय। प्रथम श्री गोपीनाथजी को जन्म संवत् १५६७ के भाद्रपद वदि १२। द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथजी को प्राकट्य संवत् १५७२ वर्षे शाके १४३७ प्रवर्तमाने पौष मासे कृष्ण पक्षे ४ घटी ६० हस्त नक्षत्र घटी २६ पल १४। उदयात् घड़ी ४–२१ समये धन संक्रांति अंस १ कला १४ समय प्राकट्य। वर्ष ७० दिन २८ लौ सुख दियो। संवत् १६४२ महावदि ७ आसुर व्यामोह लीला दिखाइ। श्री गुसांईजी के बहूजी २। प्रथम रुक्मिणी बहूजी, द्वितीय पद्मावती बहूजी। तत्सुत ७। प्रथम श्री गिरिधरजी को जन्म संवत् १५९७ के कार्तिक सुदि १२ बहूजी नाम श्री भामिनी बहूजी। दूसरे श्री गोविंदरायजी को जन्म, संवत् १५९९ के कार्तिक वदि ८। बहूजी को नाम श्री राणी बहूजी। तीसरे श्री बाल कृष्णजी को जन्म संवत् १६०६ के आसो वदि १३। बहूजी को नाम श्री कमला बहूजी। चौथे श्री गोकुलनाथजी जन्म संवत् १६०८ के मार्ग शीर्ष सुदि ७। बहूजी को नाम श्री पार्वति बहूजी। पाँचमे श्री रघुनाथजी को जन्म १६११ के कार्तिक संवत् सुदि १२। बहूजी नाम श्री जानकीजी बहूजी। छठे श्री जदुनाथ जी को जन्म संवत् १६१६ के चैत्र सुदि ६। बहूजी को नाम श्री महाराणी बहूजी। सातमे श्री घनश्यामजी को जन्म संवत् १६२८ के कार्तिक वदि १३। बहुजी को नाम श्री कृष्णावती बहूजी। तिनमें पुत्र ६ प्राकट्य रुक्मिणी बहूजी के गर्भ तें। और पुत्र १ श्री घनश्यामजी को प्राकट्य श्री पद्मावती बहूजी के गर्भ रत्न तें। एक सकल स्वरूप के जन्म दिवस को विस्तार लिख्यो है।

श्री हरिः। अब श्री आचार्यजी के सेव्य ठाकुर ७ घर पधारे सो लिख्यते—जतीपुरा की प्रति में यहाँ गंगा बेटी और विष्णुदासजी का उल्लेख है। अब प्रथम श्री नवनीत प्रियजी महावन में श्री जमुनाजी में ते प्रगटे। सो श्री आचार्यजी को प्राप्त भये (१) दूसरे ठाकुर श्री विट्ठलनाथजी सो काशी में एक ब्राह्मण को आज्ञा भई, श्री वल्लभ दीक्षित के घर पधराए। तब वह ब्राह्मण पधराय गयो। आज्ञा तें। जो तुम्हारे घर प्रकट होउंगो। (२) तीसरे ठाकुर श्री द्वारिकानाथजी कन्नौज में दरजी के घर सों पधराय ल्याये श्रीजी की आज्ञा ते श्री आचार्यजी ने पास बैठाए। कहे जो सामग्री उत्तम तें उत्तम समर्पियो। (३) अब चौथे ठाकुर श्री गोकुलनाथजी श्री अक्काजी पधराय ल्याये। श्री आचार्यजी के साथ आये तब पधरावत आए। (४) अब पांचे श्री गोकुलचन्द्रमाजी महावन ते पधारे। नारायणदास ब्रह्मचारी को सेवा दिये। (५) छट्ठे श्री मथुरानाथजी कोईला के घाट के मेखड में ते पधारे सो कन्नौज पद्मनाभदास ब्राह्मण के इहाँ श्री आचार्यजी ने पधराये। (६) सातई श्री मदनमोहनजी सो श्री आचार्यजी की माता इल्लम्माजी के पास हते तहाँ ते पधराए।

अब श्री गोवर्धननाथजी प्रकट भये सो श्री गोवर्धन पर्वत में संवत् १४४६ के श्रावण वदि ३ गाँठोली में गलरा गोरवा को आज्ञा भई। मै इहां हूँ। पाछे संवत् १५३५ में वैशाख वदि ११ कों मुखारविंद को प्राकट्य भयो। पाछे संवत् १५५६ में श्री महाप्रभुजी ने पाट बैठारे। पाछे संवत् १५५४ के वैशाख सुदी ३ पूरणमल ने मंदिर बनवायो सो वर्ष ४ लौ काम चल्यो। पाछे शिखर मात्र बाकी रह्यो। संवत् १५६३ के वैशाख सुदि ३ श्री गोवर्धननाथजी मंदिर में सिंघासन बिराजे। पाछे संवत् १६३० में श्री गुसांईजी शय्या मंदिर मणिकोठा बनवायो। सिरियाराज ने कियो। मोंह (सिलि) श्री गोवर्धननाथजी हुते।

अब श्री गोवर्धननाथजी के श्री अंग के तथा सब जगह के चिह्न हैं सो लिखत हैं। सुआ बीच। शैया मंदिर की ओर मुख ताके आसपास दोउ कोने में दोउ स्वरूप। दाहिने श्री हस्त के पास पीढक में मेढ़ा है। वाके नीचे फणिधर सर्प है। ताके नीचे चरण के पास गाय ३ हैं। तामें दोय प्रकट हैं। एक कंदरा में, मुँह बाहिर है। वा पर एक सर्प चल्यो जात है। बांई ओर एक सर्प है। ताके नीचे एक नृसिंहजी को स्वरूप है तथा पर्वत की शिला को भाव है। बांये चरन के पास मोर दो। पीछे पीठक समचौरस है। श्री अंग के चिह्न। शिखा को जूडा बीच है। श्री कर्ण सम हैं छेदयुक्त हैं। नाभि के भीतर छिद्र है। श्री कंठ के आभरन सहज हैं। दुलरी पर्यंत अंग या भाँति को। चिह्न हृदे विषे है। यज्ञोपवीत है। यज्ञोपवीत भीतर तीन मणि। दाहिनी जंघा उपर गांठि है। दाहिने श्री हस्त कटि प्रदेश पर मुठी बांधे हैं। बांये श्री हस्त सहज की नसन गुंजल है (१) दाहिने श्री हस्त के स्कंध के नीचे बाहु पर है। गुल्फते उपर हैं। चरनारविंद सम हैं। दाहिने हस्त को अंगुष्ठ उंचो है। उपर तें। नखभूषण तें नहीं। नीचे चरनारविंद तें अंगुल ४ पीठक आसन को उँचो हैं। दुलरी को फूँदना दाहिनी ओर है। वस्त्र लेखे सहज। सहज तो तनिया है। श्री हस्त में सहज के कडा है।

अब श्री नंदजू को उत्सव पोस सुदि ८, श्रीमदानंदजी को उत्सव माघ वदि ४।[1] श्री बलदेवजी को उत्सव मार्गशिर्ष सुदि १५। श्री यशोदाजी को उत्सव माघ सुदि ६ श्री चंद्रावलीजी को उत्सव भाद्रपद सुदि १०, श्री ब्रजमंगलाजू को उत्सव भाद्रपद सुदि १३, श्री ब्रजसोभाजू को उत्सव भाद्रपद वदि ३।[2]

श्रीजी आप कूख में प्रगटे सो उत्सव अगहन सुदि २। कार्तिक सुदि १० कंसलीला। मार्गशीर्ष सुदि १५ बछहरन लीला। संवत् १५८५ में श्री आचार्यजी श्री द्वारिकानाथजी के दरसन कों पधारे। संवतादि वैशाख सुदि ३ त्रेतायुगादि। माघ सुदि ७ द्वापर युगादि। कार्तिक सुदि ४ सत्युगादि आश्विन वदि १३ कलियुगादि।

श्री हरिः। श्री गुसांईजी ६ बेर गुजरात पधारे। (१) प्रथम तो संवत् १६०० में अडेल तें पधारे। (२) दूसरे संवत् १६१३ में अडेल तें पधारे। (३) तीसरे संवत् १६२१ में मथुरा तें पधारे। (४) चौथे संवत् १६२३ फाल्गुन वदि ७ श्रीनाथजी श्री गोवर्धन पर्वत तें श्री मथुराजी श्री गुसांईजी के घर पधारे। तब श्री गुसांईजी गुजरात हते। श्रीगिरिधरजी प्रभृति घर हते सो सेवा किए। पाछे वैशाख सुदि १४ के दिन निज मंदिर में पधारे। (५) पांचमी बेर संवत् १६३१ में श्री गोकुल तें पधारे। (६) छट्ठी बेर संवत् १६३८ में श्रीगोकुल तें पधारे। तब श्री गिरिधरजी संग हुते।

पाछे संवत् १६१६ के माघ वदि १३ श्री गुसांईजी पुरुषोत्तम क्षेत्र पधारे। तब साथ श्री रुक्मणीजी और श्री गिरिधरजी हुते। रासा सुतार साथ हुतो।

श्री गुसांईजी संवत् १६२१ में श्री गोकुलवास किये। कितनेक दिन पाछे मथुरा में रहे। पाछे फेर संवत् १६२८ के फाल्गुन वदि ७ को श्री गोकुलवास किये। सब बालक विराजमान। श्री गुसांईजी बृद्धावस्था अंगीकार किये।

इति श्रीमद्वल्लभ कुल को प्राकट्य सम्पूर्णम्।

---

१ मारू–१

२ मारू–१

वार्त्ता के कवियों के अंतस्साक्ष्य

(१) राजा आसकरन के वचनों से वार्त्ता प्रसंगों की पुष्टि राजा आसकरन के अपने पदों से उनकी वार्त्ता के वृत्त तथा सेवक होने की पुष्टि इस प्रकार होती है :—

जै श्री विट्ठलनाथ कृपाल
कलि के महापतित अघरासी अपने करिकै किये निहाल।
पुरुषोत्तम निज करले दीने ऐसे दानी महा दयाल।
आसकरन को अपनो करिकै पुष्टि प्रमेय वचन प्रतिपाल।

यह पद इनके शरणागत होने के समय का है।

गोकुल का पद :—

सब सुख को सुख मूल श्री गोकुल।
श्री वल्लभ विट्ठल को सर्वस्व कोउ न करै समतूल।
श्री गिरधर गउन के पालक भक्त करत हिय फूल।
सेवा सुमरन एक रस हरत त्रय दुख मूल।
घर-घर, कुंज-कुंज नाना विधि विविध लता रहीं भूल।
आसकरन की आशा पूरन करो श्री यमुना कूल।।[१]

(२) हृषिकेश आगरे के :—ऋषिकेश के स्वरचित एक पद में उनके शरण जाने का उल्लेख है जो दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता १३७ के उल्लेख का समर्थन करता है। उनके पद उनके कवि होने के प्रमाण हैं। उनके ठाकुरजी श्री मदनमोहनजी आज मथुरा में श्री दाऊजी के मंदिर में विद्यमान हैं। इन सबसे वार्त्ता के कथन की प्रामाणिकता असंदिग्ध रहती है।

परम कृपाल श्री वल्लभ नंद।
भक्त मनोरथ पूरन कारन भुवि पर आए आनन्दकंद।।
गिरधरलाल प्रगट दिखराए पुष्टि भक्ति दान किए।
हृषिकेश सिर सदा विराजो यह जोरी सुख चैन दिए।।

(३) कन्हैयालाल—आपका 'सब दुख मिटि गए मुख देखे' वाले पद से यह सिद्ध होता है कि चौरासी वैष्णव की वार्त्ता में कन्हैयालाल की वार्त्ता में आगरे से द्वारका जाने का जो प्रसंग है वह तथ्यपूर्ण है और यह श्री गुसांईजी के समय में वर्तमान भी थे।

(४) कान्हरदास—श्री विट्ठलनाथजू के चरण शरणं।
श्री वल्लभनंदनं कलिदुख खंडनं।
पूर्ण पुरुषोत्तम त्रयताप हरणं।
सकल दुख दारणं भवसिंधु तारणं।
जनहित लीला देह धरणं।
कान्हरदास प्रभु सब सुख सागरं भूतल दृढ़ भक्ति प्रकट् करणं।

(५) कृष्णदास अधिकारी—

इनकी वार्त्ता में श्री गुसाँईजी के साथ वैमनस्य का उल्लेख है उसका समर्थन इनके कई पदों से होता है :—

---

१ यह पद हस्तलिखित ग्रंथ—नित्यपद और आश्रय के पद संख्या ६ पृष्ठ ९८ कीर्तन, कन्हैया प्रभु पुष्टि पुस्तकालय मोडासा से प्राप्त हुआ है।

(१) 'ताहि कों सिर नाइए जो श्री वल्लभ सुत पद रज रति होय ।'

× × ×

कृष्णदास सुर तें असुर भये असुर तें सुर भए चरनन छोय ।[१]

(२) बलिहारी श्री विट्ठलेश की जिन जगत उद्धार्‍यो ।
माया सिंधु तें तारके भव पार उतारयो ।।
पाप पुन्य जिव दुष्ट को हृदय नाहिं बिचार्‍यो ।
कृष्णदास की बांह पकरि मारग में डार्‍यो ।।[२]

(३) श्रीनाथजी द्वारा अपराध क्षमा करने की पुष्टि :—
परमकृपालु श्री नंद के नंदन करी कृपा मोंहि अपनो जानि के ।
मेरे सब अपराध निवारे श्री वल्लभ की कानि मांनि के ।।
श्री जमुनाजल पान करायो कोटिन अघ कटवाए प्रान के ।
पुष्टि तुष्टि मन नेम अहरनिसि कृष्णदास गिरधरन आन के ॥[३]

(४) श्रीनाथजी के मंदिर से सम्बन्धित पद :—
भोगी भोग करत सब रस को ।
आसपास प्रफुलित मन फूले गावत भक्त सुजस को ।।
करत तहाँ टहल निरंतर कहत श्री राधा बस को ।
कृष्णदास ठाड़ो सिंहद्वारे पीवत प्रेम पीयूष को ।।[४]

(५) कृष्णदासजी के एक पद द्वारा महाप्रभुजी के विष्णु स्वामी संप्रदाय के अनुवर्तित्व की पुष्टि होती है और श्री महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के कथन की भी पुष्टि होती है ।

आरति वारति राधिका नागरी ।

× × ×

विष्णु स्वामि सु मतवर्ती श्री वल्लभ पद पद्म नमत कृष्णदास बड़ भागरी ।।[५]

(६) कृष्णदासी——कृष्णदासी के पद का उल्लेख कवियों के विवरण में है ।

(७) गोविंद स्वामी —गोविंद स्वामी ने महाप्रभुजी के प्राकट्य का संवत् १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी व रविवार गाया है :—

प्रगट भये—श्री वल्लभ प्रभु आनन्द बढ्यो अपार

× × ×

धन्य संवत् पन्द्रह सो पैंतीस माधो मास ।
कृष्ण पक्ष एकादसी नक्षत्र वार सु प्रकास ।।[६]

यही संवत् महाप्रभु की प्राकट्य वार्त्ता में मिलता है ।

---

१ नित्य कीर्तन संग्रह भाग ३ लल्लूभाई द्वारा प्रकाशित ।
२ नित्य कीर्तन संग्रह भाग ३
३ कांकरौली के संग्रह की हस्तलिखित प्रति
४ वर्ष उत्सव के कीर्तन संग्रह भाग १ से
५ नित्य कीर्तन संग्रह भाग ३
६ लल्लूभाई छगनलाल द्वारा प्रकाशित वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह की पुस्तक से ।

(८) चतुर्भुजदास—चतुर्भुजदासजी के एक पद में श्रीनाथजी के मथुरा पधारने का वर्णन इस प्रकार है :—

श्री गोवरधन वासी सांवरेलाल तुम बिन रह्यो न जाय हो

× × ×

जुग जुग अविचल राजिए लाल यह सुख सैल निवास ।
श्री गोवरधनधर रूप पर बलिहारी चतुर्भुजदास ।

यह प्रसंग श्रीनाथजी की प्राकट्य-वार्त्ता में और चतुर्भुजदास की वार्त्ता में भी आया है ।

(९) चतुरानागा—बैठक चरित में (कोकिल वन की बैठक में) चतुरानागा का प्रसंग है । उसमें उसका श्री गोकुलनाथजी का सेवक होना लिखा है । इसकी पुष्टि स्वयं चतुरानागा के इस पद से होती है :—'धमार'

हो मेरे ललना प्रथम प्रणाम करौं श्री वल्लभ सुमिरौं श्री विट्ठलनाथ हो ।
हिली मिल झुरमुट खेलिए हो हो मेरे ललना ।
घर आवो रंगीले नाह हो नेक होरी श्री वल्लभ साथ हो ।
हिल मिल झुरमुट खेलिए हो ।

(१०) चतुरविहारी—इनका एक पद साम्प्रदायिक शृंगार सूचक मिलता है । जिससे उनका सम्प्रदाय में होना सिद्ध है और २५२ की २४८ वार्त्ताओं के प्रसंग की इससे पुष्टि हो जाती है ।

पद :—बांकि भौंह टेढ़ी पाग पियरे अनुराग पियरे 'पिछोरा' मध्य झलकत 'तनियाँ'
निसि के उनीदे नैन तोतरात मीठे बैन काजर की रेख माल छूटी 'लर' मनियाँ ।
'जावक' लग्यो लिलाट सजि के सुरत नाट खुले न कपाट कोई कपटी के मनियाँ
मोय तजि रहो न्यारे सुनो गिरधारी प्यारे ताई पै जो सिधारो क्यों न ताहीं
निस वनियाँ

सुनि त्रिया वचन रसिक धाय लिए आनन्द विनोद किए प्रेम भगनियाँ ।
गिरधारी गोकुलेश रससों भीजें विशेष 'चतुर' को चित्त चोरयो चतुर चिकनियाँ ।[1]

साम्प्रदायिक शब्द :—(१) पिछौरा—बिना लाँग की धोती दो छोर लटकती हुई ।
(२) तनिया—लंगोटा ।
(३) गोकुलेश गिरधारी—गोकुल के ठाकुर ।

इनका श्री विट्ठलनाथजी के स्वरूप विषयक पद यह है—'चतुराई ताकी साँची········'

(११) छीत स्वामी—शरण आने का पद । इस पद से उनके वार्त्ता में दिए हुए शरण आने वाले प्रसंग की पुष्टि होती है :—

पद :— भई अब गिरधर सों पहचान ।
कपट रूप धरि छलिबे आयो पुरुषोत्तम नहिं जान ।
छोटो बड़ो कछू नहिं जान्यो छाय रह्यो अज्ञान ।
छीत स्वामि देखत अपनायो श्री विट्ठल कृपानिधान ।

---

१ नित्य कीर्तन संग्रह ।

एक दूसरा पद है जिससे वार्त्ता के उस कथन की पुष्टि होती है जिसमें उन्होंने धन के लिए कहीं भी जाना और किसी से मांगना नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

पद :— 'जांचौ श्री विट्ठलनाथ गुसांई।
मन क्रम वच मेरे श्री विट्ठल और न दूजौ सांई।
और जांचे जननी लाजे करों इनके मन भाई।
छीत स्वामि गिरधरन श्री विट्ठल तन त्रय ताप नसाई।'

श्री विट्ठलेशजी के गोवर्धन, गोकुल और मथुरा निवास का जो उल्लेख वार्त्ता-साहित्य में है उसकी पुष्टि भी इनके पदों से होती है।

"श्री वल्लभनंदन की बलि जाऊँ।
जे गोवरधन बसत निरंतर गोकुल जिन को गाऊँ।
जे द्वारावति यदुकुल नायक मथुरा जिनको ठाऊँ।
जे वृन्दावन केलि करत हैं देखत छबि न अघाऊँ।
वामन रूप छल्यो बलि राजा ताके चरन चित लाऊँ।
'छीत स्वामि गिरधरन श्री विट्ठल कहियत जाको नाऊँ।

(१२) जीवनदास :—जीवनदास का पद कवियों के वृत्तांत में लिखा गया है जिससे मेघ रोकने वाले वार्त्ता-प्रसंग में श्री महाप्रभुजी की जिस विशेषता का उल्लेख किया गया है उस से भक्ति-भावना की पुष्टि होती है।

पद :—'श्री वल्लभ पद कमल के बल काहु न मन में आनों' इत्यादि।

(१३) यदुनाथ :—यदुनाथ जौनपुर वाले के पद भी कवियों के वृत्तांत में दिए गए हैं। जिससे इनके नाम और वृत्त की पुष्टि होती है।

(१४) तुलसीदास जलघरिया :—यह श्री गुसांईजी के सेवक थे और इन्होंने बहुत सी बधाइयाँ भी गाई हैं। उनमें से निम्नलिखित बधाई से उनके सेवक होने की पुष्टि होती है :—

'श्री वल्लभ गृह सदा बधाई।
जबते प्रकट भये श्री विट्ठल तबतें दास परम निधि पाई।
भक्ति भागवत कथा कीर्तन महा महोत्सव प्रगट गुसांई।
कल्पवृक्ष प्रफुल्लित सुखदाई नन्द सुवन वृन्दावन राई।।
परम भजन पुरुषोत्तम लीला प्रमुदित होत मुनिगाई।
लाल गोवरधनधारी पदरज 'लाल दास' बलिजाई।।' [1]

रामचरितमानसकार गोस्वामी तुलसीदास :—इनका जो उल्लेख श्री नन्ददास की वार्त्ता में है उसकी पुष्टि उनके स्वरचित इस पद द्वारा होती है :—

श्री रघुनाथ राम अवतार।
जानकी जीवन सब जग बंदन खल मद हरन उतारन भार।
श्री गोकुल में सदा बिराजो बचन पीयूष काम निरवार।
तुलसीदास प्रभु धनुष बाण धरौ चरनन देहों सीस तब डार।'

इस प्रसंग की पुष्टि के लिए कांकरौली विद्या विभाग सरस्वती भंडार की बंध संख्या ३/२ पृष्ठ ९० पर एक और पद है :—

जे कहावत हैं सेवक निज द्वार के।
धरौ सम्हारि पन्हैया ताकी श्री वल्लभ राजकुमार के।
चरणोदक की करौं लालसा मन बच क्रम अनुसार के।
तुलसी के सुख को वरनन करि कौन सकै संसार के।[1]

तुलसीदास के श्री गुसांईजी से मिलने का उल्लेख श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों में भी है। सम्प्रदायकल्पद्रुम में इनके श्री गुसांईजी से प्रभावित होने की स्पष्ट सूचना मिलती है। इस प्रसंग पर "वार्त्ता-साहित्य के आलोचकों के उत्तर" वाले प्रकरण में विस्तार से विचार किया गया है। तुलसीदासजी के प्रकाशित साहित्य में भी शुद्धाद्वैत और निर्गुण पुष्टि भक्ति का प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

'बरनौं अवध श्री गोकुल ग्राम' यह पद दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में है और वर्षोत्सव के कीर्तन संग्रह में भी है।

गोस्वामी तुलसीदासजी के कवित्त

(१) जिय जानौ हों जाऊं जहाँ सुख कौं सुन हो 'तुलसी' तिहुँ बार दह्यो है?
दोष न काहु किये अपने सपने न कहूँ सुख लेस लह्यो है।
राम के नाम तें होय सो होउ उनसों न हिए रसनाहु कह्यो है?
कियो न कछू करिए न कछू करिबो न कछू मरिबोई रह्यो है।[2]

(२) दीनदयाल दया करिहैं भवसागर को सुख ही तरि जैहैं।
जा उर में यह नाम महाधन ता उर नाहिन और बसें हैं।
मांगत है नर पावत नाहिन औचक ही तुलसी प्रभु दैहैं।
काम कहा मोहि पारस सों जो पै आरत सों रघुनाथ चितैहैं।[3]

(३) को भरिहैं हरि के रितएं रितवैं तेंहि को जेहि वे भरि हैं।
उथपैं तेंहि को जेंहि राम थपैहैं, थपै तैहि को, जेहि वे हरि हैं।
तुलसी यह जानि हिए अपने सपने नहिं कालहुतें डरिहैं।
कुमया कछू हानि न औरन की जो पै जानकीनाथ कृपा करिहैं।[4]

इसमें कृपा शब्द और ईश्वर की अतुल सामर्थ्य पुष्टिमार्ग की दृष्टि से विचारणीय है।

(१५) ताज :—ताज की श्रीनाथजी के प्रति श्रद्धा का उल्लेख भावसिंधु में है। इसकी पुष्टि उसके अपने पदों से होती है :—

दूहा—(१) प्रीतम बसे पहाड़ पै हम यमुना के तीर।
अबको मिलनो कठिन है पांवन परी जंजीर।
(२) अगर आगरे मों रह्यो गिरि पर बसे मों नाथ।
तोरि जंजीर हि जोम सों हों प्रीतम के पास।

---

१ छगन भाई बहादुरपुर वाले की हस्तलिखित कीर्तन की पोथी में से यह पद लिया गया है। यह पोथी श्री पुरुषोत्तमदास देसाई बहादुरपुर वाले के पास सुरक्षित है।

२ ५।१।३।४५ वि० वि० कांकरौली

३ ५।१।३।५० कांकरौली विद्या विभाग

४ कांकरौली विद्या विभाग बंध ५।१।३।४५

शुद्धाद्वैत वर्ष ६ अंक ६ पृष्ठ २६७ में पर ताज का एक अप्रचलित पद इस प्रकार प्रकाशित हुआ है :—

चलो री भैना गोरस बेंचन क्यों ऐती करत अबार।
मो गृह काज योंहि पर्यो है लौटेंगी फेरि कबै सबार।
को पेंडो परि है सूधो जौ नाहिं मिले नटवार।
'ताज' को प्रभु तुरत दिखायो, 'आयो' कहि, ठाढी रहै गंवार।

(१६) तानसेन—इनके प्रसंगों की पुष्टि इनके पदों द्वारा होती है इसे कवियों के प्रसंग में लिखा गया है।

(१८) धोंधी—इनके पदों का उल्लेख 'वार्त्ता के कवियों' के प्रकरण में किया गया है।

(१६) नंददास—इनके अनेक पद उनकी वार्त्ता के प्रसंगों की पुष्टि करते हैं जिनके उद्धरण 'अष्टछाप' और 'वल्लभ सम्प्रदाय' तथा 'सूर निर्णय' में हो चुकी हैं। जिनमें यह पद :—

प्रीति लगी श्री नंदनंदन सों इन बिनु रह्यो न जायरी।
सास ननद कौ डर लागत है जाऊँगी नैंन बचाय री।

प्राचीन हस्तलिखित कीर्तन की पुस्तक जो श्री पारिखजी के निजी संग्रह से प्राप्त है, बड़ी महत्वपूर्ण है।

(२०) नारायणदास—(कवि) श्री गुसांईजी के इस नाम के एक शिष्य कवि रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका उल्लेख वार्त्ताओं में नहीं है पर कीर्तन की पुस्तकों में इनके बहुत से पद मिलते हैं। इनका बनाया हुआ 'व्याहुला' प्रसिद्ध है। और 'बारामासी' 'सूर सागर' के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित संस्करण के पच्चहत्तरवें पृष्ठ पर है। पद इस प्रकार है :—

भक्ति श्री गोकुल तें प्रगट भई।
पहिले करी श्री वल्लभनंदन फिर औरन सिखई।
चार्यो बरन सरन करि अपने विधि सों बांट दई।
श्री विट्ठलेश प्रताप तेज तें तीनों ताप गई।
प्रगट हुते द्वैत प्रेत अधर्मी तिनहू माँग लई।
अब उधरे कहते मुख अपने पत्री लिखि पठई।
श्री वल्लभ श्री विट्ठल इनकी प्रीति सही।
नव प्रकार आधार नारायण घोष लोग निबही।

इस उद्धरण से भी हतित पतित के उद्धार की पुष्टि होती है।

(२२) पृथ्वीसिंह—इनका उल्लेख कवियों के प्रकरण में तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रकरण में है। इनके पदों से इनके सम्बन्ध की सूचना मिलती है और वार्त्ता के वृत्त को बल मिलता है।

पद :—'सब दोष सहित, विट्ठलेस बिनु हंस गमनि त्रिय दोष हठ' इत्यादि

(२३) भगवानदास—श्री गुसांईजी के सेवक थे और कवि थे इनके सम्बन्ध में भी कवियों के प्रकरण में लिखा गया है।

(२४) भीम—श्री गुसांईजी के सेवक थे और कवि थे इनके सम्बन्ध में भी कवियों के प्रकरण में लिखा गया है।

(२५) माणिकचंदजी—इनकी वार्त्ता में इनका पद जो है उससे इनकी वार्त्ता की पुष्टि होती है वह पद कवियों में जहाँ इनका उल्लेख है वहाँ उद्धृत है।

(२६) माधोदास—श्री गुसांईजी के सेवक थे इनके एक गुजराती पद से श्रीमहाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता के कई प्रसंगों की पुष्टि होती है :—

जै जै श्री वल्लभ राया
वेद तो भेद सकल गाया
निज जन ए रस भ्रम नाह्या। कि जै जै०
पावन करवाने प्रीति प्रगट करी वेद तणी रीति।
पंडित लीधा तें सहु जीति॥ कि जै जै०
बाद कणो कासी माहे शैवी सर्व मल्या ताहे
जीतमा बलवंता बाहे॥ कि जै जै०
दक्षिण देश बिजै कीधो माया मत चूरण कीधो।
शत मण सुर्वण नव लीधो॥ कि जै जै०
ग्रोडछा देश ग्रानन्द कीधो उत्तर दैवी यश लीधो।
सेवा मारग सघ कीधो॥ कि जै जै०
जीत्या पुरुषोत्तमपुरी मायावाद रह्या झुरी
एक न नभियो ग्रासुरी॥ कि जै जै०
बीना देश ग्रनेक फरया, दैवी चरण माँ धरया।
माधवदास कहे ग्रधम तरया॥ कि जै जै०

इस पद से काशी, दक्षिण (विद्यानगर) कनकाभिषेक का प्रसंग, ग्रोडछा का घट सरस्वती वाला प्रसंग ग्रौर पुरी के शास्त्रार्थ के प्रसंग की पुष्टि होती हैं।

गोपालदास रूपपुरा वाले

वल्लभाख्यान—लेखक–गोपालदास रूपपुरा वाले, रचनाकाल—१६३८, प्रकाशित—ग्रहमदाबाद, भाषा—गुजराती, काव्य विषय—वल्लभ विट्ठल चरित्र।

इस पुस्तक में नौ ग्राख्यान हैं। प्रथम ग्राख्यान में ब्रह्मवाद सम्प्रदाय की पुष्टि ग्रौर नित्य लीला का वर्णन है। दूसरे में ग्राचार्यजी का चरित्र है। तीसरे में श्री गुसांईजी का प्राकट्य वर्णन है। चौथे से ग्राठवें ग्राख्यान तक के विषय मिश्रित हैं। इनमें श्री विट्ठलेश चरित्र ग्रौर स्वरूप ग्रादि सब एक साथ मिलाकर लिखे गए हैं। नवमें ग्राख्यान में वंश वर्णन है। इस ग्रन्थ से वार्त्ता-साहित्य के निम्नांकित कथनों की पुष्टि होती है :—

महाप्रभुजी का प्राकट्य—दिग्विजयार्थ परिक्रमा—पत्रावलंबन नामनिवेदन का उल्लेख ग्रंग, बंग, कलिंग, कैकट, मागध, सूर, सिंध ग्रादि प्रदेशों का भ्रमण—कनकाभिषेक—पांडुरंग से ब्याह की ग्राज्ञा—वृन्दावन गमन—गोपीनाथजी बलदेव, विट्ठलनाथजी कृष्ण—केशी घाट पर सुबोधिनी की कथा—चुनार यात्रा तीसरे ग्राख्यान में श्रीगुसांई के प्राकट्य के ग्रानन्द का ग्रलौकिक वर्णन है। चौथे ग्राख्यान में यह उल्लेख महत्वपूर्ण है कि इन्होंने चारों वर्णों को सेवा में सम्मिलित किया। पाँचवे ग्रौर छठे ग्राख्यान में ग्रलौकिक वर्णन है। सातवें ग्राख्यान में श्रीनाथजी सेवा का कुछ प्रकार (भोग, राग, शृंगार) वर्णित है। ग्राठवें में ब्रह्मवाद निर्माण ग्रौर पुष्टि-भक्ति का उत्कर्ष ग्रौर राज वर्ग द्वारा सम्मान, हतित पतित का उल्लेख है। नवें ग्राख्यान में सात बालक, चार बेटी ग्रौर पौत्रादि का संकेत है।

इन पुस्तकों के जो उद्धरण ऊपर दिये गये हैं उनसे वार्त्ता-साहित्य के अनेक प्रसंगों की पुष्टि होती है और उनका समर्थन होता है। इन अन्तरसाक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथजी तथा अन्य प्रसिद्ध कवि और लेखकों के समकालीन साहित्य द्वारा वार्त्ता के वृत्त की पुष्टि होती है। वार्त्ता के वृत्त को उत्तरकालीन पुष्टिमार्गीय साहित्य का भी समर्थन प्राप्त है। उत्तरकालीन साक्ष्य के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह किसी प्रचलित साम्प्रदायिक परम्परा का अनुसरण मात्र है पर समसामयिक साहित्य द्वारा पुष्ट इतिवृत्तों के सम्बन्ध में शंका करने के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता है। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि वार्त्ता के प्रसंग कपोल कल्पित नहीं हैं और न किसी गुजराती शिष्य की कृपा का फल है। वे पुष्टि सम्प्रदाय के इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं, जिन्हें सम्प्रदाय के बाहर इस दृष्टि से नहीं देखा गया है। इसमें कुछ दोष सम्प्रदाय वालों का भी है। इन्होंने अपने सभी इतिवृत्त को अधिकारी को देने का ही आग्रह सदा रक्खा है और उसे सदा 'गोपनीय' और 'अति गोपनीय' कहा है। मध्यकालीन साहित्य का वार्त्ता-प्रसंग के मेल में होना विचारणीय है। उसकी भाषा में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। इतिवृत्त में भी एकरूपता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि यह प्रसंग सम्प्रदाय में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे और कवियों द्वारा अमर कर दिये गये हैं। किसी कवि की रचना में कोई घटना तभी स्थान पाती है जब वह जनसाधारण में प्रचलित हो जाती है अथवा कवि विशेष उसे ऐसा महत्व देना चाहता है कि वह विशेष से सामान्य रूप धारण करले और अपनी उपयोगिता का प्रसार करे। वार्त्ताओं के जो प्रसंग इन कवियों या लेखकों की रचनाओं में प्राप्त हुए हैं उनके सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है और इनके आधार पर वार्त्ता-साहित्य को सम्प्रदाय में प्रामाणिक सिद्ध किया जा सकता है। अन्तस्साक्ष्य का प्रमाण सबसे अधिक प्रामाणिक होना चाहिये।

मध्यकालीन तथा अन्य समकालीन ग्रंथों के आधार पर प्रामाणिकता तथा ग्रंथ परिचय

प्रमाण ग्रन्थ

(१) सम्प्रदाय प्रदीप—

लेखक— गदाधर मिश्र

लेखनकाल— संवत् १६१०

विषय— कृष्णचरित्र, वल्लभ चरित्र शास्त्र निर्णय इत्यादि

प्रकाशित — कांकरौली संवत् १६६१

रचयिता — गदाधर मिश्र

वार्त्ता-साहित्य के उल्लेख —

(१) आचार्यजी का प्राकट्य

(२) श्री लक्ष्मणभट्ट का निधन एवं विद्यानगर गमन

(४) विद्यानगर का शास्त्रार्थ

(५) कनकाभिषेक

(६) तुलापुरुष का दान

(७) द्रव्य समर्पण

(८) श्री विट्ठलनाथजी (ठाकुरजी) को सुवर्ण कटिमेखला भेंट

(९) पितृऋण मुक्ति

(१०) व्यास तीर्थ द्वारा प्रार्थना का अस्वीकार करना

(१२) बिल्वमंगल की प्रार्थना और स्वीकृति

(१३) बद्रिकाश्रम में वेद व्यास का मिलाप

(१४) हरिद्वार होकर थानेश्वर आगमन

(१५) रामानन्द का प्रसंग

(१६) सालिग्राम का प्रसंग

(१७) शंकर मिश्र, प्रभुदास का उल्लेख

(१८) पांचसौ योजन की प्रथम परिक्रमा ६ वर्ष में समाप्त हुई है।

(१९) तीन परिक्रमाएँ

(२०) श्रीमद्भागवत के गूढार्थ को प्रकट करने की स्वप्न में आज्ञा तथा श्रीव्यास वार्त्ता

(२१) कृष्णदास मेघन का उल्लेख

(२२) रामानन्द के पूर्व जन्म का उल्लेख

(२३) गार्हस्थ्य धर्म स्वीकार करने की भगवदाज्ञा

(२४) विवाह प्रसंग

(२५) पत्रावलंबन का प्रसंग

प्रदीप में आचार्य-चरित्र एवं आचार्य के सेवकों के प्रसंग

१—आचार्य प्राकट्य का विस्तार से वर्णन किया गया है

यह प्रसंग निजवार्त्ता, आचार्यजी की प्राकट्य वार्ता के अनुकूल मिलता है।

२—लक्ष्मणभट्टजी का निधन एवं विद्यानगर गमन

३—विद्यानगर का राज्य-सभा का शास्त्रार्थ और कनकाभिषेक

४—तुला-पुरुष का दान, द्रव्य समर्पण, श्रीविट्ठलनाथजी को सुवर्ण की कटिमेखला का समर्पण, पितृऋण चुकाना—

५—व्यास तीर्थ द्वारा मध्व सम्प्रदाय के अंगीकार की प्रार्थना और उसको अस्वीकृति

६—बिल्वमंगल द्वारा विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के अंगीकार की प्रार्थना और उसकी स्वीकृति

७—व्यास-आश्रम वेदव्यास का मिलाप।

८—हरिद्वार, कुरुक्षेत्र होकर थानेश्वर नगर में आना

९—रामानन्द का प्रसंग, सालिगराम का प्रसंग

ये दोनों प्रसंग आगे चलकर श्रीगोकुलनाथजी द्वारा संशोधित हुए

१०—शंकर मिश्र प्रभुदास का उल्लेख।

११—५०० योजन की प्रथम परिक्रमा छः वर्षों में समाप्त हुई

१२—तीन परिक्रमाओं का उल्लेख

१३—कृष्णदास मेघन का उल्लेख

१४—श्रीभागवत के गूढ़ार्थ को प्रकट करने की भगवदाज्ञा तथा व्यास वार्ता स्वप्न में

१५—रामानन्द के पूर्व जन्म का उल्लेख

१६—गार्हस्थ्य धर्म स्वीकार करने की भगवदाज्ञा थानेश्वर-काशी के बीच संशोधित हुआ श्री विट्ठलनाथजी के समय में ही

१७—विवाह प्रसंग

१८—पत्रावलम्बन का प्रसंग

१९—केशवभट्ट काश्मीरी के कथा सुनने का प्रसंग और माधवभट्ट का भेंट होना

२०—नारायण मिश्र का शिष्य होना

२१—गोवर्धननाथजी की स्थिति

२२—स्वामिनीजी का भोग लेकर मन्दिर में जाना

२३—ब्रह्मसम्बन्ध प्रकरण

२४—श्रीकृष्ण चैतन्य का मिलाप—अडेल का

२५— ,, ,, ,, —श्रीजगन्नाथपुरी का

२६—माधवभट्ट काश्मीरी का ग्रामाधिपति के बालक को जिलाना 'दयालु–समर्थस्य'–श्लोक

२७—राणा व्यास का प्रसंग

२८—रामानन्द का नामोल्लेख

२९—नारायणदास गोविन्ददास द्विवेदी और औदीच्य ब्राह्मण वत्साभट्ट का उल्लेख

३०—अच्युतदास (अच्युताश्रम) का सेवक होना

३१—श्रीगोपीनाथजी व विट्ठलनाथजी का जन्म संवत् १५६७–१५७२

३२—तीन परिक्रमा का उल्लेख
३३—प्रभुदास का उल्लेख
३४—ग्रंथों के नाम
३५—भगवदाज्ञा से लीलाधाम में आने की लीला
३६—अयोध्या का हनुमानजी वाला प्रसंग
३७—संन्यास और निजधाम गमन

सम्प्रदाय प्रदीप-कर्त्ता गदाधर मिश्र—श्री गोसांईजी के सेवक समय १६१० वि० उसमें निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, बैठक चरित्र एवं ८४ वार्त्ताओं के ये प्रसंग मिलते हैं—

१—श्री आचार्यजी के प्राकट्य का प्रसंग
२—कृष्णदेव राजा की सभा के शास्त्रार्थ का प्रसंग
३—कनकाभिषेक का प्रसंग
४—मध्वमार्ग ग्रहण का प्रसंग
५—बद्रिकाश्रम में व्यास समागम का प्रसंग
६—बिल्वमंगल के साक्षात्कार का प्रसंग
७—थानेश्वर में रामानन्द के अंगीकार का प्रसंग शालिग्राम और स्वरूप का प्रसंग
८—शंकर मिश्र अर्थात् प्रभुदास भट का प्रसंग
९—विवाह-आज्ञा का प्रसंग
१०—पत्रावलंबन का प्रसंग
११—केशवभट्ट, माधवभट्ट का प्रसंग
१२—नारायण मिश्र (कान्यकुब्ज) का प्रसंग
१३—श्री स्वामिनी का गोपीवल्लभ भोग आरोगने का प्रसंग
१४—ब्रह्मसम्बन्ध का प्रसंग
१५—कृष्ण चैतन्य मिलन प्रसंग
१६—माधवभट्ट का पुत्र-जिलाने का प्रसंग
१७—राणा व्यास की शरणागति का प्रसंग श्लोक सहित
१८—नारायणदास-गोविन्ददा द्विवेदी—पिता पुत्र के शरण का प्रसंग
१९—औदीच्य वत्साभट्ट का प्रसंग
२०—संन्यास ग्रहण का प्रसंग
२१—माधवभट्ट, प्रभुदास के देहत्याग का उल्लेख
२२—वाम बाहु कृत० श्लोक का प्रसंग
२३—गृह त्याग अग्नि प्रकोप का प्रसंग
२४—'शिक्षा श्लोक' का प्रसंग
२५—तिरोधान का प्रसंग

इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में लिखते हैं कि—

ततः पाश्चात्याः सास्वता ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च बहवः सेवका अभवन् । एकैकस्य चरितं गुणाश्च वर्षायुतेनापि वक्तुमशक्याः । तथैव प्राच्या दाक्षिणात्याश्चा ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि आचार्यजी के असंख्य सेवक थे और उनके चरित प्रसिद्ध

थे। किन्तु उन सबका वर्णन करना ग्रन्थकार के लिये असम्भव लगा। अतएव सं० १६१० तक आचार्यजी के असंख्य सेवक एवं उनके प्रसंग प्रसिद्ध थे यह इससे स्पष्ट होता है।

(२) वल्लभ चरित्र—

ग्रंथकार—मुरलीधरजी, श्री गुसांईजी के सेवक
प्रकाशित—वाडीलाल नगीनदास शाह, बम्बई
वल्लभाब्द—४३४+१५३५=१६६६।

८ पेज का संस्कृत ग्रन्थ (कांकरौली विद्या विभाग से प्राप्त) निर्माण काल संवत् १६२० है।

'नत्वाश्रीविट्ठलगुरुगोपीनाथांश सम्भवम्' से ग्रंथकर्त्ता का श्री विट्ठलनाथजी का सेवक होना सिद्ध है। यह समकालीन लेखक है। इस ग्रंथ से वार्त्ताओं के निम्नलिखित प्रसंगों को पुष्टि होती है :—यह प्रसंग इस ग्रन्थ में भी उसी प्रकार है जिस प्रकार निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता में।

(१) लक्ष्मणभट्टजी का लक्ष्मणबालाजी में शरीर छोड़ना

(२) दामोदरदास का शरण में लेना। 'दामोदरदास इति दास नामा करोत् विशाखा नगरमागतवन्तौ तेन भूपालेन कनकाभिषेक प्राप्यापि'

(३) विशाखानगर (विद्यानगर) में कनकाभिषेक

(४) गोवर्धननाथजी के प्राकट्य का प्रकार

(५) सद्दू पांडे

(६) पुरुषोत्तम श्रेष्ठी का शरण आना

(७) जगदीश यात्रा, शास्त्रार्थ, महाप्रसाद

(८) अजगर चींटी का प्रसंग

(९) विवाह

(१०) पंच पूजा

(११) द्वादस वन यात्रा (व्रज यात्रा)

(१२) श्री गोवर्धननाथजी की प्रतिष्ठा

(१३) गोविंददास (गज्जनधावन) का उल्लेख

(१४) श्री गोवर्धननाथ सहित आठ स्वरूपों का उल्लेख

(३) गोकुलनाथजी के समकालीन–कवि–श्रीनाथभट्ट,
पुस्तक--संस्कृत मणिमाला,
लेखनकाल—सत्रहवीं शताब्दी,
विषय—वार्त्ता-साहित्य,

प्रकाशित—हस्तलिखित --(कांकरौली विद्या विभाग सरस्वती भंडार बंध संख्या वार्त्ता-साहित्य सम्बन्धी उल्लेख :—

इस पुस्तक में चौरासी के बियासी प्रसंग मिलते हैं।

संस्कृत वार्त्ता—मणिमाला-श्रीनाथभट्ट

आकर्ण्येति यदा वृत्तमपदिष्टं परात्मना।
केयूरेगंडलक्षितेन श्रुतं गोस्वामि सेविता॥
गोप्यमित्यवबुध्यैव सेवकेन न कस्यचित्।
पुरतो भाषितं श्रीमद्गोस्वाम्यात्मजवल्लभे गोकुले॥

श्री गोकुलेशे समेतेन तिरात्वेकचित् ।
श्री गोकुलेश वचनामृतं या लिखतां सतां ।।
मुदोपभाषितागाथास्ता यथामति संस्कृताः ।
इति हि वल्लभ देवमहौजसां ।।
चतुरशीतिमिताः कथिताः कथाः ।
तदनुतत्सुतविट्ठलशर्म्मनामिह चतुर्युतविंशति संमिताः ।।
चतुरशीतिक भक्ति रसरज्ञुतेश्चसुरः ।
श्रीतिक भक्त कथा श्रुतेः ।
चतुरशीतिगणो भुविमुच्यते ।
चतुरशीतिक लक्षवियोनितः ।।
रसद्विश्वमूल तत्व स्वरूपिणां विट्ठलेश चरणानां ।
शरणमितानां श्रुत्वा तत्त्व कथाः स्यादतत्व निर्युक्तः ।
सद्वृत्ताष्टोत्तरशतमणिमाला वैष्णवानाम् ।
इति श्रीशाचार्यवर्यपद भक्तिमतामया ।
कृताया वैष्णव कथामालयात्मा प्रसीदतु ।

इति श्री विष्णुस्वामि मतानुवर्ति श्री वल्लभ पदपद्मपरागानुरागि महाशय महेश विप्र श्रीनाथ देवेश संस्कृतायां वैष्णव वार्त्तामालायां चतुरशीति वार्त्ता मणिकोत्तरे ससुमेरूपंचाविंशतिमोमणिः संपूर्णोयं वैष्णव वार्त्ता माला पूर्वार्द्धे श्रीमतीति उत्तरार्द्धेऽपि सा ।३७०७ ।

श्रीनाथभट्ट का समय पं० कंठमणि शास्त्रीजी के अनुसार संवत् १७७५ से १८३० सं० तक है किन्तु इनके जो पद कांकरौली विद्याविभाग सरस्वती भंडार की हस्तलिखित प्रतियों द्वारा श्री द्वारकादास परीख ने संग्रहीत किए हैं उनमें उनका श्री विट्ठलनाथजी का सेवक होना सिद्ध होता है ।

पद— प्रगटे श्री विट्ठल ब्रज के नाथ ।
पंच शब्द धुनि बजत बधाई निजजन भये सनाथ ।।१।।
मंगल कलस लिए ब्रज भामिनि गावत गीत सुगाथ ।
सकल मनोरथ भए 'नाथ' के निजपद धरे जु माथ ।।२।।

ऐसे अन्य भी कई पद प्राप्त हैं । इसलिए यह भी गोकुलनाथजी के ही समकालीन हैं । इसकी पुष्टि श्री विट्ठलनाथजी के संस्कृत पत्रों में इनके नाम के किये गये उल्लेखों से भी होती है । अतः वे श्री विट्ठलनाथजी के ही सेवक सिद्ध हैं ।

(४) श्री आचार्यजी की वंशावली—लेखक—केशवकिशोर (कवि)
लेखनकाल—सम्वत् १६८० के आसपास,
विषय—आचार्य चरित्र, श्री विट्ठलेश चरित्र,
भाषा—हिन्दी,
प्रकाशित—कांकरौली विद्याविभाग द्वारा ।

ग्रंथकार परिचय—यह गुजराती सज्जन थे जिन्होंने हिन्दी में रचना की थी । इनके कई पद मन्दिरों में गाए जाते हैं और कीर्तन संग्रहों में प्राप्त हैं । इस पुस्तक के अन्त में लेखक ने अपने विषय में इस प्रकार लिखा है :—

'श्री द्वारिकेशजी कृपा करी लीन्हों हौं अपनाय ।
श्री वल्लभ कुल की बेलि पर केसो किसोर बलि जाय ।'

श्री द्वारिकेशजी 'बालकृष्णजी (गुसांईजी के तृतीय पुत्र) के प्रथम पुत्र थे । इनके इस उद्धरण से यह श्री द्वारिकेशजी के सेवक सिद्ध होते हैं । इसके अतिरिक्त इन्होंने बालकृष्णजी और द्वारिकेशजी के प्राकट्य की बधाइयाँ गाई हैं जो आज भी कांकरौली में गाई जाती हैं ।

इस ग्रन्थ में सम्वत् १६७५ तक जिनका जन्म होगया था उन गोस्वामी बालकों का उल्लेख है इसलिए यह रचना सम्वत् १६७५ के पश्चात की प्रतीत होती है । सम्वत् १६८० में और उसके कुछ पीछे के कई बालक हैं पर उनका इसमें उल्लेख नहीं है । सम्वत् १६७५ के श्री गिरधरजी के पंचम पौत्र श्री रामकृष्णजी का इसमें उल्लेख है । अतः यह रचना सम्वत् १६७५ और सम्वत् १६८० के बीच रची गई प्रतीत होती है । कवि ने ग्रन्थ के अन्त में लिखा है :—

इते नाम गुन रूप है भये हमारी बारि ।
आगे भक्त हू बरनिए (श्री) वल्लभ कुल विस्तारि ।।

इस पुस्तक में निम्नलिखित बातें लिखी हैं —

(१) आचार्यजी के पूर्व पुरुषों का परिचय
(२) आचार्यजी का प्राकट्य संवत् १५३५
(३) परिक्रमा वर्णन
(४) श्रीनाथजी का प्राकट्य
(५) जगदीश के मार्ग में श्री महाप्रभुजी की श्री चैतन्य से भेंट
(६) कनकाभिषेक
(७) विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का अंगीकार
(८) श्री विट्ठलनाथजी के व्याह की आज्ञा
(९) रामानन्द पण्डित का प्रसंग
(१०) पत्रावलंबन
(११) अग्निरूप वर्णन (श्री आचार्यजी का)
(१२) श्री गोपीनाथजी और श्री विट्ठलनाथजी का प्राकट्य
(१३) श्री द्वारिकानाथजी का कन्नौज से पधारना
(१४) ब्रह्मसंबंध
(१५) नवनीतप्रियजी का नाम
(१६) कर्णाविल में मथुरानाथजी का प्राकट्य
(१७) नारायणदास और गोकुलचन्द्रमाजी
(१८) संवत् १६२८ फागुन वदी सप्तमी से श्री गुसांईजी का गोकुल निवास
(१९) छोकर में वैरागी के वटुआ का प्रसंग
(२०) सात बालक और उनके वंश का वर्णन
(२१) श्री गोकुल वर्णन
(२२) दो प्रेतों के उद्धार का प्रसंग ।

इस ग्रन्थ के जिन बाईस प्रसंगों का उल्लेख ऊपर हुआ है उनसे वार्त्ता-साहित्य के प्रसंगों की पुष्टि होती है और इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक उसके प्रचलन की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

(५) प्राकट्य सिद्धान्त—
लेखक—गोपालदास ब्यारा,
लिपिकाल—संवत् १७१०
विषय—महाप्रभुजी का प्राकट्य और श्री गोकुलनाथजी का चरित्र,
प्रकाशित—अहमदाबाद, अनुग्रह मासिक पत्र, वर्ष ४, अङ्क १, २ में प्रकाशित।
भाषा—गुजराती।

इस ग्रन्थ में ८४ और २५२ वार्त्ताओं के निम्नलिखित वैष्णवों के नाम मिलते हैं तथा निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता के भी अनेक प्रसंगों की पुष्टि होती है। चौरासी तथा दोसौ बावन के वैष्णवन के नामों की पुष्टि करने वाले नाम :—

(१) दामोदरदास हरसाणी (२) कृष्णदास मेघन (३) रामदास (४) जीवनदास (५) दिनकरदास (६) प्रभुदास जलोटा (७) कविराज भाट (८) प्रभुदास भाट (९) अच्युतदास (१०) गोविन्ददास (११) गोपालदास इटौंडा (१२) गोपालदास (१३) बाबावेणु (१४) घघरी कृष्णदास (१५) विट्ठलदास (१६) माधोदास (१७) गोरजा समराई (१८) नरहरि (१९) गदाधरदास (२०) गुसांईदास (२१) वासुदेव छकड़ा (२२) रामानन्द पंडित (२३) जगन्नाथ (२४) विष्णुदास छीपा (२५) गोविन्द दुबे (२६) माधो दुबे (२७) नरहरि जोशी (२८) नारायणदास (२९) जगन्नाथ जोशी (३०) जगन्नाथ की माता (३१) नरहरिदास (३२) जोशी पुरुषोत्तमदास (३३) राजा दुबे (३४) उत्तमश्लोकदास (३५) राणा व्यास (३६) रामदास (३७) मकुंददास (३८) पद्मारावल, (३९) दामोदरदास, संभर वाले (४०) पद्मनाभ कनौजिया (४१) तुलसा (४२) रघुनाथ (४३) पार्वती (४४) सेठ पुरुषोत्तमदास (४५) रुकमिनी (४६) गोपालदास (४७) रामदास सारस्वत (४८) हरिवंश पाठक (४९) वेणीदास माधोदास (५०) जनार्दनदास (५१) रजो क्षत्राणी (५२) पूरणमल (५३) पुरुषोत्तमदास स्त्री-पुरुष (५४) गज्जनधावन (५५) भगवानदास सारस्वत (५६) बूला मिश्र (५७) अम्माक्षत्राणी (५८) विशम्भरदास (५९) त्रिपुरदास (६०) रामदास (६१) बादरायणदास (६२) बड़ा रामदास (६३) नरहरिदास (६४) दूसरे रामदास (६५) माधो भट्ट (६६) वत्सा भट्ट (६७) नारायणदास ब्रह्मचारी (६८) नरहरि गोड़िया (६९) सूरदास (७०) परमानन्ददास (७१) यादवेन्द्र कुम्हार (७२) श्रीभट्ट सनोढ़िया (७३) सद्दू नरो।

दोसौ बावन में :—कान्हरदास, राघवदास, कृष्णभट्ट

इसमें कवि ने एक जगह लिखा है :—

'मैं लख्यूं छे श्री महाप्रभुना बचन ने अनुसार।'

श्री महाप्रभु शब्द का अर्थ यहाँ श्री गोकुलनाथजी है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुजराती भाषा का यह काव्य ग्रन्थ श्री गोकुलनाथजी के वचनों के आधार पर ही लिखा गया है।

६—श्री वल्लभकुलनाम मूलनी बात :—लेखक—गोपालदास ब्यारा वाला प्रति १७४६।

श्री आचार्यजी के सेवकों के नामों की सूची इस प्रकार ग्रन्थ के मध्य में आई है :—

"पछे मार्गोक्त आम्याने अभीमते वैष्णव कीधा तहेनां नाम तो ग्रन्थमां आ लख्या छे। हरसराणी क्षत्राणी नो प्रथम वरण (१) भगतन (२) वांमनदास जेंत जाती (३) दामोदरदास हरसाणी (४) सीरंधना। कृष्णदास मेघन (५) केसवदास कपूर (६) रामदास (७) जीवंदास कपूर (८) खेतुकी छड (९) रूपो की छड (१०) दीपो की छड (११) तोतों की छड (१२) चेदनदास (१३) दीनकर सेठ (१४) प्रभुदास जलोटा (१५) कविराय भाट (१६) प्रभुदास भाट (१७) अच्युतदास (१८) गोविन्ददास भलो (१९) गोपालदास (इ) टोडा (२०) गोपालदास मोहेगल (२१) बाबा वेणु सीरंधी (२२) कृष्णदास (२३) विट्ठलदास सेहगल (२४) माधवदास पटपटीआ (२५) गौरी (गोरजा) (२६) समराई (२७) कंहनद्रदास लोहोद्र (२८) नरसंगदास लोहोद्र (२९) राघवदास (३०) गजाधर खंभाल (गदाधर) (३१) गोसांईदास (३२) वासुदेवदास छकडा (३३) बूलोमिश्र (३४) भगतन लोहोद्र सारस्वत (३५) रामानन्द मिश्र थानेसरी (३६) जगन्नाथ मिश्र गौढ़ (३७) विष्णुदास छीपा (३८) वधादास छीपा (३९) गोविन्द दुबे सांचोरा (४०) नारायणदास (४१) नरहरिजोशी सांचोरा (४२) जगन्नाथ जोशी (४३) माना जगन्नाथ जोसीन (४४) नरहरदास (४५) पुरुषोत्तम जोशी (४६) ईशों दवे मणोदर ना पुरुषोत्तम (४८) माधो दवे (४८) जेराम दवे (४९) राजो दवे (५०) माधु (५१) रामजी (५२) उत्तम श्लोकदास (५३) रामजी नो भाई (५४) गोपाल दवे (५५) गोविन्द भट (दुवे) (५६) राणो व्यास (५७) प्रदुमन भट (५८) रामदास भाई (५९) अंद्रांणी (६०) मुकुंददास (६१) पद्मारावल (६२) दामोदरदास संभल वालो (६३) दामोदरदास नी स्त्री (६४) तथा दासी (६५) पद्मनाभ भट (६६) तुलसां पद्मनाभ नी बेटी (६७) रघुनाथ ना नाती (६८) पारवती पद्मनाभ जी (बेटा नी) बहु (६९) पुरुषोत्तमदास चोपडा वाराणसीना (७०) रुक्मणी पुरुषोतमदास नी पुत्री (७१) गोपालदास पुरुषोत्तमदास नो पुत्र (७२) रामदास सारस्वत (७३) हरिवंश पाठक (७४) पदारथ तंबोली (७५) वेणीदास क्षत्री (७६) माधोदास क्षत्री (७७) जनार्दनदास (७८) खेतु क्षत्राणी (एक क्षत्राणी महावन की) (७९) रजो क्षत्राणी (८०) पूरणमल जैंबल (८१) पुरुषोत्तमदास (८२) गज्जनधावन कालपी ना (८३) भगवानदास सारस्वत (८४) बूलो उपाध्यो (८५) मैआ (अम्मा) क्षत्राणी (८६) दीनकरदास कायस्थ (८७) मुकुंददास कायस्थ सक्सैना (८८) बसावणदास (८९) कायस्थ भटनागर (९०) त्रिपुरदास कायस्थ माथुर (९१) पुरुषोत्तमदास (९२) रामदास (९३) जगो स्वामी ठठा ना (९४) हरखो सोरठ ना (९५) बादरायण मोरवी ना (९६) बड़ा रामदास हरीआणीया (९७) नरहरदास (९८) संतदास (९९) माधव भट काश्मीरी (१००) गोपालजी नरोडा ना (१०१ विष्णुदास आंजोल ना (१०२) नारायणदास मेराण ना (१०३) नारायणदास ब्रह्मचारी (१०४) परसराल सनोढीआ (१०५) धरमांगद (१०६) नरहर त्रवाडी (१०७) रामदास परोहित (१०८) राणो जी राठोड़ (१०९) सूरदास कवि (११०) परमानन्ददास कवि (१११) नरीओ भाटीओ (११२) माधव सरस्वती (११३) राणो व्यास (११४) जादवेंद्र कुमार भाई बे हुता (११५) सुरजमल चोहाण सोंखरी ना (११६) काहाँन उदास (११७) स्वामीदास (११८) केशव भट (११९) श्रीभट सनोढ़ीया (१२०) लालदास (१२१) लड्डू स्वामी (१२२) सद्दू पांडे आन्योर ना (१२३) नरो अन्योरनी (१२४) वीस्वनाथ भट बागरोदी (१२५) मल्लारी भट्ट (१२६) खांडेराए (१२७) एकसौ सत्ताईस शरण लीधा।"

(७) सम्प्रदाय कल्पद्रुम—विट्ठलनाथ भट्ट (हरिरायजी के सेवक)

ग्रन्थ—सम्प्रदाय कल्पद्रुम,

रचनाकाल—संवत्, १७२९

विषय—हिन्दी १५३५ से १७२९ तक साम्प्रदायिक वृत,

ग्रन्थकर्त्ता—श्री हरिरायजी के सेवक विट्ठलनाथ भट्ट,

प्रकाशित—बम्बई से।

इस ग्रन्थ के २ से ६ स्कंध तक वल्लभ चरित्र वर्णन है। वार्त्ता सम्बन्धी उद्धरण इस प्रकार हैं :—

(१) 'महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता' तथा ८४ वैष्णव की वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख—

(१) सौ सोमयज्ञों का उल्लेख। (२) पूर्व पुरुषों की नामावली तथा प्रत्येक की यज्ञ संख्या। (३) चम्पारण्य में प्राकट्य तथा जन्म संवत्। (४) महाप्रभुजी की ईश्वरता का शास्त्रीय प्रतिपादन। (५) विद्यानगर का प्रसंग। (६) कृष्णदेव की सभा का प्रसंग। (७) विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की स्वीकृति का प्रसंग। (८) ब्रह्मसम्बन्ध का प्रसंग। (९) पत्रावलंबन का प्रसंग। (१०) प्रथम परिक्रमा संवत् १५४७ सात वर्ष में पूर्ण (विद्यानगर से प्रारम्भ। (११) दूसरी परिक्रमा संवत् १५५४ ज्येष्ठ शुक्ल दूज रविवार। (१२) श्रीनाथजी की ऊर्ध्वभुजा का प्राकट्य संवत् १४६४। (१३) मुखारविंद का प्राकट्य संवत् १५५४। (१४) पंढरपुर में विट्ठलेश की व्याह करने की आज्ञा। (१५) तेईसवें वर्ष व्याह। (१६) तीसरी परिक्रमा १५६०। (१७) नए मन्दिर का बनना प्रारम्भ। (१८) चार ठाकुरजी के नाम (८४)। (१९) द्वारिकाधीशजी का प्राकट्य (८४ वार्त्ता)। (२०) अष्टभुजा (८४ वार्त्ता)। (२१) कल्याणरायजी (ठाकुरजी) ८४। (२२) मदनमोहनजी ठाकुरजी ८४। (२३) श्रीनाथजी को १५६४ में मन्दिर में पधराना। (२४) माधवेन्द्र को सेवा सौंपी। (२५) बालकृष्णजी ठाकुर। (२६) गोकुलेशजी ठाकुर १५६५ में काशी से। (२७) ब्रज परिक्रमा। (२८) दिल्लीपति का महाप्रभुजी का चित्र। (२९) श्री विट्ठलनाथजी का प्राकट्य संवत् १५७२। (३०) श्री विट्ठलेश की ईश्वरता का प्रमाण। (३१) कृष्णदास की भेंट की सेवा। (३२) कृष्णदास को अधिकार। (३३) नवनीतप्रिय। (३४) सुन्दरश्याम। (३५) संन्यास ग्रहण। (३६) सूर्यमंडल भेद कर निजधाम प्रयाण (८४)। (३७) कृष्णदास मेघन का विरह से शरीर त्याग (८४)।

चौरासी वार्त्ता के नाम—

(१) कृष्णदास मेघन। (२) दामोदरदास हरसानी। (३) सेठ पुरुषोत्तमदास काशी (४) नरो। (५) भवानी। (६) सद्दू पांडे। (७) रामदास चौहान। (८) कुम्भनदास। (९) पूर्णमल क्षत्री। (१०) पद्मनाभदास। (११) महावन की एक क्षत्राणी। (१२) दामोदरदास संभल वारे। (१३) पद्मारावल। (१४) बाबा वेणु। (१५) माधवेन्द्र। (१६) कृष्णदास अधिकारी। (१७) राणा व्यास। (१८) सूरदास। (१९) रामानन्द (रामानुज)। (२०) गज्जनधावन। (२१) गदाधरदास। (२२) वासुदेव छकड़ा। (२३) रामदास। (२४) गोविंद दुबे। (२५) नारायणदास भाट। (२६) छीत स्वामी। (२७) गोविंद स्वामी। (२८) शोभा बेटी। (२९) गिरधरजी। (३०) नंददास। (३१) चतुरभुजदास। (३२) आसकरण। (३३) गंगाबाई। (३४) तानसेन। (३५) रसखान। (३६) जोतसिंह। (३७) चतुर्भुज मिश्र। (३८) भीमदवे। (३९) भगवानदास। (४०) भीमसिंह राजा। (४१) ध्यान-

दास । (४२) बीरबल की बेटी । (४३) गंगाबाई मथुराजी । (४४) चांपा भाई । (४५) अजबकुंवरि । (४६) हरिवंश चाचा । (४७) भाइला कोठारी । (४८) गोपालदास । (४९) तुलसीदास जलघरिया । (५०) तुलसीदास । (५१) अलीखान । (५२) नारायणदास (उड़िया) (५३) मधुसूदन । (५४) राम दुबे ।

दोसौ बावन—

(१) देवी का प्रसंग २५२, (२) बंगालियों को मदनमोहन ठाकुरजी दिए, (३) शोभा बेटी गिरधरजी संवत् १५९७, (४) सत्यभामा, गोपीनाथजी की बेटी, (५) मोहन नागर 'ठाकुर', (६) प्रथम ब्रज परिक्रमा (गुसांईजी) १६०० सं०, (७) दूसरी ब्रज परिक्रमा गोपीनाथजी, (८) द्वितीय पुत्र गोविंदरायजी, (९) तृतीय पुत्र बालकृष्णजी, (१०) 'टिप्पणी' का उल्लेख, (११) गोकुलनाथजी, (१२) रघुनाथजी, (१३) यदुनाथजी, (१४) पद्मावती बहूजी (१५) चन्द्र सरोवर निवास, (१६) पुरुषोत्तमजी गोपीनाथजी के पुत्र, (१७) कृष्णदास के प्रेत होने की वार्त्ता, (१८) श्री मथुरानाथजी का मथुरा गमन, (१९) गिरधरजी द्वारा सर्व समर्पन, (२०) गोकुलचन्द्रमाजी का गोकुल में पधारना संवत् १६६४, (२) मथुरेशजी का गोकुल में पधारना संवत् १६३४, (२२) नवनीतप्रियजी के घाट पर सात स्वरूपों का विराजमान होना, (२३) सात स्वरूप के उत्सव में नन्ददास का कीर्तन, (२४) गिरिकंदरा में श्री गुसांईजी का प्रवेश ।

श्रीनाथजी की प्राकट्य-वार्त्ता के उल्लेख—

(१) श्रीनाथजी को सबसे बोलने को मना करना । (२) औरंगजेब को श्रीनाथजी का स्वप्न में दर्शन देना और १७२६ श्रावण शुक्ल पूनो को श्रीनाथ का गिरिराजजी से प्रयाण । (३) आगरा विश्राम, अन्नकूट । (४) नवनीतप्रिय का गऊघाट पर पधारना और राजभोग आरोगना । (५) कोटा में चर्मणवती के किनारे पधारना वहाँ श्री ब्रजरायजी द्वारा २८ दिन तक सेवा और बादशाह को इसकी सूचना मिलना । (६) कोटा से बूंदी (हाड़ापति अनिरुद्ध के यहाँ) । (७) कृष्णगढ़ (राजा मानसिंह) । (८) पुष्कर, (९) पुष्कर से जोधपुर जसवन्तसिंह, (१०) द्वारकाधीश का प्रथम मेवाड़ पधारना ।

सम्प्रदाय कल्पद्रुम की वे घटनाएँ, नाम और संवत् जिन्हें इतिहास और सम्प्रदाय के अन्य ग्रंथों का समर्थन प्राप्त है

(१) रूपसिंह के पुत्र मानसिंह की स्थिति	इतिहास का समर्थन
(२) विष्णु स्वामी परम्परा वर्णन	(भक्तमाल तथा अन्य ग्रन्थ)
(३) बिल्वमंगल	(वार्त्ताग्रन्थ, भक्तमाल)
(४) श्री वल्लभाचार्य के पूर्व पुरुषों का वृत्तांत	
(५) लक्ष्मणभट्ट के स्वप्न की घटना	कृष्णदास अधिकारी के पद से पुष्टि
(६) आचार्यजी का प्राकट्य	
(७) जन्मपत्री (महाप्रभुजी)	
(८) लक्ष्मणभट्टजी का बालाजी में शरीर त्याग	निजवार्त्ता
(९) महाप्रभु के बड़े भाई रामकृष्ण का नाम	
(१०) विद्याभूषण मामा का नाम (महाप्रभुजी)	
(११) मामा के दुर्वचन	

(१२) विद्यानगर की राजसभा का शास्त्रार्थ
(१३) कनकाभिषेक
(१४) विष्णुस्वामी के ठाकुर श्यामसुन्दरजी का उल्लेख — निजवार्त्ता
(१५) पृथ्वी परिक्रमा (प्रथम) की तिथि
(१६) पंढरपुर में श्रीमद्भागवत-पारायण
(१७) विट्ठलेशजी को नूपुर — निजवार्त्ता
(१८) पंचवटी पधारना
(१९) ठकुरानी घाट पर संध्या-वन्दन — निजवार्त्ता
(२०) ठकुरानी घाट पर भागवत-पारायण
(२१) उजागर चौबे मथुरा के
(२२) भादों सुदी दूज को मथुरा में यात्रा का नियम और भागवत-पारायण
(२३) मधुवन आना
(२४) उजागर को १०० मोहरे देना, लेखपत्र कर देना
(२५) गोकुल में तीस पारायण
(२६) ब्रह्मसम्बन्ध १५४९ श्रावण शुक्ल एकादशी — निजवार्त्ता
(२७) बृन्दावन में सुबोधिनी प्रारम्भ — वल्लभाख्यान
(२८) पुरुषोत्तम के घर पर रहना
(२९) पत्रावलंबन — वार्त्ता
(३०) जगदीश का शास्त्रार्थ
(३१) दो परिक्रमा
(३२) झारखंड से ब्रज आये
(३३) श्रीनाथजी का प्राकट्य
(३४) रामदास कुम्भनदास का शरण आना — वार्त्ता
(३५) विट्ठलेश्वर को महाप्रभुजी को व्याह की आज्ञा
(३६) व्याह
(३७) मथुरेशजी का पद्मनाभदास को पधराना
(३८) एक क्षत्राणी रमन रेती में सेवक
(३९) कालपुरुष को दान (कन्नौज) — वार्त्ता
(४०) श्रीनाथजी की स्थापना
(४१) सूरदासजी का शरण में आना
(४२) काशी में द्विरागमन गोकुलनाथजी को ससुराल में पधराना
(४३) ब्रज परिक्रमा
(४४) चित्र बनवाना — भावसिंधु
(४५) सोमयज्ञ
(४६) गोपीनाथजी का जन्म
(४७) फिर तीन सोमयज्ञ
(४८) विट्ठलनाथजी का प्राकट्य चरणाट
(४९) कुण्डली
(५०) पुराण के वाक्य

(५१) रामानुज द्विज बटुक का शरण आना
(५२) गोपीनाथ का यज्ञोपवीत
(५३) अडैल में सब ग्रन्थों की समाप्ति
(५४) विट्ठलेश का उपनयन संस्कार काशी

सम्प्रदाय कल्पद्रुम की वे घटनाएँ जिन्हें इतिहास व सम्प्रदाय का समर्थन प्राप्त नहीं है

(१) जन्मपत्री–द्वारिकेशजी से भिन्न
(२) यज्ञोपवीत का संवत्–१५४०–संप्रदाय प्रदीप, १५४९– निजवार्त्ता
(३) लक्ष्मणभट्टजी की आज्ञा कि ब्रह्मसमाज घर में ही स्थापित करो बाहर जाकर शास्त्रार्थ न करो
(४) लक्ष्मणभट्ट के शरीरान्त का स्थान
(५) वेद-पारायण 'विद्यानगर'
(६) नासिक में 'दमला' वनिक को शरण—(दूसरे ग्रन्थों में वर्धा में शरण)
(७) बलदेवजी का दर्शन करना
(८) चौरासी स्थलों की स्थापना करके श्रीमद्भागवत के २०० पारायण किए
(९) दुर्गावती का महाप्रभुजी को सौ गांव भेंट करना—यह ऐतिहासिक भूल है। दुर्गावतीजी श्री विट्ठलेशजी की समकालीन थी

सम्प्रदाय कल्पद्रुम की घटनाएँ जिनका उल्लेख केवल इसमें ही है :—

(१) कृष्णदास का यज्ञोपवीत के समय सेवक होना
(२) अडैल में लक्ष्मणभट्ट का महाप्रभुजी के दसवें वर्ष रहना
(३) भरद्वाज आश्रम में ब्रह्मवाद की स्थापना (प्रयाग)
(४) विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अधिपति होने की तिथि संवत् १५४७ मिती माघ सुदी सप्तमी
(५) गोकुल में प्रथम यात्रा के समय जगन पचासी के घर रहना
(६) फागुन सुदी दूज सं० १५४८ को मथुरा में यात्रा पूर्ति
(७) वृन्दावन में चातुर्मास
(८) स्त्री और माता दोनों को गिरिराज में मंत्र दिलवाना (प्राकट्य वार्त्ता में नवनीतप्रियजी ने मंत्र दिया है और स्त्री को इन्होंने स्वयं दिया है। इसके अनुसार स्त्री को श्रीनाथजी ने दिया और माता को स्वयं ने दिया)
(९) ज्येष्ठ भाई केशवपुरी से मिलना
(१०) विट्ठलेश का काशी में ब्रह्मचर्य छुड़ाना।

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में इसकी प्रस्तावना में लिखा है—"श्री विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की परम्परा और श्री आचार्यजी महाप्रभुन की प्राकट्य-वार्त्ता आदि अनेक सच्चरित्र द्योतक यह सम्प्रदाय कल्पद्रुम नामक प्राचीन ग्रन्थ श्री हरिरायजी के शिष्य गोकुलस्थ श्री विट्ठलनाथजी भट्ट कृत है। ताको मेदपाटस्थ श्री महाराणा लाखाजी सुवंशोद्भव रावलजी सवाई मेघसिंहजी महानुभाव ने अत्यन्त परिश्रम करके परम भगवदीय वैष्णवन के मनोरंजन के अर्थ पाताल मेदी नामक गोकुलस्थ श्रीबाल मुकुन्द-भट्टात्मज विद्वद्वर गोपालभट्टजी सों लेकर देख्यो तो यह ग्रन्थ सर्वोत्तम मालूम भयो। और है भी ठीक कि यथा नाम तथा गुण अर्थात् जैसो याको

सम्प्रदाय कल्पद्रुम नाम है ऐसे ही यामें पुष्टिमार्गीय पथप्रदर्शक श्री बल्लभनंदन बाल गोपालन के जीवन चरित्रादिक अनेकानेक चित्र विचित्र अपौरषेय कर्म सुललित दोहा छंद में वर्णन करे हैं...... ..अब सब पुष्टिमार्गिमतावलंबियन सों प्रार्थना है कि या अपूर्व अमृत रस पूर पूरित ग्रन्थ को एक बेर आद्योपान्त पर्यन्त देखो तो सही कि कैसी निपुणता से थोरे में सर्व रहस्य कह्यो है।"

(८) भक्तमाल—श्री नाभादास कृत भक्तमाल जिसका रचनाकाल संवत् १६८० के पूर्व है। इसमें जिन भक्तों का उल्लेख सूत्र रूप से हुआ है उनमें से वार्त्ता के ३४ वैष्णवों को इसका समर्थन प्राप्त है जिनकी नामावली "वार्त्ता और भक्तमाल" प्रकरण में दी जायगी। इस ग्रन्थ के परिचयात्मक छप्पय अत्यन्त संक्षिप्त हैं और कहीं-कहीं अस्पष्ट भी हैं। इस ग्रन्थ की रचना प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर की गई है। इसलिये इस ग्रन्थ से पूर्ण ऐतिहासिक इतिवृत्त और क्रम की आशा करना उचित नहीं है। इसके कई एक वृत्तों को अन्यत्र समर्थन प्राप्त नहीं है।

वार्त्ता के कथन के विरुद्ध इसमें दो महत्वपूर्ण उल्लेख हैं। एक राजा आशकरण को कील्हदेव का शिष्य बताना।

पद—मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस विस्तर्यो।
धर्म सील गुन सीव महा भगौत राजरिषि।
पृथ्वीराज कुलदीप भीमसुत विदित कील्ह सिषि।
सदाचार अति चतुर बिमल वानी रचना पद।
सूर धीर उदार बिनै भल पन भक्तन हद।
सीतापति राधासुवर भजन नेम करम धर्यो।
मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस विस्तर्यो।

इसी पद में 'राधासुवर' और सीतापति दोनों के भजन नेम का एक साथ एक सांस में उल्लेख है। इसलिये न जाने क्यों डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने अपने 'तुलसीदास' नामक ग्रन्थ में इसे वार्त्ता के कथन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना है। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त के कथन की आलोचना 'वार्त्ता के आलोचक' वाले प्रसंग में विस्तारसहित की गई है। यहाँ केवल यह कहना पर्याप्त है कि भक्तमाल का यह उल्लेख हमें किसी निश्चित तथ्य पर लेजाने में असमर्थ है और इसको सर्वथा प्रामाणिक मानना उचित नहीं है। राजा आसकरन के राम विषयक पद 'मोहन नागर' की छाप से कहीं प्राप्त नहीं है। इस पर भी उन्हें केवल भक्तमाल के आधार पर कील्हदेव का शिष्य मान लेना और वार्त्ता के प्रसंग को अप्रामाणिक ठहरा देना तर्कसंगत नहीं है। यह पद एक मृदंग की तरह है जिसके एक ओर 'सीतापति' और दूसरी ओर 'राधासुवर' का पत्रा लगा हुआ है। इस दशा में यह कहाँ तक प्रामाणिक है। यह विचार करने की बात है।

दूसरा उल्लेख—केशवभट्ट के सम्बन्ध में है। बैठक चरित्र में मथुरा विश्रांत घाट की बैठक के प्रसंग में 'यंत्र बाधा मुक्ति' का उल्लेख है जिसके अनुसार यंत्र बाधा मुक्ति का श्रेय श्री महाप्रभुजी को है और भक्तमाल के अनुसार श्री केशवभट्ट को है :—

केशवभट नरमुकुट मणि जिनकी प्रभुता विस्तरी।
काश्मीर की छाप पाय तापन जग मंडन।
दृढ़ हरि भक्ति कुठार आन धर्म विटप विहंडन।
मथुरा मध्य म्लेच्छ बदल करि बरबट जीते।
काजी अजित अनेक देखि परिचे भयभीते।
विदित बात संसार सब संत साखि नाहिन दुरी।
केशवभट नरमुकुट मणि जिनकी प्रभुता विस्तरी।

टीका श्री केशवभट्ट की—

आप काशमीर सुनी बसत विश्राम तीर तुरक समूह द्वार यन्त्र इक धारिये।
सहज सुभाइ कोउ निकसत आइ ताको पकरत धाइ ताके सुनत निहारिये।
संग लै हजार शिष्य भरे भक्त रंग महा अरे वाही ठौर बोल नीच पट टारिये।
क्रोध भरि झारे आप सु वापै पुकारे वे तो देखि सबै हारे मारे जल बोरि डारिये।

आलोचना—

केशवभट्ट काश्मीर का उल्लेख माधोभट्ट की वार्त्ता में है, जिसमें लिखा है कि श्री महाप्रभुजी और केशवभट्ट में बड़ा स्नेह था और केशवभट्ट जो स्वयं महाप्रभुजी की कथा सुनने को आते थे जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपने सेवक माधोभट्टजी को उन्हें भेंट किया था। यह माधोभट्ट वही सज्जन हैं, जिन्होंने सुबोधिनी लिखी थी। केशवभट्ट के सम्बन्ध में वही प्रसंग लिखना जो श्री आचार्यजी के सम्बन्ध में प्रचलित है, पुस्तक की प्रामाणिकता में सन्देह उत्पन्न करता है।

'यंत्र बाधा निवारण' का श्रेय केवल महाप्रभुजी को है इसकी पुष्टि विश्रामघाट की बैठक के चरित्र से होती है। सम्प्रदाय में बैठकें उसी स्थान पर स्थापित हैं जहाँ या तो श्रीमद्भागवत् का पारायण हुआ है या कोई चमत्कार दिखाया गया है। विश्राम घाट की बैठक का सम्बन्ध श्रीमद्भागवत के पारायण से भी है और यंत्र बाधा निवारण के चमत्कार से भी। महाप्रभुजी प्रायः निर्जन और एकान्त स्थानों में ही रहना पसन्द करते थे और बैठक चरित्र के अनुसार जब श्री महाप्रभुजी ने यहाँ से यन्त्र बाधा हटाई थी तब यहाँ वन था और पुरानी मथुरा की बस्ती कटरा केशवदेव की ओर ही थी। पीछे से उन्हीं के प्रसाद से यह बस्ती इस ओर को बढ़ती चली आई और श्मशान जो पहले विश्रामघाट के समीप ही था वहाँ से कुछ दूर ध्रुवघाट पर चला गया। इस कारण भक्तमाल के उल्लेख की अपेक्षा सम्प्रदाय में प्रचलित अनुश्रुति और वार्त्ता के उल्लेख ही अधिक प्रामाणिक हैं।

(९) 'भरोसो दृढ़ इन चरनन को' की टीका—

ग्रन्थकार—	इज्जतराम नागर
हस्तलिखित—	हरदा से
लेखनकाल—	संवत् १७५०
विषय—	सूर के पद की टीका
भाषा—	हिन्दी।

परिचय—हस्तलिखित प्रति रायसाहब सेठ हरिशंकरजी हरदावाले के संग्रह से प्राप्त—पृष्ठ संख्या पचास। प्रत्येक पृष्ठ में १३ पंक्तियाँ हैं। पुस्तक है ८×६। हाथ का बना कागज।

प्रारम्भ—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः । अथ सूरदासजी के पद की टिप्पणि लिख्यते ।

दोहा—प्रथम नमो वल्लभाधीश कों पुनि श्री विट्ठलनाथ ।
तृतीय श्री गिरधर प्रभु महाराज श्री यदुनाथ ।
नमो श्री वल्लभ भानु को समि श्री विट्ठलनाथ ।
तेज पुंज गिरधरनजू सुखसागर यदुनाथ ।।

अन्तिम—पृष्ठ पचास–यह वचन रसिकरायजी महाराज श्री कल्यानरायजी के पुत्र तिनके हैं । हमारो कियो कछू नाहीं है ।

दोहा—टीका करी विचार के नागर इज्जतराम ।
प्रभु मोहि अपनो जानिए राखो अपनो धाम ।।
राधा मोहन मित्र ने पूंछो एक प्रसंग ।
तिनके हित कीन्हों यही मन में राख उमंग ।।
सुनो मित्र अत्र कहन को मैं जो कह्यो निस्तार ।
श्रीवल्लभ पदरेणु पर तन मन दे बलिहार ।।

इति श्रीमद्वल्लभ गुण कथने सूरदासजी वचने मति अनुसारे इज्जतराम नागर ब्राह्मणेन विरचितायां सूरसागर ग्रंथ सम्पूर्णं लिखितं ब्राह्मण सनाढ्य देविराम । बांचे सुनावे सुने तिन कु जयश्रीकृष्न बंचनो शुभं भवतु श्रीरस्तु ।

इस ग्रंथ में दोसौ बावन के भावना वाले संस्करण के प्रसंगों का उल्लेख है जिससे यह अनुमान किया जाता है कि संवत् १७५० वि० तक भावना वाले संस्करण का प्रचार भी सम्प्रदाय में हो चुका था ।

(१०) वल्लभ वंशावली और वनयात्रा— लेखक—जगतानंद,

रचनाकाल—१७२१ से पूर्व, अगरचंद नाहटा की प्रति से कंठमणिजी के अनुसार १७८१ वि० ।

भाषा–व्रज (काव्य)

विषय–वल्लभ चरित्र व वंश वर्णन,

प्रकाशित—विद्याविभाग कांकरौली, हस्तलिखित श्रीद्वारकादास परीख के निजी संग्रह से ।

इस वल्लभ वंशावली में महाप्रभुजी के पूर्व पुरुषों के नाम व जन्म सम्वत् आदि वे ही हैं जो महाप्रभु के प्राकट्य की वार्त्ता में हैं । सात स्वरूपों के प्राकट्य का भी वैसा ही उल्लेख है जैसा कि वार्त्ताओं में । नारायणदास गज्जनधावन दामोदरदास सम्भल वाले तथा चांपा भाई आदि के नाम भी स्वरूपों के सम्बन्ध में लिखे गये हैं ।

वनयात्रा—

२५२ की वार्त्ता में पीताम्बरदास की वार्त्ता में सब वनों के नाम हैं और इसमें भी वही नाम मिलते हैं । श्री जगतानन्द की वनयात्रा में कुण्डों का विशेष वर्णन है । इस प्रकार यह उस वार्त्ता का समर्थन करती है । परन्तु इस पुस्तक में गुसांईजी की ब्रजयात्रा का सम्वत् १६२८ के स्थान पर १६२४ दिया हुआ है । इस प्रकार दोनों में चार वर्ष का अन्तर है । परन्तु इसी पुस्तक का एक गद्य रूप कांकरौली विद्याविभाग बन्ध संख्या ८६ पुस्तक संख्या ३ है जिसमें यात्रा का समय सं० १६२८ दिया हुआ है ।

जगतानन्द ने सौभाग्य से—सौरह सै संवत बन्ध्यो चौबीस ससिवार । भादों वदि की

द्वादसी वन को कियो विचार' में अपने संवत् के साथ दिन भी दिया है। गणनानुसार उस दिन चन्द्रवार पड़ता है। अतः यह तिथि ठीक है।

(११) जमनादास—हरिरायजी के सेवक।

सूरदास विषयक गुजराती धौल :—

श्रीसूरदासजी परम शिरोमणि आ रहेता ते तो दिल्ही सीही ग्राम जो।
बालपने थी हरि भक्ति करता सदा आ त्रण कालना ज्ञाननी राखे हाम जो।
प्रगट्या ए तो ब्रह्म सारस्वत कुल माँ आनेत्र विहीणे दरिद्र पिता ना धाम जो।
कटुबचन सुणी ने घर थी चालिया, ते आवी पहोंच्या एक तलाबनी ठाम जो।
रह्या बार वर्ष लगी त्यां निर्भे थई, पण हरि मिलन नी चिंता मननी मांह्य जो।
एक दिवस अति विरह चित्त ने थ्यो त्यारे कृपा करीने प्रगट्या श्रीहरि त्यांह्यजो।
नेत्र दई आप्यां दर्शन श्रीनाथजी, आ वर मांगवाने कह्य दे तेनी वार जो।
ए समय वां दर्शन थी मूदित थई, आ अंतर दृष्टि ए हरिलीला ने मांगे जो।
त्यारे अति प्रसन्न वदने श्रीनाथजी आ कहे, सुनो मम बालसखा प्रवीन जो।
हवे शीघ्र ब्रजमंडल मां जाओ तमे त्यां थाजो श्रीवल्लभ अधीन जो।
ते वारे दर्शन आपीश हुँ तने ने देखाडीश मम लीला ना परकार जो।
ए समय विनती सूरदास कीधी प्रभु केम जाणु हुँ श्रीवल्लभ नो आकार जो।
त्यारे कृपा करीने श्रीनाथजी आ कहे छे त्यां श्रीवल्लभ केरा रूप जो।
दक्षिण ब्राह्मण वेष सदा एउनो रहे जा स्याम वरन ने दिव्य तेज अनूप जो
ए परिक्रमा करीने पृथ्वी पावन करे आ विहिण पादुका चरन सुवासित जान जो।
रूप बटूक सदा छे एहनो आ तारा थी ए दिवस दस महान जो।
एम कही ने प्रभु ज्यारे अन्तरध्यान थया आ त्यारे तेम ने प्रगट्यो अपार जो।
पछी आज्ञा प्रभुनी माथे धरी आ चाली आव्या मथुरा थई गौघाट जो।
त्यां रहीने कीरतन हरिनां बहु करयां ने ध्यान करयां श्री वल्लभजी महाराज जो।
एम करतां दक्षिण थी प्रभु आवी आ ने शरण लीधा छे भक्त शिरोमणि राज जो।
सहस्र नाम रची हरिलीला भासित करी आ कीधा मनोरथ पूरण नंदकुमार जो।
पछी त्यां थी प्रभु श्रीगोकुल आवीया, आ संगे लाव्या सूरदास ने ते वार जो।
अहीं बाललीला नां सुख आपीने, आ थाप्या तेमने श्री गोवर्धन सुखधाम जो।
त्यां आत्मनिवेदने सोप्या छे श्रीनाथजी, आ आवी सेवा कर्तन नी अष्टयाम जो।
पछी देखाड़्युँ रूप श्री गोवर्द्धन क्षेत्र नु आ सारस्वत कल्पनु वृन्दावन शुभनाम जो।
पछी श्रीगुसांईजी ए थाप्या अष्टछाप मां आ अष्टसखा मध्यराज सिरोमनि रूप जो।
जमनादास अधम ते वर्णन शां करे आ सुण्यूँ बदन जे श्री हरिराय महाप्रभु जो।

इस पद के अनुसार सूरदास की वार्त्ता की पुष्टि होती है, जिससे संवत् १७२१ तक वार्त्ताओं के प्रचार हो जाने की सम्भावना निश्चित होती है।

———

उत्तरकालीन परम्परा ग्रंथों के अनुसार प्रामाणिकता तथा ग्रंथ परिचय

(१) नागर समुच्चय—लेखक श्रीनागरीदास,
रचनाकाल—उन्नीसवीं शताब्दी
भाषा—ब्रजभाषा
प्रकाशित—पंडित श्रीधर शिवलालजी, ज्ञानसागर छापाखाना मुंबई।

इस प्रकाशित ग्रंथ में सबसे पहिले ५२ पृष्ठ तक जय कवि कृत छप्पन भोग चन्द्रिका नामक ग्रन्थ का पूर्वार्ध प्रकाशित है इसके बाद इसके तीन खंड हैं। वैराग्यसागरे, सिंगार-सागरे और पदसागरे। वैराग्य सागरे में सर्वप्रथम 'भक्तिमगदीपिका' देहदशा, वैराग्यवटी, रसिकरत्नावली, कलिवैराग्यावली, अलिलपच्चीसी, छुटकपद, छुटक दोहा तीर्थानंद रामचरित्र-माला, मनोरथमंजरी, पद प्रबोधमाला, जुगलभक्त, विनोद भक्तिसार, श्रीमद्भागवत—पारायण विधि प्रकाश ग्रंथ हैं। दूसरे भाग, सिंगारसागरे में ब्रजलीला, गोपीप्रेम, प्रकाश, प्रात:रस मंजरी, भोजनानन्दअष्टक, जुगलरसमाधुरी फूलविलास, फागविलास, ग्रीष्मविहार, पावस पचीसी, गोपीवैनविलास, रासरसलता, रैनरूपारस, सीतसार, इस्कचिमन, छूटक दोहा, मजलस-मंडन, रास अनुक्रम के दोहा, अरिल्लाष्टक, सहा की मांझ, होरी की मांझ, शरद की मांझ, श्री ठाकुरजी के जन्म उच्छव के कवित्व, सांझी के कवित्व, चांदनी के कवित्व, दिवारी के कवित्व, गोवरधारन के कवित्व, होरी के कवित्व, फाग के समें अनुक्रम, वसन्त वर्नन के कवित्व, फाग विहार, फागगोकुलाष्टक, हिंडोरा के कवित्व, बरषाने के कवित्व, छूटक कवित्व, वन विनोद, बाल विनोद, सुजनानंद, रास अनुक्रम के कवित्व, निकुंज विलास, गोविन्द परचई।

तीसरे खंड पदसागरे में निम्नलिखित छोटे छोटे ग्रन्थ हैं। वनजनप्रसंग, पद मुक्तावली, उत्सवमाला, रसिक विहारी के पदों का संग्रह।

इसमें सिंगारसागरे के अन्तर्गत निम्नलिखित कवियों के सम्बन्ध में एक अथवा अनेक प्रसंग हैं जिनकी तालिका इस प्रकार है :—

पद प्रसंगमाला

१—जयदेव—अष्टपदी—स्त्री का देह त्याग

२—परमानंददास प्रसंग—इसमें परमानंददास वृन्दावन के वैरागी लिखे हैं जिनके यहाँ महाप्रभुजी चुपके से पद सुनने गए और 'हरि तेरी लीला की सुधि आवे' पद सुनकर आठ दिन तक आवेश में रहे।

३—नामदेव

४—रैदास

५—नरसी मेहता

६—मीरा

७—रामानुजी चतुरदास जोशी

८—मधुर देस बसौंदा मुरारिदास वैष्णव

९—तुलसीदासजू कासी नगर के

वैष्णव तुलसीदासजू सो श्री रामचन्द्रजू के उपासक महाअनन्य ऐसे जू और अवतारी अवतारिन के गुन वर्नन न करै न औरनि के गुन सुनै, स्वइच्छा सौं न औरनि के स्वरूप को जाय दरसन करै अरु औरु महानुभाव बड़े जो प्रीतकरि दरसननकूँ लेजांहि तो उनको अनादर हू कैसे करें। यातें जाहि परन्तु बिना रामचन्द्रजू के स्वरूप और औरनि कों दंडवत नाहीं करें। एक समय श्री गोवर्धन आय निकसे तहाँ श्री गुसांईजू तुलसीदासजू कों श्री गोवर्धननाथजू के दरसन कों लैगए तहाँ दरसन करि तुलसीदासजू यह दोहा कह्यो।

दोहा—कहा कहौं छवि आजु की, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक जब नमै धनुष बान ल्यो हाथ।

श्री नागरीदास ने लिखा है कि 'यदि कोई इस वार्त्ता पर सन्देह उठावे तो 'ऐश्वर्य वृद्धि में वो भेद नहीं अरु आसक्ति उपासना भेद विन क्यों बनै' फिर इसमें 'बरनौ अवध गोकुल ग्राम' पद भी है। जो माताप्रसादजी को वार्त्ता के अतिरिक्त कहीं मिला नहीं है।

१०—मानकचंद—इन्द्रप्रस्थ पद अशुद्ध है। — वार्त्ता में आगरा

११—छीत स्वामी

१२—गुसांई हरिवंश

१३—श्री व्यास

१४—सूरदास को

दोउ नेत्रहीन कृष्णदास के साथ संध्या के पद की रचना का प्रसंग — वार्त्ता में भी इसी प्रकार है और भक्तमाल में भी

१५—कृष्णदास का दिल्ली की वेश्या — वार्त्ता में आगरा

१६—कुंभनदास का प्रसंग इसमें पेड़ से गिरना लिखा है। — वार्त्ता में पेड़ से गिरने की बात नहीं है।

१७—चतुरभुजदास — वार्त्ता प्रसंग का समर्थन

१८—गदाधरभट्ट

१९—सूरजधज ब्राह्मण गृहस्थ

२०—सूरदास मदनमोहन

२१—षरगसेन वैष्णव

२२—नरबाहन

२३—मधुकरशाह

२४—बरसाने के नागरीदास

२५—भगवानदास मिही के। वार्त्ता में यह तूंवरा सहित प्राण छोड़ने की बात नहीं है। यह वार्त्ता के भगवान हित रामराय है।

२६—छीतस्वामी—इनकी वार्त्ता का प्रसंग जैसा नागर समुच्चय में है वैसा ही वार्त्ता में है।

२७—व्यासजी का बेटा किशोरीदास

२८—एक गृहस्थ महापंडित

२९—स्यामदास कीर्तनियां गोवर्द्धननाथजी के
३० — नरायनदास नरवा
३१ —महाराज रूपसिंह—वार्त्ता में नहीं
३२—मुरलीदास कीर्तनियां
३३—गौरी गूजरी

पदसागर के तीसरे खंड में चौरासी भक्तों और श्री महाप्रभु तथा विट्ठलनाथ तथा उनके सातों बालकों का उल्लेख है और तीसरे पद में लिखा है कि एक दिन भीतरिया ने श्री गुसांईजी से शिकायत की कि गोविंदस्वामी ने भोग के थाल में से गली में छुपकर खा लिया है और मर्यादा भंग करदी है। इस पर जब श्रीगुसांईजी ने गोविंदस्वामी से पूछा तो उन्होंने कहा कि प्रातः ही श्रीनाथजी वन को चले जाते हैं और मुझे उनके साथ दिन भर भूखे रहना पड़ता है इसलिये मैंने खा लिया है। इस पर श्री गुसांईजी ने उन्हें गले लगा लिया। चौथे पद में श्री गोविंदस्वामी ने पाग सुधार दी है।

इन प्रसंगों में से दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में गोविंदस्वामी की वार्त्ता से (डाकौर संस्करण) में प्रसंग सात में पाग के पेंच संवारने की बात का उल्लेख है पर गोविंद परिचयी के उल्लेख से यह उल्लेख इतना ही भिन्न है कि में वह पाग श्रीनाथजी की आज्ञा से ठीक गई है। प्रसंग आठ में गोविंदस्वामी को श्रीनाथजी ने आठ कांकरी मारी हैं और गोविंदस्वामी ने जवाब में एक मार दी है।

प्रसंग उन्नीस में गिल्ली मारने का उल्लेख है और छिपकर रास्ते में बैठकर बदला लेने की बात लिखी है। इसके अनुसार श्री गोविंदस्वामी ने रास्ते में ही भोग में से प्रसाद माँगा है। श्री हरिरायजी कृत भावना वाले संस्करण में प्रसंग ६ में पाग ठीक करने का उसी प्रकार उल्लेख है जिस प्रकार डाकौर संस्करण में है और प्रसंग सात में जगमोहन में कांकरी मारने का भी वैसा ही उल्लेख है जैसा कि डाकौर संस्करण में है। इस भावना वाली प्रति के गोविंदस्वामी वार्त्ता के ग्यारहवें प्रसंग में यह लिखा है कि सेन आरती पीछे किसी ने गुसांईजी से कहा कि गोविंदस्वामी राजभोग आरती से पूर्व महाप्रसाद ले लेते हैं जिसे गोस्वामीजी ने गोविंदस्वामी से पूछा और उन्हें आगे से वैसा करने से रोक दिया। लेकिन फिर श्रीनाथजी की आज्ञा से उन्हें राजभोग करने पर आरती से पहले प्रसाद लेने की आज्ञा मिल गई।

इस प्रकार गिल्ली डंडे वाला प्रसंग हरिरायजी कृत भावना वाले संस्करण में नहीं है शेष तीन प्रसंग कुछ हेर फेर से हैं। राजभोग आरती से पहले भोग माँगना डाकौर संस्करण में लिखा है और नागरीदास के पद में उसका मार्ग में ही भोग से पहले खा लेना लिखा है। भाव एक ही है पर भेद केवल इतिवृत्त का है। वार्त्ताओं के दोनों संस्करणों की अपेक्षा नागरीदास कुछ आवेश में आगे बढ़े हुए लगते हैं। 'पद्य' में लिखने के कारण उनका भावावेश भी उचित ही है।

भक्त नामावली—
रचयित्री—उम्मेदकुंवरि,
रचनाकाल—अज्ञात,
हस्तलिखित—श्री द्वारकादास पारिख के संग्रह में,
विषय—८४ और २५२ के काव्य में लिखे प्रसंग।

इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति के अन्त में इस प्रकार लिखा है :—

महाराजा श्री राजसिंह जो जक्त प्रसद्ध ।
तिनके पुत्र जो मध्य के पुर डुंगर रहे जाय ।
तिन स्त्री मोहि जान के लीजै ऐसे भाय ।
रूपनगर के मध्य किय यह जो ग्रन्थ सुढार ।
बाकावत है जाति ऊह नाम उम्मेदकुमारि ।
ही गुरू संत प्रभाव तें हुव पूरण मों आस ।
बाचे सुने सो यह कहनी बदै श्री ब्रज को बास ।

इससे यह सिद्ध होता है कि इसकी कर्त्री उम्मेदकुंवरिजी राज्यसिंह के दूसरे पुत्र की स्त्री थीं और रूपनगनर (कृष्णगढ़) में इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी ।

इस ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रसंगात्मक वार्त्ताओं का वृत्त काव्य में दिया हुआ है :—

(१) दामोदर हरसानी की वार्त्ता का पृष्ठ नहीं है कुछ कृष्णदास मेघन की वार्त्ता का भी अंश नहीं मिलता है
(२) कृष्णदास मेघन की वार्त्ता के इसमें ११ दोहे हैं
(३) दामोदरदास कन्नौज के का वृत्त
(४) पद्मनाभदास कन्नौजिया का वृत्त
(५) रामदास गोवर्द्धननाथजी के भीतरिया का वृत्त
(६) तुलसा का वृत्त
(७) पार्वती का वृत्त
(८) रघुनाथदास का वृत्त
(९) रजो
(१०) सेठ पुरषोत्तमदास काशी वाले
(११) रुकमणी
(१२) रघुनाथदास
(१३) रामदास सारस्वत
(१४) गदाधरदास
(१५) वेणीदास माधोदास
(१६) एक क्षत्राणी कड़ा की
(१७) हरिवंश पाठक
(१८) गोविंददास भल्ला
(१९) पद्मनाभदास का प्रसंग बीच में
(२०) गज्जनधावन
(२१) नारायणदास सारस्वत ब्राह्मण
(२२) दिनकर सेठ
(२३) दिनकर मुकुन्ददास
(२४) प्रभुदास क्षत्री सिंहनद के
(२५) प्रभुदास क्षत्री
(२६) पूर्णमल जैंवल अम्बाला

(२७) माधोभट्ट काश्मीरी
(२८) गुसांईदास ब्राह्मरण
(२९) पद्मारावल सांचोरा
(३०) पुरुषोत्तम जोशी
(३१) जगन्नाथ जोशी
(३२) राणा व्यास
(३३) रामदास सांचोरा
(३४) गोविंद दुबे
(३५) रामदास ब्राह्मरण
(३६) कृष्णदास अधिकारी
(३७) प्रभुदास का एक और प्रसंग
(३८) भूलामिश्र सारस्वत
(३९) रामानन्द पंडित
(४०) विष्णुदास छीपा
(४१) भगवानदास
(४२) जीवनदास क्षत्री
(४३) राजा दुबे माधोदास
(४४) महाप्रभुजी सर्दी का प्रसंग
(४५) शोरजासमराई
(४६) परमानन्दस्वामी
(४७) सूरदास
(४८) बाबावेणु, कृष्णदास, जादोंदास
(४९) वासुदेवदास
(५०) रूपचन्द नन्दा आगरा (२५२)
(५१) अयोध्या को प्रसंग (निजवार्त्ता)
(५२) एक वैष्णव जाने रघुनाथजी के दर्शन की इच्छा करी (२५२)
(५३) गोपीनाथजी का प्रसंग (ठाकुरजी को जल्दी जगाने का)
(५४) 'दामोदरदासजी की गोद में लेटना' (महाप्रभु की वार्त्ता)
(५५) गोपीवल्लभ
(५६) पेंढरपुर का व्याह का प्रसंग
(५७) श्री विट्ठलनाथजी के प्राकट्य का प्रसंग
(५८) संन्यास को प्रसंग (भगवानदास की वार्त्ता वाला)
(५९) नरहरि जोशी खिरालू
(६०) महीधर क्षत्री अलियाना
(६१) मोरवी के बादरायणदास का प्रसंग
(६२) अच्युतदास गौड़ ब्राह्मरण
(६३) अच्युतदास सारस्वत
(६४) सोने की कटोरी गहने धरने का प्रसंग

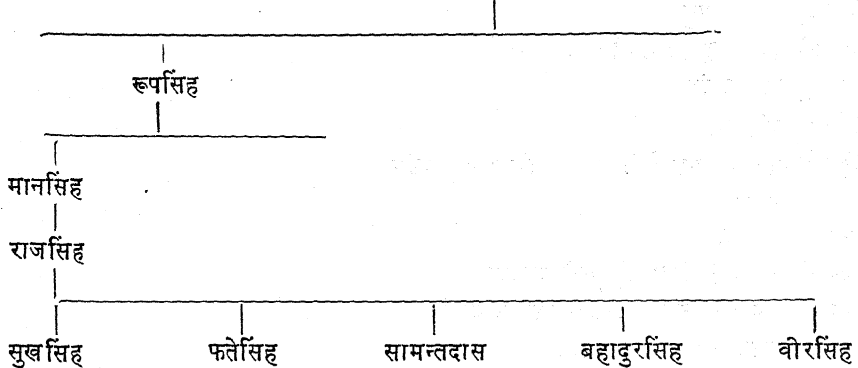
(१०४) एक गौड़िया का प्रसंग
(१०५) नारायणदास सूरजध्वज गौड़ देश के दाऊद के चाकर ।
(१०६) विट्ठलदास नारायणदास के चाकर
(१०७) चाचा हरिवंश
(१०८) यदुनाथ कपूर क्षत्री
(१०९) रूपचंद नंदा आगरा
(११०) भाना कपूर
(१११) एक वैष्णव वृक्ष से भगवद् वार्त्ता करता था
(११२) एक वैष्णव की बेटी जिसका अन्य मार्गी से व्याह हुआ था (हरिदास की बेटी)
(११३) कृष्णभट्ट सांचोरा
(११४) गोकुल भट्ट
(११५) एक ब्राह्मणी उज्जैन के पास की
(११६) निहालचंद
(११७) हरिदास
(११८) मेघ को गुसांईजी ने मना किया वह प्रसंग
(११९) धीमर
(१२०) गोडिया
(१२१) संतदास, वीरा की गली आगरा
(१२२) एक अन्योर की डोकरी विसाई वाली
(१२३) कुनवी दो भाई गुजराती
(१२४) नरहरि संन्यासी (महाप्रभु के सेवक)
(१२५) वेनी कोठारी (महाप्रभु)
(१२६) भाइला कोठारी
(१२७) चाचा हरिवंश (दूसरी वार)
(१२८) हरिजी कोठारी
(१२९) गोपालदास रूपपुरा
(१३०) माणिकचन्द आगरा के
(१३१) रूपमुरारी
(१३२) मुरारीदास नारायणदास के चाकर
(१३३) माधोदास 'काबुली'
(१३४) गोपालदास गुजराती
(१३५) पाथो गूजरी
(१३६) हरिदास बनिया मेडता
(१३७) जैमल मेडता के
(१३८) एक ब्राह्मण दलाल पूरव का
(१३९) एक चंदन वारो वैष्णव
(१४०) गणेश व्यास
(१४१) अलीखान पठान व बेटी
(१४२) ब्राह्मण वैष्णव

(१४३) एक दानी राजा
(१४४) कल्याणभट्ट
(१४५) स्त्री भरतार लकड़ी बेचने वाला जिसने देवी के किवाड़ जलाए
(१४६) सूत का व्यापारी
(१४७) एक वैष्णव गुलाब के फूल वाला

इस ग्रंथ की लेखिका का समय इस प्रकार निर्णय किया जाता है :—

कृष्णगढ़ के राजाओं की परम्परा—

(१) महाराजा कृष्णसिंहजी विद्यमान—समय संवत् १६२५–१६८५ सामेतसिंह नागरीदास का जन्म संवत् १७५६



[१७५६–१८१६]

इस अनुमान से उम्मेदकुँवर फतेसिंह की स्त्री थी और इनका समय १७५० के आसपास ही ठहरेगा।

इन उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट झलकती हैं। एक चौरासी तथा दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता की व्यापकता; दूसरा उनका सैद्धान्तिक महत्व। गोस्वामी श्री पुरुषोत्तमजी ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए वार्त्ताओं का सहारा लिया है इससे बढ़कर वार्त्ताओं की मान्यता और स्वीकृति का अन्य और क्या प्रमाण होगा ?

उत्तरकालीन साक्ष्य

(३) दयाराम—श्री दयारामजी गुजराती भाषा के प्रसिद्ध और लोकप्रिय कवि हैं। इनका जन्म संवत् १८३३ के आसपास है। इन्होंने अपने "पुष्टिमालिका" आदि ग्रन्थों में चौरासी और दोसौ बावन के वार्त्तानुसार नामों का उल्लेख किया है। इनकी हिन्दी रचनाओं में भी इस प्रकार के उल्लेख हैं; जो चौरासी और दोसौ बावन की सूची के रूप में प्राप्त हैं। इसी प्रकार श्री हरिरायजी कृत लीलाभावना के संस्करण के स्वरूपों की भी सूची आपके ग्रन्थों में मिलती है। आपके ग्रन्थ भी इस प्रवाह को पुष्ट करते हुए आगे बढ़ा रहे हैं।

श्री महाप्रभु के अतिप्रिय चौरासी जो भक्त।
श्री राधावर रूप में जिनको मन आसक्त ।।
सो श्री गोकुलनाथजी कहे सबन के नाम।
बरनी सबकी वारता जाति, ज्ञाति अरु गाम ।।

तामें कछु सन्देह रहे लीला में को रूप ।
सोहू श्री हरिरायजी कहे प्रगट स्वरूप ।।[1]

(४) दुर्लभदास रचित—श्री दोसौ बावन वैष्णवों का धौल—

श्रीमद्वल्लभ प्रभुने नमु श्री विट्ठलेश । सात स्वरूप सहित सघलो वंशात्मक विशेष ।।१।।
सेवक श्री विट्ठलेशजी ना वसें ने बावन । जेनु नाम उच्चार मात्र ही सौ पावन ।।२।।
गुण गोविंददास ना गाइए रे, छीत स्वामी परम चित लाइए रे ।।३।।
नंददास श्रीकृष्ण आसक्त रे, चतुर्भुजदास सदा अनुरक्त रे ।।४।।
नित्य नागजी भाई ओचरीए रे, कृष्णभट्टजी ने मन धरिए रे ।।५।।

+ + +

यथामति ए कह्याछे, वली बीजा छे अपार ।
परम तत्वनु तत्व छे, ए भक्तना आधार ।।१०६।।
भक्तराज शिरोमणि ने एक नो आधार ।
कर्या छे वली करे छे वली करशे निर्धार ।।१०७।।
ए माटे सर्व प्रात उठीने, नाम करौ उच्चार ।
कंठ माँ धारण करो तो, हरि भले सुख सार ।।१०८।।
सर्व भगवदीय ने नमन करी ने, एज मागु नेम ।
श्री विट्ठल वरजी सृष्टि उपर, रहो 'दुर्लभ' प्रेम ।।१०९।।[2]

श्री गिरिधरलालजी के वचनामृत के अनुसार यह दुर्लभदास कवि कांकरौली के घर में पानघर की सेवा करते थे ।

इस धौल के आरम्भ में चार सखाओं के नाम हैं इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जिस प्रति के आधार पर यह पद रचे गए हैं उस प्रति में डाकौर की प्रति का ही क्रम वैष्णवों की वार्त्ता का रहा होगा । डाकौर की प्रति में भी चार सखाओं की वार्त्ता प्रारम्भ में दी गई है फिर नागजीभट्ट की वार्त्ता आती है ।

(५) सरयूदास—शांडिल्यगोत्री मेहता, औदीच्य गुजराती ब्राह्मण ने संवत् १९२० के लगभग संस्कृत में 'वल्लभ कल्पद्रुम' नाम की एक पुस्तक लिखी है जिसका गुजराती संस्करण प्राप्त है ।

इसमें महाप्रभुजी के चौरासी वैष्णवों, निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता श्रीनाथ और महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता के अनुसार वृत्तांत दिए हैं । सरयूदास खिलजीपुर वासी हैं । 'इदं पुस्तकं वेद शास्त्र पारंगत महापंडित श्रीगोपीनाथात्मज सरयूदासेन कृत्वा वल्लभ कुल रत्न भूतेभ्य: श्री लालमणी सुत श्री विट्ठलरायजी शर्मभ्य: समर्पितं तदेतन्मोहमय्यां श्री जगदीश्वराख्य मुद्रालये मुद्रापितं तच्चाषाढ कृष्ण सप्तभ्यां भौम वासरे समाप्तिमगमदिति शके १८०७ संवत् १८४२ द्वि वेद नव भू वर्षे श्रावणे भौमवासरे ।। ग्रन्थ: संपूर्णतां यात: सप्तम्यां च सिते तरे' ।।१।।

---

१ दयाराम काव्य मणिमाला

२ रसमयधौलपद सागर—पृ० १२६ से १३१ प्रकाशक वसंतराम हरिकृष्ण शास्त्री अहमदाबाद वि० सं० १९८७

अनुक्रमणिका

प्रभोरवतार साम्यं
पुष्टिमार्ग स्तुतिः
श्री व्रजस्थ प्रिय वस्तु वर्णनं
ग्रन्थ कर्तृ वंश परंपरा निरूपणं[1]

(७) श्री गोपिकालंकार भट्टूजी महाराज

रचना—वैष्णव आन्हीक
रचनाकाल—सं० १९०० के लगभग
अप्रकाशित—हस्तलिखित
विषय—सूरदास दामोदरदास आदि के पद चरित्र विषयक

इनका कवि नाम रसिकदास था और सूर के सम्बन्ध में इनका यह पद सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। इसमें पुष्टिमार्ग के प्रकट होने का उल्लेख है।

प्रगटे भक्त शिरोमनि राय।
माधव शुक्ला पंचमि ऊपर छठि अधिक सुखदाय
संवत् पन्द्रह पैंतीस वर्षे कृष्ण सखा प्रगटाय।
करिहैं लीला फेरि अधिक सुख मन मनोरथ पाय।
श्रीवल्लभ श्री विट्ठल श्रीजी रूप एक दरसाय।
रसिकदास मन आस पूरन ह्वै सूरदास भुव आय।

वचनामृत

(८) श्री गोकुलाधीशजी—रचनाकाल १९०० संवत्—पद्मनाभदासजी 'के माथे श्री मथुरेशजी बिराजते सो तुलसां सों बहुत हिले। दिनभर तुलसां की गोद में लोटे और अनेक तरह के तुलसां कूँ सुख देते। ऐसे करत तुलसां बड़ी भई तब व्याही तब तो तुलसां कूँ लेवे को ससुराल तें आये तब तुलसां कूँ बड़ो शोच भयो और कही जो, यह देह मथुरेशजी विना कैसे रहेगी? महाचितातुर भई। ताप आपसूं सहन न भयो। सो तत्काल तुलसां के पास पधारे। तुलसां सूँ कही तू सोच मति कर........'[2]

(९) श्री गिरिधरलाल—रचनाकाल संवत् १९३३—एक तो श्री ठाकुरजी में तथा श्री गुरुदेव में भिन्न भाव न करनो। और एक श्री गुरुदेव को अपराध न करनो। फेरि श्री गुसांईजी ने इनको श्राद्ध ध्रुवघाट पै करवायौ।[3]

(१०) श्री गोवरधनलालजी के वचनामृत—सम्वत् १९४०—'फेरि एक समय श्री काकाजी महाराज ने ऐसे आज्ञा करी आगे चौरासी दोसौ बावन कों ब्रह्मसम्बन्ध वेगहि होय जो तो हतो और प्रभु सानुभाव भी जल्दी होय जाते हते ताको कारण जो यह जीव सारस्वत कल्प में मर्यादा पुष्ट मातृचरण की गोपी तथा ग्वाल हुते'।[4]

---

१ इसके पंचम विटप में ८४ वैष्णवों की वार्ता यथावत् मुद्रित के अनुसार है।
२ वचनामृत २०
३ वचनामृत १०७
४ वचनामृत २५०

वार्त्ता-साहित्य की आलोचना और आलोचक

ग्राउस महोदय ने अपने मथुरा मेमायर्स (मथुरा जिला विवरण) में पृष्ठ संख्या २६६ पर वार्त्ता के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—'चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के गद्यांशों में अधिकांश में अनैतिकता का ही विस्तार किया गया है और इनमें से जिस वार्त्ता में अनैतिकता अपनी चरम सीमा पर दिखाई देती है वह कृष्णदास ब्राह्मण की वार्त्ता है।'

ग्राउस महोदय ने कृष्णदास ब्राह्मण की स्त्री के अतिथि सत्कार के मर्म को न समझ सकने के कारण ही कदाचित् ऐसा लिख दिया है। ग्राउस महोदय की संस्कृति और सभ्यता से परिचित व्यक्ति को उनके कथन से रुष्ट नहीं होना चाहिये परन्तु उनके मथुरा प्रेम की सराहना करते हुए उन पर सहानुभूतिपूर्वक दया करनी चाहिये। वार्त्ता का विषय बेचारे ग्राउस के लिए अवश्य अग्राह्य रहा होगा अन्यथा वह कभी ऐसा नहीं लिखते। ग्राउस जैसे बुद्धिवादी की समझ में भावना और भावावेश पर स्थित यह सम्प्रदाय कभी आ ही नहीं सकता था।

ग्राउस महोदय को जो बात असह्य है वह है 'ब्रह्मसम्बन्ध' जिसमें ब्रह्मसंबंध की दीक्षा लेने वाला सब कुछ समर्पण कर देता है क्योंकि उस मंत्र के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार वार्त्ता पर लिखने से पूर्व इस प्रकार प्रकट किये हैं—समर्पण में समर्पणकर्त्ता ईश्वर के प्रतिनिधि गुसांई को अपनी कमाई का सर्वश्रेष्ठांश ही नहीं दे देता है वरन अपनी कन्या और स्त्री का सतीत्व भी भेंट कर देता है। ब्रह्मसम्बन्ध को एकात्मभाव बताया गया है।

सर यदुनाथ सरकार ने अपने औरंगजेब के पंचम भाग में लिखा है कि वल्लभाचार्य, तथा अन्य गुरू पूजक लोगों की निन्दनीय नर पूजा की यदि अवहेलना भी करदी जाय तो भी पुजारी लोग अपनी उपासना पद्धति द्वारा साधारण जनसमाज को अधोगति की ओर ले जा रहे थे और उनसे ऐसे देवता की उपासना करवा रहे थे जो भोजन करता है, शयन करता है और प्रतिवर्ष एक सप्ताह के लिए ज्वर से पीड़ित होता है और ऐसे नृत्य को प्रश्रय देता है जिसे देखकर अवध के नवाबों या कुतुबशाह को भी लज्जा आवेगी।

सर यदुनाथ सरकार की आलोचना का विषय 'वार्त्ता-साहित्य' न होकर 'वल्लभ सम्प्रदाय' है। इसलिए इनके पक्ष या विपक्ष में लिखना इस प्रबन्ध से बाहर है। वास्तव में इसका उद्धरण भी यहाँ अनावश्यक है पर वल्लभ सम्प्रदाय और वार्त्ता-साहित्य के अटूट सम्बन्ध के कारण ही इसे यहाँ रहने दिया गया है।

डा० माताप्रसाद एम० ए०, डी० लिट्०—हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६ अंक दो, आषाढ़पद २०१०, पृष्ठ संख्या २८ से ३५ तक (लेख शीर्षक) क्या ८४ तथा २५२ वैष्णवन की वार्त्ताएँ उन्नीसवीं शताब्दी विक्रमी के पूर्व लिपिबद्ध नहीं हुई थी ?'

डा० माताप्रसादजी ने यह लेख श्री स्वर्गीय राधाकृष्णदास कृत नागरीदास का जीवन चरित्र, नागर समुच्चय की भूमिका पृ० ६ के आधार पर लिखा है इस लेख में आपने लिखा है कि श्री सावंतसिंह उपनाम नागरीदास की दो रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें पुष्टि-

मार्गीय वैष्णवों की वार्त्ताएँ आती हैं। एक है 'गोविन्द (स्वामी) परिचई' और दूसरी है 'पद प्रसंग माला'। आगे चलकर आपने 'गोविंद परिचई' के चार प्रसंगों की २५२ वैष्णवन की वार्त्ता के प्रसंग ८, १९, १८, ७ से तुलना की है जिसके आधार पर आपने वार्त्ता (२५२) और 'गोविंद परिचई' में उल्लिखित घटनाओं में भेद दिखाया है जो इस प्रकार है :—

गोविंद परिचई में :—	वार्त्ता २५२ वैष्णवन में :—
१—अकरौरियों की मारामारी वन में हुई।	१—कंकरियों की मारामारी मंदिर में हुई। शृंगार के समय जब गोविन्द-स्वामी जगमोहन में कीर्तन कर रहे थे।
२—श्रीनाथजी के पूर्व भोग पाने के कारण भीतरियों ने इन्हें जीवित प्रेत कहा।	२—भीतरियों ने भोग मांगने पर थाल पटक दिया।
३—पाग ठीक करने पर मार पड़ी।	३—भीतरियों ने इनकी शिकायत की (वार्त्ता ८४)
४—परमानन्ददास वैरागी वेश में वृन्दावन रहते थे तथा इनके कीर्तन की ख्याति सुनि के महाप्रभुजी गोप्य रूप में पधारे।	४—परमानन्ददास कन्नौज के रहने वाले थे और वें कन्नौज से प्रयाग आये थे वहाँ उनके कीर्तन की ख्याति सुनकर जलघरिया (देवा) कपूर उनका कीर्तन सुनने आया और वे स्वयं अडैल जाकर सेवक हुए और अडैल से ब्रज की यात्रा में महाप्रभुजी ने उनका कीर्तन सुना।
मीराबाई पद प्रसंगमाला में चार पद हैं।	८४ वार्त्ता में केवल मीरा का उल्लेख रामदास की वार्त्ता और कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में है।
सूरदास पद प्रसंगमाला में सूर ब्रजवासी के बालक हैं और भड़ौआ, दोतुकिया बनाते हैं और श्री गुसांईजी ने इन्हें भगवद्यश वर्णन पर लगाया है।	८४ में महाप्रभुजी से इनकी भेंट गौघाट पर हुई और उन्होंने इनको दैन्ययुक्त पदावली की रचना से मुक्तकर भगवल्लीला गान में लगाया।
कृष्णदास अधिकारी वेश्या दिल्ली से साथ आई थी	८४ वै० की वार्त्ता में वेश्या आगरे की थी।
कुंभनदास पद प्रसंगमाला में पेड़ से गिरने पर गुसांई ने इन्हें लौटा दिया।	८४ की वार्त्ता में डेरे में से वही पद गाते लौटा दिया।

तुलसीदास

१—यह प्रसंगमाला में घटना तो यही है पर नन्ददास का नाम नहीं आया है।

२—पद प्रसंग में गुसांईजी साथ ले गये।

३—गुरूजी ने स्वयं रूप परिवर्तित कर दिया।

४—'वरनो अवध गोकुल धामे' वाला पद ब्रज के वैष्णवों के आग्रह पर रचा गया।

१—२५२ की वार्त्ता में नंददास की वार्त्ता में कृष्णमूर्ति राममूर्ति हो गई है २५२ में तुलसीदास नंददास के साथ दर्शन को गए हैं।

२—तुलसीदासजी को श्री गोसांई ने अपने पुत्र के रूप में रघुनाथजी के दर्शन कराए हैं।

छीतस्वामी

१—पद प्रसंग में केवल खोटा नारियल भेंट किया गया है।

२—पद प्रसंगमाला में 'जे बसुदेव किए पूरन तप तेई फल फलित वल्लभदेव' पद सुनकर बीरबल ने कहा है कि "इतना भी बढिके" कहना क्या लाजिम ? यह सुनकर छीतस्वामी ने उनका दिया सब द्रव्य मालजादियों को बांट दिया।

१—वार्त्ता में नारियल और खोटे रुपये।

२—छीतस्वामी ने गुसांईजी को गोपालपुर और गोकुल दोनों जगह देखा जबकि वे गोकुल में ही थे।

३—वार्त्ता में वीरबल ने कहा है 'मैं तो वैष्णव हूँ पर देशाधिपति सुनेगो तब तुम कहा जवाब देओगे ?'

तानसेन

पद प्रसंगमाला में वे हरिदासजी के गायक थे। २५२ की वार्त्ता में गुसांईजी के सेवक २५००० भेंट किए और गोविंदस्वामी से गायन सीखकर श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करने लगे—केवल महीने में एक बार बादशाह के पास जाते।

कुंभनदास

पद प्रसंगमाला में 'वे देखो बरत झरोखेन दीपक ही पौढ़े ऊँची चित्रसारी' वाला पद कुंभनदास का गाया हुआ है। वार्त्ता में इस पद का अन्तिम तुक उनके पुत्र चतुर्भुजदास ने पूरा किया है।

चतुर्भुजदास

पद प्रसंगमाला में 'गोवर्धनवासी सांवले तुम विन रह्यो न जाय' वाला पद मेवाड़ के सिहाड गांव में गाया गया है। वार्त्ता में वह पद वैशाख कृष्ण तृतीया को गिरिराज पर गाया गया है।

मधुकरशाह

पद प्रसंगमाला में 'भक्ति विन किन अपमान सह्यो' वाला पद गदहे के सहित चरणामृत पान किया है। १—वार्त्ता में मधुकरशाह गुसांईजी के कृपापात्र व सेवक बताए हैं। २—वार्त्ता में 'भक्ति विन किन अपमान सह्यो' वाला पद नहीं है केवल गदहे के चरणामृत लेने की कथा है।

भगवानदास

पद प्रसंगमाला में भगवानदास व भगवान नामों से दो प्रसंग अलग अलग हैं। "भगवान हित राम राम प्रभु" दोनों पदों के अन्त में है। १—वार्त्ता में भी यही है। २—वार्त्ता में सारस्वत राम रामजी श्री महाप्रभु के सेवक सो तिन के जजमान हते—गोविन्ददेवजी के सेवक—रामरायजी ने श्री गुसांईजी सों बिनती करके भगवानदासजी कूं नाम निवेदन करायो।"

इन भेदों को दिखाकर डा० माताप्रसादजी ने यह तर्क उपस्थित किया है कि पद प्रसंगमाला और वार्त्ता ग्रन्थों के विवरण में जो अन्तर है वह विचारणीय है। आपने लिखा है कि "नागरीदासजी चार पीढ़ियों से पुष्टि मार्गानुयायी थे, महाराज होने के कारण सभी प्रकार से साधनसम्पन्न थे और अपने जीवन के अंतिम बारह वर्ष उन्होंने ब्रज में ही व्यतीत किये थे। इनकी अंतिम रचना सं० १८१९ की है। यदि उन्हें वार्त्ता ग्रन्थ लिपिबद्ध रूप में प्राप्त होते तो अपने सम्प्रदाय के अधिकृत विवरणों के विरुद्ध वे क्यों जाते? अतः यही अनुमान होता है कि इन ग्रन्थों के रचनाकाल तक दोनों ग्रन्थ लिपिबद्ध नहीं हुए थे। आपके अनुसार संवत् १८१९ तक वार्त्ता-साहित्य लिपिबद्ध नहीं हुआ था।"

डा० गुप्त के इस लेख की आलोचना का उत्तर श्री चन्द्रवली पाण्डे के लेख की आलोचना में आगया है। डा० माताप्रसाद गुप्त की आचोचना का आधार नागरीदासजी कृत दो पुस्तकें हैं। 'पदप्रसंगमाला' और 'गोविंदपरिचई'। गुप्तजी ने नागरीदास के कथन को जो प्रामाणिकता दी है, उसके दो कारण बताए हैं; एक उनका राजा होना, दूसरा उनका सम्प्रदाय से सम्बन्धित होना। पर आपने नागरीदासजी के जीवन चरित्र पर ध्यान नहीं दिया है। नागरीदासजी का दृष्टिकोण शुद्ध भक्तिपूर्ण था—वे भक्त गुणगान करना चाहते थे—इतिहास की परम्परा का पालन नहीं। इस कारण उन्होंने जितने चरित्र लिखे हैं उनमें से बहुत से इतिहास से मेल नहीं रखते हैं अतः यह मानना पड़ता है कि सुनी सुनाई बातों के आधार पर ही उनके ग्रन्थों की रचना हुई थी। अब रहा उनके समय तक वार्त्ताओं का लिपिबद्ध न होना वह दूसरी बात है और एक प्रकार से स्वयंसिद्ध सी है। जब वार्त्ता के उल्लेख नागरीदासजी से पूर्व मिलते हैं तब यह शंका कैसी कि यह ग्रन्थ उनके समय तक पूरे नहीं हुए थे? "धन्य चौरासी भक्त" पद ही यह प्रमाणित करता है कि चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता उनके समय से पूर्व या उस समय तक प्रचलित हो गई थी और वार्त्ता की प्राचीन प्रतियाँ भी १८१९ से पूर्व की प्राप्त हैं और अन्य ग्रंथों में उनका उल्लेख भी मिलता है। इसलिए वार्त्ता और नागरीदास के वर्णन में जो भेद है, उसके लिए वार्त्ता की अनुपस्थिति उतनी उत्तरदायी नहीं है' जितनी नागरीदासजी का ज्ञान और परिचय की न्यूनता। नागरीदास की गोविंद परिचई के अन्तिम पद हैं—

"इंहि तन सषा दुतिय तन सषी। नित देषत लीला मधुमुषी"
"नागरीदास भए इंहि भाय जे अपनाये श्री विट्ठलराय।"

इस में "दुतिय तन सषी" पद श्री हरिरायजी की प्रकट की हुई लीला भावना की ओर संकेत करता है और उसी का रूपान्तर है। श्री हरिरायजी से पूर्व यह भाव पुष्टिमार्ग में हरिरायजी से पूर्व के किसी ग्रंथ में अष्टसखाओं का द्वितीय सखी रूप से उल्लेख नहीं है। इस कारण केवल यही नहीं मानना पड़ेगा कि दोसौ बावन, चौरासी और निजवार्त्ता व घरूवार्त्ताएँ उस समय तक बन चुकी थीं, वरन् श्री हरिरायजी कृत भावनात्मक

संस्करणों का भी उतना प्रचार हो गया था कि नागरीदासजी अपने ग्रन्थ में "द्वितीय तन सखी" की भावना का उपयोग कर सके। कांकरी को अकरोरी में बदलने से वार्त्ता का प्रसंग ही बदल गया है। २५२ वैष्णवन की वार्त्ता में यह "कांकरी" मारी है न कि अँकरोरी। अंकरोरी आक के फल को कहते हैं और कांकरी छोटे से कंकड़ या पत्थर के टुकड़े को। शृंगार के समय अंकरोरी नहीं कांकरी मारी है। इसके अतिरिक्त माताप्रसाद गुप्त ने सर्वप्रथम अपने 'तुलसीदास' नामक प्रबंध में 'दोसौ बावन वैष्णवन वार्त्ता' से नंददास की वार्त्ता का उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है। कि 'किन्तु यह भलीभांति सिद्ध हो चुका है कि दोसौ बावन वार्त्ता के लेखक चौरासी के लेखक से भिन्न हैं और गोकुलनाथजी की कृति तो यह हो ही नहीं सकती क्योंकि इसमें संवत् १७३६ तक की घटनाओं का उल्लेख है।'[१]

वार्त्ता और प्रियादास की टीका में जो अन्तर है उस पर विचार करते हुये आपने यह स्वीकार किया है कि दोनों 'प्रियादास की टीका और वार्त्ता रचनाओं की सूचनाओं के आधार एक से हैं।' इस लेख में रानी रत्नावली की वार्त्ता और प्रियादास की टीका की तुलना की गई है और कान्हामंगी, गोविंददासस्वामी, मधुकरशाह इनकी वार्त्ताओं का साम्य भी दिखाया गया है और भेद भी। आपने लिखा है कि 'वस्तुस्थिति यह है कि वार्त्ता में पुष्टिमार्ग के लिए ज्ञाताज्ञात रूप से कुछ झुकाव जान पड़ता है। उदाहरण के लिये आसकरन राजा की वार्त्ता ली जा सकती है। वार्त्ता के अनुसार नरवरगढ़ के राजा आसकरन गुसांईजी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे किन्तु नाभादासजी का कथन है कि वे कील्ह देव के शिष्य थे। इस सम्बन्ध में नाभादास का कथन अधिक प्रामाणिक माना जाना चाहिये क्योंकि वे एक तो आसकारन के समकालीन थे दूसरे उनके गुरु अग्रदासजी कील्हदेव के गुरुभाई थे। दोनों महात्मा कृष्णदास पयहारि के शिष्य थे—और नाभादासजी दोनों महात्माओं के सम्पर्क में आ चुके थे, क्योंकि प्रियादास का कथन है कि माता द्वारा परित्यक्त होने के अनन्तर नाभादास का उद्धार दोनों ही महात्माओं ने किया है। फलतः यह संदिग्ध है कि दोसौ बावन वार्त्ता का साक्ष्य अनेक स्थलों पर उतना भी मान्य हो सकता है जितना कि प्रियादास टीका का।"[२]

इसके पश्चात् आपने लिखा है कि प्रियादासजी ने जो तुलसीदासजी के सम्बन्ध में लिखा है वे ही घटनाएँ वार्त्ता में अन्य दो संतों के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। तुलसी के स्त्री प्रेम और उसकी तीव्र वाणी द्वारा ज्ञानोदय की कथा प्रियादास ने लिखी है वहीं वार्त्ता में यदुनाथदास के सम्बन्ध में मिलती है इसी प्रकार जो कुछ तुलसीदास के सम्बन्ध में एक हत्यारे के साथ भोजन करने की बात प्रियादास ने लिखी है वही वार्त्ता में लाहौर के पंडित की वार्त्ता में हैं।

वार्त्ताओं को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिये आपने प्रियादास की टीका से साम्य और आशकरन का कील्हदेव का शिष्य होना दो ही प्रमाण दिये हैं। इनमें से वार्त्ता और प्रियादास की टीका के प्रसंगों के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि वार्त्ता और प्रियादास की टीका में साम्य होना तो वार्त्ता की प्रामाणिकता के पक्ष में है क्योंकि दोसौ

---

१ डा० माताप्रसाद 'तुलसीदास'
२ डा० माताप्रसाद 'तुलसीदास'

बावन वार्त्ता का अन्तिम लीलात्मक संस्करण संवत् १७७२ से पूर्व हो चुका था और प्रियादास की टीका का विरोध अवश्य विचारणीय हो सकता है। साम्य तो उसी बात की पुष्टि करेगा। साम्य से वार्त्ता को अप्रामाणिक कदापि न कह सकेंगे। अब जिन चार व्यक्तियों की वार्त्ता में साम्य बताया गया है वार्त्ता में वे सब श्री गुसांईजी के सेवक कहे गये हैं। प्रियादास की टीका में केवल दो को ही सेवक बताया गया है और जहाँ तक साम्प्रदायिक वस्तुओं का सम्बन्ध है वहाँ तक तो प्रियादास की अपेक्षा वार्त्ता का विवरण ही अधिक प्रामाणिक ठहरेगा क्योंकि प्रियादास अन्यमार्गी थे और उनका इन विषयों का ज्ञान उतना गहरा नहीं हो सकता है जितना कि एक आचार्य गोस्वामी बालक का; या उनके सेवकों का। फिर प्रियादास कोई इतिहास ग्रंथ तो लिखना नहीं चाहते थे वे। तो संक्षेप में भक्ति के महत्व को लिखना चाहते थे। इसलिये जीवनवृत्त के उन्होंने प्राय: वे ही अंश लिये हैं जो भक्ति के लिये महत्वपूर्ण हैं दूसरी आपत्ति है प्रियादास के अनुसार राजा आशकरण का कील्हदेव का सेवक होना। सम्प्रदाय में इस सम्बन्ध में जो प्रमाण मिलते हैं उनसे यह स्पष्ट सिद्ध है कि आशकरण श्री गुसांईजी के सेवक थे। इस सम्बन्ध में आशकरण के पद, उनके ठाकुरजी और कृष्णगढ़ से उनका सम्बन्ध सभी उनके पुष्टिमार्गी कहने के पक्ष में हैं। उनकी राम सम्बन्धी जो रचनाएँ प्राप्त हैं उनके आधार पर यदि इनको कील्हदेव का शिष्य सिद्ध किया जायगा तो फिर सूरदास को रामसम्बन्धी पद लिखने के कारण भी रामानंदी व शैव सिद्ध कर दिया जावेगा। आशकरण के पदों में गोकुल का महत्व, बालभावना, किशोरभावना का महत्व उत्सव इत्यादि के पद मिलते हैं जिनसे भक्तमालकार का कथन अप्रामाणिक सिद्ध होता है और उसकी जानकारी का क्षेत्र परिमित दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में भक्तमाल और वार्त्ता-साहित्य की तुलना के प्रकरण में अधिक लिखा जायगा। स्वयं नागरीदास के जीवन चरित्र के लेखक ने राजा आशकरण को श्री वल्लभाचार्यजी का अनुयायी और 'महावैष्णव' लिखा है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल—"यह वार्त्ता भी यद्यपि वल्लभाचार्यजी के पौत्र गोकुलनाथजी की लिखी कही जाती है, पर उनकी लिखी नहीं जान पड़ती। इसमें कई जगह गोकुलनाथजी के श्रीमुख से कही हुई बातों का बड़े आदर और सम्मान के शब्दों में उल्लेख है और वल्लभाचार्यजी की शिष्या न होने के कारण मीराबाई को बहुत बुरा भला कहा गया है और गालियाँ तक दी गई हैं। रंग ढंग से यह वार्त्ता गोकुलनाथजी के पीछे उनके किसी गुजराती शिष्य की रचना जान पड़ती है।"[1]

आदरणीय शुक्लजी ने चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति देखी है, ऐसा प्रतीत नहीं होता है। उनकी आलोचना का आधार डाकौर का मुद्रित संस्करण प्रतीत होता है। जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है और जिसे हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस प्रबन्ध में अशुद्ध और भ्रष्ट ठहराया गया है। प्रथम तो चौ० वै० वार्त्ता की किसी भी प्राचीन हस्तलिखित प्रति में उनके वचनों को आदरसहित नहीं लिखा गया है। दूसरे कृष्णादासी की वार्त्ता में स्वयं इनके कथन का खंडन किया गया है। श्री गोकुलनाथजी ने श्री घनश्यामजी के जन्म के समय इनका नाम गोकुलनाथजी रखने को कहा था पर श्री गुसांईजी ने उसे अस्वीकार कर दिया था। तीसरे इस वार्त्ता के प्रणेता हैं श्री गोकुलनाथजी और इसके आद्य लेखक हैं श्री कृष्णभट्टजी,

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण पृष्ठ संख्या १६२—शुक्लजी का यह उद्धरण दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता के प्रसंग में है।

और श्री हरिरायजी इसके भावनात्मक रूप के रचयिता हैं। इस कारण इनका नाम इसमें आदर के साथ कहीं कहीं आ गया है, जो उचित है। इस प्रकार का उल्लेख भी केवल कृष्णदास की वार्त्ता में है और अन्यत्र नहीं है।

दूसरी आपत्ति है मीरा को गाली देने की। इस सम्बन्ध में भी अन्यत्र लिखा जा चुका है कि पुरोहित के इस कथन का यह आशय ब्रजभाषा क्षेत्र से दूर रहने के कारण ही शुक्लजी ने लगाया है। ब्रज की सामान्य बोलचाल में इस प्रकार 'दारी' और 'रांड' शब्द अपनी बहू बेटियों के लिये सहज में प्रतिदिन और प्रतिसमय बोले जाते थे और न बोलने वाला गाली देता है और न सुनने वाला उसे गाली समझता है। जैसे कुंभनदासजी ने अपनी भतीजी को मानसिंह के प्रसंग में 'रांड' कहा है। अब हमें शुक्लजी के गुजराती शिष्य की कल्पना पर विचार कर लेना है। वार्त्ता में आए हुये गुजराती प्रयोगों के कारण कदाचित् शुक्लजी इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं और श्री गोकुलनाथजी के नाम को जो आदरपूर्वक लिया गया है उससे भी इस कल्पना को बल प्राप्त हुआ है। ऐसा लगता है कि शुक्लजी ने अनुमान करने में शीघ्रता की है। यदि यह वार्त्ता श्री गोकुलनाथजी के किसी गुजराती शिष्य की लिखी होती तो वह इसमें एक भी ऐसा प्रसंग न लिखता जिससे उनकी मर्यादा को ठेस लगती या उनकी गौणता सिद्ध होती। चतुर्भुजदास की वार्त्ता में तो श्री गिरधरजी के प्रसंग में श्री गिरधरजी ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके श्रीनाथजी को गिरिराज पधरा दिया है। वार्त्ता के अनुसार श्री गोकुलनाथजी चाहते थे कि श्रीनाथजी अभी कुछ दिन मथुरा में ही रहें पर श्री गिरधरजी ने उनकी न चलने दी। यदि वार्त्ता श्री गोकुलनाथजी के किसी गुजराती शिष्य की रचना होती तो उसमें यह उल्लेख कदापि न होना चाहिये था। श्री गोकुलनाथजी के शिष्य भड़ूची लोग इनसे बढ़कर किसी को नहीं मानते हैं। यहाँ तक कि श्री वल्लभाचार्य को भी इतना बड़ा नहीं मानते हैं। इससे यह सिद्ध हो गया कि श्री शुक्लजी का यह अनुमान तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है और वार्त्ता किसी गुजराती शिष्य की रचना नहीं प्रतीत होती है। इसके गुजराती शब्द केवल ब्रजभाषा की व्यापकता की ओर संकेत करते हैं। पुष्टिभक्ति के प्रचार ने ब्रजभाषा में अनेक प्रान्तों के शब्दों का प्रचलन कर दिया था और गोस्वामी बालकों की भाषा गुजराती के पुट से संलग्न थी। यह गद्य के आधार पर इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता वाले प्रकरण में सिद्ध किया गया है। गुजरातियों के प्रेम के कारण केवल ब्रजभाषा में ही गुजराती शब्द और प्रयोग नहीं आ गये हैं वरन् कुछ गोस्वामी बालकों ने गुजराती में रचनाएँ भी की हैं। भाषा के आधार पर यह ग्रन्थ श्री गोकुलनाथजी कृत ही ठहरता है। वस्तुस्थिति यह है कि इसके प्रचलित प्रकाशित संस्करण डाकौर और बम्बई संस्करणों की अशुद्धता ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में संदेह उत्पन्न कर दिया है। वल्लभ सम्प्रदाय में गुजराती भाषा को व्यावहारिक मान्यता कृष्णदास अधिकारी के समय से लिखित रूप से प्राप्त हो चुकी है। इसके अनुसार नाथद्वारे की बहियाँ गुजराती में ही लिखी जाती हैं।

डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा---"२५२ वार्त्ता में अनेक ऐसी ही बातें मिलती हैं जिनसे इसका गोकुलनाथ कृत होना अत्यन्त संदिग्ध हो जाता है।" इस वार्त्ता में अनेक स्थलों पर गोकुलनाथ का नाम इस तरह आया है जिस तरह कोई भी लेखक अपना नाम नहीं लिख सकता। इन उल्लेखों से स्पष्ट विदित होता है कि कोई तीसरा व्यक्ति गोकुलनाथ के सम्बन्ध में लिखा रहा है। उदाहरण के लिए गोविंदस्वामी की पहली वार्त्ता में से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) 'तब श्री गोकुलनाथजी ने पूछे जो श्री गुसांईजी के यहाँ कहा प्रसंग चलतो हतो'

(२) श्रीनाथजी तथा गोविंदस्वामी के गान सुनिवे के लिए श्री गोकुलनाथजी नित्य पधारते और एक मनुष्य बैठाय राखते।'

(३) १९९वीं वार्त्ता (लाडबाई तथा धारबाई की वार्त्ता) में लिखा है कि यह 'नवलक्षक रुपया श्री विट्ठलनाथ तथा गोकुलनाथजी को देना चाहती थीं जो दोनों ने आसुरी धन समझकर अंगीकार नहीं किया। तथा इसे गोकुलनाथजी के अधिकारी ने विना उनसे पूछे एक मन्दिर की छत में दबा दिया जो साठ वर्ष बाद औरंगजेब के हाथ लगा और एक मंदिर में धन प्राप्त हुआ है इससे उत्साहित होकर उसने अन्य मन्दिर भी तोड़ डाले।

'स्मिथ के अनुसार औरंगजेब ने मन्दिर तुड़वाने की नीति सन् १६६९ से प्रारम्भ की थी। खोज के अनुसार गोकुलनाथजी का समय १५५१ से १६४७ ई० है। इस तरह गोकुलनाथ कृत इस ग्रंथ में औरंगजेब के राज्य की घटना का उल्लेख सम्भव नहीं। इस उल्लेख से भी यह ध्वनि निकलती है कि यह वार्त्ता कदाचित् औरंगजेब के बाद लिखी गई है।"[1]

(४) 'श्री गुसांईजी के सेवक गंगाबाई क्षत्राणी की वार्त्ता शीर्षक ५१ में लिखा है' और सौलहसौ अट्ठाइस में विनको जन्म हतो और सत्रहसों छत्तीस वर्ष सूधी वे भूतल पर रही हती (१५७१ से १६७९) एकसौ आठ वर्ष सूधी रही हती और मेवाड़ में श्रीनाथजी के संग आई।

श्री गोवर्द्धननाथ के प्राकट्य की वार्त्ता में इस घटना की तिथि स्पष्ट दी हुई है। इस उल्लेख के शब्द निम्नलिखित हैं :—

"मिति आसौज सुदी १५ शुक्ल संवत् १७२६ के पाछिली पहर रात्री श्री वल्लभजी महाराज यान सिद्ध कराए, आरोगाए। पाछें रथ हांके चले नाहीं। तब श्री गोस्वामी विनती किए तब श्रीजी आज्ञा करी जो गंगाबाई को गाड़ी में बैठाय कें संग ले चलो। रथ के पीछे गाड़ी चली आवै।"[2]

इस तरह यह घटना इस प्रकरण के अनुसार भी १६६९ ई० में ही पड़ती है। गंगाबाई के इस निश्चित उल्लेख से भी यही सिद्ध होता है कि दोसौ बावन वार्त्ता गोकुलनाथ कृत नहीं हो सकती है। इसके पश्चात् इस लेख में लिखा है कि दोनों वार्त्ताओं के व्याकरण के अनेक रूपों में बहुत अन्तर है। जिससे स्पष्ट रीति से यह सिद्ध हो जाता है कि ८४ तथा २५२ वार्त्ता के रचयिता दो भिन्न व्यक्ति थे और २५२ वार्त्ता निश्चित रूप से सत्रहवीं शताब्दी के बाद की रचनाएँ हैं।

'ऊपर दिये हुये समस्त कारणों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोसौ बावन वार्त्ता गोकुलनाथ कृत नहीं हो सकती, कदाचित् चौरासी वार्त्ता के अनुकरण में सत्रहवीं शताब्दी के बाद किसी वैष्णव भक्त ने इसकी रचना की होगी।'[3]

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ८४ वैष्णवों की वार्त्ता को श्री गोकुलनाथजी कृत माना है और २५२ को सन्देह की दृष्टि से देखा है और अपनी संतुलित आलोचना में आपने इसे किसी दूसरे का लिखा बताया है, रचा नहीं। आपका वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी वार्त्ता के तीन संस्करणों को पृथक् पृथक् न मानने के कारण भ्रम में पड़ गया है। आपकी सभी आपत्तियाँ निराधार

१ डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा।
२ श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता।
३ डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा।

हो जाती हैं यदि यह स्वीकार कर लिया जावे कि वार्त्ता के तीन संस्करण प्रचलित हैं और तीनों अपने मूल रूप में मौलिक हैं। प्रथम श्रीकृष्णभट्ट लिखित प्रसंगात्मक रूप, द्वितीय गोकुलनाथजी प्रणीत संख्यात्मक, तृतीय श्री हरिरायजी कृत भावात्मक। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि श्री हरिरायजी ही दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता को पूरा करके समसामयिक रूप देने वाले हैं। श्री हरिरायजी का समय संवत् १७७२ तक है।

इसलिए श्री गोकुलनाथजी के तिरोधान के पश्चात् जिन घटनाओं का उल्लेख करके डा० धीरेन्द्र वर्मा २५२ की वार्त्ता को गोकुलनाथजी के पीछे की रचना मानते हैं। वे घटनाएँ श्री गोकुलनाथजी के पीछे की अवश्य हैं। इसमें सन्देह नहीं है पर सम्प्रदाय में उनके महत्व का ध्यान न रखकर यह मानना पड़ता है कि वे घटनाएँ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में श्री हरिरायजी द्वारा ही वार्त्ताओं को समसामयिक और सम्पूर्ण रूप देने के लिये सम्मिलित करदी गई थी। २५२ वैष्णवन की मूलवार्त्ता की सबसे प्राचीन प्रचलित १८७१ संवत् की हस्तलिखित प्रति से लेकर संवत् १९५० तक की सभी प्रतियों को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वार्त्ता में कितना अंश श्री गोकुलनाथजी के समय तक का है और कितना पीछे से श्री हरिरायजी द्वारा जोड़ा हुआ है। उदाहरण रूप से गंगाबाई की वार्त्ता में जहाँ यह वाक्य आया है—"और वार्त्ता करते और जो चाहिये सो मांग के आरोगते सो ऐसी केतनिक वार्त्ता है।" ऐसी केतनिक वार्त्ता है वाला यह अंश महत्वपूर्ण है। इस पर विचार करना आवश्यक है। यह वाक्य सभी वार्त्ताओं के उस प्रसंग के अन्त में आता है जहाँ कि वार्त्ता समाप्त होने को होती है। इसे 'इतिश्री' वाक्य समझना चाहिये। सभी वार्त्ताओं में यह सामान्य रूप से लिखा गया है। इसके बाद का जो प्रसंग है वह पीछे से बढाया हुआ है और डा० धीरेन्द्रजी ने ऐसे मिश्रित प्रसंग को पकड़कर चौरासी ओर दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के दो लेखक माने हैं जो ठीक हैं। इस सम्बन्ध में इसी प्रकरण में श्री गोकुलनाथजी दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के रचयिता सिद्ध हो चुके हैं। क्योंकि हरिरायजी इन प्रसंगों को बढ़ा देने के कारण उसके पूरक या संशोधक ही कहे जाएँगे रचयिता नहीं। भाषा के जिस भेद की ओर डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ध्यान आकर्षित किया है वह कारक चिह्नों के भिन्न रूपों के प्रयोग और क्रिया के रूपों का है जैसे—

	चौरासी	दोसौ बावन
कर्मसंप्रदान को	कों	कुँ कूं
करण संप्रदान	सो	सूं सुं
	हौं, हों, है,	हूं, हुं, है
	हुतो, हुते, हुती	हतो, हते, हती
	करौ, देखौ, गावौ	करो, देखो, गावो

जितने प्रकाशित संस्करण देखने को मिले हैं, उनमें वह भेद कई रूप से है। सन् १८८३ की नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित प्रति (८४ वैष्णवन की वार्त्ता) में इसने और भी अद्‌भुत रूप धारण कर लिया है, कों, कौ, ओ, गया और को, कौ, ऐसे ही कुं के दीर्घ पक्ति सर्वत्र दिखाई पड़ती है। पर २५२ की पुरानी प्रकाशित प्रतियों में झुकान सूं, कूं की ओर है। लेकिन हस्तलिखित प्रतियों में सो, सों, सूं, करो, करौ देखो, देखौ सभी प्रयोग मिलते हैं। जिससे एक तो यह लगता है कि ग्रामीण और नागरिक दोनों की बोलियों में जो अन्तर है उसके कारण प्रतिलिपिकार के व्यक्तित्व ने यह भेद फैला दिया है। ब्रज में 'है' के लिये

'हे, हें, है' तीनों रूपों का प्रचलन है, यद्यपि वह ठीक नहीं है। ऐसे ही करो के करौ, करयो, 'करो' तीन रूप मिलते हैं। भाषा का यह भेद अधिकतर लेखकों के प्रमाद और असावधानी का फल है। यह भेद किसी हद तक स्थानीय भी है। मथुरा में 'करौ' और गोकुल में करो आज भी बोला जाता है।

इस प्रकार भाषा के प्रयोग के अनुसार दूसरे ग्रंथकर्त्ता का अनुमान ठीक नहीं है। भाषा की दृष्टि से इन ग्रन्थों की परीक्षा इस प्रबन्ध में एक अलग प्रकरण में की गई है। यह तो ठीक है कि यह ग्रंथ केवल श्री गोकुलनाथजी रचित हैं, लिखित नहीं। श्री गोकुलनाथजी का आदरसूचक ढंग से उल्लेख श्री कृष्णभट्ट की श्रद्धा का फल है और पुष्टि सम्प्रदाय की व्यावहारिक परम्परा के अनुसार है। प्रत्येक पुष्टिभक्त सेवक आचार्य लोगों का नाम इसी प्रकार लेता है और लिखता है। इससे इसके सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं फैलना चाहिए।

आचार्य चन्द्रवली पांडे

विचारविमर्श—हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित—तथा जनभारती सम्वत् २०११ (वर्ष २) संख्या २। लेख शीर्षक—चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता प्रामाणिक क्यों ?

आपका पक्ष है—प्रियादास और नागरीदास के प्रमाण पर अब यह सिद्ध हो जाने में क्या सन्देह रहा कि वास्तव में 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' प्रियादास की टीका के उपरान्त और नागरीदासजी के पद प्रसंग माला के अनन्तर किसी समय लिखी व प्रचलित की गई। प्रियादास की टीका का समय है सम्वत् १७६९—

सम्वत् प्रसिद्ध दस सात उन्हत्तर।
फाल्गुन मास वदी सप्तमी बिताई के॥

किन्तु नागरीदास की पद प्रसंगमाला का ठीक समय ज्ञात नहीं। हम यहाँ उसके समय के फेर में पड़ना नहीं चाहते और यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'धन चौरासी भक्त' का समय ही हमारे लिये पर्याप्त है। पहिले उसी को लीजिये।

सतरा सै पचाणवें संवत सावणमास।
कलि वल्ली वैराग की करी नागरीदास॥

नागर समुच्चय पृष्ठ २०—२३ से आप पद प्रसंगमाला की तिथि सिद्ध करने के लिए एक पद उद्धृत करके यह लिखते कि मुहम्मदशाह या अहमदशाह की ओर इस पद में निर्देश है। आपने लिखा है कि 'निदान यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सम्वत् १७९५ अथवा सम्वत् १८११ के पूर्व भी 'चौरासी वार्त्ता' का प्रचार नागरीदास जैसे कृष्णभक्तों में न था जो वल्लभकुल के भक्त थे। इसका निर्माण कब हुआ यह कहना अत्यन्त कठिन है फिर भी अनुमान के सहारे कुछ न कुछ पता लगाया जा सकता है। नागरीदास के प्रमाण और ख्यालटप्पा के आधार पर तो इसका समय मोहम्मदशाह के पहले किसी प्रकार भी निर्धारित नहीं हो सकता है। इसके बाद कब यह वार्त्ता रची गई यह अनुसंधान का विषय है। अपनी धारणा तो यह है कि १७५० ई० अथवा सम्वत् १८०७ वि० के पहले इस वार्त्ता का यह रूप वर्तमान नहीं दिखाई देता चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता का वर्तमान रूप किसी दशा में प्रामाणिक नहीं हो सकता और उसकी प्रति इस दशा में कभी भी १७५२ सम्वत् की उपलब्ध नहीं हो सकती।

१७५२ की भावनावाली वार्त्ता की प्रति के सम्बन्ध में उन्होंने जो काशी के राजा का विवरण दिया है उसके ऊपर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से उसमें से ही यह प्रमाणित हो जाता है कि काशी में उस समय कोई ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति वर्तमान था जिसे राजा का पद, बादशाह से भले ही प्राप्त न हो, पर वह प्रजा सेवक और पोषक रहा है और वह गंगा के पार रहता होगा जहाँ 'किला' पीछे बना है। राजा का घर सदैव गढ़ गढ़ी या किला के नाम से ही प्रसिद्ध होता है और आपत्ति के समय निर्बल और असहायों को वहाँ शरण मिलती है इसलिये 'गंगापार' को इतिहास के विरुद्ध सिद्ध कर देने से वास्तविकता पर प्रकाश ही पड़ता है वह इतिहास विरुद्ध सिद्ध नहीं होता।

श्रीयुत पांडेजी ने वार्त्ता की शैली को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से न तो देखा ही है और न उसे समझने की चेष्टा की है। इस कारण वे उत्तरकालीन इतिहास से प्रमाण चुनकर प्रचलित परम्पराओं का खंडन करना चाहते हैं और उनका अपने मनोनुकूल भाष्य कर लेते हैं। वार्त्ताकारों की शैली की अपनी दो निजी विशेषताएं हैं। एक तो देश के सम्बन्ध में उन्होंने गुजरात काठियावाड़ और मारवाड़ को एक प्रदेश मान लिया है तथा सांचोरा ब्राह्मण मारवाड़ के प्रायः होते हैं पर वार्त्ता में वे गुजराती माने गए हैं। काठियावाड़ के कुनबी पटेल भी गुजराती माने गए हैं। दूसरे सम्मानित राजपुत्र या वीर शासक को राजा की संज्ञा दी गई है जैसे कि बीकानेर के राजा कल्याणसिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह 'राजा' पद के अधिकारी नहीं थे फिर भी राजकुमार होने के नाते उनको 'राजा' लिखा गया है। कहने का तात्पर्य स्पष्ट शब्दों में यह है कि समस्त वार्त्ता-साहित्य में भूगोल और इतिहास दोनों का वैज्ञानिक अनुशीलन नहीं किया गया है। क्योंकि इसका उद्देश्य आध्यात्मिक था और उसी दृष्टिकोण को इस ग्रन्थ में प्रधानता दी गई है। इसलिये वार्त्ता के अध्ययन करने वालों को भी वार्त्ताओं में भूगोल और इतिहास की अपेक्षा 'धार्मिक सिद्धान्त' की पृष्ठभूमि अधिक मिलती है। श्री चन्द्रवलीजी को वार्त्ताओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित और आपत्तियाँ हैं :—

१—वार्त्ताओं को श्री गोकुलनाथजी कृत कहना एक भ्रमात्मक परम्परा पालन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

यहाँ आपने श्री गोकुलनाथ नाम के सम्बन्ध में चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में से कृष्णदास की वार्त्ता और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में से एक चूहड़े की वार्त्ता के कुछ अंश निकालकर यह सिद्ध करना चाहा है कि 'स्वयं' गोकुलनाथ की प्रसिद्धि के विषय में वार्त्ताओं में विभेद है। दोनों वार्त्ताएं अलग-अलग हैं एक में श्री गुसांईजी ने कृष्णादासी की कानि से गोकुलनाथ नाम रखा है और दूसरी में श्री गोकुलनाथजी ने चूहड़े से पूछा है कि मेरा क्या नाम श्रीनाथजी ने लिया है ? दोनों वार्त्ताओं में किसी न किसी स्थान पर यह वाक्य आया है 'श्री गोकुलनाथजी नाम प्रसिद्ध भये' यह प्रसंग कृष्णादासी की वार्त्ता के बीच में है और चूहड़े की वार्त्ता के अन्त में। इसे पढ़कर ही श्री चन्द्रवलीजी को दोनों वार्त्ताओं में एक ही प्रसंग दिखाई दिया है, यद्यपि, दोनों प्रसंग अलग-अलग हैं और दो वार्त्ताओं में हैं। यदि आपने इन्हें ध्यान से पढ़ा होता और वार्त्ता के सम्बन्ध में निर्णय देने की शीघ्रता न की होती तो आप जैसे विद्वान् से यह भूल कभी न होती। इतना ही नहीं आपको इन वार्त्ताओं के आधार पर यह निष्कर्ष न जाने कैसे मिल गया कि इन दोनों वार्त्ताओं के लेखक दो भिन्न व्यक्ति हैं जिनमें से एक भी गोकुलनाथ नहीं हैं ? आपने इसका

कोई कारण नहीं दिया है पर शायद गोकुलनाथजी के नाम का दोनों में आदरपूर्वक उल्लेख देखकर आपने डा० धीरेन्द्र वर्मा के दिखाये मार्ग पर चलकर दोनों को किसी अन्य व्यक्ति की कृति बता दिया है। इसी प्रसंग में लिखा जा चुका है कि यह आदरसूचक नाम 'कृष्णभट्ट' की श्रद्धा का फल है अथवा श्री हरिरायजी द्वारा लिखा गया है जैसाकि वार्त्ता के प्रक्षिप्त अंश के प्रकरण में लिखा गया है। आगे चलकर आप स्वयं कृष्णदास मेघन की वार्त्ता का उल्लेख देखकर यह लिखते हैं कि 'पद्मनाभदास की वार्त्ता श्री गोकुलनाथजी श्री सर्वोत्तम की टीका में लिखे हैं'। और फिर भी यह नहीं मानते हैं कि वार्त्ताकार श्री गोकुलनाथजी हैं। इस उद्धरण से श्री चन्द्रवली की आलोचना कुछ उथली अवश्य पड़ जाती है। और उन्होंने ऊपर चौरासी या दोसौ बावन दो में से किसी को भी गोकुलनाथ कृत न मानने का जो संकल्प किया था वहाँ पीछे से इन्हें 'उनसे प्रभावित अथवा उन पर आधारित अवश्य है' लिखकर संतुष्ट होना पड़ा है।

आपकी दूसरी आपत्ति नाभादास के भक्तमाल में अथवा प्रियादास की टीका में वार्त्ता के उल्लेख का अभाव है। यही नहीं आपने वार्त्ता के एक दो वैष्णवों की कथा की तुलना भक्तमाल के प्रसंगों से करके वार्त्ताकार को भक्तमाल से प्रसंग उड़ाकर खूब बढ़ा-चढ़ाकर लिखने और विवरण को भरपूर कर देने का अपराधी ठहराया है। 'वार्त्ता' की यह प्रकृति रही है कि उड़ाए हुये प्रसंग को खूब बढ़ा-चढ़ाकर लिखें और उसका विवरण भी भरपूर दें।' यहाँ विचारणीय है कि यदि वार्त्ताकारों ने भक्तमाल से प्रसंग उड़ाए भी हैं तो बहुत थोड़े अर्थात् वे ही प्रसंग उड़ाए हुये हो सकते हैं जो भक्तमाल की टीका में भी हैं और वार्त्ता में भी हैं पर वार्त्ता में तो उससे लगभग तीनसौ प्रसंग अधिक हैं। जिसके पास अपने तीनसौ प्रसंग हैं वह 'प्रियादास' के थोड़े से प्रसंग चुराकर अपनी ८४ और दोसौ बावन की संख्या को क्यों कलंक लगायेगा ? दूसरे प्रियादास या नाभादास दोनों साम्प्रदायिक व्यक्ति नहीं है। इसलिये साम्प्रदायिक चरित्रों के विषय में उनकी जानकारी एक सामान्य से सामान्य साम्प्रदायिक व्यक्ति की जानकारी के बराबर भी नहीं हो सकती है फिर अधिक किस तरह होगी ?

आपकी तीसरी आपत्ति कृष्णदास की वार्त्ता के 'ख्यालटप्पा' शब्द पर है जिसका आपने मौलाना मौलवी अब्दुलहलीम 'शरर' के हिन्दुस्तानी की 'मौसूकी' नामक किताब से उद्धरण देकर समर्थन किया है कि 'यह 'ख्यालटप्पा' मुहम्मदशाह के जमाने के बाद भारतीय संगीत में आया है।'

यह एक ऐसा तथ्य था जिस पर सभी को झुकना पड़ता पर वार्त्ता के उसी उद्धरण को ध्यान से पढ़ने पर जिसके बल पर और इस प्रकार की साक्षी पर विद्वद्वर पांडेजी ने वास्तविकता को बाजारू और बाजारू चीजों से सम्बन्धित बताया है; यह लगता है कि आलोचक ने इस प्रसंग को ही ध्यान से नहीं पढ़ा है और वार्त्ताओं के सम्बन्ध में वे जो अपनी धारणा निश्चित कर चुके हैं उसके अनुसार 'ख्यालटप्पा' पर ही बल दिया है। आपके द्वारा उद्धृत प्रसंग में ही लिखा है 'तब वा वेश्या सों कह्यो तेरो गान हू आछो और नृत्य हू आछो परि हमारौ सेठ है सो तेरे ख्यालटप्पा पर रीझेगो नाहीं।' इससे तो मेरी समझ में कुछ और ही ध्वनि निकलती है। 'तेरो गान हू आछो' और नृत्य हू आछो कहकर तो 'ख्याल-टप्पा' का अर्थ इतना ही है कि मैं जो तुझे पसन्द करके श्रीजी के दरबार में ले जा रहा हूँ वहाँ तुझे यह चलती चीजें, बाजारू चीजें नहीं गानी होंगी। श्रीनाथजी संगीत के रसिक हैं और उनके यहाँ कीर्तन की सेवा होती है, ऐसे गुणग्राहक के सामने तुझे अपना संगीत कौशल

प्रकट करना होगा। ये वाक्य श्री कृष्णदासजी के हैं, इसे तो पांडेजी भी मानते हैं। कृष्णदासजी ने स्वयं कीर्तन के बहुत से पद बनाए थे और उन्हें यदि हम अच्छा गाने वाला न मानें तो भी उन्होंने श्रीजी की सेवा में रहकर सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास आदि की संगीत परम्परा को समझने की योग्यता तो अवश्य ही प्राप्त करली होगी और राग-रागिनियों का भी इनको ज्ञान हो गया होगा। इसी वार्त्ता में है 'सो कृष्णदास वेश्या ऊपर रीझे और मन में कहे जो यह तो श्रीनाथजी के लायक है।' अब प्रश्न यह है कि क्या श्रीनाथजी का अधिकारी उस मंदिर की संगीत परम्परा से परिचित होते हुये भी और उसको श्रीनाथजी के योग्य समझते हुये तथा यह बताते हुये भी कि 'हमारो सेठ तेरे ख्यालटप्पा पर रीझैगो नाहीं' उसे श्रीजी द्वार में 'ख्यालटप्पा' गाने के लिये लाकर खड़ा कर देगा। मेरी अल्प बुद्धि में कदापि नहीं; और न वार्त्ता के विवरण का ही यह अर्थ हो सकता है कि वह वेश्या केवल ख्यालटप्पा गाने वाली थी और कृष्णदासजी ऐसी बाजारू चीजों को बाजार में से बाजारू ख्याल टप्पा गाने के लिये उसके गान और नृत्य दोनों की सराहना करते हुये ले आये थे। अब रही 'ख्यालटप्पा' शब्द के प्रयोग की बात उस पर भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि श्री पांडेजी की आलोचना का आधार वही है। इस सम्बन्ध में पाँच बातें विचारणीय हैं—

(१) वह वेश्या बाजार में गा रही थी और बाजार के लोगों के चलती हुई चीज ही उपयुक्त थी। वहाँ राग की बारीकियों से काम न चलता होगा इसलिये उसे व्यावहारिक चीज 'ख्यालटप्पा' ही गाना पड़ा होगा।

(२) 'ख्याल टप्पा' गाते हुये भी कृष्णदास ने उसमें 'आछो' गान के सब लक्षण देखकर ही प्रशंसा की होगी 'ख्यालटप्पा' की बुराई करते हुये भी ख्यालटप्पा वाली को पसन्द नहीं कर लिया होगा। फिर वहां के लिये जहाँ का सेठ 'ख्यालटप्पा' पर रीझता नहीं है। ऐसी वेश्या को तो श्रीजी के दरबार में लाना ही फिर व्यर्थ होता।

(३) ख्याल के ईजाद करने वाले मियां सारंग हैं जो मुहम्मदशाह के समकालीन हैं। चन्द्रवलीजी के विचार से इससे पहले यह शब्द संगीत समाज में होना ही नहीं चाहिये इसलिए ख्याल शब्द का उल्लेख ही बताता है कि वार्त्ता की यह घटना मुहम्मदशाह के पीछे की है। फिर वार्त्ता श्री गोकुलनाथजी कृत कैसे हो सकती है? यदि कहीं यह कथन अक्षरशः सत्य होता तो वार्त्ता की प्रामाणिकता के विरुद्ध बहुत अच्छा प्रमाण था। पर बात ऐसी नहीं है। मियाँ सारंग, जिनका असली नाम मालूम नहीं, केवल 'ख्याल' के प्रचारक हैं और उसमें आध्यात्मिक पुट देने वाले हैं। ख्याल का प्रचलन इससे पहले भी था और उनमें शृंगार का आधिक्य हुआ करता था।

(४) टप्पा और ठुमरी का तो इसके बाद प्रचलन हुआ है। ठीक है। मौलाना अब्दुल हमीद शरर ने भी तो यही लिखा है कि 'उसके बाद लखनऊ की बदमजाकी ने टप्पा और रवाज़ देकर मुल्क में एक मुख्तज़ल और बाजारी मजाक पैदा कर दिया।' यहाँ रवाज़ देना शब्द स्पष्ट रीति से बताता है कि लखनऊ के बदमजाज लोग टप्पा और ठुमरी के आविष्कारक नहीं थे वे उसके प्रचारक मात्र थे। यह हल्के गाने समाज में इससे पहले से चले आ रहे थे जिन्होंने संगीत के ह्रास के समय जोर पकड़ लिया था। अल्प संगीतज्ञ या साधारण लोग इन्हें पहले भी पसन्द करते रहे हैं केवल 'राजगान' में इनका प्रचलन और मान्यता बाद में हुई है। संगीत के उन्नायकों और हिमातियों की अभिरुचि का यह पतन कृष्णदासजी के पीछे का है। वार्त्ता से तो केवल इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि 'ख्यालटप्पा' कृष्णदासजी

के समय बुरा माना जाता था, और मौलाना 'शरर' ने जिस काल का उल्लेख किया है उसका प्रचलन उसमें हो गया था उसे कोई बुरा न कहता था। भले ही संगीतज्ञों की दृष्टि में वह निम्न अभिरुचि का सूचक रहा हो पर जनरुचि उसे अच्छी तरह अपना चुकी थी। 'ख्याल-टप्पा' शब्द से ही इस कारण वार्त्ताएँ मुहम्मदशाह के पीछे की नहीं ठहर सकती हैं।

(५) नागरीदास और प्रियादास दोनों ने 'ख्यालटप्पा' का उल्लेख नहीं किया है फिर वार्त्ताएँ यदि पुरानी हैं तो इनमें यह उत्तरकाल में प्रचलित संगीत विषयक शब्द कहाँ से आगया और यदि आगया है तो वे इनसे पीछे की रचनाएँ होनी चाहियें। यह तो ऊपर लिखा जा चुका है कि 'ख्यालटप्पा' ही नहीं ठुमरी शब्द भी नया नहीं है अब रहा कि नागरीदास और प्रियादास ने इनका उल्लेख क्यों नहीं किया? प्रियादासजी के विषय में तो इतना ही यथेष्ट होगा कि उन्होंने कृष्णदास का वृत्त प्रचलित वृत्त के आधार पर लिखा था और वे वल्लभ कुल से परिचित या सम्बन्धित न थे उनकी अपेक्षा वार्त्ताकार अपने एक सेवक का चरित्र लिख रहा है और उसके एक ऐसे कर्म का उल्लेख कर रहा है जो सामाजिक दृष्टि से उस समय भी निन्दनीय था पर उसे सेवक की गुण ग्राहकता और 'सर्वोत्तम की भेंट' के भाव की रक्षा करनी है। इसलिये उसने अच्छे संगीत की तुलना के प्रसंग से 'ख्यालटप्पा' का उल्लेख कर दिया है, जिसकी प्रियादास को आवश्यकता नहीं थी। अब प्रश्न है कि क्या नागरीदास को भी इसकी आवश्यकता नहीं थी? उत्तर स्पष्ट है कि वे भी उसे 'गायिवे में प्रवीन' लिखते हैं फिर ख्यालटप्पा वाली कैसे लिखदें। कृष्णदासजी को तो अपने प्रभु का माहात्म्य भी दिखाना था इसलिये ख्यालटप्पा लिख दिया है। केवल इस दृष्टि से भी वार्त्ताओं को उत्तरकालीन रचनाएँ सिद्ध करना कठिन है। वार्त्ता कौर भक्तमाल और नागरीदास तीनों की शैली अलग-अलग है। इसलिये भी जो प्रियादास ने लिखा है वही वार्त्ता में हो यह आवश्यक नहीं है। हाँ, जहाँ दोनों में विरोध है वहाँ चिन्तनीय है पर वृत्त का संक्षेप छप्पय और पदों का गुण है और उसका विस्तार वार्त्ता की शैली है, क्योंकि वे गद्य ग्रन्थ हैं।

नागरीदास के 'धन चौरासी भक्त' देखकर पांडेजी लिखते हैं कि उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी पर आगे बढ़ने पर वहाँ भी उन्हें धोखा ही मिला क्योंकि 'धनि गोविंद कुम्भनादि' में कुम्भनदास को तो आप चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में परख सके और गोविंद का नाम देखकर वहाँ भी आपको चौरासी और दोसौ बावन दोनों की खिचड़ी दिखाई पड़ी और यह उल्लेख भी चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों के सम्बन्ध में नहीं जँचा। कुम्भनदास और गोविन्दस्वामी दोनों अष्टछाप के कवियों में से हैं, अष्टसखा हैं। फिर उन्हें एक साथ देखकर तो दोनों वार्त्ताओं (चौरासी, दोसौ बावन) को नागरीदास के समय तक स्वीकृत मान लेना चाहिए था न कि उससे वार्त्ता की अप्रामाणिकता सिद्ध की जाती। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इस सम्बन्ध में भी पांडेजी ने शीघ्रता और पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण से काम किया है, और पुष्टिमार्गीय परम्पराओं के अनुसार इस कथन की जाँच नहीं की है। इस कारण आपके कथनों को आदर की दृष्टि से देखते हुए भी प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता है।

इसके आगे पांडेजी यह नहीं चाहते कि 'महाप्रभु' शब्द का प्रयोग श्रीकृष्णचैतन्य को छोड़कर किसी और के लिए हो। उसे वे श्रीकृष्णचैतन्य के लिये सुरक्षित रखना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में महाप्रभुजी के 'कनकाभिषेक' और अनेक शास्त्रार्थों से इसकी उपयुक्तता सिद्ध है। रहा 'महाप्रभु' शब्द का श्री गुसांईजी के लिये प्रयोग जिसका उद्धरण आपने दिया

है वह केवल एक आदरसूचक शब्द के रूप में आया है, उपाधि के रूप में नहीं है। ज़रा और ध्यान से देखने पर यह पता चलता है कि श्री वल्लभाचार्यजी के लिये सम्प्रदाय में प्रचलित उपाधि का प्रयोग गोविंदस्वामी ने अपनी वार्त्ता में तब किया है, जब वे शरण में नहीं आये थे और सम्प्रदाय में इस उपाधि का मूल्य क्या है इसे वे ठीक से नहीं जानते थे। शरण आने के पीछे तो फिर गोविंदस्वामी ने इसका प्रयोग आदरसूचक रूप से भी नहीं किया है। कोई भी पुष्टिभक्त सेवक इस भेद से अनभिज्ञ नहीं है।

श्रीकृष्णचैतन्य ने तो सम्वत् १५६६ में घर छोड़ा है और वे इस उपाधि के अधिकारी संवत् १५६६ के बहुत बाद में हुए होंगे। किन्तु श्री महाप्रभुजी को विद्यानगर की पंडित सभा में संवत् १५६५ में इस उपाधि से भूषित किया गया था ऐसा उल्लेख मिलता है। इसी लेख में आपने नागरीदास और ८४ वैष्णवन की वार्त्ता में से सूर के सम्बन्ध में उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि नागरीदासजी ने सूरदासजी को 'लरिका' लिखा है और वार्त्ताकार ने 'स्वामी' दूसरे नागरीदासजी ने इन्हें श्री गुसांईजी का सेवक बताया है और वार्त्ताकार ने श्री महाप्रभुजी का। इस प्रकार दोनों ग्रंथों में अष्टछाप के इस प्रतिष्ठित कवि के सम्बन्ध में मतभेद मिलता है उससे भी यही सिद्ध होता है कि वार्त्ताएँ नागरीदास के समय तक प्रचलित न हो पाई थीं। अन्यथा सूर जैसे प्रसिद्ध सखा के विवरण में इतना अन्तर क्यों पड़ता? बात विचारणीय है। और यदि दोसौ वर्ष पीछे के विवरण को प्राथमिकता देनी है तो और भी ध्यान से इस भेद को देखना आवश्यक है।

महाप्रभुजी के लिए श्री गुसांईजी शब्द लिखना भारी भूल है और जो लेखक यह भूल कर सकता है उसके ग्रंथों को प्रमाण रूप से उद्धृत करके किसी पक्ष का समर्थन करना या उसके विरुद्ध उसे प्रामाणिक कहना खतरे से खाली नहीं। अब जरा नागरीदास की पदप्रसंगमाला के इस विवरण के आसपास के पदों और विवरणों को देखना है कि उस सबका सम्बन्ध श्री गुसांईजी विट्ठलनाथ से है या श्री वल्लभाचार्यजी से। यदि सब प्रसंगों का सम्बन्ध महाप्रभुजी से है तो फिर यह शब्द या तो भूल से लिखा गया है या असावधानी से जिसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

वल्लभ संप्रदाय में यह बात सर्वमान्य रूप से प्रचलित है कि सूरदासजी श्री महाप्रभु की शरण में आए थे न कि श्री गुसांईजी की। स्वयं सूरदासजी ने लिखा है "भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो। श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग मांझ अँधेरो।" तब फिर यदि नागरीदास के 'गुसांईजी' शब्द लिख देने से साहित्य और समाज में यदि इस तथ्य के सम्बन्ध में भ्रम फैला है तो नागरीदास का उल्लेख अप्रामाणिक माना जायगा और उनके प्रत्येक उद्धृत अंश को किसी कसौटी पर कसकर परखना होगा। केवल इसलिए कि वह कथन नागरीदास का है, वह पत्थर की लकीर नहीं हो जायगा। नागरीदासजी ने यहाँ ऐसी ही भूल की है क्योंकि इसके आगे के पद और प्रसंग दोनों का सम्बन्ध महाप्रभुजी से है श्री गुसांईजी से नहीं। वे सब चौरासी वैष्णव की वार्त्ता के अनुकूल पड़ते हैं। इतना ही नहीं श्री नागरीदासजी स्वयं भक्तमाल की टीका से परिचित होते हुये भी ऐसे प्रसंगों का उल्लेख करते पाए गये हैं जिनको भक्तमाल का समर्थन प्राप्त नहीं है और जिनसे भक्तमाल के कथन का विरोध भी होता है। तो फिर क्या मान लिया जाय कि नागरीदास के समय तक भक्तमाल बना ही न था? क्योंकि यदि वे इनसे परिचित होते तो इनके विरुद्ध क्यों लिखते? पाँडेजी ने वार्त्ता

के और भक्तमाल व नागरीदास के विरोध के लिए यही शैली अपनायी है जो उचित नहीं है और जिसके आधार पर भी वार्त्ताएँ अप्रामाणिक न ठहर सकेंगी और उनके नागरीदास के पीछे की रचना होने का उपक्रम भी ठीक न ठहरेगा।

चौरासी में आपको कुंभनदास की वार्त्ता में उनके बेटों का जो प्रसंग मिला है वह दोसौ बावन में वैसा का वैसा नहीं मिला है तब भी आप हैरान हो गये हैं, क्योंकि उसका उल्लेख चौरासी में है। आपने चौरासी और दोसौ बावन दोनों को अलग-अलग नहीं समझ पाया है। आपने गंगाबाई की वार्त्ता के आधार पर दोसौ बावन का समय निकालने का प्रयत्न किया है क्योंकि उसमें गंगाबाई के श्रीनाथजी के साथ संवत् १७२६ में मेवाड़ पधारने का उल्लेख है और मंदिर लूटने का उल्लेख है जो श्री गुसाँईजी के दस वर्ष पीछे की घटना बताई गई है जिससे उसका समय संवत् १६५७ होता है जो इतिहास की दृष्टि से ठीक नहीं है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वार्त्ताओं में समय के सम्बन्ध में आपने सावधानी से काम नहीं लिया है। वार्त्ता की प्रसंगात्मक हस्तलिखित प्रतियों में यह घटना नहीं मिलती है। इस सम्बन्ध में पहले लिख चुके हैं कि पुष्टि सम्प्रदाय में इस घटना का एक विशेष महत्व है इसलिए श्री हरिरायजी ने इसे दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में पीछे से स्थान दिया है।

तदनन्तर आपने 'जेलखाना' कचहरी शब्द के आधार पर वार्त्ता की भाषा को उस काल की नहीं माना है। इस पर वार्त्ता की भाषा के प्रकरण में विस्तार से लिखा जायगा। यहाँ यही लिखना यथेष्ट है कि यह दोनों शब्द उस समय प्रचलित होगये थे।

आपको वार्त्ताओं पर जातकों और 'सुसमाचार' का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई पड़ा है जिसे वार्त्ता पर वाह्य प्रभाव के शीर्षक के अंतर्गत लिखा जा चुका है। अन्त में आपने कांकरौली विद्याविभाग से प्रकाशित वार्त्ता रहस्य को भी प्रसंग और भाषा दोनों की दृष्टि से अप्रामाणिक सिद्ध किया है। वास्तव में लेख के इस अंश का सम्बन्ध वार्त्ताओं से न होकर नंददासजी के वल्लभ सम्प्रदाय में प्रवेश की तिथि से है जिसमें श्री द्वारिकादास परीख और डा० दीनदयालुजी के मतों की परीक्षा की गई है और तुलसी के रामपुर में रहने का खंडन किया गया है। वार्त्ता-साहित्य का इससे कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है इससे इस पर विचार करना इस प्रबंध की सीमा के भीतर नहीं है। श्री चन्द्रवलीजी पांडे ने 'रूपा पोरिया' का उदाहरण देकर यह सिद्ध करना चाहा है कि वार्त्ताएं सब मनमाने ढंग से लिखी गई हैं। आप लिखते हैं :—"दोसौ बावन में एक बात और पते की कही गई है जो है 'केतनेक लोग ऐसे लिखे हैं जो रूपा पौरिया श्वान भये।' सो ये बात झूठी है। कारण जो जान के अन्य प्रसादी रूपा पौरिया खाय नहीं और अजान को इतनो दंड होय नहीं, जासुं ये बात सर्वथा झूठी है।"[1]

रूपा पौरिया की वार्त्ता का यह प्रसंग कि—यह बात झूठी है– सर्वथा झूठी है, केवल प्रकाशित प्रतियों में है। हस्तलिखित किसी भी प्रति में यह प्रसंग नहीं मिला है। इस कारण वार्त्ताओं की रचना मनमाने ढंग से हुई है ऐसा सिद्ध नहीं होता। भावप्रकाश से भी श्वान होने की पुष्टि होती है। श्री चन्द्रवली पांडेजी द्वारा उठाई हुई आपत्तियों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री पांडेजी वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता पर विचार तो करना चाहते हैं पर उस शैली को कोई महत्व देना नहीं

१ वै० १३४ वार्त्ता दोसौ बावन पृष्ठ २५०

चाहते हैं। दूसरे वे पुष्टिमार्ग की प्रचलित मर्यादा से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। अतः उसके साहित्य-उस मर्यादा को, कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं देना चाहते हैं। तीसरे भक्तमाल और नागरीदास को वह वार्त्ताओं की अपेक्षा पुष्टि सम्प्रदाय के वृत्त के लिए अधिक प्रामाणिक मानना चाहते हैं। चौथे महाप्रभु शब्द को केवल श्रीकृष्णचैतन्य के लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। पाँचवे सम्प्रदाय में प्रचलित शास्त्रीय संगीत प्रणाली की प्रतिष्ठा उन्हें स्वीकार्य नहीं हैं। छठे अष्टछाप के आठ आचार्यों का विवरण भी आपको एक स्थान पर देखना रुचिकर नहीं है। सातवें वार्त्ता की किसी प्राचीन प्रति से उसकी प्रकाशित प्रतियों के मिलान करके उनकी दृष्टि में उसके भेद का भी कोई मूल्य नहीं है। आठवें ब्रजभाषा की विशेषकर उसके गद्य की तथा बोलचाल की मान्यताओं के आधार पर वे इस ग्रंथ की परीक्षा नहीं करना चाहते हैं।

इस दृष्टि से यही कहना पड़ेगा कि वे वार्त्ता-साहित्य के साथ न्याय नहीं करना चाहते है और अपने ढंग विशेष से इस साहित्य के महत्व को कम करना चाहते हैं जो सर्वथा अनुचित है और जिस तर्क का आश्रय उन्होंने लिया है उसकी मर्यादा के विरुद्ध है। इस प्रकार से वार्त्ताएँ अप्रामाणिक सिद्ध नहीं होती हैं।

ललिताप्रसाद दुबे—'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता और दोसौ बावन की वार्त्ता' (अध्ययन तुलनात्मक) ले० ललिताप्रसाद दुबे, नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सम्वत् २००६, अंक २—३।

इस तुलनात्मक अध्ययन में लेखक ने तीन परिशिष्टों में कुछ वार्त्ताएँ देकर निम्न-लिखित बातें सिद्ध की हैं—

कि चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता तथा दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता की वार्त्ताएँ एक दूसरे से ली गई हैं। इन ग्रंथों में आपको शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी दिखाई पड़ा है। आपने तीन प्रकार से तुलनात्मक अध्ययन किया है—

(१) दोनों वार्त्ताओं में वही नाम वही घटनाएँ।
(२) दोनों वार्त्ताओं में दूसरे नाम किन्तु वही घटनायें।
(३) दोनों वार्त्ताओं में वही नाम किन्तु दूसरी घटनाएँ।

१—वही नाम वही घटनाएँ—

परिशिष्ट एक में कुम्भनदास गोरवा की वार्त्ता के छठे प्रसंग की तुलना कृष्णदास की वार्त्ता के प्रथम प्रसंग से की गई है। इसमें लेखक ने वही नाम व वही घटनायें देखी हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की बात यह है कि कृष्णदासजी कुंभनदासजी के पुत्र थे और चतुर्भुजदास के भाई थे। कुम्भनदास की वार्त्ता की संख्या ६० है कृष्णदास की ६१। इसलिये पहली वार्त्ता का दूसरी वार्त्ता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरी वार्त्ता में प्रथम वार्त्ता का उल्लेख या अंश स्वाभा-विक है। वार्त्ताओं की शैली एक है, शब्दों के आकार प्रकार भी बहुत कुछ एक से ही हैं इसलिये इनमें शब्द, वाक्य तथा वाक्यांशों की एकता मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है बल्कि उल्टा यह सिद्ध करती है कि इनका रचयिता, लेखक और वक्ता एक ही व्यक्ति है। कुम्भनदासजी के पुत्र कृष्णदास वास्तव में आचार्यजी के सेवक नहीं थे इसलिये ८४ वैष्णवों की वार्त्ता में उनकी वार्त्ता को स्थान नहीं मिल सकता है जोकि भूल से डाकौर संस्करण में उन्हें प्राप्त हो गया है। चौ० वा० की मूल हस्तलिखित प्रतियों में कृष्णदास का प्रसंग कुम्भनदास की वार्त्ता

के अंतर्गत किया गया है। कांकरौली से प्रकाशित १६९७ की प्रति के आधार पर उसका उद्देश्य गो सेवा का महत्व बतलाना है। यही प्रसंग २५२ वार्त्ता की मूल प्रतियों में अलग से गिनाया गया है। इसका कारण भ्रम नहीं है। दोसौ बावन में कृष्णदास को २५२ की संख्या में स्थान मिला है और ८४ में उनको वह स्थान प्राप्त नहीं है।

दूसरे नाम किन्तु वही घटनाएँ—

इसमें लेखक ने चौरासी वैष्णवन की ८० वार्त्ता में से वह अंश उद्धृत किया है जिसमें सद्दू पांडे की बेटी नरो के यहाँ श्रीनाथजी अपना कटोरा भूल आए और दोसौ बावन में कल्याणभट्ट की वार्त्ता में उनकी बेटी देवका के पास कटोरा गिरवी रख आने की बात लिखी है। लेखक को दोनों घटनाओं में एक ही घटना की छाया लगती है किन्तु ये तो स्पष्टतया दो घटनाएँ हैं जिनका सम्बन्ध दो भिन्न व्यक्ति सद्दू पांडे तथा कल्याणभट्ट से है। दोनों में साम्य केवल श्रीनाथजी का दूध पीना है। इन दोनों वार्त्ताओं के अनुसार श्रीनाथजी ने दो बार दूध पिया है। एक बार कटोरा भूले हैं तथा दूसरी बार कटोरा गिरवी रख आये हैं। हाँ, नाम अवश्य दूसरे हैं। ध्यान से देखने पर ये दोनों वार्त्ताएं अलग-अलग हैं।

परिशिष्ट २ में दूसरा उदारण है अच्युतदास सारस्वत ब्राह्मण की वार्त्ता प्रसंग २—(चौ० वा० ६३) और छीतस्वामी की वार्त्ता २५२ की दूसरी वार्त्ता प्रसंग १। इन दोनों में भी लेखक को एक ही घटना दिखाई पड़ी है केवल नाम दूसरे मिले हैं। बात कुछ जँचती नहीं है। प्रथम वार्त्ता का सम्बन्ध महाप्रभुजी से है तथा दूसरी का गोस्वामी विट्ठलनाथजी से। प्रथम में निधन के पश्चात् एक मंदिर में दर्शन हुए हैं तथा द्वितीय में विट्ठलनाथजी विद्यमान थे। तभी छीतस्वामी को अपने आप दर्शन कराए गए हैं। दूसरी में दर्शन स्वतः किए गए हैं। अतः इन दोनों में साम्य की कल्पना निराधार है।

इसी परिशिष्ट (२) में परमानंददास कन्नौजिया ब्राह्मण (चौ० वा० ८९ प्रसंग ३) की तुलना दो० बा० की २४ वीं वार्त्ता (राजा लाखा) से की गई है और दोनों के आधार पर यह संदेह किया गया है कि घटना एक ही है तथा नाम अलग-अलग हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन दोनों वार्त्ताओं में दो रानियों के विशेष बन्दोबस्त के भीतर पर्दे में दर्शन करने और उसी समय सहसा किवाड़ खुलने की घटना का उल्लेख है। ये दोनों प्रसंग एक दूसरे से बहुत मिलते हैं। पर ध्यान से देखने पर इनमें केवल नामों का ही अंतर नहीं है घटना के सूक्ष्म विवरण में भी भेद है। प्रथम वार्त्ता के राजा की रानी पर ऐसी भीर पड़ी है कि उसका सब पर्दा नष्ट होगया है और दूसरे प्रसंग में केवल भीड़ के टूट पड़ने का ही उल्लेख है। यह अवश्य कहा जायगा कि किवाड़ खुलने की घटना दो बार हुई है। यह भी कहा जा सकता है कि दर्शन के समय दर्शन के विशेष प्रबन्ध को जनता नहीं सह सकती है और उसे अनुचित समझकर उस समय किवाड़ बन्द नहीं रखने देती है अथवा यह बात स्वयं विश्वनाथ गोवर्द्धनधरणजी की रुचि के अनुकूल नहीं है। तथा भक्तों को इस प्रकार के आग्रह से हटाने के लिए ही इसके उल्लेख की पुनरावृत्ति हुई है। यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता है कि इन वार्त्ताओं के अलग-अलग होने पर भी घटनाएँ दो नहीं हैं।

इसी परिशिष्ट के भीतर (छ और ज में) दोनों घटनाओं में इनके नाम अलग-अलग हैं पर घटनाओं में सामञ्जस्य है। इन दोनों वार्त्ताओं में प्रसव के बाद उठकर तथा

स्नान कर ठाकुरजी की पूजा की है। पहली में दामोदर की स्त्री वीरबाई को सेवा में विलम्ब हुआ है तथा दूसरी में मेहर की स्त्री के पुत्र हुआ है इसलिये वह पश्चात्ताप करके रोने लगी है और सेवा दोनों ने प्रसव के बाद की है। लेखक ने इन वार्त्ताओं में समानता नहीं बताई है परन्तु इन दोनों में तो बहुत कुछ समानता ही हैं। परिशिष्ट में (झ तथा ञ) दोनों दण्ड के उदाहरण हैं और दोनों में चार आदमी मु दर लेकर मार रहे हैं। एक में भगवदीय की निन्दा की भर्त्सना है और दूसरे में भगवद्धर्म की निन्दा का फल। वात्त एं दोनों अलग हैं तथा प्रसंग भी दोनों अलग है, मुगदर से मारने की घटना एक है। यह प्रसंग ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध अलौकिक शक्ति से है और आज के युग में सर्वसम्मति से और सर्व साधारण में स्वीकृत न हो सकेंगे। यदि प्रथम घटना सम्भव है तो दूसरी फिर सहज है अथवा जिस वातावरण और पृष्ठभूमि में उसकी कल्पना हुई है उसी पृष्ठभूमि और वातावरण में इस दूसरी का औचित्य केवल इतना है कि सम्प्रदाय में निन्दा श्लाघ्य नहीं है। अत: इसकी पुनरावृत्ति इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये हुई है। वार्त्ताओं में पुनरावृत्ति हुई है इसे मानना पड़ेगा।

इस लेख के लेखक ने आरम्भ में ही न जाने क्यों यह मान लिया है कि 'चौ० वा० के लेखक विट्ठलनाथजी के शिष्य' गोस्वामी गोकुलनाथ कहे जाते हैं और दोसौ बावन की वैष्णवन की वार्त्ता इसके पीछे की रचना मानी जाती है। ऐसा मानकर चलने के कारण ही सन्देह के लिये अधिक स्थान प्राप्त हो गया है।

दोनों वार्त्ताओं में वही नाम किन्तु दूसरी घटनाएँ—

परिशिष्ट ३ में लेखक ने चौ० वा० और दोसौ बावन वैष्णवन की भिन्न लिखित वार्त्ताओं में दोनों वार्त्ताओं में वही नाम किन्तु दूसरी घटनाएँ दिखाने का प्रयत्न किया है।

हम इन वार्त्ताओं की पृथक्-पृथक् परीक्षा करके यहाँ दिखाएँगे कि इनका सम्बन्ध कहाँ तक एक ही व्यक्ति से है।

इस उल्लेख के प्रथम आनन्ददास विशम्भरदास साँचोरा ब्राह्मण दोनों के एक ही नाम अवश्य हैं पर वार्त्ताओं के अध्ययन से पता चलता है कि यह दोनों अलग-अलग व्यक्ति हैं। पहले क्षत्री हैं और दूसरे ब्राह्मण। दोनों की वार्त्ताएँ भी अलग-अलग हैं। अतः यह कहना कि नाम एक और घटनाएं अलग-अलग, इनकी वार्त्ताओं पर इनके व्यक्तित्व पर ठीक नहीं है। एक नाम के दो व्यक्ति या अधिक व्यक्ति एक ही जाति में भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं फिर इनमें तो जाति भिन्न है और व्यक्तित्व भी अलग-अलग है। इतना ही नहीं एक नाम के अनेक व्यक्ति गोस्वामीजी और महाप्रभुजी के शिष्य हो सकते हैं और उनकी वार्त्ताएँ अलग-अलग होंगी इनको एक सिद्ध करने के लिए नाम की एकता का आधार पकड़-कर आलोचना करना उचित नहीं है।

पं० कंठमणि शास्त्री—संचालक विद्याविभाग कांकरौली

"वास्तव में देखा जाय तो श्री हरिराय कृत टिप्पण का नाम भावप्रकाश रूप में नहीं मिलता। ताको भाव कहत हैं, 'तहां सन्देह होत है' ताको हेतु यह है", आदि शब्दों से प्रारम्भ होने वाले वाक्यों को भावप्रकाश समझा जाता है —ऐसा वाक्य न तो मूलवार्त्ता

का ही हो सकता है और न हरिरायजी का ही । इसके अतिरिक्त इसे प्रतिलिपिकार का लेख माना जाय ; और कोई गति नहीं है ।[१] तथा.......

"सूरदासजी की वार्त्ता में कुछ प्रसंग ऐसे मिलते हैं जिनमें लिखा है कि सूरदासजी ने सवा लाख कीर्तन रचना का संकल्प किया था पर वे अन्तिम समय से पूर्व केवल एक लाख पदों का ही निर्माण कर सके । उनकी मानसिक उद्विग्नता को देखकर श्रीनाथजी ने सूरश्याम छाप से पच्चीस हजार पदों का निर्माण किया और कीर्तन के 'चौपड़ा' में यत्र तत्र उनका समावेश कर दिया इस प्रकार सवा लाख पद रचना का सूर कृत संकल्प पूर्ण हो गया । परन्तु बहुत से प्रसंगों की भाँति यह प्रसंग भी ८४ वार्त्ता की सबसे प्राचीन प्रति (लेखनकाल सं० १६६७) में नहीं है, अतः प्रक्षिप्त है । इस प्रकार की रचना का प्रसंग श्री हरिरायजी के भावप्रकाश में भी नहीं मिलता । अतः किसी भी प्रमाण व तर्क से एक लाख पद रचना का कथन सिद्ध नहीं होता ।'[२]

'और लौंडी शब्द के आगे रूपमंजरी का नाम प्रकाशित हुआ है जो प्रामाणिक नहीं माना जा सकता जब तक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों में वह उपलब्ध न हो । एक बात और हैं इस प्रसंग पर हरिरायजी कृत 'भावप्रकाश' भी नहीं है । भावप्रकाश में जहाँ नन्ददासजी के लीलाऽन्तः पाती सखा सखी के रूप में उनके नामों का उल्लेख है वहाँ प्रस्तुत लौंडी के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं है ।.......उक्त वार्त्ताओं की प्राचीन प्रामाणिक प्रति की अप्राप्त दशा में यह एक उलझी हुई पहेली है—जो कभी समय पर सुलझेगी । पर यह तो निश्चित है कि नन्ददासजी (सं० १५९०-१६४२) के अनन्तर श्री हरिरायजी (संवत् १६४७–१७१९) द्वारा सम्पादित वार्त्ताओं में वर्णित रूपमंजरी और रूपमंजरी ग्रंथ में वर्णित नायिका रूपमंजरी का एकीकरण सहसा नहीं हो जाना चाहिये ।'[३]

आलोचना—शास्त्रीजी ने 'ताको भाव कहत हैं' इत्यादि टिप्पणी को हरिरायजी कृत होने में सन्देह प्रकट किया है । जहाँ आदरणीय शास्त्रीजी ने 'भाव कहत हैं' 'सन्देह होत है' 'ताको हेतु यह है' शब्दों पर ध्यान दिया है वहाँ उसी के आगे 'सो लिष्यते' (सो कहत हैं, सो लिख्यते) पर ध्यान देने की उतनी कृपा नहीं की है—आगे 'भाव प्रकट करत हैं ।' पर भी ध्यान नहीं दिया है । दोनों का उल्लेख वर्तमान काल में है और दोनों का सम्बन्ध श्री हरिरायजी से है । फिर प्रतिलिपिकार को अपनी ओर से यह जोड़ देने का अधिकार कैसे प्राप्त हो गया—यह समझ में नहीं आता है । इस अनुमान के लिये न तो कोई स्थान है और न तर्क । केवल कल्पना के आधार पर यह सिद्ध नहीं हो सकता है । इसके प्रतिकूल स्वयं शास्त्रीजी भावप्रकाश अथवा भाव को टिप्पण के रूप में स्वीकार करते हैं । टिप्पणियाँ भी अनेक प्रकार की होती हैं कोई अत्यन्त संक्षिप्त व सूत्रवत् और कोई विस्तृत और स्वतंत्र । श्री हरिरायजी की टिप्पणियाँ जिस रूप में प्राप्त हैं वे स्वतन्त्र हैं समसामयिक हैं और मूलसिद्धान्त और चरित्र को विस्तृत रूप में प्रस्तुत करती हैं । उनकी इन टिप्पणियों में मूल स्वाद है और वे संभ्रम को स्पष्ट

---

१ अष्टछाप, प्राचीन वार्त्ता रहस्य–द्वितीय भाग, संवत् २००९ संस्करण पृष्ठ संख्या ६ कांकरौली प्रकाशन ।

२ सूरदास के संदिग्ध पदों का 'विश्लेषण' नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक २ संवत् २०११ पृष्ठ १२९ ।

३ मंजरी पंचक एक दृष्टि निक्षेप सम्वत् २०११ टोडरमल स्मारक ग्रंथ बड़ौदा से उद्धृत (पृष्ठ २–३)

रूप में प्रस्तुत करती हैं। उन्हें यदि भावप्रकाश न कहें तो फिर वार्ता रहस्य प्रकाशक के रूप में अवश्य ग्रहण करना पड़ेगा। शास्त्रीजी ने यह भी ध्यान नहीं दिया कि उस समय 'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए सांच' का प्रचार आचार्यचरणों के बीच नहीं था और संस्कृत के विद्वान् हिन्दी में नहीं लिखते थे तथा उनके कथनों को दूसरे ही लिपिबद्ध करते थे।

सुबोधिनीजी पर श्री हरिरायजी के जो स्वतंत्र लेख प्राप्त हुये हैं वे भी इसी शैली पर लिखे गये हैं। उन लेखों में और 'भावप्रकाश' की शैली में अद्भुत साम्य है। वे लेख भी मूल की व्याख्या करते हुये विषय का स्वतंत्र रूप से निरूपण और भावों का उद्घाटन करते हैं।

मैं अन्यत्र यह सिद्ध कर चुका हूँ कि वार्ता के तीन संस्करण हैं और तीनों स्वतंत्र और मौलिक होते हुये एक दूसरे से सम्बद्ध और सुव्यवस्थित रूप में संलग्न है। इन संस्करणों में स्पष्टीकरण और परिवर्धन की मात्रा ही अधिक है। यह समझ में नहीं आता है कि शास्त्रीजी एक बार इस संस्करण की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करके फिर क्यों इसे इस प्रकार संदिग्ध दृष्टि से देखना चाहते हैं। प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग प्रथम संस्करण (अष्टछाप) के वक्तव्य में नंददासजी की मूलवार्ता और भावप्रकाश वाली वार्ता का उद्धरण देते हुये उन्होंने यह स्वीकार किया है। 'दोनों संस्करणों में मूलवार्त्ता का रूप बिगड़ा नहीं है। प्रत्युत वह अर्वाचीन पुस्तक में विशेष स्पष्टीकरण के साथ दिया गया है। शब्दों का रूपान्तर जैसे बहुत का ''बहोत,' 'गई' का 'गयी', तथा नाम के साथ 'जी' का प्रयोग दोनों संस्करणों के स्पष्ट विभाजक हैं। प्रसंग की न्यूनता और वृद्धि भी इसी प्रकार का अन्यतम विभाजक है। जिससे प्रथम की अपेक्षा दूसरे संस्करण का रूप विशाल हो गया है।'

शास्त्रीजी की दूसरी आपत्ति सूर के सवा लाख पदों पर है। क्योंकि इसका उल्लेख कांकरौली की संवत् १६९७ की प्रति में नहीं है। और न इसको हरिरायजी के भावप्रकाश का समर्थन प्राप्त है। ऐसी दशा में वार्ता के इस कथन को आप सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। जहाँ तक समकालीन साहित्य के समर्थन का प्रश्न है शास्त्रीजी की उक्ति में बल है पर सूर की सामर्थ्य सवा लाख या एक लाख पद रचना की नहीं थी ऐसा किसी प्रकार आपने नहीं सिद्ध किया है। महात्मा सूर का शरणकाल संवत् १५६७ है और निधन समय संवत् १६४० है। इस प्रकार ७३ वर्ष की लम्बी कीर्तन की सेवा में इतने पदों की रचना कोई असम्भव बात नहीं है। ऐसा प्रसिद्ध है कि पुरुषोत्तमजी लेख वाले ने नौ लाख श्लोकों की रचना की थी जिसमें से एक लाख के ऊपर अब भी प्राप्त हैं। दंडौतीघर के 'वल्लभदासजी' के एक लाख पद आज भी उनके सुपुत्र श्री जमुनादासजी मुरैना (ग्वालियर) के पास सुरक्षित हैं।

स्वयं शास्त्रीजी द्वारा प्रकाशित प्राचीन वार्ता रहस्य. द्वितीय भाग, अष्टछाप, प्रथम आवृत्ति, सम्वत् १९९८ की प्रकाशित प्रति में सूर की वार्ता के दसवें प्रसंग में पृष्ठ संख्या ४५ पर हरिरायजी का भावप्रकाश विद्यमान है जिसमें इस प्रसंग का उल्लेख है। न जाने क्यों शास्त्रीजी ने भावप्रकाश न प्राप्त होने की बात लिखी है। इसके अतिरिक्त श्री हरिरायजी के समकालीन इज्जतराम नागर रचित 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो' की टीका में इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार है:—

'और सूर तो सागर कहावत हैं। सो कहत हैं। जो श्री महाप्रभुजी तो सूर कहते और श्री स्वामिनीजी सूरज कहते। और श्री ठाकुरजी सूरस्याम की छाप कीर्तन में धरे हैं' और 'सूरदास ने कह्यो जो पद कूं तुम सवा लक्ष कीर्तन के ऊपर को सुमेर जानो और सवा लक्ष कीर्तन सब याई में सु निकसे हैं।'[1]

अतः यह भी सिद्ध है कि शास्त्रीजी की आपत्ति का मूलाधार उनकी १६९७ सं० की प्रति ही है और श्री हरिरायजी के भावप्रकाश का अभाव सत्य नहीं है। ऐसी दशा में समकालीन साहित्य द्वारा पुष्ट वार्त्ता के कथन को अप्रामाणिक मानना उचित न होगा। स्वयं शास्त्रीजी ने प्राचीन वार्त्ता रहस्य के द्वितीय भाग के प्रथम संस्करण के अपने वक्तव्य में बढ़े हुए प्रसंगों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है। 'श्रीगोकुलनाथजी के अनन्तर और श्री हरिरायजी के समय इसका संकलन हुआ। इस वार्त्ता में ऐसे आवश्यक प्रसंग भी सम्मिलित हो गये जिनके बिना प्रसंग की अपूर्णता विदित होती थी। अथवा जो आवश्यक स्पष्टीकरण के लिये उपयुक्त जँचते थे।

तीसरी आपत्ति आपको नन्ददास की वार्त्ता के रूपमंजरी के प्रसंग पर है। यदि संवत् १६९७ की कांकरौली की प्रति प्रामाणिक है तो उसका यह उल्लेख भी प्रामाणिक है। अब रूपमंजरी ग्रन्थ की रूपमंजरी कोई दूसरी रूपमंजरी है एवं वार्त्ता की रूपमंजरी नहीं है इसका क्या प्रमाण है ? यह आपने नहीं बतलाया है। केवल हरिरायजी का इस प्रसंग पर कोई भावप्रकाश नहीं है; ऐसा उल्लेख दिया है। तथा १६९७ की प्रति में केवल लौंडी शब्द है। इसी लौंडी की वार्त्ता दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता की हस्तलिखित अनेक प्रतियों में ज्यों की त्यों मिलती है और नाम का समर्थन 'श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्त्ता' से प्राप्त है। इस वार्त्ता में उनका चरित्र और परिचय नन्ददासजी का नाम और सभी कुछ लिखा है। दोसौ बावन की जो प्राचीनतम प्रतियाँ इस समय उपलब्ध हैं, वे सम्वत् १७९७ (नंदगाम से पास खेराग्राम से प्राप्त हैं) दूसरी अन्योर से प्राप्त सम्वत् १८७१ की प्रतियाँ हैं। इन सब में रूपमंजरी का नाम है। और उसका लीलाभावना का नाम भी है। इन प्राप्त प्रमाणों के सामने शास्त्रीजी के कथन की निर्बलता सिद्ध हो जाती है और उनके पूर्वोक्त कथन का विरोध प्रकट होता है। इसलिये उनके विचार में अस्थिरता दृष्टिगोचर होती है और वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता ज्यों की त्यों बनी रहती है। 'सूरस्याम की छाप कीर्तन में धरे हैं, और सूरदासजी ने कह्यो जो या पद कूं तुम सवालक्ष कीर्तन के ऊपर को सुमेर जानो—और सवालक्ष कीर्तन सब याई में सु निकसे हैं।[1]'

श्री हरिरायजी के स्वतंत्र लेख का उद्धरण

अनुवाद—

'क्यों जी ? आसक्ति के कारण यह गोपी कृत वर्णन है याते यद्विषयणी आसक्ति होय, ता विषय को ही वर्णन करनो उचित है। गोपीन कों प्रभु में आसक्ति है। याते प्रभु स्वरूप कूं त्याग करके यहाँ व्रजगोपीन ने वेणुरव को वर्णन कैसो कियो ? ऐसी शंका में कहे हैं कै' 'स्त्री भावो गूढ़ पुष्टिमार्गे तत्वम्'। या पुष्टिमार्ग में प्रभु ते ही सब लीला सम्पत्ति को प्राकट्य है। जैसे मर्यादा मार्ग में लोकवेद विख्यात पुरुषोत्तम प्रभु के सर्वात्मक स्वरूप होयवे ते प्रभु सर्वस्वरूप हैं। ऐसे या प्रमेय मार्ग में लोकवेदांतीय श्री पुरुषोत्तम के व्रजस्त्री

१ हस्तलिखित प्रति सेठ हरीशंकरजी हर्दा वाले के सौजन्य से

श्री स्वामिनीनि के हृदय में गूढ़ रसात्मक भाव रतिस्थायि भाव ही तत्व है वास्तविक रूप है। सब भक्तन के हृदय में भावात्मक स्वरूप को भगवदात्मक होयवे ते भावात्मक रूप भगवान ही हैं। यह भावात्मक स्वरूप, श्री गोपीजनन के देशमात्रवर्ति सत्तानंद स्वरूप हैं।"[१]........

इस लेख का नाम ही स्वतंत्र लेख है। इसमें सुबोधिनी के मूलभावों की रक्षा करते हुये नवीन भावों का समावेश किया गया है। इसकी शैली शंका से आरम्भ होती है। यही शैली और यही बात भावनात्मक संस्करण में है। इससे यह टिप्पणियाँ भी स्वतंत्र संस्करण हैं।

आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—

वैष्णव गद्य साहित्य—फिर इसी सम्प्रदाय के भक्तों ने कई वार्त्ताएँ ब्रजभाषा गद्य में लिखी हैं, जो ब्रजभाषा गद्य के बहुत उत्तम नमूने हैं। इनमें चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ताएँ हैं। दोनों के ही लेखक गोकुलदास (गोकुलनाथ) बताए जाते हैं परन्तु यह बात सन्देहास्पद लगती है क्योंकि दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में श्री गोकुलनाथ का नाम आदर और भक्ति के साथ लिया गया है। जो हो इन पुस्तकों की भाषा बहुत व्यवस्थित है। यद्यपि इसमें लम्बे और जटिल वाक्य-गठन का प्रयत्न नहीं है, तथा उनसे प्रतिपादित विषय का अच्छा स्पष्टीकरण हुआ है। छोटे-छोटे वाक्यों से चरित नायकों का चरित्र ऐसी स्पष्टता से चित्रित हुआ है मानो निपुण कलाकार ने हल्की तूलिका से बहुत मामूली 'रंगों के सहारे चित्रों को सजीव बना दिया हो।'[२]

आचार्य द्विवेदी की इस आलोचना में 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' को गोकुलनाथ कृत माना है और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के गोकुलनाथ कृत होने पर सन्देह प्रकट किया गया है। इस प्रबन्ध में 'वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता' में द्विवेदीजी के इस कथन की पुष्टि की गई है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता के लेखक श्री हरिरायजी हैं। इसीलिये उसमें श्री गोकुलनाथजी का नाम आदरपूर्वक लिया गया है। पर यह वार्ता उन्हीं के द्वारा पहले वचनामृतों के रूप में कही गई थी ऐसा सिद्ध किया गया है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता के लेखक भी श्रीकृष्णभट्ट हैं इसलिये उसमें भी श्री गोकुलनाथजी का नाम आदरपूर्वक लिखा गया है। यह दोनों वार्त्ताएँ श्रीगोकुलनाथजी द्वारा रचित हैं लिखित नहीं। इसीलिये इनके सम्बन्ध में यह भ्रम और सन्देह होना स्वाभाविक है।

---

१ महावन निवासी रूपकिशोर शास्त्री कृत वेणुगीत की सुबोधिनी का ब्रजभाषीय अनुवाद

२ हिन्दी साहित्य—प्रथम संस्करण

चौरासी, दोसौ बावन वार्त्ता के भक्त कवियों का जीवन वृत्त

(१) दामोदरदास हरसानी

वर्तमानकाल—सम्वत् १५३० से १६०७ वि० तक, जन्म-सम्वत्—१५३०, पिता का नाम—थीरदास, जाति—क्षत्रि, निवास स्थान—वर्धा, शरणकाल—सम्वत् १५४६, अन्तकाल—सम्वत् १६०७।

बहुरि एक समय दामोदरदास और श्री गुसांईजी एकांत में बैठे हते। तब श्री गुसांईजी दामोदरदास सो पूछे। जो तुम श्री आचार्यजी को कहा करि के जानत हो?........तातें हम श्री आचार्यजी को सर्व ते बड़े करि जानत हैं।........तब श्री गुसांईजी ने कही, जो मोकों श्राद्ध की दक्षिणा देऊ। तब दामोदरदास ने कही, जो—दक्षिणा में एक बात कहूँगो। सो "सिद्धान्त रहस्य" के डेढ़ श्लोक को व्याख्यान कहे।

चौरासी वैष्णव की वार्त्ता में श्री दामोदरदास हरसानी के सम्बन्ध में पहिली वार्त्ता में ऊपर लिखा हुआ अंश महत्वपूर्ण है।

प्रश्न यह है कि दामोदरदास चार है। उनमें कौनसा कवि है? इनमें श्री दामोदरदास हरसानी ही कवि हैं क्योंकि इनके पद सम्प्रदाय में प्रचलित हैं और कई स्थानों से प्रकाशित भी हो चुके हैं। नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित 'सूर सागर' (जुलाई १८९२ सातवीं वार) के संस्करण के पृष्ठ ५७ पर यह पद यों है :—

श्रीनाथजी को ध्यान मेरे निशि दिना री माई।
मोहनी मूरति सोहनी सूरति चित्त लियो है चुराई।।
लाल पाग लटकि भाल चिबुक वेसरि कंठ माल करण फूल मंद हास लोचन सुखदाई।
मोरपिछ सीस धरे मोतिन के हार गरे बाजूबंद पोहुँची कर मुद्रिका सुहाई।।
छुद्रघंटिका जे हरि पग नुपुर विदिया सुदेश अंग-अंग देखि उर आनन्द न समाई।
मुरलिका अधर धरे श्याम ठाड़े ब्रज जुवति मांह सप्त सुरनि तीन ग्राम गोवर्धन राई।।
निरखि रूप अति अनूप छाके सुरनर विमान वल्लभ पद किंकर दामोदर वलिजाई।

जन्म समय (सम्वत् १५३० माघ शुक्ल चौथ ४ निर्वाण काल सम्वत् १६०७ वि०)। श्री विट्ठलनाथजी और दामोदरदासजी के संवाद में यह तिथि स्पष्ट हैं। श्री द्वारकादास पारीखजी के निजी संग्रह की हस्तलिखित प्रति में इनके पिता का नाम थीरदास, प्रसिद्ध नाम कपूरचन्द, हरसानी क्षत्रिय हैं। इनका मूल निवासस्थान श्री रंगपट्टन (दक्षिण भारत) था पर इनका जन्म वर्धा (वृद्धनगर) में हुआ था। महाप्रभुजी के प्राकट्य के समय इनके पिता इनको लेकर चंपारन (रायपुर म० प्रदेश) में उपस्थित थे। यह १५४६ (सम्वत्) में महाप्रभुजी की शरण वर्धा में आए। यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। इनके तीन भाइयों का भी उल्लेख सम्प्रदाय में मिलता है। यह आजीवन महाप्रभुजी के चरणों में रहे। यह महाप्रभुजी के सबसे प्रथम और सबसे महान् सेवक थे। गोकुल में इनको "ब्रह्मसंबंध"

दीक्षा आचार्यजी द्वारा दी गई थी। महाप्रभुजी के अनन्तर श्री गुसांई विट्ठलनाथजी को पुष्टिमार्ग का रहस्य इन्हीं के द्वारा प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् १६०५ में जब कृष्णदास अधिकारी ने श्रीनाथजी के दर्शन करने से श्री गुसांईजी को रोका तब यह उनके साथ चन्द्रसरोवर पर थे। 'सम्वाद' में लिखा है—'सेवा समय वहाँ दामोदरदास हरसानी आए तब दामोदरदास बैठक को दंडौत करके बैठे। पाछे श्री भागवत को पारायण संपूर्ण भयो। ता पाछे श्री गुसांईजी ने दामोदरदास सों कह्यो जो दामोदरदास तुम हमको श्री आचार्यजी को प्राकट्य कहो और दैवी जीव क्यों बिछुरे ताको कारण और जीवन के अंगीकार को प्रसंग। यह सब विस्तार करके कहौ। काहे ते तुम्हारे हृदय में श्री आचार्यजी विराजे हैं और यह प्रसंग श्री आचार्यजी बिना कौन कहै और कैसे जान परै। यातैं हम तुमसौं प्रसंग किये हैं। तब दामोदरदास ने कह्यो सो तो सांची बात है। जो श्री आचार्यजी की लीला की बात तो श्री आचार्यजी ही जानें और जीव को तो गम्य नाहीं जो श्री आचार्यजी की बात कहें परि मोसों ही श्री आचार्य महाप्रभुन ने कही है सो मैं हूँ और श्री आचार्य महाप्रभुजी सौं सब बात पूंछी सो आप कृपा करके कही है सो प्रसंग हों तुमसे कहौं सो सुनिए।'[१]

ऊपर के उद्धरण से यह प्रकट हो जायगा कि इनका इस मार्ग में महत्वपूर्ण स्थान है। वार्त्ता-साहित्य में भी इनका प्रमुख स्थान है। इनका देहावसान सम्वत् १६०७ में है। इस सम्बन्ध में भी 'संवाद' में निम्नलिखित उल्लेख है:—"इतनी बात कही श्री दामोदरदासजु ने अरु श्री गुसांईजी के चरणारविंद पर ढरे तब श्री हस्त सों पकरि कें उठाए अरु कही जू तुम पायन मति परो तुम्हारे प्राकट्य को यह प्राक्रम श्रीकृष्णजू कह्यो है और श्री आचार्यजू तुम्हारे हृदय में विराजमान तातें तुम बड़ेन के सेवक हो अरु बड़े हो तातें यह जानिके हम संकोच पावत हे तब कही जू संकोच काहे को निज धाम में तो हमारो प्राकट्य तुम्हारे मुखारविंद ते है। अरु यहाँ भूतल पर फेरि जन्म होइगो सो तो तुमही ते तुम्हारे घर हम बेटा होंइगे। तातें दोउ प्रकार हमारो प्राकट्य तुमही ते है तातें हमको पांवन परिवो उचित ही है। तातें श्री गिरधर गोविंदजू प्रकटे है। अरु बालकृष्णजी जब प्रकटेंगे। पाछे हम तुम्हारे प्रकटेंगे। तातें पिता को दण्डवत करनी उचित है।"[२]

इस पद के अनुसार श्री गोकुलनाथजी के रूप में दामोदरदास श्री गुसांईजी के घर जन्मे हैं। गोकुलनाथजी का जन्म सम्वत् १६०८ का है और बालकृष्णजी का सम्वत् १६०६ का है। अत: श्री दामोदरदासजी का निधन काल सम्वत् १६०७ ही हो सकता है। इनकी दो बैठकें प्रसिद्ध हैं। एक गोकुल में तथा दूसरी वृन्दावन में।

हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज के सन् १९१४ के विवरण में दामोदरदास के नाम से सम्वत् १६८७ की एक हस्तलिखित प्रति 'नेम बत्तीसी' की मिली है। इसी प्रकार रास पंचाध्याई नाम की एक हस्तलिखित प्रति सम्वत् १६६६ की मिली है। प्रयत्न करने पर भी यह पुस्तकें देखने को नहीं मिल सकी हैं। अत: इनके ग्रंथकार के सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है।

(१) श्री गुसांईजी व दामोदरदासजी को संवाद ग्रंथ, बंध $\frac{६३}{४}$, कांकरौली सरस्वती भंडार।

---

१ श्री गुसांईजी और दामोदरदासजी का 'संवाद'

२ संवाद के इस उद्धरण का ब्लॉक फोटू अन्यत्र दिया गया है।

(२) अवधूतदास—

वर्तमानकाल—सम्वत् १६०० से १६२८ तक; जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण सनाढ्य, निवास-स्थान—अडींग, शरणकाल—अज्ञात, अन्तकाल—अज्ञात।

कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता के भावप्रकाश में इनका उल्लेख है जो इस प्रकार है :—यह अडींग के रहने वाले थे। इनके माता पिता इनको एक बनिये के यहाँ छोड़कर उस साल परदेश चले गए थे। उसी साल ब्रज में अकाल पड़ा था। जब यह पन्द्रह वर्ष के हुए तब इन्होंने मथुरा में आकर श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दर्शन किए और गिरिराज में सेवक हुए। यह ब्रज में घूमा करते थे और सदा हृदय में श्रीनाथजी का ध्यान रक्खा करते थे। यह वही अवधूतदास हैं जिन्होंने कृष्णदास से बंगालियों की चुगली की थी जिस पर वे लोग निकाल दिए गए थे। वार्त्ता में अवधूतदासजी के सम्बन्ध में जो लिखा है वह केवल साम्प्रदायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उससे इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिलती है। भावप्रकाश में इनके लीला रूप का भी उल्लेख हैं। इनका लीला का नाम केतिनी है तथा यह कुमारिका बृन्द के हैं। इनका कवि होना वार्त्ता से सिद्ध नहीं है किन्तु कांकरौली सरस्वती भंडार में बंध संख्या $\frac{113}{6}$ पेज एक पर इनका यह एक पद मिलता है :—

'हरि एक अद्भुत रूप धर्‌यो।
तन एक अद्भुत मन एक अद्भुत अपनो भोग आप ही कर्‌यो।
गति एक अद्भुत मति एक अद्भुत पति एक अद्भुत चित्त हर्‌यो।
छल एक अद्भुत बल एक अद्भुत अद्भुत रस रस रस ही ढरयो।
अद्भुत फूल फलहि एक अद्भुत, अद्भुत भाग सुहाग भर्‌यो।
अद्भुत, रूप रूप सों अरुभयों 'अद्भुत' अद्भुत कहि न पर्‌यो।'

इस पद में शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद और उसकी लीला का प्रतिपादन है। सम्प्रदाय में इस नाम का और कोई प्रसिद्ध कवि नहीं है। इसलिए यह रचना इन्हीं की माननी पड़ती है।

(३) कविराज भाट—

वर्तमानकाल–सम्वत् १५६६ से पूर्व, जन्म सम्वत्—अज्ञात पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण, निवासस्थान—अज्ञात, शरणकाल—अज्ञात, अन्तकाल—अज्ञात।

(प्रसंग १) सो एक दिन वे विश्रांत पे भूतेश्वर महादेव के कवित्त करिके कहत हे, ता समय श्री आचार्यजी महाप्रभु महावन ते मथुरा पधारे। सो विश्रांतघाट पर संध्यावंदन करत हे, ता समय कविराज भाट कों श्री आचार्यजी के दर्शन भये। तब कविराज भाट ने जानी, जो–ये बड़े पंडित से दीसत हैं। तातें इनसों कछू पूछों। तब कविराज भाट श्री आचार्यजी के पास आय दंडवत करि एक प्रश्न कीयो, महाराज! देवी बड़ी के महादेव बड़े? तब श्री आचार्यजी कहे, शास्त्र रीति सों ठाकुरजी बड़े, और जाके मनमें जो निश्चय बड़ो मान्यो ताकों सोई बड़ो।........सो कविराज भाट की बुद्धि निर्मल ह्वै गई। तब कविराज दंडवत करि विनती किये महाराज। मोकों सरन लीजिये।........तब कविराज दंडवत करि विदा होयके फेरि मथुरा आये। सो सरनि आय गोवर्द्धन पर जाय श्रीनाथजी के दरसन करि सन्मुख कवित्त किये। पाछें आचार्यजी के, श्री गोवर्द्धननाथजी के कवित्त बहोत किये।

वार्त्ता में आये प्रसंग के आधार पर किसी प्रकार का निर्णय इनके जन्म एवं मरण अथवा शरणकाल की तिथि के सम्बन्ध में नहीं दिया जा सकता है—इनके शरणकाल का केवल अनुमान ही किया जा सकता है। यह मथुरा में रहते थे और श्री महाप्रभुजी के विश्रांतघाट पर आने के समय वहीं रहा करते थे। इनका काई पद अभी प्राप्त नहीं हुआ है।

(४) कन्हैयाशाल

वर्त्तमानकाल—सम्वत् १५४२ से लेकर १६०० तक, जन्म सम्वत्—१५४२, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास स्थान—आगरा, शरणकाल—सम्वत् १५५६ श्रीनाथजी के प्राकट्य के समय। अन्तकाल—अज्ञात।

यह १६०० तक तो अवश्य विद्यमान थे। क्योंकि यह श्री गुसांईजी के साथ द्वारका गए थे। इनके कवि होने का उल्लेख वार्त्ता में नहीं है पर इनके पद सरस्वती भंडार विद्याविभाग कांकरौली के हस्तलिखित संग्रह बंध संख्या ३/१ पृष्ठ ९२ में सुरक्षित हैं। उदाहरण—

सब दुख मिट गये मुख देखे।
श्री विट्ठल नव रंग मनोहर सकल जनम अवलेखे।
अति कमनीय सीतल सुगंध विथकि रह्यो विन धोखे।
जन कन्हैया गिरधरनि श्री विट्ठल ताते सहि संतोखे।।

इस प्रकार इनका कवि होना निश्चित है।

(५) कृष्णादासी

वर्त्तमानकाल—सम्वत् १५८० से १६२४ के बाद तक, जन्म सम्वत्—संवत् १५८० वि०, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—गौड़ ब्राह्मण, निवास स्थान—पटना के समीप, शरणकाल—१५८५, अन्त समय—सं० १६२४ के पश्चात्।

इनका वार्त्ता में निम्नलिखित उल्लेख हैं—सो कृष्णे रुकिमिनी बहुजी की खवासी करे। सो एक समय श्री रुकिमिनीजी वहूजी कों गर्भाधान रह्यो तब कृष्णा ने कही, अबके बहूजी के बेटा होइगो, तीन को नाम श्री गोकुलनाथजी धरोंगी।.......(प्रसंग २) और एक समय शरद ऋतु आई। तब रुकिमिनी बहूजी ने कृष्णे से कही, कोई शरद निसा को बरनन करो। तब कृष्णे "शरद निसा" करिकें गायो। सो श्री गुसांईजी बहोत प्रसन्न होइकें कहैं, मानों रास में ठाड़े ह्वै के गान कियो। सो कृष्णा को नन्दालय की लीला, रासादिक लीला को अनुभव है। सो बहुत कीर्तन किये हैं।

भावप्रकाश में इसके सम्बन्ध में लिखा है—यह पटने से दो कोस पर किसी गाँव की रहने वाली थीं और गौड़ ब्राह्मण की कन्या थी वहाँ से एक दिन माँ के साथ गंगा नहाने आई थी। करार के फटने से यह गंगाजी में गिर गई और इसकी माँ मर गई तथा यह एक लकड़ी के सहारे पाँच कोस तक बह गई वहाँ श्री महाप्रभुजी संध्या वंदन कर रहे थे उन्होंने इसे निकलवा लिया और कृष्णदास के हाथ इसे पटना भेज दिया। कृष्णदासजी ने उसे हरिवंश पाठक को दे दिया जिन्होंने उसे उसके पिता से मिला दिया और यह उन्हीं के साथ काशी आगई। जब इसकी माँ मरी थी तब इसकी आयु पाँच वर्ष की थी और पाँच वर्ष हरिवश पाठक के पास रही और वहाँ से अडैल आगई। जिस समय यह शरण आई थी

उस समय पांच वर्ष की थी और श्री आचार्य महाप्रभुजी जगन्नाथजी जा रहे थे। अड़ैल आकर यह श्री रुकमिनी बहूजी की सेवा में रही और इसने अपनी सेवा से सबको प्रसन्न कर लिया। श्री विट्ठलनाथजी स्वयं इसका बड़ा आदर करते थे।

महाप्रभु की अन्तिम जगदीश यात्रा में यह शरण आई थी। उस समय इसकी आयु पाँच वर्ष की थी। बाद में उल्लेख है कि दस वर्ष की अवस्था में वह श्री गुसांईजी के घर आई। इसी बीच में महाप्रभुजी लीला धाम को पधार गए हैं इस कारण इसका जन्म सम्वत् १५८० ठहरता है। इनका संवत् १६०८ में गोकुलनाथजी के जन्म समय तक रहना तो निश्चित ही है। गोकुलेश के धौलपद संग्रह (अहमदाबाद से प्रकाशित) में श्री गोकुलेश की सेविका रूपाबाई का श्री गोकुलेश से विवाह सम्बन्धी एक धौल प्राप्त है। उसमें लिखा है कि (सम्वत् सोलह सै नै चौबीस जी। आसाढ़ वदी दौज न रूढ्यो दिवसजी। दामोदरदासी, कृष्णदासी हरयेजी—श्री वल्लभ वरन बदन निरखै जी। इससे इसका १६२४ तक वर्तमान रहना निश्चित हो गया है। इसके पीछे इसका उल्लेख नहीं है। वार्त्ता में जो शरदनिसा का पद है वह इस प्रकार है :—

दोहा— श्री वृन्दावन नवकुंज में त्रिभुवन पति आनंद।
बेन बजाई विचित्र सुरतान मान गति छंद।
सुरनर पसु खग पवन वरू व्रज वनिता अकुलाय।
श्रवनसुनत आतुर चलीं सरदनिसा परम सुहाय।

चाल— सरदनिसा उजियारी। वन में ठाड़े श्री कुंजविहारी।
मुरली मधुर बजाई। ब्रज वधु श्रवन सुनत उठिधाई।
उठिधाई ब्रज वधु श्रवन सुनिके भवन कारज सब तजे।
भई अति चित काम आतुर उलट अभरन अंग सजे।
एक लोचन दिए अंजन एक ओजत ही चली।
कमल मुख हरि दरस प्यासी प्रीत मन उपजी भली।
नंदनंदन चरण परसे मुदित गोकुल नारियाँ।
आय सन्मुख भई ठाड़ी शरद निसा उजियारियां।

दोहा— शरद रैन वृन्दा विपिन पूरयो वेनु मुरारी।
हरिदरसन की लालसा मिलि आई व्रज नारी।
मदनगुपाल बोलैं तवैं निसा अर्ध गई पेलि।
वेद श्रुति निंदित कहै व्रज वाला ढिग खेलि।

चाल— देखी है ढिग व्रजबाला। उन प्रति बोलै मदनगुपाला।
अर्ध निशा मों तुम आई। वे तो निंद वेद श्रुति गाई।
निंदिया विधि वेद गावे कुल वधू क्यों पति तजैं।
लोग कहत कलंक लागै पर पुरुष तरुणी भजैं।
उलटि अब गृह जाउ भामिनी जुगति नहीं इन बातियां।
पति तिहारे पंथ जोवै जाम जुग गई रातियां।
कुल वधू यह धरम नाहीं कहत स्याम तमालियां।
ऐसे निठुर वचन गोपाल बोलै देख ढिग ब्रज बालियां।

दोहा— विलख बचन बनिता कहे, सब अंग पीडित मैन ।
प्रान तजो पन न तज्यो सुन गोविंद मुख वैन ।

चाल— व्रजनारी सबै जुरु आई । देखत पति जादौ राई ।
सुन्दर त्रिभुवन नहिं ऐसो । हरि कोटि मदन सम जैसो ।
जाके मस्तक मुकुट विराजै । ज्यों दीपक अंधियारो भाजै ।
दोउ कुंडल झलके कान । प्रगटे रवि कोटि समान ।
जाके कंठ बनी वनमाला । पहरन पट दुकूल गुपाला ।
जाको अंगुरिन मुद्रिका सोहै । हरि उपमाको नाहिं को है ।
नटवर भेष धर्यो जदुराई । ब्रज सुन्दरि देखन आई ।
सुनीरी गोविंद मुख वानी । तब वे गोप तरुन विलखानी ।
दीन वचन कहति ग्वाली यह तो जुगति नहीं बनमाली ।

ढाल— बवनविहारी जुगत नहीं निठुर बोलन बोलना ।
सुरत नाथ सुकंठ भुज हरि स्याम हम मन खोलना ।
हम छोडि सुत पति विपिनि आई आस तुम्हरी लाड़िले ।
देहो मिलि मधुपान मोहन चाह अपनी चाड़िले ।
उलटि अब गृह जांई कैसे प्राण तजौं दधिदानियां ।
ऐसे विलखि वचन ग्वालि बोली सुनि गोविंद मुख बानियां

दोहा— गोपिन सों हंसि हंसि कह्यो, सुन्दर सबको राउ ।
दरसन पायौ हम तनौ, अब कैसे गृह जाउ ।

चाल— अब तुम जाउ सबै व्रज नारी । तुम मानो सीख हमारी ।
तुम वेद उपनिषद् कीन्हों । व्रजपति कों आदर दीनो ।
तुम परम धरम संसारी, तुम एक पुरुष भजो नारी ।

साखी— तब बोल लई व्रज सुन्दरी कीन्हों रास रसाल ।
अति रस क्रीड़ा मग्न तन गिरधरे हंसे जु दयाल ।

चाल— गिरधर हंसे जु दया मुरारी । तब बोलि लई व्रज नारी ।
रास मंडल प्रभु कीन्हों । मिलि गोपिन कों सुख दीन्हों ।

ढाल— सुख दियो गोपिन रास रंग रचि वधू वधू प्रति वपु धरे ।
भई अति रस मगन क्रीडत कामिनी कारज सरे ।
भूमिराजत कनक मणि मय पाँच खंभ ढिग ढिग खचे ।
अधर मधुर रस पीय प्यावत केलि भूतल स्यौं रचे ।।

दोहा— दयानिधि गिरधर हँसे दै गोपिन सुखदान ।
राधा कौं संग लै गए भए हरि अन्तरध्यान ।

चाल— हरि भए अन्तरध्यान । गुन सागर रूप निधान ।
जुवती जन जोवत डोलै । मुख स्यामा स्याम कहि बोलै ।।
पूछे गुल्मलता द्रुमबेली । कहूँ देखे स्याम सहेली ।
पूछे चम्पकराय गुलाला । कहूँ देखे नंदजू के लाला ॥

दोहा— कुंज कुंज ढूंढत फिरे खोजत खोज दयाल ।
प्राणनाथ पावे नहीं विकल भई ब्रज बाल ।।

चाल— ताते विकल भई व्रजबाला ढूंढ़त फिरै स्याम तमाला।
पूंछे चंपक जाई। कहँ देखें कदम जदुराई॥

दोहा— पिय के संग एकान्त रस विलसत राधा नारि।
कंध चढ़न प्रभुसों कह्यो याते तजि गये मुरारि॥

चाल— ताते तजि गए मुरारी। विमोहे आपु संग तें टारी।
और सखी तहां आई। कहुँ देखे मोहन राई॥
मैं तो मान कियो मेरी माई। ताते भये अलोप कन्हाई।

दोहा— कृष्ण चरित्र गोपिन करे विरहै व्यापत बाल।
एक भई तहँ पूतना एक भई गोपाल॥

चाल— एक भई हैं गोपाल ललारी। जिन दुष्ट पूतना मारी।
एक भेष मुकुन्द को कीन्हों। जिन तृणावर्त हरि लीन्हों॥
एक भेष दामोदर धारी। जिन यमलार्जुन तारी।

दोहा— प्रेम प्रीति हरि जानके आए तिनके पासि।
मुदित भई सब मानिनीं गुन गावै कृष्णादासि॥[1]

(६) गदाधरदास

वर्तमानकाल—संवत् १५४० से १५८० तक, जन्म—संवत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—कपिल सारस्वत ब्राह्मण, निवास—स्थान—प्रयाग, शरणकाल—संवत् १५६६ के पश्चात्, अन्त-समय—सं० १५८०।

इनकी वार्त्ता में दो प्रसंग हैं। एक में यह लिखा है कि यह जो कुछ इनके यजमान के घर से आता था उसी का श्री मनमोहनजी को भोग लगाते थे और एक दिन जल छानकर भोग लगा दिया। दूसरे में इन्होंने माधोदास को शाक लाने की आज्ञा दे दी है। यह माधोदास विषयी था और इसने घर में एक वेश्या रख छोड़ी थी। इनके आशीर्वाद से माधोदास को दृढ़ भक्ति की प्राप्ति हो गई। वार्त्ता में कहीं नहीं लिखा है कि यह कवि थे या इन्होंने पद गाये थे (चौरासी वै० वार्त्ता)। गदाधरदास नाम के तीन कवि हुए है। दो वल्लभ सम्प्रदाय में 'एक वृन्दावनी गदाधरभट्ट। वल्लभ सम्प्रदाय में एक गदाधरदास चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में है, दूसरे सम्प्रदाय प्रदीप के कर्त्ता गदाधर मिश्र हैं जो श्री गुसांईजी के सेवक थे। चौरासी वै० की वार्त्ता के भावप्रकाश में गदाधरदासजी ने एक कीर्तन गायो इस प्रकार उल्लेख है। वह पद इस प्रकार है—

गोविंद पद पल्लव सिर पर विराजमान तिनको कहा कहि आवे सुख को प्रमान।
ब्रज दिनेस देस बसत कालानल हूँ न त्रसत बिलसत मन हुलसत करि लीला रस पान।
भींजे नित नैन रहत हरि के गुण गान कहत जानत नहिं त्रिविधिताप मानत नहिं आन।
तिनके मुख कमल दरस पावन पद रेनु परस अधम जन 'गदाधर' से पावत सनमान।

भावप्रकाश के अनुसार यह प्रतिवर्ष मकरस्नान करने प्रयाग जाते थे। वहां इनके काका रहते थे जो एक शैव पंडित थे। यह इन काका के साथ महाप्रभुजी के पास

१ इसका क्रम लेखक की असावधानी से भागवत के अनुसार नहीं मिल रहा है। —लेखक

आए थे और प्रभावित होकर शरण आए थे। इनके ठाकुरजी का नाम श्री मदनमोहनजी था। मिश्रबन्धु विनोद में गदाधरदास वैष्णव को बृन्दावन का रहने वाला बताया है। वह दूसरे हैं इनका कविताकाल १६३२ एवं इनका ग्रन्थ "बानी" लिखा है परन्तु वार्त्ता में आये गदाधरदास से अन्य सब बृत्त मिलते हुये भी तिथि में अन्तर है। भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित पद हैं :—

श्री गदाधरदासजी।

भली भाँति निबही भगति, सदा 'गदाधरदास' की॥
लाल बिहारी जपत रहत निशि बासर फूल्यौ।
सेवा सहज सनेह सदा आनन्द रस झूल्यौ॥
भक्तनि सों अति प्रीति रीति सब ही मन भाई।
आसय अधिक उदार रसन हरि-कीरति गाई॥
हरि विश्वास हिय आनि कैं, सुपनेहुँ आन न आस की।
भली भाँति निबही भगति, सदा 'गदाधरदास' की॥

इससे यह सिद्ध होता है कि यह पुष्टि सम्प्रदाय के सेवक थे; इनका काल निर्णय करने के लिये अन्य कोई आधार नहीं है। अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि यह सत्रहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा के कवि थे।

(७) गोपालदास—

वर्तमानकाल—संवत् १५४६ से १६७०, जन्म-संवत् १५४६, पिता का नाम—सेठ पुरुषोत्तमदास, जाति—क्षत्री, निवास-स्थान—काशी, शरणकाल—संवत् १५५१, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—"और गोपालदास कीर्तन बहुत करते। सो एक समय होरी के दिनन में गोपालदास को बहुत विरह भयो।...... ......तब नित्य जैसे ब्रज भक्त 'वेणुगीत', 'जुगल गीत' गावत हैं। ता भाव सों दोइ कीर्तन 'ललना' कहिकें गाये। ...... तातें गाये, जो "मदनमोहन के बारनें बलि बलि दास गोपाल" ......तातें विरह के कीर्तन बहुत गाये हैं।"

इनके पिता सेठ पुरुषोत्तमदास काशी वाले सेठ कृष्णदास चौपड़ा क्षत्री के पुत्र थे। यह रायपुर जिले के हाकिम थे। लक्ष्मणभट्टजी के शिष्य थे। इनको पुत्र प्राप्ति हुई थी। सम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार श्री पुरुषोत्तमदास संवत् १५५१ में काशी में शरण आए उस समय इनके पुत्र और पुत्री दोनों थे और उनको भी नाम निवेदन करवाया गया था। (भावप्रकाश टीका) इस समय श्री गोपालदास की आयु क्या थी इसका उल्लेख नहीं है। किन्तु अनुमान से इस समय यह बालक ही रहे होंगे। अतः इनका जन्म १५४६ के आसपास ही मान लेना चाहिये। इनके देहावसान की भी कोई तिथि साम्प्रदायिक साहित्य में प्राप्त नहीं होती है।

इनके 'ललना' बहुत प्रसिद्ध हैं। ललना शब्द को भावप्रकाश में "ब्रज की ललना या प्रकार विरह सें गान करते हैं।" ऐसे अर्थ में प्रयुक्त किया है।

उदाहरण— तुम मेरे मन अति बसो सुन्दर चतुर सुजान।
मोहन मुरलिका नीके सुनावौ तान ललना। (टेक)
मोर मुकुट शोभा बनी सुन्दर तिलक सुभाल ललना।

मुख पर अलकावली विथुरी मनहुँ कमल अलि माल ललना ।
अधर दशन वर नासिका, ग्रीवा चिबुक कपोल ललना ।
पीताम्बर, छुद्र घंटिका लाल काछिनी डोल ललना ।
नख शिख अंग वरनौ कहा अंग अंग रूप अतोल ललना ।।
पटतर को कोई नहीं अति मीठे मृदु बोल ललना ।
एक दिन सैनन मिलै नवल कुंवर ब्रजराज ललना ।
गृह तें आवन न बन्यौ गई सबै कुललाज ललना ।
गृह तें गोरस मिस चलीं लाज छोड़ कुल ऐन ललना ।
वे मुसकानि हृदय बसी अति अनियारे नैन ललना ।
कहा जानै तुम कहा कियो गृह अंगना न सुहाय ललना ।
बिन देखे नागर प्यारो युग समान पल जाय ललना ।
सकल लोक मोहिं बरजहिं पचिहारे समुझाय ललना ।
नहिं भावें मोहिं कुल कथा मोहिं तिहारी चाह ललना ।
ग्वालिन पर गिरधर रीझे लीला कही न जाय ललना ।
गोपालदास प्रभु लाल रंगीलो हंस लीन्हों उरलाय ललना ।

वार्त्ता में उल्लखित ललना इस प्रकार है:—

श्याम छबीले मन हर्‌यो श्री वृन्दावन के चंद ललना । (टेक)
मोहन मेरे द्वार ह्वै उझकि चले जब भोर ललना ।
झलकत श्री मुख देखिए चितै लियो चित चोर ललना ।
मस्तक पंख मयूर के गरे गुंजा के पुंज ललना ।
बेनु बजायो हे सखी नागर नवल निकुंज ललना ।
सुन्दर श्याम सुहावनी और सुन्दर वनमाल ललना ।
ओढ़े सुन्दर पट पीयरो सुन्दर नैन बिसाल ललना ।
हिये परी जो तलावली सुन मुरली की घोर ललना ।
चलि सखि देखन जाइए नागर नवलकिशोर ललना ।
माई री मन न रहै क्यों राखिए राखत नहीं रहाय ललना ।
कोटि जतन जो कीजिए जहाँ प्रीतम तहाँ जाय ललना ।
कैसे राखूं क्यों रहै कैसे कै वनजाय ललना ।
कैसे कै गिरधर मिलैं सोमिस कौन कराय ललना ।
कैसे संग मिलि खेलिए सास ससुर की लाज ललना ।
लाज किए दुख पाइए बिनमिले होय अकाज ललना ।
ऊँचे जो गिरधर बसे जो नीचे घर होय ललना ।
बिना बुलाए बोलिए नैन निरख सुख होय ललना ।
वन वपुरी हरनी भली अपने पतिन समेत ललना ।
निसदिन श्री मुख देखहीं नैनन को फल लेत ललना ।
लटकन लटके फूल के और घूंघर वारे केश ललना ।
गाय गोप के वृन्द में बलिहारी यह वेष ललना ।

साँझ समै घर आवही मुदित सकल ब्रज बाल ललना।
मदनमोहन के कारनै बलि बलि दास गोपाल ललना।

यह पद 'संध्या आरती' के समय आज भी बड़े चाव से गाया जाता है।

(८) गोपालदास इंटोडा क्षत्री

वर्तमानकाल—सं० १५४० से १५७६ के पश्चात् तक, जन्म-संवत् १५४०, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास-स्थान—पंजाब, शरणकाल—सम्वत् १५७६ से पूर्व, अन्त-समय –अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—"और एक समय गोपालदास श्री आचार्यजी के दरसन कों अड़ेल आये। सो आचार्यजी को जन्म दिन आयो। सो केसर सों नहाय मार्कण्डेय पूजा करन कों विराजें। ता समय गोपालदास यह चोखरा, छंद बिलावल राग में गाये—

छंद— 'माधव मासें भरि वैसाखे, श्री वल्लभ हरि जनम लियो।'
प्रकटिया जिन भक्ति मारग बंध जीव छुडाईयाँ।

यह चोखरा सुनिकें श्री आचार्यजी गोपालदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। सो गोपालदास ऐसे भगवदीय श्री आचार्यजी के कृपापात्र हे। इनकी वार्त्ता कहाँ ताईं कहिये। 'भावप्रकाश' से इनके सम्बन्ध में यह ज्ञात होता है :—कि यह पंजाब के रहने वाले थे। जहाँ से यह काशी होते हुए गए थे और लौटते समय इनका श्री आचार्य महाप्रभुजी का साथ हो गया था और मार्ग में इन्हें ठगों ने लूट लिया था। इस पर यह श्री महाप्रभुजी से पांच रुपया उधार लेकर साथ चले और आगरे में श्री महाप्रभुजी की शरण आए थे। श्री महाप्रभुजी की अन्तिम ब्रजयात्रा का समय सम्वत् १५८६ है और इनका शरणकाल १५७६ से पीछे नहीं जा सकता है। इनके सम्बन्ध में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है।

(९) गोपालदास क्षत्री नरोड़ा के

वर्तमानकाल—संवत् १६०० के पश्चात् तक, जन्मसम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—नरोड़ा (अहमदाबाद के समीप), शरणकाल—संवत् १५६६ से पूर्व, अन्त-समय—सं० १६०० के पश्चात्।

इनका वार्त्ता में यह उल्लेख है:—पाछे एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभु श्री द्वारिकाजी पधारे, तब मार्ग में नरोड़ा गाम आयो। तब यहाँ श्री आचार्यजी महाप्रभु गोपालदास के घर पधारे ……। (प्रसंग २) सो गोपालदास कों श्रीनाथजी के दरसन कों विरह बहोत। सो श्रीनाथजी द्वार आय श्रीनाथजी के दरसन किये। पाछे गोपालदास कों ज्वर आयो ……। (प्रसंग ३) और एक दिन विरह बहोत भयो। सो विरह को चोखरा करिके गाये।

'केका सिखंडी सम घन कंठ मनोहर हार।
धन्य ते दिन देखिशुं नैनन नन्दकुमार॥'

……(प्रसंग ४) और एक समय श्री गुसांईजी श्री द्वारिका को श्री रणछोड़जी के दरसन कों पधारे। तब मार्ग में नरोड़ा गाम में आये। सो गाम के बाहर डेरा करि उतरे। सो उत्थापन के समय गोपालदास श्री गुसांईजी के दरसन कों चले।

नरोड़ा—अहमदाबाद के पास एक गाँव है वहाँ महाप्रभुजी की बैठक है। गोपालदास नाम के कई व्यक्ति कवि भी हुए हैं इसलिए इनकी कविता को अलग करना कठिन है।

(१०) जीवनदास क्षत्री

वर्तमानकाल—सम्वत् १६०० के पश्चात् तक, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात जाति–क्षत्री, निवास-स्थान—सिंहनद, शरणकाल—संवत् १५८७ से पूर्व, अन्त समय—संवत् १६०० के पश्चात्।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—"सो एक समें सिंहनद के वैष्णव सब मिलके अड़ेल श्री आचार्यजी के दरसन कों आवत हे। तामें जीवनदास हू हते। सो एक दिन मार्ग में मजल उतरि अपनो अपनो चौका दे सगरे वैष्णव रसोई करते हुते, ता समें मेह चढ़ि आयो। चारों ओर तें घटा आई। सो बूंद बरसन लागी। तब सगरे वैष्णव कहें, मेह आयो, आजु रसोई होनी कठिन है। तब जीवनदास सगरे वैष्णव सों कहें, तुम चिन्ता मति करा। तब जीवनदास मेघ की ओर देखिकें कहें, तोकूं श्री आचार्यजी की आन है, जो अबही मत बरसे। सो मेहूँ रहि गयो।"

भावप्रकाश में ये सिंहनद (दिल्ली के पास) के रहने वाले जाति के क्षत्री कहे गए हैं। यह अपने पिता के साथ दिल्ली में रहते हैं और इन्हें बीस बरस की अवस्था में दिल्ली की हवा लग गई और राग रंग तथा वेश्या में रुचि होगई। इनकी यह दशा देखकर इनके पिता ने इन्हें दो रुपये देकर घर लौटने को कहा पर ये गवैयों के संग आगरे आगए और यहाँ कपड़े की दलाली करने लगे। एक दिन इनसे कुछ लोग सौ रुपये का कपड़ा ठग लेगए तो दुकानदार ने इन्हें बन्दीखाने में डलवा दिया वहाँ इन्होंने जमुना स्नान की इच्छा प्रकट की। जमुना स्नान करके जब ये बाहर निकले तो श्री आचार्यजी की दृष्टि इनपर पड़ी और आचार्यजी ने इन्हें १०० रुपये देकर छुड़ा दिया और स्वयं सिंहनद पहुँचा दिया। वहाँ इनके माता पिता ने आचार्यजी के रुपए दे दिये और दीनता प्रकट की—भावप्रकाश में भी यह कवि नहीं बताए गए हैं किन्तु सम्प्रदाय में इनके पद प्रचलित हैं :—

उदाहरण— श्री वल्लभ पदकमल केवल काहू न मन में आनो।
निसि दिन श्री वल्लभ के रूप गुन बखानो।
जे अन्य सेवक जन तिन्हें नहीं पहिचानो।
तन मन धन जीवन दें श्री वल्लभ हाथ बिकानो।
अब तो गति और नाहिने चरन लपटानो।[1]

यह पद वार्त्ता के कथन की पुष्टि करता है। इनका दूसरा पद :—

(बिलावल) श्री वल्लभ चरनन चित लाग्यो
देखत तन त्रय ताप जु भाग्यो।

छंद— श्री वल्लभ चित लाय चरनन यह मन तो अनुराग्यो।
हिए सरोवर कमल प्रफुल्लित मगन भयो रस पाग्यों।
निसि वासर आनन्द बरखत अनुभव मंगल गाज्यो।
श्री विट्ठलनाथ प्रताप दुहूँ दिसि जयजयकार जु बाज्यो।

अन्तिम चार पंक्तियाँ— रटत उदासी ये विलासी यह दृढ़ता जिय आई।
ब्रह्मानंद महेश ही पर परमानन्द सुखदाई।

१ पारीखजी की निजी हस्तलिखित संग्रह से प्राप्त

मो मन प्रीति रस रीति निरंतर एक टक लै लाई।
श्री विट्ठलनाथ प्रताप चहुँजुग मूल श्री 'जीवन' पाई ।।

इससे यह सिद्ध होता है कि वे विट्ठलनाथजी के समय तक वर्तमान थे।

(११) श्री थीरदास

वर्तमानकाल—संवत् १५४५ तक, जन्म-सम्वत्–अज्ञात, पिता का नाम–अज्ञात, जाति–क्षत्री, निवास-स्थान–वर्धा, शरणकाल–अज्ञात, अन्तकाल–अज्ञात।

थीरदास दामोदरदास हरसानी के पिता का नाम है। स्वयं श्री दामोदरदासजी ने ही पिता के नाम से रचना की है। इसका कारण यह है कि उनका पुष्टिमार्ग सम्बन्ध बना रहे। भावप्रकाश वाली ८४ वार्त्ता की प्रथम वार्त्ता में दिए हुए प्रसंग (श्राद्ध) से इसकी गति ठीक बैठती है। यों तो वार्त्ता में दामोदरदास भी कवि नहीं कहे गए हैं पर सम्प्रदाय में इनके पद प्रचलित हैं। इनका प्रसिद्ध नाम कपूरचंद था।

पद–
श्री वल्लभ गुनगान किए
कलि प्रचंड पाखंड न लागत त्रिविधि ताप तम दूर किये।
प्रेम पुलक मुख कमल मनोहर रोम-रोम आनन्द लिये।
परम प्रसन्न रहत उर अंतर नाथ प्रिये नवनीत हिये।
सब साधन सुकृत और व्रत को फल गहत एक नाम लिये।
परमावधि पूरन पुरुषोत्तम भजनानंद पीयूष पिये।
जय मंगल जय कारज सो घर जन कृत जग अवतार लिये।
जन थीरदास जाय बलिहारी श्री गिरधारी गति दान दिये।

इस पद के अन्तिम शब्द 'श्री गिरधारी गति दान दिए' दामोदरदास की वार्त्ता प्रसंग तीन के उल्लिखित दाता और दान के कथन के भाव को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देते हैं। "और श्री आचार्यजी महाप्रभुन को सर्वस्व धन श्रीनाथजी हैं सो हम जैसे जीवन को आयुदान कियो है।"

(१२) त्रिपुरदास कायस्थ

वर्तमानकाल – सम्वत् १६०० तक, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—कायस्थ, निवासस्थान—शेरगढ़, शरणकाल—सम्वत् १५५६ के पश्चात्, अन्त-समय–सम्वत् १६०० के पश्चात्।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—"सो त्रिपुरदास कों श्रीनाथजी के विषे बहोत ममत्व हतो। जो श्रीनाथजी कों पीठि कबहू न देते। श्रीनाथजी के चरणामृत महाप्रसाद बिना जल हू न लेते। सो तुरक की ओर तें एक परगना पर गये। सो बहोत कमाये। सो, जो वस्तु नौतन आवें अन्न, साक, फल-फूल, वस्त्र सो पहिले श्रीनाथजी कों अंगीकार होइ। ता पाछें आपु कछु लेय। और त्रिपुरदास बैठे, ठाढ़े चलते, श्रीनाथजी कों पीठ न देते। और बरस के बरस आछो दगला श्रीनाथजी कों पठावते। सो श्री गुसांईजी पहिले त्रिपुरदास कों दगला आछो देखिकें अंगीकार करावते। सो एक समय उह म्लेच्छ ने त्रिपुरदास सों लेखो लीनो। सो कछुक दाम त्रिपुरदास के ऊपर निकसे। सो उनसों मांग्यो। तब त्रिपुरदास ने कही मेरे पास अब तो नाहीं है। कमायकें भर देउंगो। तब उह तुरक ने सगरो घर लूटि लियो। त्रिपुरदास को बंदीखाने

दिये । ···· ···· सो इतने में भेटिया श्रीनाथजी के आये । सो त्रिपुरदास को चरणामृत महाप्रसाद दिये तब त्रिपुरदास ने विचार्‌यो, जो बरस के बरस श्रीनाथजी कों जड़ावर पठावतो हो। पर अब तो कछू पास है नाहीं । सो एक लिखिवे की द्वाति रही । वाको मुहरो ऊपर को रूपे को हतो । सो बेचि एक रंगी खारकन को थान ले आय भंडारी कों दियो । और कहें श्री गुसांईजी सों मति कहियो । श्रीनाथजी के भंडार में दीजो कहा करिये, अब तो मैं कछू लायक नाहीं हों । सो भेटीआ ने उह रंगी श्रीनाथजी के भंडार में दीनी । पाछें प्रबोधिनी के दिन श्री गुसांईजी मंडप करि देवोत्थापन करि श्रीनाथजी कों दगला उढ़ाये । तब श्रीनाथजी कहे, जो मोकों सीत बहोत लागत है । तब दूसरो दगला उढ़ाये । ··· ······ यह बात त्रिपुरदास ने जानी । तब गद्‌गद् होइ यह पद गायो, सो पद—

नवरंग ललन बिहारा मेरो कहे, जाड़ो मोहि अधिक सुहाय ।

(प्रथम पद, प्रथम पंक्ति)[१]

पद— नवलकुंवरि लाडिलो जेंवत रोटी और बड़ी ।
बरा भुंजेना और खीचरी सद्य घृत अधिक सुगंध परी ।
पापर कोमल हरे संधाने जामे राई बहुत चढ़ी ।
"त्रिपुरारी" गिरधर रुचि उपजी पीवत मीठी मांगि कढ़ी ।"

शरणकाल १५५६ के पश्चात् :—भावप्रकाश के अनुसार यह शेरगढ़ में एक कायस्थ के यहाँ जन्मे थे और इनका बाप राजा के यहाँ दीवान था । उसने इनको अपना सब काम सिखा दिया था । एक बार वह राजा इनको तथा इनके बाप को साथ में लेकर आगरे बादशाह से मिलने आया और कुछ दिन रहकर जब लौट रहा था तब वह गोवर्धन पर श्रीनाथजी के दर्शन को गया । चार दिन बाद जब वह चलने लगा तब त्रिपुरदास को विरह ज्वर चढ़ आया और उन्होंने अपने बाप से कहा कि यदि आप मुझे यहाँ से ले चलिएगा तो मैं मर जाऊंगा । इस पर इनका बाप इन्हें गिरिराज पर ही छोड़कर चला गया । शेरगढ़ लौटते समय किसी जिमींदार से लड़ाई होने में बाप की मृत्यु हो गई और राजा ने इनको राजकार्य सम्हालने को बुलाया इस पर यह न गए । दर्शन करते समय एक दिन श्री महाप्रभुजी की दृष्टि इन पर पड़ी और उन्होंने इन्हें सेवक बना लिया और हर समय श्रीनाथजी के दर्शन का वरदान देकर विदा किया । शेष प्रसंग इनकी वार्त्ता के प्रसंग से ऊपर उद्धृत है ।

भक्तमाल में श्री त्रिपुरदासजी के सम्बन्ध में यह पद है—

कायथ "त्रिपुरदास" भक्ति सुख राशि भर्‌यौ, कर्‌यौ ऐसो पन सीत दगला पठाइयैं ।
निपट अमोल हट हियें हित जटि आवें तातें अति भावें, नाथ अंग पहिराइयैं ।।
आयौ कोऊ काल नरपति मैं बिहाल कियौ, भयौ ईश ख्याल नेकु घर में न खाइयैं ।
वहीं ऋतु आई, सुधि आई आंखि पानी भरि आई, एक द्वाति दीठि आई बेंचि ल्याइयैं ।।

(१३) प्रभुदास भाट (सिंहनद)

वर्त्तमानकाल—संवत् १५८७ तक, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण-भाट, निवासस्थान—सिंहनद, शरणकाल—संवत् १५६७ विश्रांतघाट मथुरा । अन्त-समय—संवत् १५८७ ।

---

१ इस वार्त्ता के प्रसंग एक की पुष्टि भक्तमाल और उसकी टीका से होती है । इनका ऐतिहासिक वृत्त सम्प्रदाय के अन्य ग्रंथों में भी इससे अधिक प्राप्त नहीं है । इनके पद और भी मिलते हैं । जो कीर्तन के ग्रंथों में प्रकाशित हो चुके हैं और परिशिष्ट में संग्रहीत हैं ।

वार्त्ता में इनके सम्बन्ध में लिखा है—सो प्रभुदास एक रस प्रतियों सेवा करते। रात्रि कों वैष्णव को संग करे। द्रव्य घर में बहुत हतो। सो भगवद् सेवा, गुरुसेवा, वैष्णव सेवा में लगाये। और लौकिक वैदिक सब छोडि दिये। ऐसे करे, सो वैष्णव सराहें और ज्ञाति के निंदा करें। परन्तु वे काहु की न सुनें। ऐसे करत वृद्ध भये। पाछें सरीर में असावधानता भई। सावधानता छूटे। तब सगरे ज्ञाति के मिलि कें पृथोदक तीरथ ले आये। तब वहाँ सावधानता भई।……तब प्रभुदास कहे, यह पृथोदक कहा मोकों कृतार्थ करेगो ? हों तो श्री आचार्यजी महाप्रभु को सेवक हों। तुम मोकों बरस लों इहाँ राखोगे तोह मेरी इहाँ न छूटेगी। तातें तुम मोकों सिंहनद ले चलो।……या प्रकार श्री ठाकुरजी सों बिनती करि सिंहनद में एक वैष्णव के माथे पधराइ, दंडौत करि मंदिर के बाहर आइ, सगरे वैष्णवन सों भगवद् स्मरन करि देह छोड़ि दिये।

इनके सम्बन्ध में सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों से भी कोई वृत्त ज्ञात नहीं होता है और न इनके पद ही मिलते हैं। इस कारण इनका जीवन वृत्त भी ज्ञात नहीं हो सका है। भावप्रकाश में इनका निम्नलिखित दोहा प्राप्त है—

जब तैं बिछुर्‌यो नाथ सौं पर्‌यो जगत भव कूप।
ताहितें वल्लभ प्रगट भये दरसायौ निज रूप॥

इस कारण इनका कवि होना ज्ञात होता है। भावप्रकाश के अनुसार यह सिंहनद में एक भाट के घर जनमे। इनका बाप देशाधिपति (बादशाह या राजा) के यहाँ भाट था। यह बाल्यकाल में मूर्ख थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् १५ वर्ष की आयु में यह दिल्ली आए और देशाधिपति के पास गए वहाँ से निकाले गए। पीछे मथुरा आए और "विश्रांत-घाट" पर रो रहे थे कि इनकी भेंट श्री आचार्यजी से होगई और उन्होंने इनको शरण में ले लिया। वहाँ से यह एक लालजी का स्वरूप लेकर सिंहनद चले आए और वहाँ रहने लगे। इनका विवाह नहीं हुआ था और यह धनी परिवार के व्यक्ति थे।

(१४) पद्‌मनाभदास

वर्तमानकाल—सम्वत् १५८९ से १६३४ तक, जन्म-सम्वत्—१५२९, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण, निवासस्थान—कन्नौज, शरणकाल—सम्वत् १५५९, अन्तकाल—सम्वत् १६३४ तक वर्तमान।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—(प्रसंग १) सो प्रथम पद्‌मनाभदास व्यासासन बैठते सो कन्नौज में आप अपने घर कथा कहते। ऊँचे आसन बैठते। काहू के घर जानो न परतो। वृत्ति घर बैठे चली आवती। या भाँति रहते। सो एक समय श्री आचार्यजी आप कन्नौज पधारे। तब पद्‌मनाभदास दरसन कों आये।……(प्रसंग २) एक समै श्री आचार्यजी प्रयाग में हते। तहाँ पद्‌मनाभदास पास है।……(प्रसंग ३) बहुरि एक समें श्री आचार्यजी महाप्रभु श्री गोकुल तें अड़ेल कों जात हते। तब एक व्योपारी क्षत्री कछुक वस्तु लेके साथ में चल्यो। सो कन्नौज के उरे रह्यो। श्री आचार्यजी तो कन्नौज बीच पधारे।……पाछे श्री आचार्यजी आप तो अडेल पधारे। पाछे पद्‌मनाभदास एक राजा हतो ताके पास गये। पाछे राजा नें कह्यो, जो मोकों कृपा करिके कथा सुनावो। तब पद्‌मनाभदास ने कह्यो, जो राजा! श्री भागवत तो न कहूँगो। कहो तो महाभारत सुनाऊं। तब राजा ने कह्यो, जो भलो, महाभारत ही सुनावो। तब महाभारत कहन लागे। सो जब युद्ध को प्रसंग आयौ,

तब सबन के हथियार छुड़ाइ धरे । तब आगे कहन लागे । सो कथा में कोऊ ऐसो—वीररस उपज्यो सो आपस में लात मुक्किन सों लरन लागे । पाछें केतेक दिन में महाभारत समाप्त भयो । तब राजा बहुत दक्षिणा देन लाग्यो । तब पद्मनाभदास ने कह्यो, जो इतनो द्रव्य नाहीं लेऊंगो । मेरे माथे रिन है । सो तितनो लेऊंगो । पाछे वा साहू कों जितनो मूल ब्याज देनो हतो तितनो लीनो ।······(प्रसंग ६) तब पद्मनाभदास श्री ठाकुरजी की सेवा करन लागे । कितनेक दिन पाछे मुगल की फौज आई । सो तानें लूट्यो, सो श्री ठाकुरजी कों एक मुगल ले गयो । तब पद्मनाभदास वा मुगल के साथ दिन सातलों रहे । जलपान हू न कर्यो ।········और जा दिन श्री ठाकुरजी कन्नौज में मुगल के हाथ परे । ता दिन बड़े रामदास ने हू यह बात जानी । सो ता दिन तें बड़े रामदासजी ने हू सात दिनलों भोजन नाहिं कियो ।······(प्रसंग ७) बहुरि एक समय पद्मनाभदास ने बिचारी, जो श्री ठाकुरजी सहित कुटुम्ब सहित श्री आचार्यजी के दरसन करिये । श्रीमुख के वचनामृत सुनिये । सो श्री ठाकुरजी सहित कुटुम्ब सहित अड़ेल में आये ।

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में श्री पद्मनाभदास के सम्बन्ध में ऊपर उद्धृत अंश महत्वपूर्ण है । इससे कई बातों पर प्रकाश पड़ता है ।

काल निर्णय

श्री मथुरेशजी का प्राकट्य करनावल (गोकुल के सामने का एक ग्राम) विक्रम संवत् १५५९ फाल्गुन शुक्ल सप्तमी का है । उस समय महाप्रभुजी के साथ पद्मनाभदासजी भी थे । इस समय से पूर्व यह महाप्रभुजी की शरण में अवश्य आ चुके होंगे । वे उससे पहिले ही व्यासासन से कथा इत्यादि कहकर श्रोताओं को विमुग्ध कर देते थे—इसलिए उस समय इनकी आयु बीस से तीस वर्ष की तो रही ही होगी । इस प्रकार इनका जन्म-सम्वत् १५२९ के आसपास ठहरता है । इनके जन्म की ठीक तिथि का उल्लेख सम्प्रदाय के किसी अन्य ग्रन्थ में भी नहीं मिला । इनके देहावसान के लिए इन्हीं के ये दो पद दृष्टव्य हैं ।

पहला पद श्री गोविंदरायजी के प्राकट्य सम्वत् १५९९ के विषय में मिलता है ।

पद १— श्री गोविंद जन आनन्द कंद ।
देखत दरस परम सुख उपजत सबहि करत दुख द्वन्द ।।
जाको नाम रटत निसि दिन कटत भवसागर के फंद ।
पद्मनाभ प्रभु प्रगट भए हैं मानौं उदयो पूरन चंद ।।[1]

पद २— मधुर व्रज देश बसि मधुर कीन्हों ।
मधुर गोकुल गाम मधुर वल्लभनाम मधुर विट्ठल भजन दान दीन्हों ।।
मधुर गिरधर आदि सप्ततनु वेणुनाद सप्त रंध्रन मधुर रूप लीन्हों ।
मधुर फल फलित अतिललित पद्मनाभ प्रभु मधुर अलि गावत सरस रंग भीनो ।।[2]

दूसरे पद में "सप्त तनु" शब्द यह सिद्ध करता है कि जिस समय श्री गुसांईजी के सप्तम पुत्र श्री घनश्यामजी का भी जन्म हो चुका था उस समय भी आप वर्तमान थे । श्री घनश्यामजी का जन्म संवत् १६२८ है । इस प्रकार आपका १६२८ तक वर्तमान रहना तो अवश्य ही निश्चित है । पीछे सम्प्रदाय कल्पद्रुम के आधार पर पद्मनाभदास का निधन समय १६३४ माना जाता है ।

---

१ छगन भाई कीर्तनिया बहादुरपुर वाले की हस्तलिखित पोंथी से ।

२ वर्षोत्सव की पोथी से

तथा —

"प्रगटे गोपीनाथ फिर गिरधर गृह सुखदान।
सोलह सै चौतीस के पोष कृष्ण छठ भान।"[१]
पद्‌मनाभ को समय लखि विट्ठलनाथ सुजान
पधराए मथुरेश कों गिरधर हित नृपमान।[२]

इस प्रकार अनुमान से इनकी आयु (१५२९ से १६३४) लगभग एकसौ पाँच वर्ष की ठहरती है।

इनके चालीस पद सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध है और कई स्थानों से प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनके पदों की भाषा पांडित्यपूर्ण तथा संस्कृतमय है और इनका विषय श्री महाप्रभु तथा श्री गुसांईजी के भावात्मक स्वरूप का निरूपण है।

उदाहरण :—

श्री लक्ष्मण सुत नेकहू गावै
दमला प्रभूदास बड़ भागी तिनको पुनि पुनि आप सिखावैं।
प्रेम विवस में श्री वल्लभ प्रभु नैन सैन में अर्थ जनावैं।
प्रगट प्रसिद्ध जसोदानंदन रसिक सोभामय सकल जतावैं।
वृन्दावन रमणीक रमन अति उर सम्पुट की कोउ न पावैं।
पद्मनाभ गिरधर रस लीला वेणुनाद की बतियाँ भावैं॥[३]

संस्कृतमय पद—

रस शोभा मय भाव प्रगट करि श्रीवल्लभ वर देहं।
नख शिख आदि व्रज वधू विरहनि व्यापि युगल स्नेहं।
वृंदारण्यं इन्दुं सम्पुटं हृदय गूढ़ कंदरा गेहं।
पद्मनाभप्रभु सुत हित कृत मारग नेह मुरलिका छेहं।[४]

(१५) विष्णुदास छीपा

वर्तमानकाल—संवत् १५६७ से १६८० तक, जन्म-सम्वत्–सं० १५६७ वि०, पिता का नाम–अज्ञात, जाति–छीपा, निवासस्थान–आगरा के समीप गुम्मट गांव, शरणकाल—१५८७ के आसपास, अन्त-समय–अज्ञात।

इनके सम्बन्ध में वार्त्ता में लिखा है—तब श्री गुसांईजी कहें, आछो पौरी पर रहो, तब विष्णुदास पौरी पर रहे। सो श्री गुसाँईजी जब पधारें, तब विष्णुदास कों पुकारें—जो विष्णुदास प्रसन्न हो ? तब विष्णुदास कहैं, यह चरन कमल के आश्रय ते प्रसन्न हों, या प्रकार श्री गुसांईजी विष्णुदास पर कृपा करते या प्रकार पौरी पर रहते। (प्रसंग २) सो जहाँ तहाँ तें पंडित श्री गुसाँईजी तें वाद करन कों आवते। सो विष्णुदास ने कही, ये पंडित श्री गुसाँईजी सों वाद करन को आवत हैं, सो इनकों मैं ही प्रतिउत्तर करि देऊं तो श्री गुसांईजी को इतनो श्रम न करनो पड़े। यह विचारि जो पंडित आवते, तिनसों वाद करि निरुत्तर करि देईं। तब पंडित जाने जो जिनके पौरिया में यह सामर्थ है, जो हमकों जुबाब न आयो, तो श्री गुसांईजी सों हम कहा वाद करेंगे ? यह विचारि सगरे ब्राह्मण पौरि परतें नित्य फिरि जाते। तब एक दिन श्री गुसांईजी ने वैष्णव सों कह्यो, जो आजकल पंडित

१ दोहा ७३ पृष्ठ ८१ लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापाखाना मुंबई संस्करण।
२ दोहा ७५ पृष्ठ ८१।
३–४ निजी हस्तलिखित संग्रह से।

ब्राह्मण वाद करन नाहीं आवत हैं ताको कारन कहा ? तब वैष्णव ने कही, महाराज ! पंडित तो बहोत आवत है, परि पौरि पर विष्णुदास उनसों वाद करि निरुत्तर करि देत हैं, सो चले जात हैं। तब श्री गुसांईजी ने विष्णुदास को बुलाई कें कह्यो तुमकों तो श्री आचार्यजी की कृपा बल ऐसोई है। तातें तुमको सगरे शास्त्र में अभिनिवेस हैं। सो पंडित कों निरुत्तर करत हो।

भावप्रकाश के अनुसारः—यह आगरे के पास किसी गांव में छीपा के घर जन्मे थे और बाज़ार में छींट के थान बेचते थे। एक दिन इनका थान श्री आचार्यजी को पसन्द आगया और उन्होंने कृष्णदासजी से उसे मोल लेने को कहा और इनका चौगुना मुंह मांगा मोल इनको देने को कृष्णदास तैयार होगए। यह देखकर इन्हें आश्चर्य हुआ और यह विना मूल्य दिए लेना चाहते थे पर वह कृष्णदास ने स्वीकार न किया। पीछे से यह श्री महाप्रभुजी के दर्शन करके उनके शरण आगरा में यमुना तट पर आए और आचार्यजी ने इनको "सेवा फल" ग्रंथ सुनाया फिर उसकी टीका सुनाई। नाम सुनने के पश्चात् इनकी स्त्री इन्हें छोड़कर चली गई। यह प्रतिदिन छींट छापते थे और उसे आगरे बेंच आते थे। अन्त में इन्होंने श्री गुसांईजी के यहां पौरिया की सेवा स्वीकार करली। यह श्री गुसांईजी की जूठन को भट्ट के पारस से उत्तम समझते थे।

पद—

जै श्री गोकुलनाथ जू जिन माला राखी।
सकल जगत भय देखि के दूर ही गहे नाखी।
धरम सान लजात हो बल करि दृढ़ कीन्हों।
मायामत खंडन कियो जस जग में लीन्हों।
श्री विट्ठल गृह प्रगट के भक्तन सुख दीन्हों।
नाम सुनायो ताहि को अपुनो करि लीन्हों।
श्री वल्लभ कुल मंडन सब ही मन भावन।
सुधा दृष्टि किए रहे बरखत मानो सावन।
पद परसत भव तारिकें कीन्हे जगपावन।
नाम सुनत ही उद्धरे ते बहुरि न आवन।
सरण सम्हारि उधारि कै अभयपद दिए।
असुर सृष्टि तें काढ़ि के वे अंग ही लिए।
भक्ति मार्ग प्रकाश के सेवा जो सिखाई।
वेद स्मृति सब दृढ़ किए भ्रम दूर बहाई।
गिरवरधारी लाड़िलो यह सदा सहाई।
विष्णुदास नित प्रति रहे चरनन लपटाई।[1]

१६—भगवानदास सांचोरा

वर्तमानकाल—सं० १५१६ से १५६६ तक, जन्म-सम्वत्—१५१६, पिता का नाम—अज्ञात। जाति—ब्राह्मण। निवासस्थान—अहमदाबाद के समीप शरणकाल-सं० १५६६ से पूर्व, अन्त-समय—संवत् १५६६।

१ हस्तलिखित संग्रह—कांकरौली बंध संख्या १/२, पृष्ठ १६४

इनकी वार्त्ता में लिखा है:—(प्रसंग १) सो एक दिन भगवानदास ने सामग्री करी सो दाफी, सो बिगरी, भोग धरे। सो जब श्री गुसांईजी भोग सरायवे पधारे तब बिगरी सामग्री देखि भगवानदास के ऊपर बहोत खीजे। सो सेवा तें बाहिर किये। तब भगवानदास एक कौने में बैठि रुदन करन लागे। जो मैं अब कहा करूं ?……………पाछें भगवानदास गोविंदकुण्ड ऊपर अच्युतदास पास आये।……………तब अच्युतदास ने श्री गुसांई सों कही, महाराज ! श्री आचार्यजी नें जीवन कों तुमकों सौंपे हैं। सो आपकों बहोत जीव अंगीकार करनो है। जीव तो दोष सों भरे हैं। सो आप अभी तें जीव को दोष देखन लागे, सो जीव को उद्धार अब कैसे होयगो ?…………तब श्री गुसांईजी अच्युतदास सों कहें, तुम चिन्ता मति करो। मैं भगवानदास को सिक्षा दीनी है। और यह बात तुम द्वारा श्री आचार्यजी ने मोसों कही है। तातें आज पाछें कोई वैष्णव पर न खीजोंगो। तब अच्युतदास प्रसन्न भये। तब श्री गुसांईजी गोविन्दकुण्ड तें भगवानदास की बांह पकरिके श्रीनाथजी के मन्दिर में ले गये। कहे सेवा सामग्री सावधानी तें करियो। तब भगवानदास प्रसन्न होयके यह कीर्तन गायो—

"श्री विट्ठलेश चरन कमल पावन त्रैलोक्य करन दरस परम सुन्दर वर वार वार बंदे।"

भावप्रकाश के अनुसार:—यह राजनगर (अहमदाबाद) के पास किसी गांव के रहने वाले थे। यह रणछोड़ में श्री महाप्रभुजी की शरण आए थे कुछ दिन श्री आचार्यजी की सेवा, चौंर, टहल करके यह अपने घर गए, पीछे स्त्री के निधन के पश्चात् श्री गिरिराजजी आगए और वहाँ श्री गुसांईजी के पास रहने लगे और श्रीनाथजी के भीतरिया हुए। इनके सम्बन्ध में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है। यह अनुमान से संवत् १५६६ से पूर्व शरण में आगए थे और इनका डाकौर में शरण में आना निश्चित है।

यह महाप्रभुजी के सेवक थे और श्री गोसांईजी के समय में श्रीनाथजी की सेवा में भी रहे। वैभव से जब से सेवा का आरम्भ हुआ उस समय यह सेवा में रहे हैं। इसलिए सम्प्रदाय कल्पद्रुम के हिसाब से इनका समय १६१५ आता है क्योंकि इसी सम्वत् में श्री गोसांईजी ने श्रीनाथजी को "छप्पन भोग" आरोगाया था। उस भोग का वर्णन श्री भगवानदास ने अपने एक पद में किया है। वह पद इस प्रकार है :—

'केसरि की धोती पहिरे केसरी उपरना ओढ़े।
तिलक मुद्रा धरि बैठे श्री लक्ष्मण सुत गेह ॥
जाको नाम विट्ठलेश गावत सुरेस गनेस।
पुष्टि को प्रवाह मुख बरसत है मेह ॥
बसै हरि गोकुल गाम पूरत मन सकल काम।
नंदलाल यह लीला प्रगट दरस देत गेह ॥
बरसत नित रीत उत्सव जग करन।
भोग छप्पन को श्री भानुराय भवन विकसे येह ॥
नित प्रति लाड़ लड़ावत तन मन धन न्योछावर देय।
जीव दरस करत स्थूल अति देह ॥
कहत अति दीन भव डूबत भगवानदास।
चरन कमल करौं निवास यही नित मांगौ नेह ॥'[1]

---

१ पारीखजी के हस्तलिखित वर्षोत्सव संग्रह से प्राप्त

१७—मुकुंददास कायस्थ

वर्तमानकाल—सं० १५४६ से १६०० वि०, जन्म सम्वत्–सं० १५४६, भाई का नाम–दिनकरदास. जाति—कायस्थ, निवासस्थान –मालवा, शरणकाल—सं० १५६६, ग्रन्थ—मुकुन्दसागर, पद।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—सो मुकुन्ददास कवित्त बहोत सुन्दर करते। श्री आचार्यजी के, श्री गुसांईजी के, श्री ठाकुरजी के, एकसे करते। और मुकुन्ददास ने एक "मुकुन्दसागर" ग्रन्थ भाषा में कियो है। तामें श्रीभागवत द्वादसस्कंध (पर्यंत) को अर्थ धरि दिये हैं। और मुकुन्ददास एक समय उज्जैन के कारकून ह्वै कें गये। सो उज्जैन के ब्राह्मन पंडित सब आइके मिलें। और कहें, कहो तो हम तुमकों श्रीभागवत सुनावें ? तब मुकुन्ददास ने कही, अवकास नाहीं है। अवकास होयगो तब सुनेंगे। इनके सम्बन्ध में चौ० वै० वार्त्ता में उपर्युक्त महत्वपूर्ण उल्लेख है। दामोदरदास संभल वाले की वार्त्ता में (प्रसंग ७) के भावप्रकाश में मुकुन्दसागर की एक पंक्ति इस प्रकार दी गई है :—

"स्वामी तें निज अर्थ जो चाहै निंदन भक्ति अवगाहै।"

इससे यह तो सिद्ध हो ही गया कि यह ग्रन्थ जो अब नहीं मिल रहा है श्री हरिरायजी के समय तक वर्तमान था।

भावप्रकाश के अनुसार आपने मालवा में एक कायस्थ के यहाँ जन्म लिया था और इनके पिता उज्जैन के पास नौकर थे जब यह दश वर्ष के थे तो इनके पिता का शरीर छूट गया। इसके पश्चात् यह काशी गए, इन्होंने बहुत सा धन कमाया और जब लौट रहे थे तब इन्हें काशी के एक कोस बाहर ही सांप ने काट लिया। उस समय इनके भाई दिनकरदास भी इनके साथ थे और वे इनकी दशा देखकर फूट-फूटकर रोने लगे। उस समय कृष्णदास सहित आचार्यजी काशी में ही विराज रहे थे और कृष्णदास किसी काम से उधर आ निकले थे। उन्होंने आचार्यजी के चरणामृत द्वारा इनका विष दूर कर दिया। इस पर यह आचार्यजी के पास गए और वहाँ शरण में आए और पीछे अपने घर मालवा लौट आए। इनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी। इन्हें सब शास्त्र कंठस्थ थे। इनका ग्रन्थ "मुकुन्दसागर" अभी तक मिला नहीं है।

यह उज्जैन या उसके आसपास मालवा के रहने वाले थे। यह सम्वत् १५६६ के आसपास महाप्रभुजी के सेवक हुए थे क्योंकि अडैल निवास के पूर्व महाप्रभुजी काशी में सेठ पुरुषोत्तमदास के घर पर ही रहते थे। अडैल निवास की तिथि १५६६ है। मुकुन्दसागर के अतिरिक्त इनके बहुत से स्फुट पद भी कीर्तन के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं जो प्रकाशित भी हो चुके हैं। निम्नलिखित पद वार्त्ता के उस कथन की पुष्टि करते हैं कि यह श्रीनाथजी के, महाप्रभुजी के और गोसांईजी के एक से पद करते थे —

"प्रथम श्री वल्लभ विट्ठल गिरधर तिनके चरण कमल चित लाइये।
श्री गोविंद चन्द अति सुन्दर बालकृष्ण को सुजस नित गाइये।।
श्री रघुनाथ, जदुनाथ, घनश्याम, कल्याणराय के नाम बिकैये।
प्रभु मुकुन्द रसिक गिरधारीलाल लीला भक्त हेत प्रगट जनैये।।"

इस पद से यह सिद्ध होता है कि वे सम्वत् १६३० में तो कम से कम वर्तमान थे। जब १५६६ से पूर्व यह काशी को जा रहे थे तो काशी से जाने के समय उनकी आयु बीस वर्ष की मानली जाय तो उनका जन्म १५४६ के आसपास ठहरता है।

१८—रामदास प्रोहित

वर्तमानकाल—संवत् १५८७ तक, जन्म-सम्वत्—१५६५, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण सारस्वत, निवासस्थान—राजस्थान-मेवाड़, शरणकाल—संवत् १५८७ से पूर्व, अन्त-समय—अज्ञात ।

इनकी वार्ता में लिखा है—पाछे रामदासजी एक दिन मीराबाई के यहाँ गये । सो मीराबाई के ठाकुर आगे श्री आचार्यजी के कीर्तन गावत हे । तब मीराबाई ने कही, कोई विष्णु पद श्री ठाकुरजी के गावो । तब रामदास कों रीस छूटी, कहें, दारी रांड़ ! यह कहा तेरे खसम के हैं ? जा, आज पाछे तेरो मुख न देखोंगो । सो वह गाम में ते कुटुम्ब लेके उठि चले । तब मीराबाई ने बहोत कही । इनकों दक्षिणा देन लागी, सो कछू न लियो । कुटुम्ब ले और गाम में जाइ रहे । सो रामदासजी ऐसे टेक के कृपापात्र भगवदीय हते । अपने प्रभु में ऐसे अनुरक्त हते, जो फिर मीराबाई को मुख न देख्यो ।

भावप्रकाश के अनुसार इनके सम्बन्ध में यह वृत्त ज्ञात होता है:-पाछे मेवाड़ में एक ब्राह्मण के घर जन्में सो बरस बाईस के भये । रामदास के पिता रामदास को संग लेके श्री रणछोड़जी के दरसन को गये । तहाँ श्री आचार्यजी पधारे हते । सो रामदास को दरसन भयो तब रामदास ने पिता सौं कही, श्री आचार्यजी के सेवक तुम हम होई तो आछो । तब रामदास के पिता ने कही, जो ये ब्राह्मण हैं, हमहू ब्राह्मण हैं । हम सेवक कौन के होइ ? अब कही सो कही अब कहोगे तो तुम जानोगे । तब रामदास चुप होइ रहे । पाछे पिता सों छिपके श्री आचार्यजी के पास जाइ, रामदास दण्डवत करि बिनती किये । मेरा मन आपु के सेवक होन को बहोत है···रामदास पिता को ले मेवाड़ में आये, घर में रहे । सो सारे घर के रामदास की आज्ञा में रहे ।

यह मेवाड़ के रहने वाले थे । रणछोड़ में महाप्रभुजी की शरण आये थे और इनके पीछे इनके पिता शरण में आये थे । इनके सम्बन्ध में उदयपुर के पोथीखाने में ढूंढने की चेष्टा की गई पर न तो विशेष पद मिला और न पुरोहित रामदास का विवरण । मीराँ के समकालीन होने से इनका वर्तमानकाल संवत् १५५५ से १६०० के पश्चात् तक ठहरता है । मीराँ के सामने गाया हुआ पद :—

जय श्री वल्लभ अवतार
प्रकट भए पूरन पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार ।
तबही प्रकट भये वसुदेव के तुम हर्‌यो सकल भू भार ।
बाल केलि सुख नंद महरि के दिये विविधि विस्तार ।
जात वहै हे सकल जीव कलि के भव सागर की धार ।
तिन्हि बांह गहि कमल पद राखे पर उदार ।
युग युग राज करौ श्री गोकुल ब्रज में नित्य विहार ।
रामदास प्रभु सब भक्तन के जीवन प्राण अधार ।[1]

मीरा का समय इतिहास से सम्वत् १६०३ तक है । समकालीन होने के नाते यह उस समय तो वर्तमान थे ही और उससे पूर्व शरण में आ चुके थे । महाप्रभुजी की द्वारका यात्रा से ही इनका शरणकाल और जन्म तिथि का अनुमान किया गया है ।

१ पारीखजी के हस्तलिखित संग्रह से ।

(१९) लघु पुरुषोत्तमदास

वर्तमानकाल–अज्ञात, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति–क्षत्री, निवासस्थान—काशी, शरणकाल—संवत् १५८७ से पूर्व, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है:—सो वे श्री गोवर्धननाथजी के कवित्त और श्री आचार्यजी के कवित्त एक साथ करते। या प्रकार श्री आचार्यजी कों साक्षात पुरुषोत्तम जानन लागे। ता दिन तें राजा आदि धनपात्र के यहां जानो, उनके कवित्त कहनो सब छोड़ि दियो।

इनके सम्बन्ध में कांकरौली या नाथद्वारा कहीं से कोई इतिवृत्त प्राप्त नहीं है और न कोई पद ही किसी कीर्तनिया से प्राप्त हो सका है। केवल वार्त्ता के अनुसार यह प्रसिद्ध कवि हैं। इनका विवरण हिन्दी साहित्य के किसी इतिहास या खोज रिपोर्ट में भी अभी तक नहीं आया है।

(२०) सूरदासजी

वर्तमानकाल—संवत् १५३५ से संवत् १६३६ विक्रमी, जन्म-सम्वत्—सं० १५३५, पिता का नाम—रामदास, जाति—सारस्वत ब्राह्मण, निवासस्थान— गऊघाट, शरणकाल— संवत् १५६६ वि०, अन्त-समय—संवत् १६३८ वि०।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—सो गऊघाट ऊपर सूरदास रहते तब कितनेक दिन पाछें श्री आचार्यजी महाप्रभु अडैल तें ब्रज कूं पधारत हते। सो कछुक दिन में श्री आचार्यजी आप गऊघाट पधारे ता समय श्री आचार्यजी के संग सेवकन को बहोत समाज हतो। सो सब वैष्णव सहित श्री आचार्यजी आपु श्री यमुनाजी में स्नान किये। ता पाछें संध्यावंदन करि पाक करन कों पधारे और सेवकहू सब अपनी-अपनी रसोई करन लगे। ता समय एक सेवक सूरदास के तहाँ आयो। सो वाने जायके सूरदास कों खबरि करी, जो सूरदासजी ! आज यहाँ श्री वल्लभाचार्यजी पधारे हैं। जो जिनने कासी में तथा दक्षिण में मायावाद खंडन कियो है, और भक्तिमार्ग स्थापन कियो है। तब यह सुनिके सूरदास ने अपने सेवक सों कह्यो, जो जब श्री वल्लभाचार्यजी भोजन करिके निश्चितता सों गादी तकियान के ऊपर बिराजें ता समय तू हमकों खबरि करियो। जो मैं श्री वल्लभाचार्यजी के दरसन कों चलूंगो।.........तब सूरदास वाही समय अपने संग सगरे सेवकन कों लेकें श्री आचार्यजी के दरसन कों आये।.........ता पाछे सूरदास ने यह पद श्री आचार्यजी के आगे गायो। सो पद :—

हों हरि सब पतितन कौ नायक।

फेरि दूसरो पद गायो, सो पद:—

प्रभु हों सब पतितन कौ टीको।

सो सुनिके श्री आचार्यजी आपु सूरदास सों कहे, जो सूर ह्वै कैं ऐसो घिघियात काहे कों है ? सो तासों कछु भगवल्लीला वर्णन करि।....ता पाछें श्री आचार्यजी आप ब्रज में पधारे। तब सूरदास हू श्री आचार्यजी के संग ब्रज में आये।.......ता पाछें श्री आचार्यजी ने विचार्यो जो श्री गोवर्द्धननाथजी को मंदिर तो समरायो, और सेवा हूँ को मंडान भयो। तातें सूरदास कूं श्रीनाथजी के पास राखिये। तब समै समै के सगरे कीरतन को मंडान और भयो चाहिये। सो आगे वैष्णवजन सूरदास के पद गायके कृतार्थ बहोत होयँगे।.........

(प्रसंग ३) पाछें उनके पद जहाँ तहां लोग सीखि के गावन लागे। सो सब (एक समय) तानसेन ने एक पद सूरदास को सीखि के अकबर बादशाह के आगे गायो। सो पद :—

'यह सब जानो भगत के लच्छन।'

यह सुनि देसाधिपति अकबर ने कह्यो, जो ऐसे लच्छन वारे भक्तन सों मिलाप होय तो कहा कहिये ? सो तानसेन ने कही, जो जिनने यह कीर्तन कियो है सो ब्रज में रहत हैं। और सूरदासजी उनको नाम है।........(प्रसंग ५) सो इन सूरदासजी ने श्रीनाथजी कीर्तन की सेवा बहोत दिन तांई करी। सो बीच-बीच में जब कुंभनदासजी, परमानंददासजी, के कीर्तन के ओसरा आवते, तब सूरदासजी श्रीगोकुल में श्री नवनीतप्रियजी के दरसन कूं आवते। सो एक दिन सूरदासजी श्री गोकुल आये हते, सो बाल लीला के पद बहोत गाये सो सुनिके श्री गुसांईजी आप बहोत प्रसन्न भये।........(प्रसंग ११) सो जहां उड्डराज चन्द्रमा प्रकट्यो है—सो तहां चन्द्र सरोवर है ऐसे अलौकिक स्थल में आये।.... तब श्री गुसांईजी के संग रामदास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, आदि सगरे वैष्णव सूरदासजी के पास आये। तब देखे तो सूरदासजी अचेत होय रहे हैं, कछू देह को अनुसंधान नाहीं है। सो श्री गुसांईजी आप सूरदासजी को हाथ पकरिके कहे जो सूरदासजी ! कैसे हो ? तब सूरदासजी तत्काल उठि के दंडवति करिके कहे जो बाबा ! आये ? जो मैं आपकी बाट ही देखत हतो।........पाछें सूरदासजी जुगलस्वरूप को ध्यान करिके यह लौकिक सरीर छोड़ि लीला में जाय प्राप्त भये। ता पाछें श्री गुसांईजी आप तो गोपालपुर पधारे। तब सगरे वैष्णवन ने मिलिके सूरदासजी के देह को अग्निसंस्कार कियो। ता पाछें सगरे वैष्णव श्री गुसांईजी के पास आये।

'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' 'सूर निर्णय' आदि में इनके संबंध में लिखा जा चुका है। उससे अधिक और विशेष महत्व की कोई सामग्री मुझे नहीं मिली है।

(२१) हरजीवन (हरजी कोठारी) वार्त्ता नौ

वर्तमानकाल—संवत् १५९४ से १६३६, जन्म-संवत्—संवत् १५९४, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास-स्थान—आसारवा, शरणकाल—अज्ञात, अन्त-समय—अज्ञात।

भावप्रकाश के अनुसार यह राजनगर से कुछ दूर किसी गाँव के रहने वाले थे और जाति के बनिए थे। इनके बाप तथा तीन भाई और थे—बेनी कोठारी, भाइला कोठारी, जैता कोठारी। इनके पिता राजनगर के हाकिम के यहाँ कोठार के मालिक थे। राजनगर अहमदाबाद है और आसारवा उसका एक छोटा पुरवा है। यह फिर वहीं रहें। नरहरि संन्यासी के साथ इनके पिता जब श्री गुसांईजी प्रथमबार (सम्वत् १६०० में) द्वारिका पधारे तब शरण में आए उस समय हरजी ६ वर्ष के थे। इससे जन्म संवत् १५९४ निकलता है। इन्होंने संस्कृत में 'श्री विट्ठल सहस्र नाम' नामका एक ग्रंथ बनाया है जो कांकरौली सरस्वती भंडार में वर्तमान है और हिन्दी के भी इनके बहुत पद सम्प्रदाय के ग्रंथों में मिलते हैं।

उदाहरण :—(मंगल सुहेलरा)

प्रगटे एलम्मा श्री वल्लभदेव, श्री लछमनभट गृहे बधाइयां।
गावे एलम्मा गीत रसाल सबै सुहागिनि आइयां।

ब्राह्मन एलम्मा वेद पढ़ाय देत असीस सुहाइयां।
मोतिन एलम्मा चौक पुराय बंदनवार बधाइयां।
घर घर एलम्मा दुदुंभी बजाय पहोप अंजुली बरखाइयाँ।
दीने एलम्मा बहु विधि दान नर नारीन पहराइयाँ।
धन्य धन्य एलम्मा एल्लमागारू आसा सबै पुजाइयाँ।
सब दिन एलम्मा सुख सम्पत्ति राज 'हरि जीवन' मनभाइयाँ।

१—राजा आसकरन

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्मसम्वत्—सम्वत् १६०७, पिता का नाम—भीमसिंह, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—नरवर; शरणाकाल—संवत् १६२८ के पश्चात्, अन्त-समय—श्री गुसांईजी के निधन के पश्चात्।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—सो आसकरन कों प्रथम राग पर बहोत आसक्ति हुती। सो देस-देस के कलामंत गवैया आसकरन के पास आवते। सो आसकरन सबकौ समाधान करते। जहां तो रहते तहां ताईं सीधो सामान पहोंचावते। पाछें जब-जब चलते तब विदा हू आछी करते। सो दोइसै-चारसै गवैया सदा आसकरन के पास गाइवे कों रहते।

सो एक दिन तानसेन ने आसकरन की बड़ाई सुनी। सो मन में बिचार्‌यो, जो एक बार आसकरन के पास जांइ देखो, आसकरन कछू समुझत हैं? यह बिचारि कै तानसेन आसकरन के उहां गए।........तब तानसेन ने गोविन्दस्वामी कौ पद गायौ—

कुंवर बैठे प्यारी के संग अंग-अंग भरे रंग—(प्रथम पंक्ति)...... ...

यह सुनिकै आसकरन ने तानसेन कों विनती करिकै बैठाये। कहे, जो यह पद तुम अपनो करिकै गाए के कोई और कौ है? तब तानसेन ने आसकरन सो कही, हे राजा! ऐसो पद मोसों कोटि जन्म में हू न आवे। यह तो श्री गोकुल में श्री विट्ठलनाथ गुसांईजी हैं, सो साक्षात् श्रीकृष्ण प्रगट भए हैं। तिनके अंतरंग सेवक गोविंदस्वामी हैं, उनने गायो है।........ पाछे आसकरन राजा ने श्रीगोकुल आईवे की तैयारी करी। सो 'नरवर' सों कूच कियो। तब अपनो मनुष्य दोरायो, जो खबरि ल्याउ। श्री गुसांईजी श्री गोकुल होइ तो श्री गोकुल चलों। श्री गोवर्द्धन होइ तो श्री गोवर्द्धन चलों। सो श्री गुसांईजी श्री गोकुल हते। सो मनुष्य ने आसकरन को खबर करी, जो श्री गुसांईजी श्री गोकुल में बिराजत है। तब आसकरन तानसेन को लैकै श्री गोकुल आए। .... पाछें तानसेन ने बिनती श्री गुसांईजी सों करी, जो महाराजाधिराज! आसकरन आये हैं। नाम पाइवे की बिनती करत हैं।... तब आसकरन तें श्री गुसांईजी ने कही, जो तुम आजु ब्रत करो। राजकाज बोहोत किये हो। सो कालिह तुमकों ब्रह्मसंबंध करावेंगे। .... सो आसकरन ने यह पद राग सारंग में गायो—

जै श्री विट्ठलनाथ कृपाल। (प्रथम पंक्ति)

तब श्री गुसांईजी गोविंदस्वामी कों बुलाइ कहे, जो गोविंददास! आसकरन कों हू कछू सिखावो। .... तब श्री गुसाँईजी आसकरन सों कहे, तुम सुखेन घर जांइकै सेवा करो। तुमकों राजकाज लौकिक बाधा न होइगी। तब आसकरन दंडवत् करिकै अत्यन्त

भाव-प्रीति सहित बिदा होंई तानसेन कों संग लैकै अपने घर आए। .... तब आसकरन ने एक आछौ घोड़ा सुनहरी साज कौ अपने चढ़िवे कौ और हजार दोइ रुपैया तानसेन कों बोहोत बिनती करिकै दिये। सो तानसेन लै कै अपने घर आए। .... तब दक्षिन कौ राजा आसकरन के ऊपर चढ़ि आयो, राज के लिये। .... और एक बार होरी के दिन हते। सो आसकरन 'गोपकुआं' ते 'जसोदा घाट' न्हाइवे कों आवत हते। इतने में रमनरेती में मुरली श्री ठाकुरजी ने बजाई। सो मुरली कौ शब्द आसकरन ने सुन्यो। .... .. तब यह धमार आसकरन ने गाई—

या गोकुल के चौहट रंग राजी ग्वालि। (प्रथम पंक्ति)

.... और एक समय आसकरन श्री गुसांई के दरसन करन संध्या—आर्ति समै आए। सो ता दिन श्री गुसांईजी आसकरन कों आज्ञा कीनी, जो आसकरन। सेन समै पौढ़ायवे के कीर्तन तुम करियो। .... तब सेन समय केदार राग में आसकरन ने यह कीर्तन गायो—

तुम पौढ़ो हों सेज बनाऊँ। (प्रथम पंक्ति)

....और एक समै आसकरन श्री गुसांईजी के संग श्री श्रीद्वारका गए। तहाँ चतुर्भुजदास मान कौ कीर्तन भोग समय गावत हते।

राधा तू मान मदनगढ़ किया। (प्रथम पंक्ति)

....सो आसकरन हू बोहोत पद रहस्य लीला के किये। भावप्रकाश से इनके जीवन वृत्त में कोई सहायता नहीं मिलती है। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में उनका शरण में आना इस प्रकार लिखा है :—

आसकरण नृप विनय सुनि विट्ठलनाथ प्रवीन।
प्रेम भक्ति लखि शिष्य करि मोहन नागर दीन॥[1]

सम्प्रदाय कल्पद्रुम में राजा आसकरण के सम्बन्ध में एक और उल्लेख प्राप्त है। एक समें श्री गुसांईजी ने सात स्वरूपों को इकट्ठे करके जो महोत्सव किया था तब अपने छठे पुत्र श्री यदुनाथजी जो बटवारे से असंतुष्ट थे उनको समझा-बुझाकर गोकुल से गोबरधन बुलाने को श्री आसकरण को भेजा था :—

नंद महोत्सव पूर्ण करि श्री विट्ठल द्विजराय।
आसकरण नृप कों जु फिर नरवर तें बुलवाय। (४२)
फक्त एक यदुनाथ जू रहे जु गृह बिलखाय। (४६)
षट स्वरूप षट रूप धरि एक संग द्विजराय।
उत्थापन करि भोग धरि गोवरधन परि जाय॥ (४८)
श्री गोवरधन कों विट्ठल शयन कराय।
गिरधर आदि षट सुतन युत लिय प्रसाद गृह आय॥ (४९)
आसकरण नृप कौं जु फिर गोकुल भोर पठाय।
बुलवाये यदुनाथ कौं परिपूरण समुझाय॥ (५०)[2]

विशेष :—आसकरण के भांजे राजा कृष्णसिंह कृष्णगढ़ के राजा थे। वे भी वल्लभ कुल सम्प्रदाय के सेवक थे और तबसे आजतक उनके वंशज इस सम्प्रदाय के सेवक होते

१ सम्प्रदाय कल्पद्रुम–पृष्ठ ५७ खेमराय श्री कृष्णदास प्रकाशित संवत् १९५०
२ सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृ० संख्या ९१

चले आए हैं। इन्होंने सम्वत् १६६८ में कृष्णगढ़ बसाया था। नागर समुच्चय की प्रस्तावना के पृष्ठ नौ पर नागरीदास का जीवन चरित्र देते हुए लिखा गया है :—

"और महाराज श्री कृष्णसिंहजी नरवरगढ़ के कछवाहा राजा आसकरणजी······ के भांजे थे।"

भक्तमाल में इनको कील्हदेव का शिष्य लिखा है। इसके आधार पर डाक्टर माताप्रसाद गुप्त इनके पुष्टिमार्गीय होने में सन्देह करते हैं। किन्तु पुष्टिमार्ग में जो प्रमाण मिलते हैं उनके आधार पर डाक्टर गुप्त का कथन भ्रम मात्र सिद्ध होता है। स्वयं आसकरणजी के प्रचलित पद डाक्टर महोदय के संदेह का खंडन करने के लिए प्रर्याप्त हैं। दूसरे कील्हदेव विशुद्ध राम भक्त थे जबकि राजा आसकरण के राम विषयक किसी भी पद का उल्लेख नहीं मिलता है। तीसरे राजा आसकरण के दो ठाकुर 'श्री मोहन' और 'श्री नागर' आज भी सम्प्रदाय के मंदिरों में ज्यों के त्यों विराजमान हैं। श्री मोहनजी "धौलका" (अहमदाबाद, धंधुका लाइन में) में वैष्णव चन्दूलाल मजूमदार के यहाँ विराजमान हैं और उस मन्दिर पर कांकरौली वाले महाराजश्री का अधिकार है और यह ठाकुरजी कांकरौली वाले के अधिकार से दोसौ वर्ष पूर्व से आये थे। दूसरे ठाकुर श्री नागरजी बम्बई के बड़े मन्दिर में गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी के अधिकार में हैं।

राजा आसकरण के पद—

(पलना के पद)

यह नित नेम जसोदा जू मेरे तिहारे लाल लडावन को।
प्रात समय उठि पालने झुलाऊँ संकट भंजन जस गावन को।
नाचत कृष्ण नचावत गोपी करकठ ताल बजावन को।
आसकरन प्रभु 'मोहन नागर' निरखि बदन सचुपावन को ॥[1]

कनक पवित्रा सोहत स्यामै।
नगन जटित आभूषण तामै मध्य बिराजत मुक्ता दामै।
अंग अग चित्र विचित्र विराजत देखि मोही ब्रज की बामै।
आसकरन प्रभु 'मोहन नागर' गिरधर कुंअर देत विश्रामै।

पवित्रा का उत्सव श्रावण शुक्ला एकादशी के दिन केवल वल्लभ सम्प्रदाय में ही विशिष्ट प्रकार से प्रचलित है क्योंकि यह उत्सव स्वयं महाप्रभुजी ने चलाया था (दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता) कनक पवित्रा का अर्थ है सुनहरे कलाबूत के तार। ऐसी पवित्रा आज भी श्रीनाथजी को पहिनायी जाती है। उपरोक्त पद का 'गिरधर' शब्द श्रीनाथजी की ओर संकेत करता है क्योंकि उनके ठाकुरजी का नाम मोहन नागर पहले आ गया है। वार्त्ता और धमार के ग्रंथों में प्राप्त या 'गोकुल के चौंहटे' इत्यादि में इनके पद वल्लभ सम्प्रदाय के स्थानों और सेवा प्रणाली उल्लेख की विशिष्टता के द्योतक हैं। इन सब प्रमाणों के उपलब्ध होते हुये भी आसकरण को अन्य सम्प्रदाय का मानना प्रमाण के विरुद्ध जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

नोट—यह पद प्रत्येक मन्दिर में ग्वाल व पलना के समय आज भी गाया जाता है। इसमें वल्लभ सम्प्रदाय की विशिष्ट बाल भावना स्पष्ट दीखती है जो आसकरण को पुष्टिमार्गीय सिद्ध करने में सहायक होती है। इससे भी अधिक पुष्ट प्रमाण 'पवित्रा' का यह पद है

कवि और पदकर्त्ता

राजा आसकरण (दास कछवाहा)—का उल्लेख आइने अकबरी में अबुल फज़ल द्वारा दी हुई प्रभावशाली सामन्तों तथा राजाओं की सूची में आया है। 'शिवसिंह सरोज' में भी राजा आसकरणदास कछवाहे का वर्णन हुआ है। जिसमें यह लिखा है कि यह नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे और इन्होंने हिन्दी के बहुत से पद रचे थे। भक्तमाल में भी इनका वर्णन मिलता है और यह स्वामी कील्हदेव के शिष्य बताए गए हैं। भक्तमाल में राजा आसकरण की कृष्ण-भक्ति का पूर्ण रीति से उल्लेख हुआ है। इनके पदों का उल्लेख 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' तथा 'कीर्तन संग्रह' के पदों में हुआ है। इनके सभी पदों में वात्सल्य भाव की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। भाषा अत्यन्त सरस और सरल है।

भक्तमाल में आसकरण का उल्लेख

श्री आसकरनजी।

(श्री) मोहन मिश्रित पदकमल, 'आसकरन' जस बिस्तर्यौ।
धर्मसील गुन सीव महाभागौत राजरिषि।
पृथ्वीराज कुलदीप भीम सुत बिदित कील्ह सिषि॥
सदाचार अति चतुर, बिमल बानी, रचना पद।
सूर धीर उद्धार बिनै भल पन भक्तिन हद॥
सीतापति राधासुवर, भजन नेम कूरम धर्यौ।
(श्री) मोहन मिश्रित पदकमल, "आसकरन" जस बिस्तर्यौ॥

यह पद अत्यन्त संदिग्ध है। यह इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि आसकरण को कील्हदेव का शिष्य प्रमाणित किया जावे। ऐसे पद ही भक्तमाल को अप्रामाणिक सिद्ध करते हैं। बहुत सम्भव है भक्तमाल के कर्त्ता का आशय भीम को ही कील्हदेव के शिष्य करने का हो। आसकरण ने तो वल्लभ सम्प्रदाय की भावनाओं के अनुसार बहुत से बाल लीला नित्य तथा उत्सव की सेवा विधि के पद रचे हैं। मिश्रबन्धु विनोद में राजा आसकरणदास को नरवरगढ़ (ग्वालियर) का कहा गया है। इनका रचनाकाल मिश्र बन्धुओं के अनुसार सं० १६०६–१६३२ के लगभग है। ये राजा भीमसिंह के पुत्र एवं साधारण कोटि के कवि माने गए हैं।

भीष्म कवि—इसकी १६१७–१८–१६ खोज विवरण में भरतपुर राज्य पुस्तकालय में भागवत का तीन स्कंधों का भाषानुवाद—संवत् १६२४ की प्रति सुरक्षित है।

२—अजबकुँवरि

वर्तमानकाल–अज्ञात, जन्मसम्वत्–अज्ञात, पिता का नाम–अज्ञात, जाति–क्षत्री, निवासस्थान–सिहाड–मेवाड़, शरणकाल–सम्वत् १६२०, अन्त–समय–सम्वत् १६३४ के पश्चात्—क्योंकि इस वर्ष यह सम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार गिरिराज के दर्शन को आई थीं।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो वह अजवकुंवरिबाई बाल विधवा हती। सो मीराबाई के पास रहती। सो मीराबाई अजबकुंवरिबाई के गाम सिंहाड में रहती। और मीराबाई के दूसरी सिंहाड हुती। परि अजबकुंवरिबाई और मीराबाई एक गाम, घर में रहती।

सो एक समै श्री गुसाँईजी सिंहाड पधारे। तब बाग में उतरे। तब मीरांबाई दरसन कों गई। तब अजबकुंवरि ने साक्षात पूरन पुरुषोत्तम देखे। तब मन में आई, जोहो इनकी सेवकिनी होऊ तो भली है।.........पाछें अजबकुंवरि बाई सावधान होइकै श्री गुसांईजी सों बिनती कराई। जो महाराजाधिराज ! अजबकुँवरि बाई कहत हैं, जो मोकों नाम दीजिये। तब श्री गुसांईजी ने कृपा करिकै अजबकुंवरि को नाम सुनायो।

इनके कवि होने का उल्लेख न तो मूल-वार्त्ता में है और न भावप्रकाश की टीका में, पर इनके बहुत से पद प्रचलित हैं। काँकरौली विद्याविभाग सरस्वती भंडार की बंध संख्या ५१/३ में यह कवित्त 'अजवेश' के नाम से लिखा हुआ है। अन्यत्र यही कवित्त अजबदासी के नाम से प्राप्त हुआ है। इसलिए कुछ सन्देह होता है कि कहीं कोई और 'अजवेश' नामधारी कवि तो नहीं था जिसका यह पद अजबकुंवरि बाई के पदों में मिल गया है—

कवित्त

इंदु ने जराया जर गई हौं जमुना जाय ज्यानी।
मेरे जिय का जो चितवौं तौ खरा है।।
टुक न करार कल परैं मोहिनी सी मेली।
आज मोंकों सपने में दहीं काज लरा है।।
कहा करौ कठिन भई री मोय मूरत देखे सूरत।
अजब दासी थोरी ज्वानी भरा है।।
सांवरे कन्हैया मोसों ऐंठि ऐंठि बातें किन्हीं।
आंखिन के पेंडे पैठि जिय के पैंडे परा है।

धौल

श्रीजी श्री गोवरधन गिरि प्रगटिया श्रीजी आय बिराजो मेराड़ा।
कुंअर बाबा नंदरा ।।टेक।।
श्रीजी श्री महाप्रभुजी रा लाड़िया विट्ठलनाथजी रा प्राण आधार।
कुं० बा० नं०
श्रीजी प्रात समय मंगल भई श्री मुख जोयाँ भक्तारा आनन्द।
कुं० बा० नं०
श्रीजी दूजा दरसन सिंहाड रा दर्पण जोई विहस श्री विट्ठलनाथ।
कुं० बा० नं०
श्रीजी गोपी वल्लभ आरोगिया तहं रस गोरस बहुभाँति।
कुं० बा० न०
श्रीजी चौथा दरसन राजभोग रा थाल संजोवे श्री विट्ठलनाथ।
कुं० बा० नं०
श्रीजी संख नाद करि जगाइया भई वैष्णव मण्डलीरी भीर।
कुं० बा० नं०
श्रीजी छठा दरसन भोग संजोग रा तहाँ मेवा रो नहिं पार।।
कुं० बा० नं०
श्रीजी गाय चराइ के आविया आरती निहारि श्री जसुमति माय।
कुं बा० नं०

श्रीजी रंगमहल में पौढ़िया संग श्री वृषभानू दुलारि ।
कु० बा० नं०
श्रीजी 'अजबकुँअरि' री वीनती थाँ सुनिजो गोवरधननाथ ।।
कु० बा० नं०

भावप्रकाश से इनके जीवन वृत्त पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है ।

३—अलीखान पठान

वर्तमानकाल—सत्रहवीं शताब्दी, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—गोरवा क्षत्री की सन्तान, निवासस्थान—बच्छगाँव, शरणकाल—संवत् १६२८ में श्री विट्ठलनाथजी के गोकुलवास के पश्चात् । अन्त-समय—अज्ञात ।

(अलीखान पठान की बेटी की वार्त्ता) में बेटी को प्रधानता दी गई है और अलीखान को ब्रज और ब्रज वृक्षों से प्रेम था इसका वर्णन है । यह तबीसा के परगने के हाकिम थे और पखावज अच्छी बजाते थे ।

विविध धौल पद संग्रह में पहले अहमदाबाद से महादेव रामचन्द्र जागुष्ठे ने आज से साठ वर्ष पूर्व इनका 'चौरासी वैष्णवों का सूचीपत्र' नामक विस्तृत पद छापा था फिर लल्लूभाई ने भी अहमदाबाद से अपने विविध धौल में उसे छापा है जो सर्वत्र उपलब्ध हैं—इसलिए यहाँ पूरा नहीं लिखा गया है ।

प्रथम पंक्ति—श्री विट्ठलनाथ वर नित प्रति गाऊँ । जाही विधि श्री वृन्दावन पाऊँ ।
अन्तिम दो पद—ये भक्त जन सों हेत ताहि छिन तुम्हें जानि हो ।
जब दीन को गिरिराज वृन्दा विपिन के सुख साजिहो ।

इनका स्वामिनी स्वरूप ध्यान का एक पद प्राचीन हस्तलिखित संग्रहों में इस प्रकार मिलता है—

प्रेयसी तुम मुख ससिधर सोहै ।
श्रोन तार्टंक गज मुक्ताबने वास गृह रदन विसद मराल मोहे ।
दियो ईक्षरण प्रेम पाटन प्रीति प्रीतम बन्ध को है ।।
गल कपोल ढाँपत सिरोरुह मानो लटरी सारंग बनी तो है ।
भृकुटि गांडीव निकट निरखत अम्बक सर इन संग दो है ।।
अमिय गृह बसत लसत मुख मण्डन सिन्धु सुत सोम सिलटि जिन लोहैं ।
उरज निचोल चोल रंग भीने मानो गंगधर बन्यो बीचि लोने ।।
कैंधो अम्बुज अलि सिसु आवृत कै धरे चक्रवाक संग दो है ।
कौन मेघा रूप रस बरनै कोटि विधि चतुरानन पैहै ।
एहि ध्यान 'अलिखान' सदा रहे पाँगुल गति गिरिन गो है ।।

४—कृष्णभट्ट—ब्रजभाषा गद्य काव्य लेखक

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, निवास स्थान—उज्जैन, शरणकाल—अज्ञात, अन्त-समय—अज्ञात ।

श्री आचार्यजी महाप्रभु के सेवकन की वार्त्ता लिखी ।। श्री श्री ।। दामोदरदास हरसानीजी । तासों प्रभू दमला कहते । अब कह्यो जो यह मार्ग तेरे काज प्रगट कीनो है ।

श्री आचार्यजु ऐसे वासों कहेते । अरु श्रीभागवत अहर्निशि देखते वासों कथा कहते । अरु दामोदरदास सो कहेते बड़ी अवार भइ है श्री ठाकुरजी वार्त्ता नाहिं करी । सो करिए ।

बहोरों श्री आचार्यजु को श्री ठाकुरजी ने श्री गोकुल में ब्रह्मसम्बन्ध कराइवे की आज्ञा दीनी । श्रावण सुदी ११ एकादसी अरधनिसा समे तब दामोदरदास नेक दूरि सोवत हुते । श्री ठाकुरजी सों पुछयो जो ते कछु सुन्यो । तब दामोदरदास ने कह्यो जो मैं ठाकुरजी के वचन सुने परि समुझे नहिं तब श्री आचार्यजु ने कह्यो जो मोकुं श्री ठाकुरजी ने आज्ञा दीनी है जो तुम जीवन को ब्रह्मसम्बन्ध करो । हमारो सम्बन्ध कराओ । तब श्री आचार्यजी कही जो तुम गुननिधान, जीवदोष निधान, ए क्यों संगति होय । तब श्री ठाकुरजी कही तुम ब्रह्मसम्बन्ध करावो । हों तिनको अंगीकार करूँगो । तिनके सकल दोष निवृत होंइगे । सो आचार्यजी ने भक्ति सिद्धान्त 'सिद्धान्त रहस्य' ग्रन्थ में लिख्यो है । "सर्व दोष निबृत्तिहि दोषा पंच विधाः स्मृताः ।"[1] बहोरों श्री आचार्यजु ने श्री ठाकुरजी पास मांग्यो जो मेरे आगे दामोदरदास की देह न छूटे । अरु दामोदरदास ते कछू गोप्य न राख्यो । वार्त्ता ।।

सूत्रात्मक रूप से वार्त्ता का प्रचार इस गद्य खंड द्वारा सिद्ध होता है । इसे ही फिर गोकुलनाथजी ने बढ़ा-बढ़ाकर कहा और दस प्रसंगों में उपस्थित किया ।

५—कान्हरदास

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता को नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—राजनगर-अहमदाबाद, शरणकाल—श्री गुसांईजी के गुजरात पधारने पर, अंत समय—अज्ञात ।

यह अहमदाबाद के थे, इनका उल्लेख भावना वाली प्रति में नहीं है केवल डाकौर वाली प्रति में है ।

यह गृहस्थ थे और सपरिवार वैष्णवों का सत्कार करते थे । वार्त्ताकार ने इनको कवि नहीं लिखा है पर सम्प्रदाय में इनके कई पद प्रचलित हैं जिनके आधार पर इनका कवि होना असंदिग्ध है । इनका नाम भक्तमाल में भी नहीं है ।

इनका पद—

सदा श्री विट्ठलनाथजू के चरण शरणं
श्री वल्लभ नंद ने कलि दुख खंडनं
परम पुरुष त्रय ताप हरणं
सकलदुख ढारणं भवसिन्धु तारणं जनहित लीला द्विज देह धारणं ।
'कान्हरदास' प्रभु सब सुख सागरं भूतल दृढ़ भक्ति प्रगट कारणं ।।[2]

६—कटहरिया

वर्तमानकाल—अज्ञात (सत्रहवीं शताब्दी), जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम-अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—काठियावाड़, शरणकाल—संवत् १६३१, अन्त-समय—अज्ञात ।

---

१ सिद्धान्त रहस्य ।
२ नित्य कीर्तन—अहमदाबाद से प्रकाशित ।

इसकी वार्त्ता में लिखा है—सो एक समै श्री गुसांईजी गुजरात तें ब्रज कों पधारत हुते। सो मारग में तीन सें असवार लैकै कटहरिया लूटतो। सो उन श्री गुसांईजी की असवारी कों देखिकै पास आय घेरा दियो। सो श्री गुसांईजी के संग पन्द्रह बीस भारकस हते। सबकों रोकि लीने। तब श्री गुसांईजी के मनुष्य एक-एक भारकस पै ठाढ़े होइ गए। सो उन लोगन कों ऐसे दीसे मानो सिंह ठाढ़े हैं। और वह कटहरिया श्री गुसांईजी के रथ के पास आयो। सो देखे तो साक्षात पूरन पुरुषोत्तम बिराजे हैं। तब तो कटहरिया हथियार डारि दंडवत करि ठाढ़ो ह्वै रह्यो।...तब कटहरिया ने अपने संग के मनुष्यन को विदा किये। और आप श्री गुसांईजी के साथ चल्यो। सो श्रीगोकुल आयो। तब श्री गुसांईजी सों फेरि बिनती कीनी, जो...महाराज! कृपा करि ब्रह्मसम्बन्ध कराइये। तब श्री गुसांईजी ने एक व्रत करायो। पाछें दूसरे दिन कटहरिया को श्री नवनीतप्रियजी के सन्निधान ब्रह्म सम्बन्ध कराए। तब इनको भगवल्लीला स्फूर्ति भई। सो वाने बोहोत पद गाए हैं।........
सो बधाई —

'आज महामंगल महरानें।' (प्रथम पंक्ति, प्रथम पद)

ऐसे और हू बोहोत पद गाए।

विशेष—यह डाकू था। लूटमार करता था। श्री गुसांईजी की पाँचवीं यात्रा का समय सम्वत् १६३१ विक्रमी है। उस समय में गुजरात में एक अकाल पड़ा था। जिसका हाल श्री विट्ठलनाथजी के चरित्र में दिया गया है।

इसके नाम के दो अंश हैं—एक 'कट' दूसरा 'हरिया'। कट शब्द कठियारे क्षत्री का संक्षिप्त रूप है, जो काठियावाड़ में रहते हैं। इन्हें आज भी कांठी कहते हैं। इसलिए इसके 'जन हरिया' और 'कटहरिया' दो छापों के पद मिलते हैं। वस्तुतः नाम है—हरिया।

कांकरौली सरस्वती भंडार बंध संख्या ५ ६ और १८ पृष्ठ पर यह पद है।

'ठाड़ी रहै छकेली छिप छिप जाति।
जानति नहीं यहां दान लागत बिना कहै बैसी चलि जाति।
सेहों......उतारि मटकी लै जा सूधी ...... बात।
ना, मोहन मैं गौने आई न जानौ ब्रज की रीति भाँत।
ना जानै तो जनाऊँ तोकूँ कौन है तात कौन है जात।
तात की तोहि कहा परी है जात कछू काहू की पलटात।
मैं गांठोली की चम्पकलता गोरे गूजर मेरी जात कहात।
हा हा तू ही नई आई है नयो गोरस नयो सब ठाट।
नयो नीको है हमारो तू ही नयो दानी रोकत बाट।
'जन हरिया' कोउ लबार लागत चलत लुगाई रोकत बाट।

एक और प्रकाशित तथा प्रचलित पद :—

'लाल कों रोटी और बरी!
हींग लगाय मिरच पुट दीन्हों करुये तेल तरी।
नहनी कनक दुवारा छानी बेलन बेलि करी पतरी।
'कटहरिया' प्रभु कों रुचि उपजी मांखन सों चुपरी।'[1]

---

१ वार्त्ताकार ने गुजरात, काठियावाड़ और मारवाड़ के व्यक्तियों को गुजराती कहा है। इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।

भावप्रकाश के अनुसार इनके तीन और साथी भी थे । इसके पास घोड़े थे। यह लुटेरों का सरदार था ।

७—गंगाबाई क्षत्राणी

वर्तमानकाल—संवत् १६२८ से १७२८ तक, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास-स्थान—महावन, शरणकाल—संवत १६३६, अन्त-समय—संवत् १७२८ के पश्चात् संवत् १७३६ तक।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—'सो वह गंगाबाई की माता रूपवती बोहोत ही हती सुन्दर जाकी छांया धरती में परे ऐसी हती । ······ सो एक समै श्री गुसांईजी महावन में पधारे हते । ··· सो वानें श्री गुसांईजी को देखे । ··· परि मन में वाके विषय–भाव भयो । ··· ता पाछें श्रीं गुसांईजी सों कह्यो, जो मेरो मनोरथ पूरन करो । तब श्री गुसांईजी ने नाहीं करी । ···· तब वानें श्री गुसांईजी सों दीनता करि कह्यो, जो महाराज ! आपु प्रभु हो बड़े हो । मेरो मनोरथ पूरन न करो तो और कौन करेगो ? ···· ता पाछे वा क्षत्रानी एक दिन सोवत हुती । तब रात्रि सोवत ते स्वप्न में उन जान्यो, जो श्री गुसांईजी सों मेरो संग भयो । ···· ता पाछे वाकौ नाम गंगाबाई धर्‌यो ।

पाछें वह कन्या कछूक बड़ी भई हती । तब श्री गुसांईजी पास नाम निवेदन करवायो । पाछें इन श्री ठाकुरजी की सेवा पधराई । सो भली वैष्णव कृपापात्र भगवदीय भई । ता पाछें केतेक दिन में गंगाबाई के माता-पिता मरि गए । ···· तो रात्रि कों श्री गुसांईजी याकों श्री सुबोधिनीजी श्रीभागवत कहते । सो वह सुनती । ता पाछें तत्काल गंगाबाई वाही भाव के कीर्तन करि श्री गुसांईजी कों सुनावती । ······ और गंगाबाई ने "श्री विट्ठल गिरिधरन" की छाप के कीर्तन छंद बोहोत ही किये हैं ।

भावप्रकाश के अनुसार—इसकी व्याख्या स्वप्न सृष्टि के नियम के अनुसार की गई है । यह महावन की रहने वाली प्रतीत होती है । इसके कीर्तन के पद बहुत से प्राप्त हैं । श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता के अनुसार यह संवत् १७२८ तक जीवित रही है । इसका जन्म श्री गुसांईजी के गोकुलवास के अनन्तर विक्रम संवत् १६२८ के पश्चात् हुआ है और श्रीनाथजी जतीपुरा से सम्वत् १७२६ में मेवाड़ पधारे तब यह साथ गई है और सम्वत् १७२८ मेवाड़ के सिंहाड गांव में बिराजे तब इसने शरीर छोड़ा । इस हिसाब से यह पूरे सौ वर्ष तक जीवित रही । डाकौर के संस्करण के अनुसार इसने सम्वत् १७३६ में शरीर छोड़ा । इस प्रकार इसकी आयु १०८ वर्ष ठहरती है । डाकौर ···· संस्करण की समीक्षा वार्त्ता-साहित्य की प्रामाणिकता के प्रकरण में दी गई है । इस वार्त्ता में मेरे विचार में प्रक्षिप्त अंश है और "सो इनकी विशेष बात श्रीनाथजी के प्राकट्य में लिखी है । एक दिन श्रीनाथजी ने श्री हरिरायजी को मेवाड़ में कही–जो गंगाबाई को वस्त्र आभूषण अति सुन्दर पहिराय के रात को जगमोहन में बैठाय देवो । तब बैठाय दीन्हीं । तब रात को जगमोहन में तें श्रीनाथजी गंगाबाई कों देह सहित लीला में ले गए । सो वे गंगाबाई श्रीनाथजी की ऐसी कृपापात्र भगवदीय हती ताते ······ कहिए ।" इतना अंश तो श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में से लेकर इसमें मिलाया गया है । इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं है ।

इसके अतिरिक्त श्री गंगाबेटी के नाम से एक पत्र सम्प्रदाय में प्राप्त है जो विष्णुदास छीपा को गंगाबाई की ओर से लिखा गया है और जिसमें महाप्रभु और गुसांईजी तथा

अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाली घटनाएँ और उनकी तिथियाँ दी हैं। इसका नाम 'श्री वल्लभ कुल को प्राकट्य' है। और यह षट्ऋतु वार्त्ता में श्री द्वारकादास पारीख द्वारा विक्रम संवत् २००५ में प्रकाशित हो चुका है। इस पत्र का महत्व यह प्रतीत होता है कि जैसे उस समय में राज्यों में कुछ लोग महत्वपूर्ण घटनाओं को वृत्त और तिथियों सहित लिखा करते थे वैसे ही कई सम्प्रदायों के प्रधान मन्दिरों में भी 'रोजनामचा' के रूप में कुछ बहियाँ लिखी जाती थीं और अब भी लिखी जाती हैं। यह पत्र उन्हीं द्वारा लिखित घटनाओं का संकलन अथवा संग्रह है। इसकी पुष्टि और समर्थन अभी हाल में सूरत के महाराज श्री गोस्वामी श्री ब्रजरत्नलालजी की जगदीश यात्रा में उन्हें श्री जगदीश (जगन्नाथपुरी) के मंदिर की पंजिका में श्री महाप्रभु, श्री गुसांईजी और श्री गोकुलनाथजी आदि के ऐतिहासिक उल्लेखों से होती है। यह अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। श्रीनाथद्वार के चौपड़ों में भी इसी प्रकार लिखने की प्रथा थी और अब भी है। इसके समर्थन के लिए विक्रम संवत् १९९१ में पं० मोहनलालात्मज रामचन्द्र ने वैष्णव छगनलाल नाथा भाई के निमित्त लिख दियो भाद्रपद कृष्ण ७ भृगुवार के लेख का उद्धरण इस प्रकार है—"श्रीनाथजी कौन के हैं? श्री गिरिराज मां संवत् १४६५ की साल मां ब्रजवासी लोगों सद्दू पांडे नरोबाई बगैरा ए गुप्त सेवा की, ता पाछे सम्वत् १५३५ की साल मां प्रसिद्ध हुवा जा पाछे सम्वत् १५४९ मां श्री महाप्रभुजी को श्रीनाथजी ऐ झाड़खंड मां जताव्यू ते वारे आप श्रीजी द्वारा गिरिराज ऊपर पधारे और रामदास चौहान कु"……इत्यादि।

गंगाबाई के पद कीर्तन के अनेक ग्रन्थों में प्रचलित हैं! उदाहरण—(कृष्ण लीला विषयक पद)—

(१) सखियन रुचि रुचि सेज बनाई।
रंग महल में परि गये परदा धरी अँगीठी सुखदाई।
सीत समय ग्रीषम ऋतु कीन्हीं अति सुन्दर वर राई॥
श्री 'विट्ठल गिरधारी' कृपा निधि पौढ़े ओढ़ि रजाई।

श्री गुसांईजी की बधाई

प्रगटे श्री विट्ठल व्रज के भूषण।
सुबस बसायो गाम श्री गोकुल गोवरधन वृन्दावन ॥[1]
चंद कोटि छवि नख सिख सुन्दर सोभित तन मानो नव घन।
श्री 'विट्ठल गिरधारी' राखत निज जन को पन॥

विशेष—एक स्वतन्त्र हस्तलिखित ग्रंथ गंगाबाई के पद के नाम से मिला है। जो निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) कृष्ण-जन्म के पद, (२) श्रीकृष्ण के पालने, छठी, राधा अष्टमी की वधाई दान आदि के पद, (३) रास, रूप चतुर्दशी, गुसांईजी की बधाई धमार आदि (४) आचार्यजी की बधाई मल्हार, नित्य पूजा अथवा ठाकुरजी की सेवा के समयोचित गान इसके अतिरिक्त पुष्टिमार्गीय भक्तों के अनेक पद संग्रहों में 'विट्ठल गिरधरन' छाप के पद सम्मिलित हैं। जिन संग्रहों में इनके पद मिलते है उनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) बधाई गीतसार (२) बधाई सागर (३) गीत सागर (४) उत्सव के पद।

---
१ चन्द्रसरोवर

यह हस्तलिखित ग्रन्थ मथुरा में श्री द्वारिकादास वैष्णव की कृपा से मुझे देखने को मिला था।

इसका रचनाकाल मिश्र बन्धुओं ने सं० १६०० के लगभग माना है। रसालजी ने सं० १६७० गंगाबाई का रचनाकाल लिखा है। इनके स्फुट पद हैं। सम्वत् १७२८ तक इनके जीवित रहने के प्रमाण होने के कारण मिश्र बन्धुओं द्वारा दिया गया रचनाकाल केवल अनुमान ही दीखता है।

८—ज्ञानचन्द सेठ, आगरा के

वर्तमानकाल—सं० १६१३ से १६४२, जन्म-सम्वत्—सं० १६१३, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—वैश्य, निवासस्थान—आगरा, शरणकाल—सं० १६२८, अन्त-समय—सं० १६४२ से पूर्व।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—'सो जब श्री गुसांईजी आप आगरे पधारते तब ज्ञानचन्द के घर उतरते। ऐसी कृपा श्री गुसांईजी ज्ञानचन्द के ऊपर करते। सो केतेक दिनन में ज्ञानचन्द की देह असक्त भई। तब ज्ञानचन्द को भूमि सयन कराये। .... ताही समै श्री गुसांईजी कौ ज्ञानचन्द ध्यान करिकै सगरे वैष्णवन सों श्रीकृष्ण-स्मरन करिकै तत्काल देह छोरे।'

वार्त्ता में इनके कवि होने का उल्लेख नहीं है पर सम्प्रदाय में इनके पद मिलते हैं।

पद— जयति तैलंग तिलक यह लक्ष्मण तनुज वल्लभाधीश पद कमल वंदे।
हरि वेद अनल अवतार सुकुमार तनु निरख नैनन जीव सब आनन्दे।
होत जय जय कुसुम बरखत सुर समूह सुर पढ़त द्विज वर अजर मुदित छंदे।
धन्य निज 'ज्ञान' पाय चरण रेनु धन सीस धर सुयस गावत कित दुरत फंदे।[1]

भावप्रकाश में—इनके सम्बन्ध में यह लिखा है कि यह आगरे के रहने वाले थे और गुसाँईजी जब आगरे पधारते वे तब इनके यहाँ ठहरते थे। यह जाति के वैश्य थे और इनके पिता बड़े दानी थे और इनकी सराफे की दुकान थी। चौदह वर्ष की आयु में इनका विवाह हो गया था और युवावस्था में ही इनकी स्त्री का देहान्त हो गया था जिसके कारण इनका मन संसार से उचट गया था। फिर संतदास आगरे वाले के प्रभाव से यह गोकुल आए और वहीं श्री गुसांईजी के सेवक हो गये और कुछ दिन रहने के बाद आगरे में ही रहकर पुष्टिमार्ग के ग्रन्थों का पाठ करते रहे।

विशेष—अपने देहावसान के समय इन्होंने अपना घर श्री गुसांईजी की भेंट कर दिया था—यह घर आज छिलीईंट घटिया मुहल्ले में विद्यमान हैं और संवत् १७२६ में जब श्रीनाथजी मेवाड़ पधारे थे तब इस स्थान पर दो महीने ठहरे थे। सम्प्रदाय कल्प-द्रुम में इसका उल्लेख है और यह स्थान आज श्रीनाथजी की बैठक कहलाता है। पन्द्रह वर्ष की आयु में शरण आने से इनका जन्म-संवत् १६१३ ठहरता है।

९—श्री गोविन्दस्वामी या गोविन्ददास—

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत—१६११, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—सनाढ्य ब्राह्मण, निवास स्थान—आंतरी—ग्वालियर, शरणकाल—अन्त समय।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—'सो वे प्रथम आंतरी गाम में रहते। तहां वे स्वामी

---

१ वर्षोत्सव से संकलित।

कहावते, सो वे सेवक करते। पर गोविन्दस्वामी परम भगवदीय हते। सो वे गोविन्द स्वामी आंतरी ते व्रज में आये। तब महावन में रहे, जो यह ब्रजधाम है। यहाँ श्री भगवान के चरणारविंद की प्राप्ति कैसी न होइगी।[1] सो गोविन्दस्वामी कवीश्वर हते, सो आप पद करते। जो कोई इनके पद सीखि के श्री गुसाँईजी के आगे गावतो, ताकों श्री गुसाँईजी प्रसाद दिवावते, और बोहोत प्रसन्न होते।.........सो पहले गोविन्दस्वामी आंतरी में सेवक करते सो, उहां गोविन्दस्वामी कहावते। आंतरी में इनके सेवक बहोत हते। एक समै आंतरी के लोग श्री गोकुल में आये। सो गोविन्दस्वामी जसोदाघाट के ऊपर बैठे हते।......और गोविन्ददास श्री यमुनाजी में कबहूँ नहाते नहीं, पांव हू श्री यमुनाजी में बुड़ावते नाहीं, कूप के जल सों स्नान करते, श्री यमुनाजी की रेती में लोटते, अंजुली भरि जल लेते सो पी जाते, और आचमन हू न करते।.......और गोविन्ददास ठाड़े ठाड़े मणि कोठा में कीर्तन करत धमार गावत हते। सो एक नई धमार करिके गावन लागे। सो धमार—

श्री गोवर्द्धनराय लाल, तिहारे चंचल नैन विसाला। (प्रथम पंक्ति)

....गदेला घास....'अप्सरा कुण्ड'....तब वह लरि श्री गुसाँईजी श्रीनाथजी की कवाय के ऊपर धरि कै देखे तो वह कवाय साजी होय गई।...और एक समै श्री गुसाँईजी तो श्रीनाथजी द्वार पधारे हते।...तब इतने में ही गोविन्ददास तहाँ आये। तब श्री गुसाँईजी पूछी जो गोविन्ददास, ये वैष्णव कहत हैं, जो तुम राजभोग की आरति के पहेले महाप्रसाद लेत हो ?.. और एक समैं गोविन्ददास जसोदाघाट ऊपर बैठे हते। तहां प्रातःकाल को समो हतो। सो गोविन्ददास ने भैरव राग अलाप्यो। सो गोविन्ददास को गरो बहोत आछो हतो। और आप गावत ही बहोत आछे हते।.......और कह्यो जो वाह वाह ! कैसी भैरव अलाप्यो है ? जो ऐसे वा म्लेच्छ ने कह्यो.......सो तब सुनि कै गोविन्ददास ने कह्यो, जो अरे ! राग तो छी गयो।.......सो राग श्री गोवर्द्धननाथजी के आगे कैसे गाऊँ। ....सो ता दिन ते गोविन्ददास ने भैरवराग में कोई पद कियो नाहीं।.......जो उन गोविन्ददास पाग आछी बाँधते।...और गोविन्ददास महावन में महावन के टीलेन पर एक समै कीर्तन करत हते। सो तहाँ श्री गोकुलनाथजी कीर्तन सुनिवे को आवते।.......और एक दिन श्री गुसाँईजी मथुराजी में केशोरायजी के दर्शन को पधारे सो साथ में गोविन्ददास हू हते।.......और एक समै गोविन्ददास ने कबहू वासों सम्भाषन हू न करयो जो—कानवाई गोविन्ददास की बहिन हती तानें कही जो गोविन्ददास ! तू कबहू बेटी सों बोलत ही नाहीं।.......तब गोविन्ददास ने कानबाई सों कही, जो कन्हीयां मन तो एक है। सो ठाकुरजी में लगाउ के बेटी में लगाउं।

इनके अष्टछाप के कवि होने के कारण इन पर कोउ अनुसन्धान नहीं किया गया है। डाक्टर दीनदयालु गुप्त इन पर अत्यन्त सावधानी से लिख भी चुके हैं कोई सामग्री ऐसी नहीं छोड़ी है जिसका उपयोग न हो चुका हो।

भक्तमाल में गोविन्दस्वामी के उल्लेख—

मूल— हरिसुजस प्रचुर कर जगत में, ये कबिजन अतिसय उदार।
विद्यापति, ब्रह्मदास, बहोरन, चतुरविहारी।
गोविन्द, गंगा, रामलाल, बरसासियाँ मंगलकारी॥

---

१ कंठमणि शास्त्री के अनुसार सम्वत् १५६२

गोविन्दस्वामी कवित्त ३३१

गोवर्धननाथ साथ खेलै, सदा झेलै रंग अंग, सख्यभाव हिये, गोविन्द सुनाम है।
स्वामी करि ख्यात. ताकी बात सुनि लीजै नीके, सुने सरसात नैन, रीति अभिराम है।।
खेलत हो लाल संग, गयौ लौट दाव लैकै, मारी खैंचि गिल्ली देखि मन्दिर में स्याम है।
मानि अपराध, साधु धक्का दै निकारि दियो मति सो अगाध, कै ॐ जाने वह बाम है।।

कवित्त ३३०

बैठ्यौ कुंड तीर जाय, निकसैगो आय, बन दिये हैं लगाय ताको फल भुगताइयै।
लाल हिय सोच पर्यौ, कैसे भर्यौ जात, वह अर्यौ मग माँझ, भोग धर्यौ पै न खाइयै।।
कही श्री गुसाँईजू कों मोकों ये न भाई कछू, चाहौ जो खवावौ, तौपै वाकों जा मनाइयै।
"वाको हुतो दाव मोपै, सो तौ भाव जान्यौ नहीं, कही मोसों बातै सो कुमारै बगि ल्याइयै"

कवित्त ३२६

बन बन खेले बिन बनत न मौकौ नेकु, भनत जु गारी अनगनत लगावैगो।
सुधि बुधि मेरी गई, भई वड़ी चिन्ता मोहिं, ल्याइये जू ढूंढ़ि कहूँ चैन ढिग आवैगो।।
भोग जे लगाये मैं तो तनक न पाये, रिस वाकी जब जावे, तब मोंहूँ कछु भावैंगो।
चले उठधाये, नीठ नीठ कै मनाय ल्याये, मन्दिर में खायमिल, कही गरे लावैगो।।

कवित्त ३२८

गये हे बाहिर भूमि, तहाँ कृष्ण आये भूमि, करी बड़ी धूम, आक बोंड़िन सौं मारिकैं।
इनहूँ निहारि उठि मार दई वाही सों जु, कौतुक अपार, सख्यभाव रस सारकै।।
माता मग चाहें, बड़ी बेर भई, आई तहां, "कहाँ बार लाई" ओट पाई उर धारिकैं।
आयौ यों विचार अनुसार सदाचार कियौ, लियो प्रेम गाढ़, कभूं करत संभारिकैं॥

कवित्त ३२७

आवत हो भोग महा सुन्दर, सुमन्दिर को, रह्यो मग बैठि, कही आगें मोंहिं दीजियै।
भयौ कोप भार, थार डारि, जा पुकार करी, भरी न अनीति जात, सेवा यह लीजियै।।
बोलिकैं सुनाई, "अहो कहा मन आई ? तब बोलिकै बताई," अजू बात कान कीजियै।
पहिले जु खाय, बन माझ उठि जाय, पाछें पाऊँ कहाँ धाय, सुनि मति रस भीजियै।।

पं० रामचन्द्र शुक्लजी के अनुसार गोविन्दस्वामी आंतरी के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की भांति आकर महावन में रहने लगे थे। पीछे गोस्वामीजी के शिष्य हुये जिन्होंने इनके रचे पदों से प्रसन्न होकर इन्हें अष्टछाप में लिया। ये गोवर्द्धन पर्वत पर रहते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगाया था जो अबतक "गोविन्दस्वामी कदंब खंडी" कहलाता है। इनका रचनाकाल सं० १६०० और १६२५ के भीतर ही माना जा सकता है। ये कवि होने के अतिरिक्त बड़े पक्के गवैये भी थे। तानसेन कभी-कभी इनका गाना सुनने के लिये आया करते थे। इनका बनाया पद —

प्रात समय उठि जसुमति जननी गिरधर सुत को उबटि न्हवावति।
.... सिर नावति।।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार कविताकाल सम्वत् १६१२ माना जाता है। रसालजी के अनुसार आपका काव्यकाल सं० १६०० और १६२५ के ही अन्दर कहा जाता है। गोविन्ददास का जन्म-सम्वत् १६११ में होना मिश्रबंधुओं ने कहा है। भक्ति के इनके

पद एवं एकान्त पद नामक राधा—कृष्ण के भजनों का संग्रह पूर्वी भाषा का प्रभाव लिये हुये व्रजभाषा के सुन्दर ग्रंथ हैं। मिश्रबंधुओं का यह कथन 'पूर्वी' के सम्बन्ध में ठीक नहीं है।

१०—गोविन्ददास खवास

वर्तमानकाल—सत्रहवीं शताब्दी, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण, निवासस्थान—मथुरा, शरणकाल—संवत् १६२१, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—"सो वे गोविन्ददास श्री गुसांईजी की खवासी करते। और श्री गुसांईजी श्री नवनीतप्रियजी कौ सेवा सिंगार करे तब गोविन्ददास घूंघरू बांधिकै श्री नवनीतप्रियजी के आगे नृत्य करें। सो एक समै श्री राधाअष्टमी के दिन राजभोग ते पहोंचकै श्री गुसांईजी सगरे बालकन सहित रावल पधारे। यहाँ श्री सोभा बेटीजी ने श्री नवनीतप्रियजी को उत्थापन की झारी भरी। पाछे भोग समै गोविन्ददास नृत्य श्री नवनीतप्रियजी के आगे करन लागे। रस में तदाकार भए। .... पाछे घरी चारि रात्रि गई तब श्री गुसांईजी सब बालकन सहित रावल तें श्री गोकुल आए। .... सो वे गोविन्ददास खवास श्री गुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते। सो सदैव समै के समै श्री नवनीतप्रियजी के सन्निधान नृत्य करते।"

इनके १०८ पद सर्वोत्तमजी के अनुवाद में मिलते हैं जो सम्प्रदाय में सर्वत्र प्राप्त होते हैं। वसंतराम हरिकृष्ण शास्त्री द्वारा इनके सर्वोत्तम स्तोत्र का प्रकाशन हुआ है। गोविन्ददासजी का एक पद :—

प्रणमामि श्रीमद्विट्ठलं।
वेद धर्म प्रमाण कारण जीव मात्र सुखकरम्।
सृष्टि निर्मल भक्ति त्तत्वम् विशेष वर्णन तत्परं।
पाखंड वर्तित मनसि मायिक मोह संशय खंडनं।
श्री वल्लभ आत्मज अखिल पुराण श्रुति रस पारनं।
करुणानिधि 'गोविन्ददास' प्रभु कलि भय नासनं।

भावप्रकाश के अनुसार यह मथुरा के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे और इनको संगीत तथा नृत्य का अच्छा ज्ञान था।

प्रस्तुत गोविन्ददास के नाम की दो वार्ताएँ भिन्न-भिन्न सी प्रतीत होती हैं। मिश्र-बन्धु में प्राप्त गोविन्ददास कवि के विषय में लिखे वर्णन में इनका जन्म सं० १६११ लिखा गया है। वार्त्ता में आये दोनों गोविन्ददास एक ही हैं अथवा भिन्न यह निर्णय करना कठिन है।

११—गोपालदास (रूपपुरा)

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-संवत्—१६२८, पिता का नाम—भाइला कोठारी के भतीजे, जाति—वैश्य, निवासस्थान—रूपपुरा, शरणकाल—संवत् १६३७, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—"सो वे गोपालदास भाइला कोठारी के जमाई हते। .... ता समै गोपालदास बरस नौ के हते। तब कोठारी ने श्री गुसांईजी सों बिनती करी, जो महाराज! यह गोमती कौ वर है। .... तब श्री गुसांईजी भाइला

कोठारी को जमाइ जानि, अपनी गोद में बैठाइ, आप कृपा करिके अपनो अधरामृत गोपालदास के मुख में दिये। सो उगार लैत ही गोपालदास की अति उज्ज्वल बुद्धि होई गई। तब गोपालदास श्री गुसांईजी को दंडवत् करिके श्री वल्लभाख्यान कौ आरंभ करे। सो कारिका–

"वंदौ श्री विट्ठलवर सुन्दर नव घनश्याम तमाल।"

.... पाछे ता गोपालदास (ने) श्री ठाकुरजी के पद एकसे गुजराती भाषा में नरसी मेहता को भोग दैकै बोहोत ही करे।"

इनका जन्म वार्त्ता और वल्लभाख्यान के आधार पर सम्वत् १६२८ का सिद्ध होता है। गोस्वामी श्री विट्ठलेशजी विक्रम सम्वत् १६३७ में गुजराज में पधारे तब असारवा ठहरे थे। उस समय यह शरण आए थे। रूपपुरा असारवा से कुछ दूरी पर एक गांव है। वार्त्ता के अनुसार उस समय वे नौ वर्ष के थे इस प्रकार उनका जन्म–सम्वत् १६२८ ही ठहरता है। गोपालदास की रचना 'वल्लभाख्यन' 'सम्प्रदाय का एक मान्य और सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। उसके नवमें आख्यान में गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ के सातों बालकों और बहूजी लोगों के नाम भी दिए हैं। इस आधार पर भी ऊपर के सम्वत् की पुष्टि होती है। क्योंकि सातवें पुत्र श्री घनश्यामजी का जन्म–संवत् १६२८ होने से और उनकी बहूजी कृष्णावतीजी का नाम उसमें होने से यह उससे पूर्व की रचना किसी प्रकार भी नहीं हो सकती है। दूसरा प्रमाण यह है कि श्री विट्ठलेशजी इसके बाद फिर गुजरात नहीं गए हैं इसलिए इनका शरणकाल सं० १६३७ से पूर्व भी नहीं हो सकता और पीछे भी नहीं माना जा सकता है। अतः उपरोक्त सम्वत् यथासम्भव ठीक ही है।

"वल्लभाख्यान"

गुजराती में नौ आख्यान की एक छोटी सी पुस्तक है। यह बम्बई, अहमदाबाद, मथुरा इत्यादि कई स्थानों से कई बार प्रकाशित हो चुकी है। इस पर दो ब्रजभाषा की बृहद टीकायें प्राप्त हैं। एक गोस्वामी जीवनेशजी बम्बई वाले ने की है दूसरी श्री गोस्वामी श्री ब्रजाभरणजी दीक्षित द्वारा लिखी गई है और जो काँकरौली के सरस्वती भंडार में सुरक्षित है तथा अप्रकाशित है। इसके अतिरिक्त इस पर एक संस्कृत की भी टीका है जो अहमदाबाद के गोस्वामी श्री ब्रजरायजी ने लिखी है जो अहमदाबाद के बड़े मन्दिर (नटवरलाल का मन्दिर) में सुरक्षित है। इससे इस ग्रन्थ का महत्व आंका जा सकता है। वैष्णव लोग नित्य नियम से रात्रि को इसका पाठ करके सोते हैं। इससे इसके प्रचार की व्यापकता भी आँकी जा सकती है। इसमें आचार्यजी और गुसांईजी सम्बन्धी कई ऐतिहासिक सूत्र और सूचनायें लिखी हैं। प्रथम आख्यान में सम्प्रदाय के "सिद्धान्त स्वरूप" अक्षरब्रह्म, परब्रह्म, नित्यलीला और सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। दूसरे आख्यान में श्री महाप्रभुजी की परिक्रमाओं का उल्लेख है। अन्य आख्यानों में गोस्वामीजी विट्ठलनाथ के चरित्र का विस्तार है। आठवें आख्यान से दोसौ बावन में प्राप्त "हतित पतित" की वार्त्ता का समर्थन होता है। आख्यान की वह "पंक्ति" इस प्रकार है "हतित पतित नूँ जुओ तमें प्रगट ए धान (गुजराती) (हिन्दी अनुवाद) हतित पतित का दृष्टान्त देखो।" नवे आख्यान में श्री विट्ठलेश के सम्पूर्ण परिवार का वर्णन है। वल्लभाख्यान इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

बन्दूँ श्री विट्ठलवर सुन्दर नव घनश्याम तमाल
जगतीतल उद्धार करेवा प्रगट्या परम दयाल'[1]

---

१ गुजराती

अन्तिम आख्यान का अन्तिम चरण—

'श्री विट्ठल कल्पद्रुम फल्यो तेनी शाखा प्रसरी अनेक रे रसना ।
पुत्र पौत्रादिक सुख कहूँ जो तू मुखमा एक रे रसना ।।'

वार्त्ता में लिखा है कि इन्होंने नरसी मेहता के नाम से गुजराती में पद भी लिखे हैं तथा ब्रजभाषा में भी इनके कुछ पद मिलते हैं। एक पद इस प्रकार है—

श्री विट्ठल प्रगटे सुखदाय ।
भक्तन के सब काज सुधारे भजनानंद के लाय ।।
सीतल सुखद हेमन्त ऋतु तहाँ मध्य नौमि ने बासर ।
सोभित सुख वितान नभ मंडल पोंहप झरत तेहि औसर ।।
ब्रज जन मंगल गावत रस सौं आनन्द डर न समाई ।
गोपालदास[1] उर बसो निरन्तर तनकी ताप मिटाई ।।

भावप्रकाश के अनुसार यह रूपपुरा के रहने वाले थे, जाति के बनिये थे और जन्म के गूंगे थे। पांच वर्ष की छोटी आयु में ही इनका विवाह भाइला कोठारी की कन्या गोमती से हो गया था। यह कवि थे।

मिश्रबन्धु और वार्त्ता में दो गोपालदास नामक कवि मिले हैं। गोपालदास नामक दो कवियों का एक ही होना मिश्रबन्धुओं ने लिखा है परन्तु वार्त्ता में आये हुये ये रूपपुरा के गोपालदास मिश्रबन्धु के गोपालदास से वास्तव में भिन्न हैं। कारण—कि वार्त्ता के गोपालदास १६२८ में जन्मे थे और वार्त्ता के ही अनुसार नौ वर्ष की अवस्था से ही गुसांईजी की कृपा प्राप्त करके कवि हो गये। मिश्रबन्धुओं ने गोपालदास ब्रजवासी का रचना-काल सं० १७०० माना है अतः यदि हम दोनों को एक मानें और मिश्रबन्धुओं की बात को ठीक समझें तो इनका जन्म सं० १६९२ ठहरता है।

१२—गोवर्धनदास, मन्नालाल

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण, निवासस्थान—गुजरात, शरणकाल—सं० १६०० के समीप, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—'सो वे दोऊ भाई श्री गोकुल आये। सो ता समय श्री गुसाँईजी श्री नवनीतप्रियजी को राजभोग धरिकै श्री यमुनाजी स्नान संध्या-वंदन करिबे को पधारे हते। सो वैष्णवन के संग में गोवर्द्धनदास, मन्नालाल दोऊ भाई आये।······· तब श्री गुसाँईजी ने उन दोऊ भाइन को नाम सुनायो।·······पाछें वे श्री गुसाँईजी की आज्ञा ले ब्रजयात्रा को गये।·······तब श्री गुसाँईजी उनके पाछे श्री ठाकुरजी पधराय दिये। सो वे दोऊ भलीभाँति सेवा करने लागे।·······तब वे दोऊ भाई कछुक दिन में अपने घर आय पहोंचे।' भावप्रकाश में यह गुजराती ब्राह्मण थे और गोकुल में आकर बसे थे।

कांकरौली की प्रसंगात्मक वार्त्ता के प्रसंग १२८ से यह विदित होता है कि यह उज्जैन जाते रहते थे और वहीं कृष्णभट्टजी को इन्होंने बहत्तर घटे अखंड रूप से वैष्णवों की वार्त्ता को सुनाया था जिसे पीछे से कृष्णभट्ट ने लिखित रूप दे दिया था। वार्त्ता के प्रचारकों में इनका नाम सबसे पहले आना चाहिए।

---

१ गोपालदास कई हुए हैं इसलिए निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता जो पद इनके नाम से प्रसिद्ध हैं वे सब इन्हीं के हैं। इस पद का भाव वल्लभाख्यान और वार्त्ता के अनुकूल है इसलिए इसके उनके द्वारा लिखे जाने की अधिक से अधिक सम्भावना है।

विशेष वृत्त—वार्त्ता में इनके कवि होने का उल्लेख तो है नहीं और इस नाम के भी कई कवि सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं। इसमें से कौनसी रचना इनकी है कहना कठिन है। इनकी वार्त्ता महत्वपूर्ण इसलिए है कि वार्त्ताओं को श्री गुसांईजी से तथा अन्य वैष्णवों से सुनकर कृष्णभट्ट को सुनाने वाले (तीन दिन और रात) यही प्रथम व्यक्ति थे। वार्त्ताओं को इस प्रकार अनोखा महत्व देने वालों में यह अग्रगण्य हैं।

१३—चतुर्भुजदासजी— अष्टछाप के कवि

वर्तमानकाल—संवत् १५९७ वि० से संवत् १६४२ वि०, जन्म-सम्वत्—१५९७ वि०, पिता का नाम—कुम्भनदास, जाति - गोरवा क्षत्री, निवासस्थान—जमुनावता, शरण-काल—सं० १५९७ वि०, अन्त-समय—सं० १६४२।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो ये चतुर्भुजदास जमुनावता में कुम्भनदासजी के यहां जन्मे। सो कुम्भनदास के प्रथम पाँच बेटा हुते, तिनको मन लौकिक में बहोत आसक्त देखिकैं कुम्भनदासजी के मन में बहुत ही दुःख भयो। ....पाछें राजभोग सराइवे को समय भयो तब 'माला' बोली। .... तब ताही समै चतुर्भुजदास ने यह कीर्तन गायो। सो पद—

सेवक की सुखरासि सदा श्रीवल्लभ राजकुमार। (प्रथम पंक्ति)

............और एक दिवस श्री आचार्यजी महाप्रभुन को जन्म-दिवस आयो तब श्री गुसांईजी श्रीनाथजीद्वार हते सो नाना प्रकार की सामग्री सिंगार जब जन्माष्टमी की रीति करी। ता समय श्री गोवर्द्धननाथजी के सिंगार के दर्शन करिके चतुर्भुजदास ने यह कीर्तन सुनायो, सो पद—

१—सुभग सिंगार निरखि मोहन कौ लै दरपन कर पिय ही दिखावै। (प्रथम पंक्ति)
२—प्यारी भुज ग्रीवा मेलि निर्तत पिय सुजान। (प्रथम पंक्ति)
३—रजनीराज लियो निकुंज नगर की रानी। (प्रथम पंक्ति)
४—मोर भावतो श्री गिरधर देखों। (प्रथम पंक्ति)
५—स्यामसुन्दर प्रान प्यारे छिन जनि होउ न्यारे। (प्रथम पंक्ति)

........तब श्री गिरराज के ऊपर बैठिकै विरह के कीर्तन करन लागे सो पद—

१—बात हिरदै की कासों कहिए। (प्रथम पंक्ति)
२—मोहन मोहिनी पढ़ि मेली। (प्रथम पंक्ति)
१—हों वारी नवनीतपिया। (प्रथम पंक्ति)
२—दिन-दिन देत उराहनो आवें। (प्रथम पंक्ति)
३—अपने री बाल गोपाले हो, रानीजू पालने झुलावे (प्रथम पंक्ति)
४—झुलो पालने गोविन्द। (प्रथम पंक्ति)
१—तब तें और कछू न सुहाय। (प्रथम पंक्ति)

........और कितेक दिन पाछे श्री गुसांईजी आप श्री गिरराज की कन्दरा में होयकै, लीला में पधारे, तब श्री गिरधरजी कों अपनो उपरना दिये। और यह कहें, जो श्री गोवर्द्धननाथजी की आज्ञा में रहियो। जातें श्री गोवर्द्धननाथजी प्रसन्न रहे सोई कीजो और सब बालकन को समाधान राखियो। और ये जो मेरे अंग कौ उपरना है, ताको सब लौकिक संस्कार करियो। काहेतें, जो संस्कार न करोगे, तो फिर कोई कर्म-संस्कार न करेगो।

............सो जा समै श्री गुसांईजी श्रीगोवर्द्धनपर्वत की कन्दरा में होयकें लीला में पधारे, ता समैं चतुर्भुजदास जमुनावता गाम में अपने घर में हुते। सो सुनिकै चतुर्भुजदास दौरे ही आये, सो आयकै महाव्याकुल होय कंदरा के आगे गिरि परे, और महाविलाप करन लागे। जो महाराज! पधारत समै मोकों आपसे दरसन हू न भये। ....ऐसे महाविरह संयुक्त होयकै चतुर्भुजदास ने तहाँ यह कीर्तन गायो। सो पद—

फिर ब्रज बसहू श्री विट्ठलेस। (प्रथम पंक्ति)

जो ऐसे विरह के कीर्तन चतुर्भुजदास ने बहुत किये। तब श्री गुसांईजी ने चतुर्भुजदास की बोहोत आरति जानिकै महाआनन्दव स्वरूप (सों) चतुर्भुजदास के हृदय में आयकै आपु दरसन दिये। ......पाछे चतुर्भुजदास ताही स्वरूपानन्द में मगन होयकै तहाँ यह कीर्तन गाये। सो पद—

श्री विट्ठल प्रभू भये न ह्वै हैं। (प्रथम पंक्ति)

ऐसे-ऐसे बोहोत कीर्तन चतुर्भुजदास ने करिकै श्री गुसांईजी के चरणाविंद में मन राखि, अपनी देह छोड़िकै आपहू लीला में जाय प्राप्त भये।....ता पाछें चतुर्भुजदास के एक बेटा हतो राघौदास सो आयो, और वैष्णव सब आये। तिन सबन ने मिलिकें चतुर्भुजदास कौ अग्निसंस्कार कियो।

मिश्रबन्धु विनोद के अनुसार इनका समय सं० १६२५ के लगभग है, और इन्हें 'द्वादश यश' नामक ग्रन्थ, मधुमालती की कथा समैया के पद आदि का रचयिता कहा गया है। परन्तु द्वादश यश नामक ग्रन्थ में पड़ी तिथि १५६० है जोकि भ्रांतिपूर्ण है। आचार्य शुक्ल ने द्वादश यश ग्रंथ का रचयिता इन्हें ही माना है।

भक्तमाल में उल्लेख :—

श्री चतुर्भुजजी (कीर्तननिष्ठ)

श्री 'हरिवंश' चरन बल 'चतुरभुज', 'गौड़' देश तीरथ कियौ।।
गायौ भक्ति प्रताप सबहि दासत्व दृढ़ायौ।
राधावल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढ़ायौ।।
'मुरलीधर' की छाप कवित्त अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अंघ्रिरेनु बहै धारी सिर भूषन।।
सतसंग महा आनन्द में, प्रेम रहत भीज्यौ हियौ।
(श्री) "हरिवंश" चरनबल 'चतुर्भुज', 'गौड़' देश तीरथ कियौ।।

यह अष्टछाप के कवि हैं। इसलिए इनके सम्बन्ध में भी डाक्टर दीनदयालु गुप्त का अनुसंधान प्रामाणिक मान लेने के कारण कुछ नहीं लिखा जा रहा है।

१४—चतुर्भुजदास मिश्र

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो वे चतुर्भुजदास बड़े पंडित हते। विद्या बोहोत पढ़े हुते। इनको पात्साह सों बोहोत मिलाप रहतो। सो पात्साह जो कछू पूछतो वाको ताही समै उत्तर देते। सो पात्साह इनपै बोहोत प्रसन्न रहतो। सो एक समै पात्साह ने वीरबल के आगे चतुर्भुजदास की बोहोत सराहना करी। तब वीरबल ने कह्यो, जो ये तो मेरो चाकर हुतो। सो ये बात पात्साह ने चतुर्भुजदास सों कही। तब चतुर्भुजदास ने पात्साह

सो कह्यौ, जो साहब ! आपके मिलिबे के तांई किन-किन की चाकरी न करी चाहिए ? सो ये बात सुनिकै पात्साह बोहोत प्रसन्न भयो।...... सो एक समै चतुर्भुजदास मथुरा में आये। सो विश्रान्तघाट पर न्हाये। सो तहां एक वैष्णव पंडित न्हात हतो। सो ताके आगे चतुर्भुजदास ने कह्यौ, जो 'विद्या भागवतावधिः' यह सुनिकै यह वैष्णव पंडित बोल्यो, जो 'चातुरी विट्ठलेशावधि।' तब चतुर्भुजदास वा वैष्णव पंडित सों कहे, जो तुम मोकों श्री विट्ठलनाथजी सों मिलाप कराय देऊ ! तब वह वैष्णव पंडित चतुर्भुजदास को श्री गोकुल में गुसाँईजी के पास लै गयो। तब चतुर्भुजदास ने श्री गुसांईजी के दरसन किए।....... सो चतुर्भुजदासजी कों मन श्री गोवर्द्धननाथजी में लगि गयो। तब यह गोपालपुर में रहे। पाछें पात्साह के पास गए नाहीं। सो पात्साह कों खबर पड़ी, जो चतुर्भुजदास गोपालपुर में है। तब पात्साह ने पत्र लिखिकै मनुष्य पठायौ। सो वह मनुष्य गोपालपुर में आयो। सो चतुर्भुजदास कों पात्साह कौ पत्र दियो। सो पत्र बांचिकै चतुर्भुजदास ने पात्साह को एक पत्र लिख्यो। तामें लिख्यो, जो—

जाको मन नन्दनन्दन सों लाग्यो नीको।
सुख संपत्ति की कहाँ लगि बरनौं सब जग लागत फीको ॥

भावप्रकाश के अनुसार यह पूरब के किसी सारस्वत ब्राह्मण की सन्तान थे और तीस वर्ष तक विद्याध्ययन करते रहे थे। इसके पश्चात आगरे में वीरबलजी के यहाँ रहे और फिर बादशाह के यहाँ रहे। वार्त्ता के ऊपर के उद्धरण से यह वाक्चतुर और पंडित दोनों थे और राजदरबार में अच्छा वेतन पाते थे और गुसाँईजी के सेवक होने के बाद फिर यह दरबार भी न गए। इनकी वार्त्ता में भी कुंभनदास वाली वार्त्ता वाले त्याग का उदाहरण दिया गया है। वार्त्ता में यह कवि तो नहीं लिखे हैं पर इनका एक पद लिखा है। परन्तु सम्प्रदाय में इनके पद प्रचलित हैं और उनके शरण आने की पुष्टि करते हैं :—

भजे विमलं श्री विट्ठल सुखद चरनं।
ताप तन शोक भय मोह माया पटल विपति सम रटन दुखदुरित हरनं।
भक्त हित प्रगट भय दुख दूरि करन घोषपति रसिक रस विदित करनं।
अमित माया जलद सोक सर्वज्ञ नृप निगम पथ नर भुवन सुदृढ़ दृढ़नं।
वचन पीयूष मधु सुरत करुना उदधि दरस परस स्मरन त्रिविध तरनं।
अमर नरलोक पुर दुतीया समता नाहीं जन "चतुर्भुज" अंघ्रि कमल सरनं।

विद्या भागवतावधिः सुकविता गोविंद गानावधिः।
कीर्तिर्दास्यकथावधिश्चतुरता श्रीकृष्ण सेवावधिः ॥
लाभः सत्प्रणयावधिः मधुरता श्री भक्ति किशोरावधिः।
भक्तिः काव्यनुरागिणी व्रजपतेः श्री विट्ठलेशावधिः ॥

वार्त्ता के श्लोकांश का पूर्ण रूप :— 'विद्या भागवतवधिः। सुकविता गोविंद-गानावधिः। कीर्ति दस्यिकथावधि ॥ शचतुरता, श्रीकृष्ण सेवावधिः, लाभ सत्प्रणयावधि मधुरता श्री भक्ति किशोरावधिः भक्तिः काव्यानरागिणी, व्रजपतेः श्री विट्ठलेशावधिः" ।[1]

१५—चतुरबिहारी

वर्तमानकाल—संवत् १६०५ से संवत् १६२८ के पश्चात तक, जन्म-सम्वत्—संवत १६०५ मिश्रबन्धु, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—आगरा, शरण-काल—संवत् १६२८, अन्त-समय—अज्ञात।

---

१ सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या ४२/१६

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो एक समै चतुरबिहारी श्री गोकुल आए। सो श्री गुसांईजी के दरसन करिके बहोते प्रसन्न भए। ………… तब चतुरविहारी ने श्री गुसांईजी सों बिनती करी, जो महाराज! मोकों सरन लीजिए। तब श्री गुसांईजी आप आज्ञा किए जो श्रीयमुनाजी में स्नान करि आओ।…………सो चतुरविहारी तत्काल यह पद गाये, नयो करिकै —

१—श्री विट्ठल चरन सरन, सुभ करन, हरन दुख, सौभगवैभव विमल उद्योत
(प्रथम पंक्ति)

२—बलि-बलि हों तनक-तनक करि डारों, तिन पर जे रहे निसदिन चरनन तेरे
(प्रथम पंक्ति)

………तब शृंगार के समै श्री गुसांईजी आप चतुरविहारी कों श्री नवनीतप्रियजी के सन्निधान ब्रह्मसम्बन्ध करवाए। ………… सो चतुरबिहारी ने तत्काल यह पद गायो —

हम दधि बेचन जात याही मारग भये हो इजारदार तुम राह बाट के
(प्रथम पंक्ति)

सो यह पद सुनिके श्री गुसांईजी बोहोत प्रसन्न भए। पाछें जानें जो अब इनकों सगरी लीला स्फुर्द भई। ता पाछें चतुरविहारी रात्रि-दिन श्री गुसांईजी के आगे लीला के पद गावते। सो जब श्री गुसांईजी राजभोग आरती, सेन आरती, उपरांत अपनी बैठक में बिराजते तब ही ये नये पद सुनावते। सो समय चूकते नाहीं। ………… सो जहाँ तांई चतुरविहारी की देह चली, तहां तांई श्री गोवर्धननाथजी के दरसन तथा श्री गोकुल छोड़िकै कहूँ न गए। …… और जब श्री गुसांईजी श्रीगिरराज ऊपर पधारते तब चतुरविहारी श्री गुसांईजी के संग दरसन कों जाते। …… तब चतुरविहारी श्री गोवर्द्धननाथजी कों पद सुनावते।"

भावप्रकाश के अनुसार यह आगरे के रहने वाले थे। जाति के क्षत्रिय थे और संतदासजी के घर के पास ही रहते थे। आठ वर्ष की आयु से ही कविता करने लग गये थे। यह संतदास के यहाँ प्रतिदिन आया-जाया करते थे और भगवद्वार्त्ता सुनते थे। उसीके प्रभाव से पीछे गोकुल गए और श्री गुसांईजी के सेवक होगए।

वार्त्ता के ऊपर के उद्धरण के अनुसार यह ज्ञात होता है कि यह शरण होने के बाद फिर श्री गुसांईजी के साथ ही रहे और बराबर पद बनाते रहे। इस प्रकार इनके बहुत से पद होने चाहिएँ और हैं भी।

इनके अप्रकाशित पदों में से एक :—

अनत न जैये हो पिय रहिये मेरे ही महल।
जोई जोई कहोगे सोई सोई करोंगी टहल।
सैय्या, सामग्री, वसन, आभूषन सब विधि राखौंगी पहल।
"चतुरविहारी" गिरधारी प्रिया की रावरी यह सहल।[1]

तथा—चतुराई ताकी सांची जो श्री वल्लभ को सुमिरन करें।
निकट जो रहैं दूरि मन बच करि रसना श्री विट्ठल विट्ठल करें।
सेवा करें जो निज चरन की प्राननाथ कों हिरदे धरें।
'चतुर' कहें सिवा गिरिधर की मनते छिनु न टरें।

१ कांकरौली सरस्वती भंडार बंध संख्या ५/६ पृष्ठ ९६।

चतुरविहारी नामक व्यक्ति को मिश्रबन्धुओं ने ब्रजवासी बताया है । बृहत् रूप में यद्यपि आगरा ब्रज क्षेत्र में ही आता है तथापि वार्त्ता में इनका स्थान आगरा लिखा होने के कारण भ्रांति उत्पन्न होती है । वार्त्ता में जन्म अथवा अंतकाल के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। परन्तु मिश्रबन्धु विनोद में जन्म सं० १६०५ लिखा है ।

१६—छीतस्वामी

वर्तमानकाल—संवत् १५६७ वि० से सं० १६४२ तक, जन्म-सम्वत्—१५६७, पिता का नाम— अज्ञात, जाति—चतुर्वेदी, ब्राह्मण, निवासस्थान—मथुरा; शरणकाल—संवत् १५९२, अन्त-समय—संवत् १६४२ फाल्गुन कृष्ण ८ ।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—'सो वे छीतस्वामी मथुरिया चौबे हते । तिनसो सब कोउ 'छीतू' कहते । सो सब मथुरा में पाँच चौबे सिरनाम हते । सो पाँचनहूं में छीतू बड़े सिरनाम है । सो वे स्त्रिन कों देखते, उनकी मसखरी करते । सो एक दिन पाँचों चौबेन ने मिलिकें बिचार कियो, जो भाई ! गोकुल के गुसांई टोना बोहोत करत है । जो कोउ उनके पास जात है, सो उनके बस होय जात हैं । सो चलो, जो उनकों देखिये, जो वे कैसे टोना करत हैं ? सो ये पाँचो आपुस में मित्र हते, परि वे गुण्डा हते । तब उन पाँचोंन ने मिलिकै एक खोटो रुपैया लियो, और एक थोथो नारियल लियो, तामें राख भरी । और यह बिचार कियो, जो भाई ! गोकुल जायकें श्री गुसाँईजी सो आपुन कुटिल विद्या करिये । तब उन चारोंन सों छीतू ने कही, जो सगरेन के पहले मैं जायके अपनी कुटिल विद्या करि आऊँ, ता पाछें तुम जइयो । तब उन चौबेन ने कही, जो आछी बात है। तब छीतू ने कुटिल विद्या को ठाठ ठर्‌यौ । सो वा थोथे नारियल कों गाँठि में बाँधिकै और वह खोटो रुपैया लेके पाँचों जने मथुरा तें चले, सो नाव में बैठिकै श्री गोकुल में आये ।·······ता पाछें छीतस्वामी वह नारियल लाये हते सो दुबकाय कै श्री गुसाँईजी सों दंडवत् करी । सौ ईतने छीतस्वामी सों श्री गुसाँईजी बोले—छीतस्वामी ! तुम नीके हो ? आवो, तुम तो बोहोत दिनन में दीखे हो । तब छीतस्वामी ने हाथ जोड़िकै बिनती कीनी, जो महाराज ! हम आपके हैं । ऐसे कहिकें साष्टांग दंडवत करी । और श्री गुसाँईजी सों फेरि बिनती कीनी, जा महाराज ! मोकों आपनी सरन लीजै ।·······तब छीतस्वामी कौ शुद्ध भाव जानिकै श्री गुसांईजी तो परम दयालु है, सो आप कृपा करिकै कहे, जो छीतस्वामी ! आगे आवो । तब ये दंडवत् करिकै आगे आय बैठे । ताही समै श्रीगुसांईजी ने छीतस्वामी को नाम सुनाओ । ता समै छीतस्वामी ने यह पद गायो–

'भई अब गिरधर सों पहिचान ।' (प्रथम पंक्ति)

·······तब श्री गुसांईजा सों छीतस्वामी ने बिनती करी, जो महाराज ! आप तो सब मेरो कृत्य जानत हो । सो वह बात तो मेरी अब छानी राखो ।·······और श्री गुसांईजी ने हरिदास खवास सों आज्ञा करी, जो हरिदास इनकी गांठि में सो वह नारियल है खोलि लाऊँ ।·······पाछे छीतस्वामी ने प्रसन्न होयके एक नयो पद ता समै बनायो । सो पद–

'हों चरणात पत्र की छैयां ।' (प्रथम पंक्ति)

·······तब छीतस्वामी ने अपने मन में विचारि यह निश्चय कियो, जो श्री गोवर्द्धननाथजी कौ और श्री गुसांईजी कौ स्वरूप एक है । यह जानिकै ताही समै छीतस्वामी ने यह पद करिकै गायो । सो पद—

जे वसुदेव किये पूरन तप सों फल फलित श्रीवल्लभ देव ।

·······और एक समै छीतस्वामी बीरबल के घर गये। छीतस्वामी बीरबल के प्रोहित हते। सो अपनी बरसोंड़ लेवे कों गये हते।·······सो पद—

जै जै जै श्री वल्लभ राजकुमार ।

······और जब बीरबल कौ तिरस्कार करिकै छीतस्वामी श्री गोकुल आये, ता दिन श्री गुसाँईजी श्री गिरधरजी श्रीनाथजी द्वार हते।·······तब छीतस्वामी ने कही, जो महाराज ! मैं लाहौर जाय के कहा करूँगो ? तब श्री गुसाँईजी छीतस्वामी सों कह्यो, जो मैंने उन सब वैष्णवन सों कही है, सो वैष्णव तुम्हारी बिदा आछी तरह सों करेंगे। तब श्री गुसाँईजी के वचन सुनिकै छीतस्वामी ने यह पद गायो। सो पद–

हम तो श्री विट्ठलनाथ उपासी । (प्रथम पंक्ति)

·······पाछें वे लाहौर के वैष्णव छीतस्वामी कों प्रतिवर्ष श्री गुसांईजी की हुंडी के साथ न्यारी हुंडी पठावते ।

इनका वृत्तान्त भी अष्टछाप में होने के कारण इस प्रबन्ध के अनुसन्धान से इनको बाहर रखा गया है। और डाक्टर गुप्त के कथन को ही प्रामाणिक मान लिया गया है।

आचार्य शुक्ल ने छीतस्वामी का जन्म सं० १६१२ के लगभग माना है उनके अनुसार स्वभाव से अत्यन्त उद्दण्ड 'पंडा' होने पर भी छीतस्वामी बाद में अत्यन्त शान्त प्रकृति के कवि हुये। ब्रज-भूमि के प्रति अनुराग इनकी कविता से छलका पड़ता है। डा० रामकुमार वर्मा ने इससे अधिक कुछ नहीं लिखा है।

१७–जनभगवानदास दो भाई

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम–अज्ञात, जाति–गोरवा-क्षत्री, निवासस्थान—ब्रज-गोकुल, शरणकाल—संवत् १६२८ के पश्चात्, अन्त-समय—अज्ञात ।

इनकी वार्त्ता में लिखा है— सो वे जन और भगवानदास वे दोऊ भाई ब्रजवासी गोरवा के जन्मे। सो ये गोकुल में रहते। सो बालपन में श्री गुसांईजी की सरनि आए हैं। ······· सो वे दोई भाई गृहस्थ हते। ········ परि वे अपने मन में संसार-व्यवहार में उदासीन रहते। ······· और परस्पर बोहोत ही स्नेह हतो। सो श्री गुसांईजी के पास श्री सुबोधनी की कथा नित्य सुनते।······· और अपनी छाप कीर्तन करते। ······ गाम के पटेल ······· चौधरी सबन मिलिकै इनकों खेत बोवाय दियो। सो धान आयो।······· तब इनने वह सब अन्न गायन कों खवाय दियो। कछू मंगतान कों बांट दियो। ········ (प्रसंग २) और एक समै ये दोऊ भाई श्री गुसांईजी के दरसन करिवे कों प्रात:काल के समय आए। ता समै सब सेवक जन श्री गुसांईजी के द्वार दरसन को ठाढ़े हैं। तब इन दोउ भाईन ने यह पद गायो। सो पद—

१—प्रात समय श्रीमुख देखन कों सेवक जन सब ठाढ़े द्वार (प्रथम पंक्ति)
२—मंगल आरति कीजे भोर। (प्रथम पंक्ति)
३—आगें आउरी छकिहारी। (प्रथम पंक्ति)
४—ग्वाल बधाई मांगन आए। (प्रथम पंक्ति)
५—श्री वल्लभ गृह होत बधाई अनुदिन मंगल चार। (प्रथम पंक्ति)
६—जय श्री वल्लभजू के नंदन श्रीवल्लभ चरन रज पावन। (प्रथम पंक्ति)

यह पद जन-भगवानदास ने गायो। सो सुनि कै श्री गुसांईजी बोहोत प्रसन्न भए।'

यह जन और भगवानदास दो भाई हैं। यह ब्रजवासी क्षत्री थे और छोटी उमर में ही श्री गुसांईजी की शरण आगए थे। डाकौर संस्करण में खेत वाला प्रसंग नहीं है जो पीछे से वैष्णवों को समझाने के लिए जोड़ा गया है। भावप्रकाश के अनुसार यह गोकुल के रहने वाले थे। भावप्रकाश से इनके जीवन वृत्त पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

विशेष वृत्त—विरक्त दशा में रहना, गृहस्थ होते हुए भी

पद—जन, और भगवानदास के नाम से लिखे

वार्त्ता अतिरिक्त प्रसिद्ध पद—

(१) श्री विट्ठल प्रभु नमो नमो

भक्त हेत प्रगटे पुरुषोत्तम गोपीनाथ अनुज नमो नमो।
श्री गिरधर सुरनर मुनि बंदन श्रुति छंदन नमो नमो॥
प्रेम समुद्र सकल परिपूरन रसिक सिरोमनि जय नमो नमो।
अति सुन्दर वर भूषण भूषित निज जन पोषण नमो नमो॥
श्री बालकृष्ण गोकुल पति, रघुपति, यदुपति, जय नमो नमो।
श्री घनश्याम लाल बलि सुन्दर अखिल भुवन पति नमो नमो॥
यह प्रागट्य भक्त हित कारन जगत उद्धारन जय नमो नमो।
'जन भगवान' जाय बलिहारी श्री वल्लभ कुल नमो नमो॥

(२) रसिक राम श्रीवल्लभ सुत के भजिहों चरण कमल सुखदायक।
काल अकाल रहित पुरुषोत्तम प्रगट पुहमि श्री विट्ठलनायक॥
देवलोक भुवलोक रसातल उपमा को कोई नाहिने लायक।
चार पदारथ महलन पावत अष्ट महासिधि द्वारे पायक॥
बदन इन्दु बरसत निसि बासर बचन सुधा श्री भक्ति बढ़ायक।
'जन भगवान' जाय बलिहारी पतित पावन जो विमल जस गायक।

(१८) जदुनाथदास

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—जौनपुर, शरणकाल—संवत् १६१६ से पूर्व, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—ये धारू के (राजा के) चाकर हते। सो वे जौनपुर में रहत हते। सो जौनपुर में एक हवलदार हतो। ताकी स्त्री बोहोत ही सुन्दर, रूपवंती हती। सो श्री गुसांईजी की सेवकिनी हती।...... सो स्त्री को जदुनाथ ने देख्यो। सो ता दिन ते वे जदुनाथ को यह विस्मय पर्यो, जो ऐसे हू लोग या धरती पर हैं? ता पाछें वाकौ मुख देखे तव जदुनाथ जलपान करे।........ सो एक दिन वा स्त्री ने जान्यो, जो यह मो ऊपर ऐसो आसक्त है, तासों याकौ मन तो देखो। तब वह स्त्री एक दिन सोयके अवारी उठी। सो जदुनाथ वा दिन वाकौ मुख सवारे देखन न पायो।....... ता पाछे वह स्त्री सोयके तीसरे प्रहर उठी तब वाने अपनी लोंडी सो कह्यो। जो तू देखि तो ठाढ़ी ह्वै कै मार्ग में कोई आवत जात तो नाहीं है? तो हों बेगि न्हाय लेऊ।.......तब लोंडी बासों कहै, और तो कोई आवत जात नाहीं। परि वह दई कौ मार्यो तोकों देखिवे कों दोड़

प्रहर कौ ठाढ़ौ है।.......जैसो वाने अपनो मन मेरे में लगायो है तैसो वह परमेश्वर में लगावे तो याकौ काम होइ। .... सो यह दोऊ जने की बात जदुनाथ ने सुनी। ताही समै जदुनाथ वा लौंडी कों बुलाई कै सन्देसो पठावत भयो, जो परमेसुर सों मिलिवे कौ उपाय अब तू ही बताउ। सो वा स्त्री ने कहि पठायो, जो श्री वल्लभकुल में श्री विट्ठलनाथजी श्री गुसांईजी प्रकट भए हैं। सो वे आप ही परमेसुर हैं। उनके पास जाइकै तू उनकौ सेवक होऊ।.......तब जदुनाथ अपने डेरा आए। सगरे चाकरन को महीना चुकाय दिये। और जो द्रव्य अपने पास रह्यो, ताकी हुँडी कराइ लियो। और आप एक गुदरी कराइ तामें वह हुंडी धरिकै वैरागी कौ स्वरूप धरिकै चले।...सो श्री गुसांईजी जौनपुर ते थोरी सी दूरि हते। सो रथ प्रभुन को आयो। सो देखिकै अति उत्कंठा सो जाइकै प्रभुन को प्रथम जदुनाथ ने साष्टाँग दंडवत करयो। और अति उत्कंठा सों जदुनाथ ने यह दोहा प्रभुन आगे पढ़यो। सो दोहा–

गिर्‌यो जो मनिया कांच कौ, गांठि हुतो 'जदुनाथ'।
सो ढूंढत बाहिर गयो, पर्‌यो पदारथ हाथ॥

यह दोहा सुनिके श्री गुसांईजी बोहोत ही प्रसन्न भए।.......सो श्री गुसांईजी जदुनाथ के वचन सत्य करि मानते। और श्री गोवर्द्धननाथजी की कृपा जदुनाथ ऊपर हुती सो सब श्री गुसांईजी जानते। और जदुनाथदास कहेते, वो 'पर्‌यो पदारथ हाथ' सो ताकौ अनुभव श्री गुसांईजी या प्रकार करवाये।"

वार्त्ता के अनुसार यह जौनपुर के रहने वाले थे और श्री गुसाँईजी की काशी यात्रा के समय उनके शिष्य हुए थे। भावप्रकाश से इनके जीवन वृत में कोई भी सहायता नहीं मिलती है। इनके बहुत ही सुन्दर कवित्त जो अन्यत्र कहीं भी नहीं प्राप्त होते हैं।[1]

उदाहरण पद :–

(१) आज लौं अछूती छाती काहू के न रंग राती
जोवन के मदमाती मीठे मन रोने की।
खंजन से नैन राती चुनरी औ चुरी राती,
देखि-देखि सकुचाती बोल नहि मौने की।
केतिक मनो तोसों मानि यह चंदमुखी है,
तो चित्तचोर नंदलाल बड़े भौने की।
झूठ नाहि बोलत 'यदुनाथ' की सौं बारबार,
याकौं ठग लाई हों बियाही बिन गौने की।

उपरोक्त पद लखनऊ, नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित सूरसागर पृष्ठ संख्या ७५ पर प्रकाशित भी हो चुका है।

(२) कवित्त

दूरि भावैं नियरे भावैं अंग को परस भावे।
ओट होत कोटिक भाँति मन ही बौरावे यों।
पीठ दीन्हैं साम्हे वह तिरछे नैना भावे अति।
छांछ ही के देखे चित्त चैन अति पावे यों।

१ कांकरौली सरस्वती भंडार बंध संख्या ५१।३ में प्राप्त हैं

बोले अन बोले भावे, देखे तें परमसुख ।
सूनो 'यदुनाथ' जनु कहत न आवे यों ।
हाँसी को विलायल भावे खीजिवो अधिक भावे ।
भामते की कौन बात यो न जिये भावे यों ।

(३) कवित्त (विरह)

जो पै यदुनाथ जन और ही तें ऐसी जानो ।
पैये ऐते मान दुख कान्ह ते निन्यारे कौ ।
करती न कानि हू कहानी औ सनेह हू की ।
आनती न उर में प्रेम प्राण प्यारे कौ ।
अब तो कठिन भई लग्यो है बियोग रोग ।
तलप-तलप परैं साँझ लौ सकारे कौ ।
गए न निकसि संग अजहू न जात आली ।
है धौं कहा मतो यह जीय दई मारे को ।[1]

(१६) जाड़ा कृष्णदास

वर्तमानकाल–अज्ञात, जन्म-सम्वत्–अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति–क्षत्री, निवासस्थान–गुजरात, शरणकाल–वसंत ऋतु, अन्त-समय–अज्ञात ।

इनकी वार्त्ता में लिखा है:—सो इनकों सब कोऊ 'जाड़ा' चाचा कहते । ये चतुर बोहोत हुते । सो संत-महंतन की परीक्षा लेते । सो एक दिन जाड़ा कृष्णदास श्रीगोकुल आये । सो इनके मन में बिचार कियो, जो श्री गुसाँईजी की परीक्षा लेनी ।······ तब जाड़ा कृष्णदास कों श्री गुसाँईजी के रोम-रोम में श्री नवनीतप्रियजी के दरसन भए । तब श्री गुसांईजी कों दंडवत् करिकै बिनती किये, जो महाराजाधिराज ! मैं आपकी परीक्षा लेइवे को आयो हुतो । परि आप मेरी परीक्षा लिये । अब मेरो सन्देह मिट्यो । जासों कृपा करि मोकों सेवक कीजिए ।······ तब श्री गुसांईजी जाड़ा कृष्णदास की दीनता देखि प्रसन्न भये ।······· सो ता समै वसंत के दिन हुते । सो जाड़ा कृष्णदास ने वसंत कौ पद करि कै गायो । सो पद—

खेलत फाग यमुनातट नंदकुमार । द्रुम भौरे विपिन अठार भार ?

(प्रथम पंक्ति)

······सो यह पद सुनिकै श्री गुसांईजी आपु बोहोत प्रसन्न भये ।·······सो जाड़ा कृष्णदास एक समै वृन्दावन आए । सो रूपसनातन इन सों मिले ।······· सो जाड़ा कृष्णदास भगवद्गुनानुवाद बोहोत गायो है । सो इनने 'इंद्रकोप' कौ चरित्र और 'रासपंचाध्याई' कीनी हैं । और 'रुक्मनीमंगल' गायो है । सो वाकों सब कोउ 'माधवरुक्मनी' केलि हू कहत हैं । और भोजन के पद आदि नए बनाए हैं ।·······सो एक दिन जाड़ा कृष्णदास द्वारिकाजी गए ।······· बहोरि एक समै जाड़ा कृष्णदास कौ चाचा हरिवंसजी सों मिलाप भयो । ······ यामें कहे हैं, जो वेद गीता में श्रीकृष्णवाक्य, व्यासूत्र और श्रीमद्भागवत में समाधि भाषा ये चार मुख्य प्रमान हैं ।

---

१ कांकरौली सरस्वती भंडार ।

विशेष—मिश्रबंधु के आधार पर प्राप्त कृष्णदास के दो वर्णन इन कृष्णदास की वार्त्ताओं से भिन्न हैं। मिश्र वं० वि० में प्रथम कृष्णदास को जुगलमान चरित्र, भक्तमाल टीका आदि का रचयिता कहा गया है।[1]

इनके चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—

(१) इन्द्रकोप (२) रास पंचाध्यायी (३) माधव रुकमिणी केलि (४) भोजन के पद (स्फुट)।

कांकरौली सरस्वती भण्डार में रुकमिणी मंगल ग्रन्थ सुरक्षित है। उसका प्रारम्भ इस प्रकार है।[2]

विदर्भ देश कुन्डिलपुर नगरी भीमक नृप तहँ नवनिधि सगरी।

अन्तिम चरण

रुकमिनि व्याह कथ्या जनि कृष्णे सीखे सुने औ गावे।
धर्म अर्थ कामना मुक्ति फल चार पदारथ पावे।।
भक्त हेत अवतार धर्‌यो हरि भूतल लीलाधारी,
श्री गिरिवरधर राधावल्लभ पर 'जाड़ो' जन बलिहारी

(इति श्री रुकमिणी मंगल कृष्णदास जाड़ा कृत सम्पूर्ण)

भावप्रकाश में इनके स्थूल शरीर और वृद्धावस्था का उल्लेख है और कुछ नहीं। यह वृद्ध होने पर ही ब्रज आये ऐसा भावप्रकाशकार का मत है।

भक्तमाल में दो कृष्णदासों का उल्लेख है पर जाड़ा कृष्णदास इन दोनों से भिन्न हैं।

(२०) टोडरमल

वर्तमानकाल—सं० १५५० से १६४६ तक, जन्म-सम्वत्—१५५०, पिता का नाम—अज्ञात, जाति-क्षत्री, निवासस्थान-तारापुर (जिला सीतापुर), शरणकाल—सम्वत्, १६००।

टोडरमल का वर्णन कई वार्त्ताओं के अन्तर्गत प्राप्त है। उदाहरण के लिये वार्त्ता १९ प्रथम खंड 'बाप बेटा कायस्थ' में पाछे घरते सवारे बीस थैली रुपैयान की हाथी की अंबारी ऊपर धरि, आपु वाही हाथी पै बैठिके राजा टोडरमल के घर आये। यह उद्धरण बीरबल का टोडरमल के पास जाना बताता है।

वार्त्ता ७५ में बीरबल की बेटी की वार्त्ता में, 'पाछें अपने घर जाइकैं पृथ्वीपति ने राजा टोडरमल को बुलाइ कैं कह्यौ' इस प्रकार राजा टोडरमल का नाम आता है।

कांकरौली बंध सं० ४३/१६ में इनके कुछ पद और कवित्त हैं जिनमें से एक की पहली पंक्ति इस प्रकार है—

'जसुमति के भवन में कछु किंकनी धुनि सुनि।'

विशेष—मिश्रबन्धुओं ने इन्हें खत्री माना है और इनका काल सं० १५८० से १६४६ तक माना है। परन्तु शुक्लजी ने जन्म संवत् १५५०–१६४६ माना है। डाक्टर रामकुमार इनका कविता काल सं० १६१० मानते हैं।

---

१ कृष्णदास नाम के कई कवि होने के कारण मिश्रबन्धु में प्राप्त दो कृष्णदास नामक व्यक्तियों में से इन्हें पृथक् करना कठिन है।

२ बंध संख्या ४२।१५।

राजा टोडरमल जाति के खत्री थे इनकी अल्ल टण्डन थी। इनका जन्म स्थान सीतापुर जिले के अन्तर्गत तारापुर नामक ग्राम है। कुछ ऐतिहासज्ञ इनका जन्म-स्थान लाहौर के पास चूमनगांव को भी बताते हैं। इनके पिता की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी और इनकी विधवा माता ने इनका लालन पालन किया था। कुछ बड़े होने पर यह माता की आज्ञा से दिल्ली गए और वहाँ सौभाग्य से नौकरी लग गई (अकबर के यहाँ आने से पहिले यह शेरशाह के यहाँ नौकरी करते थे)। 'तारीखे–खानेजहाँ लोधी' में लिखा है कि शेरशाह ने इन्हें रोहतास गढ़ के किले के बनवाने पर नियुक्त किया था पर वहाँ गक्खर जाति एका करके काम में बाधा डालती थी। कहते हैं कि जब टोडरमल ने शेरशाह के सम्मुख अपनी यह कठिनाई रखी तो उसने कहा कि तुम्हारे जैसे धन के लोभी बादशाहों की आज्ञा पूरी नहीं कर सकते। इस पर इन्होंने आवश्यकता पड़ने पर एक-एक पत्थर ढोने के लिए एक-एक अशर्फी मजदूरी लगादी और मज़दूर मिलने लगे तथा मज़दूरी का भाव नियंत्रित हो गया। किला बनवा देने पर शेरशाह इनसे बहुत प्रसन्न हुआ। अकबर के राज्य के नवें वर्ष सन् १५६४ ई० इन्होंने मुजफ्फरखाँ की अधीनता में काम आरम्भ किया था।[१]

यह समझदार लेखक और वीर सम्मतिदाता थे। अकबर की कृपा से तथा अपनी योग्यता से इन्होंने बड़ी उन्नति की और अमीरी और सरदारी की पदवी तक पहुँच गए। सन् १५७२ सम्वत् १६२६ में, गुजरात प्रान्त के विद्रोह की शांति के बाद बादशाह ने इनके जिम्मे राजकोष की जांच का काम किया और आदेश दिया कि न्यायपरता के साथ यह जो कुछ निश्चित करें उसी प्रकार की वेतन सूची काम में लाई जाय। अकबर के राज्यारोहण के उन्नीसवें वर्ष (१५७४ ई०) सम्वत् १६३१ में इनको झंडा और डंका का सम्मान मिला और इन्होने बंगाल के दाऊदखाँ को परास्त किया। इस युद्ध में इन्होंने अपूर्व रणकुशलता का परिचय दिया था।[२] तबकात अकबरी में इनके इस युद्ध कौशल का विशद वर्णन दिया है। २१ वें वर्ष यह बंगाल से बहुत सा लूट का माल लाए। इसके बाद यह गुजरात का प्रबन्ध ठीक करने को भेजे गए। अपनी बुद्धिमानी, कार्य-दक्षता, वीरता साथ सुलतानपुर और नंदुरबार से बड़ौदा और चम्पानेर तक का प्रबन्ध ठीक करके यह अहमदाबाद आए और वजीरखाँ के साथ न्याय करने में तत्पर हुए।

वहाँ इन्होंने मिर्जा मुजफ्फरहुसेन के बलवे को दबाया और वहाँ से लौटकर मंत्रित्व के काम में लग गये। इसी वर्ष बादशाह का अजमेर से पंजाब जाना हुआ तब चलाचली में एक दिन राजा की मूर्तियाँ छूट गई कि जब तक उनकी पूजा एक मुख्य चाल पर न कर लेता था दूसरा काम न करता था। उसने सोना और खानपान छोड़ दिया। २७ वें वर्ष— सन् (१५५६+२७) १५८३ में यह प्रधान अमात्य नियत हुआ और कुल कार्य इसकी सम्मति से होने लगा। राजा ने कोष और राज्य के कार्यों को नए ढंग से चलाया और कुछ नए नियम भी बनाए जो बादशाही आज्ञा से काम में लाए जाने लगे। उनका विवरण अकबरनामे में दिया हुआ है। २६ वें वर्ष में उसका घर बादशाह के जाने से प्रकाशित हुआ जिनकी प्रतिष्ठा के लिए इसने महफ़िल सजाई थी। वीरबल की मृत्यु के पश्चात् यह राजा मानसिंह के साथ यूसफजाइयों को दंड देने के लिए नियुक्त हुए। ३४ वें वर्ष यह

१ इलियट और डाउसन
२ तबकाते अकबरी इलि० डा० भाग ५ पृष्ठ ३७२–३६०

लाहौर के रक्षक नियुक्त हुए। सन् (१५५६+३४) १५९० सम्वत् १६४७। इसी वर्ष बादशाह काश्मीर से काबुल चले तब इन्होंने राजकाज से छुट्टी मांगी और लाहौर से हरिद्वार चले गए। हरिद्वार पहुँचते ही बादशाह का पत्र मिला—"ईश्वर के पूजन से निर्बलों की सेवा नहीं हो सकती। इससे अच्छा है कि मनुष्यों का काम सम्हालो।" निरुपाय होने से अटूट स्वामिभक्ति के कारण वे लौट आए और उसी वर्ष इनका स्वर्गवास हो गया।

अल्लामा फहामी अब्बुलफजल इनके बारे में लिखते हैं:—"यह सचाई, सत्यता, कार्य-दक्षता, कार्यों में निर्लोभता, वीरता, कायरों को उत्साह दिलाने, कार्य कुशलता, काम लेने, और हिन्दुस्थान के सरदारों में अद्वितीय था। साथ ही द्वेषी और बदला लेने वाला था। उसके हृदय के खेत में थोड़ी निर्दयता उत्पन्न होगई थी। दूरदर्शी बुद्धिमान ऐसे स्वभाव को बुरे स्वभावों में गिनते हैं जबकि मुख्यत: राजकीय कार्यों में जहाँ सांसारिक लोगों का काम उसे सौंपा गया हो। वे सम्राट् के वकील नियत हुए थे। यदि उसकी बुद्धिमानी के मुख पर धार्मिक कट्टरपन का रंग न होता तो ऐसा अयोग्य स्वभाव न रखता। सच यह है कि धार्मिक कट्टरपन हठ और द्वेष न रखता और अपनी बातों का पक्ष न लेता तो महात्माओं में से होता। तब भी संसार के लोगों को देखते हुए वह संतोष निर्लोभता, परिश्रम करने, काम करने और अनुभव में अद्वितीय था। उसकी मृत्यु से निःस्वार्थ कार्य सम्पादन को हानि पहुँची। चारों ओर से कामों के आजाने पर भी वह नहीं घबराता था। ठीक है कि ऐसा सच्चा पुरुष हाथ से निकल गया। वह विश्वास (जोकि संसार में कम दिखाई देता है) किस जादू से मिलता है और किस तिलस्म से प्राप्त होता है।"[१] मिआसिरुल उमरा का ग्रंथकार लिखता है कि बादशाह आलमगीर कहते थे कि उन्होंने अपने वालिद के मुँह से सुना था कि टोडरमल कोष और राज्य के कामों में तीव्र बुद्धि था, अधिक जानकारी रखता था, पर उसका हठ और अपनी बातों पर डटना अच्छा नहीं लगता था। अब्बुलफजल भी उससे बुरा मानता था। राजा टोडरमल ने राजकीय नियमों में महत्वपूर्ण सुधार किए। जमीन के कई विभाग किए। कई तरह के सिक्के चलवाए। राजा के दो लड़के थे एक का नाम धारू था जो ठड्ठा के युद्ध में खानखाना के साथ लड़कर मारा गया। दूसरे का नाम गोवर्द्धन था जो बंगाल से परास्त होकर जौनपुर भाग गया था। बनारस में छीतूपुर के पास इनका एक शिलालेख भी मिला है।

(२१) तानसेन गवैया

वर्तमानकाल—संवत् १५७७ से १६४६ तक, जन्म-सम्वत्—संवत् १५७७ वि०, पिता का नाम—मकरंद पांडे, जाति—ब्राह्मण फिर मुसलमान, निवास-स्थान—ग्वालियर, शरणकाल—संवत् १६२८ के पश्चात्, अन्त-समय—संवत् १६४६।

इनकी वार्त्ता में लिखा है:—सो श्री गुसांईजी गोविंदघाट पै बिराजे हते। तब गोविंदस्वामी आदि और हू भगवदीय पास बैठे हते।·······तब तानसेन को देखिकै श्रीगुसांईजी आज्ञा किये, जो तानसेन ! कछू कीर्तन गाउ। तब तानसेन ने एक पद गायो। सो पद—

तेरे मन में कितो एक गुनरे जो तोपैं आवे तो प्रकाश करे। (प्रथम पंक्ति)

सो यह सुनिकै श्रीगुसांईजी तानसेन कों पात्साह कौ गवैया जानि रुपैया पाँचसौ दिये। ता पर एक कोड़ी और दिये।·······और यह कोड़ी तो तुम्हारी बानी सुनिकै

१ आइने अकबरी

दोनों है।.......पाछे गोविंदस्वामी सों आज्ञा कीनी, जो गोविन्ददास ! कछू कीर्तन गाउ। तब गोविंदस्वामी ने 'सारंग' राग में एक पद गायो।.......तब तानसेन श्री गुसांईजी सों बिनती किये, जो महाराज ! कृपा करि मोकों सेवक कीजिए। तब श्री गुसांईजी तानसेन को नाम सुनाए।.......तब तानसेन कछूक दिन गोविंदस्वामी के पास रहे। मार्ग की प्रणाली के अनुसार कीर्तन सीखे। ....सो तानसेन श्रीनाथजी के सन्निधान कीर्तन करते।....... तब एक वैष्णव ने उनको टोके। और कह्यो—जो तुम अमल-पानी छोरि दियो। ....सो तानसेन आछी भाँति गावत नाहीं है।.......तब श्रीगुसांईजी आज्ञा किये, जो तुम पहिले जैसे करत हुते तैसे करो। तामें श्री गोवर्द्धननाथजी प्रसन्न है। तब ते फेरि तानसेन अमल-पानी लेन लागे। तब सुन्दर गावन लागें।'

भावप्रकाश के अनुसार यह ग्वालियर के रहने वाले ब्राह्मण थे और बादशाह के गायक थे और इन्होंने किसी म्लेच्छ से गान विद्या सीखी थी।

भावप्रकाश में तानसेन के किसी म्लेच्छ से गान विद्या सीखने वाली बात की पुष्टि मिश्रबंधु विनोद में भी की गई है और शेख मुहम्मद गौस को इनका गुरु बताया गया है। उन्हीं के अनुसार शेखजी के तानसेन की जिह्वा में जिह्वा लगा देने के कारण ही तानसेन मुसलमान एवं अच्छे गायक हुये थे। जिह्वा लगा देने से अच्छे गायक हो जाने वाली बात वास्तव में किसी प्रकार विश्वास करने योग्य नहीं है।

विशेष वृत्त :—इतिहास प्रसिद्ध कलाविद अकबर के यहाँ ये सम्वत् १६१९ में आए थे। ये ध्रुपद के लिए प्रसिद्ध हैं।

हिलग के पद

यह पद सिद्ध करते हैं कि ये श्रीनाथजी के यहाँ कीर्तन करते थे क्योंकि 'हिलग' के पद शीतकाल में पुष्टि सम्प्रदाय के मंदिरों में ही गाए जाते हैं और सूरदास इत्यादि सभी पुष्टि सम्प्रदाय के कवियों ने इनकी रचना की है। हिलग शब्द का अर्थ है—लगन अर्थात् आसक्ति।

पद— दृगन मेरे जौं लौं सुख होय तौं लौ देखिवो करों तिहारो आनन।
एक पल अन्तर होत अंध्यारो दूजो सूझत न करसों कर बोल न सहो काहू को कानन॥
तिहारो ही ज्ञान ध्यान तिहारो ही सुमिरन तो सम मेरे और कोई नाहिन।
तानसेन के प्रभु तिहारी कृपाते मोहि लाग्यो है सब जग जानन॥

उष्णकाल की साम्प्रदायिक भावना का एक पद—

भले ही मेरे आए हो पिय ठीक दुपहरी की बिरियाँ।
सुभ दिन सुभ नक्षत्र सुभ महूरत सुभ पल छिन सुभ घरियां।
भयो है आनन्द कंद मिट्यौ बिरह दुख द्वन्द चंदन घसि अंग लेपन और पांयन परियां।
तानसेन के प्रभु दया कीन्हीं मो पर सूखी बेलि करी हरियाँ।

तानसेन के सम्बन्ध में डाक्टर सुनीतकुमार चटर्जी का लेख

सौभाग्य से सम्राट् अकबर से तानसेन का संयोग हुआ था, इस कारण तानसेन की जीवनी या इनके कलाकार जीवन की दो चार बातों के सम्बन्ध में हमें कुछ सूचनायें मिलती

हैं। अकबर और जहाँगीर के समय की चित्रावलियों में तानसेन की प्रतिकृति भी खींची गई थी। जहांगीर के समय में बने हुये तानसेन के चित्र मिलते हैं। ऐसे एक चित्र पर तानसेन की मूर्ति की बगल में फारसी अक्षरों में उनका नाम भी लिख दिया गया है। तानसेन कद में छोटे थे। रंग उनका गोरा नहीं था, बिल्कुल काला या सांवला था, होठ पर पतली मूछें भी थीं और एक दूसरे चित्र में तख्त पर बैठे हुये जहांगीर के सामने तानसेन खड़े हैं। जिस समय जहाँगीर युवराज थे यह उसी समय का चित्र मालूम होता है। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा में तानसेन के गुणों की तारीफ की है। तीसरे चित्र में जहांगीर के दरबार में गवैयों और बजाने वालों के बीच में खड़े हुये तानसेन मिजराब से सरोद सा एक यंत्र बजाकर गा रहे हैं। गाने और बजाने में और कई गवैये इनके साथी हैं। इन चित्रों के अलावा खास मुगल शैली का और भी एक चित्र है, जिसमें अकबर और तानसेन के जीवन की एक घटना दिखाई गई है। संगीत में तानसेन के गुरुओं में एक हरिदास स्वामी थे। आप एक संसार त्यागी संन्यासी थे और बृन्दावन में रहकर संगीत के द्वारा अपना साधन भजन करते थे। हरिदास स्वामी की प्रशंसा सुनकर उनका गान सुनने के लिये अकबर बड़े ही उत्सुक हुये। परन्तु हरिदास स्वामी ने राजधानी में आना पसन्द नहीं किया। तब स्वयं अकबर तानसेन के साथ हरिदास स्वामी के आश्रम पर गये। आश्रम में उपस्थित शाहनशाह के सामने भी हरिदास स्वामी ने गाना अस्वीकार कर दिया। अन्त में तानसेन ने स्वयं अपने गुरुजी के समक्ष गाना शुरू किया और जान बूझकर गलत गाया। इससे चेले को दुरुस्त कर देने के ख्याल से हरिदास स्वामी स्वयं गाने लगे। फिर तो उनका गाना चल पड़ा। कहते हैं, हरिदास ऐसे सिद्ध गायक का गाना सुनकर अकबर भावावेश से ऐसे अभिभूत हुये कि कुछ काल के लिये बेहोश हो गये। होश में आकर उन्होंने तानसेन से पूछा क्यों तानसेन ! अपने गुरु की तरह नहीं गा सकते ? तानसेन ने जवाब दिया—"महाराज, मैं गाता हूँ तो एक पार्थिव सम्राट् की सभा में। पर मेरे गुरु गाते हैं परमेश्वर के दरबार में।" यह सुन्दर कहानी एक मुगल चित्रपट पर चित्रित हुई है। लम्बे कद के गोरे पतले हरिदास स्वामी अपनी कुटिया के सामने मृगचर्म पर बैठे तम्बूरा लेकर गा रहे हैं। दुबले पतले काले रंग के तानसेन जमीन पर बैठे हैं और बादशाह अकबर खड़े होकर गाना सुन रहे हैं। कुछ दूर पर बादशाह के तम्बू के कनात और ऊँट आदि की सवारी दिखाई पड़ती है। इससे भी दूर पर दीवार से घिरे हुये एक नगर का दृश्य दिया गया है।

तानसेन की यह तस्वीरें हमें प्राप्त हैं। तानसेन के विषय में कुछ कहानियां भी मिली हैं। परन्तु उनकी सच्ची जीवन कथा हमें आज तक उपलब्ध नहीं हुई। उनके जीवन की बहुत सी मुख्य बातें बहुत रहस्यपूर्ण रह गई हैं। अकबर के सभा पंडित और दरबारी ऐतिहासिक अबुलफजल ने अपनी 'आईन-इ-अकबरी' में अकबर के वेतन भोगी छत्तीस दरबारी गवैयों के और मन्त्रियों के नाम दिये हैं, उनमें तानसेन का नाम सबसे पहला है। और तानसेन के बारे में अबुलफजल ने ऐसा लिखा भी है कि विगत सहस्र वर्षों में उनके समान कोई भी गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। १९३४ वि० सं० (१८७७-१८७८ ईस्वी) में राजा शिवसिंह सेंगर ने "शिवसिंह सरोज' नाम से हिन्दी कवियों की जीवनी के साथ एक कविता संग्रह प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने तानसेन के जीवन की कुछ घटनायें लिपिबद्ध की थीं। १८८९ सन् में सर जार्ज अब्राहम ग्रिपर्सन ने 'न्यू मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान' नाम की जो उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की थी, उसमें

तानसेन की जीवन कथा "शिवसिंह सरोज" से उद्धृत की थी। शिवसिंह के अनुसार सम्वत् १५८८ (ईस्वी १५३१–१५३२) में तानसेन का जन्म हुआ था। शिवसिंह ने इसके लिए कुछ प्रमाण नहीं दिया। उनके द्वारा प्रस्तावित यह तारीख सम्भवत: ठीक नहीं है, क्योंकि इस तारीख को मानने से तानसेन के जीवन की कुछ विदित घटनाओं में असंगति दिखाई देती है। ऐसा हो सकता है कि उनका जन्म लगभग १५२० ई० में हुआ हो। अकबर के दरबार में लिखे हुये फारसी इतिहास के अनुसार उनका मृत्युकाल था ९९७ हिजरी, अर्थात् सन् १५८९ ईस्वी सम्वत् १६४६ है। तानसेन की मृत्यु अकबर की मृत्यु से पहिले ही हुई थी। खुद अकबर के नाम से प्रचलित एक दोहे में इसका उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि बीरबल के देहान्त के बाद अपने गम्भीर खेद को अकबर ने इस दोहे में प्रकाशित किया था—

पीथल सों मजलिस गई, तानसेन सों राग।
हंसिबौ रमिबौ बोलिबौ, गयो बीरबल साथ ॥

इस दोहे के "पीथल" थे बीकानेर के कुमार पृथ्वीराज राठौर, जो डिंगल या पुरानी राजस्थानी के विख्यात कवि थे अकबर के दरबार में बीकानेर की तरफ से रहा करते थे। और इन्होंने ही चित्तौड़ के महाराणा प्रतापसिंह को विख्यात पद्यमय पत्र लिखकर अकबर की अधीनता स्वीकार न करने की राय दी थी।

कहते हैं कि तानसेन के पिता का नाम मकरंद पांडे था। आप गौड़ ब्राह्मण थे। तानसेन ने वृन्दावन के हरिदास स्वामी के पास पहिले कविता रचना और संगीत विद्या सीखी थी। फिर वे ग्वालियर के सूफी सन्त मुहम्मद गौस के शागिर्द बने। मुहम्मद गौस एक विख्यात गायक भी थे। आप बाबर, हुमायूँ और अकबर के समकालीन थे, और लोग आप पर बड़ी ही श्रद्धा करते थे। जिस समय ग्वालियर हिन्दुओं के अधिकार में था और तोमर वंश के राजपूत राजा वहाँ शासक थे, तब से मुहम्मद गौस ग्वालियर में निवास करते थे। इन सूफी साधक ही की सलाह से बाबर के सेनापति रहीम-दाद मुगलों की तरफ से ग्वालियर को अपने कब्जे में ला सके। ऐसा सुनते हैं कि मुहम्मद गौस ने चेले तानसेन को गायन शक्ति देने के लिए अपनी जीभ से तानसेन की जीभ छुई थी और इसी करामात से तानसेन को असाधारण संगीत शक्ति प्राप्त हुई थी। १५६२ में तानसेन अकबर के दरबार में आये, उसके बाद वे मुसलमान हो गये। तानसेन के इस्लाम कबूल करने का इतिहास रहस्यमय रहा है। अकबर की प्रेरणा से मुसलमान बनना सम्भव नहीं था, क्योंकि अकबर इस्लाम के सम्बन्ध में उदासीन थे, और अपने अन्तिम जीवन में उन्होंने इस्लाम को तो त्याग ही दिया था। तानसेन के रचे हुए गीतों के भाव और उनकी भाषा देखकर ऐसा विश्वास करने की प्रवृत्ति नहीं होती कि वे भक्त-प्राण हिन्दू के अतिरिक्त कुछ और थे। मुसलमानी भाव के कुछ गाने जोकि तानसेन के नाम से संयुक्त हैं उनमें इस्लाम पर विशेष आग्रह का कोई भी परिचय नहीं मिलता। किसी सूरत से मुसलमान बन गये होंगे या जबरदस्ती बनाये गये होंगे, या किसी कारण अपनी ही ओर से मुस्लिम सम्प्रदाय में शामिल होना इनके लिए संभव हुआ होगा। एक कारण और भी सुना जाता है कि तानसेन ने किसी मुसलमान लड़की से प्रेम के कारण अपने धर्म को त्याग दिया था। तानसेन की मृत्यु के बाद उनकी देह ग्वालियर के विराट पर्वत दुर्ग के पादमूल में मुहम्मद गौस के समाधि मन्दिर की बगल में खुले आँगन में समाहित हुई।

अपने नव यौवन के पृष्ठ पोषक शेरशाह के पुत्र दौलतखाँ की मृत्यु के बाद तानसेन ने मध्य भारत के रींवा राज्य के बांधव राजा रामचन्द बघेले के आश्रय में बहुत वर्ष बिताये। तानसेन के बहुतेरे ध्रुपद पदों में "राजाराम" नाम से इनका यशोगान किया गया है। इन्होंने तानसेन का बहुत सम्मान किया था। द्रव्य भी बहुत दिया था। इतने में ही तानसेन की ख्याति चारों ओर फैली और बादशाह ने आगरे में अपने दरबार में उन्हें बुला भेजा, पर तानसेन रींवा छोड़कर नहीं आये। थोड़े दिनों के बाद मुगल बादशाह हुमायूँ ने आकर पठान शेरशाह के वंशधरों को हराकर उस राजवंश को ही विनष्ट कर दिया, और १५५६ सन् में फिर मुगल राज्य की प्रतिष्ठा की। पिता हुमायूँ के देहान्त के बाद अकबर अपने सिंहासन पर कायम हुये। और सन् १५६२ में जलालुद्दीन कुरची नामक एक मनसबदार को भेजकर रींवा से तानसेन को अपने दरबार में बुला लिया। इस बार तानसेन की आपत्ति नहीं मानी गई। तानसेन का शेष जीवन अकबर के दरबार में ही बीता। किसी समय अपने को मुसलमान धर्मावलम्बी स्वीकार करने के सिवा इसके बाद इनके जीवन में उल्लेखनीय और किसी घटना का पता नहीं चलता है।

तानसेन तो गाने में अद्वितीय थे ही। कलावंत और संगीतकारों में भी तानसेन सम्राट् माने जाते हैं, पर कवि कहिये तो तानसेन कवित्व शक्ति में भी कुछ कम नहीं थे। जिस समय तानसेन जीवित थे, वह प्राचीन हिन्दी-साहित्य का सबसे गौरवमय-युग था। विशेषतः हिन्दी काव्य साहित्य का। उनके समसामयिकों में थे मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास और अन्धे कवि सूरदास। अकबर के दरबार में एक तरफ थी, राजकीय भाषा फारसी–इसे हम मुगल या मुसलमानी राज की "पोशाकी" या बाहरी भाषा कहते हैं। और दूसरी तरफ थी, देश भाषा, राज की भीतरी भाषा, "हिन्दी"। उस हिन्दी के उस समय तीन सुप्रतिष्ठित साहित्यिक रूप थे। पूरब में अवधी या कोसली, बीच में ब्रजभाषा और राजस्थान में डिंगल। दिल्ली की खड़ी बोली से पंजाबी का मेल जोल बहुत था। यह दिल्ली में और दिल्ली के आसपास मेरठ, रोहिलखंड, हरियाना, कर्नाल, अम्बाला प्रान्त में जनपद बोली के रूप में बोली जाती थी। कबीर जैसे संत और साधुओं के हाथ बनने वाले समग्र उत्तर भारत के नये लोक साहित्य में इस खड़ी बोली के रूप कुछ-कुछ दिखाई देते हैं। अकबर की दो राजधानी आगरा और दिल्ली–खास करके आगरा–ब्रजभाषा के इलाके में शामिल थी, इस कारण उनकी सभा में ब्रजभाषा हिन्दी को ही पूरा स्थान मिला था। इसमें खुद बादशाह से शुरू कर सब काव्य रसिक दरबारी सज्जन कविता करते थे। अकबर और अकबर के बाद मुगलों की कई पीढ़ियों तक ईस्वी अठारहवीं शती के द्वितीयार्ध तक–भारत के मुसलमान सम्राटों के लिये भारतीय भाषाओं में सिर्फ ब्रज-भाषा ही घरेलू भाषा थी।

गायक के रूप में अतुलनीय यश के अधिकारी होने के कारण, कवि के रूप में तानसेन का यशोभाग्य जितना होना चाहिये था, उतना नहीं हुआ। संगीतज्ञ कलावंत तानसेन के अन्तराल में जैसे कवि और साधक तानसेन ढक गये हों। ऐसा होने का एक मुख्य कारण यह था कि तानसेन केवल कवि न थे —कविता की रचना इनका एक मात्र काम न था। राजा बादशाह प्रभृति भाग्यवानों से आर्थिक पृष्ठ पोषकता प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े काव्य या छोटी-छोटी कविताओं की रचना करना तानसेन का पेशा न था "लिरिक पोयेट" यानी गीति कविताकार और साथ ही साथ गवैये – इसके सिवा तानसेन और कुछ नहीं थे।

सन् १८४३ ई० में कलकत्ता में मुद्रित और वहीं से प्रकाशित कृष्णानन्द व्यासदेव के बृहत् संगीत ग्रन्थ "संगीत राग-कल्पद्रुम" में तानसेन की भणित के अनेक पद मुद्रित हैं। तानसेन के वंशजों में से एक गवैया बहादुरसेन या बहादुरखाँ सन् १७१० में बंगाल के विष्णुपुर में आये थे। आप उन्हीं की शिष्य परम्परा के अन्तर्गत हैं। प्राचीन और मध्य युग के हिन्दू काव्य, ज्ञान, योग और भक्ति का मानो मंथन करके जो नवनीत निकला, वह तानसेन के पदों के स्वर्ण कटोरे में धर दिया गया है। तानसेन के नाम से संयुक्त जो पद या कविता मिलती हैं, वे खंडाकार और विक्षिप्त रूप से ही मिलती हैं। परम्परागत या क्रमविकास के अनुसार उसकी सजावट अब असम्भव सी दीखती है। रामलाल मित्र महाशय द्वारा संकलित "ध्रुपद-भजनावली" पुस्तक की भूमिका में कहा गया है कि तानसेन का व्यक्तिगत जीवन तीन पर्याय या विभागों में विभक्त किया जा सकता है। पहिला विभाग यौवन का है। इस समय इन्होंने अपने मित्र और पोषक राजाओं के गुणगान किये हैं, और ऋतु प्रभृति प्राकृतिक वस्तु के वर्णन ज्यादातर किये हैं। दूसरा विभाग प्रौढ़काल का है। इस अवस्था में आप देवताओं की लीला और महिमा गाते थे। इस श्रेणी के पदों में ऐश्वर्य बोध तथा अन्तर्दृष्टि दोनों ही मिलती हैं, पर गम्भीर आत्मानुभूति नहीं दीख पड़ती। तीसरे विभाग में अपने परिणत वय और वार्धक्य की कविताओं में तानसेन राधाकृष्ण-लीला का वर्णन कर गये हैं। राधाकृष्ण विषयक पद वस्तुतः भाव गांभीर्य तथा भक्ति के गम्भीरत्व में अतुलनीय है। परन्तु ऐसा पर्याय विभाग पूर्णतः समालोचक की अपनी ओर से की हुई वस्तु है। तानसेन के पदों में ऐसे किसी ऐतिहासिक क्रम का निरूपण करना अब असम्भव है।

सरल विश्वास और प्रीत के कारण तानसेन के विनय अर्थात् प्रार्थनात्मक–पद अपने ढंग के अतुलनीय हैं। उनके धार्मिक पदों में हमें एक तात्त्विक, मर्मज्ञ और भक्त व्यक्तित्व से साक्षात्कार होता है। अपनी जातीय संस्कृति के मुख्य वस्तु और सिद्धान्तों से सुपरिचित और उनके सम्बन्ध में श्रद्धावान् और आस्थाशील एक यथार्थ ब्राह्मण का भी परिचय तानसेन के पदों से होता है।"

डाक्टर चटर्जी के लेख से तानसेन के व्यक्तित्व, उनके काव्य और संगीत पर अद्भुत प्रकाश पड़ता है और तानसेन पर इससे अधिक प्रामाणिक ढंग से और कुछ अभी लिखा भी नहीं गया है। इसलिए इस लेख को पूरा का पूरा यहाँ दे दिया गया है। इसके आधार पर तानसेन का हिन्दू होना, राधाकृष्ण के पद लिखना, हरिदास के शिष्य होना, आदि बातें सिद्ध हैं। इस लेख से उनके पुष्टिमार्ग से होने वाले सम्बन्ध पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता है पर सुनीतकुमार बाबू ने जो उनके संगीत और काव्य की आलोचना की है उसके मूल में पुष्टि दर्शन की भाव भूमि की छाया अवश्य दिखाई पड़ती है। उनके काव्य और संगीत को देखकर यह मानना ही पड़ता है कि एक विशिष्ट शैली और दार्शनिक अनुभूति की प्रेरणा उनके काव्य और संगीत का प्राण थी। गुणी गुणी का आदर करता है इस दृष्टि से सम्प्रदाय में तानसेन का आदर होना और ऐसे उच्चकोटि के कलाविद् का सम्प्रदाय की संगीत प्रणाली के प्रति आकर्षित होना सहज ही है।

२२—तुलसीदासजी

वर्तमानकाल–संवत् १६०८ से १६४२ पश्चात्, जन्म–सम्वत्–माघ सुदी सप्तमी बुधवार संवत् १६०८, पिता का नाम—अज्ञात, जाति–सारस्वत ब्राह्मण, निवासस्थान–दिल्ली से चालीस मील दूर, शरणकाल–संवत् १६१३, अन्त-समय–अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—सो वे तुलसीदास के पिता श्री गुसांईजी के जलघरिया हते और तुलसीदास छोटे हुते। तब श्री गिरधरजी आदि बालकन के संग खेलते।........जो उनके माता पिता पहिले ही सों उनकों बालक छोरिकैं मरे हते। तातें श्री गुसांईजी वाकों बड़े किए हते। तातें लालजी कहते। और तुलसीदास हू अपने मन में यही जानते, जो हों इनको बालक हूँ।............ तब श्री गुसांईजी ने उनकों श्री गोपीनाथजी ठाकुर पधराइ दिए। और आप आज्ञा किए, जो तुम सिंध देस में जाउ। उहाँ जीवन को नाम सुनाइओ। और पुष्टिमार्ग को उपदेस करियो। तब 'लालजी' नाम धरायकै और श्री ठाकुरजी को पधरायकै तुलसीदास सिंध देस कों चले। .... और उनने बोहोत पद किये हैं। तामें उनने अपनी छाप 'लालदास' राखी है। सो कितनेक लोग उनको 'लालमति' हू कहत हैं। सो इनकौ चित्त सदा ब्रजभूमि, श्री यमुनाजी, श्री गोकुल, श्री गुसांई में रहतो। सो इनने जीवन भरि भगवत्सेवा करी। सो जगत में ये आठमें लालजी के नाम सों प्रसिद्ध भए। सो अजहूँ इनकौं बंस है। सो सिंध में नाम देत है।

विशेष:—भावप्रकाश के अनुसार यह सारस्वत ब्राह्मण थे और पाँच वर्ष की अवस्था में इनके पिता मर गए थे और इनका पालन पोषण श्री गुसांईजी ने पुत्रवत् ही किया था और सं० १६३८ में जब बटवारा किया तो जैसे अपने बालकों को ठाकुरजी दिए वैसे इन्हें भी श्री गोपीनाथजी दिए और सम्वत् १६३८ में ही सिंध चले गए। इनके बारह सेवक प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाएँ :—धर्म संवाद, शिक्षा पच्चीसी, गुरु स्तुति, विजय छंद, (६६) भगवान स्तुति, पुरुषोत्तम अष्टोतर शतनाम और लघुपच्चीसी तथा अन्य फुटकर पद प्रसिद्ध हैं। धर्म सम्वाद इनकी गद्दी से छप चुकी है और उसका प्रारम्भ इस प्रकार है :—

प्रभू श्री गोपीनाथजी आज्ञा दीन्हों आय।
'लालदास' भाषण करि सुनत यज्ञ फल पाय।

दूसरे ग्रंथ 'भगवान स्तुति' का प्रारम्भ इस प्रकार है :—

जय जय श्री गोपीनाथजी इष्ट हमारे प्रान।
इन लोचन तें दूर छिनु होत नहीं कब ध्यान।
प्राण देह में तब परै जब गांवौं प्रिय गाथ।
लालदास हृदय चुभ रहे प्रभु श्री गोपीनाथ।।

'शिक्षा पच्चीसी' का प्रारम्भ इस प्रकार है :—

मेरो न काम ईस सौं न हुत नाहीं गनेस।
नहिं काली नहिं नहिं विविध पति नाहीं राम प्रजेस।
यसोदा पूत सदा भजों यहू निरंतर होय।
लालदास यह मत कहै ग्यान बात सब कोय।

सन् १६४८ से इनके वंशज अपने ठाकुरजी श्री गोपीनाथजी को लेकर वृन्दावन में आकर बस गए हैं और उनके यहाँ पुष्टिमार्गीय पद्धति से सेवा होती है। इनकी गद्दी आठवीं गद्दी कहलाती है। यह अष्टाक्षर मंत्र देकर सेवक करते हैं किन्तु गोस्वामी बालकों के सम्मुख आज भी स्वयं सेवक भाव रखते हैं। इससे पहिले यह भावलपुर में थी।

भक्तमाल में इनका परिचय रूप में वर्णन लभ्य नहीं परन्तु इनके नाम का उल्लेख है। मिश्रबंधुओं ने इन्हें नंददास का भाई कहा है।

२३—ताज

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—१६५२ (शिवसिंह सरोज), पिता का नाम—अलीखान, जाति—मुसलमान, निवासस्थान—आगरा, शरणकाल—सं० १६२८-३०, अन्त-समय—अज्ञात।

श्री गोकुलनाथजी कथित भावसिंधु ग्रंथ में अन्तिम वार्त्ता ताज की प्राप्त होती है। उसमें लिखा है कि अकबर बादशाह ने अपने महल में श्री विट्ठलनाथजी का चित्र लगा रखा था उसे देखकर ताज को स्वरूपासक्ति हुई और राय वृन्दावन की बेटी व अकबर की बेटी शोभावती का इससे मेल था। इसने शोभा के द्वारा गुसाँईजी को पत्र लिखा और अकबर को वश में करने का कोई जंत्र मांगा। इस पर गुसांईजी ने यह दोहा लिखकर भेज दिया :—

'कांमन टोंमन टोटका, ए सब डारो धोय।
पिया कहै सो कीजिये आपही ते वश होय॥'

कुछ दिन बाद अन्य बेगमों से एक ने इसके पास एक जंत्र की चुगली की तो अकबर ने उसे गले से खोलकर पढ़ा तो उसे श्री गुसांईजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसने ताज को सेवक होने की आज्ञा देदी। इस वृत्त से यह भी ज्ञात होता है कि आगरे में ताज ने गोकुलपुरा नाम का मुहल्ला बसाया था। इसके अनन्तर यह लिखा है कि अकबर के साथ एक समय यह गिरिराज पर श्रीनाथजी के दर्शन के लिये गयी थी, वहीं उसका शरीर दर्शन करने के पश्चात छूट गया। श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में इसके पिता का नाम अलीखान पठान लिखा है। ताज की अंतिम रचना :—

धमार

बहोरि डफ बाजन लागे हेरी। (ध्रुव)
खेलत मोहन सांवरो हो केहि मिस देखन जाय।
सास ननद वैरिन भई अब कीजै कौन उपाय।
ओजत गागर डारिए जमुना जल के काज।
यह मिस बाहर निकसि के हम जाय मिलें तजि लाज।
आछो बछरा मेलिए बन कों देहि बिडार।
वे देहैं हमहिं पठैं हम रहेंगी घरी द्वै चार।
हा हा री ह्वै जात हौं मो पै नाहिन परत रह्यो।
तूतो सोचति ही रही तैं मान्यों न मेरो कह्यो।
राग रंग गागड़ भज्यो नंदराय दरबार।
गाय खेलि हंस लीजिए फाग बड़ो त्योहार।
तिन में मोहन अति बने नाचत सबै गुआल।
बाजे बहुविधि बाज ही रूंज मुरज डफ ताल।
मुरली मुकुट बिराजही कटि पर बांधे पीत।
नृत्यत आवत 'ताज' के प्रभु गावत होरी गीत।

इनका संक्षिप्त उल्लेख शिवसिंह-सरोज में भी मिलता है। परन्तु इनका परिचय उसमें पुरुष रूप से दिया गया है। मुंशी देवीप्रसाद ने इनको स्त्री माना है। 'हिन्दी के

मुसलमान लेखक' तथा 'मुसलमानों की हिन्दी सेवा' में इनकी जीवनी और काव्य के कुछ अंश संकलित हैं। श्री ज्योतिप्रसाद निर्मलजी ने भावनगर राज्य, सिहौर के गोविन्द गिल्ला भावे से पत्र व्यवहार किया था जिसमें गिल्ला भाई ने लिखा है कि उनके पास ताज के लगभग दोसौ पद संग्रहीत हैं। इसी पत्र में गिल्ला भाई ने उन्हें करौली ग्राम का रहने वाला बताया है। डाक्टर सावित्री सिन्हा ने अपने पी-एच० डी० के निबंध 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां' में इन्हें पंजाब की निवासिनी लिखा है।[1] कविवर रसखान की भांति ताज भी कृष्ण के रूप पर मुग्ध हैं। उनके प्रसिद्ध पद—

ब्रजभाषा में रचना से पूर्व का यह पद यह प्रमाणित करता है कि वैष्णव होने से पूर्व वे मुसलमान थीं।

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी,
तुम दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी, मैं निवाज हूँ भुलानी,
तजे कलमा कुरान साढे गुनन गहूंगी मैं।
स्याम सलोना सिर 'ताज' कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै बहूँगी मैं।
नंद के कुमार कुरबान तेरी मूरत पै,
त्वाढ नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।

इस पद के साढे, त्वाढ, नाल आदि पंजाबी शब्द श्रीमती सिन्हा के इनको पंजाबी बताने की पुष्टि करते हैं। इनके अन्य पद—

काहू को भरोसो बद्रीनाथ जाय पांय परे,
काहू को भरोसो जगन्नाथ जू के मान को।
काहू को भरोसो कासी गया में पिंड भरे,
काहू को भरोसो प्राग देखे बट पात को।
काहू को भरोसो सेतबंध जाय पूजा करे,
काहू को भरोसो द्वारवती गये जात को।
काहू को भरोसो पुस्कर में दान दिये,
मोकों तो भरोसो एक नन्दजी के लाल को।

ऊपर के पद से उनका 'अनन्याश्रय' प्रतीत होता है। तथा

मुस्कयानि तिहारी जो मैंने लखी,
लखि के मन मैं अति नेह जुटानो।
जो तुम चाहत एक विसे,
हमउ के बीस विसे तेहि मानो॥
राह बड़ी है जो प्रेम के पंथ की,
चातुर होय सोई चित आनो।
जीवन 'ताज' कहे जग में,
तुक चारहि आदि के अक्षर जानो॥

---

१ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृष्ठ संख्या १८७, प्रथम संस्करण सन् १६५३, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली

मिश्रबन्धु, रसाल एवं अन्य हिन्दी विद्वान् इनके मुसलमान होने अथवा इनकी भक्ति की अनन्यता के विषय में एकमत हैं। इनका समय १७०० के लगभग बताया गया है।

पंजाबी एवं खड़ी बोली के शब्द इनकी कविता में प्राप्त हैं। कवि गोविन्द गिल्ला भाई के यहाँ इनके रचे सैकड़ों छन्द हैं। इनके समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है, शिवसिंह सरोज ने सं० १६५२ व मुन्शी देवीप्रसाद ने सं० १७०० इनका समय कहा है।

'हिन्दी के मुसलमान कवि' नामक पुस्तक में दिल्ली के श्री गंगाप्रसाद ने इन्हें कांकरौली का मुसलमान कवि माना है और 'पूरव' का रहने वाला माना है और जन्म-स्थान बंगाल, विहार व अवध माना है। इसके लिए आपने ताज की एक कविता का उद्धरण भी दिया है। श्री गंगाप्रसाद के सभी तर्क उपहासास्पद हैं और उनमें कोई सार नहीं है। केवल नवनीतजी मथुरा के स्वर्गीय कवि (सम्वत् १९९५ से २००२ तक वर्तमान) स्वर्गीय जगन्नाथदास रत्नाकर के कविता-गुरु के कथन की परीक्षा आवश्यक है। आप लिखते हैं कि श्री नवनीत जी इन्हें 'कांकरौली' का निवासी बताते थे। श्री नवनीतजी के दर्शन करने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुआ था और वे इन्हें कांकरौली का नहीं आगरे के पास के 'करौली' राज्य का रहने वाला बताते थे। श्री गुसाँईजी के समय तक तो काँकरौली गद्दी का सूत्रपात भी नहीं हुआ था। कांकरौली के तृतीय पीठाधीश्वर श्री ब्रजभूषणजी ने सम्वत् १७२० के लगभग श्री द्वारिकाधीशजी को ब्रज से लाकर यहां स्थापित किया था। अतः कांकरौली की कल्पना एक भ्रममात्र है। श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता के कथन को यदि प्रामाणिक माना जाय तो फिर यह अनुमान करने की आवश्यकता ही नहीं है कि उसके पिता का क्या नाम था और वह कहाँ की रहने वाली थी। इसके अनुसार वह अलीखान पठान की बेटी थी और महावन की रहने वाली थी।

२४—दयाल

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—बनिया, निवास स्थान—अज्ञात, शरणकाल—किसी द्वारका यात्रा में, अन्त समय—अज्ञात।

डाकौर संस्करण में ८०वीं वार्त्ता, भावना में दयाल बनिया राजनगर कौ तिनकी वार्त्ता संख्या ११४ है। इसके अनुसार यह राजनगर का रहने वाला था और लखपति था, लोभी था, और एक समय जब श्री गुसांईजी द्वारका यात्रा को जा रहे थे तब श्री भाइला कोठारी के सत्संग से सेवक हुआ था और इसने अपनी स्त्री को भी नाम दिलवाया था।

कवि होने का उल्लेख नहीं है पर इनके पद सम्प्रदाय में प्रचलित हैं।

उदाहरण—

हरि सेवा वल्लभ सुत जाने।
चरण कमल मकरंद लुब्ध अलि आन कुसुम पहिचाने।
यह कलिकाल गुपाल भजन दृढ़ सुनत श्रवण जड़ जीव सिराने॥
लोक वेद मरजादा राखी साखी दे गोबरधन राने।
जाको मुख देखे सुख उपजे प्रगट प्रताप बिदित बखाने॥
गुन अशेष न शेष कहि आवे पिय 'दयाल' कहा तुम्हैं बखाने॥[1]

१ काँकरौली सरस्वती भण्डार ४२/१६ बंध संख्या

दयालदास नाम से कवि का विवरण मिश्रबन्धु विनोद में है परन्तु ये दोनों एक ही हैं अथवा अलग-अलग इसका निर्णय मिश्रबन्धुओं के विवरण के आधार पर नहीं किया जा सकता है।

२५—धर्मदास

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति–अज्ञात, निवास—अडींग, शरणकाल—जेठ सुदी दशमी सम्वत् १६२८, अन्त समय—सम्वत् १६४२ से पूर्व।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो एक समै श्री गुसाँईजी आप श्री गोकुल तें श्रीनाथजीद्वार पधारे हते। सो मार्ग में एक आंधरो ब्राह्मनु बैठ्यौ हतो। तब श्री गुसाँईजी के मन में दया आई, जो बापड़ो आंखिन बिना दुःखी है सो ताही समै श्री गुसाँईजी की इच्छा तें वा ब्राह्मन की आँखि नीकी भई। और आछो देखन लाग्यो।........ तब वह ब्राह्मन वैष्णवन के मुख तें वार्त्ता कीर्तन सुनन लाग्यो। पाछें वा ब्राह्मन ने श्री गुसाँईजी सों विनती करी, जो महाराज! मोकों कोई ग्रन्थ सिखावो। तब श्री गुसाँईजी आप वा ब्राह्मन कों "श्रीवल्लभाष्टक" सिखाए। तब वाकी बुद्धि निर्मल भई।

काँकरौली सरस्वती भण्डार (विद्याविभाग) में श्री ब्रजनाथ सुत विट्ठलनाथ की लिखी निजी कीर्तन संग्रह की हस्तलिखित प्रति में $\frac{१०}{३३१}$ पृष्ठ पर धरमदास[१] नामके कवि के कुछ पद संकलित हैं। श्री ब्रजनाथ सुत विट्ठलनाथजी का आविर्भाव काल सम्वत् १८११ है। एक पद की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है–

श्री वृन्दावन चंद नाचत मोर मुकुट दिए।

वार्त्ता में इनके कवि होने का उल्लेख नहीं है परन्तु इनके पद मिलने के कारण ही इन्हें कवि लिखा गया है।

भावप्रकाश में इनका जन्म स्थान अडिंग, जाति ब्राह्मण शीतला से नेत्र विहीन होना और मथुरा गोवरधन की सड़क पर भीख माँगना लिखा है।

मिश्रबन्धुओं ने इस नाम के मनुष्य का आत्मबोध नामक ग्रन्थ लिखा है रचनाकाल १६०७ कहा गया है। आचार्य शुक्ल के इतिहास में बांधवगढ़ के रहने वाले, कबीर के शिष्य, वैश्य धरमदास की चर्चा है। परन्तु ग्रन्थ के लिये आचार्य शुक्ल ने कुछ भी नहीं लिखा है।

२६—ध्यानदास

वर्तमानकाल–अज्ञात, जन्म सम्वत्—अज्ञात पिता का नाम–अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास स्थान—गुजरात, शरणकाल–सं० १६३८, अन्त समथ—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है–सो एक समै श्री गुसाँईजी आप द्वारिकाजी श्री रनछोरजी के दरसन कों पधारे हते। तहाँ ध्यानदास श्री गुसांईजी के दरसन कों श्रीगोकुल आए। तहाँ श्री नवनीतप्रियजी के आगे निवेदन कियो। तब ते ध्यानदास श्री गुसाँईजी के पास ही रहे। सो क्षन एक दूरि न रहे। जहाँ श्री गुसांईजी पधारे तहाँ ही ध्यानदास संग रहे।

वार्त्ता में इनके कवि होने का उल्लेख नहीं है। यह कवि अवश्य थे पर इनके पद गोकुलनाथजी के सेवकों के पास हैं जिसमें एक पद की एक पंक्ति इस प्रकार मिली है—

"सारंगी के प्रताप ते पायो गोकुलनाथ"

---

१ सम्प्रदाय में धरमदास नामक अन्य कोई कवि प्रसिद्ध नहीं हैं।

ऐसा लगता है कि यह सारंगी अच्छी बजाते थे और श्री गोकुलनाथजी के संग रहते थे इनका मूल निवास स्थान लाहौर था। पीछे से यह परिवार आगरे में बस गया था और जतीपुरा के पास हनुमानजी के मन्दिर के समीप ध्यानदास की एक बगीची भी है जिससे पता चलता है कि यह श्री विट्ठलनाथजी और गोकुलनाथजी के समय में यहीं रहते थे अथवा यह बाग इन्होंने ही लगाया था।

भावप्रकाश के अनुसार इनके लड़के का नाम जगन्नाथदास था जो श्री गुसांईजी की भेंट के रुपए रखता था और सदा साथ रहता था।

ध्यानदास का नाम रसालजी ने लिखा है परन्तु इनके जन्म आदि की तिथियां अब भी अलभ्य हैं।

२७—घोंघी

वर्तमानकाल—संवत् १५९८ से १६४२ के पश्चात्, जन्म-सम्वत्—सं० १५९८, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—मुसलमान, निवासस्थान—आगरे के पास गांव, शरण-काल—संवत् १६२८, अन्त-समय—सं० १६४२ के पश्चात्।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो या घोंघी की बड़ी जाति हती। सो यह श्रीगोकुल आयो। तहाँ ठकुरानी घाट पे इनकों श्री गुसांईजी के दरसन भए। सो महा अलौकिक दरसन भए।............... तब घोंघी ने श्री गुसांईजी सों बिनती करिकै यह पद गायो, सो पद—

दुपहरी झनक भई तामें आये पिय मेरे मैं उठि कीनो आदर।
दुपहरी झनक०। (प्रथम पंक्ति)

........पाछे श्री गुसांईजी आप घोंघी को आज्ञा दिए, जो तुम नित्य श्री नवनीतप्रियजी के सन्निधान कीर्तन गायो करो। तब ते घोंघी श्री नवनीतप्रियजी के सन्निधान नित्य कीर्तन गावते।

भावप्रकाश के अनुसार घोंघी आगरे और दिल्ली के बीच किसी गांव का रहने वाला था और मुसलमान था। वह एक सुन्दर कंठ वाला गायक था और मृदंग अच्छी बजाता था। यह तीस वर्ष की अवस्था में आगरे आया था और पीछे से महावन में अपनी जाति के लोगों से मिलने गया वहाँ से गोकुल में जाकर गुसांईजी का शिष्य हो गया।

वार्त्ता में प्रकाशित पद के अतिरिक्त 'वर्षोत्सव' के संग्रह में प्रकाशित पदों में एक :—

आवन कहि गये अजहुँ न आए सब निसि बीती मोहि गिन-गिन तारे।
दीपक ज्योति मलिन भई है किन दुतियन बिरमाये प्यारे।
तमचर बोलै बगर सव खोलै फूलै कमल मधुप गुंजारे।
"घोंघी" के प्रभु तुम बहु नायक आये निपट सकारे।[1]

घोंघी नाम के कवि जो वार्त्ता में आये हैं इनके रचनाकाल के सम्बन्ध में अभी मतभेद है। मिश्रबंधुओं ने घोंघी नामक कवि का रचनाकाल सं० १७०० के लगभग बतलाया है परन्तु भावप्रकाश के अनुसार इनका रचनाकाल सं० १६२८ के बाद किसी समय भी हो सकता है इससे अधिक इसके सम्बन्ध में कुछ और ज्ञात नहीं है।

१ यह पद शीतकाल 'मंगला' में सब मंदिरों में गाया जाता है।

२६—नंददासजी—अष्टछाप के कवि

सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोढ़िया ब्राह्मण हते । सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई, और छोटे भाई नंददासजी हते । सो वे नंददास पढ़े बहुत हते ।

तुलसीदासजी तो रामानंदीन के सेवक हते । सो नंददास हूँ को रामानंदीन कौ सेवक करवायो । उन नंददास को लौकिक विषय में प्रीति बोहोत हती ।······ सो कछुक दिन में एक संग पूरव कौ चल्यौ तहाँ ते श्री रनछोड़जी के दरसन कों श्री द्वारकाजी को चल्यो । तब नंददास ने मन में विचारी, जो बने तो मैं ऐसे संग में श्री रनछोड़जी के दरसन करि आऊँ । ······· ता पाछे वह संग चल्यो, सो वाके संग नंददास हू चले । सो कछुक दिन में वह संग मथुराजी में आय पहुँच्यो । तब संग मधुपुरी में रह्यो, और नंददास तो मधुपुरी की सोभा देखत-देखत विश्रांत ऊपर आये । ······ सो नंददास तो मनमें देखिकै बहुत ही मोहित भये । मन में विचार किये, जो ऐसी जगह में कछुक दिन रहिये तो आछी है । ······· वे तो अकेले चले ही गये । सो श्री द्वारकाजी कौ मारग भूलि गये, और चले-चले सिंहनद जाइ निकसे । सो गाम के भीतर चले जात हते । तहाँ एक क्षत्री गुसांईजी कौ सेवक रहत हतो । ताकी बहू अत्यन्त सुन्दर हती । सो वह स्त्री अपने घर में नहायकै ऊपर ठाड़ी-ठाड़ी केस सुखावत हुती । सो चले जात में वह स्त्री नंददास की दृष्टि परी । सो नंददास तो वाकों देखिकै मोहित भयो । ······· सो ऐसे ही नंददास कोंहू साज (हठ) पड़ि गई । ······ तब वा क्षत्री ने आयकै नंददास सों कह्यो, जो तुम हमारे घर के द्वार पर नित्य आवत हों, सो हमारी जगत में हांसी बोहोत होत है । तब नंददास ने वा क्षत्री सों कह्यो, जो मैं तुमतें मांगत नाहीं कछु तुमारो बिगारत नाहीं । ता पाछें और तुम कहत हो मोसों, तो मैं तुम्हारे माथे मरूंगो । ······· ता पाछें एक गाड़ी भाड़े करि, दस—पाँच मनुष्य मारग के लिये चाकर राखे । प्रातःकाल ते नंददास वा बहू कौ म्होडो देखिके गयो हतो । ······· पाछें वह क्षत्री नाव में बैठ्यो, तब नंददास हू नाव पर बैठन लागे, तब उन मलाहन ने हाथ पकरिकै उतार दियो नाव पें तें । तब नंददास तो श्री जमुनाजी के तीर ठाड़े-ठाड़े विचार करन लागे ।······· ता पाछें 'अपनी जूठनि की पातरि वा क्षत्रि को धरी । ······ सो श्री जमुनाजी के तीर बैठे-बैठे श्री जमुनाजी के आगें विज्ञप्ति के पद गावन लागे । सो पद —

१—नेह कारन श्री यमुने प्रथम आई । (प्रथम पंक्ति)
२—भक्त पर करि कृपा श्री जमुना जू ऐसी । (प्रथम पंक्ति)
३—श्री जमुने श्री जमुने श्री जमुने जु गावे । (प्रथम पंक्ति)

सो या भांति नंददास तो श्री जमुनाजी के तीर बैठे-बैठे श्री जमुनाजी की स्तुति करत हैं । इतने में वह ब्रजवासी जाकों श्री गुसांईजी ने नंददास कों लैवे पठायो हतो, सो नाव लैकै पार जाय पहुँच्यो । ········· तब वा ब्रजवासी ने नंददास सों कह्यो, जो तुमकों श्री गुसांईजी ने बुलाये हैं, और यह नाव पठाई है, तामें तुम बैठिके बेगि चलो । ·········· और आयकै श्री गुसांईजी के दरसन करिकै साष्टांग दंडवत् करी । सो दरसन करत ही नंददास की बुद्धि निरमल होय गई । सो पद —

जयति रुक्मनिनाथ पद्मावती-प्रानपति बिप्र कुल-छत्र आनंदकारी ।

सो नंददास ने यह कीर्तन गायो। सो सुनिकैं श्री गुसांईजी बोहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछें श्री गुसांईजी नंददास कों आज्ञा दीनी, जो तेरी महाप्रसाद की पातरि धरी है, सो जाइकै महाप्रसाद लेवो। ······· सो पद—

१—प्रात समैं श्री वल्लभसुत कौ पुन्य पवित्र बिमल जस गाऊँ। (प्रथम पंक्ति)
२—प्रात समय श्री वल्लभसुत कौ उठत ही रसना लीजै नाम। (प्रथम पंक्ति)
३—बालगोपाल ललन कों मोद भरि जसुमति हुलरावति।। (प्रथम पंक्ति)

·······श्री गुसांईजी श्रीनाथजी द्वार पधारे, और नंददास को हू संग लिये।············ सो नंददास श्री गोवर्द्धननाथ के दरसन करिकै बोहोत प्रसन्न भये। ता समै नन्ददास ने यह कीर्तन गायो। सो पद—

सोहत सुरंग दुरंग पाग करंग ललना कैसे लोयन लोने। (प्रथम पंक्ति)

सो या भांति नन्ददासजी ने बहुत कीर्तन किये। ता पाछें नन्ददास छै मास पर्यन्त सूरदासजी के संग पारसौली में रहे।·······और एक समै तुलसीदासजी ने विचार किये, जो नन्ददास श्री गोकुल में हैं, सो जाइकै लिवाय लाऊँ। यह विचारिकै तुलसीदास कासी तें चले, सो कितेक दिन में श्री मथुराजी में आइ पहोंचे। तब श्री मथुराजी में पूछे, जो इहां नन्ददास ब्राह्मण कासी तें आयो है, सो तुम जानत होउ तो बताओ। जो वहां होयगो ?······तब तुलसीदास प्रथम तो श्री गोकुल आये।·······पाछें तहाँ ते श्री गिरराजजी गये। सो कहाँ पारसोली में तुलसीदासजी नंददासजी को मिले।······सो पद—

जो गिरि रुचे तो बसो श्री गोवर्द्धन। (प्रथम पंक्ति), प्रथम पद

······जब श्री गोवर्द्धननाथजी के दरसन करे तब तुलसीदासजी ने माथो नवायो नाहीं।·······पाछें नंददास ने श्री गोवर्द्धननाथजी सों विनती करी। सो दोहा—

कहा कहों छबि आपकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बान लेहू हाथ।।

··········तब नंददास ने श्री गुसाँईजी सों बिनती करी, ये मेरे भाई तुलसीदास है। ······एक दिन नंददासजी के मन में ऐसी आई, जैसे तुलसीदास ने 'रामायण' भाषा किये हैं तैसे हमहू श्रीमद्भागवत भाषा करें। पाछें नंददास ने "श्रीमद्भागवत दशम" भाषा संपूरन कियो।·········और एक समै अकबर बादशाह और बीरबल श्री मथुराजी आये। सो बीरबल श्री गुसाँई के दरसन कों आयो।···········विलछू वृक्ष ता पाछें अकबर पातसाह के आगे तानसेन रात्रि कों गायवे कों आयो। सो तहां नंददास को कियो पद तानसेन ने गायो। सो पद—

देखोरी देखो नागर नट निर्तत कालिंदी तट गोपिन के मध्य राजे मुकुट की लटक।
(प्रथम पंक्ति)

··········तब देसाधिपति ने बीरबल सों कह्यो, जो याही समै उनको इहां बुलावो। तब बीरबल ने पातसाह सों कह्यो, जो साहब, वे या भाँति सों तो यहाँ न आवेंगे।··········· ता पाछें दूसरे दिन बीरबल गोपालपुर आयो।·········तब नंददास ने बीरबल सों कह्यो, जो मोकों अकबर पात्साह सों कहा प्रयोजन है ? मोकों कछु द्रव्य की चाहना नाहीं।······ तब बीरबल ने कह्यो·······तो अकबर पात्साह ही तुम्हारे पास आवेगो। तब नंददास ने कही, जो तुम इहां वाको मति लावो।······तातें मैं सेन आरती पाछे श्री गुसांईजी सों

दंडवत करिकै विदा होयकै मानसी गंगा आऊँगो।.......ता पाछें अकबर पात्साह ने नंददास सों कह्यो, जो तुमने रास कौ पद बनायो है, तातें तुमने कह्यो है, जो 'नंददास गावे तहां निपट निकट' सो इतनो झूठ क्यों बोलत हो?.......तब नन्ददास ने पात्साह सों कह्यो, जो मेरे कहें को तुमको विश्वास न होयगो। सो तुम्हारे घर में फलानी (रूपमंजरी) लौंडी है तासो तुम पूछि लेउ, वो जानत है।.......सो नंददासजी श्री गुसाँईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते, जिन के ऊपर श्री गुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। और अपने स्वरूपानन्द कौ वैभव दिखायो। तातें उनकी वार्त्ता कहां तांई कहिए।

इनका विवरण डा० दीनदयालु गुप्त के अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय नामक ग्रन्थ में प्रकाशित है और इन पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अतः मैंने अष्टछाप के कवियों को इस प्रबन्ध की सीमा से अलग कर दिया है।

मिश्रबन्धु की पुस्तक में इन्हें एक अन्य कवि तुलसीदास का भाई और इनका कविता काल १६२३ के लगभग बताया गया है। अनेकार्थ नाम माला, रास पंचाध्यायी रुक्मिणी मंगल, हितोपदेश आदि १६ ग्रन्थ एवं पद इनके कहे जाते हैं। दोसौ से ऊपर पद भी इनके प्राप्त हुये हैं। आचार्य शुक्ल ने नंददास की चुनी संस्कृत पद विन्यास पद्धति एवं अनुप्रास के योग को अप्रतिम कहा है। सूर के बाद इनका ही नाम आता है।

खोज रिपोर्ट (सं० १६०१) में 'दसमस्कंध भागवत' नामक नंददास रचित ग्रन्थ का निर्देश किया है। इनके एक परम मित्र थे पर इनका नाम अभी तक अज्ञात है। वियोगी हरि के अनुसार 'मित्र' से यहाँ गंगाबाईजी से आशय है। आप अधिकतर अपने ग्रन्थों की रचना अपने मित्रों के अनुरोध से किया करते थे। पृष्ठ ७७६ पर दिये हुये छप्पय के अनुसार यह ज्ञात होता है कि नंददास 'अग्रज सुहृद' थे। चन्द्रहास 'अग्रज सुहृद' के दो अर्थ हो सकते हैं—

(१) चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र (२) चन्द्रहास के सुहृद बड़े भाई। इन दोनों अर्थों में कौनसा अर्थ नंददास के पक्ष में प्रयुक्त होता है, यह अनिश्चित है, क्योंकि चन्द्रहास का निर्देश अन्य किसी वाह्य साक्ष्य में नहीं है। यह रामपुर के निवासी थे।

बावन वैष्णवन की वार्त्ता का प्रमाण देते हुये आप तुलसीदासजी के छोटे भाई थे।

(२६) नागजीभट्ट। (संस्कृत कवि)

वर्तमानकाल—संवत् १६४२ तक, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण, निवास-स्थान—गोधरा; शरणकाल—संवत् १६२८ से पूर्व, अन्त-समय—संवत् १६४२ से पूर्व।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के अनुसार यह गोधरा के रहने वाले थे और वहाँ से अडैल में जाकर सेवक हुये थे और उनकी आज्ञा का पालन ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। वैष्णवों के द्रव्य को अपने काम में नहीं लाते थे। यह गोधरा के हाकिम के यहाँ नौकर थे। और कई बार श्री गुसांईजी के दर्शन को अडैल गए थे। वार्त्ता में इनका कवि होना तो नहीं लिखा है पर एक श्लोक इस प्रकार है—

सरसि कुशेशमयणयस्वादितुमिच्छति लिनो मार्गे।
यदि नकन–कमल पाने नासीत्तोषः किमन्येन।।

इससे इनके संस्कृत में रचना करने का सन्देह होता है। यह संस्कृत के पंडित थे इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि इनका और श्री गुसांईजी का पत्र व्यवहार संस्कृत में ही है।

भावप्रकाश में यह गोधरा के निवासी साठोदरा ब्राह्मण और देसाई लिखे हैं। और राना व्यास की कृपा से अडैल में शरण आए थे। इनके एक लड़की थी इसका भी भावप्रकाश और वार्त्ता दोनों में उल्लेख है। भावप्रकाश में राज्य के उपद्रव में इनके द्रव्य अपहरण का उल्लेख है।

विशेष—यह श्री गुसांईजी के प्रथम सेवक थे और योग्य तथा विद्वान् व्यक्ति थे। इनकी आज्ञापालन, श्रद्धा और निष्ठा सराहनीय है। इनके वंश में केशव, ध्रुव और बड़े हर्ष विद्वान् हुए हैं। आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव भी इन्हींके वंशज बताए जाते हैं। गुजरात के प्रकाशित इतिहास से नागजीभट्ट के सम्बन्ध में और कुछ ज्ञात नहीं है। वार्त्ता-साहित्य से इस बात का पता चलता है कि यह व्यवहारकुशल व्यक्ति थे।

३०—पृथ्वीसिंहजी

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—वि० सं० १६०६, पिता का नाम—कल्याणसिंह, जाति—क्षत्री, निवास-स्थान—बीकानेर, शरणकाल—संवत् १६२८, अन्त-समय—संवत् १६५७।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—सो वे पृथ्वीसिंहजी कविता बोहोत करते। सो उनने कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई ऐसे अनेक प्रकार की कविता रची है। और 'रुक्मनि बेलि' और 'स्यामलता' इत्यादि ग्रंथ हू बनाए हैं। सो राजा कौ मन श्री ठाकुरजी के सिवाय और ठौर जातो नाहीं।······· बोहारि राजा पृथ्वीसिंहजी कों पृथ्वीपति दिल्ली बुलाए। सो राजा पृथ्वीपति के पास दिल्ली आए। तब माला–तिलक–छापा सब करिकै आए। तब बादशाह पृथ्वीसिंहजी को देखिकै मन में बहोत प्रसन्न भयो।······· पाछें बादशाह राजा कों काबुल की ओर लड़ाई में जाइवे की कही। तब राजा ने बिचार कियो, जो मेरी मृत्यु तो अमुक दिन मथुरा में विश्रांतघाट पे होइवे वारी है। सो अब कैसे करों? फेरि श्री गुसांईजी के चरनारविंद कौ ध्यान करि राजा काबुल गयो। सो उहाँ थोरे ही दिन में लड़ाई जीतिकै सांडनी पै बैठिकै उहाँ ते चले। सो दोई दिन में मथुरा आईकै वाहि दिना देह छोड़ी। सो यह बात बादशाह ने सुनी। तब बादशाह ने बोहोत खेद कियो।

भावप्रकाश के अनुसार यह बीकानेर के राजा कल्यानसिंह के पुत्र थे। और बाल्यावस्था से ही साधु प्रेमी थे और सत्संग करते थे। राज्याधिकार प्राप्त होने के बाद ही यह जब मथुरा यात्रा को आए थे तभी गोकुल में श्री गुसांईजी के शिष्य हुए थे। इनको श्री गुसांईजी ने बालकृष्ण की सेवा दी थी।

विशेष :—श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के राजपूताने के इतिहास के प्रथम खंड (बीकानेर का इतिहास) की पृष्ठ संख्या १५७ पर इनका प्रामाणिक वृत्त दिया है। जिसमें इनको बीकानेर के राजा कल्याणराय का पुत्र (तीसरे पुत्र) बताया गया है इनकी मृत्यु और इनके जन्म का सम्वत् भी मैंने ओझाजी के इतिहास से ही लिखा है। ओझाजी के ग्रंथ के अतिरिक्त बीकानेर के राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित 'मुँह णोत नैणसी की ख्याति' तथा कवि जय सोमरचित 'कर्म चन्द्र वंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में भी इनका उल्लेख है।

कर्नल टाड ने भी इनके सम्बन्ध में लिखा है कि पृथ्वीराज अपने समय का सर्वोच्च वीर व्यक्ति था और पश्चिमी 'दूबेडार' 'राजकुमारों' की भाँति अपनी ओजस्विनी कविता के

द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकता था तथा स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकता था।' नैणसी के ख्याल के अनुसार अकबर बादशाह ने इन्हें गागरोन (कोटा राज्य) का किला दिया था। अकबरनामे में भी इनका नाम दो स्थानों पर आया है। इनका सम्वत् १६३८ में मिर्जा हकीम के साथ काबुल और सम्वत् १६५३ में अहमदनगर की लड़ाई में राठौड़ी सेवा में होने का उल्लेख है।

यह कवि थे और 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है जो हिन्दुस्तानी एकाडेमी प्रयाग से प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त इनके दूसरे ग्रन्थ 'स्यामलता' का उल्लेख भी दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में है तथा अन्य सवैया और दोहा चौपाइयों का भी उल्लेख है। ओझाजी ने लिखा कि इनका अन्तिम दोहा इस प्रकार है, जो नवाब खानखाना के एक चरण की पूर्ति है :—

दोहा—सज्जन वासं कोड़ धां या दुर्जन की भेंट।
रजनी का मेला किया वेह के अच्छर मेंट।

इनकी 'स्यामलता' मेरे देखने में नहीं आई है। स्फुट पदों में अहमदाबाद से प्रकाशित "शुद्धाद्वैत" मासिक वर्ष ६ अंक पाँच में निम्नलिखित पद छपा है :—

शशि कलंक सरवर सपंक सुरमुख धूम्र गति।
सविष सर्प सविता संताप गंगा गति विकृति।
पंगु मेरु किरपण कुबेर एक आंख असुर गुरु।
नींच नीर नीरस समीर परि न परमेश्वरु।
ब्रह्मा कलाल कर्म क्रोध हर नृपतिराग 'पृथ्वीराज' पृथ्वी सु सठ।
सब दोष सहित विट्ठलेश बिनु हंस गमनि त्रिय दोष हठ।

इस पद में गुरु भक्ति और गुरु दोनों का निर्देश है। इनके शरणकाल के सम्बन्ध में यही उचित प्रतीत होता है कि लगभग सम्वत् १६३८ में यह शरण आए क्योंकि उसी समय यह काबुल लड़ाई में मिर्जा हकीम के साथ जाने के लिए इधर आए थे। दूसरी सम्भावना यह है कि सम्वत् १६२७ में नागौर में जब इनके पिता श्री कल्याणराय ने अकबर से मैत्री की तब ही अपने बड़े भाई रायसिंह के साथ यह भी अकबर के पास रह गए हों। 'शुद्धाद्वैत' वर्ष ६ अंक पांच के जिस लेख का उल्लेख ऊपर हो चुका है उसके अनुसार श्री रघुनाथजी के व्याह के समय यह श्री गोकुल आए थे अतः इनका शरणकाल १६२७ के आसपास सिद्ध होता है पर इतिहास में केवल रायसिंह का अकबर के पास रहना लिखा है।

वार्त्ता में इनके दो प्रसंग हैं। एक में ठाकुरजी ने तीन दिन तक शत्रु से लड़ाई की है और दूसरे में बादशाह ने इन्हें दिल्ली बुलाया था।

प्रथम प्रसंग में बीकानेर राज्य के किसी राजपूताने के राजा की चढ़ाई का उल्लेख है। भक्त के सब काम ठाकुरजी ही करते हैं इस कारण इसके वृत्त में कोई असंगति नहीं है। दूसरे में यद्यपि अकबर की राजधानी आगरा थी पर उसका १६३७ में दिल्ली जाने का समर्थन इतिहास से प्राप्त है।

वार्त्ता-साहित्य में 'राजा' शब्द का प्रयोग प्रत्येक राजवंशी या शासक, हाकिम, जिमींदार, ठाकुर के लिये सामान्य रूप से हुआ है।

आचार्य शुक्ल ने पृथ्वीसिंहजी का जीवन काल सं० १७१७ तक माना है। बिहारी सतसई के अनुकरण पर 'रतन हजारा' नामक दोहों का संग्रह इनका माना जाता है। कविता में फारसी के शब्द सुरुचि और कविता के साहित्यिक तत्त्व पर धब्बे से हैं। भक्तमाल में भी इनका नाम आया है।

३१—पर्वतसेन

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्–अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—गोपालपुर, शरणकाल—संवत् १६२८, अन्त समय–अज्ञात।

डाकौर संस्करण में पर्वतसेन का नाम मिलता है। भावप्रकाश वाली प्रति में 'चन्दन वारे वैष्णव' की वार्त्ता इन्हीं की वार्त्ता है। क्योंकि जो प्रसंग चन्दन समर्थन का इस वार्त्ता में है वह मूल में भी है।

इनका कवि होना निश्चित है। कांकरौली में फाल्गुन शुक्ल तेरस राजभोग सरने समय (उठाते समय) इनका यह पद गाया जाता है :—

'नंदकिशोर किशोरी की जोरी, हो हो हो कहि खेलत होरी।
दूलह पर्वतसेन को प्रभु दुलहिन राधा गोरी।

इनके कुछ कवित्त भी प्राप्त हैं जो श्री द्वारकादास पारीखजी के निजी संग्रह में सुरक्षित हैं। ऐसे आठ कवित्त मैंने देखे हैं। इन कवित्तों में उनका राजा होना, उनकी दीनता, और विरह की सुन्दर झाँकी मिलती है—

कवित्त

कमला को कोलाहल, कमलमुखी सों केलि कवि पर्वत गति मति सब ठान्यौ है।
नाहीं जप नाहीं तप तीरथ न योग यग्य यहै जीय जाति जग अपनौ कै जान्यौ है।
अधम उद्धारन मधुर मधुसूदन के नाम सुधासिंधु में विषया विष सान्यो है।
पर तरुणी के सोयो परत रजनी के रस सुरत को रस सुरतरु करि मान्यौ है।

बाल लीला:—

जसुमति पहिरावति सुत को कुलहै
तापर मौहर बांधि फूलन को नीको बन्यौ आज दुलहै।
भूषण बसन पहरि बहुविधि के नैनन देखि मदन मन भुलहै।
पर्वतसेन स्यामघन सुन्दर दुलहै कोउ नाहि सम तुलहै।

इनके एक कवित्त से यह सिद्ध होता है कि यह मारवाड़ के थे। जिसकी अंतिम पंक्ति यह है:—

गौर भयो गेह, गुजरात भई अंगनई।
पोरी पर्वत भई प्यारे के सिधारे ते।

भावप्रकाश के अनुसार यह चंदन वाला वैष्णव जन्म से क्षत्री था और आगरे का रहने वाला था। इसे आगरे में ही श्री गुसांईजी ने नाम निवेदन कराया था। इसके माता पिता आगरे से श्रीगोकुल में आकर बस गए थे।

मिश्रबंधु विनोद में परवत नामक कवि का उल्लेख है। इतिहास में पर्वतसेन नाम के किसी व्यक्ति का वर्णन नहीं मिलता है।

३२—ब्रह्मदास

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति–क्षत्री, निवासस्थान–गोकुलपुर, शरणकाल—सम्वत् १६२८, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है :—सो ये ब्रह्मदास गोपालपुर में रहत हुते।......और गोवर्द्धन मानसी गंगा पर एक गौड़िया कृष्णचैतन्य कौ शिष्य रहत हुतो। सो वे ब्रह्मदास को मित्र हतो।......सो ता समै ब्रह्मदास उहां आए। सो ब्रह्मदास ने वा गौड़िया कों देखिकै कही, जो तुमने दूध के ऊपर छाछ पी है ताते तुमको ज्वर आयो है।.......सो वे ब्रह्मदासजी श्री गुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते। सो मानसी सेवा के प्रताप ते सबके मनकी जानते। और ये मानसी में जो अनुभव करते सो पदन में गावते।

विशेष:—यह गोवरधन में मानसी गंगा पर भी रहते थे। काँकरौली सरस्वती भंडार बंध संख्या ५१/३ में इनका निम्नलिखित कवित्त तथा अन्य कई पद सुरक्षित हैं:—

कवित्त

बीच ही मिल्यो है साथ बीच ही होत बिहात,
दारा सुत मीत बंधू जिहीं भलो भाविये।
हाटक हैबर हाथी कौन के भये हैं साथी,
लाख बेर लखि-लखि यहै अभिलाखिये।
ब्रह्मदास नाथ ही सों नीको नातो नीके चलि,
विषय विष बिसराय पीयूष ये चाखिये।
साथ ही रहे सो साथ छोड़े न छिड़ाये छिनु,
साथ आवै साथ जाय सोई साथ राखिये।

कांकरौली सरस्वती भंडार में बीरबल और ब्रह्मदास के पद एक ही बन्ध में रखे गए हैं पर वार्त्ता का विवरण ब्रह्मदास को बीरबल से अलग करता है।

३३—बीरबल

वर्तमानकाल - संवत् १६४२ तक, जन्म-सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम–गंगादास, जाति—ब्राह्मण, निवास स्थान—तिकंवापुर, शरणकाल—सम्वत् १६२८, अन्त-समय संवत् १६४२।

बीरबल की बेटी की वार्त्ता, छीतस्वामी की वार्त्ता, रूपमंजरी, चांपाबाई की वार्त्ता में बीरबल का उल्लेख है। श्री गुसांईजी के एक संस्कृत पत्र में जो 'पुष्टि भक्ति सुधा' नामक मासिक में छप चुका है इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

स्वस्ति श्री विट्ठलदीक्षितानां गिरधर श्री गोविन्दबालकृष्ण श्री वल्लभ यदुनाथ, रघुनाथ, घनश्याम, मुरलीधर, कल्याणराय, गोकुलोत्सव द्वारकेश्वराण्वाशिषः। शमिह भवदीयंभद्रं सततमाशास्महे। प्रभु सेवा सम्यक् कर्तव्या। भोगादि विषयको विचार सर्वश्वाम्यादि मुश्वाच्छे्तव्यः। तत्रापि वीरवर राजस्य पूर्वापेक्षया भूयसी प्रपत्ति द्रष्टव्या। रायपुरुषोत्तमस्यापि तथैव प्रपत्ति द्रष्टा वीरवरेणोक्तमस्ति। मयासदाज्ञापत्रं गिरधरा यथा लिखित्त तथा .... किमधिकं फाल्गुन शुक्ल १। यमुनादिषु वैंकटादिष्वाशिषः गोविंदभट्ट गणेशमहैरायपुरुषोत्तम वीरवर राजयों निकटे सपदि तिष्ठतः—

बीरबल के कवि होने का प्रमाण यह है कि कांकरौली सरस्वती भंडार के बंध ५१/३ में इनके नवनीतलाल विषयक पद, तथा, अन्य कवित्त सुरक्षित हैं।

नवनीत लिए निरखैं करसौं नव नीरज सी अँखियाँ युगराती ।
नव पल्लव से फरके अधरा नव कुंदकली मुख में मृदुदांती ।
नूतन श्याम तमाल सखी सुलखैं छवि होति हिये ते न हाती ।
मोहन मूरत नन्दलाल की बलाइ लगौ द्विज ब्रह्म की छाती ।

दूसरा पद जिसमें श्रीनाथजी का उल्लेख है इस प्रकार है —

ब्रह्मदास[1] नाम ही सों नीको नातो नीके चलि बिषै विष विसराय पीयूष लै चाखिए ।

राजा बीरबल (वीरवीर):—

अकबरी दरबार के प्रसिद्ध व्यक्तियों में से हैं। इन्होंने जैसा सम्मान पाया वैसी ही सुन्दर वीरगति पाई और इनने अपनी योग्यता और बुद्धिमत्ता से अकबर को प्रभावित ही नहीं किया वरन् उसके अत्यन्त स्नेहभाजन बने। इनकी मृत्यु पर अकबर ने जैसा शोक किया था वैसा इससे पहले कभी नहीं किया था। इनका वाक्चातुर्य और प्रत्युत्पन्नमतित्व प्रसिद्ध है। मुन्शी देवीप्रसाद ने इन्हें ब्राह्मण जाति का और ब्रह्मदास नामधारी लिखा है। बदाउनी ने इनका नाम 'ब्रह्मदत्त'' लिखा है। मुआसिरुल उमरा में इनका नाम 'महेशदास' और उपनाम 'ब्रह्म' कवि लिखा है। 'दरबारे अकबरी' में भी यही लिखा है। आइने अकबरी भी इसकी पुष्टि करती है।

प्रयाग के किले के अशोक स्तम्भ पर इनका एक लेख है जिसमें इनके पिता का नाम गंगादास लिखा है। जिसे मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इनके जन्म-स्थान के विषय में भी अनेक प्रसिद्धियां हैं। ढूंढार के लोग इनका जन्म-स्थान अजमेर के पास किसी गाँव में बताते हैं, मारवाड़ के लोग इन्हें मकराने का बताते हैं बदाउंनी और मुन्शी देवीप्रसाद ने इनका सम्बन्ध कालपी से सिद्ध किया है। अबुलफज़ल के कथनानुसार यह कानपुर जिले के अकबर-बीरबल कसवे में रहते थे। भूषण ने इन्हें तिकवांपुर का रहने वाला लिखा है जो 'अकबर-बीरबल' से केवल दो मील की दूरी पर है और ठीक प्रतीत होता है। इनकी कविता में 'कन्नौजी' की जो छाप लगी है उससे इन्हें तिकवांपुर (कानपुर) का मानना ही उचित है। टाड ने लिखा है कि अकबर के यहां आने से पूर्व यह राजा भगवानदास के संरक्षण में थे और वे ही इन्हें अकबर के पास लाए थे। 'दरबारे अकबरी' तथा 'मुन्तखबुत्तावारीख' से ज्ञात होता है कि ये रींवा नरेश के आश्रय में भी रहे थे। इनकी मृत्यु की तिथि सम्वत् १६४२, माघसुदी १२ शुक्रवार अकबरनामे में दी हुई है। इनके दो पुत्र और एक बेटी का उल्लेख है। बड़े पुत्र का नाम 'लाला' और दूसरे का हरमराय है।

बीरबल और वैष्णव धर्म —

'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' में ऐसी कथायें मिलती हैं जिनसे पता चलता है कि बीरबल 'वल्लभ सम्प्रदाय' के अनेक प्रभावशाली भक्त कवियों और महात्माओं के सम्पर्क में आये थे। 'बीरबल की बेटी की वार्त्ता' के आधार पर यह सिद्ध होता है कि अकबर इनके साथ ही गोस्वामी विट्ठलनाथजी से मिला था। 'रूप मंजरी' की वार्त्ता के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है अकबर की भेंट नंददासजी से हुई थी और उस भेंट में भी बीरबलजी उसके साथ थे। 'चांपा भाई की वार्त्ता' में लिखा है कि गुजरात में गोस्वामीजी

१ यह ब्रह्मदास नाम कुछ संदिग्ध है।

को देखकर बीरबल उनको बहुत सा द्रव्य देने को तैयार हो गए थे। छीतस्वामी की वार्त्ता के आधार पर इनके वल्लभ सम्प्रदाय के शिष्य होने की भी पुष्टि होती है। 'छीतस्वामी' इनके पुरोहित थे। इसी वार्त्ता के अनुसार अकबर स्वयं जन्माष्टमी का उत्सव देखने गोकुल गया था जो उसकी जैसी धार्मिक अभिरुचि के व्यक्ति के लिए अनुचित नहीं है। बीरबल जहां परम वैष्णव थे वहाँ अकबर द्वारा प्रतिष्ठित नवीन धर्म 'दीन इलाही' के सदस्य भी थे।

बीरबल की दानप्रियता—

इस सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य में अनेक सूक्तियां प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि केशवदास को इन्होंने ६ करोड़ दाम की हुंडियाँ दे दी थीं। भले ही दान की रकम अधिक हो पर इससे बीरबल की दानवीरता तो सिद्ध हो जाती है। बीरबल सम्बन्धी केशव के दो पद साहित्य में बहुत ही प्रसिद्ध हैं—एक

'जस जांच्यौ सब जगत को भयो अजीरण तोय।
अपजस की गोली दऊं ततकाले सुधि होय॥'[१]

तथा नाक रसातल भूधर सिन्धु नदी नद लोक रचे दिसि चारी।
केसव देव अदेव रचे नर देव रचे रचना न निवारी॥
रचि के नृपनाथ बली बलवीर भयो कृतकृत्य बड़ो व्रतधारी।
दे करतारपनो कर तोहि दई करतार दुहुँ करतारी॥[२]

तथा कवि गंग का यह पद—

एक बचो सुरराज हथीय सुतावल वाडव और न होनो।
और सबै बकसै बलवीर बचे रवि के रथ हय दोनों॥
गंग कहै उर उन्नत देखि सुभंगन मौज गुनी तजि मानो।
लंक सुमेरू लुटाई दई है रह्यो मुख सालिगराम को सोनो॥

बीरबल ने सब हाथी घोड़ों का दान कर दिया। केवल ऐरावत और सूर्य्य के रथ के दोनों घोड़े ही बच रहे थे। सारे सोने को भी दे डाला केवल सालिग्राम के मुख पर लगा सोना बच रहा था। यह सभी उनकी दानवीरता पर प्रकाश डालती हैं। परवर्ती कवि चिंतामणि और होलराय ने भी इनकी दानवीरता के सम्बन्ध में कई छन्द लिखे हैं।

बीरबल की कविता

इनके लतीफों के सम्बन्ध में डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी ने लिखा है कि कविताओं के अतिरिक्त बीरबल की पहेलियां और चुटकले भी आजकल चल रहे हैं। यद्यपि वे हँसमुख, खुशमिजाज और मज़ाक पसन्द थे पर उससे यह सिद्ध नहीं होता कि 'वे ही उन सब चुटकलों के जन्मदाता हैं जो उनके नाम से आजकल चल रहे हैं।' आगे चलकर डाक्टर त्रिपाठीजी ने लिखा है कि बीरबल' को विदूषक या भांड समझना असंगत और अन्यायमूलक होगा।' उनकी कविताओं में भी भंडैती की पुट नहीं पाई जाती तथा अकबर स्वयं बड़ा गम्भीर, मितभाषी और गुरुवृत्ति का पुरुष था। इस प्रकार की हल्की और भद्दी उक्तियों का सम्बन्ध उस व्यक्ति से कभी नहीं हो सकता है।

---

१ राजा बीरबल भाग २ पृष्ठ १८

२ केशव कविप्रिया छंद ४८

भावप्रकाश से न तो बीरबल और न उनकी बेटी किसी के वृत्त में कोई भी सहायता नहीं मिलती है।

बीरबल :—राजा बीरबल का जन्म सं० १५८५ विक्रमी सन् १५२८ में कानपुर जिले के अंतर्गत तिकवांपुर में हुआ था। प्रयाग के अशोक स्तम्भ पर लेख है (सम्वत् १६३२ शाके १४९३ मार्ग वदी ५) सन् १५७५ ई० सोमवार, गंगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज यात्रा सुफल लिखिते। बदाऊंनी ने इनके उपनाम ब्रह्म में दास मिलाकर इनका नाम ब्रह्मदास लिखा है। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यह महेशदास नामक बाद फरोश (प्रशंसा बेचने वाले) ब्राह्मण थे जिसे हिन्दी में भाट कहते हैं। यह जाति धनाढ्यों की प्रशंसा करने वाली थी। यद्यपि कम पूंजी के कारण बुरी अवस्था में दिन व्यतीत कर रहे थे, पर बुद्धि और समझ भरी हुई थी। अपनी बुद्धिमानी और समझदारी से अपने समय के लोगों के बराबर मान्य होगए। जब सौभाग्य से अकबर बादशाह की सेवा में पहुँचे, तब वाक्चातुरी और हंसोड़पन से बादशाही मजलिस के मुसाहिबों और मुख्य लोगों के गोल में जा पहुँचे और धीरे-धीरे उन सब लोगों से आगे बढ़ गए। बहुधा बादशाही पत्रों में इन्हें 'मुसाहिबेदानिशवर राजा बीरबल' लिखा है। यह हिन्दी की अच्छी कविता करते थे। इसे पहिले कविराय की पदवी मिली। १८वें वर्ष (१४५६+१८) १५७४ में बादशाह ने 'नगर कोट' (पंजाब) की जागीर इन्हें देदी और बीरवर की सम्वत् १६३१ में पदवी दी। सन् १५८६ ई० सम्वत् १६४३ में (तीसवें वर्ष) यह स्वाद और बाजौर की पहाड़ी जाति के यूसुफजाइयों को दंड देने को नियुक्त हुआ। (स्वाद, पेशावर के उत्तर और बाजौर के पश्चिम चालीस कोस लम्बा और पन्द्रह कोस चौड़ा है जिसमें चालीस हजार मनुष्य उस जाति के रहते हैं। यहाँ जैनखां कोका और राजा साहब में कुछ कहा सुनी और मनोमालिन्य होगया तथा आपुसी अनैक्य के कारण सेना की हार हुई और राजा साहब मारे गए। मुंतखबुत्तवारीख के अनुसार वीरवर की मृत्यु का समाचार सुनकर बादशाह ने दो दिन तक खाना पीना नहीं खाया और जो फरमान उसने लिखा था उससे इसके वीरवर के घनिष्ठ सम्बन्ध का पता चलता है। राजा वीरवर दान देने में अद्वितीय थे और पुरस्कार देने में संसार प्रसिद्ध थे। गान विद्या भी अच्छी जानते थे। उनके कवित्त और दोहे प्रसिद्ध हैं। उनके लतीफे और कहावतें सब में प्रचलित हैं। उनका उपनाम ब्रह्म था, बड़े पुत्र का नाम लाला था जिसे अपने बुरे स्वभाव के कारण ४६वें वर्ष (१५५६+४६) १६०२ ई० में दरबार छोड़ने की आज्ञा मिल गई। दूसरे पुत्र का नाम हरिराय था। जिसका अकबरनामा जिल्द ३ पृष्ठ ८२० में उल्लेख है कि वह दक्षिण से शाहजादा दानियाल का पत्र लाया था।

मिश्रबंधुओं ने इनका जन्म सं० १५८५ में तिकवाँपुर जिला कानपुर में लिखा है। परन्तु आचार्य शुक्ल ने प्रयाग के किले के अन्दर के अशोक स्तम्भ का हवाला देते हुये एक दूसरा दृष्टिकोण लिया है। डा० रामकुमार वर्मा ने सं० १६४० में इनका जन्म माना है। सिद्ध यह है कि बीरबल कवि थे और साथ ही गुसांईजी के भक्त भी थे। इनके ग्रन्थों के लिये आचार्य शुक्ल ने अप्राप्य कहते हुये भी भरतपुर वाले कवित्त संग्रह का रचयिता इन्हें माना है। मिश्रबंधुओं ने मयाशंकरजी याज्ञिक के पास इनके रचे छंदों का एक संग्रह बतलाया है।

२४—राजा भीम

वर्तमानकाल व अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्ता में लिखा है :—सो उन राजा भीम कों माता के गर्भ तैं उत्पन्न होत मात्र ही पूर्व जन्म कौ ज्ञान भयो हतो। और स्त्री को हूं पूर्व जन्म की सुधि रही हती। सो वे दोऊ स्त्री भरतार पूर्व जन्म की सुधि करिकै अपने मन में पश्चाताप कर्यो करते।.......तब वे दोऊ स्त्री भरतार तीर्थयात्रा करिवे को निकसे।...... सो ऐसे सब तीर्थ यात्रा फिरिकै राजा भीम श्री गोकुल आए।.......तब राजा भीम कों श्री गुसांई के दरसन भए। तब महा अलौकिक स्वरूप कौ तेज देखिकै राजा भीम ने श्री गुसांईजी को साष्टांग दंडवत् किये।....... तब श्री गुसांईजी आपने उन राजा भीम को तथा रानी को पूर्व जन्म की सब बात कही। ....तब सुनिकै राजा को ज्ञान भए।.......तब श्री गुसांईजी ने उन राजा भीम को तथा रानी को कृपा करिकै नाम सुनायो। ....ता पाछे कितेक दिन अपने में देस आय पहोंचे।........और श्रीगोकुल की मानसी नित्य करते। सो इनने श्री गुसांईजी के तथा श्री गोकुल के अनेक पद किए हैं। सो कछूक दिन में श्रीठाकुरजी सानुभावता जतावन लागे।

इन्हें डाक्टर जगदीश गुप्त ने अपनी अप्रकाशित थीसेस में भीम वैष्णव करके लिखा है और इनका वह वृत्तान्त भी संक्षिप्त करके नहीं दिया जो दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में प्राप्त है। डाक्टर जगदीश ने इनका जीवनकाल सं० १५७२ से १६३६ बीच माना है और काव्य ग्रंथों में 'रसिक गीता' का उल्लेख किया है जो गुजराती ग्रन्थ 'बृहद् काव्य दोहन' में प्रकाशित हो चुका है। यह गुसाँईजी के समकालीन हैं। इनके हिन्दी रचना के पद :—

(शरण सम्बन्धी)

भक्ति विमुख पंडित सब कोऊ कैसे ही समझावत
श्री वल्लभ सुत सरण विना जन भजनानंद नहिं पावत
माया मत हत पथ जुग केवल ब्रह्म विवाद चलावत
निगम अगम पुरुषोत्तम लीला अपनी अपन पैं दिखावत
जप तप यज्ञ विविध विधि वैदिक भवनद नाव बतावत
परमकृपालु अघ हरन श्री विट्ठल भीम भक्त जस गावत

(ब्रजसंबंधी पद)

रे मन मधुवन तजि जिनि जाय।
श्री यमुना तट शांत लहरि पुट जहां विथके हरिराय।
श्री मुख कमल विलोकि केसो को सकल घाट जु नहाय।
रचना श्री वृन्दावन की छबि रचि-रचि हृदय बसाय।
श्री गोकुल, श्री विट्ठल को कुलअति परम भक्ति सुखदाय।
लीला रहस्य लाल गिरधर की सुभग 'भीम' सुख पाय।

(गुजराती गोकुल सम्बन्धी)

सांचा संबंधिड़ा श्री गोकुल क्यारे ज इशूं
आपसा वे वेलडिये वलगी श्री जमुनाजी महुँ नहाइ शूं।
गोकुलियानी गलिए-गलिए गुण गोविंद गाइ शूं।
भीम ना ठाकुर ने जइ भेंटिशू सदा सुहागि थाइ शूं।

भावप्रकाश से इनके जीवन के सम्बन्ध में और कोई सहायता नहीं मिलती है।

(३५) माणिकचन्द क्षत्री—

वर्तमानकाल—सम्वत् १५९५ से १६४० तक, जन्म-सम्वत्— १५९५, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवासस्थान—आगरा, शरणकाल—सं० १६१५, अन्त-समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है:—सो एक समै श्री गुसांईजी श्रीनाथजी द्वार तें अडैल को पधारे। तब आगरे में मानिकचन्द के घर के पाछे एक वैष्णव कौ घर हुतो। ......तब श्री गुसांईजी उन दोउ स्त्री पुरुष को कृपा करिकैं नाम निवेदन कराए। सो मानिकचन्द ने ताही समै श्री गुसांईजी के सम्मुख यह बधाई गाई:—

'चहुं जुग वेद बचन प्रतिपार्‌यौ'

......ताके दाम की छहत्तर हजार की हुंडी भई। .... पाछे सुखपाल तो बेगि ही ऊंटन को जांइ पहोंची। .... तब श्री गुसांईजी ने भंडारी सों कह्यो, जो वा द्रव्य में सों दस हजार रुपैया मानिकचन्द को देहु। .... तब वे दस हजार कौ तोड़ा प्रभुन के आगे धरे। ...... और एक समै मानिकचन्द के बेटा कौ विवाह हतो। ...... सो श्री गुसांईजी श्री गोकुलजी ते आगरे पधारे।

वार्त्ता के अनुसार यह आगरे के एक जैन थे और राज दरबार में इनका यथेष्ट सम्मान था और आगरे में भी यह गोकुलपुरा मुहल्ले के रहने वाले थे। गोकुलपुरे में इस समय गुजराती नागर ब्राह्मणों के कई परिवार रहते हैं।

इनका एक छप्पन भोग का पद मिलता है। यह निश्चित नहीं है कि वह श्री गिरिराज में किए गए छप्पन भोग सम्बन्धी पद है अथवा गोकुल के छप्पन भोग से उसका सम्बन्ध है। श्री गिरिराज का छप्पन भोग सम्वत् १६१५ में समर्पित हुआ था और गोकुल का सम्वत् १६४० में। परन्तु इस पद में 'नवनिधि' का उल्लेख होने से इसका सम्बन्ध गोकुल वाले से अधिक प्रतीत होता है क्योंकि 'नवनिधि' १६४० के आसपास ही एकत्र हुए थे। माणिकचन्द के पदों में सात बालकों के नामों के उल्लेख वाली एक निम्नलिखित धमार मिलती है:—

प्रथम सीस चरण धर वंदौ श्री विट्ठलनाथ।
दशधा भक्ति और चार पदारथ जाके हाथ।
भूतल द्विज वपु धार्यो त्रिभुवन पति जगदीश।
उपमा को कोउ नहिं जय-जय गोकुल के ईश।
कलि के जीव उधारे निज जन किए सनाथ।
भवसागर ते डूबत राखे अपने हाथ।
नाम देय सिर करधर सकल जू टारे पाप।
सेवा रीति बताई सेवक ह्वै के आप।
शय्या भूषण बसन सिंगार रचे है बनाय।
नंदनदन अपने मुख भोजन करत है आय।
मायावाद निवारे थापे पूरण ब्रह्म।
मारग पुष्टि प्रकाशे और राखे सब कर्म।
श्री गिरधर गुण सागर महिमा कही न जाय।
श्री गोविंद करुणानिधि, क्रीडत अपने भाय।

श्री बालकृष्ण अति सुन्दर शोभा को नहिं पार।
जग वंदन गोकुलपति निज जन के उरहार।
श्रीपति श्री रघुनाथ जू देत अभय वरदान।
महाराज यदुनाथ जु करत मधुर स्वर गान।
श्री घनश्याम सदा सुखदायक करों प्रणाम।
सब मिलि खेलत हरखत व्रज जन मन अभिराम।
श्री वृन्दावन अति शोभित यमुना पुलिन तरंग।
हंसत परस्पर कुंकुम केसर छिरकत अंग।
श्री गिरधर संग खेलत उर आनन्द न समाय।
बाजत ताल पखावज युवतिन मंगल गाय।
सुर कुसुमन वरखा कर बोलत जय-जयकार।
माणिकचंद प्रभु सब विधि गोकुल करो विहार।[1]

माणिकचंद्र को छप्पन भोग का पद

महा महोत्सव होत श्री विट्ठलनाथ के।
प्रथम यथा मति वरनिहों हो वल्लभ विट्ठल रूप।
भूतल प्रगटे जाय के हो श्री गोकुल के भूप।
पुष्टिमार्ग रस रूप सिंधु कों प्रगट करत जग सोय।
अतुल प्रताप तेज करुणामय वरन सकत कवि कोय।
श्रीशुभ वचन प्रगट करिवे कों करत कथा रस गान।
श्यामसुन्दर वृषभान कुँवरि को वस कीन्हें मनमान।
श्रुति मर्याद प्रगट रस सेवा भूतल कीन्हें आय।
प्रथम विवेक धर्‌यो निज आश्रय महा पदारथ पाय।
भक्ति भाव प्रीतम प्यारे को निज निकुंज सुखधाम।
सो सब लीला प्रगट दिखाई भक्तन मन अभिराम।
श्री भागवत नवनीत नंद गृह प्रगट कृष्ण अवतार।
ताकी सेवा नित्य विविध विधि आप करत श्रुतिसार।
दिन के बस द्वादश मास बीच उत्सव अति आनन्द।
कृष्ण कथा रस पान करावत पूरण परमानन्द।
श्री वृषभान सदन की लीला प्रगट करी निज गेह।
छप्पन भोग विविध विधि कीन्हों भक्ति भाव सुख स्नेह।
नेदादिक कों न्योंति बुलाए बरसाने वृषभान।
उठिके वेग आय आदर करि बहुत कर्‌यो सनमान।
प्रथम फुलेल लगाय अरगजा अंग हो उबटि नहवाये।
विविध वसत मनि जटित अमोलिक आभूषण पहिराये।
मृगमद केसर भुवन लिपाए कुंकुम जल सों सींच।
गज मोतिन सों चौक पुराए धरत साथिये बीच।

---

१ त्रिभुवनदास पीतांबरदास शाह, नड़ियाद के द्वितीय आवृत्ति संग्रह से (कीर्तन रत्नाकर) विद्या विजय प्रेस अहमदाबाद से प्रकाशित सन् १९२०

कंचन कलस धरे जमुना जल पीत बसन बहु भाँति ।
कनक पटा बैठात सबन कौ करि भोजन की पाँति ।
मधु मेवा पकवान मिठाई षटरस धरे बनाय ।
कंचन मणि जटित कटोरा धर्‍यो जु थार सजाय ।
कटु अम्ल, तिक्त, मधुर रस लवण कसाय अनेक ।
भक्ष, भोज्य, और चुस्य, लेय विधि धरे जु आन कितेक ।
दधि ओदन घृत दूध संधाने कीन्हें नाना भाँति ।
वड़ी बरा वेसन बहु विधि के मनो उदय करत रविकान्त ।
कंद मूल फल पत्र साग ये अगनित ही सब कीन्हें ।
करि घृत पय पक्ष न्यारे-न्यारे लाल अतिकर दीन्हें ।
खोवा बासौंधी और मिश्री दै माखन में सानी ।
अग्नि पक्व बहु किये सलोने लेत परम रुचि मानी ।
गुंजा मठरी खुरमा खाजा लडुआ बहु विधि कीने ।
कचरी आदि भुजेना तल के पापर अति सरसीने ।
हस परस्पर खात खबावत प्रेम प्रीति रस भीने ।
बहु विधि व्यंजन कहा बखानों वरनि न सकत कवि हीने ।
सबकों साथ बैठाय आप ठां नवनिधि दरस दिखाए ।
बहौ निज सुख दै निज दासन कौं महा पदारथ पाए ।
जमना जल अचवन करवायो पुनि बीड़ी दीन्हीं ।
करत आरती होत मन आनन्द फिर न्योछावर कीन्हीं ।
करत बिदा नंदादिक कौं अति सुख चरण नमावत सीस ।
माणिकचन्द[1] प्रभु सदा बिराजौ जीवौ कोटि बरीस ।

इसके अतिरिक्त इनके लगभग पच्चीस अन्य पद पारीखजी के हस्तलिखित संग्रह में संग्रहीत हैं और बहुत से प्रकाशित हो चुके हैं ।

---

१ इनके पदों से ज्ञात होता है कि यह सम्वत् १६१५ से पूर्व शरण में आ चुके थे और गोकुलनाथजी के समय तक विद्यमान रहे हैं। इनकी एक आख्यायिका यह है कि श्री गुसांईजी के तिरोधान के पीछे श्री गोकुलनाथजी ने इन्हें अपने पास रखा था और इनके भोजन के लिए मंदिर से पत्तल का प्रवन्ध किया गया था किन्तु यह ध्यान में ऐसे मग्न हो जाया करते थे कि समय से भीतरिया लोगों से पत्तल लेने न पहुँच पाते थे। इनके नियम से न आने के कारण एक दिन भीतरिया ने जो सांचौरा ब्राह्मण था इनकी पत्तल में नीचे गोवर और ऊपर भात रख दिया। अपने नियम के अनुसार यह प्रसाद में से कुछ छोड़ते न थे इसलिए उस गोवर को भी खागए। जब श्री गोकुलनाथजी को इसकी खबर मिली तो उस दिन से उन्होंने सांचौरा ब्राह्मणों का अपने यहाँ से बहिष्कार कर दिया और जहाँ अन्य घरों में सांचौरा ही भीतरिया का काम करते हैं श्री गोकुलनाथ के घर में आज भी सांचौरा भीतरिया नहीं हो सकते हैं। (सम्प्रदाय की भाषा में नहा नहीं सकते हैं) उनके स्थान पर तब से आज तक गिरिनारा ब्राह्मण ही सेवा में नहाते हैं और भीतरिया का कार्य करते हैं।

इनका समय विट्ठलेश के शरण आने के हिसाब से इस प्रकार ठहरता है। जब यह शरण आये थे तब इनका ब्याह हो चुका था और वे राजद्वार में कर्मचारी भी थे इस प्रकार कम से कम बीस साल की आयु तो इनकी रही ही होगी। जब शरणकाल सम्वत् १६१५ के आसपास है तो जन्म इससे बीस वर्ष पूर्व सम्वत् १५९५ के आसपास रहा होगा। इनके निधन की तिथि प्राप्त नहीं है। भावप्रकाश के अनुसार यह गोकुलपुरा आगरा के रहने वाले क्षत्री थे। इनके बाप राजद्वार में नौकर थे और धनवान थे और पीछे से यह भी सरकारी नौकर हो गये थे। मिश्रबन्धुओं ने मानिकचन्द नामक व्यक्ति का जन्मकाल १६०८ लिखा है। कविताकाल सं० १६४६ एवं कवि भी इन्हें माना है। भावप्रकाश में इनका जन्म १५९५ के लगभग कहा गया है।

२६—मेहा धीमर

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता।

वर्तमानकाल—सम्वत् १६०० से १६४२ के पश्चात् तक, जन्म सम्वत्–१६०० के आसपास, पिता का नाम—अज्ञात, जाति–धीमर, निवास-स्थान–गोपालपुर, शरणकाल–संवत् १६२३ (गुजरात की दूसरी यात्रा) अंत समय–१६४२ के पश्चात्।

इनकी वार्त्ता में इस प्रकार लिखा है—सो वा दिन श्रीगोकुल पधारिवे को मुहूर्त आछो नाहीं हतो। तासों श्री गुसांईजी आज्ञा किये, जो आज मुहूर्त आछो नाहीं हैं। तासौं रावल के पास 'गोपालपुर' गाम है, तहाँ डेरा करो। प्रातःकाल श्रीगोकुल चलेंगे। तब सगरे वैष्णव सेवक टहलुवा भारकस ले कै गोपालपुर डेरा किये। पाछे आप बागा उतारि कै श्री जमुनाजी के किनारे सन्ध्याबदन करन पधारे।........तब श्री गुसांईजी देखें तो एक मलाह जाल लिये मछली पकरत है।........तब वैष्णव ने एक रुपैया मेहा धीमर को दियो। और कह्यो, जो वेगि तू जाल निकारि। तब धीमर ने तत्काल जाल निकार लियो। तब वैष्णव ने मेहा सों कह्यो, जो तू डेरा तें नेक दूरि बैठ्यौ रहियो। तब तोकों खाइवे कों देइंगे।.......सो मेहा पहिले ही ते महाप्रसाद के लिए दूर बैठ्यो हतो।........तब श्री गुसांईजी पातरि भरि करि कै अपनी जूंठन अपने श्रीहस्त में लैकै डेरा के बाहिर पधारे। सो मेहा कों दिये।.......तब मेहा आधी पातरि अपनी स्त्री को दियो। और आधी आप लियो।.......सो महाप्रसाद लेते ही दोऊन की बुद्धि निर्मल है गई।.......तब स्त्री ने कही, जो चलो इनकी सरन जैये।........पाछे प्रातःकाल श्री गुसांईजी श्री यमुनाजी को पधारे। तब मेहा स्त्री सहित देह कृत्य करि कै बिनती करी, जो महाराज! मेरो अंगीकार करो।.......तब मेहा ने कही जो महाराज! आज पाछे जीव कबहूँ न मारूँगो।......यह सुनि कै श्री गुसांईजी प्रसन्न भए। तब आज्ञा करी, जो तुम दोऊ जने न्हाय आओ। तब श्री गुसांईजी दोऊन को नाम सुनाये।.......तब मेहा स्त्री सहित श्री गुसांईजी कों दंडवत् किये। पाछें एक कीर्तन गायो–

श्रीविट्ठल प्रभु महा उदार। (प्रथम पंक्ति)

........सो साक्षात दरसन श्री ठाकुरजी के मेहा और मेहा की स्त्री को भए। ता समै मेहा ने ये कीर्तन सारंग में गाये।

१—हमारो देव गोवर्द्धन पर्वत, गोधन जहाँ सुखारो। (प्रथम पंक्ति)

२—सुनिये तात हमारौ मत, गोवर्द्धन पूजा कीजे। (प्रथम पंक्ति)

""""तब मेहा ने सारंग में नयो कीर्तन कियो।

श्री विट्ठल की सरनि न आयो जनम आपुनो खोयो हो।

यह कीर्तन मेहा करि देह छोरि लीला में प्राप्त भयो।

वार्त्ता के अनुसार इसने श्री गुसांईजी के प्रभाव से जीव हत्या का व्यवसाय बन्द कर दिया था।

भाव प्रकाश में इसे गोपालपुर का धीमर लिखा है और बीस वर्ष की आयु पर इसके विवाह होने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है।

विशेष वृत—गुसांईजी के गोकुलवास के अनन्तर तीन गुजरात यात्राएँ हुई हैं। एक १६२३, दूसरी १६३१ और १६३८ में। इसमें इसका शरण काल १६२३ इसलिए ठहरता है कि इसके शरण आने के बहुत दिन बाद पुत्र हुआ था और पुत्र के दस वरस के होने के कुछ दिन बाद तक यह जीवित था। इसलिए १६३१ या १६३८ शरणकाल मानने से यह सम्भव नहीं हो सकता है। इसके कीर्तन, धमार और वर्षोत्सव के ग्रन्थों में बहुत से पद मिलते हैं। इसका एक अप्रकाशित पद जो कांकरौली विद्या विभाग सरस्वती भंडार के बंध संख्या ८७/५ पृष्ठ १ में हैं।

मैं कहा चबाइ करौं जानत सब ब्रज
तू ही नंद को बहुत सयानो खोलत पट छूअत उरज
मो सरिखी मिली न कोउ देवेंगी सूधी समज
'मेहा' तू मति जाने काहू ने काढ़ि तेरी गरजि

३७—मदनगोपालदास कायस्थ

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—कायस्थ, निवास स्थान—महावन, शरणकाल सम्वत् १६२८, अंत समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो एक समय मदनगोपाल कायस्थ ने श्री गुसांईजी के पास नाम पायो हतो।""""तब श्री गुसांईजी आपु कृपा करि कै मदनगोपालदास कायस्थ के माथे सेवा पधराय दिए। सो मदनगोपालदास श्री ठाकुरजी की सेवा भली भाँति करन लागे।""""पाछे एक दिन मदनगोपालदास की स्त्री ने अपने पति सों कही, जो आज लरिका को ज्वर आयो है। तब मदनगोपालदास ने कही, भगवदिच्छा पाछे वा स्त्री ने अपने पति सों गोप्य ज्वर को डोरा बंधायो।""""तब मदनगोपालदास आय कै देखे तो श्री ठाकुरजी पीठ दे बैठे हैं। और भोग कौ थार लात मारि कै डारि दियो है। तब मदनगोपालदास अपने मन में बोहोत खेद करन लागे!""""तब श्री गुसांईजी ने कही जो—सुनि तेरी स्त्री ने ज्वर कौ डोरा बंधायो है।""""जो स्त्री तेरे कहे में नाहीं है तो स्त्री कौ त्याग करि।""""पाछे और विवाह मदनगोपालदास ने कियो। ता पाछे फेरि श्री ठाकुरजी की सेवा मदनगोपालदास श्री गुसांईजी की आज्ञा प्रमान करन लागे। पाछे स्त्री सो कछू बोलै नाहीं। और स्पर्स हू न किए। तोऊ श्री ठाकुरजी तो बरस एक लों बोले नाहीं। पाछे मदनगोपालदास ने बोहोत मनुहार करी। तब बोलन लागे।

विशेषताएँ— यह कवि नहीं, लिखिया थे और गोविन्द स्वामी के पदों के संग्रह का श्रेय इनको ही है। यह उनके पीछे फिर कर पदों को लिखा करते थे।

भाव प्रकाश में महावन निवासी और कायस्थ लिखे हैं और कोई विशेष वृत नहीं दिया है।

३८—माधवदास दलाल

बर्तमानकाल—सम्वत् १६०० से, जन्म सम्वत्—१६००, पिता का नाम—अज्ञात जाति–वैश्य, निवास स्थान—खंभाइत, शरणकाल–सम्वत् १६२८ से पूर्व, अन्त समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो माधवदास पर चाचा हरिवंशजी की कृपा भई है। सो इनकी बानी अचल भई। सो श्री गुसांईजी माधवदास की बानी सुने पाछे श्री गोकुल-बास किये।......सो एक दिन माधवदास दलाल सों जीवा पारख ने पूछी, जो अन्याश्रय काहेते कहे......पाछे माधवदास श्रीगोकुल आये। सो श्री गोकुल कौ वैभव देखि माधवदास कौ मन श्रीगोकुल में लगि गयो। तब इनने बिचार कियो, जो अब तो श्रीगोकुल छोरि कै कहूँ न जानो।......पाछें माधवदास ने श्री गुसांईजी के सन्निधान श्री गोकुल के नये पद करि कै पद गाये। सो पद—

१—श्रीगोकुल अति सुख बास बसीजे। (प्रथम पंक्ति)
२—सुखनिधि श्रीगोकुल कौ वसिवो। (प्रथम पंक्ति)
३—गोकुल नाम कौ पेंडोई न्यारो। (प्रथम पंक्ति)

सो माधवदास ऐसे बोहोत पद गाए। तब श्री गुसांईजी कहे, जो तोकों श्रीगोकुल कौ स्वरूप स्फुर्ण भयो।......तब श्री गुसांईजी माधवदास कों कहे, जो माधवदास? श्री गोवर्द्धननाथजी को कछु कीर्तन सुनावो। तब माधवदास ने श्री गोवर्द्धननाथजी को पद सुनाए। सो श्री गोवर्द्धननाथजी पद सुनि कै बोहोत प्रसन्न भये। सो माधवदास ने श्री ठाकुरजी के, श्री आचार्यजी के, श्री गुसाईजी के, सात बालकन के और श्रीगोकुल के बोहोत पद किये हैं।

भाव प्रकाश के अनुसार माधवदास जीवा पारीख और सहजयान दोसी के मित्र थे और चाचा हरिवंश के साथ शरण में आए थे। यह खंभाइत के रहने वाले थे और जाति के बनिए थे तथा दलाली करते थे।

वार्त्ता के ऊपर के उद्धरण से यह कवि रूप में प्रसिद्ध हैं और इन्होंने श्रीगोकुल और श्री गोवर्द्धननाथ, श्री गुसांईजी और सातों बालकों के बहुत से कीर्तन के पद गाए हैं। इनके गोकुल के तीन पद वार्त्ता में हैं अन्य पद सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। भक्तमाल में माधवदास का उल्लेख इस प्रकार है—

माधौ दृढ़ महि ऊपरै, प्रचुर करी लोटा भगति।
प्रसिद्ध प्रेम की बात, 'गढ़ागढ़' परचौ दीयौ॥
ऊचेते भयौ पात श्याम सांचौ पन कीयौ।
सुत नाती पुनि सदृश चलत ऊही परिपाटी॥
भक्तनि सो अति प्रेम नेम नहिं किहुँ अंग घाटी॥
नृत्य करत नहिं तन संभार, समसर जनकन की सकति।
माधौ दृढ़ महि ऊपरै, प्रचुर करी लोटा भगति॥

३९—मथुरादास

वर्तमानकाल—सम्वत् १६३० तक निश्चित, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—अज्ञात, निवास स्थान—गुजरात, शरणकाल—सम्वत् १६२८ से पूर्व, अन्त समय—अज्ञात।

यह मथुरादास जेठा कुठारी (वार्त्ता संख्या १०) के ही हैं। इनकी वार्त्ता के भाव प्रकाश में लिखा है कि यह पद कर्त्ता और कवि थे।

भाव प्रकाश के अनुसार इन्होंने बहुत से पद बनाए हैं और यह श्री गुसांईजी के स्वरूप में सदा मग्न रहते थे। इनके कुछ पद काँकरौली सरस्वती भण्डार बंध संख्या ४१/७ पृष्ठ २७ में लिखे हैं। उदाहरण—

श्री विट्ठलेश चरण चित लाऊँ
त्रिविधि ताप दुख पूरि करन भक्ति बढ़ावन प्रेम दृढ़ावन परम परम सुख पाऊँ।
यह लोक परलोक यह फल ऐसो प्रभु छाँड़ि और कहँ जाऊँ।
जन 'मथुरा' तुम पै यह जाचत दास को दास कहाऊँ॥

और— जगत गुरू जगनाथ जगत सीस जग्गेस।
पुरुषोत्तम परम पुरुष परमेसुर प्राणेस॥
गोकुल पति गोपी पति गोसुतपति गोवर्धनेस।
विसम्भर विस्वीस विस्वनाथ विसेस्वर जन मथुरा प्रभु विट्ठलेस॥

समय—इनकी उपस्थिति सम्वत् १६३१ तक अवश्य थी यह निम्नलिखित पद से ज्ञात होता है।

वाक्वानी वाक् थकित तुव है गुन अनंत न पायो।
सेस औ महेस दिनेस गनेश काहू न बुद्धि सरायो॥
देवलोक भूलोक नागलोक रसातल जहाँ तहाँ सुजस जलपि उनायो।
जै जै वल्लभ वंस मथुरा प्रभु अवतंस मुरलीधर महाविभू गिरधर सिरायो॥

इस पद में श्री गिरधारललजी के प्रथम पुत्र श्री मुरलीधरजी का उल्लेख है और इनका प्रागट्य सम्वत् १६३० है इस कारण १६३० तक या इससे बाद तक वे अवश्य वर्तमान थे। इनकी निधन तिथि का पता नहीं लग सका है। इनका शरणकाल भी १६२८ से बहुत पहले होना चाहिए।

(४०) यादवेन्द्रदास—

वर्तमान काल—अज्ञात, जन्म संवत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास स्थान—आगरा, शरण काल—संवत् १६२८ से पूर्व, अन्त समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो ये यादवेन्द्रदास आगरे में रहते। सो इनको संतदास जी को संग भयो। तब वे अडैल में श्री गुसांई जी के पास जाइकै विनती कीनी, जो महाराज……मोकों नाम सुनाइए। उन यादवेन्द्र दास तें गुसाई जी आप श्री सुबोधिनी जी की और कारिका की बात कहू गोप्य न राखते।…… सो जैसी लीला को अनुभव होय ते सोई पद गावते।

भाव प्रकाश में इनके सम्बन्ध में कोई ऐसा वृत्त नहीं है जिससे कुछ अधिक ज्ञात हो।

वार्त्ता के अनुसार यह क्षत्री थे और आगरे के रहने वाले तथा संतदास के प्रभाव से शरण आए थे। इनका शरण स्थान अडैल है। वार्त्ता में इनके दो पद दिए हैं जिनकी प्रथम पंक्तियां 'श्री गोकुल घर-घर अति आनन्द' और जन्माष्टमी की बधाई में "जशोदा जायौ है सुत नीकौ" वाला पद है। इसका अन्तिम चरण—'यादवेन्द्र ब्रजकुल प्रतिपालक कंस भय मीको है।'

(४१) राघौदास—

वर्तमानकाल—अज्ञात, जन्म सम्वत—अज्ञात, पिता का नाम—चतुर्भुजदास, जाति—गोरवा-क्षत्री, निवास स्थान—जमुनावतो शरणकाल—संवत १६२८, अन्त समय—१६४२ के पश्चात्।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो एक समै फागुन महीना के दिन हते। तिन दिनन में राघौदास गाँठयोचली की ओर आये। सो तहाँ कदमखंडी में श्री गोवर्द्धननाथ जी के दरसन भए। ……… सो राघौदास ने साष्टांग दण्डवत करि कै एक धमार गाई। सो धमार—

अरी चलि जाँय जहाँ हरि खेलत गोपिन संगा। (प्रथम पंक्ति, प्रथम पद)

सो यह धमार राघौदास ने गाई। ता पाछे उहांई राघौदास ने देह छोड़ी। तब तहाँ जो गांठोली के वैष्णव हते तिन सुनी, सो सबन मिलि के राघौदास कौ अग्नि संस्कार कीनो ………… सो राघौदास ने पद में अपनी छाप नहीं धरी हती। तातें राघौदास की बेटी ने डेढ तुक बनाई कै धमार को पूरी करी।

सरस्वती भण्डार कांकरोली सम्वत् १६६६ की लिखी हुई बंध संख्या $\frac{९४}{१}$ में इनका दान लीला का एक पद मिलता है जो लगभग पचास पंक्ति का है और दूसरा कवित्त इस प्रकार है—

दान गुमान सो मांगत रावरे नेकु न कानि करौ तुम मेरी।
रहो जो रहो अपने पति सों ढोटा किती सही मैं, लंगरायो मैं तेरी।
'राघौदास' विचित्र विचरि कहे पिय और को छाँड़ि के मोहि को घेरी।
मारौं खेंचि तमाचे कि गाल में तेरी कि धौं तेरे बाप की चेरी।

दान लीला के पद की प्रारम्भ की प्रथम दो पंक्तियाँ—

खोरि सांकरी छवि ब्रज वाला मनहु जराय किय हरी माला।
निकसे आय तहाँ गोपाला नागर नटवर नन्द के लाला॥

मिश्र बंधु विनोद के अनुसार कविता काल सम्वत् १६६० के लगभग है। कविता उत्तम है।

(४२) रूपमुरारीदास—

वर्तमान काल—सं० १६०० से १६४२ के पश्चात् तक। जन्म—संवत् १६०० पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास स्थान—अम्बाला, शरणकाल—संवत १६२० के समीप, अन्त समय—सं० १६४२ के पश्चात्।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो वे रूपमुरारीदास देशाधिपति के चाकर रहे। सो देशाधिपति के संग रूपमुरारी सिकार को जाते। सो एक समै देसाधिपति के डेरा 'गोवर्द्धन' में 'मानसी गंगा' पर भये। तब रूपमुरारीदास शिकार को पूँछरी की ओर आए। तहाँ बाज कौ सिकार किये। पाछे बाज लिए घोड़ा पर असवार होई रूपमुरारीदास पूँछरी तें चले, सो गोबिन्द कुण्ड पर आए। ता समै श्री गुसांई जी गोविन्द कुण्ड ऊपर संध्या वंदन करत हे। सो रूपमुरारीदास को श्री गुसांई जी के दरसन भए। .... पाछे रूपमुरारीदास ने श्री गुसांई जी सो विनती करी, जो—महाराज। मेरी तो यह अवस्था है। और अब तो मैं आपकी सरनि आयो हूँ। तातें आप मेरौ अंगीकार करिये। .... और रूपमुरारीदास पर श्री गुसांई जी श्री गिरधर जी बोहोत कृपा करते। उन रूपमुरारीदास सों श्री गिरधर जी एकांत वार्त्ता करते। इनके दोहे भावसिंधु में प्राप्त हैं। उदाहरण—

दोहा— एक जीव के कारने मारै जीव अपार।
बधिक अधिक हूँ ते अधिक सुनिए कृपा उदार॥
यह सुनि के करुना करी दीन्हें बंद छुड़ाय।
अति पुनीति ततक्षण कियो लियो आप अपनाय॥

कवित्त— महा पतित पावन श्री विट्ठल जगत गुरू—
ऐसो सुनिके नाम आयो हों सरन कौ
केते तीर तरे जात गंग ज्यों अनन्त जीव—.
देख्यो परिचौ प्रसिद्ध पाय पंच बरन कौ॥

कुरूप मुरारीदास ताहि किए सुख रूप अभयदान दिए मेट्यो दुःख मरन को।
देखे ही देखे वसन सब रुधिर भरे तेहि क्षण उज्जल कीन्हे ऐसे पाप हरन कौ।

भाव प्रकाश के अनुसार अम्वाला के रहने वाले थे और जाति के क्षत्री थे। इनके पिता देशाधिपति के यहाँ नौकर थे। जहाँ पीछे इन्हें भी नौकरी मिल गई थी।

शिकार के हाकिम के पद की व्यवस्था अकबर के समय में सुचारु रूप से थी अत: यह उस समय वर्तमान थे और शरण आने के समय इनकी आयु यदि बीस वर्ष की भी माने इनका जन्म सम्वत् १६०० के आसपास ठहरता है। इनकी निधन तिथि के सम्बन्ध में समकालीन इतिहास में कुछ भी ज्ञात नहीं हैं। गोवर्द्धन में डीग दरवाजे पर एक रूपमुरारी की बगीची है। निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि यह रूपमुरारी कौन थे।

विशेष—यह श्री गिरधर जी के विशेष कृपापात्र थे और राज कर्मचारी थे।

(४३) रसखान सैयद पठान—

वर्तमान काल—संवत् १६१५ से १६८५, जन्म संवत्—१६१५, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—मुसलमान, निवास स्थान—दिल्ली, शरणकाल—सं० १६४० के समीप अन्त समय—सं० १६८५।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो वह रसखान दिल्ली में रहत हतो। सो वह एक साहूकार के वेटा के ऊपर बहोत आसक्त भयो। सो वाको अहर्निस देखे। और वह छोरा कछू खातो तो वाकी जूठिन लेई। और पानी पीव तौ तोहू बाकौ झूठौ पीवे। ....

तब वह वैष्णव डरप्यौ। और वासों कह्यौ, जो तेरौ मन वा छोरा में आसक्त है तैसौ मन प्रभुन में लगावे तो तेरो काम होइ जाइ। ········ तामें मुकुट काछिनी कौ सिंगार हतो। सो काढ़ि कै रसखान को दिखायो। तब चित्र देखत ही रसखान कौ मन फिरि गयो। और आँखिन में जल कौ प्रवाह चल्यौ। सो वा छोरा में स्नेह हतो सो तो मिटि गयो।

·········सो जहाँ जा लीला के दरसन करते तहाँ ता लीला के कवित्त दोहा चौपाई सवैया करते।

भाव प्रकाश में यह सैयद पठान लिखे हैं और कुछ नहीं लिखा है इनके ग्रन्थ प्रेम-वाटिका का अन्तिम दोहा इस प्रकार है।

विधु सागर रस इंदु सुभ बरस सरस रसखानि।
प्रेम वाटिका रचि रुचिर चिर हिय हरष बखान॥

श्री भारतेन्दु जी ने उत्तरार्ध भक्त माल में रसखान के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है :—

अलीखान पठान सुता सह ब्रज रखवारे।
सेखी नबी रसखान मीर अहमद हरि प्यारे।
निरमल दास कबीर ताज खाँ वेगम वारी।
तानसेन कृष्णदास बिजापुर नृपति दुलारी।

श्री राधाचरण गोस्वामी जी ने अपने 'नवभक्त माल' में रसखान के लिए इस प्रकार लिखा है :—

दिल्ली नगर निवास बादला बंश विभाकर।
चित्र देख हरो भरो पन प्रेम सुधाकर।
श्री गोवर्द्धन आय जबै दर्शन नहिं पाए।
टेढ़े मेढ़े बचन रचन निर्भय के गाए।
तब आप आय सुमनाय कर सुश्रूषा महमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै श्रीनाथ साथ रसखान की।

प्रेम वाटिका के अनुसार उसकी रचना सम्वत् १६७१ विक्रमी की ठहरती है। इनके सम्बन्ध में लोगों में मतभेद है परन्तु इनके निम्नलिखित पदों के आधार पर इनका पुष्टि-मार्ग की शरण आना वार्त्ता के कथन की पुष्टि करता है :—

(१) प्रेम निकेतन श्री बन ही आय गोबरधन धाम।
लह्यौ सरन चित चाहि के जुगुल स्वरूप ललाम।

(२) तोरि मानिनी तें दियो फेरि मोहिनी मान।
प्रेमदेवकी छबिहिं लखि भए मियाँ रसखान।

इन पदों को कई व्यक्ति कई प्रकार से अर्थ करते हैं। पर 'मानिनी' इसमें कवि की आत्मा है और मुगुल स्वरूप श्रीनाथ जी और श्री गुसांई जी हैं। इस प्रकार वार्त्ता के कथन की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य पदों में बाल भाव और किशोर भाव दर्शाया गया है वह भी इसकी पुष्टि करता है। उदाहरण :—

मानुष हों तो वही रसखान बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु होंउ तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन ।
पाहन हों तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हों तो बसेरे करें मिलि कालिंदी कूल कदब की डारन ।

तथा 'गोकुल' और 'गोबरधन' शब्द भी इसी की पुष्टि करते हैं ।

मिश्र बन्धुओं ने रसखान का जन्म १६१५ तथा मरण १६८५ माना है। इनकी विदित 'आसक्ति' इनके समर्पण एवं शुद्धि का मूल कारण थी आचार्य शुक्ल एक मानवती स्त्री को इनकी शुद्धि का कारण मानते है। 'तोरि मानिनी""""रसखान' वाला दोहा प्रमाण में देकर लोग इस बात की पुष्टि करते हैं। वार्त्ता के आधार पर यह स्पष्ट है कि कृष्ण दर्शन, लगन और प्रेम के विषय लेकर ही इनकी कविता रसपूर्ण है। रचना काल १६४० के बाद माना जाता है। प्रेम वाटिका में रचना काल शुक्ल जी ने १६७१ के लगभग माना है।

४४—रामराय हित भगवानदास

वर्तमान काल—अकबर का उत्तरार्द्ध और जहाँगीर के शासनकाल का पूवार्द्ध, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—कायस्थ, निवास-स्थान—आगरा, शरण-काल—संवत् १६२८, अन्त समय—अज्ञात ।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो भगवानदास आगरा में सूबा की दीवानगिरि करते। सो पहले ये गोविन्ददास के सेवक हुते। """ सो एक समै रामरायजी बृन्दावन में भगवानदास के ऊहाँ आये। तब रामरायजी ने श्रीगुसांईजी कौ पद करि कै गायो, सो पद—

जयति वल्लभ सुवन श्रुति उद्धार, फेरि नंद के भवन की केलि ठानी।

(प्रथम पंक्ति)

""""तब रामरायजी भगवानदास को संग ले गोपालपुर में आये। सो श्री गुसांई के दरसन किये। सो जैसे रामरायजी ने पद गायो हतो, तैसे ही दरसन भगवानदास को श्रीगुसांई के भये। पाछे श्रीगुसांईजी सो रामराय ने विनती करी, जो–महाराज! भगवानदास को सरन लीजिये। सो वा दिन जन्माष्टमी हती। """ सो जन्माष्टमी की महिमा में मगन होइ गए। तब भगवानदास ने एक पद नयो करि कै गायो। सो पद—

श्रवन सुनि सजनी बाजे मंदिलरा आज निस लागत परम सुहाई।

(प्रथम पंक्ति, प्रथम पद)

""""सो ता दिन ते भगवानदास जो पद गावते, तामें 'कहि भगवानहित रामराय' या प्रकार छाप धरते।

वार्त्ता के ऊपर के उद्धरण के अनुसार श्री भगवानदास श्री रामराय की कृपा से श्री गुसांईजी की शरण आए थे और यह पहले आगरे के सूबे के दीवान थे और इन्होंने जो कविता की है उसमें अपना नाम 'भगवान हित रामराय' लिखा है :— काँकरौली सरस्वती भंडार में बंध संख्या ३८/७ में इनका बहुत बड़ा पद है जिसमें ८५ तुक है। पहला पद :—

मुरली मधुर बजाई श्री नंदकिशोर ने।
एरी ननदी मेरो चित वित लियो हे चुराय चतुर चित चोर ने।
अंत में—विसराये विसरै नहीं री हेली मो मन मनु रह्यो लुभोया।
हेली रामराय प्रभु सौ मिलि 'भगवान' सखी सोया।

लाडली—

माई री स्याम रटत स्यामा स्याम भई री।
आय सखी सों बूझत ऐसे स्यामा कहाँ गई री।
बृज की बीथिनि ढूंढ़त डोलत बोलत राधे राधे।
कहति कहति बहुत पचिहारी सखी सकल मौन साधे।
जाकों लगत प्रेम की चोट री ताहि कहौ सुधि कैसी।
कहि 'भगवान हित' रामराय प्रभु प्रीत लगै तो ऐसी।

विशेष—हित भगवान और रामराय दो व्यक्ति हैं जो अलग-अलग कवि हैं। जहाँ पहले रामराय हैं वह पद उनका है और जहाँ पहले भगवान है वह पद भगवानदास का है। इन दोनों के पद वार्त्ता के कथन की पुष्टि करते हैं कि यह मिलकर अपने पदों में दोनों के नाम की छाप रखते थे। भगवानदास से मेल होने से पहले के जो रचना रामरायजी ने लिखी है उसमें केवल अपना नाम दिया है। भगवानदास रामराय से परिचित होने से पहले हितहरिवंश के सम्प्रदाय में थे।

४५—रामदास जी

वर्तमान-काल—अज्ञात, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण, निवास स्थान—खंभाइच, शरणकाल—संवत् १६२८, अन्त समय—अज्ञात।

एक रामदास खंभाइच के दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के ९५ वें वैष्णव हैं। जो गुसांईजी की जूठन का महाप्रसाद लेते थे। कोठड़ी में भगवद् वार्त्ता कीर्तन करते। ये गोविन्दस्वामी की कदम्ब खंडी में गोविन्द स्वामी के भी कीर्तन सुनते। इन्हीं के कवि होने की सम्भावना है।

इसे कहीं भी कवि नहीं कहा गया। सम्भव है कि पद रचना यह करते हों क्योंकि यह कीर्तन करते थे। इनका कवि होना संदिग्ध है। परन्तु जो पद मिले हैं वे बड़े सुन्दर हैं। जैसे—

हरि को जिवावत श्री विट्ठलनाथ।
मध्य बैठि बल मोहन राजत सखा मंडली के सब साथ।
षटविंजन आदि सलोने लै मुख कोर देत निज हाथ।
रामदास यह लीला निरखत स्वजन किए सनाथ।

भाव प्रकाश के अनुसार यह खंभाइच के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे और किसी वैष्णव मंडली के साथ गोपालपुर आए थे। वहाँ गोवर्द्धन गए और सेवक हुए।

४६—रामदास बड़े

वर्तमान-काल—संवत् १६४२ तक, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—ब्राह्मण, निवास स्थान—गुजरात, शरणकाल—सं० १६२८ अन्त समय—अज्ञात।

इनका नाम कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता (८४) में आया है, उसमें लिखा है कि यह सांचौरा (गुजराती) ब्राह्मण थे और श्रीनाथजी के भीतरिया थे। वार्त्ता की भाव प्रकाश टीका में इनका एक पद इस प्रकार दिया हुआ है जो सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भी प्रसिद्ध है—

चलि सखि चलि अहो ब्रज पै पैंठ लगी है जहाँ विकात हरि रस प्रेम।
सुठि सौंधो प्रानन के पलटे उलट धरौ जिय नेम ।।
और भाँति पायवो अति दुर्लभ कोटिक खर्चो हेम।
रामदास प्रभु रत्न अमोलक सखि पैयत है एम ।।
(एम, गुजराती शब्द है जिसका अर्थ है इस प्रकार)

इसके अतिरिक्त रामदास के नाम से अन्य पद भी मिलते हैं जिनके सम्बन्ध में यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे इन्हीं के हैं अथवा किसी अन्य रामदास के।

४७—राधौदास की बेटी

वर्तमानकाल—सम्वत् १५६५ में, जन्म सम्वत्—१५६५, पिता का नाम—राधौदास, जाति-क्षत्री, निवास स्थान—जमुनावतो, शरणकाल—सम्वत् १६२८, अन्त समय—अज्ञात।

राधौदास की वार्त्ता—प्रसंग १ (में राधौदास का निम्न प्रकार से प्रसंग आया है।)

सो राधौदास ने पद में अपनी छाप नाहीं धरी हती। ताते राधौदास की बेटी ने डेढ़ तुक बनाइ कै धमार कों पूरी करी।

पहरि बसन आए घरे संग सकल आभीर।
द्वितोया मोहन तन राजत सुन्दर पीत सुवास।
बैठे कनक सिंहासन बलि बलि 'राधौदास' ।।

विशेष—इसके अतिरिक्त इनका और कोई पद अभी नहीं मिला है। भाव प्रकाश से इनके जीवन पर और कोई नया प्रकाश नहीं पड़ता।

४८—वृन्दावनदास—

वर्तमानकाल—सं० १६२० से सं० १६८०, जन्म सम्वत्-सं० १६२०, पिता का नाम—चतुर्विहारी के भतीजे, जाति—क्षत्री, निवास स्थान—आगरा शरणकाश–सम्वत् १६४० के आसपास, अन्त समय—सम्वत् १६८०।

यह श्री गुसांईजी के शिष्य थे और आगरे के रहने वाले थे। वार्त्ता में इनका कवि होना लिखा है 'पद गावते' शब्द यही बताता है।

भाव प्रकाश से इनके जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, केवल इन्हें चतुर्रबिहारी का भतीजा और आगरे का रहने वाला बताया है।

नोट—यह पद अन्तिम समय की धमार बिषयक है जिसे इससे पूरा किया था। वह डेढ़ तुक इस प्रकार है।

विशेष—यद्यपि ये श्री गुसांईजी के सेवक हुए थे किन्तु इनकी आसक्ति श्री गोकुलनाथजी में रही है जिनके सम्बन्ध में इन्होंने बहुत से पद लिखे हैं। जिससे यह मानना पड़ता है कि श्री गुसांईजी के अन्तिम समय में ही यह शरण आए थे और पीछे श्री गोकुलनाथजी के साथ रहे। श्री गोकुलनाथजी के भक्तों ने इन्हें अपने ७८ भक्तों में गिना है। इनकी प्राप्त रचनाएँ बड़ी सरस होती हैं।

रचना

अंग अंग घन कान्ति मोती माला बग पांति।
बनमाला इन्द्र धन सोभा छिनु छिनु है॥
पीताम्बर चमकनि दामिनी दमकनि।
मुरली की घोर मोर नाच्यौ रैन दिन है॥
'वृन्दावन' नाथ रीझे रीझि देवे को न कछू।
रीझ कौन काम की जो रीझ दिए बिनु है॥
धरनी तैं चन्द्रिका लै सीस धारी गिरधारी।
हँसि बोले मोर तोरो मेरे माथे रिन है।'

माला प्रसंग का पद—

श्री वल्लभ राजाधिराज राजत राजधानी।
सुनि सुनि जे सरन आए गर्व तजि अभिमानी॥
अतुलित तेज प्रताप चक्र चहुँ बखानी।
'वृन्दावन' चंद माला राखी सब जग जानी॥

४६—सगुणदास—

वर्तमानकाल—सम्वत् १५८० से सम्वत् १६२८ तक, जन्म सम्वत्—अज्ञात, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—अज्ञात, निवास स्थान-बंगाल, शरणकाल सम्वत् १६२१, अन्त समय—अज्ञात।

इनकी वार्त्ता में लिखा है—सो वे सगुनदास प्रथम रूपसनातन के सेवक भए हते। सो एक समय रूपसनातन के साथ सगुनदास श्रीगोकुल आए। सो सगुनदास ने श्री गुसांईजी के दरसन किए। सो इनकों अलौकिक स्वरूप के दरसन भए।.......जो श्री गुसांईजी के, श्री आचार्यजी महाप्रभुन के तथा श्रीनाथजी के कीर्तन बोहोत किये।

पाछे जब श्री गुसांईजी को जन्मदिवस आयो तब यह कीर्तन बधाई को करि कै गायो। सो पद—

श्री वल्लभ गृह मंगल चार। (प्रथम पंक्ति)

सो ऐसे पद सगुनदास ने बोहोत ही गाए।

भाव प्रकाश के अनुसार यह बंगाल के रहने वाले थे और तीस वर्ष की अवस्था में बृन्दावन आए थे और प्रथम रूपसनातन के शिष्य हुए थे।

इनके सम्बन्ध में सम्प्रदाय में उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यही निश्चित होता है कि श्री गुसांईजी के गोकुलवास सम्वत् १६२८ के पूर्व ही यह शरण आए और उस समय इनकी

आयु तीस वर्ष से अधिक रही होगी क्योंकि तीस वर्ष की अवस्था में तो यह बंगाल से वृन्दावन ही आये थे और रूप सनातन के शिष्य हुए थे। इनका कवि होना प्रसिद्ध है और बहुत से पद बधाई के 'वर्षोत्सव' की पुस्तक में इनके नाम से प्राप्त होते हैं।

वार्त्ता में प्रकाशित पदों के अतिरिक्त निम्नलिखित पद में सबसे छोटे श्री गुसांई जी के पुत्र घनश्याम जी का उल्लेख है और घनश्याम जी का जन्मकाल है सम्वत् १६२८। इससे यह तो निश्चित हो गया कि इससे पूर्व यह शरण में आगये थे। पद: —

श्री घनश्याम जू सुखद स्वरूप।
श्री मुख देखत अति सुख उपजत जाकी कान्ति रूप अनूप।
श्री पद्मावति कूख प्रगट भए श्री गोकुल के भूप।
'सगुनदास' घनश्याम रूप गुन विरह भक्ति रस कूप।

(५०) हृषिकेस (आगरा)—

वर्तमान काल—सं० १६४० तक, जन्म संवत्—अज्ञात्, पिता का नाम—अज्ञात, जाति—क्षत्री, निवास स्थान—आगरा, शरणकाल—संवत् १६२८, अन्त समय—संवत १६४० तक (राजा टोडरमल के उल्लेख से)

इनकी वार्ता में लिखा है—सो हृषीकेस आगरे में घोड़ान की दलाली करते। ऐसे करत बोहोत दिन बीते। सो सौदागर बौहोत घोड़ा आगरे में ल्यावते। सो जितने वे घोड़ा आगरे में बिकते सो सब हृषिकेस की मारफत बिकते। सो एक दिन हृषिकेस के मन में यह आई, जो मोको बहुत दिन घोड़ान की दलाली करत भए हैं, परन्तु कोई घोड़ा श्री गुसांई जी को भेंट नाहीं कियो। ताते बिना ऐब कौ घोड़ा एकहू दोष न होइ ऐसौ घोड़ा एक श्री गुसांई जी को भेंट अवश्य करनौ।.......... तब हृषिकेस जीन लैके आयौ। सो घर में आइ वा घोड़ा पर जीन करि पाछे अपनी स्त्री लरिकान सो कहे, जो मैं श्री गोकुल जात हों। तुम नीकी भाँति सो ठाकुर जी सों पहोंचियो। और कोई जो पूछन आवे तो ऐसे कहियो, जो—घोड़ा बेचन गये हैं। पर श्री गोकुल कौ नाम मति लीजियो।.......... सो श्री गोकुल के साम्हें 'मोहनपुर' में आय पहोंचे।............तब हृषीकेस ने विष्णुदास पौरिया सों कह्यौ, जो—यह घोड़ा श्री गुसांई जी की भेंट है। और मैं श्री गुसाँई जी कौ सेवक हों। हृषीकेस मेरौ नाम है। आगरे में रहत हों। यह सुनि कै विष्णुदास श्री गुसांई जी के पास आय कै विनती कीनी, जो महाराज। आगरे में हृषीकेस रहत हैं। सो आपकौ सेवक है। सो घोड़ा बोहोत सुन्दर भेंट ल्यायौ है। सो द्वार ऊपर ठाड़ौ है। यह सुनि कै आप श्री गुसांई जी द्वार ऊपर पधारे। तब हृषीकेस ने श्री गुसांई जी को दण्डवत करि बिनती कीनी, जो—महाराज। यह घोड़ा आपु की भेंट है। या प्रकार हृषीकेस की बिनती सुनि कै घोड़ा को देखि कै बोहोत प्रसन्न भए। श्री गुसांई जी।..........पाछें श्री गिरधर जी सों आज्ञा किये, जो—गोपीवल्लभ तांई मैं पहोंच्यो हूँ। अब राजभोग में तुम पहोंचियो। मैं तो अब श्री नाथ जी द्वार जात हों..........यह प्रकार सगरी राह श्री गुसांई जी सों भगवद्वार्ता करत श्रीजी द्वार आए।.........ता समै हृषीकेस ने एक कीर्तन नट राग में गायो। सो पद—

परम कृपाल श्री वल्लभ नन्द। (प्रथम पंक्ति)

""""यह कीर्तन सुनि कै श्री गुसांई जी हृषिकेस ऊपर बोहोत ही प्रसन्न भए। ....या प्रकार तीन रात्रि श्रीजी द्वार श्री गुसांई जी और हृषिकेस रहे। पाछे श्री गुसांई जी श्री गोकुल वह अबलख घोड़ा पै चढ़ि कै पधारे। तब हृषिकेस संग ही श्री गोकुल आए। तहाँ श्रीनवनीतप्रिय जी के उत्थापन के दरशन हृषीकेस ने किये। पाछे श्रीगोकुल ही में रात्रि को रहे। पाछे प्रातःकाल हृषिकेस श्री गुसांई जी सों विनती करिकै कह्यौ, जो–महाराज। मोकों घर जाइवे की आज्ञा होइ। .... पाछे हृषिकेस को पास बुलाय कै अपने श्री हस्त में उगार लै कै हृषिकेस को दिये। .... तब हृषिकेस राजा टोडरमल की फौज में ले जाइ कै सगरे घोड़ा बेचि ल्याये। सो सबके रुपया हजार चारि की हुँडी कराय कै सौदागर को दिये। .... तब हृषिकेस श्री गुसांई जी की खवासी में रहे। ....सो एक दिन हृषिकेस ने यह धमार गाई, कल्यान राग में। सो धमारि—

ब्रजराज लड़ेतौ गाइये, बल मोहन जाकौ नाम हो। (प्रथम पंक्ति)

......सो खरची कौ खड़िया कुत्ता लेगयौ।

इनके भी बहुत से पद प्रकाशित हो चुके हैं। सरस्वती भण्डार, काँकरौली की हस्त-लिखित बंध संख्या ५/६, १७८/२ से प्राप्त पद। (उदाहरण)

रंग महल में स्याम सुन्दर प्रिय प्यारी बैठें संग रतन सिंहासन।
ऋतु हेमन्त सीत ऋतु मानी ओढि रजाई लिपट उर गातन।
ललितादिक लै धरी अगीठी परदा परे तिवासी छातन।
'हृषिकेस' प्रभु मानी हेमन्त ऋतु करत मान अपने मन भावन।

नवनीत प्रिय जी के स्वरूप का वर्णन—

'हरि कर राजत माखन नीके' इस पद में नवनीतप्रिय जी का उल्लेख है।

भाव प्रकाश में इनका आगरे का होना और क्षत्री जाति लिखी है तथा रूपचन्द नन्दा के यहाँ इनको श्री गुसांई जी के दर्शन होने का उल्लेख है। यह दलाल थे और घोड़ों की दलाली करते थे यह भी भाव प्रकाश में लिखा है।

इनके ठाकुर जी श्री मदनमोहन जी मथुरा में दाऊजी के मन्दिर में विराजमान 'सौंदर्य पथ' जिसमें श्री महाप्रभु जी के आधिदैविक स्वरूप का संस्कृत में वर्णन है वह श्लोक श्री गुसांई जी ने आपके लिए लिखा था।

(५१) श्री रामदास जी—

वर्तमान काल—संवत १६४० तक, जन्म संवत्—अज्ञात, पिता का नाम—मनोहरदास जाति—ब्राह्मण, निवास स्थान—बच्छवन, शरण काल—संवत १६२८, अन्त समय—अज्ञात।

भक्तमाल में लिखा है—द्वारिका के ढिग ही डाकौर एक गाँव रहे, रहै रामदास भक्त भक्ति या को प्यारि। जागरन एकादशी करे रनछोर जू के भयो, तन बृद्ध आज्ञा दई नहिं धरिये॥ बोले भरि भाव तेरो आयबौ सह्यौ न जाय चलौं घर धाय तेरे ल्यावौ गाड़ी भारियै। खिरकी जु मन्दिर के पाछे तहाँ ठाड़ो करो, भरो अंकबारी मोकों बेग ही पधारिये।

रामदास गायक—अबुल फजल ने आइन-ए-अकबरी में केवल इतना ही लिखा है कि रामदास नामक गाने वाला अकबर के दरबार में गाता था, उसका लड़का सूरदास भी अपने पिता के साथ आया करता था। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

भक्तमाल की टीका में यह पद है :—

श्री राम दास रस रीति सों, भली भाँति सेवत भगत।
सीतल, परम सुशील, बचन कोमल मुख निकसै।
भक्त उदित रवि देखि, हृदै बारिज जिमि बिकसै॥
अति आनन्द, मन उमंगि संत परिचर्या करई।
चरण धोय, दंडौत, विविध भोजन विस्तरई॥
'बछवन' निबास, बिस्वास हरि जुगल चरण उर जगमगत।
श्री रामदास रसरीति सों, भली भाँति सेवत भगत॥

इससे यह पता लगता है कि रामदास नामक एक भक्त कवि था। इससे अधिक और कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। भक्तमाल का द्वारका को डाकौर के समीप बताना ठीक नहीं है। डाकौर गुजरात में है। द्वारिका काठियावाड़ में है।

डाकौर और बम्बई के प्रकाशित संस्करणों की तुलना

डाकौर और बम्बई दोनों के प्रकाशित संस्करण मूलतः एक ही हैं—बम्बई संस्करण में प्रेस की असावधानी से मात्राएँ टूट गई हैं और कहीं कहीं एक आध शब्द छपने से रह गया है।

उदाहरण के लिए पृष्ठ संख्या २७२ बम्बई संस्करण में 'जो' के पश्चात् 'आज' शब्द श्री आचार्य महाप्रभु शब्द के पहले छपने से छूट गया है। शेष सब पाठ एकसा है। ऐसे ही पृष्ठ २७४ पर 'कह्यौ' की जगह 'कह्या' छप गया है। यह पाई टूटने की भूल है। पृष्ठ २७६ पर 'आयै' के स्थान पर 'आये' भी इस प्रकार छप गया है। तथा पृष्ठ २८० पर 'भयो' के स्थान पर बम्बई संस्करण में 'भया' छपा है। पृष्ठ २८२ पर जहाँ बम्बई संस्करण में 'पंच ही' को मार है। वहाँ डाकौर संस्करण में पच ही की मार है। इस बार डाकौर संस्करण के अनुसार छूट गया है। बम्बई संस्करण के पृष्ठ २८६ पर दर्शन के स्थान पर 'दशन' छप गया है। और २८७ पर 'खबरि' की जगह 'खवार'—मँगायौ की जगह मँगाया—करै की जगह कर, जो की जगह जा, और की जगह आर, पूछौ की जगह पूछा, जो की जगह जा, गायौ की जगह गाया, छप गया है। पृष्ट २८८ पर महाप्रभुन कौ के स्थान पर महाप्रभून का छप गया है।

इन दोनों संस्करणों के पाठ को भाषा की दृष्टि से मिलान करने पर इन दोनों की भाषा में अन्य कोई भेद नहीं मिलता है। दोनों संस्करण किसी एक ही अशुद्ध और भ्रष्ट प्रति के आधार पर प्रकाशित किए गए हैं। अथवा एक दूसरे के आधार पर प्रकाशित हुए हैं क्योंकि पाठ की जो भूलें डाकौर संस्करण में हैं वही ज्यों का त्यों बम्बई संस्करण में मिलती हैं।

उदाहरणों के लिए दोनों संस्करणों में 'हों हरि सब पतितन को नायक' वाले पद की अन्तिम पंक्ति में 'अबकी वेर निवार लेउ प्रभु सूर पतित कों ठाड़ौ' पाठ छपा है। हस्त-लिखित प्रतियों के आधार पर यह ताडो' (तारना) होना चाहिए। ऐसे ही अत्यन्त प्रचलित और प्रसिद्ध पद 'सोभित कर नव नीत लिये' की जगह इन दोनों संस्करणों में सो नित करन पुनीत लिये छपा हुआ है। इसी प्रकार इन दोनों संस्करणों के गद्य में भी जो शब्द डाकौर संस्करण में किसी दूसरे से मिलाकर छाप दिए गए हैं वे बम्बई संस्करण में ज्यों का त्यों छापे गए हैं। जैसे 'सूरदासजी ने' या पद की समाप्त में गायों (पृष्ठ २८० बम्बई संस्करण) में सब एक में मिला दोनों संस्करणों में छपा है। यही नहीं यहाँ 'ते' के स्थान पर 'न' होना चाहिए पर यह भूल दोनों संस्करणों में एकसी है। दोनों संस्करणों में 'कहाँ लग वरनो सुन्दरताई' वाले पद की तीसरी पंक्ति में 'कुल है' के स्थान पर 'कुल' है अलग अलग छपा है और इसी पद में दोनों संस्करणों में नवघन की जगह 'नवधन' और मघवा की जगह 'मधुवा' छपा मिलता है। इन दोनों संस्करणों में इसी वार्त्ता में पहली पंक्ति में 'जश में तालव्य 'श' है और दूसरी पंक्ति में 'जस' में दंत्य 'स' का प्रयोग किया गया है।

इसी वार्त्ता के पाठ की तुलना तथा भाषा की परीक्षा जब काँकरौली विद्या विभाग के अध्यक्ष पं० कंठमणि शास्त्री द्वारा सम्पादित सम्वत् १६९७ और सम्वत् १७५२ वाली प्रति की सूरदास की वार्त्ता से करते हैं तो भाषा और पाठ की दृष्टि से दोनों में निम्नलिखित अन्तर मिलता है।

डाकौर संस्करण	सम्वत् १६९७ की प्रति
पाँव धारे	आप शब्द अधिक हैं।
सो कितनेक दिन में गऊघाट आए	पधारे
बीचों बीच	वीच
तहाँ श्री आचार्यजी महाप्रभु पाँव धारे	
बैठे	बेठे
हुतो	हतो
सो सूरदासजी स्वामी है आप सेवक करते।	सूर स्वामी हे सो सेवक करते
हुते	हुते
मैं दिग्विजय	इस संस्करण में नहीं है
तब पंडितन	सब पंडितन
	काशी तथा दक्षिण में मायावाद खन्डन कियो है।
यहाँ पधार	पधारे
बैठि	बेठियो
करिक विराजें	सो विराजें
	सूरदास को एक सेवक गऊ घाट ऊपर आइके।
तब	पाछे
आचार्य महाप्रभुन ने	
पाछे	
करिकें	कर
तटो सब	तब तांई
पहुँचि	पोहोंचि
आसपास आइ बैठे	पास अपने अपने ठिकाने आइ बैठे
	हतो
	सो ताने
	आय षोहोंचिरे
	आंयके
आवों बैठो	आओ बैठो
कही	कह्यो
जो सूर	सूरदासजी

त्यारी	तारी
और	और
सेव करन कौ	अधिकरिवे कौ
हें के	हे-तो
घिघियात काहे कौ	क्यों घिघात है
कछू	कछु
जो, जा, स्नान करि आऊ	जो स्नान करि आउ
	तब सूरदासजी ने प्रसन्न होइके
	श्री यमुना में स्नान करिके अपरस ही
	में आइके श्री आचार्य महाप्रभुन के आगे
	आइके ठाढ़े भए तब आचार्य महाप्रभुन ने
	कृपा करिके
करवायो	करायो
और फिर''''कही	पाछे, सुनाब
दूर	निवर्त्त
नवधा	सात
	और निवेदन करवाये ता ते श्रीनाथजी ने
	अंगीकार कियो—
	उपस्थित भई
फुरी	स्फुरी
अनुसार किया	कारिका में कह्यो हैं
	सो यह पद पहिलो करिके आचार्यजी
आगे गायौ	महाप्रभुन को सुनायो
	वर्णन कियो
गायौ	गाइ सुनायो
हुते	हते
दिवायौ	दिवायो
	तामें सम्पूर्ण भगवद् लीला को वर्णन किए
सम्पूर्ण भागवत	भागवत
स्फूर्तना	स्फूर्ति
ताई	पर्यन्त
	पाछे जो किए सो श्री भागवत अनुसार किए
परम कृपापात्र	कृपापात्र
पाछे	फेरि
पांव धारे	पधारे

प्रसंग २	वार्त्ता २
हू आए	श्री गोकुल आए
दंडवत करी	दंडवत किए
फुरी	स्फुरी
करिके	करिए
	बाल लीला के स्वरूप में श्री नवनीतप्रिय जी में बड़ी आसक्ति है ताते नवनीत प्रिय जी के सुनाए।
आय	आचार्य जी
सो सूरदास जी को दीजिए	सो सूरदास जी को कीर्तन की सेवा दीजिए
दूर कीनी	प्रथम ही दूर कीनी
ऐसौ जस करिके	पद एक नयौ करिके
सम्पूर्ण करिके गायो	यह पद गाइ सुनायो
रहत	रहे
नाम प्रकरन में	नामें
	सो भगवान कों न सुहाय। काहे में १ जो स्नेह लौकिक में अपने पति को पुत्रादिकन बिषे होत है परि महात्म्य ज्ञान विषे अतिक्रम होय
	जैसे मातृचरन बांधे ....
	तब मान के कीर्तन सूर ने गाए।
	'बोलत काहे न नागर बैना' (पद)

प्रसग ३	वार्त्ता ३
बादशाह–देशाधिपति की सूर से भेंट तथा पद	चौपड़ का प्रसंग
प्रसंग ४	
चौपड़ का प्रसंग	
जनमारो	जमारो खोवत है
सेगरेन सों	वैष्णवन सों
	यहाँ अन्तिम पंक्तियों में भाव एक ही है पर भाषा अलग अलग है
पद में 'वाक सत्रह'	राख सत्रह
सोच अगम	सोच सो आगम
तनमय	तन्मयता

प्रसंग ५	वार्त्ता ४
	इसमें बादशाह और सूरदास जी का प्रसंग जो डाकौर संस्करण से भिन्नता लिए हुए है
	वार्त्ता ५
समय	समे
प्रसंग षष्ठ	वार्त्ता षष्ठ
दर्शन देंयगे	देंयगे
श्रीनाथ जी	श्री आचार्य जी महाप्रभु श्री गुसांई जी अनुग्रह करि दर्शन दिए और फेरि आगे हू देंयगे ।
के दर्शन होंय	श्री गुसांई जी के दर्शन होय तो परम भाग्य है ।
सूरदास जी नाही	सो कहाँ हैं ?
देखियत सो काहे से	
पारासोली ओड़ी जात दीसे	पारासौली और उतरत देखे
अवसान समें	अवसान समो
जिहाज	जहाज
	सूरदास ने श्री गुसांई जी के और श्री गोवरधननाथ जी के स्वरूप में मन लगाई के बोलिवो छोड़ दियो ।
ऐसे करत करत	ऐसे पूंछत पूंछत
साथ कहत हों	परि तेरे कहे ते कहत हों
सरीर को त्याग कियो	सरीर त्याग दियो
लीला में प्राप्त भये	लीला में प्रवेश कियो

संवत १६९७ की प्रति और एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति, आसनमल ट्रस्ट से प्राप्त प्रति, की तुलना । यह प्रति सं० १८५२ की है ।

आसनमल ट्रस्ट सं० १८५२	सम्वत् १६९७ की प्रति
आप शब्द नहीं है—पधारे	पधारे
सो कितनेक दिन में गऊ घाट आए	
बीच बीच	बीच
तहां श्री आचार्य जी आए	
बैठे	बैठे
हे	हतो

सूरदास स्वामी हे सो आप सेवक करते	सूर स्वामी हे सो सेवक करते
कवीश्वर हते, गुणी हते,	हुते
इहाँ	इहाँ
दक्षिण में दिग्विजय कीयो है	दक्षिण दिग्विजय
सब पंडितन	सब पंडितन
	काशी में दक्षिण में मायावाद खंडन
पधारे हैं	पधारे हे
'वही'	सूरदास को सेवक गऊघाट ऊपर आयके तनक दूरि बैठ रह्यो
पाछे	पाछे
करिके	कर
आइ बैठते	पास अपने ठिकाने आइ बैठे
सो	सो तान
आए	आप पहोंच कै
आओ बैठौ	आओ बैठो
कह्यो	कह्यो
जो सूर	सूरदासजी
तारी	तारी
ताडो	ताडो
से घरू वन को	अघ करन को
ये दोऊ पद	ए दोय पद
हे तो	हे तो
घिघिहात कहा हे	क्यों घिघियात हे ।
कछू	कछु
जा स्नान करि आउ	जो स्नान करि आउ
तब श्री सूरदासजी यमुनाजी के तीर आए श्री यमुनाजी में स्नान करि आयो अपरस में ही श्री आचार्यजी के आगे ठाड़ो भयो	तब श्री सूरदासजी ने प्रसन्न होइकें श्री यमुनाजी में स्नान करिके अपरस में श्री आचार्य महाप्रभुन के आगे आइ के ठाड़े भये
करवायो	करायो
पाछे कही	पाछे सुनायी
नवधा	सात
	निवेदन से श्रीनाथजी ने अंगीकार कियो
कहनो है	कारिका में कहनो है
स्फुरी	स्फुरी

गाय सुनायो	गाय सुनायो
दिवायो	दिवायो
तामें सम्पूर्ण लीला को वर्णन कीये	तामें सम्पूर्ण लीला को वर्णन कीये
श्री भागवतार्थ अनुसार कीये	श्री भागवत के अनुसार किये
पाछे	फेरि
पधारे	पधारे
वार्त्ता २	**वार्त्ता २**
श्री गोकुल आए	श्री गोकुल आए
दंडौत कीयो	दंडवत किए
स्फुर्ना भई	स्फुरी
बाल लीला के स्वरूप में बड़ी आसक्ति है	बाललीला..
सुनाऊ	............सुनाए
आचार्य जी	आचार्य जी
सो सूरदास जी कों दीजीये	सो सूरदासजी को दीजिए।
दूर कीये हैं	दूरि कीनी
ऐसो जस करिके पद सुनायो	ऐसे जस करिके सम्पूर्ण करिके गायो
तामस प्रकरण में	तामें
जो केवल स्नेह तो लोकीक में अपने पति पुत्र आदिकन विषे होई पर महात्मज्ञान बिना अति क्रम होइ। जैसे मातृ चरण भगवान को बांधे।	जो स्नेह लौकिक में अपने पति पुत्रादिकन विशेषे होत ....होय जैसे मातृ चरन बांधे ....
	बोलत काहे न नागर बैन
वार्त्ता ३	**वार्त्ता ३**
चौपड़ का प्रसंग	चौपड़ का प्रसंग
जन्म वृथा खोवत है	जमारो खोवत है
संग के भगवदीये हते तिनसों सूरदासजी ने कह्यो	वैष्णवन सो कह्यो
वाक सत्रे	राख सत्रह
सोच कहे चिंता	सोंच सो आगम
वार्त्ता ४	**वार्त्ता ४**
बादशाह से भेंट का प्रसंग	बादशाह से भेंट का प्रसंग।
वार्त्ता ५	**वार्त्ता ५**
समे	समे

वार्त्ता ६	वार्त्ता ६
दर्शन दीये	दर्शन दिए
आगे हू दर्शन देंइगे	आगे हू देंयगे
तातें या देहसों एक दर्शन	श्री गुसांईजी के दर्शन होंय तौ
श्री गुसांईजी को होइ ।	परम भाग्य है
तो जानीये जो परम भाग्य हैं ।	
सो कहा हे	सो कहाँ है
परासोली की आड़ी उतरत देखे	परासोली और उतरत देखे
अवसान समे हे	अवसान समो
जहाज	जहाज
परि तेरे लीए कहत हूँ	परि तेरे कहे ते कहत हों
सरीर कों त्याग करिकें	सरीर त्याग दियो
भगल्लीला में प्रवेशकियो	ऐसे पंछत पूंछत
शरीर को त्याग करिके	सरीर त्याग दियो
लीला में प्रवेश कियो	लीला में प्रवेश कियो

डाकौर, बम्बई के प्रकाशित संस्करणों और सम्वत् १६९७ की काँकरोली की प्रति तथा आसनमल ट्रष्ट की प्रति इन चारों में लिखी सूर की वार्त्ता का परस्पर मिलान करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वार्त्ता की प्रकाशित प्रतियों के दोनों संस्करणों का पाठ सर्वथा अशुद्ध है और उसके आधार पर उसके गद्य के रूप का भी कोई मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। प्रतिकूल इसके सम्वत् १६९७ की प्रति और आसनमल ट्रष्ट की प्रति में वार्त्ता प्रसङ्गों की जो एकता है, उसके क्रम में जो एक रूपता है तथा भाषा के जो रूप प्राप्त हैं उनका प्रयोग प्रकाशित संस्करणों की अपेक्षा ब्रज भाषा के व्याकरण और उच्चारण के अधिक अनुकूल है और गद्य रूप में यह प्रकाशित संस्करण जो एक दूसरे की नकल है सर्वथा अमान्य है।

यहाँ अन्य वार्त्ताओं के इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से इस प्रबन्ध का कलेवर बढ़ाना इष्ट नहीं है और न परिशिष्ट के बोझ को ही बढ़ाना है पर ८४ वैष्णवन की वार्त्ता में दिए सभी वैष्णवों की वार्त्ताओं में प्रकाशित और हस्तलिखित में शब्दों के रूपों का यही भेद मिलता है।

अब यहाँ २५२ वैष्णवन की वार्त्ता में से एक की प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियों की परस्पर तुलना करके अपने कथन की पुष्टि करना आवश्यक है।

बम्बई और डाकौर की प्रकाशित प्रति तथा आसनमल ट्रष्ट १८५२ की प्रति के आधार पर श्री नागजी भट्ट की वार्त्ता

नागजी भाई श्री महाप्रभुजी के पास सेवक होवे को गए जब श्री महाप्रभुजी विचारे जो नागजी द्वारा सृष्टी बोहोत अंगीकार होयगी और नागजी भाई के संगते दैवी जीव प्रभुन के सन्मुख होंएगे और पुष्टि मार्ग के सिद्धान्त के पात्र नागजी भाई हैं और इनको वंश बहुत वर्ष पर्यन्त चलेगो जासूँ ये लालजी की शरण जाँए तो बहुत आछो जासूं महाप्रभुजी ने आज्ञा करी जो तुम लरिका के सेवक होवो तब नागजी भाई श्री गुसांईजी के सेवक भए सो वे नागजी ऐसे कृपा पात्र भगवदीय हते ।

(प्रसंग १)

भेद	साम्य
	लरिका के पास नाम पाना
(१) सष्टि का············ अंगीकार होना वंश बहुत चलना	महाप्रभु के पास सेवक होने के लिए आना

दूसरे

(१) गोधरा के
देसाई होना
जीविका जाना
संकोच में होना
सहजपाल इत्यादि
के नाम
(२) दस हजार
रुपया
बेटी का का ब्याह और द्रव्य का तथा नागजी का उसे अपने काम में न लाना तथा गुसांईजी के पास लाठी में ले जाना
खम्भाइच के वैष्णव

जो नागजी भट्ट ने प्रथम श्री आचार्यजी पास नाम पाइबे को आए । तब श्री आचार्य जी ने कह्यो जाइ लरिका पास नाम पाओ। तब श्री गुसांईजी पास आए नाम पायो सो महा कृपा पात्र भयो । पाछे अपने गाउ में आए । ता पाछें केतिक दिन को नागजी भट्ट की बेटी कों विबाह आयो । तब खम्भाच के वैष्णवन सुन्यौ सो वैष्णवन व श्री गुसांईजी के सेवक हुते तिन नागजी भट्ट कों पत्र लिख्यौ ता पत्र में लिख्यौ जो बेटी के विवाह को खरच पठायो है । सो पत्र नागजी भट्ट के घर दीनों । तब नागजी भट्ट ने बिचारयौ जो यह वैष्णव को द्रव्य सों विवाह कों खरचनो भलो नांही । अपुनो धर्म यह न होइ । बेटी तो काहू एक ब्राह्मण कों देऊगो । ताते यह द्रव्य श्री गोकुल पहुँचाय आऊँ । पाछे एक लाठी बाँस की ले आए तामें मोहौर भरी । आप कापडी को भेष करिके हाथ में लाठी लेके चले । जब श्री गुसांईजी ने जान्यौ जो नागजी आवत है । सो पैंडे में एक बैष्णव जन डोकरी एक गाँव में रहती । सो श्री गुसांईजी की सेवकनी हीं । सो बाको श्री गुसांईजी ने स्वप्न में कह्यौ । जो नागजी भट्ट कापिडी को वेष धरिकें आवत हैं। ताकों तू तीन दिन पाहुनें राखीयो । सखड़ी महाप्रसाद लिवाइयो । तब वह डाकेरी उठि के प्रातकाल सेवा करि रसोई करिके श्री ठाकुरजी कों भोग समर्प्यो भोग सराय अनोसरि करि पाछे महाप्रसाद ढांकि के बाहिर आए मार्ग में ठाढ़ी भई । पाछे मध्यान कै समें नागजी आए। तब डोकरी उठि के भेंटी । बहुत स्नेह पूर्वक सों अपने

घर पधराई लेगई । तब कह्यौ स्नान करौ तब नागजी भट्ट ने कह्यो जो सखड़ी प्रसाद तो नांही लेहुँ, बाल भोग को प्रसाद लीयो तहाँ ते चले सो श्री गोकुल आयो । तब श्री गुसांईजी संख चक्र धरते । ता समें आइके श्री गुसांईजी को दर्शन कीयो । तब श्री गुसांईजी ने पूछ्यौ नागजी कब आयो । तब नागजी ने कह्यौ राज ! मैं अबही आवत हो । तब श्री गुसांईजी ने पूछ्यौ तू पेडे में कहाँ रह्यौ हो कहाँ प्रसाद लीयो । तब नागजी ने कह्यो । एक वैष्णव जन डोकरी पेडे में रहत है तहाँ तीन दिवस रह्यौ । तब श्री गुसांईजी ने कह्यो उहां सखडी प्रसाद लीयो है सो इतनी बात कहत ही श्री गुसांईजी······देवे । तब नागजी लाठी ही सों भण्डार में डारिकें आप वेसेई स्वाँग सो फेर उत चल्यौ । सो फेर वा डोकरी के घर आयो । पाछे तीन दिवस सखडी प्रसाद लीयो । पाछे फेर श्री गोकुल आयो । तब श्री गुसांईजी को दण्डौत कीयो तब श्री गुसांईजी ने पूछ्यौ जो नागजी तीन दिवस बीच देख्यौ नाहीं सो सो काहे तें । नब नागजी ने कह्यौ वा डोकरी के घर तीन दिवस प्रसाद ले आयो । तब श्री गुसांईजी बहुत प्रसन्न भए । पाछे मास तीन नागजी भट्ट श्री गोकुल में श्री गुसांईजी पास रहे । पाछे आज्ञा माँगि के देश को चले सो घर आये । ता पाछें वा लाठी भंडारी की भारी लागी पड़ी देखी । तब फिर देखे तो वामें मोहोर भरी हे तब भण्डारी ने आइ श्री गुसांईजी सों कही जो महाराज या लाठी मो इतनी मोहोर है । तब श्री गुसांईजी कह्यौ जो यह नागजी को काम है । और एक समे नागजी भट्ट गोधरा के हाकिम को चाकर हुतो सो हाकिम ने नागजी वैष्णव सों कह्यो जो

तुम राजनगर जाउ। मेरी जागीरी बढ़ाय लाउ। पाछे नागजी वैष्णव राजनगर आए। सो दरबार को जात हते। सो त्रिपोलिया आगें एक चीर बहुत सुन्दर बिकात हतो सो देख्यौ तब आप उहां ठाड़े रहि के वापै ते वह चीर मोल लीयो। तब तहाँ ते फिर के डेरा आए। पाछें वह चीर बाँस की नाली में मेलि के आप बैरागी को रूप धरि के चाकर डेरा मो राख्यो। तब वा सों कह्यौ जब हों ईहां आऊँ तब लौं तू छिप्यौ रहीयो। ऐसे कहि कै आपु चले। तब श्री गुसांई जी अड़ेल में हे सो संध्या समय घड़ी चारि पहले श्री गुसांई जी ने वैष्णवन सों कह्यौ जो आज मेरौ नागजी आयौ चाहिये सो ऐसे ही कहत आयो तब वा लाठी छिपाय राखिकें श्री गुसांई जी को दर्शन कीयो तब श्री गुसांई जी ने कुशल समाचार पूछे तब पाछे कह्यौ उठि स्नान करि प्रसाद ले। तब उठि के स्नान करिके झारी लेके भीतर गयौ। पर नागजी के मन में ऐसौ मनोरथ जो यह चीर पहरिके श्री रुक्मिणी जी सज्या पर पधारें और में दर्शन करिकें उठि चलों। ऐसो मनोरथ विचारि के भीतर प्रसाद लेबे को गयो। तब श्री रुक्मिणी जी पातर लै आईं। तब नागजी उठि के दंडौत कीयो। पाछें वीनती करिके कह्यौ जो महाराज यह चीर पहरि के सज्या पधारौ तब में दर्शन पाऊँ। तब श्री रुक्मिणी जी कह्यौ जो मोकों प्रभुजी खीजेंगे। यह चीर कैसे करिके पहरेंगे। पाछें नागजी ने श्री रुक्मिणी जी को श्रीगुसांई जी की सौंह दीनी। जो यह चीर पहिरयौ चाहिये। तब चीर नागजी ने खवासनी के हाथ दीनों। आप पाछे प्रसाद

अहमदाबाद में चीर खरीदना और रुक्मिणी जी को आग्रह पूर्वक पहनाना भी इस प्रसंग में नहीं है।

आँव वाला प्रसंग जो हस्तलिखित में है इस दूसरे प्रसंग में नहीं हैं। यह प्रकाशित में चौथा प्रसंग है।

लीनो। पाछे उठि के श्रीगुसांई जी पास आय बैठे। तब श्री गुसांई जी ने पूछ्यौ जो नागजी तेरौ आयबौ कैसे बन्यौ। तब अपनी बात नागजी ने सब कही जो मैं राजके दर्शन को आयौ हों। राज पौढ़ेंगे तब चलूँगो पाछे श्री गुसांई जी सज्या पर पधारे। तब श्री गुसांई जी पास नागजी गयो। पाछें श्री रुक्मिणी जी पास गयो। पाछें फेरि वीनती कीनी महाराज यह चीर पहरो। पाछें श्री रुक्मिणी जी ने चीर अंगीकार कीयो पाछे श्री रुक्मिणी जी श्री गुसांई जी पास सज्या पर पधारे देखि दर्शन करिके बिदा की दंडौत करिके नाग जी डेरा आयो। तब श्री गुसांई जी ने श्री रुक्मिणी जी ऊपर रीस करी। जो तुम ऐसे अनुचित क्यों कीनीं। यह चीर तो श्री स्वामिनी जी लायक है तब श्री रुक्मिणी जी बोलीं जो मेरो दोस नाहीं मैं तो नाहीं करी। तब नागजी ने तुम्हारी सोंह दीनी तातें मैं चीर पहर्यौ। तब श्री गुसांई जी प्रसन्न होयके हँसे खेले बहुत प्रसन्न भए तब पाछे श्री गुसांई जी ने कह्यौ जो मेरो नागजी उठि के चल्यौ होयगौ पाछे तब आधी रात्रि भई तब नागजी श्री गुसांई के द्वारे साष्टाँग दंडौत प्रणाम करि के उठि चल्यौ सो राज नगर आयौ पाछे हाकिम को काम काज करिके गोधरा आयौ वा हाकिम को मिले तब हाकिम बहुत प्रसन्न भयो पाछे सिरोपा पहरि के डेरा आयौ। तब आनन्द भयौ। ऐसौ प्यारौ सेवक श्री गुसांई जी को नागजी परम कृपा पात्र है। आपने प्रथम नाम दीयो तबहीं नागजी पर परम कृपा करी। सो नागजी परम भक्त (पा) पात्र भयौ। वार्त्ता १

और वे नागजी गोधरा गाम के देसाई हते और कछु कारण सु सरकार में आजीविका बन्द भई हती सो वे नागजी भाई बड़े संकोच में आय गये इतने में नागजी भाई की बेटी को विवाह आयो सो वे बात खंभात के वैष्णव ने सुनी सहजपाल डोशी तथा माधवदास दलाल तथा जीवा वारिख नागजी भाई के स्नेही हते सो विन ने नागजी बेटी के विवाह की खबर सुनी जब विनने दस हजार रुपैया गोधरा में नागजी कु' पठाये सो वे रुपैया नागजी भाई कु' पहुँचे तब नागजी भाई ने विचार कियो जो ये द्रव्य तो वैष्णवन को है और वैष्णवन ने तो मोकु' वैष्णव सम्बन्ध सों पठायो है जासूं ये द्रव्य लौकिक में नहीं खरचाय तो आछो, आपदाकाल तो चार दिन में मिट जायगो तब वे द्रव्य की सोना मोहर लेके एक लाकड़ी में भर के अड़ैल को चले जब रास्ता में एक वैष्णव डोकरी रहती हती वा डोकरी के ठाकुरजी ने स्वप्न में आज्ञा करी जो काल नागजी कासिद को भेष धरि आवेंगे तिनको तुम प्रसाद लेवाईयो जब दूसरे दिन परदेशिन के उतार में वा डोकरी ने नागजी भाई को ढूंढ पाए तब वा डोकरी ने कही जो मैं तुम्हारी जाती की हूँ और श्री गुसांई जी की सेवक हूँ जासूं मेरे घर प्रसाद लेवे कु' चलो तब नागजी भाई ने नाहीं कही तब नागजी भाई उहां ते चले जब दो मंजिल गये तब श्रीठाकुर जी ने स्वप्न में

और एक समे श्री गुसांई जी श्री द्वारका जी को पधारे सो राम लक्ष्मण के देहरा आगे आए इतने ही नागजी वैष्णव सामे आए। सो एक टोकरा में आंबए दोए सो लेके आए। तब श्री गुसांई जी ने आज्ञा दीन्ही जो ए आंब तू श्री रणछोड़जी को समर्पि आउ। और तू दर्शन करि आऊ। तब नागजी बोल्यौ जो मेरो क्षौर करायो सो द्वारका में कहा काम है। मैं तुम को देखे इतने मेरे सब भयो। तब श्री गुसांईजी ने कह्यौ जा तू दर्शन करि आवेगो तहां तांई मैं ईहां ई ठाढ़ो रहूँगो तेरे आए पाछे चलूंगो। तब श्री गुसांई जी की आज्ञा मानि के द्वारका श्री रणछोड़ जी के दर्शन को गयो। श्री रणछोड़जी के दर्शन कीये क्षौर करवायो पाछे फिर श्री रणछोड़ जी पास ते बिदा होन गए। तब देखे तो श्रीगुसांईजी श्री रणछोड़जी को बीड़ा आरोगावत है। सो देख्यौ तब मन में बहुत प्रसन्न भयो। पाछे बिदा मांगि के दोरत श्रीगुसांई जी पास रामलक्ष्मणजी के देहरा आगे आए। तहां श्री गुसांईजी ठाढ़े हुते। तहाँ नागजी प्रसन्न होय श्री गुसांई जी के चरण ऊपर माथो मेलि के कह्यो। जो महाराज में राज की आज्ञा ते गयो तो मोको बहुत सुख भयो श्री रणछोड़ जी देखे। और राज हू देखे यह सुख मोकों भयो। तब श्री गुसांईजी ने हंसिके कह्यौ जो श्री रणछोड़जी हे सो श्री आचार्य जी को मांन है ताते इहाँ मेरो सम्बन्ध रहत है। पाछे वा ठोरतें चले सो गंगासादिया गांऊ है तहां आए के डेरा कीयो। पाछे स्नान करि के रसोई में पधारे ता पाछे नागजी थूहर की जंगल में गयो। तहां आपु आंब यो ठीया में आठ से भरे हैं। सो श्री गुसांई जी से छिपाय के गयो हो तो। सो याते छिपाए जो में सब आंब उहां

आज्ञा करी जो तुमने वा डोकरी के घर प्रसाद क्यों न लियो वा डोकरी कुं मैंने आज्ञा करी हती तब नागजी फिरके वा डोकरी के घर प्रसाद लेवे के लिए पाछे आयके उहाँ तीन दिन रहे और वा डोकरी ने कही जो तुमतो ठाकुरजी के अंग हो मैं इन बातन में कहा समझूँ हूँ तब नागजी ये सुनके और डोकरी की नर्मता देखके बहुत प्रसन्न भये फेर उहाँ ते नागजी अडैल गाम में आये और श्री गुसांईजी के दर्शन करे और वे लाठी भंडारी कुं दीनी और कही जोये लाठी वैष्णवन ने दीनी है सो श्री गुसांई कुं दीजिये ये कहकें नागजी भाई व्रज में गये और पाछे लाठी।

ले जाँउगो तो श्री रणछोड़जी को दे आवेंगे श्रीजी सब आँब ताते न्यारो यो ठीया राख्यो हुतो। पाछे वे आँव काढ़े। तब थोड़े सेन को अंबरस सों कटोरा भरयौ। और आँब सो एक सवाँरि के श्री गुसांईजी भोग समर्पित हुते तहाँ आनि आगे राखे। तब श्री गुसांईजी ने नागजी से कह्यौ तें हमसे दुराव कीयो सो भली न करी। तब नागजी ने कह्यौ हों सब आंब ले आवतो। तातें थोड़े से राज के लिये यहाँ राखे हे। तब कहे ये आंब मैं न लेऊँगो। तब नागजी ने बीनती करी। जो राज ! हम तो राज के हाथ बिकाने हे और हम जाति बंध छोडि के राज के चरण पकड़े हे। ताते यह बात राज मन में न आनें। नागजी ने हठ कीयो। तब श्री गुसांईजी ने हँसि के प्रसन्न होइ के आंब आप आरोगे। तब नागजी ऊ अति प्रसन्न भयो। तब नागजी ने कह्यौ महाराज हम आत्म निवेदन कीयो। पाछे राज भली जानो सो करो। तब श्री जी अति प्रसन्न भए हंसे खेले वे ऐसे मजल चारि या पांच ताईं वे आंब प्रभुजी को समर्पित आंवे। नागजी ऐसे कृपा पात्र हुते प्रभु कहते यह मेरो नाग है। श्रीजी इनसो बहुत कृपा करते वार्त्ता २ ।।

+ + +

वार्त्ता ३

और एक बार नागजी श्री गुसांईजी के दर्शन को अडैल जात हे सो श्रीनाथजी के दर्शन कों श्री गोवर्द्धन आए श्री नाथजी को दर्शन कीयो। पाछे रामदासजी ने नागजी को राखे श्रीनाथजी की सेवा में कों याते राखे जो भीतरिया को ज्वर आयो हतो। तातें नागजी कौ राखे जो भीतरीया को ज्वर है सो श्रीनाथजी की सेवा में है।

पाछे श्री गुसांईजी को बीनती को पत्र लिखाय पठायो। तामें एक श्लोक लिखकें पठायो। सो श्लोक —

सरसिकुशेशयमप्यादितुभागच्छतोऽलिनीमार्गे।
यदि कनक कमलपाने नासीत्तोषः किमन्येन ॥

सो तामेलिख्यौ जो मोकों जल कमल में स्वाद है। ते सो कनक कमल में नाहीं होत एसी विज्ञप्ति लिखी। ताको प्रत्युत्तर श्री गुसांईजी ने दोइ श्लोक करिके लिख्यौ है। सो श्लोक —

नात्र कुशेशयमानसमर्थय से यद्प्रियोतवधुपः।
तस्मिंस्तुष्टे तोषः दुस्थे दौस्थ्यं निरुपमस्नेहात्।
यद्यलिरपिनिरुपधिभावः स्वभावतः समागच्छेत्।
निरवधि तोषोऽस्थात्रापि भवेदेवेति किंवाच्यम्।

एक दोऊ श्लोक करिके लिख्यौ सर्व मूलत्व करि कमल हे। ताते तुम भाववंत होय मनसा पूर्वक होय कें सेवा करीयो ताते सर्व रसास्वादित होय। और नागजी की बेटी के विवाह को लग्न निकट आयो। ता समे बैष्णवन ने द्रव्य लेकरि पठायो दर्शनार्थ भंडार में पहुँचावन गए। तब विचार करन लागे। जो अब कहा करीये। तब नागजी की स्त्रीने कह्यो। एक चूडो और पानेतर ओर रोरी लेआवो। बेटी को विवाह करि देंऊँगी। तब सब कोऊ गांव के मिलि के विचार करन लागे। जो नागजी भट्ट गांव के देसाई ताके बेटी को विवाह एसो क्यों होय। तब सबन मिलिके विवाह को जो चहिये सो सब सिद्धि करि दीयो। इतने में गांउ के हाकिम ने सुनी। तब उनऊँ कछू द्रव्य पठायो। सो भली भांति सौ भले गृहस्थ सों विवाह करि पठावनी पहरावनी करी। या भाँति विवाह भए पाछे नागजी भट्ट घर आए। ऐसे भगवदीय जो लौं लौकिक कार्य कबहू स्फुर्ति नाहीं। आप भगवत्कार्य विषे

और श्री गुसाँईजी के चरणारविंद विषे ही सदा चित्त रहे ऐसे भगवदीय।

वार्त्ता ४

और एक समें नाग भट्ट ने श्री गुसांईजी कों पत्र लिख्यौ। तामें बीनती लिखी जो श्री आचार्यजी महाप्रभु को लेख सुबोधिनी आदि देके सब ग्रंथन की टीका कीनी है। सो मेरी बुद्धि थोरी। तातें महाराज थोड़े ही में लिख पठावो। ज्यौ सेवक को स्फुरे। ताको प्रत्युत्तर। श्री गुसांईजी ने दोई श्लोक में लिखवाए। सो श्लोक —

श्री वल्लभाचार्ययते फलं तत्प्रागट्यमत्रा-
व्यभिचारि हेतुः।
तत्रोपयुक्ता नवधोक्त भक्तिस्तत्रोपयोगोऽखिल
साधनानाम्।
यःकुर्यात् सुन्दराक्षीणां भवने लास्य नर्तने।
तासां भावनयानित्यंसहिसर्ब फलानुभाक्।

ता श्लोक में श्री आचार्यजी प्रगट मार्ग और ता मार्ग में ठाकुर को प्रागट्य। और पहले नवधा भक्ति नव जने को। और श्री आचार्यजी के सेवक को दशधा भक्ति एक को। तातें श्री आचार्यजी के मार्ग विशेष केवल प्रेम करिके श्री ठाकुरजी को काज करे। ए दोउ श्लोक लिख पठाए सो नागजी भट्ट बाँचि के अत्यन्त बहुत प्रसन्न भए।

वार्त्ता ५

और एक समें श्री गुसांईजी द्वारका पधारत हुते तब नागजी भट्ट साँढ एक आंब की भरि के श्री गुसांईजी पास आयो। सो आंब देखि के श्री गुसांईजी ने कह्यौ नागजी ए आंब तो मोए लीये न जाइ। ऐसी सुनत ही वे आंब तहाँ छोड़िके तुरंत ही आप गोधरा आए। तहाँ ते सांठि दोइ भरि कें चले।

इस प्रति में ७६ व्यक्ति और ११३ प्रसंग ८४ वैष्णवों की वार्त्ता के है। ३८ व्यक्ति दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के हैं और ६४ प्रसंग दो सौ बावन के हैं। और पाँच प्रसंग निज वार्त्ता के हैं। दोनों प्रतियों के पाठ का अन्तर भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से विचारणीय है।

प्रसङ्गात्मक वार्त्ता

प्रसंगात्मक वार्त्ता की कोई प्रति प्रकाशित नहीं है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। जिनमें संवत् १७४६ की हस्तलिखित प्रति में १२८ प्रसंग हैं और यही अभी तक की प्राप्ति सबसे पुरानी प्रति है। इस ग्रन्थ का परिचय हस्तलिखित प्रतियों के प्रकरण में दे चुके हैं। इस संस्करण में १८२ में से छहत्तर प्रसंग चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के हैं और छत्तीस दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के हैं और १६ प्रसंग निजवार्त्ता घरूवार्ता के हैं।

इस प्रति में चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के इन वैष्णवों की वार्त्ता के इतने प्रसंग हैं—

		छपी वार्ता के प्रसंग	
		पृष्ठ और	संख्या
(१) दामोदरदास हरसानी	१ प्रसंग	८	१
(२) कृष्णदास मेघन	३	७	२
(३) दामोदरदास सम्हलवाले	४	६	३
(४) पद्मनाभ दास	७	७	४
(५) तुलसा	१	२	५
(६) पार्वती	१	१	६
(७) रघुनाथदास	१	१	८
(८) रज्जो	१	१	७
(९) सेठ पुरुषोत्तमदास	५	५	९
(१०) गोपालदास	१	१	११
(११) रुकमिणी	२	३	१०
(१२) रामदास	२	२	१२
(१३) गदाधरदास	१	२	१३
(१४) वेणीदास माधवदास	१	२	१४
(१५) क्षत्राणी एक कड़ा की (अम्मा)	१	२	१७
(१६) हरवंश पाठक	१	१	१५
(१७) गोविन्ददास भल्ला	१	१	१६
(१८) गज्जन धावन	१	१	१८
(१९) नारायण ब्रह्मचारी	१	३	१९
(२०) दिनकर सेठ	१	१	२३
(२१) दिनकरदास मुकुन्ददास	१	६	२४
(२२) प्रभूदास जलोटा	२+१	४	२५
(२३) प्रभूदास भाट	१	१	२६

(२४) पुरुषोत्तमदास आगरा	१	१	२७
(२५) त्रिपुरदास कायस्थ	१	३	२८
(२६) पूरणमल	१	२	२६
(२७) यादवेन्द्रदास कुम्हार	१	३	३०
(२८) माधव भट्ट काश्मीरी	१+१	४	३२
(२६) गुसांईदास दास	१	१	३१
(३०) पद्मारावल	१	३	३४
(३१) पुरुषोत्तम जोशी	१	१	३५
(३२) जगन्नाथ जोशी	२	४	३६
(३३) जगन्नाथ जोशी की माता	१	१	३७
(३४) रामदास बड़े (भीतरिया)	३	१	४०
(३५) गोविन्द दुबे	२	४	४१
(३६) कृष्णदास अधिकारी	२	६	५१
(३७) राणा व्यास	२	२	३६
(३८) रामदास पुरोहित	१	१	५४
(३६) बाबावेणु कृष्णदास यादवदास खवास	३	१	४६
(४०) सूरदास	१	६	८८
(४१) परमानन्ददास	२	३	८६
(४२) कृष्णदास स्त्री पुरुष	१	१	८३
(४३) सास बहू गोरजा समराई	१	१	५१
(४४) भगवानदास सीधा	१	१	५६
(४५) बूला मिश्र	१	१	५३
(४६) महावन की एक क्षत्राणी	१	१	२०
(४७) जीवदास सूरी	१	१	२१
(४८) देवा कपूर	१	१	२२
(४६) कन्हैयालाल क्षत्री	१	१	७७
(५०) नरहरिदास	१	१	७८
(५१) अच्युतदास	१	१	६१
(५२) उत्तम श्लोकदास	१	१	४३
(५३) वादरायणदास	१	१	७६
(५४) रामदास चौहान	१	१	५५
(५५) एक क्षत्री (अन्य मार्ग से स्नेह हतो)	१	१	७१
(५६) बासुदेव छकड़ा	६	४	४५
(५७) दामोदरदास की माता बीरबाई	१	१	६८
(५८) एक क्षत्राणी जिसके छीके से लड्डू आए	१	१	५१
(५६) सिहनन्द की एक क्षत्राणी	१	१	६७
(६०) जगतानन्द	१	१	४७
(६१) सिंहनन्द की एक क्षत्राणी क्षत्री आगरे रहते	१	१	६६

(६३) कविराज भाट	१	१	७३
(६३) लघुपुरूषोतमदास	१	१	७२
(६४) गोपालदास इटोडा	१	१	७४
(६५) नारायणदास भाट	१	१	७५
(६६) लड्डू स्वामी (गरूड स्वामी)	१	१	७६
(६७) गोपालदास जटाधारी	१	१	८२
(६८) जनार्दनदास गोपालदास	१	१	७५
(६९) संतदास चौपड़ा क्षत्री	१	२	८४
(७०) कृष्णदासी	१	२	५२
(७) नरहरि सन्यासी	१	१	८१
(७२) सद्दू पांडे	१	३	८०
(७३) सुन्दरदास माधोदास	१	१	८५
(७४) भगवानदास	१	१	८०

इस हस्तलिखित प्रति में जो प्रसंग प्राप्त हैं वे केवल ७६ वैष्णवों के हैं और प्रकाशित डाकोर और बम्बई के संख्यात्मक संस्करणों में ९२ वैष्णवों की संख्या है। प्रसंगों का अन्तर भी ऊपर की तालिका से प्रगट हो जायगा। इस संस्करण में न तो संख्यात्मक वार्ता के अनुसार वैष्णवों का क्रम है और न उनके प्रसंगों का। इस प्रसंगात्मक संस्करण में एक ही व्यक्ति के प्रसंग एक स्थान पर उसकी वार्त्ता में न होकर अलग अलग स्थान पर उसी के नाम से इनका उल्लेख है। इसमें बीच बीच में निजवार्ता और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के प्रसंग भी प्राप्त होते हैं। ७६ वैष्णवों के प्रसंगों के बीच क्रमानुसार प्राप्त होने वाले २५२ व निजवार्त्ता घरूवार्त्ता के प्रसंगों की सूची इस प्रकार है।

वार्त्ता ४०—बाबा वेणु, कृष्णदास, जादव खवास के प्रसंग के पश्चात् दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के "एक ब्रज वासी की बहू भैंस जाकी खोय गयो" का प्रसंग प्राप्त हैं।

वार्त्ता ४२—में परमानन्ददास के अनन्तर :—

(१) अयोध्या की बैठक चरित्र का एक प्रसंग
(२) विवाह की आज्ञा का प्रसंग
(३) श्री गोकुलनाथ ठाकुर जी का प्रसंग

यह तीनों प्रसंग निजवार्त्ता घरूवार्त्ता व बैठक चरित्र के हैं।

वार्त्ता ४५—में भगवान सिधातरा के प्रसंग के बाद में माधव भट्ट के निधन का प्रसंग है। उसके बाद

(१) नागजी भट्ट
(२) राजा जैमल के दो प्रसंग हैं जो २५२ वैष्णवन की वार्त्ता के हैं।

वार्त्ता ४६—में बुला मिश्र के पश्चात्

(१) धर्मदास ग्वाल का छाक का प्रसंग है। जो २५२ वैष्णवन की वार्त्ता का है।

वार्त्ता ४८—में जीवदास सूरी के प्रसंग की पीछे :—

श्री गोकुल चन्द्रमा जी के आचार्य जी के घर पधारने का प्रसंग है जो भावनात्मक संस्करण में पीछे से जोड़ा गया है।

वार्त्ता ५५—में रामदास चौहान के प्रसंग के अनन्तर निम्नलिखित :—

(१) माधोदास काबुल के (२५२)
(२) गोपालदास गुजराती (२५२)
(३) गोपीनाथ दास ग्वाल (२५२)
(४) पाथो गूजरी (२५३)
(५) पूरब के ब्राह्मण (२५२)
(६) चंदन वारो वैष्णव (२५२)

यह छै प्रसंग दो सौ बावन की वार्ता के आगए हैं।

वार्त्ता ५६—'अन्य मार्गीय सों स्नेह हातो' उस वैष्णव के प्रसंग के बाद :—

(१) रूपचंद नंदा और राभवदास के प्रसंग हैं जो दो सौ बावन के हैं।

वार्त्ता ५७—वासुदेवदास छकड़ा के बाद—

(१) एक वैरागी की वार्त्ता : घरूवार्त्ता निजवार्त्ता का प्रसंग है।
(२) एक ब्राह्मणी उज्जैन से छै कोस दूर रहती (२५२)
(३) कृष्ण भट्ट (२५२)
(४) निहालचंद भाई (२५२) तीन सौ बावन के प्रसंग हैं।

वार्त्ता ६८—में गोपालदास जटाधारी के प्रसंग के अनन्तर

(१) नारायणदास गौड़ देश के वजीर के सात प्रसंग हैं जो सब दो सौ बावन के हैं।
(२) विट्ठलदास कायस्थ का एक प्रसंग है। यह भी दो सौ बावन का ही है (२५२)
(३) हरिदास खवास (२५२)
(४) हिंसार के कायस्थ बाप बेटा (२५२)
(५) कृष्णदास कायस्थ (२५२)

वार्त्ता ७०—के बाद संतदास के प्रसंग के बाद दो सौ बावन के वृन्दावन के गौड़िया का प्रसंग है।

(२) बिलाई वाली डोकरी (२५२)
(३) कुनबी वैष्णव (२५२)

वार्त्ता ७२—में नरहरि सन्यासी के प्रसंग के बाद बेनी कोठारी भाइला कोठारि

चाचा हरिवंशजी-कंसेड़ी वाला क्षत्री,

हरिजी कोठारी-गोपालदास-माणिक चन्द यह सब दोसौ बावन के हैं। इनके प्रसंग आए हैं।

जीवा पारिक माधोदास-सहजपाल दोसी यह तीनों दोसौ बावन के हैं।

वार्त्ता ७५—में सुन्दरदास माधोदास के अनन्तर

(१) गोविंद स्वामी
(२) कान्ह बाई

यह दो प्रसंग दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के हैं और

(३) सन्यास ग्रहण

का प्रसंग निजवार्त्ता घरूवार्त्ता का है।

वार्त्ता ७६—में भगवानदास के अनन्तर

(१) ज्ञानचन्द

(२) दो कुनवी माला उतार कर मजदूरी करने वाले ।

(३) एक वैष्णव जो बृक्ष से निर्वाह करता था ।

(४) एक ब्राह्मण वैष्णव जो गंगा के किनारे रहता था ।

(५) एक राजा जो ब्राह्मण को बहुत दान देता था ।

यह पाँचो प्रसंग दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के प्रसंग हैं ।

पुस्तक के अन्त में हरिदास मोहनदास का प्रसंग है। यह भी २५२ वैष्णवन की वार्त्ता का है।

निष्कर्ष

यह प्रसंगात्मक प्रति के विश्लेषण से यह प्रकट हो गया कि इसमें जो क्रम प्रसंगों का दिया हुआ है वह चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता की संख्यात्मक और भावनात्मक दोनों प्रतियों से अलग है ।

इसी प्रकार की प्रसंगात्मक वार्त्ताओं की अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हैं जिनमें संख्यात्मक और भावनात्मक प्रतियों का न तो क्रम है और न वर्गीकरण है । सम्वत् १८०४ विक्रमी की बहादुरपुर की हस्तलिखित प्रति में भी यही क्रम है ।

जेठानन्द आसनमल ट्रस्ट बम्बई से प्राप्त सम्वत् १८५१ की हस्तलिखित ८४ वार्त्ता की संख्यात्मक प्रति के पीछे ६२ पृष्ठ ऐसे हैं जिनमें दोसौ बावन निजवार्त्ता घरूवार्ता आदि के प्रसंगों का वैसा ही संग्रह है जिसका उल्लेख सम्वत् १७४६ की हस्तलिखित प्रति में किया जा चुका हैं इसमें दो सौ बावन के सम्वत् १७४६ की प्रति से कई अधिक प्रसंग हैं। इन प्रसंगों की सूची इस प्रकार है :—

'प्रथम घरूवार्ता लिख्यते'

श्री आचार्य जी अडैल मो विराजते—

(१) 'माथौ दुखत है और सरीर को स्वास्थ्य नाहीं ।'

(२) कटोरी गहने धरने का प्रसंग ।

(३-४) अयोध्या पधारने के दो प्रसंग ।

(५) ठाकुरजी को सूर्योदय से पहले जगाने की श्री गोपीनाथ जी को आज्ञा ।

(६) श्रीनाथ जी को दामोदरदास ने खड़ा रखा ।

(७) गोपीवल्लभ भोग रखने का ।

(८) बद्रिकाश्रम का प्रसंग ।

(९) पंढरपुर का विवाह का प्रसंग ।

(१०) श्री द्वारकानाथ (ठाकुर) का कन्नौज से घर जाने का प्रसंग ।

(११) श्री गोकुल में वैरागी के बटुए का प्रसंग ।

श्री गुसांई जी महाप्रभु के सेवकन की वार्त्ता

(१) नागजी भट्ट के पाँच प्रसंग ।

(२) कृष्ण भट्ट के ६ प्रसंग ।

(३) चाचा हरिवंश के प्रसंग
(४) नारायणदास गौड़ देश के प्रसंग
(५) विट्ठलदास कायस्थ
(६) मुरारीदास
(७) रूपमुरारी
(८) कायस्थ बाप बेटा हिसार
(९) कृष्णदास कायस्थ पूरब के
(१०) जनार्दनदास कायस्थ और गोपालदास
(११) जयमल राठौड़
(१२) अलीखान पाठान
(१३) निहालचन्द
(१४) माधौदास काबुल के
(१५) माधोदास कायस्थ भटनागर
(१६) एक ब्राह्मणी उज्जैन के पास रहती
(१७) रूपचन्द चन्दा
(१८) यदुनाथदास धार के चाकर
(१९) लाखाराजा
(२०) ग्यानचन्द सेठ आगरा
(२१) हरिजी कोठारी
(२२) गोपालदास सेठ भाइला कोठारी के जमाई
(२३) माणिकचन्द क्षत्री
(२४) एक पूरब को ब्राह्मण
(२५) गणेश व्यास
(२६) हरिदास खवास
(२७) मधुसूदनदास गोडिया
(२८) कान्हबाई
(२९) गोविंदस्वामी सनौढ़िया
(३०) छीत स्वामी
(३१) कुनवी वैष्णव माला वाला
(३२) कुनवी वैष्णव की वार्त्ता
(३३) एक बेटी रामानंदी से ब्याही
(३४) एक वैष्णव की बेटी जैन को ब्याही
(३५) एक वैष्णव जो वृक्ष से वार्त्ता करता था
(३६) एक वृजवासी के बेटा की बहू
(३७) पाथो गूजरी
(३८) गोपीनाथदास ग्वाल
(३९) गोविंद भट्ट

(४०) (गुसांईजी की निजवार्त्ता) श्री गुसांईजी का माधो सरस्वती के यहाँ पढ़ने जाना ।

(४१) अडैल के रास का प्रसंग ।

(४२) एक क्षत्री का द्रव्य यमुनाजी में डलवा दिया ।

(४३) अडैल में बैंगन के वृक्ष उखाडने का प्रसंग

(४४) चंदन वारे वैष्णव का प्रसं

(४५) गोपालदास गुजराती

(४६) गोपालदास भीतरिया

(४७) दो गुजराती कुनवी

(४८) एक ब्राह्मण गंगा के तीर रहतो

(४९) एक ब्राह्मण ज्योतिषी

(५०) महाप्रभु के सन्यास का प्रकरण (निजवार्त्ता)

(५१) कृष्णदासजी के प्रश्न का प्रसंग ८४ वां प्रसंग ।

इसमें जो दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के बीच निजवार्त्ता घरूवार्त्ता और श्री गुसांईजी की अप्रकाशित निजवार्त्ता और चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के मिले जुले प्रसंग आए हैं उसी के आधार पर इसका नाम प्रसङ्गात्मक प्रति या संस्करण रक्खा गया है । उदाहरण के लिए इसमें भी पहले ग्यारह प्रसंग निजवार्त्ता घरूवार्त्ता के हैं और उन्तालीस प्रसंग दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के हैं फिर चालीस, इकतालीस और तेतालीस प्रसंग श्री गुसांईजी की अप्रकाशित निजवार्त्ता के हैं और शेष सब दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के हैं ।

इस प्रसंगात्मक प्रति के प्रसंगों की दो सौ बावन की संख्यात्मक प्रसंगों से तुलना करने पर यह क्रम जो प्रसंगात्मक प्रति में है वह ज्यों का त्यों नहीं मिलता है ।

इस प्रति में अष्ट छाप के चार सखाओं का उल्लेख ही नहीं है फिर मुरारीदास का प्रसंग संख्यात्मक में चाचा हरिवंश के प्रसंगों के बाद ही है पर इस प्रसंगात्मक में उनका प्रसंग नारायणदास दीवान और विट्ठलदास कायस्थ के प्रसंगों के बाद आया है। यही बात अन्य प्रसंगों पर भी कहीं नहीं लागू होती है। इससे यह तो प्रत्यक्ष हो ही गया कि जो क्रम ८४ और दो सौ बावन के नामों का संख्यात्मक और भावनात्मक संस्करण में मान्य चला आता है उसकी मान्यता प्रसंगात्मक संस्करण को उस रूप में स्वीकार नहीं है। प्रसंगात्मक संस्करण का लेखक इन संस्करणों की सीमाओं में बंधा हुआ नहीं है। वह एक प्रसंग का उल्लेख एक स्थान पर करके कभी कभी दूसरे प्रसंग को बहुत पीछे और दूसरों के प्रसंगों के पश्चात करता है। इस संस्करण के रचयिता को न संख्या का मोह है और न विस्तृत विवरण का। उसे तो संक्षेप में किसी एक घटना या प्रसंग विशेष का उल्लेख करके उसकी ओर ध्यान दिलाना है। इतिवृत्त की पूर्णता पर भी उसका लक्ष्य नहीं है। वैष्णव लोग आदर्श वैष्णवों के नामों का स्मरण करते रहें और वह नाम जब सरस होता जाय यही उद्देश्य इन प्रसंगात्मक वार्त्ताओं का प्रतीत होता है ।

इन प्रसंगात्मक हस्तलिखित प्रतियों और प्रकाशित संख्यात्मक प्रतियों तथा भावनात्मक प्रतियों के पाठ में जो समानता और अन्तर है उसका सीधा सम्बन्ध इस निबन्ध

से न होकर वार्त्ताओं के पाठ से है इसलिए इसकी तुलना यहाँ आवश्यक न समझ कर छोड़ दी गई है। केवल प्रकाशित प्रतियों के अन्तर को संख्यात्मक और भावनात्मक प्रतियों के विवेचन में आगे ले लिया जायगा। वार्त्ता के इस संस्करण का प्रकाशन अभी हुआ ही नहीं है और संख्यात्मक और भावनात्मक वार्ताओं के सामने यह संस्करण छोटा, क्रम रहित और किसी सीमा तक पंगु सा लगता है पर इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। संक्षिप्तता इस संस्करण की आत्मा है। इसे ध्यान से देखने पर यह भी लगता है कि इसमें भी एक क्रम है और प्रसंगों के महत्व के अनुसार इनकी संख्या घटती बढ़ती है। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि सम्वत् १७४६ की प्रति में पद्मनाभदास कृष्णभट्ट के समस्त पुस्तक में सात प्रसंग हैं।

वासुदेवदास छकड़ा के ६, चाचा हरिवंश के ६, सेठ पुरुषोत्तमदास के पाँच, जगन्नाथ जोशी और रामदास बड़े के तीन, कृष्णदास अधिकारी रुकमिणी, रामदास, प्रभुदास जलोटा, गोविंद दुबे, राणा व्यास के दो और शेष का एक एक ही प्रसंग है।

प्रसंगात्मक संस्करण का प्रचार किसी समय संख्यात्मक और भावनात्मक प्रतियों के समान या उससे अधिक भी रहा होगा इसका सबसे सुन्दर प्रमाण यह है कि इसी के आधार पर संस्कृत में और ब्रज भाषा में गद्य पद्य रूप में अनेक पुस्तकें रची गईं थी जिनके प्रसंग इन प्रसंगात्मक प्रतियों से ज्यों के त्यों मिलते हैं। 'संस्कृत वार्त्ता मणिमाला' की हस्तलिखित प्रति, जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है वार्त्ताकार के समकालीन लेखक श्रीनाथभट्ट की रचना है और इसमें भी प्रसंगात्मक वार्त्ताओं के इसी ढंग से चौरासी दोसौ बावन और निजवार्त्ता घरूवार्त्ता आदि के प्रसंग सब मिले जुले रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। इसी प्रकार बृजभाषा में उम्मेद कुँवरि बाई की 'भक्त नामावली' में भी यह क्रम है।

प्रसंगात्मक वार्त्ताओं के सम्वत् १७४६ वाले संस्करण के दामोदरदास हरसानी के प्रसंग को यहाँ उदाहरण रूप से उद्धृत किया जाता है :—

'श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवकन की वार्त्ता लिखी है। श्री दामोदरदास हरसानीजी तासों प्रभु दमला कहते। अरू कह्यो जो यह मार्ग तेरे काज प्रगट कीनो है। श्री आचार्य महाप्रभुजु ऐसे वासों कहेते। अरू श्री भागवत अहर्निश देखते वासों कथा कहते। अरू दामोदरदास सों कहते बड़ी बार भई हे श्री ठाकुरजी की वार्त्ता नाहीं करी। सो करिए।

बहोरों श्री आचार्यजु कों श्री ठाकुरजी ने ब्रह्मसम्बन्ध कराइवे की आज्ञा दीनी। श्रावण सुदी ११ अरध निसा समे। तब दामोदरदास नेक दूरि सोवत हते। श्री महाप्रभुजी वासों पुछ्यो जो तें कछु सुन्यो। तब दामोदरदास ने कह्यो जो मैं ठाकुरजी के बचन सुने परि समुझे नाहि तब श्री आचार्य जु ने कह्यो जो मोकूं श्री ठाकुरजी ने आज्ञा दीनी है जो तुम जीवन को ब्रह्म सम्बन्ध करो। हमारो सम्बन्ध कराओ। तब श्री आचार्यजी कही, जो तुम गुन निधान, जीव दोष निधान, ए क्यों संगति होय। तब श्री ठाकुरजी कही तुम ब्रह्म सम्बन्ध करावो। हों तिनकों अंगीकार करूँगो। तिनके सकल दोष निवृत होइगो सो आचार्यजी ने भक्ति सिद्धान्त—सिद्धान्त रहस्य ग्रन्थ में लिख्यो है। सर्वं दोष निवृत्तिर्हि दोषा पंच विधा: स्मृता।'

बहोंरो श्री आचार्यजु ने श्री ठाकुरजी पास मांग्यो जो मेरे आगे दामोदरदास की देह न छूटे। अरू दामोदरदास ते कछू गोप्य न राख्यो।

इसी प्रकार दो सौ बावन वैष्णवन की प्रसंगात्मक वार्त्ता की सम्वत् १८५१ की प्रति का एक उदाहरण :—

सो नागजी भट्ट ने प्रथम श्री आचार्यजी पास नाम पाइवे को आए। तब श्री आचार्यजी ने कह्यो जाइ लरिका पास नाम पाओ। तब श्री गुसांईजी पास आए नांव पायो। सो महा कृपा पात्र भयो। पाछें अपने गाउं में आए। ता पांछे केतेक दिन कों नागजी भट्ट की बेटी को विवाह आयो। तब खंभात के वैष्णवन सुन्यौ सो वैष्णव श्री गुसांईजी के सेवक हुते तिन नागजी भट्ट के घर दीन्हों'.......

इन दोनों उद्धरणों से प्रसंगात्मक वार्त्ता की शैली का आभास मिल जायगा। इन प्रतियों के लेखनकाल में सौ बरस से ऊपर का अन्तर है फिर भी प्रसंगात्मक सूचन शैली एक ही है।

एक और ऐसा भेद इन तीनों संस्करणों में मिलता है जो साधारण से साधारण पाठक की दृष्टि में खटकता है। तीनों प्रकार की वार्त्ताओं का आरम्भ 'सो' शब्द से होता है पर अन्त में भेद है। संख्यात्मक और भावनात्मक का अन्त सो वे .... आचार्यजी महाप्रभुन के अथवा (अथवा श्री गुसांईजी) के सेवक बड़े परम कृपा पात्र भगवदीय हैं। तातें इनकी वार्त्ता को पार नाहीं सो कहाँ ताईं लिखिए।' इन दो वाक्यों से प्रत्येक वार्त्ता का अन्त होता है। इन संख्यात्मक और भावनात्मक प्रतियों में भी समस्त वार्त्ता में एक ही प्रसंग है पर यह समाप्त वाक्य अवश्य है। प्रतिकूल इसके प्रसंगात्मक में इसका सर्वथा अभाव है।

प्रसंगात्मक वार्त्ताओं में उस प्रकार का विस्तृत परिचयात्मक शीर्षक भी नहीं है जो प्रत्येक संख्यात्मक या भावनात्मक वार्त्ता में अनिवार्य रूप से है। दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता में प्रसंगात्मक प्रति में केवल श्री दामोदरदास हरसानी नाम लिखा हुआ है और संख्यात्मक में 'प्रथम श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक दामोदरदास हरसानो क्षत्री तिनकी वार्त्ता लिख्यते। 'और भावनात्मक में' अब प्रथम सेवक सो श्री आचार्यजी महाप्रभुन के दामोदरदास, जिनको श्री आचार्यजी 'दमला' कहते तिनकी वार्त्ता को भाव कहत है। 'इस प्रकार उससे क्रमशः विस्तृत ढंग से शीर्षक दिया गया है।

पं० कंठमणि शास्त्रीजी ने 'प्राचीन वार्त्ता रहस्य' द्वितीय भाग की भूमिका में इसका नाम 'संग्रहात्मक' रक्खा है।

संख्यात्मक संस्करण

८४ वैष्णवन की वार्त्ता की जितनी प्रकाशित प्रतियाँ मिलती हैं चाहे वे मथुरा के लिथो प्रेस की हैं और चाहे लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस की अथवा बम्बई और डाकौर की, सब अधिकांश में संख्यात्मक संस्करणों की प्रतियाँ है। संख्यात्मक की ही हस्तलिखित प्रतियाँ भी अपेक्षा कृत अधिक देखने में आई हैं। कांकरौली विद्या विभाग की वह प्रति जिसका उल्लेख पं० कंठमणि शास्त्री और डाक्टर दीनदयालु गुप्त दोनों ने किया है वह भी संख्यात्मक ही है। वार्त्ताओं की यह प्रति सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति मानी जाती है।

इस संस्करण की पहली विशेषता यह है कि इसमें चौरासी दोसौ बावन दोनों वार्त्ताओं के उन सेवकों के प्रसंग अधिक हैं जिनका महत्व दूसरों की अपेक्षा सम्प्रदाय में

अधिक है और जो अपनी भक्ति और निष्ठा के कारण श्री महाप्रभुजी अथवा श्री गुसांईजी के अत्यन्त निकट और कृपा पात्र थे। जैसे चौरासी के वैष्णवों में श्री दामोदरदास की वार्त्ता में संख्यात्मक प्रतियों में आठ प्रसंग हैं जबकि प्रसंगात्मक प्रति में केवल एक प्रसंग है। कृष्णदास मेघन की वार्त्ता में सात प्रसंग है और प्रसंगात्मक में केवल तीन। दामोदरदास सम्भल वाले की वार्त्ता में प्रसंगात्मक में जहाँ केवल चार प्रसंग है वहाँ संख्यात्मक में प्रसंगात्मक के दो प्रसंगों के स्थान पर नौ प्रसंग का संग्रह है।

संख्यात्मक और प्रसंगात्मक के अलग अलग होने का एक प्रमाण यह भी है कि प्रसंग बढ़ाने का यह नियम सभी वार्त्ताओं में एक सा नहीं है। वासुदेव छकड़ा की वर्त्ता में जहाँ प्रसंगात्मक में ६ प्रसंग हैं वहाँ संख्यात्मक में केवल चार प्रसंग हैं। ऐसे ही रामदास बड़े भीतरिया की वार्त्ता में प्रसंगात्मक में जहाँ तीन प्रसंग हैं वहाँ संख्यात्मक में एक ही प्रसंग है और वृत भी छूटा नहीं है।

दूसरे संख्यात्मक में संख्या की वृद्धि का आग्रह अधिक है। चौरासी वैष्णवों के स्थान पर वार्त्ता में ९२ वैष्णवों की वार्ताएँ देखने को मिलती हैं पर दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में ऐसा नहीं है।

तीसरी विशेषता यह है कि इसमें जो वृत दिया गया है उसको विस्तार सहित कहने की ओर आग्रह है। इसके उदाहरण स्वरूप प्रसंगात्मक वार्त्ता के दामोदरदास हरसानी वाले प्रसंग को लेकर यहाँ यह दिखाने का प्रयत्न किया जायगा कि किस प्रकार प्रसंगात्मक के मूल अंश की रक्षा करते हुए इन प्रसंगों में अभिवृद्धि की गई है :—

प्रसंगात्मक	संख्यात्मक
श्री महाप्रभुन के सेवकन............... ....॥ सो करीए। प्रसंगात्मक में— 'केवल तुम जीवन को ब्रह्म संबंध करो।'	डाकौर संस्करण में—यह मार्ग तेरे लिए प्रगट कीनो है'—तक ही है। और संवत् १८५१ की प्रति में 'करीए' तक है। पीछे से ब्रह्म संबंध के संबंध में पूरा एक प्रसंग लिख दिया गया है।
	(२) दूसरे प्रसंग में प्रसंगात्मक की अन्तिम लाइन को लेकर दूसरा प्रसंग बना दिया गया है।
	(३) प्रसंग तीन संख्यात्मक में विशेष है। जिसमें ठाकुर जी से आचार्य जी बड़े बताए गए हैं।
	(४) प्रसंग चार भी इसमें विशेष है। जिसमें गुसांईजी दामोदरदास का आदर करते थे ऐसा बताया गया है।
	(५) पांचवे प्रसंग में 'उच्छव को प्रकार' गुसांई जी ने श्री दामोदरदास से पूंछा है।

(६) गुसांई जी ने दामोदरदास को श्राद्ध करवाया और वे उन्हें चरणोदक न लेने देते थे।

(७) श्री महाप्रभु जी का दामोदरदास को श्री गुसांईजी को वैसे ही समझने का आदेश देना जैसा कि वे महाप्रभु जी को समझते थे।

(८) जब लगि श्री आचार्य महाप्रभुन के मार्ग की स्थिति है तब तक मार्ग में श्री दामोदरदास की हूँ स्थिति है।

इस प्रकार संख्यात्मक वार्त्ता में ६ और प्रसंग हैं जिनका कोई भी लगाव प्रसंगात्मक संस्करण के इति वृत से नहीं है। पर वे प्रसंगात्मक के ही बढ़े हुए रूप हैं यह भी नहीं कहा जा सकता है।

इस संस्करण की अन्य वार्त्ताओं की भी इसी प्रकार तालिका निश्चित कर देने पर यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि जब कृष्ण भट्ट की पोथी श्री गोकुलनाथ जी को प्राप्त होंगई तब उन्होंने उसी के आधार पर इन सेवकों से सम्बंधित सभी महत्वपूर्ण इतिवृत्तों को इकट्ठा करना आवश्यक समझा और वचनामृत के अनुसार इनकी संख्या और प्रसंग सभी निश्चित किए। इसीलिए इन प्रचलित वार्त्ताओं के ग्रन्थकार श्री गोकुलनाथ जी प्रसिद्ध हैं। इन प्रसंगों को वे समय-समय पर अपने वैष्णवों के बीच कहते थे और उनके सेवक और पौत्र श्री हरिराय जी तथा अन्य सेवक इनका संग्रह करते रहते थे।

यहाँ 'बचनामृत' की सम्वत् १७९६ की प्रति जिसका ब्लाक अन्यत्र दिया हुआ है उससे वार्त्ता के प्रसंगों की तुलना करने पर इस कथन की पुष्टि हो जायगी।

वचनामृत प्रसंग — पृष्ठ ३७ संख्या ७

जो कोई उत्तम पुष्प लेतो हतो तहाँ एक वैष्णव आयो तब वैष्णव ने कह्यो जो मैं लेंउ और वाने कह्यो जो मैं लेउं सो चढ़त चढ़त दश शत हजार तांई चढ़े। तब वो तो रह्यो, वैष्णव लक्ष दै के लै गयो। लै कै ठाकुर कौ समर्प्यो।। तब भगवत स्वरूप को माथो नवायौ।। तब उन कह्यौ जो राना ए कहा।। तब ठाकुर कहयौ जो फूल के भार तें नाहीं नमत।। तेरे भावतें नमत हैं।। ये पंढरपुर की बात है। यहाँ श्रीनाथ जी कौ माथा नव्यो।

मूल वार्त्ता

.........वा माली सों वा जमनादास ने पूँछी जो याफूल न को कहा लेवेगो ? तब वाने कही एक रूपया लेऊँगो तब उहाँ एक तुर्क आयो वाने कही फूल हमारे सरदार कूँ चहिए मैं दो रुपैया देऊंगो तब जमनादास नें पाँच कहे तब वा तुर्क ने दस कहे ऐसे आपस में दोउ जने बढ़वे लगे जब लाख रूपैया सूधी बढ़े तब वे जमनादास लाख रूपैया देंके एक फूल लाए और लायके श्री ठाकुर जी की पाग ऊपर धरायो वाई समय श्री गुसांई जी गिरिराज जी ऊपर श्रीनाथ जी को शृंगार करते हते, तब श्रीनाथ जी झुक झुक जाएं तब श्री गुसांई जी

ने पूछ्यो जो बाबा क्यों झुको हो ? तब श्री गोवर्द्धननाथ जी ने श्री गुसांई जी सु ँ कही जो आपके सेवक जमनादास दक्षिण में रहे हैं सो वानें लाख रूपैया में एक फूल लैके अपने ठाकुर जी कूं धरायो है सो वाके भाव के बोझ सु ँ लचक लचक जाउँ हूँ ऐसों वाको मान है जाने मेरे लिए एक फूल के लाख रूपैया खरचे हैं ये बात सुनके श्री गुसांई जी बहुत प्रसन्न भये।

"गुसांई जी के सेवक एक वैष्णव जमनादास दक्षिण में रहते तिनकी वार्त्ता :"

वार्त्ता के प्रसंग और वचनामृत के प्रसंग का मिलान करने पर निम्न लिखित बातें दोनों में एक सी हैं।

वचनामृत	वार्त्ता संख्या १२६ दो सौ वै० वा०
(१) कोई विधर्मी जिसका नाम लेना ठीक नहीं।	तुर्क
(२) लेने की स्पर्धा	स्पर्धा। सरदार की बात अधिक
(३) दाम बढ़ना	एक लाख पर सौदा
(४) वैष्णव का मोल लेना	वैष्णव का लेना
(५) ठाकुर जी को समर्पित करना	समर्पित करना
(६) भगवान का माथा नवाना	माथा नवाना
(७) तेरे भार से झुकना	भाव से झुकना

वार्त्ता में वचनामृत से वैष्णव का नाम अधिक है। 'सरदार के लिए चाहिए'—यह अधिक है तथा श्रीनाथ जी का श्री गुसांई जी से इस घटना का उल्लेख अधिक है। शेष पाँच बातें एक सी हैं। इससे भी यही प्रगट होता है कि वचनामृत का प्रसंग वार्त्ता की शैली से वार्त्ताकार ने इसमें रख दिया है। प्रसंगात्मक और वचनामृत दोनों में संख्यात्मक वार्त्ताओं की अपेक्षा बहुत कुछ एक रूपता है। इसमें जो विस्तार की प्रवृत्ति है यह घटनाओं की भी संख्या बढ़ाने की प्रवृत्ति है वह वार्त्ता की शैली के अनुरूप है। वचनामृत समय-समय पर कही हुई बातों या प्रसंगों के संग्रह हैं और वार्त्ताएँ नित्य प्रति नियम से श्री सुबोधिनी जी की कथा के पश्चात् कही जाने वाले प्रसंगों की सूची है। इसलिए वचनामृत के संक्षिप्त प्रसंग वार्त्ताओं में विस्तृत रूप से आए हैं।

भावनात्मक संस्करण

वार्त्ताओं का यह संस्करण सबसे अधिक विस्तृत और व्यवस्थित है। इसकी बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सेवक का तीन जन्म का परिचय दिया हुआ है। इन तीन जन्मों में आधिभौतिक इतिहास, आध्यात्मिक सिद्धान्त साधना और आधिदैविक में उसके नित्य लीला स्थित मूल रूप का परिचय दिया गया है।

इस प्रकार जहाँ प्रसंगात्मक वार्त्ताओं में संक्षेप में अनेक प्रसंगों का उल्लेख एक प्रसंग के भीतर ही कर दिया गया है वहाँ इस संस्करण में प्रत्येक वार्त्ता में प्रसंग आरम्भ होने से पूर्व उस सेवक का नित्य लीला का स्वरूप और पीछे से उसके जन्म से लेकर

शरण आने तक का वृतान्त दिया हुआ है। प्रसंग के आरम्भ होने के पश्चात् जहाँ पर एक प्रसंग समाप्त होता है वहाँ फिर भाव प्रकाशकार ने उस प्रसंग में निहित सिद्धान्त रहस्य और भाव का स्पष्टीकरण किया है। इसमें उन अलौकिक उल्लेखों का भी स्पष्टीकरण किया गया है, जिनका संक्षिप्त रूप प्रसंगात्मक वार्त्ताओं में है और जिनका उल्लेख संख्यात्मक वार्त्ताओं में भी है। भावनात्मक संस्करण की विशेषता यह है कि जहाँ प्रसंगात्मक वार्त्ता में प्रसंग के पूर्वापर सम्बन्ध को समझने में कठिनाई होती है वहाँ भावनात्मक सँस्करण में उसके सम्बन्ध में सब कुछ ज्ञात हो जाता है और उस प्रसंग की गति विधि बैठाना उन लोगों के लिए भी कठिन नहीं होता है जो इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से परिचित नहीं होते हैं। वैष्णव का वृतांत, उसके रमने का स्थान, समाज में उसकी स्थिति, शरण आने से पहले का जीवन, शरण आने का कारण, शरण के पश्चात् की मनोवृत्ति, सम्प्रदाय के सिद्धान्त में आस्था, श्री महाप्रभु जी व गुसांई जी के व्यक्तित्व का प्रभाव सब कुछ मालूम हो जाने से वार्त्ता के इतिवृत का अपनी शैली पर लिखे होने पर भी स्पष्ट रूप सामने आ जाता है।

इस संस्करण में वार्त्ता में जो अलौकिक है उस पर बल दिया गया है। इसमें पुष्टि भक्ति के सिद्धान्तों पर प्रत्येक घटना को घटाया गया है। उसी को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। भाव प्रकाश के आरम्भ में ही लिखा है कि ये राजस भक्त हैं। 'ये तामस भक्त हैं' ये सात्विक भक्त हैं' अथवा ये निर्गुण हैं। जिसका आशय यह है जो भाव संयुक्त क्रिया प्रधान भक्त है वह राजस हैं, जो भाव संयुक्त शरण प्रधान भक्त हैं वह तामस है, जो भाव भावना संयुक्त है वह सात्विक हैं जो केवल भाव प्रधान हैं वे निर्गुण हैं। चौरासी के सब सेवक या भक्त भाव प्रकाश में निर्गुण लिखे गये हैं और दोसौ बावन के सभी सेवक सगुण माने गये हैं। श्री महाप्रभु जी का स्वरूप सम्प्रदाय में निर्गुण पर ब्रह्म का माना गया है इसलिए उनके सेवक निर्गुण कहे गये हैं और श्री गुसांई जी का स्वरूप सगुण पुरुषोत्तम का माना जाता है इसलिए उनके सेवक सगुण कहे गए हैं और वे हा राजस, तामस, सात्विक बताए गए हैं। यह भेद उनकी क्रियाओं से सम्बन्धित है।

इसके आगे इसमें लिखा है 'लीला में इनका नाम' 'कृष्ण प्रिया' 'सत्यव्रता' 'ललिता' 'विशाखा' श्रीदामा', 'तोक', 'कृष्ण' इत्यादि है। इसका आशय यह है कि भाव प्रकाश कार यह चाहता है कि वार्त्ता का पाठक उसके रहस्य से पूर्णतया परिचित हो जाय और उसके मर्म को भीतर से समझने का प्रयत्न करे। पुराणों में तन्त्र ग्रन्थों में और कई संहिताओं में कृष्ण की लीला और उनके परिकरों के नाम तथा स्नान आदि का उल्लेख मिलता है, उसके अनुसार ही भावप्रकाश में लीला प्रकरण दिया हुआ है। यह प्रणाली एक दम नयी नहीं है क्योंकि संख्यात्मक वार्त्ताओं में भी कहीं-कहीं श्री महाप्रभु जी तथा गुसांई जी ने कभी कभी अपने सेवकों को उनके लीला स्वरूपों व पूर्व जन्म के स्वरूपों का बोध कराया है। गोविन्ददास भल्ला की वार्त्ता में (चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १६) में श्री महाप्रभु जी ने इनको पूर्व जन्म में नन्दराय का भैंसा कहा है। इसी प्रकार दों सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १८६ में राजा भीम की वार्ता में श्री गुसांई जी ने राजा भीमसेन से कहा कि पहले जन्म में तुम कुनबी थे और खेती करते थे और एक बनिया की स्त्री का और तुम्हारा स्नेह था। इसी प्रकार 'एक साहूकार के बेटा की बहू की वार्त्ता में'

वार्ता संख्या ४३ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में श्री गुसांई जी ने ही वैष्णवों से कहा कि 'अगले जन्म में वह तुर्क ब्राह्मण था और यह बहू उसकी स्त्री हती', इत्यादि।

इस सम्बन्ध में यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि भावनात्मक संस्करण के रचयिता श्री हरिराय जी को इन सब ८४+२५२=३३६ सेवकों के पूर्व जन्म और लीला स्वरूपों का बोध किस प्रकार हुआ जो उन्होंने अत्यन्त प्रामाणिकता के साथ प्रत्येक वार्ता में उसका उल्लेख कर दिया है। क्या इस प्रकार की प्रणाली पहले से सम्प्रदाय में प्रचलित थी? जिसका अनुकरण आपने किया है अथवा यह स्वयं एक दिव्य पुरुष थे और इनके सर्वज्ञ होने के कारण इनके लिए इस प्रकार के उल्लेख सहज ही थे। छांदोग्य उपनिषद में एक मन्त्र है :—

'अथात आत्मादेश एवात्मेवाधस्तादात्मो परिष्ठदात्मा पश्चादात्मा,
पुरूस्तदात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत, आत्मैवेदं सर्वमिति।
सएवएष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन
आत्मानन्दः सस्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेकामाचारो भवति[1]।

अर्थात्—आत्मा का ही आदेश है, आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है। आत्मा पीछे है और आत्मा ही दक्षिण ओर है, और आत्मा ही बाम भाग, आत्मा ही सर्व है। इस प्रकार देखते, मानते और जानते हुए आत्मा के साथ रति करने वाला, क्रीड़ा करने वाला और विनोद करने वाला आत्मानन्द और स्वयं प्रकाश हो जाता है और वह इस लोक में सब कामनाएँ पूर्ण करता है।

तथा—श्री महाप्रभुजी के दो बचन हैं। एक 'पुष्टि प्रवाह मर्यादा नामक ग्रन्थ में' 'पुष्टया विमिश्रा सर्वज्ञा तथा निबंध में ज्ञान निष्ठा तथा ज्ञेया सर्वज्ञोहि यदा भवेत्।' इनमें पहले का अर्थ यह है कि पुष्टि पुष्टि भक्त सर्वज्ञ होता है और दूसरे का अर्थ है कि ज्ञान से निष्ठा तब जानी जा सकती है तब वह 'सर्वज्ञ' हो जाय।

इन तीनों उद्धरणों के आधार पर तो श्रीहरिराय जी की जानकारी का समाधान हो जाता है पर यदि इसे केवल बुद्धिवाद की कसौटी पर कसा जाय तो इसे केवल पौराणिक परम्परा का अनुसरण मात्र ही कहा जायगा। जातक कथाओं में भी सभी कथाओं में पहले इस जन्म की कथा है और फिर पूर्व जन्म का वृतांत है। वार्ता के भावनात्मक संस्करण को इस देश की साहित्यिक परम्परा से वह शैली सहज प्राप्त है। यदि यह कहा जाय कि इस संस्करण में उस शैली का छायानुकरण किया है तो अनुचित न होगा। जिस प्रकार जातक कथाएँ धार्मिक कथाएँ हैं जिनका सम्बन्ध भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र के साथ अनन्य रुप से जुड़ा हुआ है उसी प्रकार वैष्णव वार्त्ताएँ भी श्री महाप्रभु जी और श्री गुसांई जी के साथ इस प्रकार मिली हुई हैं कि उनकी किसी भी घटना या प्रसंग का कोई भी दार्शनिक महत्व न रह जायगा यदि उसमें से इन दो महान् विभूतियों का व्यक्तित्व अलग कर लिया जाय। वार्त्ताओं के सारे प्रसंग धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं इसलिए उनमें केवल बौद्धिक चिन्तन की दृष्टि से देख वाले को निराश ही होना पड़ेगा। एक बार पुष्टि भक्ति सिद्धान्त का महत्व समझ लेने पर

१ छान्दोग्योपनिषद पंचविंश खंड ५ मन्त्र।

वार्त्ता के अलौकिक वर्णन या प्रसंगों का रहस्य और उनके पीछे रहने वाली भावना स्पष्ट हो जाती है। वार्त्ताओं के यह प्रसंग सांप्रदायिक हैं। आज के युग में इन पर आस्था होना सर्व साधारण के लिए सहज नहीं है। सम्प्रदाय के भीतर इनका विशेष महत्व है इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता, पर जिस रूप में यह साहित्य के बीच में आए हैं उस रूप में इनका वह महत्व कदापि नहीं हो सकता है। भावनात्मक संस्करण और संख्यात्मक संस्करण के पाठ में जो भेद है उसकी तुलना अलग की गई है पर यहाँ केवल एक वार्त्ता (श्री दमोदरदास हरसानी की वार्त्ता) के एक प्रसंग की परीक्षा कर लेने से इन दोनों संस्करणों में मूल पाठ में जो भेद है उसका पता चल जायगा। तथा इस बात का भी कुछ आभास मिल जायगा कि यह भेद या बढ़े हुए अंशों का अभिप्राय क्या है।

श्री दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता (प्रसंग एक की परीक्षा)

डाकौर संस्करण	भावनात्मक संस्करण
एक समय श्री आचार्य जी महाप्रभू पृथ्वी परिक्रमा कौं पधारे हुते तब तहाँ दामोदरदास श्री आचार्य जी महप्रभून के साथ हे सो श्री आचार्य जी महाप्रभू आप दामोदरदास सों अपने श्रीमुख सों 'द्रमला' कहते और कहते जो यह मार्ग तेरे लिए प्रगट कीन्हों है सो श्री आचार्य जी महाप्रभू सो पृथ्वी परिक्रमा करत श्री गोकुल पधारे।	पाछे एक समय श्री आचार्य जी महाप्रभु आप ब्रज में पांव धारे तब दामोदरदास साथ हे। श्री आचार्य जी महाप्रभु आप दामोदर को दमला कहते और कहते, जा दमला यह मार्ग तेरे लिए प्रगट कियो है।

आलोचना—इस इतने अंश में ही डाकौर संस्करण में पृथ्वी परिक्रमा कौं पधारे हुते तब तहाँ दामोदरदास श्री आचार्य महाप्रभुन के साथ हे और भावना वाले में 'पाछे' ब्रज में पांव धारे तब दामोदरदास साथ हे' पाठ है।

इस 'पाछे' को देखकर तो यह अनुमान होता है कि संख्यात्मक संस्करण में जहाँ पृथ्वी परिक्रमा का उल्लेख है उस प्रसंग को भावनात्मक संस्करण वाले ने अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया है और इसके 'पीछे' जब वे ब्रज आए हैं उस घटना को महत्व दिया है। डाकौर के संख्यात्मक संस्करण में ब्रज का उल्लेख ही नहीं है। दोनों में दामोदरदास साथ हे' इतना अंश सामान्य है। फिर संख्यात्मक में आचार्य जी अपने श्रीमुख सो 'द्रमला' कहते है और भावनात्मक में श्री मुख शब्द नहीं है। 'सों' के स्थान 'वों' है और 'द्रमला' के स्थान पर हिन्दी 'दमला' है। आगे चलकर भावप्रकाश में 'जो दमला' सम्बोधन अधिक है आगे फिर भावनात्मक संस्करण में यह अंतिम वाक्य' सो आचार्य जी महाप्रभु से पृथ्वी परिक्रमा करत श्री गोकुल पधारे' भी नहीं है।

दोनों संस्करण के पाठ में जो विभिन्नता है वह इस तुलना से कुछ कुछ प्रगट होगई होगी।

आगे—

डाकौर संस्करण

सो श्री गोकुल में एक चोंतरा श्री गोविंदघाट ऊपर हतो तहाँ श्री आचार्यजी महाप्रभु आय विश्राम करते ता ठौर ऊपर आचार्यजी महाप्रभुन की बैठक है और श्री द्वारकानाथजी को मन्दिर है तहाँ श्री आचार्यजी महाप्रभु बैठे हते ता समय श्री आचार्य जी महाप्रभुन को महाचिंता उपजी जो ठाकुरजी ने तो आज्ञा दीनी है जो तुम जीवन कों ब्रह्म सम्बन्ध करावो तब श्री आचार्य जी महाप्रभु अपने मन में विचारे जो जीव तो दोषवंत है और श्री पुरुषोत्तमजी तो गुण निधान हैं तातें ऐसे कैसे सम्बन्ध होय तातें चिंता उपजी सो अत्यन्त आतुर भए।

भावनात्मक संस्करण

सो श्री गोकुल में चोंतरा एक गोविन्दघाट ऊपर हतो सो ता ठौर छोंकर के नीचे श्री आचार्यजी आप विश्राम करते। ताके पास श्री द्वारकानाथजी को मंदिर है। तहाँ श्री आचार्यजी को चिंता उपजी। क्यों जो श्री ठाकुरजी ने आज्ञा दीनी है जो जीवन को ब्रह्म सम्बन्ध करवाओ। तातें श्री आचार्यजी ने विचार्यो, जो जीव तो दोष सहित हैं, और श्री पूर्ण पुरुषोत्तम तो गुण निधान हैं ऐसे सम्बन्ध कैसे होय ? तातें चिंता उपजी सो अत्यन्त आतुर भये।

अन्तर

(१) डाकौर संस्करण में 'एक चौंतरा' है और भावनात्मक 'चौंतरा एक' करके बल दिया गया है।

(२) अगले वाक्य में भावनात्मक में 'छोंकर के नीचे' शब्द अधिक हैं और 'आप' और 'आय' का भेद है। जो सम्भव है प्रेस की भूल हो और श्री महाप्रभुजी बैठे हुते भी भावनात्मक संस्करण से अधिक है।

(३) आगे भावनात्मक में 'तहाँ' शब्द है और संख्यात्मक में 'ता' समय।

(४) भावनात्मक में चिंता उपजी के बाद क्यों ? शब्द अधिक है।

(५) संख्यात्मक में 'मनमें' शब्द भावना के विचारों से अधिक है।

(६) संख्यात्मक में दोषवंत शब्द है और भावनात्मक में दोष सहित ऐसे ही संख्यात्मक में श्री पुरुषोत्तम जी है और भावना में पूर्ण पुरुषोत्तम। ऐसे ही अगले वाक्य में कैसे शब्द आगे पीछे हो गया है।

डाकौर संख्यात्मक प्रति

ता समय श्री ठाकुरजी आप तत्काल प्रगट होंय के श्री आचार्यजी महाप्रभुन सों पूछे जो तुम चिंता आतुर क्यों हों तब श्री आचार्यजी महाप्रभु आप कहे जो जीवको स्वरूप तौ तुम जानत ही हौ दोषवन्त है सो तुम सों संबन्ध कैसे होय तब श्री ठाकुरजी आप कहैं जो तुम जीवन को ब्रह्म सम्बन्ध करावोगे तिनकौ हौं अंगीकार करूँगो तुम जीवन कौ नाम देउगे तिनके सकल दोष निवर्त होंयगे। ये बातै श्रवण सुदी ११ के दिन अर्द्धरात्रि को भई। प्रातःकाल पवित्रा द्वादशी हुती ताते पवित्रा सूत कौ करि राख्यौ हुतो सौ पवित्रा श्री पूरन पुरुषोत्तमजी कौ पहरायौ, मिश्री भोग धरी ता समय के ये अक्षर हुते ताको श्री आचार्यजी महाप्रभु आप सिद्धान्त रहस्य ग्रन्थ कीये हैं।

भावनात्मक संस्करण

ता समे श्री ठाकुरजी तत्काल प्रगट होइके श्री आचार्यजी सों पूंछी, जो तुम चिन्तातुर क्यों हो? तब श्री आचार्यजी आप कहे, जो जीव को स्वरूप तो तुम जानत ही हो, दोषवंत है जो तुम सो जीवन कों सम्बन्ध कैसे होय? तब श्री ठाकुरजी कहें, जो तुम जीव को नाम देउगे तिनके सकल दोष निवृत होइगे, ताते तुम जीवन को अंगीकार करो। ये बातें श्रावण सुदि एकादसी के दिन मध्यरात्र कों भई। प्रातःकाल पवित्रा द्वादसी हती। ताते पवित्रा सूत को सिद्ध करि राख्यो हतो, सो पवित्रा धराये। ता समे के अक्षर हैं, ताको श्री आचार्यजी ने सिद्धान्त रहस्य ग्रन्थ कियो है।

अन्तर

इन दोनों में जो अन्तर है वह 'आप' शब्द का है दूसरे ब्रह्मसम्बन्ध शब्द भावना वाली प्रति में नहीं है। संख्यात्मक प्रति में पवित्रा श्री पूरन पुरुषोत्तमजी कौ पहराई गई है और भावनात्मक संस्करण में 'धराए' शब्द से काम चल गया है।

ता समय श्री आचार्यजी महाप्रभु ने पूंछो जो दमला तें कुछ सुन्यो तब दामोदरदास ने बीनती कीनी जो महाराज श्री ठाकुरजी के बचन सुने तौ सही परन्तु कछु समझ्यौ नहीं तब श्री आचार्यजी महाप्रभु ने कही जो मोको श्री ठाकुरजी ने आज्ञा कीनी है तो तुम जीवन कौं ब्रह्म सम्बन्ध करावोगे तिनकौ हौं अंगीकार करूंगो तिनके सकल दोष निवृत होंयगे ताते ब्रह्म सम्बन्ध अवश्य करनो।

ता समे दामोदरदास नेक दूरि सोये हते। ताते दामोदरदास सों श्री आचार्यजी ने पूंछी, जो दमला, तें कछु सुन्यो? तब दामोदरदास ने कह्यो, जो महाराज मैंने श्री ठाकुरजी के बचन सुने तो सही, परि समुझ्यो नाहीं।

तब श्री आचार्यजी आप कहे, जो मोको श्री ठाकुरजी ने आज्ञा कीनी है, जो तुम जीवन को ब्रह्मसम्बन्ध करावो, तिनकौ हौं अंगीकार करूँगो। और जिनको तुम नाम देउगे तिनके सकल दोष निवृत होंइगे तातें ब्रह्म सम्बन्ध अवश्य करनो।

अन्तर

इन दोनों में अन्तर यह है कि भावना वाली प्रति में यह है कि दामोदरदास ने नेक दूरि सोये हते। दूसरे अन्तर है करवादो (आज्ञा) और करवोगे और भावना में नाम निवेदन और अधिक है।

सामूहिक परीक्षा

इन तीनों संस्करणों का संक्षिप्त परिचय और भेद बता देने के पश्चात् अब इनकी सामूहिक परीक्षा कर लेना आवश्यक है।

भाषा, भाव और वृत्त तीनों की दृष्टि से यह तीनों संस्करण पृथक् पृथक् हैं इसमें कोई सन्देह के लिए स्थान नहीं है। प्रसंगात्मक वार्त्ताएँ केवल वैष्णव नाम स्मरण के लिए ही संग्रहीत हुई थी ऐसा उसके भीतर के वृत्त से स्पष्ट प्रगट है जैसे गड्डू स्वामी या लड्डू स्वामी की प्रसंगात्मक वार्त्ता में इसके अतिरिक्त कुछ भी और नहीं लिखा है कि ये श्री महाप्रभुजी के बड़े कृपा पात्र सेवक थे तथा कविराज भाट की वार्त्ता भी ऐसी ही है। प्रसंगात्मक में अधिक से अधिक कुछ मूल वृत्तों का उल्लेख मात्र है। उसमें उनका विस्तार बिल्कुल नहीं है और न उसमें किस समय किस अवसर पर किस स्थान पर यह प्रसंग घटा है इस परिस्थिति पर भी प्रकाश नहीं डाला गया है। इन प्रसंगों से यह भी पता नहीं चलता है कि सम्प्रदाय में इन प्रसंगों का क्या मूल्य है। यह प्रसंग अपने इस रूप में छोटे से छोटे उल्लेख मात्र हैं। इस उल्लेख का उद्देश्य इतिवृत्त की रक्षा के अतिरिक्त उसको सहज रूप में स्मृति में लाना भी है। इतिवृत्त शब्द तो इन प्रसंगों के लिए ठीक नहीं लगता है फिर भी यह संक्षिप्त उल्लेख मात्र एक उद्देश्य को लेकर आगे बढ़े हैं और इनके पीछे जो आधार है उसकी जड़ें सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में गहरी जड़ जमा चुकी हैं। जिस प्रकार नाभादासजी ने एक छोटे से छप्पय में कभी एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का परिचय दिया है और कभी एक ही छप्पय में एक से अधिक चार चार पाँच पाँच भक्तों का उल्लेख मात्र कर दिया है उसी प्रकार इन प्रसंगात्मक वार्त्ताओं ने भक्तों के उल्लेख मात्र से अपने को सन्तुष्ट कर लिया है। इन प्रसंगों को सर्वप्रथम बोल चाल की ब्रजभाषा में लिपिबद्ध करने का श्रेय उज्जैन के पंडित कृष्ण भट्ट की है जिनकी पोथी उनके निधन के पश्चात् श्री गोकुलनाथ जी को उनके पुत्र द्वारा प्राप्त हुई थी और जिसे वे बड़ी सावधानी से रखते थे और नित्य प्रति कथा के पश्चात् बाँचते थे।

इसके पश्चात् इसको पद्य रूप में प्रस्तुत करने वाले श्री गुसांई जी के सेवक अलीखान पठान हैं। यहाँ यह निर्विवाद रूप से निश्चय हो जाता है कि गद्य वार्त्ता के सर्व प्रथम लेखक श्री गोकुलनाथजी नहीं हैं वरन् श्री कृष्ण भट्ट जी हैं और हिन्दी गद्य के आदि लेखक यह कृष्ण भट्ट जी ही हैं श्री गोकुलनाथ जी नहीं। इनकी लिखी पोथी से प्रभावित होकर श्री गोकुलनाथ जी ने वार्त्ता के बृहद् संस्करण की जो योजना की और इनके महत्व को बढ़ाया व मान्यता दी इससे ये ही उसके आदि लेखक माने गए हैं और कृष्ण भट्ट का नाम उसी प्रकार विस्मृत हो गया है जिस प्रकार सुन्दर भवन निर्माण करने वाले के स्थान पर उसका सारा श्रेय उसके निर्माण कराने वाले को मिल जाता है। प्रसंगात्मक वार्ता में न तो प्रसंग का क्रम निश्चित है और न वैष्णवों की संख्या।

संख्यात्मक वार्त्ताएँ प्रसंगात्मक वार्त्ताओं को आधार बना कर आगे चली हैं। यह दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता में दिए हुए प्रसंगों से स्पष्ट हो गया है। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि प्रसंगात्मक वार्त्ताओं की विशेषता यही रही है कि उनमें वैष्णवों और प्रसंगों दोनों की संख्या अनिश्चित सी रही है। पीछे से जब श्री गोकुलनाथजी को इन प्रसंगात्मक वार्त्ताओं ने प्रभावित किया और उन्होंने इन सेवकों के तथा अन्य सेवकों के सम्बन्ध में जो अन्य इतिवृत्त सम्प्रदाय में प्रचलित थे अथवा जिनका उल्लेख वे समय-समय पर अपने वचनामृतों में करते थे, उन सबका संकलन और वर्गीकरण करवाना आरम्भ कर दिया और वह सब सामग्री जो उनके समय में वैष्णवों में सबसे अधिक लोकप्रिय रही है उसका संग्रह आरम्भ होगया होगा और उसकी व्यवस्था भी आपके निर्देशन में हुई होगी। अन्यथा यह चौरासी और दोसौ बावन की वार्त्ताओं का सुव्यवस्थित क्रम सहज में ही प्राप्त न हो जाता। अधिक से अधिक प्रसंग, समकालीन साक्ष्य, जीवित सेवकों से इकट्ठे किए गए हैं और उनको क्रमपूर्ण ढंग से सजा दिया गया है। संख्यात्मक वार्त्ता में प्रसंगात्मक की अपेक्षा जो वृत्तों की और संख्या की अधिकता है उसका कारण भी यही है। इसीलिए इसकी भाषा प्रसंगात्मक वार्त्ताओं से भिन्न है क्योंकि यह स्वतंत्र ग्रन्थ है। प्रसंगात्मक पर की गई टिप्पणियाँ मात्र नहीं है। विशेष या अधिक इतिवृत्त संकलनकर्त्ता ने इस बात की ओर पूरा ध्यान दिया है कि प्रसंगात्मक वार्त्ता का मूल भाव ज्यों का त्यों बना रहे। पर उस प्रसंग का जितना अधिक परिचय दिया जा सके वह भी दिया जाय और जो कुछ भी उस व्यक्ति के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले प्रसंग प्राप्त हों वे सब इसमें आ जांय और मूल प्रसंग में कहे हुए तथ्यों की पुष्टि करते चलें। एक के साथ अनेक का उल्लेख और उनका मेल मिलाना इस संख्यात्मक संस्करण की विशेषता है। संख्यात्मक का उद्देश्य इतिवृत्त का संग्रह है।

इसके लेखक श्री गोकुलनाथजी ही हैं। इसका आशय यह नहीं है कि उन्होंने उसे अपने हाथ से ही लिखा है पर इतना अवश्य है कि इसमें भाषा उन्हीं की है। कृष्णदासी की वार्त्ता में उनका नाम आदरपूर्वक होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि इसके कर्त्ता वे नहीं हैं। यह सम्मान पीछे से प्राप्त श्रद्धा का परिणाम है और कुछ नहीं।

भावनात्मक संस्करण सबसे अधिक पूर्ण और विस्तृत संस्करण है। जिसमें प्रसंग और व्यक्ति के सम्बन्ध में जो कुछ प्राप्त और यथा शक्ति सम्भव हो सका है उस सबका संकलन किया गया है। प्रसंगात्मक वार्त्ता से अधिक गुरुतर कार्य था संख्यात्मक वार्त्ता प्रसंगों का संकलन और सम्पादन, पर सबसे अधिक गुरुत्तम और महत्वपूर्ण काम था भावनात्मक संस्करण की योजना और उसके लिए सामग्री एकत्र करना। इस महत्वपूर्ण कार्य को श्री हरिरायजी ने साम्प्रदायिक दृष्टि से बड़ी योग्यतापूर्वक पूरा किया है। भावनात्मक संस्करण भी भाषा की दृष्टि से प्रसंगात्मक और संख्यात्मक से भिन्न है और इतिवृत्त का जो संग्रह इसमें है वह भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इस भावप्रकाश के अभाव में सम्प्रदाय में इन वैष्णवों के सम्बन्ध में जो वृत्त भावप्रकाश में मिलता है वह सहज प्राप्त न हो सकता था और प्रसंगात्मक वार्त्ता या संख्यात्मक वार्त्ता पढ़कर जो जिज्ञासा होती है उसकी सहज शान्ति न हो सकती थी। पूर्व जन्म का वृत्त देकर, लीला का स्वरूप देकर, सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की जिज्ञासा की शान्ति इस संस्करण द्वारा हो जाती है। इस

संस्करण में यह तो स्पष्ट ही लिखा है यह जीव इस कोटि का था इसलिये इसका यह आचरण उचित ही है। इस संस्करण के परिचय में इस सन्देह का निराकरण किसी हद तक किया जा चुका है कि यह वृत्त श्री हरिरायजी को कहाँ से प्राप्त हुआ होगा। समस्त सामग्री हरिरायजी को श्री गुसांईजी के सेवकों से ही प्राप्त हुई होगी और उन्होंने उसे अपनी योग्यता द्वारा क्रमबद्ध करके यह रूप दिया है।

साधारण पाठक जब इन तीन संस्करणों की भिन्न भाषा, भिन्न शब्द प्रयोग देखता है और जब उसे इन संस्करणों में प्रसंगों में भी भेद दिखाई देता है तो वह सहज ही में पं० रामचन्द्र शुक्लजी के साथ हाँ में हाँ मिलाने को तैयार हो जायगा कि वार्त्ता का न तो एक प्रसंग एकसा है और न किन्हीं दो प्रकाशित संस्करणों की भाषा में साम्य है। इसलिए वे किसी साम्प्रदायिक व्यक्ति द्वारा पीछे से रची गई हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में जो गुजरातियों का प्राबल्य है और उनके शब्द सम्प्रदाय में आकर फिर वार्त्ता में आ गये हैं वे इस सन्देह की और भी पुष्टि कर देते हैं। पर बात ऐसी नहीं है। भाषा और इतिवृत का जो भेद है वह इन वार्त्ताओं के अलग-अलग होने के कारण है और हस्तलिखित पुस्तकों की प्रतिलिपि करने वालों की असावधानी या अज्ञान का परिणाम है। यही बात इतिवृत्त की है। ज्यों ज्यों वार्त्ता के रूप प्रस्तुत करके इस जन साहित्य को वैष्णवों के बीच रखने की प्रेरणा वलवती होती गई त्यों त्यों इसने संख्यात्मक के पश्चात् भावनात्मक का रूप धारण कर लिया। वार्त्ता के सम्बन्ध में शंकाओं के समाधान के लिए ही एक प्रकार से भावनात्मक संस्करण की रचना हुई है। इस भावनात्मक संस्करण का उद्देश्य भाव प्रधान व्यक्तियों, घटनाओं और प्रसंगों को साधारण से अधिक महत्व देना है। इसलिए इसमें संख्यात्मक वार्त्ताओं की अपेक्षा कुछ विभिन्नता है जिसमें वार्त्ताएँ अलग, प्रसंग अलग, और शब्द प्रयोग भी भिन्न हैं। इस प्रकार यह तीनों प्रकार की वार्त्ताएँ अलग-अलग हैं।

महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता, निज वार्त्ता, घरू वार्त्ता भावनात्मक संस्करण

वार्त्ताओं का यह विवरण इन वार्त्ताओं के उल्लेख के बिना अपूर्ण रहेगा और जिस निष्कर्ष का समर्थन इस प्रबन्ध में किया गया है उसकी पुष्टि भी इन ग्रन्थों के अभाव में पूरी न हो सकेगी।

जहाँ ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्त्ताओं के प्रसंगात्मक, संख्यात्मक और भावनात्मक तीन संस्करण प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं वहाँ इन वार्त्ताओं के केवल दो ही संस्करण उपलब्ध हैं एक प्रसंगात्मक और दूसरे भावनात्मक। इन पुस्तकों के दोनों संस्करण प्रसंगों की दृष्टि से एक से हैं। भावनात्मक संस्करण में श्री हरिरायजी ने केवल प्रसंग के भाव को स्पष्ट करके लिख दिया है। उदाहरण के लिये घरूवार्त्ता निजवार्त्ता का यह प्रसंग—

'सो श्री आचार्यजी महाप्रभु अग्नि कुण्ड में ते प्रगट भए। सो श्री लक्ष्मण भट्ट और इल्लमा गारूजी इनको लैके घर पधारे। सो श्री आचार्यजी महाप्रभु आप पांच वर्ष के भए। तब चार्यो वेद और पुराण, खट शास्त्र पढ़े। तब लक्ष्मण भट्टजी सो ठाकुरजी स्वप्न में कहे, जो तुम सन्देह काहे को करते हो ? मैं साक्षात् तुम्हारे घर प्रगट भयो हूँ। तब केतक दिन पाछे लक्ष्मण भट्टजी श्री भगवद् चरणारविंद को प्राप्त भए।'

भाव प्रकाशः—

'सो ताकौ कारन यह है, जो श्री आचार्यजी महाप्रभुन को दैवी जीवन कौ उद्धार करनो है पृथ्वी परिक्रमा करनी है। और जो लक्ष्मन भट्टजी विराजत होइ तो श्री आचार्यजी महाप्रभु इनकी आज्ञा बिना कैसे जांय ? और लक्ष्मण भट्टजी बालक को अकेले जाइवे की आज्ञा कैसे देई। तातें यह स्वतन्त्रता बिना दैवी जीवन कौ कार्य न होई।'

(सम्वत् १८३६ की हस्तलिखित प्रति)

यह स्पष्ट कर देता है कि इसका भावप्रकाश कार्य कारण सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है। मूल इतिवृत्त इन भावनात्मक प्रतियों के प्रसंगात्मक से भिन्न नहीं है। कारण स्पष्ट ही है कि यह वृत्त केवल प्रसंगमात्र हैं और इनका सम्बन्ध अधिक से अधिक दो व्यक्तियों से है।

श्री महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता भावनात्मक संस्करण

इस संस्करण में मूल के साथ भावना की व्याख्या दी हुई है। इस पुस्तक में कुल अठारह प्रसंग हैं। प्रसंगों के आरम्भ में, बीच में और अन्त में टिप्पणियाँ हैं जिनमें लीला स्वरूपों का भी उल्लेख है। जैसे—

'लीला में ललिताजी की सखी मनमथ मोदा ताकी सखी है। इनको नाम नारदी है। सौ सगरी सखीन कों ईर्षा करती। सो एक समय श्री स्वामिनीजी बगीची में फूल बीनत

हती। सो नारदी वहाँ आई। तब श्री आचार्यजी कहे नारदी ! ललिता कहाँ है ? तब याने कही घर होयगी.......इत्यादि।

इस पुस्तक में निजवार्त्ता घरूवार्त्ता के ही प्रसंग संग्रहीत है पर वे इनकी अपेक्षा अधिक व्यवस्थित संशोधित और परिवर्धित रूप में रखे हैं। इसके भीतर केवल अठारह प्रसंग हैं।

श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता-प्रकाशन विद्या विभाग कांकरौली [वि० सं० २००१]

वार्त्ता प्रसंग

(१) में लिखा है कि एक समय चन्द्रावलीजी ने लीला में शाप दिया कि आचार्य महाप्रभु की लीला सामग्री भूमि में प्रगट हो इस कारण दक्षिण में चम्पारण्य नाम का स्थान हुआ जहाँ अधिकतर वृक्ष चम्पा के थे।

(२) आचार्य महाप्रभु तैलंग कुल द्विज तैत्तरीय शाखा के ब्राह्मण के घर प्रकटे। इस कुल में प्रथम नारायण हुए। इन नारायण ने सोमयज्ञ विधिपूर्वक किया था। इस यज्ञ में ही अग्नि कुण्ड से भगवान ने कहा था कि हम तुम्हारे कुल में जन्म लेंगे।

(३) इन नारायण के गंगाधर भट्ट हुए और इनके पुत्र गणपति भट्ट। इन दोनों ने भी सोमयज्ञ किये थे। इन गणपति भट्ट के पुत्र वल्लभ भट्ट हुये जो वसुदेव के अवतार थे जिनका मन ब्रह्म में अधिक लगता था और जिन्होंने भी सोमयज्ञ किया था। इनकी पत्नी (देवकी स्वरूप) एलम्मागारूजी थी। इनके बहुत दिन तक कोई सन्तान न थी।

(४) एक दिन लक्ष्मण भट्ट से स्वप्न में ठाकुरजी ने कहा, तुम 'चिन्तामत करो तुम्हारे तीन पुत्र होंगे।'

(५) पहले पुत्र का नाम रामकृष्ण रक्खा गया। यह महापुरुष आठ प्रहर गायत्री जप करते थे। इनके यज्ञोपवीत में लक्ष्मण भट्ट ने सब जाति को भोजन करवाया था।

(६) इनके यज्ञोपवीत पश्चात एल्लमागारूजी फिर गर्भवती हुई, उसी साल माघ महीने में सोमवती अमावस्या थी इसलिए लक्ष्मणभट्टजी सपरिवार प्रयाग स्नान को आए। वहाँ से काशी गए। इस समय माताजी को सात महीने का गर्भ था। काशी में म्लेच्छ का उपद्रव था इसलिए कुछ दिन बाद वे चम्पारण्य पहुँच गए। वहीं रात्रि के समय माताजी का गर्भ गिर गया, पर भय के कारण लक्ष्मणभट्टजी वहाँ से चल दिए। पीछे उन्होंने अपने स्वप्न को याद किया और वातावरण को देखा तो सन्देह हुआ कि कहीं इस गर्भपात में भगवान का जन्म न हुआ हो इसलिए वे चौड़ानगर में ठहर गए और काँकरवाड न गए और कुछ दिन वहीं रहे और वहीं उन्हें पता चल गया कि काशी का उपद्रव शान्त हो गया है। जब रात्रि को चिंता मग्न सोए तो उन्हें फिर स्वप्न हुआ कि उनका पुत्र अग्नि कुण्ड में बीच में है और श्री गोवर्द्धननाथ ने उन्हें दो मालाएं एक पीला उपरणा और एक चर्बित बीड़ी दी। इतने में काशी में उपद्रव शान्त होगया और साथ के लोग तो काँकरवाड चले गए यह दम्पति अपना सब सामान चौड़ानगर के हाकिम के मार्फत काशी भेजकर चम्पारण्य को गए और दोपहर को वहाँ पहुँचे।

(७) उस दिन बैसाख वदी ११ संवत १५३५ थी और गर्भ बैसाख वदी ११ को गिरा था।

(८) चम्पारण्य पहुँच एल्लमागारूजी ने अग्नि कुण्ड से प्रार्थना की और अग्नि सब एक ओर होगई और उन्होंने अपने पुत्र को उठा लिया। इतने में आलौकिक महल खड़े होगए और बड़ा उत्सव हुआ और सब गोपी ग्वालों ने दधिकांधो किया और गंगादि ऋषियों ने वल्लभ नाम रख दिया।

(९) (१) 'प्रगटे श्री वल्लभ सुखधाम'
(२) भक्त सुधा बरसत हो प्रगटे श्री वल्लभ
(३) श्री वल्लभ रूप सुरंगे
(४) आजु बधाई मंगलचार
(५) आ शुकदेव सबल आनन्दिया वल्लभजी ना चरण श्री गिरधरण भागवत महारूँ निरखशे ए

(१०) श्री महाप्रभु और गुसांईजी का जीवन उसी प्रकार नित्य है जिस प्रकार जन्म अष्टमी का उत्सव नित्य। जिस सेवक पर उनकी कृपा होगी उसी को इसका अनुभव होगा और वही गान करेगा।

(११) भागवत का रस श्रीगोवर्द्धनधर रूप से प्रगट होगा।

(१२) श्री गुसांईजी महाप्रभुजी भागवत में पुरुषोत्तम की लीला रस है।

वार्त्ता प्रसंग–प्रथम पंक्ति

(१३) कृष्णदास का ढाडी का पद—
हों बलि वल्लभ तिहारो ढ़ाडी आयो हों
कृष्णदास श्री वल्लभ के गुण जन्म-जन्म जस गाये।

(१४) इसमें लिखा है कि चम्पारण्य से वे फिर चौड़ानगर आए और वहाँ से वे काशी आए और वहाँ एक मकान में पाँच वर्ष तक रहे। वहाँ महाप्रभु का यज्ञोपवीत किया और नारायण भट्ट के पास पढ़ने को बिठा दिया। यह नारायण भट्ट पांडित्य का अवतार था।

(१५) ६ महीने में ही यह सीख गए। नारायण भट्ट इन्हें कृष्ण का अवतार कहता है।

(१६) नारायण भट्ट ने इनसे यह गुरू दक्षिणा मांगी कि वे इन्हें गुरू न कहें और व्यासजी को गुरू कहें।

(१७) इनका विद्या चमत्कार देखकर इनके पिता को आश्चर्य हुआ और उन्हें स्वप्न में कह दिया गया कि मैं मायावाद के खंडन और भक्ति मार्ग प्रकट करने को ही भूमि पर प्रगट हुआ हूँ।

(१८) जब महाप्रभु दस बरस के थे तब लक्ष्मण भट्ट की देह छूटी। (यानी लगभग १५४५ सम्वत् में)

(१९) इसके बाद आचार्य एक बरस और घर में रहे और फिर माता से आज्ञा लेकर तीर्थ स्थान को गए। प्रयाग से जब वे आगे चले तो एक महापुरुष का आश्रम मिला जिसको पहले स्वप्न होगया था कि श्री वल्लभाचार्य तेरा उद्धार करेंगे। वहाँ उन्होंने उसको सेवक बनाया और अष्टाक्षर मंत्र दिया।

(२०) उसके बाद आचार्य दक्षिण जाना चाहते थे तो बुन्देलखंड पधारे।

(२१) दामोदरदास के शरण में आगे की कथा जो दामोदरदास की वार्त्ता में दी है। तथा दामोदरदास के भाइयों के नाम चतुरदास, भगवानदास, हरप्रसाद।

(२२) दामोदरदास को साथ लेके राजा कृष्णदेव के विद्यानगर गए जहाँ उनके मामा का घर था। वहाँ मामा से झगड़ा हुआ और कमंडलु को पहले पहुँचाकर आप मामा की इच्छा के विरुद्ध सभा में गए थे और वहाँ मायावाद का खंडन किया और वहाँ आपका सौ मन सोने के फूलों से कनकाभिषेक हुआ और आपका नाम वल्लभाचार्य प्रसिद्ध हुआ। आपने कनकाअभिषेक का द्रव्य सब बंटवा दिया और अनेक मोहरों में से केवल सात मोहर लीं जिन्हें उन्होंने दैवी सिद्ध किया। माधवाचार्य नाम के एक सन्यासी ने इन्हें अपने सम्प्रदाय में आने को आमंत्रित किया और विल्वमंगल ने विष्णु स्वामी सम्प्रदाय में प्रवेश करने को कहा और इन्होंने पुष्टि मार्ग की व्याख्या की और सेवा मार्ग के प्रगट करने की बात कही।

(२३) यह विल्वमंगल वृन्दावन में मरे। विष्णु स्वामी भी ब्रह्म कुण्ड के पास इमली में रहते हैं।

प्रसंग दो में (१) वल्लभाचार्यजी के ओड़छा में मायावाद के खंडन का उल्लेख है। वहाँ उन्होंने स्मार्तों की सरस्वती को झूँठ बोलने से मना कर दिया।

(२) ओड़छा के राजा का नाम रामचन्द लिखा है और रामभद्र नारायण है।

(३) यहाँ रूद्राक्ष की माला अग्नि में जल गई है और आचार्य की नहीं।

प्रसंग तीन में—

(१) आचार्य महाप्रभु जब ओड़छे से चले तब मार्ग में उनकी कृष्ण चैतन्य से भेंट हुई ऐसा लिखा है और लिखा है कि आचार्य ने उन्हें अपना पुष्टि मार्ग बताया।

चैतन्य चरितामृत के तीसरे भाग में भी यह घटना लिखी है पर वह भेंट प्रयाग में होना लिखा है। यह दोनों वर्णन मिलते नहीं है।

(२) कृष्णदास को सन्देह हुआ कि ऐसा कौन होगा जो आठ पहर नाम ले— उसका निवारण एक पक्षी के उदाहरण से किया है।

प्रसंग चार में—

पृथ्वी परिक्रमा के बहाने आचार्य ने सारे तीर्थ पवित्र किए इसका उल्लेख है। और गोपालदास का यह पद है।

तीरथ सकल सनाथ कीधा चरण रेणु समाज

प्रसंग पाँच में—

वन में अजगर उद्धार का प्रसंग है। और उत्तर की ओर हाड़ के पहाड़ तथा दो तपस्वी ब्राह्मणों के उद्धार तथा आयोर में जन्म तथा मृत्यु की कथा है।

प्रसंग छै में —

गोवर्द्धननाथ जी के श्रंगार की चर्चा है और सद्दू पांडे आगरे से नूपुर और

मुरली बनवाने की बात लिखी है और लिखा है गोवर्द्धननाथजी आचार्यजी से बात करते थे और उन्होंने नूपर माँगे व बिना उनके रूष्ट हुए। यहअलौकिक है सारा प्रसंग।

प्रसंग सात में—

आचार्यजी की बद्रीनाथ की यात्रा का उल्लेख है। वह कृष्णदास मेघन और दामोदरदास हरसानी इनके साथ थे। वहाँ वामन द्वादशी को फलाहार के अभाव में गुसांईजी ने बद्रीनाथजी के आग्रह से भोजन किया। उसमें लिखा है गुसांईजी ने जयन्ती की—बड़ों ने उपवास की रीति रक्खी। छोटों ने फलाहार किया। रघुनाथजी ने उत्सव के बाद फलाहार किया और गिरधरजी ने व्रत किया। इस प्रकार तीन रीतियां हुई।

बद्रीनाथ की बात अलौकिक है।

आठवे प्रसंग में—

गोकुल में गोविंदघाट पर छोंकर के नीचे की बैठक का उल्लेख है और वैष्णव के सालिग्राम के बटुवा खोने का उल्लेख जिसे वल्लभाचार्यजी ने 'पत्रे पत्रे चतुर्भुज' दिखाए और उस छोंकर का नाम ब्रह्म-छोंकर पड़ा।

नवे प्रसंग में—

किसी दूसरी बार गोकुल में दूसरे वैरागी को मदन मोहन पर सालिग्राम रखने को मना किया पर वह न माना तो सालिग्राम के चार टुकड़े होगए और फिर एक होगए।

सारा प्रसंग अलौकिक महत्व का सूचक है।

दसवे प्रसंग में—

मथुरा में एक कसेरे की दूकान की ठाकुरजी की सारी मूर्तियां आचार्य की दृष्टि पड़ते ही पुरुषोत्तम होगईं और आचार्य से सबने सेवा करने को कहा। ठठेरे के आपत्ति करने पर उसे कृष्णदास मेघन ने सब स्वरूप सवासी में खरीद लिए और अडैल को ले गए और वहाँ नवनीतप्रियजी की प्रसादी रसोई रक्खी गई।

ठाकुर की मूर्तियों का बोलना अलौकिक है।

ग्यारहवे प्रसंग में—

उज्जैन में एक पीपल के पत्ते को वृक्ष में परिवर्तित कर देने से सब शिवपुरी में वैष्णवता दृढ़ हुई।

पूरा प्रसंग अलौकिक है।

बारहवे प्रसंग में—

दक्षिण में एक स्वर्ण मूर्ति का दान में न लेना आदि त्याग का उल्लेख है।

तेरहवे प्रसंग में—

गंगासागर जाने का उल्लेख है, वहाँ से जगन्नाथजी जाने का, वहाँ एकादशी व्रत करने का तथा मायावादियों का खंडन करने का उल्लेख तथा जगदीश की मूर्ति का यह लिखने का प्रकरण है।

एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतं, एको देवो देवकी पुत्र एव। मंत्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा। यहाँ वे भक्ति मार्ग के आचार्य करके घोषित हुए यहाँ महाप्रभु ने एक सन्देह कर्त्ता को म्लेच्छ पुत्र कह दिया जो परीक्षा पर सत्य निकला।

नोटः—यह प्रसंग मायावाद के खंडन, तथा महाप्रभु के अलौकिक चमत्कार को प्रगट करने के लिए है।

चौदहवे प्रसंग में––

माता एलम्मागारू के नवनीत प्रिय द्वारा ब्रह्म सम्बन्ध व कंठसिरी भेंट का प्रसंग है।

पन्द्रहवे प्रसंग में–

अडैल में एक तैलंग ब्राह्मणी की ईर्षा की कहानी है। उसे शरण देने की उदारता दिखाने का उल्लेख है। इसे चौका पोतने की सेवा मिली थी।

सोलहवे प्रसंग में—

आगरे के एक वैष्णव की गाड़ी भर मिश्री को जमुना में डलवाने की कथा है।

सत्रहवे प्रसंग में—

भोग की शिथिलता पर भीतरियों को सचेत करने का प्रसंग है कि देर स्वामिनीजी को असह्य है और विलम्ब होने पर वे स्वयं प्रबन्ध करने का कष्ट करती हैं। इसमें नाथ द्वार का उल्लेख है।

अठारहवे प्रसंग में—

घन्टानाद करके मंगला भोग पीछे शंखनाद करने की प्रथा का उल्लेख है।

भेद–

महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता के पहले लीला का सम्बन्ध है। जो निज वार्त्ता और घरूवार्त्ता की प्रकाशित प्रतियों में नहीं है। वंश परिचय भी इस ग्रंथ में नहीं है। प्राकट्य की तिथि दोनों में है पर महाप्रभु की प्राकट्य की वार्त्ता में गर्भस्राव की तिथि अलग दी है। उस समय की सभी अलौकिक घटनाएँ निजवार्त्ता घरूवार्त्ता में नहीं है। महाप्रभुजी प्राकट्य की वार्त्ता में यज्ञोपवीत की तिथि नहीं है। निजवार्त्ता घरूवार्त्ता में रविवार चैत्र वदी ६ सम्वत् १५४० दिया हुआ है। यहाँ प्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता में केवल पाँच वर्ष का उल्लेख है। इसमें पढ़ाई का उल्लेख है और निजवार्त्ता में अत्यन्त संक्षिप्त है। महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता में लक्ष्मण भट्ट के निधन की कोई तिथि नहीं है, केवल महाप्रभुजी के दश वर्ष के होने का उल्लेख है। निजवार्त्ता घरूवार्त्ता में सम्वत् १५४८ और लक्ष्मण बालाजी स्थान दिया है। महाप्रभुजी के प्राकट्य वार्त्ता में केशव भट्ट का उल्लेख है निजवार्त्ता घरूवार्त्ता में नहीं है। महापुरूष के उद्धार का जो दूसरा प्रसंग निजवार्त्ता घरूवार्त्ता में है वह महाप्रभु प्रकट्य वार्त्ता में पहले प्रसंग में ही सम्मिलित है और विस्तार से है। तीसरा प्रसंग भी प्राकट्य वार्त्ता के प्रसंग में ही है इसमें दामोदरदास के अलौकिक स्वरूप का कथन है। विद्यानगर का शास्त्रार्थ जो निजवार्त्ता में चौथे प्रसंग में है, वह भी इसके प्रथम प्रसंग में है: इसी प्रकार निजवार्त्ता घरूवार्त्ता की प्रसंग सूची और महाप्रभुजी के प्राकट्य की

वार्त्ता की सूची में विषय और क्रम दोनों का अन्तर है। महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता के प्रसंग दो में ओड़छे के मायावाद के खंडन का उल्लेख है और रुद्राक्ष की माला के जलने का प्रसंग है। यह प्रसंग निजवार्त्ता घरूवार्त्ता के श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता में ओड़छे से चलने के बाद ही श्री महाप्रभुजी और कृष्ण चैतन्य की भेंट का उल्लेख है। यह प्रसंग निज वार्त्ता के २७वें प्रसंग पर है। शेष प्रसंगों में भी इसी प्रकार अन्तर है। जिससे यह प्रगट होता है कि यह दोनों पुस्तकों में भी समय-समय पर की गई प्रसंगात्मक वार्त्ताओं के संग्रह हैं जिनमें से केवल महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता पर हरिरायजी का भाव प्रकाश प्राप्त है और काँकरौली विद्या विभाग से प्रकाशित भी हो चुका है।

---

८४ वैष्णवों की वार्त्ता भावना और डाकौर के पाठ की तुलना और भेद

[दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता (९२ वैष्णव)]

डाकौर	भावना
१—डा० में ८ प्रसंग हैं।	२—भा० में दस प्रसंग हैं।
प्रसंग १—डाकौर में श्री आचार्यजी की बैठक का जिक्र है जो भावना में नहीं है। साथ ही मिश्री भोग रखने का वर्णन तथा श्लोक भी भावना वाली से अधिक है। डाकौर के अनुसार श्री आचार्यजी पृथ्वी-परिक्रमा को पधारे थे, तब वहाँ दामोदरदास उनके साथ थे।	प्रसंग १—भावना के प्रथम प्रसंग में यह लाइनें डाकौर से अधिक हैं—"और कथा कहत में श्री आचार्यजी दामोदरदास सों कहते, जो-दमला। बड़ी बार भई है, श्री ठाकुरजी की वार्त्ता नहीं करी।" भावना के अनुसार पीछे एक समय ही आचार्य जी आप ब्रज में पधारे, तब दामोदरदास उनके साथ थे।
प्रसंग २—श्री आचार्यजी ने ठाकुर जी से सिर्फ एक वर माँगा है।	प्रसंग २—श्री आचार्यजी ने ठाकुरजी से तीन वर मांगे हैं। वर माँगने का हेतु इसमें डाकौर से अधिक दिया है। साथ ही "दामोदरदास से······कहे" तक की लाइनें डाकौर से अधिक दी हैं।
प्रसंग ३—	प्रसंग ३—
प्रसंग ४—दो चार वैष्णव।	प्रसंग ४—दो चार वैष्णव कुम्भनदास, गोविन्ददास आदि।
प्रसंग ५—जो बातें भावना के दूसरे प्रसंग में थीं, परन्तु डाकौर के दूसरे प्रसंग में नहीं थीं, वही बात डाकौर के ५ वें प्रसंग में है। अर्थात् वर मांगने का हेतु तथा 'दामोदरदास से कहे' तक की लाइनें दी हैं।	प्रसंग ५—भावना के ५ वें प्रसंग की समस्त विषय वस्तु ५ वें प्रसंग की बजाय डाकौर के छठवें प्रसंग में हैं।

भाषा की अपेक्षा कथन की शैली में विशेष अन्तर है। भाषा का अन्तर सामान्य है।

प्रसंग ६—डाकौर के ६ वें प्रसंग में भावना के ५ वें और ६ वें प्रसंग सम्मिलित रूप में हैं। दण्डवत् न करने देने की बात इस प्रसंग में दुबारा लिखी गई है जो भावना में दुबारा ६ वें प्रसंग में नहीं दी गई।

प्रसंग ७—श्री आचार्यजी शृंगार रस मण्डन ग्रन्थ किया है—यह बात भावना से अधिक है।

प्रसंग ८—इस प्रसंग में भावना वाली के ६ वें प्रसंग तथा भावप्रकाश की कुछ बातें दी हैं।

प्रसंग ६—दंडवत न करने देने की बात।

प्रसंग ७—पहले दामोदरदास गुसांईजी की आधी गोदी दाब के बैठते थे जिसे आचार्यजी ने देखा—यह बात डाकौर से अधिक है।

प्रसंग ८—श्लोक सहित पूरा प्रसंग नया है अर्थात् डाकौर से अधिक है।

प्रसंग ६—इसकी बातें डा० के ८वें प्रसंग में हैं।

प्रसंग १०—बैठक का उल्लेख पहले प्रसंग की बजाय इस प्रसंग (१० वें प्रसंग) में है। शेष सारा प्रसंग नया है। अर्थात् दामोदरदास की गोदी में सर रखकर लेटने का, श्री गोवर्द्धननाथजी के आने का, गाय मांगने का पूरा प्रसंग डाकौर संस्करण से अधिक है।

आलोचना—दोनों संस्करणों में मुख्य भेद इस प्रकार है—

(१) भावना वाले संस्करण में ८ वाँ व १०वां प्रसंग नया है। भावना के ६वें प्रसंग की वार्त्ता डाकौर के ८वें प्रसंग में आ गई है।

(२) भाषा में अन्तर इस प्रकार है—

प्रसंग १—डाकौर संस्करण—एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभु पृथ्वी-परिक्रमा को पधारे हते। तब तहाँ दामोदरदास श्री आचार्यजी महाप्रभु के साथ हे सो श्री आचार्यजी महाप्रभु आप दामोदरदास सों अपने श्रीमुख सों दमला कहते और कहते जो यह मार्ग तेरे लिये प्रगट कीनो हैं।.........

प्रसंग २—भावना संस्करण—पाछें एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभु आप ब्रज में पाँउ धारे, तब दामोदरदास साथ हे। श्री आचार्यजी महाप्रभु आप दामोदरदास कों दमला कहते और कहते जो दमला। यह मार्ग तेरे लिये प्रगट कीयो है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा में बहुत अन्तर है। इसी प्रकार का अन्तर जगह-जगह पर है।

कृष्णदास मेघन की वार्त्ता

डाकौर

७ प्रसंग हैं।

प्रसंग १—डाकौर के अनुसार कृष्णदास, उस समय जब आचार्यजी ने पृथ्वी परिक्रमा की उनके साथ थे। डाकौर के, अनुसार आचार्यजी ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। डाकौर का प्रथम प्रसंग अपेक्षाकृत लम्बा है, क्योंकि इसका कुछ भाग भावना के दूसरे प्रसंग में है।

प्रसंग २—इस प्रसंग की सभी बातें भावना के तीसरे प्रसंग में हैं। डा० के अनुसार कृष्णदास ने भड़भूंजे को टका की जगह चार टका दिए हैं।

प्रसंग ३—इस प्रसंग की सभी बातें भावना के चौथे प्रसंग में हैं।

प्रसंग ४—इस प्रसंग की सभी बातें भावना के पाँचवें प्रसंग में हैं। कृष्णदास ने श्री ठाकुरजी इच्छा से श्री आचार्यजी से प्रश्न पूछा यह बात भावना में नहीं है।

प्रसंग ५—इस प्रसंग की सभी बातें भावना के छठे प्रसंग में हैं।

प्रसंग ६—इस प्रसंग की बातें डाकौर के सातवे प्रसंग में है।

प्रसंग ७—पूरा प्रसंग भावना से अधिक है।

भावना

८ प्रसंग हैं।

प्रसंग १—भावना के अनुसार आचार्यजी ने पृथ्वी-परिक्रमा की। कृष्णदास तीनों बार साथ रहे। डाकौर से यह बात अधिक है कि श्री आचार्यजी वैसे तो अलौकिक फल देने पर परीक्षा करने के लिये कृष्णदास से कहा था कि माँगो क्या मांगते हो।

प्रसग २—इस प्रसंग की सभी बातें डाकौर के प्रथम प्रसंग में ही सम्मिलित करदी गई हैं।

प्रसंग ३—इस प्रसंग की सभी बातें डाकौर के द्वितीय प्रसंग में हैं। भावना के अनुसार कृष्णदास ने भड़भूंजे को टका की जगह दो टके दिए।

प्रसंग ४—इस प्रसंग की सभी बातें डाकौर के तृतीय प्रसंग में हैं।

प्रसग ५—इस प्रसंग की सभी बातें डाकौर के चौथे प्रसंग में हैं। कृष्णदास ने जो प्रश्न पूछे वह ठाकुरजी की इच्छा से पूछे यह बात भावना में नही है।

प्रसंग ६—इस प्रसंग की बातें डाकौर के पांचवें प्रसंग में हैं।

प्रसंग ७—इस प्रसंग की बातें डाकौर के छठे प्रसंग में ही 'सो फलाहार व्यासजी हू ढूढ़े और कृष्णदास हू ढूढ़े। परन्तु मिल्यो नाहीं' यह लाइनें तथा 'वेदव्यासजी द्वारा श्री ठाकुरजी ने कही, जो सामग्री करि भोजन करौ' यह वाक्य इसमें डाकौर से अधिक है।

प्रसंग ८ प्रसंग बहुत छोटा है जिसमें कृष्णदास के देहान्त का उल्लेख है। पूरा प्रसंग नया है।

आलोचना—अन्तर यह है:—

१—भावना में आचार्यजी के तीन बार पृथ्वी-परिक्रमा करने तथा तीनों बार कृष्णदासजी का उनके साथ रहने का उल्लेख है जो डाकौर में नहीं है।

२—डाकौर के प्रथम प्रसंग में भावना के प्रथम और द्वितीय प्रसंग की सभी बातें आ गई हैं। अतः दोनों में ६३ वें प्रसंग तक एक प्रसंग का अन्तर चला आया है। अर्थात् डाकौर के द्वितीय प्रसंग की बातें भावना के तृतीय प्रसंग में है और डाकौर के तृतीय, चतुर्थ, पंचम व षष्ठ प्रसंग की बातें भावना से क्रमशः चौथे, पाँचवे, छठे और सांतवें प्रसंग में हैं।

३—डाकौर का ७ वाँ प्रसंग भावना से अधिक है।

४—भावना का ८ वाँ प्रसंग डाकौर से अधिक है। भावना में कृष्णदास के शरीर छूटने का उल्लेख है जो डाकौर में नहीं है।

———

२५२ वैष्णवों की वार्ता, भावना और डाकौर के पाठ की तुलना और भेद

नागजी भट्ट

(१) भावना में ६ ठा डाकौर में प्रसंग हैं।

(२) डाकौर के अनुसार ये ५ (पाँचवे) वैष्णव हैं, पर भावना में आपकी प्रथम वार्त्ता है। डाकौर में अष्टछाप के चार आचार्यों को प्रथम स्थान दिया गया है।

प्रथम प्रसंग—डाकौर का प्रथम प्रसंग भावना से अधिक है।

डाकौर का दूसरा प्रसंग—भावना के प्रथम प्रसंग की बातें डाकौर के दूसरे प्रसंग में हैं। परन्तु ऊपर की चार पंक्तियाँ भावना में डाकौर से अधिक हैं। इसी प्रकार डाकौर में यह बात भावना से अधिक है कि आपकी आजीविका सरकार से बन्द हो गई थी।

(२) डाकौर में वैष्णवों के नाम दिए हैं, पर भावना में 'कुछ वैष्णव' ही लिखा है।

(३) डाकौर में लिखा है कि दस हजार रुपए भेजे, परन्तु भावना में कुछ द्रव्य भेजा यह लिखा है।

(४) भावना में नागजी 'कापडी' का; पर डाकौर के अनुसार कासिद का वेष रख कर गए थे।

(५) भावना के अनुसार ठाकुरजी ने डोकरी व नागजी भट्ट दोनों को स्वप्न दिया था। पर डाकौर के अनुसार नागजी को बाद में (जब वे दो मंजिल चले आए तब) स्वप्न दिया था।

(६) भावना के अनुसार नागजीभट्ट ने डोकरी के घर सखडी महाप्रसाद नहीं लिया। यह सुनकर गुसांईजी पीठ देकर बैठ गए। तब नागजीभट्ट फिर डोकरी के घर गए और तीन दिन रह कर उनसखड़ी प्रसाद लिया। पर डाकौर में पीठ देने की बात नहीं लिखी।

(७) भावना में यह बात डाकौर से अधिक है कि भट्यानी एक चूड़ा, हरदी, रोरी, पानेतर से बेटी का विवाह करने वाली थी। अतः सब वैष्णवों के कहने से हाकिम ने सब सामान भेज दिया। इसके स्थान पर डाकौर में लिखा है कि सब पंचों ने मिलकर आजीविका खुलवाई और विवाह करवाया था।

(८) भावना में पृष्ठ १२ पर "तब यह समाचार..................हते" तब की पंक्तियाँ डाकौर से अधिक हैं।

(९) डाकौर में यह बात भावना से अधिक है कि नागजीभट्ट ने दस हजार रुपए खंभात भेजे।

(१०) डाकौर में यह बात भावना से अधिक है कि नागजी गुसांईजी के दर्शनार्थ गोधरा से दो बार वर्ष में अवश्य आते थे।

प्रसंग २—डाकौर का तीसरा प्रसंग:—

(१) भावना में लिखा है कि नागजी भाई को हाकिम ने दो सौ रुपए दिए, पर डाकौर के अनुसार दो हजार रुपए दिए थे।

(२) भावना के अनुसार चीर दोसौ रुपए का लिया था, पर डाकौर के अनुसार वह दो हजार का था।

(३) भावना में (पृष्ठ १४–१५ व १६ पर) पाछे..................चले तक की पंक्तियाँ के स्थान पर केवल यह लिखा है कि नागजी गोकुल गए और श्री गुसांईजी को चीर भेंट किया।

(४) डाकौर में यह बात भावना से अधिक है कि "एक महाल के पाँच महाल भए और आज तक गोधरा पंचमहाल कहा जाता है"—आदि।

प्रसंग ३— डाकौर का चौथा प्रसंग:—

प्रसंग ४—डाकौर का पाँचवां प्रसंग:—

डाकौर में इस बात का बिल्कुल जिक्र भी नहीं है कि सब भीतरिया को बुखार आ गया था। अतः दो जगह अन्तर हो जाता है—प्रारम्भ में और अन्त में। भावना में अन्त की १०–१२ पंक्तियाँ डाकौर से अधिक हैं।

प्रसंग ५ (डा० का प्रसंग ६)

भावना में श्लोकों का अर्थ भी दिया है जो डाकौर में नहीं दिया है।

कृष्ण भट्ट—

(१) भावना में आपकी द्वितीय वार्त्ता है, परन्तु डाकौर के अनुसार आप छठे वैष्णव हैं।

(२) डाकौर में १० प्रसंग हैं, परन्तु भावना में १६ हैं।

प्रसंग १— वार्त्ता का आरम्भ और अन्त अलग-अलग ढंग से है।

आरम्भ— भावना में लिखा है कि आप गुसांईजी की सेवा में तत्पर रहे। अतः गुसांईजी ने प्रसन्न होकर उनको सम्पूर्ण सुबोधिनी जी की पोथी दी व टिप्पणी आदि की बातें लिखी हैं। यह भी लिखा है कि उस दिन से ये कृष्ण भट्ट अपने घर आकर नित्य सुबोधिनी जी की कथा कहते थे और वैष्णव सुनते थे। मुख्य श्रोता निहालचन्द भाई थे।

डाकौर में लिखा है कि आप पद्मारावल साचौरा ब्राह्मण के पुत्र थे। आप जब सेवक हुए, तो गुसांईजी ने श्रीमद्भागवत सुबोधिनी टीका सहित आपको पढ़ाया आदि। यह लिखा है कि आप नित्य प्रति श्री सुबोधिनी जी की कथा कहते थे।

अन्त—भावना के अनुसार जब वैष्णव ने कृष्ण भट्ट से कथा की बात पूछी, तो गुसांईजी उस समय तो बोले नहीं। जब वे मन्दिर से बाहर आ गये, तब उन्होंने वैष्णव को गोविन्दकुण्ड दूध से भरा हुआ दिखाया और गोवर्द्धनजी दिखाए। ब्रज के अलौकिक दर्शन कराए। इसके बाद की (पृष्ठ ३० पर) पंक्तियाँ डाकौर से अधिक हैं।

डाकौर के अनुसार उस वैष्णव के पूछने पर ही गुसांईजी ने यह विचार कर कि मेरे सेवक की वाणी मिथ्या न हो, उस वैष्णव को दिव्य नेत्र दिए और जैसे कृष्ण भट्ट को दर्शन हुए थे, वैसे ही उसको श्री गिरिराज और गोविन्द कुण्ड के कराए।

इस प्रकार इसमें गुसांईजी के मन्दिर जाने और बाहर आने की बात नहीं दी है।

प्रसंग २—यद्यपि दोनों में चरण-स्पर्श की बात है, परन्तु दोनों प्रसंग एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं। भावना का यह प्रसंग डाकौर से अधिक है। डाकौर के इस प्रसंग की बातें थोड़ी भिन्नता के साथ भावना के दूसरे प्रसंग में हैं।

प्रसंग ३ (भा०)—इस प्रसंग में डाकौर के दूसरे प्रसंग की बातें हैं। कृष्ण भट्ट के चरण-स्पर्श न करने की बात भी डाकौर में अधिक है। भावना में लीला का वर्णन भी किया गया है। जबकि डाकौर में केवल यह लिखा है कि गुसांईजी ने कृष्ण भट्ट को श्रीनाथ जी की लीला के दर्शन कराए।

प्रसंग ४ (भा०)—भावना का यह प्रसंग डाकौर से अधिक है।

प्रसंग ५ (भा०)—अधिक है।

प्रसंग ६ (भा०)—इस प्रसंग की बातें डाकौर के सातवें प्रसंग में हैं। परन्तु डाकौर में बहुत ही संक्षेप में दिया है। भावना के अनुसार ठाकुरजी ने हर मंजिल पर कृष्ण भट्ट को स्वप्न दिया है। तीसरी मंजिल पर कृष्ण भट्ट ने ठाकुर जी से कहा कि मैं पहले गुसांई जी के पास ही जाऊँगा। इस पर ठाकुरजी प्रसन्न हुए। फिर "सो ता समै.........पधारे" (पृष्ठ ४१-४२) तक की पंक्तियाँ भावना में अधिक है।

प्रसंग ७ (भा०)—अधिक है। (बीच की दो चार पंक्तियां डाकौर के ६ वें प्रसंग से कुछ-कुछ मिलती हैं।

प्रसंग ८ (भा०)—अधिक है।

प्रसंग ९ (भा०)—इस प्रसंग की थोड़ी सी बातें डाकौर के प्रसंग ३ में हैं। शेष बातें अधिक हैं। जो बातें हैं उनमें भी कुछ अन्तर है—भावना में लिखा है कि उस दिन थोड़ी सी चतुर्थी थी पर डाकौर के अनुसार उस दिन बसंत पञ्चमी नहीं थी। डाकौर में अन्त की पंक्तियों (जिनमें रामदास जी ने प्रश्न किया है और गुसांई जी ने उत्तर दिया है) भावना से अधिक है।

भावना की प्रारम्भिक १२ पंक्तियां इस तीसरे प्रसंग में हैं। शेष पंक्तियाँ अधिक हैं।

प्रसंग १० (भा०)—अधिक है।
प्रसंग ११ (भा०)—अधिक है।
प्रसंग १२ (भा०)—अधिक है।

प्रसंग १३ (भा०)—इस प्रसंग की बातें डाकौर के चौथे प्रसंग में हैं। डाकौर में निम्न पंक्तियाँ भावना से अधिक हैं :—

(१) "एक बार कृष्ण भट्ट श्री गोकुल आए हते।"

(२) "जिनकुं तुम बिना रह्यौ नहिं जाय है सो वे कृष्ण भट्ट जी ऐसे कृपापात्र हते जिनके पीछे श्रीनाथ जी फिरत डोलत हते।" (जबकि भावना के भावप्रकाश में यह दिया है कि श्रीनाथ जी वैष्णवों की वार्त्ता सुनने के बड़े व्यसनी हैं। अतः वहाँ निश्चय जाते हैं, जहाँ वैष्णव एकान्त में बैठ कर वार्त्ता करते हैं)।

प्रसंग १४ (भा०)—इस प्रसंग की बातें डाकौर के पांचवें प्रसंग में हैं। परन्तु बहुत संक्षेप में हैं। भावना में "और" ""नाहीं होई (पृष्ठ ५८) तक की पंक्तियां डाकौर से अधिक हैं। डाकौर के दोनों श्लोक भावना में नहीं है और भावना का एक श्लोक है जो डाकौर में नहीं है।

प्रसंग १५ (भा०)—अधिक है।

प्रसंग १६ (भा०)—इस प्रसंग की बीच की दो तीन पंक्तियाँ डाकौर के दसवें प्रसंग में हैं। शेष सारा प्रसंग अधिक है। परन्तु भावना के भाव प्रकाश की बातें डाकौर के दसवें प्रसंग में हैं।

डाकौर का छठा व आठवाँ प्रसंग भावना से अधिक है। इसके १० वें प्रसंग की बातें भावना के भाव प्रकाश में दी हैं।

———

वार्ता से प्राप्त ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन वृत्त

इन वार्ताओं में आए हुए व्यक्तियों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को निश्चय करने के लिए निम्नलिखित उपायों का सहारा लिया गया है।

(१) साधारण इतिहास से, (२) सम्प्रदाय में प्रचलित संवादों से, (जनश्रुति) (३) कीर्तन के पदों से, (४) वेश से, (५) बैठकों, घरों से, (६) सेव्य स्वरूपों से, (७) आचार विचार की परम्परा से, (८) हस्तलिखित ग्रन्थों के उल्लेख से, (९) सम्प्रदाय के इतिहास से, (१०) वार्ता के विविध संस्करणों के प्रसंगो से, (११) इतिहास से तथा भावनात्मक संस्करण से।

वार्ता के इन व्यक्तियों में से अधिकांश के सम्बन्ध में इन उपायों का आश्रय लेने पर भी बहुतों के सम्बन्ध में संतोषजनक वृत्त ज्ञात नहीं हो सका है। स्वयं वार्ता के उल्लेख महत्वपूर्ण होते हुए भी अत्यन्त अपूर्ण हैं और जीवन वृत्त के एक बहुत छोटे अंश पर ही प्रकाश डालते हैं। वार्ता का यह वृत्त और सम्प्रदाय के अन्य वृत्त को मिलाकर यदि इनके सम्बन्ध में एकत्रित न किया जाय, तो इनके सम्बन्ध में अन्यत्र इतना भी नहीं मिलता है। इनमें से जो व्यक्ति अपनी विद्या, बुद्धि उदारता, गुण या कौशल के कारण राजनीतिक या धार्मिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर गये हैं उनके सम्बन्ध में सम्प्रदाय को छोड़कर इतिहास से भी यथेष्ट सामग्री प्राप्त हो जाती है और उनका जीवन वृत्त उस सामग्री की सहायता से पूर्ण किया जा सकता है और वार्ताओं में ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसकी अन्यत्र प्राप्त वृत्त से तुलना की जा सकती है और उसकी ऐतिहासिकता की जाँच भी हो सकती है, पर जिनके सम्बन्ध में जो कुछ वार्ता से प्राप्त है वही ज्ञात है तो उसकी ऐतिहासिक जाँच कठिन है और उसे ही सम्प्रदाय में प्राप्त अन्य वृत्त के साथ मिलाकर लिख दिया गया है। वार्ता के यह वैष्णव जीवन के दूसरे क्षेत्रों से या तो अलग रहे हैं या समाज में उन्होंने वह स्थान ही नहीं प्राप्त किया था कि जिससे उनके सम्बन्ध में और कुछ लिखा जाता। यही नहीं जिन लोगों ने अपनी रचना के द्वारा सम्प्रदाय में कीर्तन साहित्य की वृद्धि की है और जिनके पद नित्य गाये भी जाते हैं, उनके सम्बन्ध में भी ऐसा वृत्त न तो वार्ता में दिया गया है और न सम्प्रदाय के अन्य स्थानों से प्राप्त है जिन्हें सर्वथा असंदिग्ध कहा जा सके। इस कारण प्राप्त वृत्त की पुष्टि यदि किसी दूसरे स्थान से हो गई है तो उसको प्रामाणिक मान लिया गया है, अन्यथा उसका उल्लेख इस प्रबन्ध में नहीं किया गया है।

(१) ऐतिहासिक महत्व के व्यक्ति

(१) अकबर ६३, १५६, (२) अलीखान १७, (३) अजकुंवरि बाई ४७ (४) आसकरण ७३, (५) औरंगजेब १९९, (६) कल्याणसिंह २४१ (७) महाप्रभुजी, (८) गो० विट्ठलनाथजी, (९) गोकुलनाथजी, (१०) गोपीनाथजी, (११) घनश्यामजी, (१२) हरिरायजी (१३) यदुनाथजी (१४) जैमल मेड़ता, (१५) जोतसिंह, (१६) तानसेन,

(१७)दुर्गावती (१८) दाउद, (१९) पृथ्वीसिंह, (२०) बाजबहादुर, (२१) बीरबल (२२) मानसिंह, (२३) माधोसिंह, (२४) मीराबाई, (२५) रसखान, (२६) राजा लाखा, (२७) रूप सनातन, (२८) अष्टछाप के कवि, (२९) कृष्ण चैतन्य, (३०) मधुकर शाह ।

राजा आसकरण नरवरगढ़ के—सोलहवीं शताब्दी के राजपूताने के इतिहास में दो आसकरण नाम के राजाओं की प्रसिद्ध अधिक है । एक हैं राजा चन्द्रसेन के पुत्र मालदेव के वंशज जोधपुर की गद्दी के अधिकारी और दूसरे हैं राजा आसकरण कछवाहा जिनके पुत्र का नाम राजसिंह था और जिन्हें 'अकबर नामा' और 'तबकाते अकबरी' में राजा भारमल का छोटा भाई लिखा है और लिखा है कि इन्हीं की मध्यस्थता के कारण ओड़छे का राजा मधुकर शाह बादशाह की आज्ञा सम्वत् १६३५ में मानने को तत्पर हो गया था । इनका मनसब बढ़ते-बढ़ते तीन हजार तक हो गया था । सादिक खाँ के साथ इन्होंने मधुकर शाह को परास्त किया था और राजा टोडरमल के साथ बिहार विजय में गए थे । अकबर के शासन के इकतीसवें वर्ष अर्थात् सम्वत १६४४ में प्रत्येक प्रान्त में दो सरदार नियत किए गए, तब यह और इब्राहीम खाँ आगरा प्रान्त के फौजदार नियत हुये और अन्तिम बार जब शहाबुद्दीन अहमदखाँ के साथ यह ओड़छे गए थे, तो वहाँ से लौटते समय सम्वत् १६४५ में इनकी मृत्यु हो गयी थी ।

राजा पृथ्वीसिंह बीकानेर के—यह अकबर के समकालीन वीर और स्वदेशाभिमानी कवि प्रसिद्ध हैं और इनके पिता का नाम कल्याणसिंह था । इनके सम्बन्ध में 'आइने अकबरी' इत्यादि से यह सिद्ध है कि यह हकीम और कोका की असावधानी के कारण सन् १५८५ सम्वत् १६४२ में मारे गए ।

वार्त्ता का यह कथन कि इन्होंने मथुरा में शरीर छोड़ा इतिहास के विरुद्ध प्रतीत होता है ।* वार्त्ता के कथन में सार इतना ही प्रतीत होता है कि इस बार युद्ध में जाने से पूर्व इन्हें यह व्याप गया होगा कि मेरा अन्त काल समीप है और यह मथुरा, गोकुल और गोवर्द्धन के दर्शन करके तब लड़ाई में गए होंगे । इनके वृत्त में तथा वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक वृत्त में दिया गया है ।

राजा जयमल मेंड़ता—मेंड़ता जोधपुर की हकूमत है और जेतारता के उत्तर-पूर्व में है । आलनियावास मेंड़ता और रीवां इसके प्रसिद्ध स्थान हैं ।

इन राजा जैमल का उल्लेख मुआसुरूल डमरा भाग दो में अब्दुल मजीद हरवी ख्वाजा आसफखाँ के वृत्तान्त में है जिसमें लिखा हैं कि सम्वत् १६२५ में जब अकबर ने चित्तौर पर चढ़ाई की थी जब राणा उदयसिंह चित्तौड़ की रक्षा का भार जैमल पर छोड़कर आप जंगल में चला गया था । इस जैमल ने चार महीना और सात दिन दुर्ग की रक्षा की और अन्त में हार गया । आइने अकबरी के पृष्ठ तीन सौ अट्ठाइस में आमेर के राजा बिहारीमल के तीन और भाईयों का उल्लेख है उनमें भी 'रूपसी' के पुत्र का नाम भी जैमल है जो अकबर के साथ पाटन और अहमदाबाद की चढ़ाई पर गया था और कुछ दिन तक मेंड़ते का थानेदार था । इसने बूँदी को मुगल राज में मिलाया था और अन्त में चौसा (बंगाल) में इसकी मृत्यु हो गई थी । आइने अकबरी के अनुसार इस जैमल की रानी सती नहीं होना चाहती थी, पर उसका पुत्र उदैसिंह उसे बलपूर्वक चिता पर रख देना चाहता था । यह समाचार

गो ही ओझा के बीकानेर के इतिहास में इस जनश्रुति को स्थान मिला है ।

जब अकबर को मिला, तो उसने उदयसिंह को पकड़वा लिया और रानी की सती होने से रक्षा की। इलफिन्स्टन ने लिखा है कि जयमल की लड़ाई की पोशाक बहुत भारी थी और जब अकबर ने उसे मालदेव के पौत्र करन को पहना दिया, तो रुपसी बहुत रूष्ट हुआ और उसने अंगत्राण को लौटाना चाहा। जोधपुर की ख्याति से पता चलता है कि सम्वत् १६१४ में जयमल ने मेंड़ता छोड़ दिया था और सम्वत् १६१८ में अकबर ने मेड़ता पर शरफउद्दीन मिर्जा के आधीन सेना भेजी जिसमें जैमल स्वयं था। यह वृत्त वीरविनोद भाग २ में दिया हुआ है। इसके पुत्र का नाम रामदास था। वार्त्ता में जयमल का केवल इतना उल्लेख है कि हरिदास बनिये का घर इनकी बहिन के घर के सामने था। उसने एक दिन दूसरी एकादशी की। इस पर जयमल उसे मारने को तैयार हो गया। पीछे बहिन के कहने से छोड़ दिया और स्वयं वैष्णव हो गया तथा सारे मेड़ते को वैष्णव कराया। यह घटना सं० १६१४ से पहले ही की हो सकती है, क्योंकि उसके पश्चात् तो जयमल मेड़ते में रहा ही नहीं है। श्री गुसांईजी की पहली द्वारका यात्रा सम्वत् १६०० की है और दूसरी सम्वत् १६१३ की। यह घटना इन्हीं दो यात्राओं के बीच की है।

राजा टोडरमल—इनका ऐतिहासिक वृत्त कवियों के वृत्त में दिया जा चुका है।

राजा बीरबल—इनका ऐतिहासिक वृत्त कवियों के वृत्त में दिया जा चुका है।

राजा अलीखाँ—अलीखाँ पठान का उल्लेख दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या सत्रह में है। जिसमें लिखा है कि अलीखाँ 'तबीसे' की हुकूमत ले के महावन में आकर रहे थे और इन्होंने वृक्षों के पत्ते तोड़ने की मनाही करदी थी। वह प्रतिदिन कथा सुनने आते थे और इन्होंने श्री गुसांईजी को अपना घोड़ा भेंट करना चाहा था। आइने अकबरी में चार अलीखाँ नाम के व्यक्ति हैं जिनमें से यह कौन से थे। यह कहना सरल नहीं है। फिर भी, खानदेश के राजा अलीखाँ के वार्त्ता के अलीखाँ पठान होने की सम्भावना इसलिए अधिक है कि इनके पास तबीसे का परगना था।

भारामल्ल राजा—यह पृथ्वीराज कछवाहा के पुत्र थे। ये रानावत थे और आमेर की गद्दी पर विराजमान थे, जो अजमेर के पास मारवाड़ के पश्चिम में है। राजपूतों में यह प्रथम राजा थे जिन्होंने अकबर की आधीनता स्वीकार की थी। भारामल १५५७ में अकबर के दरबार में आया था। अकबर जब सन् १५६२ में अजमेर जा रहा था, तो उसने इसे बुलाया और "देवसा" (जयपुर से बीस कोस पूर्व) में भेंट हुई पर यह निश्चित नहीं है। सन् १५६६ में भारामल की मृत्यु हो गई। सन् १५७० की, विधवा रानी की समाधि जो मथुरा में सती हुई थी, बनी है।[1] इन तीनों में इन्हीं भारामल का उल्लेख वार्त्ता में है।

अजबकुँवरि बाई—आपका उल्लेख दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ४७ में है। इसमें आपको मीराबाई की देवरानी लिखा है और आपको सिंघाड का बताया है। आपका वृत्त कवियों के प्रकरण में लिखा गया है।

कल्याणसिंह—यह पृथ्वीसिंह के पिता हैं और इनका उल्लेख वार्त्ता संख्या २४२ में दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में है। कल्याणसिंह के सम्बन्ध में वीरविनोद भाग २ में लिखा है कि इसने संवत् १६०१ विक्रमी में बीकानेर पर अधिकार कर लिया था और

१ ग्राउज कृत मथुरा।

संवत् १६१० में इसने जयमल की सहायता की थी। अकबरनामा के अनुसार सम्वत् १६२७ में जब अकबर नागौर पहुँचा था, तब कल्याणमल भी 'हाजिरी से सर्बलन्द हुआ' —[१]

जोधसिंह— इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या ११७ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में है। इसे भावप्रकाश में दक्षिण का राजा लिखा है। जोधसिंह नाम के राजपूताने में कई राजा हुए हैं। वार्त्ता में इसके सम्बन्ध में अधिक न लिखे होने के कारण यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि यह कौन से जोर्तसिंह थे। मसीउल उमरा पृष्ठ संख्या ११४ में राजा जोधसिंह के सम्बन्ध में लिखा है कि ये राजा गोपालसिंह के पुत्र थे और हिन्दूपति महेन्द्र इनकी पदवी थी। इनके दो भाई राजा तेजसिंह और महेन्द्रसिंह ने मनसब और जागीर पाई थी और हैदराबाद प्रान्त के अंतर्गत दुर्ग कैलास (बीदर से दस मील) के अध्यक्ष नियत हुए थे दूसरे ने धीरे-धीरे अच्छा मनसब और पदवी प्राप्त की। यह कुछ दिन बीर (गोदावरी की सहायक नदी पर अहमदनगर से ठीक पैंसठ मील) किले पर रहा जिसके बाद बीदर प्रान्त के नानदेर का हाकिम और बरार के माहोर दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। दुर्जनसिंह और जोधसिंह को योग्य मनसब, जागीर व पैतृक ताल्लुका मिला तथा वे सेवा में रहा करते थे। सम्भवतः यह जोधसिंह ही वार्त्ता के जोर्नसिंह हैं।[२]

तानसेन— इनके सम्बन्ध में कवियों के वृत्त में लिखा जा चुका है।

रानी दुर्गावती— रानी दुर्गावती का उल्लेख दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में और भावसिंधु में है।

आधुनिक मध्य प्रदेश को मुसलमान इतिहासकारों ने 'गोंडवाना' नाम से पुकारा है। इस प्रदेश के अरण्यवासियों में गोडों की प्रधानता होने के कारण कदाचित इसका यह नाम पड़ा था। इस राज्य का संस्थापक मदनसिंह था जिसने मदन महल नाम का एक छोटा-सा किला बनवाया था। जबलपुर के पुराने कमिश्नर श्री सिलीमैन साहब ने मदनसिंह का समय बारहवीं शताब्दी ठहराया है। गोडों का १३ वीं और १४ वीं शताब्दी का इतिहास अंधकारपूर्ण है। इन गोडों के रामनगर की प्रशस्ति के अनुसार बावन गढ़ थे। उन सबमें गढ़ा का राज्य अत्यन्त उत्कर्ष पर था और इसको उत्कर्ष को पहुँचाने वाला शासक था संग्रामसिंह जिसका शासन काल ईसवी सन् १४८० से १५४२ अर्थात् सम्वत् १५३७ से १५९९ तक था। इसका असली नाम अभाणदास था। रायबहादुर डाक्टर हीरालाल की दो पुस्तकें हैं एक 'मंडला मयूख' और दूसरी 'दमोह दीपक' इसमें दूसरी पुस्तक में सतीधरे के एक लेख में इसका उल्लेख है। इसने सन् १५२६ सम्वत् १५८३ में वघेलखण्ड के राजा वीरसिंहदेव की सहायता की थी और गुजरात के शासक बहादुर शाह के छक्के छुड़ा दिए थे। इसके सोने के जो सिक्के मिले हैं, उन पर देवनागरी और तेलगू दोनों लिपिओं में पुलस्त्यवंशी लिखा है। संग्राम शाह के मरने पर उसके पुत्र दलपत शाह को गढ़ा का शासन प्राप्त हुआ और उसने अपने बाहु-बल से दुर्गावती नाम की राठ चंदेल वंशीय ठाकुर की कन्या से ब्याह किया था जिसके सौंदर्य के सम्बन्ध में एक संस्कृत कवि ने लिखा है।

'मदन सदृश रूपः सुन्दरी यस्य दुर्गा। दलपति ने राजधानी गढ़े से सिंगौरगढ़ में स्थान्तरित करदी और केवल सात वर्ष राज्य किया था। इसके पश्चात् इसका पाँच वर्षीय

१ अकबरनामा

२ मशीउल उमरा भाग २

पुत्र वीर नारायण गद्दी पर बैठा और शासन की बागडोर रानी दुर्गावती के हाथ में आ गई। रानी दुर्गावती के सम्बन्ध में मियाँ अब्बुल फजल ने लिखा है—'रानी दुर्गावती बड़ी बहादुर थी। तीर और बन्दूक चलाने में उसकी बराबरी विरले ही कर सकते थे। जहाँ कहीं वह जंगली जानवरों का उपद्रव सुन पाती अविलम्ब घोड़े पर सवार होकर उन्हें मार गिराती थी। उसके पास बीस हजार सवार और एक हजार बलिष्ट हाथी थे। अबुल फजल ने तथा फरिश्ता ने लिखा है कि इसने मालवा के सूबेदार बाजबहादुर को दो बार हराया था। गढ़ा के राज्य को दुर्गावती ने सब प्रकार सम्पन्न बनाया था। अकबर के राज-कवि गोप और नरहरि महापात्र का इसके यहाँ राजकीय स्वागत हुआ था। सम्वत् १६१९ में श्री गुसांई विट्ठलनाथ जी गढ़ा पधारे थे। इसके राज्य की शक्ति और सम्पन्नता को देखकर अकबर के कड़ा के सूबेदार ख्वाजा अब्दुल मजीद ने बहुत बड़ी सेना लेकर उस पर चढ़ाई करदी और निर्दयतापूर्वक वीर नारायण को मार डाला और गढ़ा को अपने आधीन कर लिया तथा सारे प्रदेश को बुरी तरह से लूटा। इस युद्ध में चौरागढ़ में जौहर हुआ था और बहुत से हाथी व लूट का माल दिल्ली भेजा गया था। इस युद्ध के पश्चात् गढ़े के राज्य की अवनति आरम्भ हो गयी। यह राज्य दलपति के छोटे भाई चन्द्रशाह को सौंप दिया गया और गढ़े में एक मुगल हाकिम रहने लगा। गढ़ा के पहले मुगल हाकिम का नाम मेंहदी कासिम खाँ था। चन्द्रशाह के पश्चात् उसका लड़का मधुकरशाह गद्दी पर बैठा पर इसने कुछ दिन बाद आत्म-हत्या करली थी। इसके पश्चात गढ़ा पर बुन्देलों के आक्रमण होने लगे और अन्त में मरहठों ने सम्वत् १८४६ में गढ़ा के गोंड घराने को समाप्त कर दिया।

रानी दुर्गावती एक वीर नारी थी। इतिहासकारों ने लिखा है कि जब आसफ खाँ के साथ युद्ध में हार के चिह्न दिखाई देने लगे, तो महावत की प्रार्थना पर भी उसने आत्म-रक्षा के लिए युद्ध-स्थल न छोड़ा और लड़ते-लड़ते प्राण दे दिए। रानी दुर्गावती के वार्त्ता सम्बन्धी उल्लेख पर अन्यत्र विचार किया गया है। गढ़ा में गुसांईजी सम्वत् १६१९ के पश्चात् आए थे और सम्वत १६२३ के पूर्व तक रहे थे।

दाऊद—बंगाल का शासक था जिसे राजा मानसिंह ने हराया था। इसके सम्बन्ध में भी वार्त्ता द्वारा प्राप्त ऐतिहासिक तथ्य वाले प्रसंग में अधिक लिखा गया है और इसकी स्थिति पर भी विचार किया गया है। यह गौड़ का शासक और अत्यन्त निर्दय व्यक्ति बताया गया है। इसने मुगलों से युद्ध किया था और हारकर उड़ीसा भाग गया था। एक बार फिर लड़कर इसने आधीनता स्वीकार करली थी और अन्त में विद्रोह करने के कारण इसे फाँसी दी गई थी। सन् १५७४ में अकबर ने स्वयं इसे पटने के समीप घेर लिया था और सन् १५७६ में संधि भंग करने के अपराध में मारा गया था। अकबर के राज्य के उन्नीसवें वर्ष इस पर चढ़ाई की गई थी।

फूलबाई—अलियाना गाँव के महीधर क्षत्री की बहिन का नाम था। ये दोनों नरहरि जोशी के जिजमान थे।

बाजबहादुर—इस पर भी वार्त्ता के ऐतिहासिक तथ्य वाले प्रकरण में विस्तार से लिखा गया है। बाजबहादुर एक मालवा का शासक था, दूसरा गुजरात का।

राजा मानसिंह—राजा भगवन्तदास के दत्तक पुत्र थे। वास्तव में भगवन्तदास के कोई सन्तान न थी, इस कारण उन्होंने अपने भतीजे को गोद ले लिया था। यह पहले-पहल सम्वत् १६१९ अथवा सन् १५६२ में अकबर के दरबार में गए। अपनी बुद्धिमानी, साहस सम्बन्ध और उच्च वंश के कारण यह राज्य के स्तम्भों और सरदारों में अग्रणी हो गये थे। इनके कार्यों और व्यवहार से बादशाह इन्हें कभी 'फर्जन्द' और कभी 'मिरजा' राजा के नाम से पुकारते थे। सन् १५७६ में यह राणा प्रताप को दंड देने के लिये नियुक्त हुए। सन् १५७७ ई० में गुलकंद (गोंधूदा) में घोर युद्ध हुआ और राणा भाग गया। सिंध के पार सीमा प्रान्त का शासन इन्हें मिला। सन् १५८६ में मिर्जा हकीम की काबुल में मृत्यु होने पर इन्होंने वीरतापूर्वक वहाँ के विद्रोह को रोका और स्थिति को सम्भाला। अकबर ने इन्हें काबुल का शासक नियुक्त किया। पीछे राजा बीरबल की मृत्यु के बाद यूसूफजाइयों के निमित्त इनकी नियुक्ति हुई। ३४वें वर्ष १५५६+३४=सन् १५९० में यह बिहार में कछवाहों की जागीर के संरक्षक नियुक्त हुए। इन्होंने बिहार जीता, उड़ीसा जीता। इस विजय में इन्होंने जगन्नाथजी के मन्दिर की बहुत सी भू-सम्पत्ति प्राप्ति की।

इन्होंने ४०वें (१५५६+४०=सन् १५९६) में आक महल के पास अकबर नगर बसाया इसका नाम राजमहल भी है। ४१वें वर्ष सन् १५९७ में कूच जीता। ४४वें वर्ष सन् १६०० में इन्होंने बंगाल की सूबेदारी सहित सलीम का साथ राणा को परास्त करने में दिया। फिर बंगाल में विद्रोह का दमन करके शेरपुर का युद्ध जीता और इनको सबसे बढ़कर ७००० मनसब मिला। अकबर की मृत्यु के बाद इन्होंने श्वसुर के पक्ष का समर्थन किया था और जहाँगीर के राज्यारोहण पर यह अपनी जागीर पर चले गये पर फिर बुला लिए गए और खानखाना के साथ दक्षिण भेजे गये जहां जहाँगीर के राज्य के नवें वर्ष इनकी मृत्यु हो गई। इनके साथ साठ व्यक्ति जले थे। इनके पीछे इनका एक लड़का भावसिंह बच रहा था। यह कट्टर हिन्दू थे।

मानसिंह—पृष्ठ ९४ पर अब्बुल फजल ने अकबरनामे में लिखा है कि जब १८वें वर्ष में (सं० १६३० वि०) में कुँवर मानसिंह डूंगरपुर के राजा का दमन करके उदयपुर के पास पहुँचा तब राणा ने (प्रताप) स्वागत करके बादशाही खिलत प्रतिष्ठा के साथ दिया और कुँअर से तपाक से हाथ मिलाकर सेवा में न आने के बारे में उज्र किया उसी वर्ष राणा ने अपने बड़े पुत्र अमर को राजा भगवंतदास के साथ (जो ईडर से आते हुये उधर जा निकला था) किया और बहुत चापलूसी करके कहा कि मैं भी दोषों के क्षमा होने पर आऊंगा। २१वें वर्ष कुँवर मानसिंह राणा प्रताप को दंड देने पर नियुक्त होकर मांडलगढ़ पहुँचा। सेना एकत्र करने पर वह गोधंदा गया। शत्रुओं का सामना होने पर घोर युद्ध हुआ और राणा की सेना परास्त होकर भाग गई। इसी वर्ष बादशाह ने वहाँ स्वयं पहुँचकर राणा के पहाड़ियों में भागने पर उसका पीछा करने के लिए सेना एकत्र की। ४१वें वर्ष अर्थात (सम्वत् १६५३) में राणा की मृत्यु हुई।

पृष्ठ १४३ पर लिखा है कि कुँवर जगतसिंह मानसिंह का बड़ा लड़का था जिसने सन् १५९७ ई० में मऊ और पठान (नूरपुर पंजाब) के राजा का दमन किया और सन् १००८ हिजरी में राजा मानसिंह व जगतसिंह बंगाल के अध्यक्ष हुए। बंगाल जाने से पूर्व ही आगरे में जगतसिंह की मृत्यु हो गई। जगतसिंह का छोटा भाई महासिंह था, जो जगतसिंह के

स्थान पर बंगाल का सहायक अध्यक्ष नियत हुआ और जिसने भद्रक युद्ध में अपनी अयोग्यता के कारण शाही सेना को परास्त करवा दिया। तब महाराजा मानसिंह को स्वयं वहाँ जाना पड़ा और शेरपुर के युद्ध में अफगानों की हार हुई। महासिंह के लिए लिखा है कि इसने पिता के समान यौवनारम्भ में शराब अधिक पीने का दुर्गुण ग्रहण किया और इसी कड़ुए पानी पर अपना मधुर प्राण निछावर किया। पृष्ठ १९४ पर लिखा है कि राजा टोडरमल राजा मानसिंह के साथ यूसुफजाई जाति को दंड देने को नियुक्त हुए।

पृष्ठ २३२ पर मिरर्जा राजा बहादुरसिंह को इसका पुत्र लिखा है। इसका नाम भाऊसिंह है और बहादुरसिंह पदवी है। इसके अनुसार महासिंह की जगह यह मानसिंह मनसबदार हुआ। बहादुरसिंह जहाँगीर के राज्य काल सन् १६०५ से १६२० तक वर्तमान था। यह भी बड़ा शराब पीने वाला था। पृष्ठ २६६ पर यह राजा भारामल के पौत्र लिखे हैं और बादशाह अकबर की इनसे रतन (रणथम्भौर) में भेंट हुई थी। पृष्ठ ३७३ में लिखा है कि रावभोज सुर्जन हांडा के पुत्र बहुत समय तक इनकी आधीनता में उड़ीसा रहे। पृष्ठ २७४ पर लिखा है कि जहागीर ने बादशाह होने पर मानसिंह के पुत्र जगतसिंह की पुत्री से ब्याह करना चाहा और तुजुक जहाँगीर के अनुसार यह विवाह सन् १६०९ में हुआ था जिसमें जहाँगीर ने अस्सी हजार रुपये की बरी भेजी थी (पृष्ठ २८०) वार्त्ता साहित्य में यह श्री गुसांईजी के समर्थक बताए गए हैं।

किसनसिंह राठौर—मारवाड़ नरेश, उदयसिंह मोटा राजा के पुत्र थे। यह जहाँगीर के साले और शाहजहाँ के मामा थे तथा सूरजसिंह के सगे भाई थे। इस वीर पुरुष को जहाँगीर का समकालीन बतलाया गया है और लिखा है कि जहाँगीर के राज्यारोहण के दसवें वर्ष इसने अपने भाई के मंत्री गोविन्ददास भाटी को मार डाला और स्वयं कुछ साथियों से मारा गया। सिरोही की तलवार उसी दिन से प्रसिद्ध हुई। जहाँगीर ने इसमें घटना के बाद इसके पुत्रों को मनसब देकर किशनगढ़ की जागीर इनके लिए बहाल रक्खी। इसके चार पुत्रों के नाम, साहसमल्ल, भारमल्ल, जगमल्ल और हरीसिंह था। इनमें से साहसमल्ल जगमल्ल और हीरासिंह किशनगढ़ की गद्दी पर बैठे। हीरासिंह के पीछे उनका भतीजा रूपसिंह गद्दी पर बैठा। (सन् १६४३ ई०)

इसका वर्तमान काल—सम्वत् १६७२ या सन् १६१५ है। यह कृष्णगढ़ राज्य के संस्थापक हैं।

मधुकरशाह—ओड़छा के मधुकरशाह प्रबल प्रतापी महाराज रूद्रप्रताप के पुत्र थे, जो विक्रम सम्वत् १६११ में अपने बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर बैठे थे। सम्वत् १५९६ से पूर्व इनकी राजधानी गढ़ेकुँअर थी। ये बड़े शूरवीर और निर्भीक शासक थे इनकी स्वतंत्रता से अकबर भयभीत था और इनका वैमनस्य निरंतर बढ़ता ही जाता था। यह दरबार में तिलक माला लगाकर जाते थे। अकबर ने पहली बार न्यामतकुलीखाँ के साथ कुछ सेना ओड़छा दुर्ग को लेने को भेजी जो परास्त हो गई। इस पर उसने दूसरी बार जामकुलीखाँ और सैयद कुली खाँ के साथ पहले से अधिक सेना भेजी वह भी परास्त हो गई। अन्त में अकबर ने सम्वत् १६३४ में सादिकखाँ के आधीन एक बहुत बड़ी सेना भेजी जिसमें ग्वालियर के राजा आसकरण तोमर भी आए थे और इन्होंने संधि के लिए प्रयत्न किया जो विफल रहा पर अन्त में संधि होगई जो संवत् १६४५ तक चली जब फिर अकबर ने अपनी सेना आसकरन और अब्दुल्ला खाँ के आधीन ओड़छा भेजी। उस बार के युद्ध में ओड़छे का बहुतसा

भाग मुगलों के हाथ लगा अन्तिम बार शाहज़ादा मुराद के साथ सम्वत् १६४८ में अकबर ने सेना भेजी और मधुकर शाह को हार माननी पड़ी। सम्वत् १६४९ में मधुकर शाह का देहान्त होगया इनके पीछे इनका पुत्र रामसिंह (रामशाह) ओड़छे का राजा हुआ। मधुकर शाह ने छत्तीस वर्ष राज्य किया था। रामशाह के समय वीरसिंहदेव ने जिनके पास केवल बड़ौनी की जागीर थी मुगल राज्य के कुछ भागों को अपने अधिकार में करना आरम्भ कर दिया और जहाँगीर से मिलकर सम्वत् १६५९ में अब्दुल फजल को मरवा डाला था। इसपर इन्हें सारे बुन्देलखंड का राज्य मिल गया था। इनके पश्चात् जुझारसिंह राजा हुआ था और सम्वत् १६९८ में शाहजहाँ ने ओड़छे की गद्दी पहाड़सिंह को देदी। पहाड़सिंह की मृत्यु सम्वत् १७२० में हुई थी। इसके पश्चात् इसका पुत्र सुजानसिंह गद्दी पर बैठा यह सम्वत् १७२९ में निस्संतान मरा और फिर इसका भाई इन्द्रमणि गद्दी पर बैठा। इन्द्रमणि के पश्चात् उसका लड़का जसवन्तसिंह गद्दी पर बैठा। जसवन्तसिंह ने १७४७ में शरीर छोड़ा। अकबर के समय से जो उपद्रव ओड़छे में आरम्भ हुआ था, वह औरंगजेब के समय तक कभी शान्त नहीं हुआ।

रेवा बाई | रेवा बहू का नाम है, यमुना सास का। डाकौर संस्करण में इनकी
जमुनाबाई | वार्त्ता संख्या १९५ है।

रूप सनातन—कृष्ण चैतन्य के शिष्य थे, इनका उल्लेख वार्त्ता संख्या १७० और २५२ (डाकौर) में है। पहले में सगुणदास इनके शिष्य लिखे गये हैं, दूसरे में जाड़ा कृष्णदास की इनसे भेंट वृन्दावन में हुई है। श्री चैतन्य चरितामृत के अनुसार यह दोनों भाई नवहाटी के रहने वाले थे और इनके पहले नाम अमर और संतोष थे। यह गौड़ के बादशाह के यहाँ नौकरी करते थे और 'दबिर खास' और 'शाकिर मल्लिक' इन्होंने रामकेलि नाम का एक नया नगर बसाया था और कल्हाई नाट्यशाला नाम से एक मूर्ति संग्रालय बनाया था और महाप्रभु कृष्ण चैतन्य ने इनका उद्धार किया था यह हुसेनशाह की नौकरी छोड़कर महाप्रभु कृष्ण चैतन्य की शरण में प्रयाग में आगए वहाँ से वृन्दावन यात्रा को आए और वहीं रहने लगे। सनातन को तो जेल भी भुगतनी पड़ी थी।

राजा लाखा—डाकौर संस्करण में इसकी २४ वी वार्त्ता है। यह परदा कराके अपनी रानी को दर्शन करा रहा था कि अनायास किवाड़ खुल गये थे।

रतनावली रानी—आमेर के राजा मानसिंह के भाई माधोसिंहजी की रानी थी। इसके बेटे का नाम प्रेमसिंह था।

मथुरामल्ल | यह दोनों भाई थे जिनके माथे पुरुषोत्तम चोपड़ा क्षत्री के ठाकुर
हरजीमल | लाडलेशजी की सेवा पधराई गई थी। इनकी वार्त्ता भावप्रकाश वाले संस्करण में नहीं है। डाकौर संस्करण में इसकी संख्या १६७ है।

हरिया—हरिदास बनिए का ही नाम है।

साठोदर नागर—यह गोधरा गुजरात का रहने वाला धनी ब्राह्मण था। जिसे युवा अवस्था में नाच-रंग का व्यसन था। डाकौर संस्करण में इसकी वार्त्ता की संख्या ४४ है। इसने एक वेश्या का उद्धार किया था।

सत्य भामा बेटी | गोपीनाथजी की बाल विधवा कन्यायें।
लक्ष्मी बेटी |

श्यामदास अंजना कुनबी—यह गुजरात का रहने वाला था। इसके माता-पिता मर गये थे। द्वारका से लौटती बार यह श्री गुसांईजी की शरण में आया था। यह फूलघर में काम करता था।

लालदास—यह ब्राह्मण था। इसे गुसांईजी ने श्यामदास का सत्संग करने को कहा था। इसकी वार्त्ता संख्या डाकौर में ६७ है।

लालमति—तुलसीदास नामक जलघरिया का नाम लालमति इसलिए पड़ा कि वह अपने को गुसांईजी का बालक समझता था।

---

(२) आचार्य वर्ग

श्री गोपीनाथजी—जन्म सं० १५६८ निधन-काल –१५९९ सम्वत्—

श्री गोपीनाथजी का जन्म तीसरे सोमयज्ञ की समाप्ति के पश्चात् सम्वत् १५६८ में आश्विन कृष्ण १२ के दिन हुआ था। उन दिनों श्री आचार्यजी अडैल में रह रहे थे। इनके जन्म के पश्चात् ही आप चुनार गए थे, जहाँ सम्वत् १५७२ में श्री विट्ठलनाथजी का जन्म हुआ था। सम्वत् १५७३ में जब यह पाँच वर्ष के थे, तभी इनका विद्याध्ययन आरम्भ हो गया था। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में सम्वत् १५८४ में इनका विवाह हो गया था। इनके एक पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी तथा सत्यभामाजी और लक्ष्मीजी नाम की दो पुत्रियाँ थीं। सम्वत् १५८७ में श्री आचार्यजी के नित्य लीला प्रवेश के पश्चात् यह काशी से अडैल में आकर रहने लगे और वहाँ से सम्प्रदाय का संचालन करने लगे। कृष्णदास अधिकारी की सूचना पर ये दोनों भाई अडैल से सम्वत् १५८९ में गिरिराज आए थे और इन्होंने वहाँ की व्यवस्था की थी। आपके समय से ही साँचौरा ब्राह्मणों का प्रवेश श्रीनाथजी की सेवा में हुआ है। श्री गोपीनाथजी का यह नियम था कि यदि श्री विट्ठलनाथजी अडैल में रहते थे तो आप श्रीनाथजी की सेवा के लिए जतीपुरा ठहर जाते थे। और जब वह गोपालपुर रहते थे, तो यह अडैल में माता की सेवा के लिए चले जाते थे। सम्वत् १५९५ में आपने जगन्नाथजी की यात्रा की थी और वहाँ वैसाख के महीने में "कृष्णदास गुच्छिवार" को एक वृत्तिपत्र लिख दिया था जिसमें श्री महाप्रभुजी की सम्वत् १५४५ की यात्रा का भी उल्लेख कर दिया था। अडैल में आपने सोमयज्ञ और विष्णुयज्ञ भी किए थे। इसके पश्चात् आपने गुजरात, सिंध, द्वारका आदि स्थानों की यात्रा की और एक लाख रुपए के चाँदी, सोने के बर्तन बनवा कर श्रीनाथजी की भेंट किए। यह अत्यन्त शान्त और सरल प्रकृति के व्यक्ति थे और इनके समय में ही श्रीनाथजी की सेवा का वैभव बढ़ा था। कृष्णदास अधिकारी ने इनके तिरोधान के बाद ही श्री विट्ठलनाथजी को मंदिर में प्रवेश करने से रोक दिया था और फिर गिरधरजी ने उन्हें शासन की सहायता से दंड दिलाया था। तिरोधान की घटना सम्वत् १५९९ की ही है। इसके पश्चात् इनकी पत्नी इनकी सम्पति और ग्रन्थों को लेकर दक्षिण चली गई थी। अतः इनके प्राप्त ग्रन्थों में केवल एक 'साधन–दीपिका' ही प्राप्त है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनका नित्य लीला प्रवेश (तिरोधान) जगदीश में सम्वत् १५९९ में हुआ था।

सम्प्रदाय के लिए गोपीनाथजी की देन अनुपम थी। उच्च कोटि की विद्वत्ता, सरलता और गम्भीरता के साथ दक्षता का आपके चरित्र में अपूर्व मिश्रण था।

प्रथम पुत्र

श्री गिरधरजी—संवत् १५९७ से १६७७ वि० तक।

आपका प्रागट्य सम्वत् १५९७ कार्तिक शुक्ल द्वादशी को अडैल में हुआ था। आपका घर का नाम श्री गोबरधन था। आपकी बहूजी का नाम श्री भामिनीजी था। आपके तीन बालक हुए थे। प्रथम, श्री मुरलीधरजी–जन्म सम्वत् १६३०, द्वितीय, श्री दामोदरजी-जन्म सं० १६३२, तृतीय श्री गोपीनाथजी–जन्म सम्वत् १६३४ तथा वेणीजी, महालक्ष्मीजी और सुभद्राजी तीन बेटियाँ भी थीं।

आपकी दो बैठकें प्रसिद्ध हैं–एक गोकुल में, दूसरी कामर में। आपके तीन श्लोक श्रीनाथजी की स्तुति के मिलते हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं।

अकबर के दरबार में आप 'यती' के नाम से प्रसिद्ध थे। कामर जतीपुरा से सीधे रास्ते से लगभग बीस कोस पड़ता है और कोसी से तीन या चार कोस है। ऐसा प्रसिद्ध है कि गिरधरजी 'कामर' प्रतिदिन जाते और आते थे। यहाँ आपकी बैठक एक गुफा में है, जहाँ एक घी का दीपक आज भी जलता रहता है। उस स्थान पर आज विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का मन्दिर भी बना हुआ है।

आप सम्वत् १६७७ विक्रमी तक विद्यमान थे और जब श्री गोकुलनाथ ने 'माला' सत्याग्रह किया, तब आप श्रीनाथजी की रक्षा के लिए जतीपुरा में ही रहे थे। सम्प्रदाय का यह नियम है कि श्री महाप्रभुजी की और श्री गुसांईजी तथा गिरधरजी की पादुकाएँ एक साथ सेवा में प्रतिष्ठित की जाती हैं। यह क्रम श्री गोकुलनाथजी का चलाया हुआ है। गोकुलनाथजी के सेवक 'भडूची' गोपालदास ने अपने माला काव्य में ऐसा भूल से या द्वेष से लिख दिया कि श्री गिरधरजी ने माला उतार दी थी। यह किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं हैं। आप सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखते थे और माला प्रसंग के समय समस्त सेवा का भार आप पर ही था।

आप पूर्ण विद्वान् थे और शास्त्रों के ज्ञाता थे। 'विद्वत्मंडन ग्रन्थ' के प्रश्न कर्त्ता आप हैं और उत्तर श्री गुसांईजी के हैं। सम्प्रदाय में यह प्रचलित है कि इन प्रश्नों को करते समय आप कंठी उतारकर पूरे मायावादी का रूप और आवेश धारण कर लेते थे और यह भी प्रसिद्ध है कि इसके समाप्त होने पर आपने श्री गुसांईजी से फिर दूसरी बार 'ब्रह्म सम्बन्ध' प्राप्त किया था। बटबारे में आपको श्री नवनीतप्रियजी और श्री मथुरेशजी के स्वरूप प्राप्त हुए थे।

द्वितीय पुत्र

श्री गोविन्दरायजी—संवत् १५९९ से १६५० तक।

आपका जन्म सम्वत् १५९९ वि० को मगशिर कृष्ण अष्टमी को अडैल में हुआ था। आपकी स्त्री का नाम श्रीरानी बहूजी था। आपका घर का नाम 'राजाजी' था आपके चार

नोट—इसमें श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य और श्री विट्ठलनाथजी के जीवन वृत्त इसलिए सम्मिलित नहीं गए हैं क्योंकि वे सम्प्रदाय में प्रकाशित हो चुके हैं। श्री गोकुलनाथजी का जीवनवृत्त भी प्रकाशित हो चुका है, परन्तु माला प्रसंग के कारण यहाँ लिखा गया है।

पुत्र थे—पहले श्री कल्याणरायजी, जन्म सम्वत् १६२५, दूसरे श्री गोकुलोत्सवजी; जन्म सम्वत् १६३४, तीसरे श्री कृष्णरायजी, जन्म सम्वत् १६३७, और चौथे श्री लक्ष्मीनरसिंहजी, जन्म सम्वत् १६४१।

बटवारे में आपको श्री विट्ठलनाथजीठाकुर जी मिले थे। श्री विट्ठलनाथजी गोकुल से पहले खिमनौर गए फिर यहाँ से कोटा रहे। कोटा से जयपुर रहे और फिर आजकल श्री नाथद्वारा में विराजमान हैं। आपकी रचनाओं में श्री 'विट्ठलशाष्टक' एक प्रसिद्ध रचना है, पर अभीतक यह अप्रकाशित ही है। आपका अन्तिम समय सम्वत् १६५० वि० के आस-पास है। आपकी दो बेटियाँ थीं–श्री रुकमिणी और श्री रामकुँवरजी।

आपके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि आपको सेवा करने का ऐसा आग्रह था कि अपने ब्याह के समय वरघोड़े पर बैठे हुए जैसे ही उत्थापन का समय हुआ, आप अधीर हो गए। आपके उत्साह और लगन को देखकर श्री गुसांईजी ने आपको पहिले सेवा करने की आज्ञा देदी और पीछे से ब्याह के लिए दूसरी लग्न साधनी पड़ी।

श्री कल्याणरायजी के जन्म सम्वत् १६२५ में जो नूपुर श्री गुसांईजी ने श्रीनाथजी को भेंट किये थे। वे आज भी श्रीनाथ द्वारे में वर्तमान हैं। इन नूपरों में 'श्री गोविन्द' लिखा हुआ है। प्रसिद्धि यह है कि प्रथम पुत्र होने पर श्रीनाथजी ने श्री गुसांईजी से बधाई माँगी थी और आपने यह नूपुर भेंट किए थे।

तीसरे पुत्र

श्री बालकृष्ण जी (१६०६ से १६५० तक)

श्री विट्ठलनाथजी के तृतीय पुत्र श्री गोस्वामी बालकृष्ण जी थे, जिनका जन्म सम्वत् १६०६ अश्विन कृष्ण १३ बुधवार को हुआ था। यह शरीर से बलिष्ठ और श्याम वर्ण के थे तथा इनके नेत्र बहुत बड़े थे। इसलिये इनको घर में 'राजीव लोचन' नाम से पुकारते थे। यह शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के तृतीय पीठ के समर्थ तिलकायत हुए हैं। सम्वत् १६१४ में अडैल में इनका यज्ञोपवीत हुआ था और सम्वत् १६२३ में विद्याध्ययन के पश्चात श्री कमलावती बहूजी के साथ विवाह हुआ था जिनसे सात संतानें हुई थीं। इनमें एक पुत्री और छः बालक थे—बेटी का नाम गोपदेवी था और बालकों के—(१) श्री द्वारकेश जी (२) ब्रज नाथ जी, (३) ब्रजभूषण जी, (४) पीताम्बर जी, (५) ब्रजालंकार जी, (६) पुरुषोत्तम जी।

यह अडैल में रहकर आचार्य महाप्रभु जी के सेवक श्री दामोदरदास सम्बल वाले कन्नौज के निवासी से प्राप्त श्री द्वारकाधीश जी की सेवा प्रेमपूर्वक करते थे। अडैल से जब इनके पिता श्री विट्ठलनाथजी सम्वत् १६१९ में गोकुल चले आए, तब यह भी वहाँ आकर उससे अधिक श्रद्धा और भावना से सेवा करने लगे। इनकी निष्ठा श्री द्वारकाधीश जी में ऐसी बढ़ी कि एक रात में स्वप्न में इन्हें श्री यमुनाजी के दर्शन हुए और इन्हें श्री स्वामिनीजी का अभाव खटकने लगा और आतुरता बढ़ने लगी। यहाँ तक कि इन्होंने ऐसा निश्चय किया कि जब तक स्वामिनीजी के ठीक स्वरूप की प्राप्ति न होगी तब तक अन्न-जल ग्रहण न करेंगे। इनके इस निश्चय की सूचना जब इनके योग्य पिता को मिली, तो उन्होंने इन्हें एक जोड़ी कंगन दिया, और कहा—जिस स्वरूप के हाथ में यह कंगन

ठीक आजाँय उस स्वरूप को ही आप उचित स्वरूप समझना। इन कंगनों को लेकर यह ब्रज के कई स्थानों पर गये। पर अन्त में, सम्वत् १६३८ में इनको गुंजावन में उस स्वरूप की प्राप्ति हुई और उसे वहाँ से लाकर इन्होंने उसे अपने पिता की अनुमति से मंदिर में श्री द्वारकाधीश जी के समीप पधराया। यह घटना सम्भवतः सम्वत् १६३८ माघ कृष्ण चौथ को हुई होगी क्योंकि इस घर में प्रति वर्ष माघ कृष्ण चौथ को श्री यमुनाजी श्री स्वामिनीजी का पाटोत्सव मनाया जाता है। सम्वत् १६३७ में माघ कृष्ण १० को अन्य मन्दिरों के साथ श्री द्वारकाधीश जी का भी नया मन्दिर बनवाने की योजना आरम्भ हुई थी। इसलिए श्रीस्वामिनीजी का प्रथम पाटोत्सव इस नवीन मन्दिर में ही हुआ होगा। ऐसा प्रसिद्ध है कि सेवा के समय इनको अलौकिक भावावेष ही जाया करता था और एक बार नन्द महोत्सव के दिन इनको यशोदाजी की भाँति नवनीतप्रियजी को पालना झुलाते-झुलाते ऐसा आवेश आया कि इन्होंने स्वरूप को गोद में ले लिया। सम्वत् १६३७ के ऐतिहासिक बटवारे में इन्हें इनकी व्यक्तिगत निष्ठा के कारण श्री द्वारिकाधीशजी का स्वरूप दिया गया था। इस बटवारे में इनके छोटे भाई यदुनाथजी को बालकृष्ण का स्वरूप मिला था, जो अन्य स्वरूपों की अपेक्षा छोटा था जिसे पीछे से उनके अस्वीकार करने पर इन्होंने ही श्री द्वारिकाधीश के समीप स्वीकार कर लिया था।

काँकरौली के इतिहास के अनुसार तथा 'सरस्वती भंडार' काँकरौली से प्राप्त अन्य हस्तलिखित सामग्री के अनुसार यह अत्यन्त तेजस्वी विद्वान् प्रतीत होते हैं और इन्होंने अनेक यात्रायें भी की थीं और बहुत से सेवक भी किए थे। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम कांकरौली विद्या-विभाग से इस प्रकार प्राप्त हुए हैं।

(१) स्वप्न दृष्ट स्वामिनी स्त्रोत्र, (२) गुप्त स्वामिनी स्तोत्र विवृति (३) भक्ति वर्धनी स्तोत्र विवृति, (४) प्रसादवागीश भाष्य विवरण, (५) सर्वोत्तम स्तोत्र विवृति।

कांकरौली में आपकी नित्य पाठ की श्रीमद्भागवत है जिस पर आपके हस्ताक्षर हैं, झूलने का पालना, खेलने की तबकड़ी (खिलौने), कमर की करधनी (सोने की) और गले के आभूषण, आदि चार चीजें स्मृति-चिह्न रूप में सुरक्षित हैं।

आपकी मृत्यु के सम्बन्ध में पहले सम्वत् १६४५ प्रसिद्ध हो गया था पर काँकरौली में सुरक्षित भागवत की पोथी की पुष्पिका में सम्वत् १६४९ फाल्गुन शुक्ल १३ उसका लेखन काल दिया हुआ है। इसलिए आपका सम्वत् १६५० तक विद्यमान रहना तो निश्चित ही है। पुस्तक की पुष्पिका इस प्रकार है—सम्वत् १६४९ वर्षे फाल्गुने मास्यामल पक्षे त्रयोदश्यां तिथौ भृगुवासरे श्रीमदहमदाबाद पत्तनान्तर्गत हरिहर पुरे रचितान्वयेन मेदपाटान्वयोत्पन्न व्यास श्री जयरामात्मजेन रघुनाथेन लिखितामिदं श्री भागवतं सर्व सिद्धये :

तथा—बालकृष्णेस्येदं पुस्तकम्। विभागानन्तरं श्री द्वारकेशवाराणाय गिरधरस्य च।

चौथे पुत्र

श्री गोकुलनाथजी जन्म सम्वत् १६०८ वि० निधन सम्वत् १६९७।

आप श्री विट्ठलनाथजी के चतुर्थ पुत्र थे। आपकी माता का नाम श्री रुकमिनीजी था। आपका जन्म विक्रम सम्वत् १६०८ गुरुवार मगशिर सुदी सप्तमी को अड़ैल में हुआ था।

साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर इनका विवाह सम्वत् १६२४ में आषाढ़ कृष्ण दौज गुरुवार के दिन मथुरा में हुआ था। इनकी स्त्री का नाम श्री पार्वती बहूजी था। इनके तीन पुत्र हुए थे। प्रथम पुत्र श्री गोपालजी का जन्म सम्वत् १६४२, द्वितीय पुत्र विट्ठलेशजी का जन्म सम्वत् १६४५ और तृतीय पुत्र व्रजरत्नजी का जन्म सम्वत् १६५० में हुआ था। इनकी पुत्री का नाम श्री रोहिणी जी था।

बटवारे में इनके भाग में श्री गोकुलनाथजी ठाकुरजी मिले, जो आज गोकुल में विद्यमान हैं और इन्हीं के वंशजों के पास हैं। श्री गुसांईजी के तिरोधान के अनन्तर सम्प्रदाय की गद्दी के तिलकायत रूप में यद्यपि श्री गुसांईजी के प्रथम पुत्र गिरधर जी रहे, किन्तु सम्प्रदाय के वैष्णव समाज में इनकी (श्री गोकुलनाथजी) विद्वत्ता, व्यवहार कुशलता और वाणी के रस के कारण इनका सबसे अधिक प्रभाव था। इनके वचनामृतों से यह जाना जाता है कि श्री गुसांईजी के जो कृपापात्र और अन्तरंग सेवक थे (चौरासी और दो सौ बावन में से) यह उन सब पर श्रद्धा और कृपा रखते हुए उनकी देख-रेख करते थे और उनकी आत्म-तुष्टि अपने वचनामृतों द्वारा किया करते थे। श्री गुसांईजी के ऋण को भी इन्हीं ने चुकाया था और श्री गुसांई के पीछे विशेष कर के विदेश (गुजरात इत्यादि) भी यहीं जाया करते थे। गुजरात के बारह गाँवों में सब लोग विशेषरूप से इनके सेवक होते चले आए हैं। उन बारह गाँवों के नाम देवगढ़ वारिया, बाड़ा सीनोर, मोढ़ाशाह, कपडवनर्ज, आंतरसुबा इत्यादि हैं। कुटुम्ब पर भी इनका प्रभाव था। आपसी झगड़ों का निबटारा भी यही किया करते थे। इतने प्रभावशाली व्यक्तित्व के होते हुए भी उनकी नम्रता और शिष्टता सराहनीय थी। वे अपने बड़े भाई के प्रति अति आदर-भाव और पूज्य बुद्धि रखते थे तथा अन्य भाइयों और भतीजों से भी इन्हें यथेष्ट प्रेम था। भाइयों के प्रति इनके प्रेम की पराकाष्ठा का एक उदाहरण सम्प्रदाय में इस प्रकार प्रसिद्ध है कि इनके पुत्र श्री गोपालजी ने अपने चाचा श्री घनश्याम जी से रुष्ट होकर जब उनके ठाकुर मदनमोहनजी की चोरी करवादी और उस स्वरूप को श्री गोकुल से बाहर भिजवा दिया, तब इन्होंने कहा कि जिसने हमारे 'घन्नू' (श्री घनश्याम जी) को कष्ट दिया है उसका वंश नष्ट हो जायगा। तब किसी ने कहा कि महाराज ऐसा मत कहिये वहुत करके सम्भव है कि वह आपके अपने घर का ही कोई व्यक्ति हो। इस पर भी आपने कहा कि 'उसका भी वंश न चलेगा।' हुआ भी कुछ ऐसा ही। आगे से फिर न तो गोपालजी के कोई पुत्र हुआ और न विट्ठलेशजी के। विट्ठलेश जी के पुत्र श्री गोवर्द्धनजी इस घटना के पूर्व जन्म १६६५ में लीला पधार चुके थे और यह घटना १६६६ की है। इतना ही नहीं हुआ आगे से गोवर्धनेशजी का भी वंश नहीं चला। इनका शरीर सम्वत् १६९७ विक्रमी फाल्गुन वदी नौमी के दिन छूटा था। इस प्रकार ८६ वर्ष २ मास और ६ दिन यह पृथ्वी पर रहे।

गोकुलनाथजी के जीवन की सबसे प्रसिद्ध घटना सम्प्रदाय के इतिहास में 'माला प्रसंग' के नाम से विख्यात है। वह सम्प्रदाय के इतिहास में ही नहीं, भारत के इतिहास की ऐसी अद्वितीय घटना है जिसका उल्लेख उससे पहिले नहीं मिलता है। अहिंसात्मक प्रतिरोध और सत्याग्रह जिसे आज के युग में गांधीजी ने देश की स्वतंत्रता के संग्राम को नीति के रूप में व्यवहार में स्थान दिया है उसका उदाहरण इन महात्मा ने अकेले सत्रहवीं शताब्दि में मुगल शासकों के सन्मुख रख दिया था। इन्हें जो सफलता इसमें मिली थी

उससे प्रभावित होकर इनके समकालीन सेवक श्री गोपालदास सूरत के पास व्यारा गाँव के निवासी ने 'माला प्रसंग' गुजराती काव्य की रचना की थी तथा अन्य उस समय के सुप्रसिद्ध गुजराती और हिन्दी कवियों ने पद और कविताएँ रची थीं। इनमें शेख, श्रीपति, प्राणनाथ, वृन्दावन, बिहारी और गहरगोपाल के नाम उल्लेखनीय हैं। माला प्रसंग काव्य में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और पुरुषों का तथा प्रसंगों का उल्लेख आ गया है और काश्मीर में जहाँगीर से भेंट के लिए जाते हुए जिन ग्रामों में श्री गोकुलनाथजी ने विश्राम किया था, उनके नाम भी आगए हैं।

'माला प्रसंग' की घटना इस प्रकार है कि गुजरात के वहियल परगना में 'हिलोल वासना' नाम का एक गाँव है। वहाँ का एक गौड़ ब्राह्मण सन्यासी होकर उज्जैन में नगर के बाहर क्षिप्रा नदी के किनारे भर्तृहरि की गुफा में रहने लगा था और उसने अपना नाम 'चिद्रूप' रक्खा था। वह वैष्णवों से अकारण ही द्वेष करने लगा था। एक बार श्री गोकुलनाथजी के दो सेवक 'गोपाल पंड्या' और 'मचियो व्यास' अपने गाँव वेसनगर से उज्जैन आए हुए थे। वे अपने गले में तुलसी की माला धारण किये हुए थे उसको देखकर उसने उनसे पूछा कि ब्राह्मण होकर यह माला क्यों धारण करते हो? तुम ब्राह्मण नहीं गरोड़ा (हीन जाति के ब्राह्मण) प्रतीत होते हो। इस पर मचिया व्यास ने चिद्रूप से कहा कि सन्यासी होकर आपको निन्दा करना शोभा नही देता फिर भी आप तुलसी और वैष्णवों की निन्दा करते हो, आपका यह व्यवहार शास्त्र विरुद्ध आचरण है। इस पर वह बहुत ही खीझा। कालांतर में उसका यह द्वेष भाव बढ़ता ही गया और सम्वत् १६७३ विक्रमी (ईस्वी १६१६) में जब बादशाह जहाँगीर गुजरात गया तो इसने अवसर पाकर बादशाह को ऐसा समझाया कि उसके राज्य में तुलसी की माला और ऊर्ध्वपुंड्र तिलक धारण करने वालों से राज्य का अहित हो रहा है और इन्हें रोकना आवश्यक है। लिखा है कि बादशाह जहाँगीर उसके चमत्कारपूर्ण जीवन से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने राजाज्ञा करदी कि मथुरा, वृन्दावन, श्री गोकुल और अन्य जहाँ कहीं कोई वैष्णव माला और तिलक किए मिले, उसकी माला उतरवा ली जाय और तिलक बिगाड़ दिया जाय या बिगड़वा दिया जाय। आसफखां नाम के बादशाह के मंत्री ने श्रीगोकुलनाथजी को गुप्त रूप से इस हुकुम की सूचना भेजी। तब गोकुलनाथजी पहले चुप रहे और उन्होंने इस मूर्खता पूर्ण आदेश की उपेक्षा की पर जब राज कर्मचारियों ने इस आज्ञा के अनुसार वैष्णवों को सताना आरम्भ किया और दूर-दूर से समाचार आने लगे कि राज्यकर्मचारी वैष्णवों की माला तोड़ डालते हैं और तिलक बिगाड़ डालते हैं, तो इन्होंने इसका विरोध किया। उज्जैन में श्रीगोकुलनाथ जी के सेवक देवाभाई सरानियां को हाकिमों ने हाथी से कुचलवाने का असफल प्रयत्न किया। इस पर श्री गोकुलनथ जी ने इसअत्याचार का प्रतिरोध करना निश्चय किया। देवयोग से उन्ही दिनों चिद्रूप मथुरा आ रहा था इसकी खबर श्री गोकुलनाथजी को श्रीश्यामदास जेतली ने दी और वह स्वयं उससे मिलने के लिए गए और उसे अपने यहाँ भिक्षा के लिए आमंत्रित किया पर वह न आया और शास्त्रीय चर्चा में भी इनको ठीक उत्तर न दे सका। मथुरा आने पर उसने मथुरा वृन्दावन के वैष्णवों को वहाँ के हाकिमों के द्वारा कष्ट देना आरम्भ किया और श्री गोकुलनाथ जी के पास भी कर्मचारी भेजे कि आप भी राजाज्ञा का पालन कीजिए पर गुसांई जी ने उसकी सविनय अवज्ञा की। इसके कुछ दिन पश्चात् जहाँगीर फिर काश्मीर जाते समय कर्णावलि में

ठहरा था और श्री गोकुलनाथजी आर्शीवाद देने आए थे और उसने उनसे भी कंठी माला के विरुद्ध अपने आदेश का उल्लेख किया। इस पर श्री गोकुलनाथजी ने कहा—पहिले इसे कोई शास्त्र विरुद्ध करदे, तब यह प्रसंग आयेगा। इस पर बादशाह ने चिद्रूप से शास्त्रार्थ के लिए कहा। पर उसका साहस न पड़ा। यह खबर जब बादशाह की हिन्दू स्त्री (मान बाई) क्षत्राणी को लगी, तो उसने तथा बादशाह की माता 'मरिउमजमानी' ने जहाँगीर को श्री गोकुलनाथजी के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करने से रोका और बादशाह अकबर और श्री गुसांई विट्ठलनाथ के सम्बन्ध का स्मरण कराया। नूरजहाँ और उसके भाई आसफखाँ और इतवारीखाँ ने भी प्रयत्न किया कि चिद्रूप श्री गोकुलनाथजी के प्रति अपना द्वेष त्याग दें, पर आसफखाँ के भी प्रयत्न असफल रहे। चिद्रूप के विरुद्ध ब्रज में ऐसा वातावरण हो गया कि बादशाह को उसकी रक्षा के लिए विशेष रीति से प्रबन्ध करना पड़ा और झगड़ा शान्त न हुआ। जहाँगीर चिद्रूप से कुछ ऐसा प्रभावित था कि उसने यह आज्ञा नहीं लौटाई। इसके अनन्तर चिद्रूप ने श्री गोकुलनाथ को अपने पास बुलाने के लिए मथुरा के हाकिम वंशगोपाल को भेजा, पर श्री गोकुलनाथजी नहीं आए और उन्होंने उससे मिलना अस्वीकार कर दिया। इस झंझट का समाचार वैष्णवों द्वारा जब आगरा पहुँचा, तब वहाँ के हाकिम लश्करखाँ ने वंशगोपाल को आगरा बुला भेजा। यह झगड़ा लगभग पाँच वर्ष तक चलता रहा और कई एक हाकिम मथुरा के कोतवाल सदयराम इत्यादि ने श्री गोकुलनाथ जी को समझाने की चेष्टा की। इसपर श्री गोकुलनाथजी ने बादशाह की लिखित आज्ञा का प्रमाण मांगा। बात बढ़ती ही गई। एक ओर मालायें तोड़ी जाती थीं, दूसरी ओर श्री गोकुलनाथ अपने अदम्य साहस के साथ फिर से मालाएँ देते चले जाते थे। श्री गोकुलनाथजी के इस शान्तिपूर्ण विद्रोह का समाचार बादशाह के पास काश्मीर भेजा गया और उसने श्री गोकुलनाथजी को काश्मीर बुलाया। काश्मीर में आसफखाँ ने श्री गोकुलनाथजी को एकान्त में बहुत समझाया कि बादशाह के सामने 'माला' उतारना स्वीकार कर लीजिए पीछे व्यवहार में चाहे ऐसा न कीजिए। पर श्री गोकुलनाथजी सहमत न हुए। इस पर उसने बादशाह को सलाह दी कि इनके सामने आप दो शर्तें रखिये कि या तो गोकुल छोड़दें या माला पहिनना बंद करें। क्योंकि गोकुल यह छोड़ न सकेंगे, इसलिए माला पहिनना बन्द कर देंगे। जब यह बात श्री गोकुलनाथजी के सामने रक्खी गई, तो उन्होंने गोकुल छोड़ना स्वीकार कर लिया पर माला पहिनना छोड़ना नहीं स्वीकार किया और बादशाह की आज्ञा से 'सोरों' जिला एटा में गंगा के तट पर रहना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन बाद जब बादशाह गोकुल आए, तो देखा कि गोकुल जन-शून्य हो रहा था और वहाँ के विशाल भवन खाली पड़े थे। उसने इसका कारण पूँछा तो राज्य-कर्मचारियों ने उसे श्री गोकुलनाथजी के निष्कासन की याद दिलायी। इस पर उसने सोरों से श्री गोकुलनाथजी को बुला भेजा और उनको फिर गोकुल में बसने की आज्ञा दी। उस बीच में चिद्रूप की ब्रज में अवज्ञा हो चुकी थी। सोरों का प्रवास का काल इस प्रकार है—सम्वत् १६७६ वि० मार्गशीर्ष सुदी ६, सोमवार को दोपहर को आपने गोकुल छोड़ा और तीन मास बारह दिन सोरों में रहकर सम्वत् १६७७ चैत बदी दसमी, बुधवार को लौट आए।

श्री गोकुलनाथजी ने माला की रक्षा में अपूर्व साहस, दृढ़ता और सहनशीलता का परिचय दिया और इसमें जो उनकी विजय हुई उसने उनके प्रभाव को निश्चय ही राज-द्वार और प्रजा दोनों में बढ़ाया होगा। श्री गोकुलनाथजी जब काश्मीर की लम्बी यात्रा पर

गए थे, उस समय उनकी अवस्था लगभग सत्तर वर्ष की थी। काश्मीर में वे रामरायजी के बाग में ठहराए गये थे। और मार्ग में उन्होंने जाती बार, गोकुल से आगरा (१८ कोस) २२ कोस आमल खेड़, ९ कोस जससेढ़ ६ कोस जस, ८ कोस अकबराबाद, ८ कोस कोर, ८ कोस चंडौस, १५ कोस दलपुर, ८ कोस सूरजपुर, ८ कोस दिल्ली, ५ कोस बादलबली, ७ कोस बटेला, ८ कोस सोनपुर, ८ कोस गुनोर, ५ कोस पानीपत, ७ कोस सभूलकछ, ७ कोस घमोदा ७ कोस करनालक, ७ कोस तलावड़ी, ८ कोस थानेश्वर, १० कोस शहाबाद, ८ कोस कछुआनो कोट, ५ कोस अम्बाला, ६ कोस घरघर, ७ कोस अलोड्या, ७ कोस सिंहरद, ६ कोस खन्ना, ३ कोस रामराया, ३ कोस राजा की सराय, ४ कोस दुरहास्ता, ८ कोस लुधियाना, ४ कोस फूलोर, ८ कोस नूरमहल की सराय, १ कोस उप्पल, ४ कोस निकोदर, ८ कोस सस्तेखान, २ कोस सुलतानपुर, ६ कोस गोविन्दबल, ९ कोस पटीबार, १६ कोस लाहौर, ७ कोस फैजाबाद, १३ कोस अहमदाबाद, ६ कोस चीमा, ६ कोस चिनखनी, ४ कोस छोटी गुजरात, १२ कोस भिन्नरगर, ५ कोस घाटी, १६ कोस चिगस, ७ कोस राजौर, ८ कोस थाना, ८ कोस रतन पंजाल, ६ कोस कोसाणू, १६ कोस मुहम्मद कुली की घटी, ७ कोस हरिपुर, १० कोस सराह, १० कोस काश्मीर कुल में पचपन गांव और ४४० कोस की यात्रा करनी पड़ी थी। [1]

माला प्रसंग के इतिहास की निम्नलिखित कवियों की रचनाओं से, जो पुष्टि सम्प्रदाय के नहीं थे, पुष्टि होती है :—

प्राणनाथ—मति जानो ख्याल श्री गोकुलनाथजी की माला है। टेक
बखानी हू वेद मरजाद हू बखानी है।
डारे गुदी बीच माला अमृत रसाला है। (मति जानो)
बुलाए जहाँगीर ने जाय के जुआव दियो।
हिन्दू की पति राखी श्री गोकुलनाथ प्रतिमाला है। (मति जानो)
'प्राननाथ' कहे बात सुनो सबै कान दै। (मति जानो)

प्राणनाथ—गोकुल का फकीर देखो आए कौन भाव से,
तें डारे गुदि बीच गुंज औ वन माला है।
मागता हूँ माल वे देता हैं जीव कौं,
करैं याद साई कों संग नंदलाला है।
हुआ है निडर मैं तो देता हूँ दुसाला।
मेरे माला बंद और ग …………साला है।
प्राननाथ बात कहै सुनो सबै कान दे।
मति जानो ख्याल श्री गोकुलनाथजी की माला है।

वृन्दावन—अधम उद्धारन तुम नाम वल्लभ
भक्ति पेज प्रतिपारन
तपसि वास निवारन
दुष्ट संहारन कारन
तिलक भाल उधारन

१ श्री गोकुलेश जू जीवन चरित्र-सम्वत् १९७८

माननी मान निवारन
रसिक सिरोमनि रस संचारन
कीरति उज्वल जग विस्तारन
वृन्दावन 'गोकुलपति नागर प्रगटे निज जन कारन ।'

कल्याण कवि:—

शेष सुरेस दिनेस कहे सुनि ही साहे गोकुल की राजधानी ।
विदरूप तें वे गरज्यो ब्रज में द्विजराज करीं सौ तिहूंपुर जानी ।।
तो पै यह बात करी 'कल्याण' महापति आगे जु जाय बखानी ।
आजअब ब्रज मंडल मांझ रह्यो मुख श्री गोकुलनाथ के पानी ।।

बिहारी—

टेक की, टेक की, टेक की, रे गिरि टेक टरै तो टरै ध्रुवतारो ।
श्री गोकुलनाथ जु माला तजै तौ शेष न शीष धरै भुव भारो ।
पौन थकै तौ थकै ब्रज को पन कौन करै महिते रत न्यारो ।
श्री वल्लभ बंस बिहारी कहै कवि जागत हैं जग में जस थारो ।

सेख—

मिटि गयौ मौन पौन साधना की सुधि भूली भूलौ योग युगति बिसारयौ तप बन कौ ।
'सेख' प्यारे मन कौ उजारो भयो प्रेम नेम तिमिर अज्ञान गुन नास्यौ बालपन कौ ।।
चरन कमल की मैं लोचननिलौच धरी रोचन है राच्यौ सोच मिटयो धामधनकौ ।
सो कलेस नेक न कलेस हू को लेस नहीं सुमिरिगें गोकलेस गौ कलेस मनकौ ।।[२]

गहर गोपाल—

चलत अदीठ चक्र चक चहुधां कनात सोई कीरत के थंम थीर थापि कै दृढ़ायो है ।
धरम के मेरचा सु सुमेरि पुमेखें गाडि प्रबल प्रताप डौरी खैंचि के तनायो है ।।
'गहर गोपाल' कहें तात रिनिवास किये दुखघन दारिद्र पहरिया नसायो है ।
बिट्ठल के नंद सुख कंद गोकुलेस तब सुजस कौ तंबू जंबू द्विप पर छायो है ।।

गोकुल बिहारी—

माला को अकार हू तो गयो यो संसार हूतें राखी टेक प्रताप गिरधारी जू ।
नेक के कहत तोरि डारी सब स्वामियन धीरज न धरयो नेक डरभयो भारीजू ।
मंदिर अवास घर तजत न लय्यो मन लीला को विलास मान्यो 'गोकुलबिहारी' जू ।
अजहूँ जे मुक्त भये केते जुग वीत गए सगर के वंस हैत आप पाँव धारे जू ।

खेम—(बुन्देलखंडी कवि)

औरन स्वांग धरे सब पेट के एक हुकूमत जीद रहाला ।
तें कुल जगत धर्म न तज्यो सिध साधक भूल गयो मतवाला ।
खेम चहूँ धनि धन्य कहै प्रेम पुलक सौं भक्त रसाला ।
श्री विट्ठलनाथ के श्री गोकुलनाथ जू तुमने पहरी जग में जसमाला ।

श्री हरिरायजी—जो उस समय तीस वर्ष के थे ।

ताताङ्कैक पर: पराशयविदां वर्य: परानन्ददो माला येन सुरक्षिता निज महायत्नेन कण्ठे सतां ।
धर्मोयेन विवर्धित: पूत पदाचार प्रचारै सदा स गोकुल नायक: करूणाया भूयाद्दशे सेविनाम् ।।

श्रीपतिः—

शाह कही सो तें न करी करी जो वेद पुरानन भाखी ।
माल तिलक जनेऊ के कारन ऐंडन पेंडन नाखी ।।
श्रीपति कहें जहाँगीर के खान उमराव जेते सब साखी ।
श्री विट्ठलनाथ जू के श्री गोकुलनाथ जू सब हिन्दुन की पति राखी ।।

भाषा बधाई

जयति विट्ठल सुवन, प्रगट वल्लभ वली, प्रवल पन करी तिलक माल राखी ।

लेखक और कवि रूप में ।

श्री गोकुलनाथजी अपने पूर्वजों और वंशजों की भाँति उच्च कोटि के वक्ता, लेखक और कवि थे । 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' के अनुसार यह तेरह ग्रंथों के रचयिता हैं ।

सर्वोत्तमेरू सुबोधिनी वेणुगीत परमांन ।
गोकुलनाथ स्वतंत्र कि भक्ति सुधी सुखदान ।।
सर्वोत्तम अरू गुप्त रस गद्यरु षोडश ग्रन्थ ।
वल्लभाष्टक अर्थ किय प्राकृत सुगम सुपंथ ।।
दंडी मद मर्दन जु फिर माला वाद सुजान ।
भाव रसायन ग्रंथ किय निर्णयार्थ नृपमान ।।
वचनामृत चौवीस किय देवी जन सुखदान ।
वल्लभ विट्ठल वारता प्रगट कीन नृपमान ।।

(सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृष्ठ १४०–४२)

इसके अनुसार आपके ग्रन्थ इस प्रकार हैं–(१) सर्वोत्तम पर छोटी टीका, (२) वेणुगीत आदि की सुबोधिनी पर स्वतंत्र लेख, (३) गुप्त रस की टीका, (४) गद्य (ब्रह्मसम्बन्ध मंत्र) पर टीका, (५) षोडश ग्रन्थों पर टीकाए, (६) वल्लभाष्टक पर टीका (७) प्राकृत सुगम सुपंथ' में ब्रजभाषा के सभी ग्रन्थ, (८) दंडी मद मर्दन (शास्त्रार्थ) (९) मालावाद (शास्त्रार्थ) (१०) भाव रसायन, (११) निर्णयार्थ (१२) चौबीस वचनामृत (ब्रजभाषा), (१३) वल्लभ-विट्ठल वार्त्ता ।

वास्तव में यह केवल तेरह ग्रन्थ नहीं हैं तेरह नाम हैं । ग्रन्थ इससे अधिक हैं । जैसे षोड़श ग्रन्थ की टीका में 'पुष्टि प्रवाह मर्यादा' 'सिद्धान्त रहस्य' 'भक्ति वर्धिनी' अन्तःकरण प्रबोध, सन्यास-निर्णय पर स्वतंत्र टीकाएँ हैं । यह पृथक रीति से पाँच स्वतन्त्र रचनाएँ हुईं ।' प्राकृत सुगम सुपथे' का अर्थ होता है प्राकृत (ब्रजभाषा) में मार्ग को सुगम दृष्टि से सुलभ करने वाले ग्रन्थ । इसमें (१) रहस्य भावना, (२) भाव भावना, (३) सेवा भावना, (४) षटऋतु भावना, (५) हास्य प्रसंग, (६) वचनामृत, (७) स्वरूप भावना, (८) लीला भावना ।

इसी प्रकार वल्लभविट्ठल वार्त्ता में (१) निजवार्त्ता, (२) घरूवार्त्ता (३) बैठक चरित्र, (४) आचार्यजी की प्रागट्य वार्त्ता, (५) श्री गुसांईजी की निजवार्त्ता, (६) श्री गोपीनाथजी की वार्त्ता, (७) चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता, (१०) दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता, (११) भाव सिन्धु, (१२) श्रीनाथजी को प्रागट्य आदि बारह स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं ।

इस प्रकार इनकी ग्रन्थ संख्या कम से कम बत्तीस ठहरती है।

'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' के ग्रन्थकर्त्ता श्री विट्ठलनाथ भट्ट ने केवल शीर्षकों के आधार पर ग्रन्थ संख्या तेरह निर्धारित करदी है, जो इसे देखते हुए एक संक्षिप्त उल्लेख-मात्र है।

ग्रंथ परिचय

(१) सर्वोत्तमस्तोत्र विवृति—

यह सर्वोत्तम स्तोत्र पर एक छोटी टीका है जिसमें कुछ विवेचन के साथ शब्दार्थ मात्र दिया गया है। इसका प्रकाशन बम्बई से श्री वाड़ीलाल नगीनदास शाह एडवोकेट द्वारा बम्बई के निर्णय सागर प्रेस से सम्वत् २००९ (गुजराती) में हो चुका है। यह गद्य ग्रन्थ है। इसमें पद्मनाभदास 'कोटि में विरला' कहकर गिनाए गए हैं।

वेणुगीत की सुबोधिनी टीका पर स्वतंत्र लेख—

इसमें सुबोधिनीजी के विशेष वक्तव्यों पर अपने स्वतन्त्र विचार प्रगट किये हैं। इससे श्री सुबोधिनीजी का अध्ययन सरल होता है और स्पष्ट भी हो जाता है। यह गद्य लेख है।

(२) सर्वोत्तम की बड़ी टीका—

इसमें विस्तारपूर्वक आचार्यजी के १०८ नामों पर टीका लिखी गई है। उसमें से केवल ६५ नाम तक प्राप्त हैं, शेष नहीं मिलते हैं। इसमें 'दासदासी प्रिय' इस नाम की व्याख्या में रजो क्षत्राणी, दामोदरदास के उल्लेख मिलते हैं।

(३) गुप्तरस की टीका—(संस्कृत)

यह अभी प्रकाशित नहीं हुई है। काँकरौली विद्या-विभाग के सरस्वती भंडार में इसकी प्रति सुरक्षित है। 'गुप्त रस' श्री गुसांईजी रचित ३१ श्लोकों का ग्रन्थ है। यह वृहत्स्तोत्र सागर में श्री न्यूस प्रिंटिंग प्रेस बम्बई से सम्वत् १९८३ में प्रकाशित हो चुका है। श्री गोकुलनाथजी की टीका इस गुप्ततम रहस्य को भावना के अनुसार बोधगम्य बनाती है। इस पर एक श्री घनश्यामजी की भी टीका है जिसकी हस्तलिखित प्रति विद्या-विभाग काँकरौली में सुरक्षित है।

(४) गद्य (समर्पण गद्यार्थ) संस्कृत—

यह ब्रह्मसम्बन्ध मन्त्र के गद्य पर संस्कृत में एक विवेचनात्मक टीका है, जो उसके अभिप्राय को प्रकट करती है। यह लगभग १५ पृष्ठ का ग्रंथ है जो निर्णय सागर प्रेस से 'श्री गोकलेश वाक्-सुधा' में प्रकाशित हो चुका है।

(५) पुष्टि प्रवाह मर्यादा—(षोडश ग्रन्थ पर टीकायें) संस्कृत

इसमें पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा सृष्टि क स्वरूप क्रम और मार्ग पर आचार्यजी द्वारा किए गए विवेचन का हार्द प्रगट किया गया है। यह लगभग तीस पृष्ठ का ग्रन्थ है, जो निर्णय सागर प्रेस से 'श्री गोकलेश वाक-सुधा' में प्रकाशित हो चुका है।

(६) सिद्धान्तरहस्य—

यह संस्कृत का ११ पृष्ठ का छोटा सा ग्रन्थ है। इसमें ब्रह्मसम्बन्ध के बाद वैष्णव के कर्त्तव्यों की सूचना है जिसे गोकुलनाथजी ने अपने ढंग से समझाया है।

(७) भक्ति वर्धिनी—

यह संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें गोकुलनाथजी ने भक्ति की वृद्धि के लिए लिखे श्री महाप्रभुजी के सिद्धान्त की निजपरक व्याख्या की है और प्रत्येक शब्द का व्याकरण के अनुसार विस्तृत अर्थ दिया है। यह भी निर्णय सागर प्रेस से 'श्री गोकुलेश वाक सुधा' में प्रकाशित है। यह भी लगभग १२ पृष्ठ का ग्रन्थ है।

(८) अन्तःकरण प्रबोधिनी—

यह संस्कृत ग्रन्थ जिसमें महाप्रभुजी ने अपने अन्तःकरण को सम्बोधित करते हुए वैष्णवों को बोध दिया है, उसे श्री गोकुलनाथजी ने स्पष्ट और सुलभ किया है। यह ग्रन्थ भक्ति वर्धिनी के समान ही छोटा है और श्री गोकुलेश वाक सुधा में प्रकाशित है।

(९) सन्यासनिर्णय—

संस्कृत में महाप्रभुजी ने भक्ति-मार्ग के सन्यास का स्वरूप निश्चित किया है। इसे श्री गोकुलनाथजी ने व्याख्या और विवेचन द्वारा संक्षेप में स्पष्ट किया है। यह लगभग बीस पृष्ठ का ग्रन्थ है। जो नि० सा० प्रेस, बम्बई से 'श्री गोकुलेश वाक सुधा' में प्रकाशित है।

(१०) विज्ञप्ति श्लोक—

यह ३५ श्लोक श्री गोकुलनाथ जी ने रचे हैं यह 'गोकुलेश वाक् सुधा के संग्रहकार ने माना है। पर वस्तुतः इसके बहुत से श्लोक श्री गुसांईजी की विज्ञप्ति में प्राप्त होते हैं। अतः गोकुलनाथजी रचित नहीं हैं।

श्रीमद्वल्लभाष्टकम्—

यह श्री गुसांईजी रचित ग्रन्थ है। इसमें श्री महाप्रभुजी के आधिदैविक स्वरूप का वर्णन है उस पर गोकुलनाथ जी की संक्षिप्त व्याख्या है जो लगभग दस पृष्ठ की है और 'श्री गोकुलेश वाक् सुधा' में प्रकाशित है। इसमें 'कृष्णदास मेघन' ८४ वार्त्ता संख्या २ का प्रसंग ३ (अग्निवाला प्रसंग) ज्यों का त्यों दिया है।

'प्राकृत सुगम सुपंथ' में ६ ग्रंथ हैं—

(१) रहस्य भावना—ब्रज भाषा गद्य का यह छोटा-सा लगभग पचास पृष्ठ का ग्रन्थ है। इसका विषय 'गुप्त रस' ग्रन्थ से मिलता-जुलता है। इसमें सेवा में जो पदार्थ काम में आते हैं, उन सबका आधिदैविक स्वरूप वर्णन किया गया है, जैसे—मन्दिर को अक्षर ब्रह्म कहा गया है और स्वामिनीजी को नेत्र बताया गया है। मन्दिर के किवाड़ को श्री स्वामिनी जी का पलक बताया गया है। टेरा (पर्दा) को माया का स्वरूप बताया गया है। यह ग्रंथ अब प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं है। केवल एक बार मथुरा से श्री कालूराम मुखिया द्वारा प्रकाशित हुआ है और अब इसका एक गुजराती अनुवाद प्रकाशित रूप में अप्राप्य है। इसकी केवल एक प्रति मेरे देखने में आई है। हस्तलिखित रूप में यह पुस्तक अवश्य मिलती है।

(२) भाव भावना —
(३) सेवा भावना—
(४) लीला भावना—
(५) स्वरुप भावना—

इन चारों ब्रज भाषा गद्य ग्रंथों की अनेक हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हैं। इनमें सेवा विधि, और सेवा की भावना, स्वरूपों (ठाकुरजी) और उनमें से प्रत्येक स्वरूप की अपनी-अपनी अलग भावनाएँ लिखी हैं। लीला भावना में प्रमाण, प्रमेय, साधन-फल तथा उत्सव आदि की भावनाओं का निरूपण हुआ है। 'भावभावना' में महाप्रभुजी श्री गुसांईजी के स्वरूपों के भावों की भावना की है। जैसे महाप्रभुजी में वैश्वानरत्व की भावना और श्री गुसांईजी में श्री कृष्णावतार की भावना इत्यादि, ऐसे ग्रन्थ श्री हरिरायजी और श्री द्वारकेशजी (पंचम घर के बालक जन्म सम्वत् १७५१) के भी मिलते हैं। श्री वसंतराम शास्त्री अहमदाबाद वाले ने यह ग्रंथ प्रकाशित किया है जो इस समय अप्राप्य है। इनकी कई प्रतियाँ कांकरौली विद्या विभाग के सरस्वती भंडार के हिन्दी वंधों में सुरक्षित हैं। यह मूल रूप में चारों पुस्तकें लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों की हैं।

(६) षट् ऋतु वार्त्ता (भावना)

इस ग्रन्थ में श्री गुसांईजी के सेवक चतुर्भुजदास द्वारा कही हुई (रचित) भावना को श्री गोकुलनाथजी ने वार्त्ता रूप में प्रगट किया है। इस पर श्री हरिरायजी का भावप्रकाश भी है। यह श्री द्वारकादास पारीख द्वारा सम्पादित होकर 'संदेश प्रेस' अहमदाबाद से प्रकाशित भी हो चुकी है। (प्रथम संस्करण सम्वत् २००५ वि०)। इसमें गोवरधन की तरेहटी में षट् ऋतुओं का नित्य निवास माना गया और प्रत्येक ऋतु की दो दो कुंजे मानी गई हैं। जिनमें भगवान के अहर्निश ऋतुओं के भोग करने का वर्णन है। ग्रंथ लगभग पचास पृष्ठ का है।

(७) हास्य प्रसंग—

अहमदाबाद से दीनकिंकरजी द्वारा दो भागों में गुजराती में प्रकाशित हो चुका है। इसकी नागरी लिपि की पोथी मुझे देखने को नहीं मिली है। इसमें हँसी के प्रसंगों में सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को सरल रीति से समझाया गया है।

(८) वचनामृत—

श्री गोकुलनाथजी के बचनामृतों की एक हस्तलिखित प्रति सम्वत् १७६६ की श्री द्वारिकादास पारीख के पास सुरक्षित है। जिसके कुछ अंश समय-समय पर 'वल्लभीय सुधा' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित होते रहते हैं। यह ब्रज भाषा गद्य की पुस्तक है। पुस्तक अन्त में खंडित है जिससे यह अनुमान होता है कि कुछ प्रसंग अभी और होंगे।—इसी प्रकार की दो अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ 'वचनामृतों' की और भी मिलती हैं। एक का नाम है 'श्रीवर वाक्यामृत रस रत्न कोष'। यह संग्रह यों तो कई जगह देखने में आया है पर श्री द्वारिकादासजी के पास और विद्या विभाग कांकरौली में भी है। इसके 'वचन' पहले संग्रह से भिन्न हैं। इस प्रकार तीसरे संग्रह के भी 'वचन' दूसरे से भिन्न हैं। पहले संग्रह में ३५२ प्रसंग हैं दूसरे में ४०० और तीसरे में लगभग ७०० वचनामृत हैं। इस प्रकार १५०० वचनामृत उपलब्ध होते हैं। 'बचनामृतों' के संग्रहों को

ध्यान से देखने पर यह प्रतीत होता है कि यह श्री गोकुलनाथजी के सामने तत्काल ही लिखे जाते थे और पीछे से अनुसंधानपूर्वक स्थान, समय, व्यक्तियों के उल्लेख की पूर्ति करके सुरक्षित रखे जाते थे। वचनामृतों की दो प्रतियों के ब्लाक परिशिष्ट में दिए गए हैं, जिनसे इनकी प्राचीनता और पद्धति पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। इन वचनामृतों में जो प्रसंग आए हैं, उनसे वार्त्ता में आए हुए कई प्रसंगों की पुष्टि होती है। वार्त्ता साहित्य की प्रामाणिकता के प्रसंग में इसका विशद उल्लेख हो चुका है।

+ + +

श्री वल्लभ विट्ठल वार्त्ता--
(१) निजवार्त्ता—
(२) घरूवार्त्ता—
(३) बैठक चरित्र—

'श्री वल्लभ विट्ठलवार्त्ता—यह बारह ग्रन्थों का एक विशद संग्रह है। इस 'निजवार्त्ता' में महाप्रभुजी के निजी प्रसंग हैं और घरूवार्त्ता में उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सामग्र है। बैठक चरित्र में श्री महाप्रभुजी की प्रसिद्ध बैठकों का विवरण है। जहाँ जहाँ यात्रा में आचार्य चरण ने श्रीमद्‌भागवत का एक सप्ताह या अधिक श्रीमद्‌भागवत का पारायण किया है उस अमृत-वर्षी स्थान का नाम बैठक है। यह बैठकें केवल पुरानी व्यास पीठें नहीं हैं यह वे स्थान हैं जहाँ अनेक सेवकों की भावनाओं को श्री आचार्यचरण के द्वारा अलौकिक अनुभूति प्राप्त हुई थी। यह समादृत स्थान हैं और तभी से सुरक्षित तथा पूज्य हैं। इस प्रकार की बैठकें तो अनेक हैं पर चौरासी का इसमें उल्लेख है और उन घटनाओं का भी उल्लेख है जो उन स्थानों पर श्री महाप्रभुजी द्वारा प्रगट की गई थीं। इस ग्रन्थ का महत्व यही है कि यह महाप्रभुजी के प्रभाव का विस्तार और उनकी अलौकिकता पर प्रकाश डालता है।

आचार्यजी के प्रागट्य की वार्त्ता

इस ग्रंथ में निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता के प्रसंगों को क्रमबद्ध करके कुछ वृद्धि के साथ लिखा गया है। इसलिए इसे निजवार्त्ता घरूवार्त्ता का परिवर्धित संस्करण ही माना जायगा। इस पर श्री हरिरायजी का भावप्रकाश भी मिलता है। इसका मुद्रण काँकरौली विद्या विभाग द्वारा हो चुका है।

श्रीगुसांईजी की निजवार्त्ता—

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसमें आठ प्रसंग हैं। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति काँकरौली विद्याविभाग में सुरक्षित है इस ग्रन्थ में एक प्रसंग श्री गुसांईजी विद्याध्ययन का है जिसमें लिखा है कि वे माधव सरस्वती के यहाँ अध्ययन के लिए प्रयाग जाया करते थे और पोथी वहीं छोड़कर अडैल आकर श्री आचार्यजी से भागवत अध्ययन करते थे और उन्होंने अपनी दश वर्ष की आयु में संस्कृत में जो राजभोग की आर्या रचकर महाप्रभुजी को सुनाई थी वह भी इसमें सुरक्षित है। आर्या (व्रजराज विरोजित घोष वरे)। एक प्रसंग इसमें बैंगन त्याज्य है या नहीं इसका भी है।

श्री गोपीनाथजी की वार्त्ता—

इसमें उन पौराणिक गाथाओं का संग्रह है जो श्रीगोपीनाथजी ने अपने सेवकों से कहीं थीं।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता—
दोसौ बावन वष्णवन की वार्त्ता } यह दोनों प्रसिद्ध प्रकाशित ग्रन्थ हैं।

भाव सिंधु--

यह भी प्रकाशित ग्रंथ है। इसमें इक्कीस वार्त्ताएँ हैं जो चौरासी और दोसौ बावन में भी प्राप्त हैं तथा कुछ वार्त्ताएं ऐसी भी हैं जो इन ग्रन्थों में नहीं हैं जैसे 'त.ज' और चन्दाबाई की वार्त्ता। इसमें निजवार्त्ता के कुछ प्रसंग छाप दिये गये हैं जिनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है क्योंकि उसमें ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जो इतिहास की दृष्टि से समकालीन सिद्ध नहीं होते हैं। इसका नाम भाव सिंधु इसलिए रखा गया प्रतीत होता है कि इसमें वार्त्ताओं पर भाव से विस्तार किया गया है।

श्रीनाथ जी के प्रागट्य की वार्त्ता--

इसमें प्रारम्भ में श्रीनाथ जी के प्रागट्य का इतिहास कहा गया है। यह ८४ वैष्णवन की वार्त्ता में श्री कुम्भनदास की वार्त्ता में भी मिलता है। इस ग्रन्थ को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें श्री नाथजी के ब्रज में रहने तक का हाल तो श्री गोकुलनाथजी कृत है और मेवाड़ पधारने के तथा वहाँ विराजमान होने के चरित्र श्री हरिराय जी द्वारा परिवर्द्धित हुए हैं। सम्प्रदाय कल्पद्रुम से इसकी पुष्टि होती है। पर इसमें श्री पुरुषोत्तमजी महाराज श्रीजी को जड़ाऊ मोजा धारण करवाये : वाले एक प्रसंग में अनोसर की गद्दी पैंडा विद्वान के प्रसंग में श्री हरिराय जी के नाम का अन्य वचन से उल्लेख है जो यह विरोध उत्पन्न करता है कि यदि यह ग्रन्थ श्री हरिराय जी द्वारा लिखा गया होता तो वे अपने नाम को इस अन्य वाचक ढंग से न लिखते। बात ऐसी प्रतीत होती है कि यह सब प्रसंग या तो श्रीनाथद्वार की बहियों से संग्रह किये हैं जहाँ लेखक ने श्रीहरिरायजी का नाम इस रूप में लिख दिया है अथवा जिस लेखक को हरिरायजी ने स्वयं लिखवाया है उसने इनका नाम इस प्रकार लिखा है। श्री पुरुषोत्तमजी श्री हरिरायजी के समकालीन थे इसमें तो कोई सन्देह है ही नहीं। केवल उनके अन्य बचन प्रतीक नाम से इस प्रसंग के उनके लिखे होने का सन्देह उत्पन्न होता है और साधारण दृष्टि से देखने पर इसमें सन्देह के लिए स्थान भी है पर नाथद्वारा की बहियों में आज भी प्रतिदिन की महत्वपूर्ण घटनाएँ संक्षिप्त रूप से लिखी जाती हैं और यह घटना (जड़ाऊ मौजें) भी एक अपने समय की महत्वपूर्ण घटना थी। इस ग्रंथ में केवल सम्वत १७४२ तक की श्रीनाथजी सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख है।

दंडी मद मर्दन-- मालावाद--भाव रसायन, निर्णयार्थ देखने में आए हैं।

कवि

यह ग्रंथ श्री गोकुलनाथजी को संस्कृत और ब्रजभाषा गद्य के एक उच्च कोटि के लेखक सिद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त वे कवि भी थे यह उनकी सम्प्रदाय में प्रचलित रचनाओं के आधार पर प्रमाणित होता है। इनके पद सम्प्रदाय के कीर्तन संगहों में 'श्रीवल्लभ' नाम से मिलते हैं। श्री गिरधरलालजी के वचनामृतों में भी इस बात का उल्लेख है। श्रीगिरधरलालजी ने जो कवियों के प्रसंग कहे उनमें आपका उल्लेख है। आपका यह पद बहुत प्रसिद्ध है—

बैठे हरि राधे संग कुंज भवन अपने रंग।
कर मुरली अधर धरे सारंग मुख गाइए॥

सेवक—इनके सेवकों में अठत्तर सेवकों के नाम प्रसिद्ध हैं। उनमें से कवि और ग्रंथकार भी थे। इनके सेवकों में मुख्य 'मोहन भाईजी' जो भड़ौच के बनिए थे। वे आगरे के एक विख्यात राज्याधिकारी थे और मुहल्ला गोकुलपुरे में रहते थे। 'मोहन भाईजी' तो श्री गोकुलनाथजी के अतिरिक्त सभी स्वरूपों और बालकों को मानते थे और उन्होंने सातों घरों को 'पिछवाई' दी है, पर इनके पीछे के सेवक श्री गोकुलनाथजी को छोड़कर अन्य घरों और ठाकुरजी को भी वह मान्यता नहीं देते हैं।

अन्तकाल—इनका अन्तिम काल सम्वत् १६९७ माघ वदी ९ (कातिकी) में है। यह ८९ वर्ष २ मास और ९ दिन भूतल पर रहे हैं और गोकुल ही में आपका शरीर छूटा है।

इनका घर का नाम 'श्रीवल्लभ' था और इनकी बेटी का नाम रोहिणीजी था।

आलोचना—'माला प्रसंग' का जो उल्लेख सम्प्रदाय में मिलता है, इसका उल्लेख जहाँगीर से सम्बन्ध रखने वाले किसी ग्रन्थ में नहीं है। और जहाँगीर की उदार नीति से इसका कोई मेल भी नहीं बैठता है। ऐसा लगता है कि यह प्रसंग शाहजहाँ के राज्यारोहण के बाद का ही हैं क्योंकि उसी ने पुराने मन्दिरों के जीर्णोद्धार को रोक दिया था। शाहजहाँ का समय सम्वत् १६८५ से १७१५ तक है और श्री गोकुलनाथजी की उपस्थिति संवत् १६७७ की बताई जाती है। किन्तु सम्वत् १६७७ (सन् १६२०) में जहाँगीर का शासन शान्तिपूर्ण ढंग से चल रहा था; केवल (सन् १६२१) सम्वत् १६७८ में शाहजहाँ ने विद्रोह किया था और वह आगरे होकर दिल्ली गया था। यह घटना उस समय की हो सकती है, जिसका सम्बन्ध जहाँगीर से जोड़ना अनुचित है। (सन् १६२१-२३) तक शाहजहाँ ने सारे उत्तर भारत की शांति भंग करदी थी।[1]

पाँचवे पुत्र

श्री रघुनाथजी—जन्म सम्वत् १६११ वि०, निधन सम्वत् १६६०

यह श्री गुसांईजी के पाँचवें पुत्र थे। इनकी माताका नाम श्री रुक्मिणीजी था और इनका जन्म विक्रम सम्वत् १६११ में अडैल में हुआ था। साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर यह जब पाँच वर्ष के थे तब एक दिन ऐसी एक घटना घटी कि उस दिन से ब्रज भाषा का व्यवहार श्रीनाथजी की सेवा में होने लगा और उसने संस्कृत का स्थान ले लिया। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में तथा श्री गिरधरलालजी के वचनामृतों में घटना इस प्रकार लिखी है कि एक बार श्री गुसांईजी श्रीनाथजी के मन्दिर में शृंगार कर रहे थे और यह पाँचों पुत्र वहाँ खड़े थे। उस समय तक श्री गुसांईजी श्रीनाथजी की सेवा में संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे, सो उन्होंने संस्कृत में कहा 'मंजूषामानय' और बालक तो चुप खड़े रहे केवल श्री रघुनाथजी 'जो आज्ञा' करके सय्या मन्दिर में चले आये और यह समझे तो थे नहीं इसलिये चुपचाप खड़े रहे और विचार करने लगे कि क्या ले जाँय। इस पर इनको श्री महाप्रभुजी ने बोध दिया और यह शृंगारमंजूषा लेकर के पिताजी के पास उपस्थित हो गए। पीछे से यह प्रसिद्ध है कि श्रीनाथजी ने श्री गुसांईजी को कहा कि सेवा में संस्कृत बोलने से बालकों को कष्ट होता है और मुझे ब्रज-भाषा प्रिय है, आप उसी का व्यवहार कीजिए। इस प्रकार 'मंजूषामानय' की घटना के बाद से सेवा में ब्रज-भाषा का व्यवहार नित्य प्रति बढ़ता ही गया। श्री गुसांईजी

१ किन्तु कविता में जहाँगीर का ही नाम है शाहजहाँ का नहीं।

अष्टछाप की स्थापना करके ब्रज-भाषा पद्य को तो स्थायी रूप दे ही चुके थे। उन्होंने सेवा प्रणाली में ब्रज-भाषा गद्य को स्थान देकर उसके प्रसार के मार्ग का उद्घाटन कर दिया। इससे पूर्व श्री गुसाँईजी के पत्र अपने सेवकों के नाम केवल संस्कृत में प्राप्त होते हैं, पर इस घटना के पश्चात् के अनेक पत्र (सेवकों को) ब्रज-भाषा गद्य के प्राप्त हैं। ऐसे एक पत्र को हम श्री गुसांईजी के चरित में प्रगट कर चुके हैं।[1]

सम्प्रदाय कल्पद्रुम में यह घटना इस प्रकार बताई गई है :

ग्रीष्म ऋतु गिरिधारन को विट्ठल करत शृंगार,
मंजूषामानय कहि रघुपति पास निहार।

पन्द्रह वर्ष की आयु में सम्वत १५२६ में श्री गोकुल में इनका विवाह एक स्वजातीय कन्या श्री जानकीजी से हुआ था। इनके पाँच पुत्र व एक कन्या थी। पुत्रों के नाम—(१) श्री देवकीनन्दनजी जन्म सम्वत् १६३४, (२) श्री गोपालजी जन्म सम्वत् १६३१, (३) श्री जयदेवजी जन्म सम्वत १६४५, (४) श्री यशोदानन्दनजी जन्म सम्वत् १६४६, (५) श्री द्वारिकेशजी जन्म सम्वत् १६५०, (६) कन्या का नाम श्री जमुनाजी।

नन्ददासजी की वार्त्ता में (वार्त्ता नं० २४१ चौ० वै० वार्त्ता) प्रसंग ४ में यह लिखा है कि श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ब्रज को आए और उन्हें श्री गुसांईजी ने श्री रघुनाथजी में रामचन्द्रजी के दर्शन कराये। उस समय आपका विवाह हो चुका था। विवाह का सम्वत् लगभग १५२६ है। अतः यह घटना उसके आस-पास की ही होगी। सम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार इस घटना का समय सम्वत् १६२८ विक्रमी होना चाहिए, पर 'वचनामृत के अनुसार यह सम्वत् १६२६ विक्रमी की ही घटना है। वचनामृत की १७६६ वि० सम्वत् की हस्त-लिखित प्रति के अनुसार 'श्री रघुनाथजी महाराज को विवाह हतो सो ठौर-ठौर आनन्द होय रहो हतो............ता समय श्री रघुनाथजी पन्द्रह वर्ष के हे। ऐसा लिखा है। इसलिए सम्वत् १५२६ ही अधिक प्रामाणिक ठहरता है। यदि यह गुजराती सम्वत् मान लिया जाय, तो यह १५२७ हो सकता है। उस समय तुलसीदासजी ब्रज को आए थे। इनका घर का नाम रामचन्द्रजी था।

इनको बटवारे में गोकुलचन्द्रमाजी ठाकुर मिले थे, जो आज कामवन में पाँचवीं गद्दी के वंशजों के पास हैं। इनका अन्तिम समय सम्वत् १६६० के आस-पास माना जाता है। इनका यह नियम था कि प्रातःकाल सबसे पहले श्री गुसांईजी का दर्शन करते थे। एक दिन बैठक में आँख बन्द किए हुए जाते समय इनके चोट लग गई, तब श्री गुसांईजी ने इन्हें अपने हाथ से अपना एक चित्र बनाकर दिया जो चन्दावाड़ी बम्बई में सुरक्षित था, पर अब जल गया।

सम्प्रदाय में यह बहुत बड़े ग्रन्थकार प्रसिद्ध हैं। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में इनके निम्न-लिखित चौदह संस्कृत के ग्रन्थों का उल्लेख है:—(१) नामरत्न, (२) वह्निस्तवन, (३) आराधना स्तुति, (४) गिरिधराष्टक, (५) गोकुलेश अष्टक, (६) अष्टपदी, (७) कृष्णचन्द अष्टक, (८) शयन आर्या, (९) विट्ठलेशाष्टक, (१०) षोडश ग्रन्थ टीका, (११) नाम चन्द्रिका, (१२) वल्लभाष्टक अर्थ, (१३) संहित वचन, (१४) आख्यान स्तुति।

---

१ सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृष्ठ ८१—८२ और वचनामृत—३०

भाषा के प्रसिद्ध पद—

श्रीमदाचार्य के चरन नख चन्द्र को ध्यान हिय में सदा रहत जिनके।
कटत सब तिमिर महा दुष्ट कलिकाल के भक्ति रस गूढ़ दृढ़ होत तिनके ।।
जन्त्र औ मन्त्र महा तन्त्र बहु भाँति के असुर और सुरना को डरन जिनके।
रहत निरपेक्ष अपेक्ष नहिं काहू की भजन आनन्द में गिनेन किनके ।।
छाँड़ि इनकौं सदा औरकौं जे भजे ते परे संसार माँहि भमके।
धार मन एक श्री वल्लभाधीश पद करत मन कामना होत तिनके ।।
मत्त उन्मत्त सौं फिरत अभिमान में जन्म खोयौ वृथा रात दिन के।
कहत श्रुतिसार निरधार निश्चय करि सर्वदा शरण 'रघुनाथ' तिनके ।।

छठे पुत्र

श्री यदुनाथजी—संवत् १६१५ से विक्रम संवत् १६६० तक।

यह श्री गुसांईजी के छठे पुत्र थे। इनकी माता का नाम श्री रुक्मिणीजी था। इनका जन्म विक्रम संवत् १६१५ चैत्र शुक्ल छठ है और जन्म-स्थान अडैल है। इनका आयुर्वेद का विशेष अध्ययन था। इनका विवाह सम्वत् १६३० के आसपास गोकुल में हुआ। इनकी स्त्री का नाम 'महारानी' था। इनके पाँच पुत्र हुए थे इनके नाम और सम्वत् इस प्रकार हैं :— (१) श्री मधुसूदनजी, जन्म सम्वत् १६३४, (२) श्री रामचन्द्रजी जन्म सम्वत् १६३८, (३) श्री जगन्नाथजी, जन्म सम्वत् १६४२, (४) श्री बालकृष्णजी, जन्म सम्वत् १६४४, (५) श्री गोपीनाथजी, जन्म सम्वत् १६४७। इसके अतिरिक्त इनके एक कन्या भी थी, उसका नाम श्री दमयन्तीजी था। इनको बटवारे में श्री बालकृष्णजी (ठाकुरजी) मिले थे। श्री बालकृष्णजी इस समय सूरत में विराजमान हैं। इनका स्वरूप बहुत छोटा था, इसलिये उन्होंने उसे लेना अस्वीकार कर दिया था, तब श्री गुसांईजी के तीसरे पुत्र श्री बालकृष्णजी ने अपने लिए यह ठाकुरजी भी माँग लिए, पर श्री गुसांईजी ने यह कहकर दिए कि जब श्री यदुनाथजी या उनके कोई वंशधर इनको मांगे, तब उन्हें लौटा देना। श्री यदुनाथजी का अपने भाई बालकृष्णजी से विशेष स्नेह था, इसलिए वे दोनों साथ रहे हैं। श्री यदुनाथजी (बालकृष्ण) (ठाकुरजी) और श्री द्वारिकाधीश (ठाकुरजी) की सेवा करते रहे। फिर, जब श्री गुसांईजी ने सातों स्वरूपों को श्रीनाथजी के पास पधराकर मनोरथ (उत्सव) किया, तब भी यह नहीं आए। इस पर श्री गुसांईजी ने राजा आसकरन को इन्हें समझा-बुझाकर ले आने के लिए गोकुल भेजा और राजा साहब इन्हें अपने साथ ले आये। (यह वार्त्ता कवि आसकरन के सम्बन्ध में हम अन्यत्र लिख चुके हैं।) लगभग १६५८ में आप परदेश पधारे थे और वहीं चाँणोद (चमत्कारपुर) में आपने श्री वल्लभदिग्विजय नामक ग्रन्थ की रचना पूर्ण की थी, यथा—

वसु—बाण रसेन्द्वब्दे तपस्य सितिके रवौ।
चमत्कारिपूरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत् सोमजा तटे ।।

[वल्लभ दिग्विजय]

इनका निधन सम्वत् १६६० के आस-पास माना जाता है। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में इनकी एक-मात्र रचना 'यदुनाथ दिग्विजय या श्री वल्लभ दिग्विजय का उल्लेख मिलता है जो श्रीनाथ द्वारे से प्रकाशित हो चुकी है। सम्प्रदाय कल्पद्रुम का वह उल्लेख इस प्रकार है—

श्री वल्लभदिग्विजय करि श्री यदुनाथ सुजान ।
परम्परा वर्णन जु प्रभू कीन्हों भूपति मान ॥[१]

इनका घर का नाम 'महाराजजी था ।

सातवें पुत्र

श्री घनश्यामजी–(१६२८–१६६६)

श्री गुसांईजी की द्वितीय पत्नी श्रीमती पद्मावतीजी से इनका जन्म विक्रम सम्वत् १६२८ में अगहन कृष्ण त्रयोदशी को गोकुल में हुआ था। इनकी माता का शरीर इनकी बाल्यावस्था में ही छूट गया था। इनका लालन-पालन श्री गुसांईजी के प्रथम पुत्र श्री गिरधरजी की वहूजी श्रीमतीभामिनी बहूजी ने किया था। इससे प्रसन्न होकर श्री गुसांईजी ने भामिनी बहूजी को आर्शीवाद दिया था कि तेरी कोख सदा हरी रहेगी। आज भी जो गोस्वामी बालक विद्यमान हैं, उनमें श्री गिरधरजी और श्री यदुनाथजी का ही वंश चल रहा है। शेष घरों में इनमें से ही गद्दी पर गोद लिए जाते हैं। श्री घनश्यामजी को बटवारे में श्री महाप्रभुजी के पूर्वजों के ठाकुर श्री मदनमोहनजी, जिनका प्राक्ट्य इस वंश के मूल पुरुष यज्ञनारायण भट्ट के यज्ञ में से हुआ था, मिले थे। यह ठाकुर सातवीं गद्दी के मालिकों के अधिकार में कामवन (भरतपुर) में विद्यमान हैं। श्री घनश्यामजी का विवाह कृष्णावतीजी के साथ हुआ था। इनके दो पुत्र और एक कन्या हुई थी। प्रथम पुत्र सम्वत् १६५२ में हुआ जिनका नाम ब्रजपालजी रखा गया। दूसरे पुत्र का जन्म विक्रमी सम्वत् १६६३ में हुआ था जो पीछे चाचा गोपेशजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपको गोपेन्द्रजी भी कहते थे। श्री घनश्यामजी के शरीर छूटने के सम्बन्ध में सम्प्रदाय में यह प्रचलित है कि एक बार विक्रमी सम्वत् १६६६ में अन्नकूट के दिन इनमें और श्री गोकुलनाथजी के प्रथम पुत्र श्री गोपालजी में सुखपाल के डंडे की लम्बाई के पीछे भारी विवाद हो गया और श्री गोपालजी ने पीछे से गर्मी के दिनों में गोकुल में से इनके ठाकुरजी को चुरा लिया और उन्हें गोकुल से बाहर भेज दिया। श्री घनश्यामजी ने इसी वियोग और दु:ख में कुछ दिन बाद ही शरीर छोड़ दिया। इस प्रकार इनकी निधन तिथि संवत् १६६६ ठहरती है।

यह कवि थे और इन्होंने संस्कृत और ब्रज-भाषा में कई रचनाएं की हैं। इनकी संस्कृत रचनाओं में 'मधुराष्टक' और गुप्तरस' की टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। इनके ब्रज-भाषा के पद श्री द्वारकादास परीख के निजी संग्रह (सुरभी कुण्ड जतीपुरा) में इस प्रकार मुझे प्राप्त हुए हैं ––

अपने सेव्य ठाकुर श्री मदनमोहनजी के चोरी हो जाने के पश्चात् के पद–

१ सगुन मनावत हौं दिन रैन।
मो घर श्याम कबै आवैंगे परत नहीं जिय चैन।
कहा करौं यह नैना लोभी चढ्यौ मदन मन मैन।
प्रभु 'घनश्याम' मिलैं जब मोकौं तब होइ सीतल नैन।

२ विकल अवस्था का पद (विप्रयोग में संयोगानुभव)
अब मैं पायौ है चितचोर।

---

१ सम्प्रदाय कल्पद्रुम, पृष्ठ १४२

चोरी करन श्याम घर आयो पकरिलियो उठिभोर।
यह सुनि सबै परोसिन जागी घर-घर माच्यो सोर।
देख-देख यह कौन छिनु-छिनु............काहे के चोर।
जब मुख देख्यो स्याम सुन्दर को हँसी सकल मुख मोर।
श्री 'घनश्याम' प्रभू की लीला बाँधे दामन छोर।

इनके धमार आदि के कीर्तन-संग्रह ग्रन्थों में प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी पुत्री का नाम जानकीबेटीजी था और इनका घर का नाम 'प्राणवल्लभ' था।

श्रीहरिरायजी

वार्त्ता साहित्य के निर्माताओं में श्री हरिरायजी का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने श्री गोकुलनाथजी की उपस्थिति में ही उनके वचनामृतों का सम्पादन करते हुए समस्त वार्त्ता साहित्य पर भाव टीकाएँ लिखी हैं, जिनसे वार्त्ता साहित्य के समझने में सुविधा होती है और उसका महत्व प्रगट होता है। इनका जन्म सम्वत् १६४७ विक्रमी भाद्र कृष्ण पंचमी को गोकुल में श्री विट्ठलनाथजी के मंदिर में जहाँ इनके प्रपिता श्री गोविन्दराय रहते थे और उसके प्रथम अधिष्ठाता थे, हुआ था। इस मंदिर में आज भी श्री हरिरायजी की बैठक है। इनके पिता का नाम श्री कल्याणरायजी था। हरिरायजी के प्रागट्य के सम्बन्ध में सम्प्रदाय के ग्रन्थों में यह प्रसिद्ध है कि जब श्री कल्याणरायजी दस वर्ष के थे, तब एक दिन श्री आचार्यजी के छोटे भाई केशवपुरी जो सन्यासी होगए थे और दक्षिण भारत के किसी बड़े मठ के अधिपति थे, वहाँ आए और उन्होंने श्री गुसांईजी से अपनी गद्दी के लिए एक बालक माँगा, जिस पर आपने कहा कि जिस बालक के पास ठाकुरजी नहीं होंगे उसे दे दिया जायगा। श्री कल्याणरायजी के पास ठाकुरजी नहीं थे। इसलिए उन्हें देना निश्चय हुआ। इस पर प्रातःकाल ही आप बीन बजाकर रो-रोकर गाने लगे—

हौं ब्रज मांगनों जू ब्रज तजि अनत न जाऊँ,
बड़े बड़े भूपत भूतल महियाँ दाता सूर सजान।
कर न पसारों सीस न नाऊँ या ब्रज के अभिमान। (१)
सुरपति नरपति नागलोकपति मेरे रंक समान,
भाँति भाँति मेरी आसा पूजी हों ब्रज जन जिजमान। (२)
मैं व्रत करि-करि देव मनाये अपनी घरनी संयूत,
दियो विधाता सब सुख दाता गोकुलपति के पूत। (३)
हौं अपनौ मन भायो लैहों कित बौरावत बात,
औरन कौं धन-धन ज्यों बरसत मों देखत हंसि जात। (४)
अष्ट सिद्ध नव निधि मेरे मन्दिर तुव प्रताप बजईस,
कहत 'कल्यान' मुकुन्द तात कर कमल धरो मम सीस। [1]

जिस पर श्री विट्ठलनाथजी ने आपको न देना निश्चय किया और आपको अपने श्रीमुख का उगार दिया तथा आशीर्वाद दिया। जिसके फलस्वरूप श्री हरिरायजी का प्रागट्य

१ गिरधरलाल के १२० वचनामृत।

माना जाता है और आपको 'श्री प्रभुचरण' नाम से सम्बोधित किया जाता है। श्री विट्ठलनाथ जी स्वयं भी 'प्रभुचरण' के नाम से प्रसिद्ध थे। श्री हरिरायजी को साम्प्रदायिक दीक्षा उनकी आठ वर्ष की आयु में थी गोकुलनाथजी ने दी थी। तब से यह श्री गोकुलनाथजी के पास ही रहते थे। इन्होंने सेवा पद्धति और साम्प्रदायिक भावनाओं का ज्ञान श्री गोकुलनाथजी द्वारा प्राप्त किया था। श्री गोकुलनाथजी को इन्होंने अपनी १०८ नामावली में गुरू रूप से स्वीकार किया है। गोकुल में मुसलमानी उपद्रव होने के कारण विक्रम संवत् १७२५ के लगभग वे वहाँ से खिमनौर (श्रीनाथ द्वारा से ६ मील दूर, उदयपुर राज्य) चले गये थे और अपने ठाकुरजी को भी साथ लेते गए थे जहाँ उन्होंने उनकी प्रतिष्ठा की थी। यहाँ आज भी वह मंदिर और बैठक विद्यमान है। इसकी पुष्टि आपके 'श्री कृष्ण चरण विज्ञप्ति नामक ग्रन्थ के इस श्लोक से होती है :—

यवनारण्य संजात वह्नि भीता विशेषतः
कृपाद वर्षणे नैव निजाः कार्या अमीयतः [1]

सम्प्रदाय में एक चित्र प्रचलित है जिसमें राना राजसिंह उनके सामने हाथ जोड़ कर बैठे हैं। श्रीनाथजी की प्रागट्य की वार्त्ता से यह प्रगट होता है कि आप श्रीनाथ जी की सेवा का बड़ा ध्यान रखते थे और कई बार खिमनौर से 'श्रीनाथ द्वारा' आते थे और तिलकायत को सेवा की त्रुटियों की सूचना देते रहते थे। आपके चरित्र की एक बड़ी विशेषता यह प्रसिद्ध है कि आप आचार्य होते हुए भी एक साधारण वैष्णव की सी दीनता का भाव रखते थे। सम्प्रदाय में प्रचलित है कि आप वहाँ खिमनौर में प्रतिदिन श्रीमद्भागवत की कथा कहते थे और आपकी वाणी में ऐसा रस था कि जो वैष्णव दूर-दूर से सुनने आते थे वे रस मग्न और भाव मग्न होकर लौटते हुए मार्ग में उसी की चर्चा करते लौटते थे और उनमें से कुछ एक चौतरे पर बैठकर जोर-जोर से कीर्तन व नृत्य करते थे जिससे वहाँ के जैनियों की नींद में प्रतिदिन बाधा पड़ती थी। जब उन्होंने श्री हरिरायजी से अपना संकट कहा तो उन्होंने सामान्य वेष में वहाँ जाकर वैष्णवों के भाव को देखा और वह स्वयं उनकी तल्लीनता देखकर अपने आपको भूल-सा गए तथा वहाँ उस मण्डली में उन्हें श्री नाथजी के भी दर्शन हुए तब उन्होंने यह पद गाया—

हौं वारी इन वल्लभियन पर।
मेरे तन को करौं बिछौना सीस धरौं इनके चरननतर
भाव भरी देखो मेरी अखियन मंडल मध्य विराजत गिरधर।
वे तो मेरे प्राण जिवन धन दान दिए हैं श्री वल्लभ वर।
माया वाद खंड खंडन कौं प्रगट भये श्री विट्ठल द्विज वर।
रसिक कहें आस इनकी करि वल्लभियन की चरण रज अनुसर।[2]

इस पर जैनियों के मन में भी वैष्णव होने की इच्छा हुई और उन्होंने उपदेश माँगा। तब आपने उनको अष्टाक्षर मंत्र देकर उनके कंठी बाँधी और उन्हें निम्नलिखित पद द्वारा जीवन के कर्तव्य का बोध कराया—

---

१ श्री कृष्णचयण विज्ञप्ति।
२ रामानन्द पंडित की वार्त्ता।

जीवन जो ऐसे बनि आवे ।
श्री वल्लभ श्री विट्ठल प्रभु की शरणागति जो पावे ।
द्वादश तिलक सहित मुद्राधर तुलसी कंठ धरावै ।
प्रेम सहित जो नन्दनन्दन के जन्म कर्म गुण गावै ।
श्री भागवत मुख्य रस टीका अपने श्रवन सुनावे ।
भूषन वसन विचित्र वहुत रंग प्रभु कों लाड़ लड़ावे ।
भली भाँति सामग्री करिके प्रभु को भोग लगावे ।
प्रभु के भक्तन सो हिल मिलि के यह प्रसाद जो पावे ।
श्रीगोकुल श्री गोवर्द्धन बसिके सेवा दृढ़ मन लावे ।
श्यामा श्याम संगम की लीला ध्यान हृदय में आवे ।
श्री यमुना जी सों अधिक सनेह करि मुख जलपान करावे ।
'रसिक' कहे पग बाँधि घूँघरू अपनो अंग नचावे ।[1]

आप शरीर से बहुत सुन्दर थे और बड़े संयमी थे । आपने लगभग सवा सौ वर्षकी लम्बी आयु पायी थी । आपकी वाणी में वैसा ही रस था, जैसा आपके गुरुदेव श्री गोकुलनाथ जी की वाणी में था । एक दिन खिमनौर में एक स्त्री आप पर आपकी वाणी के रस के कारण आसक्त हो गई, तब आपने उसे यशोदा की गोद में खेलते हुये कृष्ण के रूप में दर्शन दिए और 'कामाख्य दोष विवरण' नाम के एक संस्कृत ग्रन्थ की रचना करके उसको समझाया कि काम भक्ति मार्ग में एक महान् प्रतिबंधक है । 'कल्पद्रुम' के अनुसार आपके चार पुत्र थे । जिनके नाम श्री गोविन्दराय जी, श्री विट्ठलरायजी, श्री छोटाजी, श्री गौराजी थे । आपके एक छोटे भाई भी थे जिनका नाम श्री गोपेश्वरजी था । 'शिक्षापत्र' नामक ग्रन्थ आपको परदेश से लिखे गये पत्रों का संग्रह है । आपको वैष्णवों पर अपार श्रद्धा थी । इसीलिए आपने वैष्णवों की वार्त्ताओं पर भाव टीकाएँ रचीं हैं । उनके सम्बन्ध में आप सदैव सतर्क रहते थे और उनकी सेवा और सत्संग के लिए सदा इच्छुक रहते थे । आपके एक अनन्य कृपापात्र हरिजीवनदास नाम के सेवक थे, जो रमनरेती में घूमा करते थे और जिन्हें मानसी सिद्ध थी । हरिरायजी ने अपने सब वैष्णवों को आदेश दे रखा था कि जिस समय इनको जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसकी पूर्ति का समाधान यथाशक्ति होना चाहिये । और उसकी सूचना उन्हें भी मिल जानी चाहिए । काका वल्लभजी के बावन वचनामृत के अनुसार एक दिन श्री हरि जीवनदासजी एक डोकरी के यहाँ गए जहाँ उसने उनको श्री ठाकुरजी के लिए तैयार होने वाली खीर भेंट करदी । इस पर श्री हरिराय जी ने उस डोकरी से कहा कि तूने मार्ग का सिद्धान्त पहचान लिया है । हरिरायजी के समकालीन वैष्णवों के प्रति आपके क्या भाव थे, यह आपके लिखित 'दास्याष्टक' से प्रगट हो जाता है :—

दास्याष्टक

ये नित्यं परिभावयन्ति चरणौ श्री वल्लभ स्वामिनो ।
ये वा तद्गुण गान सेवन परा ये सन्निधिस्थापिन: ।
ये वा तद्गत भाव भावित मनोमोदान्विता: सन्ततं ।
तेषामेव सदास्तु दास्यमपरं किं वा फलं जन्मन: ।

अर्थ—जो श्री वल्लभाधीश के चरणों का ध्यान करते हैं, जो उनके गुण-गान और सेवा में तत्पर है, जो उनके सानिध्य में रहते हैं और जो उनकी भाव भावना से अपने मन में नित्य आनन्द युक्त हैं ऐसे भगवदीयों का दास्य मुझे सदा प्राप्त हो। जन्म का दूसरा और क्या फल है ?

ये कृष्णास्य कृपायुताः प्रतिदिनं तन्मार्ग चिन्तापराः।
ये वालौकिक वैदिकादि सकलं तत्कर्तृकं मन्वते।
येषामन्यदुपास्य मेव न परं चित्ते समारोहति।
स्वीयत्वेन वृतास्त एवं सततं मद्रक्षका भूतले। (२)

अर्थ—जो श्रीकृष्ण के मुखारविन्द के अवतार महाप्रभुजी की कृपा से मुक्त हैं, प्रतिदिन उनके मार्ग का विचार करने में तत्पर हैं, जो लौकिक, वैदिक सभी में उनका कर्तृत्व मान रहे हैं जिनके चित्त में अन्य कोई उपास्य है ही नहीं, जिनको प्रभु ने स्वकीय रूप से अंगीकार किया है, वे हो भूतल में मेरे रक्षक हों।

ये तद्वाक्य विचार मात्र चतुरा गूढ़ार्थ बोधे रताः
ये विश्वासयुताः कृतौ च कथिते श्रीवल्लभ स्वामिनः।
ये तद्वक्त्रदिदृक्षया हृदि सदा तप्ता विरक्ताः सुखे।
तद्दास्यं प्रति जन्म में फलतु, किं सिद्धैः फलैरन्यतः। (३)

अर्थ—जो श्री वल्लभाधीश की कृति में और कथन में विश्वास करने वाले हैं, जो उनके मुखारविंद के दर्शन की इच्छा से सदा तप्त रहते हैं, जो संसार-सुखों से विरक्त हैं, ऐसे भगवदीयों का दास्य प्रति जन्म मुझे फलित हो। इसके अतिरिक्त अन्य फलों से क्या प्रयोजन ?

ये श्री वल्लभ पाद सेवन कृते दीनां स्वदेहादिको।
पेक्षास्तत्पर चेतनास्तदुदितं सर्वं स्वतः कुर्वते।
येषां बुद्धिरहर्निशं समधिका तत्तोषणे सादरा।
स्तेषामेव सतां सदा चरणयोः पातः परं मे फलम्। (४)

अर्थ—जो श्री वल्लभ के चरण सेवन के लिए दैन्य लिए हुए हैं, अपने देहादिकों की उपेक्षा करते हैं ऐसे महाप्रभुजी में परायण बुद्धि वाले हैं उनका सब कार्य आप स्वतः करते हैं। जिनकी बुद्धि उन महाप्रभु को प्रसन्न करने वाली है उन सत् पुरुषों के चरणों में गिरना ही मेरे लिए परम फल है।

ये वा तन्प्रियनन्दसूनु चरणासक्ताः पुनः स्वामिनो।
दास्यं शुद्ध तथा तदीय हृदयाभिप्रायमातन्वते।
ये जीवत्फलमेतदेव निरवलं बुद्धया सदा मन्वते।
तेषामेव पदाम्बुजे मम रतिः सेवा फलं जायताम्। (५)

अर्थ—जो उन महाप्रभुजी के प्रिय नन्द-नन्दन के चरणों में आसक्त है, श्री ठाकुरजी का दास्य उनके हृदय के अभिप्राय को जानकर शुद्ध रूप से करते हैं और जो बुद्धि से इसी को जीवन का परम फल मानने हैं उन भगवदीयों के चरण-कमलों में मुझे सेवा के फलरूप प्रेम हो।

ते तद्बोधन चातुरी कलनतः सन्तुष्टचित्तः सदा ।
ये वा मानस सेवनां तदुदितां मुख्यां परां जानते ।
ये 'दोष सकलो निवृत्त' इति तद्विश्वासतो मन्वते ।
तेषामेव ममास्तु पादकमले द्वन्द्वे परा रेणुता । (६)

अर्थ––जो श्री महाप्रभुजी के समझाने की चातुरी के विचार से सदा संतुष्ट चित्त हैं, जो उनके द्वारा की गई मानसी सेवा को मुख्य मानते हैं, जो मेरा सब दोष निवृत्त हुआ ऐसा उन पर विश्वास करके मानते हैं, उन भगवदीयों के चरण कमलों की रज में होऊँ ।

ये गोपीपति पाद रेणुभजने श्री वल्लभेकाश्रिता ।
ये वा दास्य परम्परामुपगताः प्राप्ताः परां दीनताम् ।
ये 'स्वीयं सकलं तदीय'मिति हृत्यं के रुहे मन्यत्वे––
तेषामहमस्मि दास पदवीं प्राप्तः सदा जन्मनि । (७)

अर्थ—जो श्री गोपीपति श्री कृष्ण के चरण की रेणु के भजन में श्री वल्लभाधीश के आश्रय वाले हैं, जो दास्य की परम्परा को प्राप्त हुए हैं, श्रेष्ठ दीनता को प्राप्त हैं, जो अपने हृदय में ऐसा मानते हैं कि सब कुछ प्रभु का है, उनका दास मैं जन्म-जन्म में होना चाहूँगा ।

ये तद्रूपमहर्निशं स्वहृदये तापात्मकं सुन्दरं ।
साकारं सरसं रसात्मकतय् ख्यातं हि जातं भुवि ।
नित्यं तत्परिचिन्तयन्ति सक्तं संकीर्त्तं यन्त्या दरात् ।
तेषां दैन्यभरेण ये प्रतिभवं दास्यं हि भूयात्फलम् । (८)

अर्थ––जो तापात्मक, सुन्दर, सरस, रसात्मक रूप से पृथ्वी में प्रगट हुए हैं और प्रसिद्ध हैं, ऐसे महाप्रभुजी के स्वरूप का जो रात-दिन चिन्तन करते हैं और जो आदर से सदा गाते हैं, ऐसे भगवदीयों का दास्य ही दीनता के भाव से प्रति जन्म में मुझे प्राप्त हो ।

वह वैष्णव को भगवान् के समान मानते थे । इसके लिए शिक्षा पत्र के यह तीन श्लोक प्रामाणिक सिद्ध होंगे :––

तदीयेषु च तद्बुद्धया भरः स्थाप्यो विशेषतः ।
यथा दूतीषु भवति विषयीणां मतिस्थता ।
धनं गृहं यथा कृष्णे तथा भक्तिस्थितेऽहि च ।
विनयोक्तव्यमेवं हि प्रभोर्भावो भविष्यति ।
तदीयास्नेहस्वततुष्टास्तुष्टः कृष्णो न संशयः ।
तदीयास्तुनिजाचार्य चरणैक परायणाः ।

(शिक्षा पत्र हरिरायजी के—१, श्लोक १९, २०, २१)

डाकौर में आपकी एक बैठक है । डाकौर में आपने श्री रणछोड़जी की पुनः प्रतिष्ठा की थी । रणछोड़जी को पहले-पहल पन्द्रहवीं शताब्दी में बुड़ाना के भक्त द्वारका से लाये थे और औरंगजेब के समय से इन्हें एक बावली में छिपा दिया गया था, जिन्हें फिर श्री हरिरायजी ने आज जो मंदिर है, उनमें स्थापित किया था । यहाँ बल्लभ कुल के आचार के अनुसार सेवा होती है ।

आप सम्प्रदाय में बहुत बड़े लेखक और निम्नलिखित ग्रन्थों के रचयिता हैं—(१) ब्रह्मवाद (२) श्री गोकुलेश सेवा-आन्हिक (३) सेवा पद्धति (४) पुष्टि मार्गीय, ध्यान प्रकार विवेचन (५) शिक्षा पत्र (६) गुण सागर (७) सहस्र श्लोकी भावना (८) सप्त श्लोकी की टीका (९) षटषष्ठिका (१०) श्री मद्प्रभो चिंतन प्रकार (११) मूल निरूपण (१२) कृष्ण शब्दार्थ निरूपण (१३) मार्ग स्वरूप निर्णय (१४) स्वमार्गीय कर्तव्य निरूपण (१५) पुरुषोत्तम आविर्भाव निर्णय (१६) भक्ति द्वैविध्य निरूपण (१७) स्वमार्गीय भक्ति द्वैविध्य विवेक, (१८) स्वमार्गीय मुक्ति द्वैविध्य निरूपण। (१९) सर्वात्म भाव निरूपण (२०) प्रभु प्रादुर्भाव विचार, (२१ स्वमार्गीय साधन रहस्य (२२) भक्ति मार्ग पुष्टि मार्गत्व निश्चयः (२३) स्वमार्गीय सेवा फलरूप निर्णय। (२४) पुष्टि मार्गीय स्वरूप निरूपण (२५) स्वमार्गीय स्वरूप स्थापन प्रकार (२६) स्वमार्गीय शरण समर्पण सेवादि निरूपण, (२७) पुष्टि पथ मर्म निरूपण (२८) पुष्टि मार्ग लक्षणानि, (२९) ब्रह्म सम्बन्ध वाक्य कठिनांश विवेचनं (३०) अष्टाक्षर मंत्र पूर्व पक्ष निरास (३१) स्वमार्ग मर्यादा निरुपण (३२) स्वमार्ग रहस्य निरूपण (३३) मधुराष्टक तात्पर्य (३४) निवेदन तात्पर्यार्थ (३५) स्वमार्ग मूल निरूपण (३६) मूल रूप संशय निराकरण (३७) श्री महाप्रभु प्रागट्य हेतु निर्णय (३८) स्वमार्गीय भावना स्वरूप निरूपण (३९) स्वरूप तारतम्य निर्णय (४०) अंतरंग वहिरंग प्रपंच विवेक (४१) भाव साधक बाधक निरूपण (४२) श्रीमद्प्रभो सर्वान्तर निरूपण (४३) श्रीमद्प्रभोः प्रादुर्भाव निरूपण (४४) भगवद् प्रादुर्भाव सिद्धान्त (४५) प्रभु प्रादुर्भाव विचार (४६) प्रभु प्रागट्य विचार (४७) श्रीमद्प्रभोर्वयो निरूपण (४८) अष्टाक्षर मंत्रार्थः (४९) गद्यार्थः (५०) जप स्वरूप ध्यान (५१) स्वमार्ग शरण द्वै निरूपण। (५२) स्वामार्गीय संन्यास वैलक्षण्यनिरुपणम् (५३) जन्म वैफल्य निरूपणाष्टक (५४) दुःसंग विज्ञान प्रकार निरूपण (५५) कामाख्य दोष विवरण (५६) निष्काम लीला (५७) बर्हिमुखत्व निरूपण (५८) वहिर्मुखत्व निवृत्तिः (५९) भगवद् प्रकृति वर्णन (६०) कथा श्रवण बाधक निर्णय (६१) सतसंग निर्णय (६२) गवां स्वरूप वर्णननं (६३) कार्पण्योक्ति (६४) मदत्याग हेतु (६५) मार्ग शिक्षा (६६) निजाचार्याष्टक (६७) वल्लभपंचाक्षर स्त्रोत्र (६८) वल्लभाष्टक (६९) प्रभाताष्टक (७०) गोकुलचंद्राष्टक (७१) श्री नवनीतप्रियाष्टक (७२) भुजंगप्रयाताष्टक (७३) स्मरणाष्टक (७४) स्वप्रभु विज्ञप्ति (७५) द्वतीय स्वप्रभु विज्ञप्ति (७६) श्रीकृष्ण चरण विज्ञप्ति (७७) विज्ञप्ति (७८) दैन्याष्टकं (७९) षोड्स स्तोत्र (८०) श्री कृष्ण शरणाष्टकं (८१) द्वितीय श्री कृष्णाष्टकं (८२) पंचाक्षर मंत्र गर्भ स्त्रोत्र (८३) भगवत् चरण चिह्नवरणनं (८४) वैविध्य सम्बन्धी स्तोत्र (८५) मध्याह्नलीला (८६) श्री गोकुलेश प्रवेशलीला (८७) प्रमाणिकाष्टक भू (८८) श्री गिरधराष्टकम् (८९) प्रार्थनाष्टकं (९०) श्री गोपजन वल्लभाष्टकं (९१) प्रातः युगल स्मरण (९२) श्री नागरी नागर स्तोत्रं (९३) विपरीत शृंगार फलकं (९४) राधाष्टकं (९५) मुख्य शक्ति स्तोंत्रं (९६) स्वामिनी प्रार्थनाष्टकं (९७) यमुना विज्ञप्ति (९८) श्री वल्लभ शरणाष्टकं (९९) श्री वल्लभ चरण विज्ञप्ति (१००) दैन्याष्टकम् (१०१) हाहा दैन्याष्टकं (१०२) श्री वल्लभाष्टके (१०३) श्री वैश्वानराष्टकं (१०४) श्री मद्चार्य सकलावतार साम्यरूपम् (१०५) श्री महाप्रभु अष्टोत्तर शत नामानि (१०६) श्री मद् आचार्य चिंतनं (१०७) प्रातः स्मरणम् (१०८) विट्ठलेश अष्टाक्षर शतनामानि (१०९) श्री गोकुलेश अष्टाक्षर शत नामानि (११०) श्री गुरूदेवाष्टकम् (१११) प्रभु स्वरूप निरूपणाष्टकम् (११२) स्व प्रभु विज्ञप्ति (११३) रसात्मक भाव स्वरूप

निरूपणं, (११४) चतुश्लोकी, (११५) भगवदीय परीक्षणम्, (११६) तदीयनाम शिक्षणम (११७) सिद्धान्त संक्षेप निरूपण, (११८) स्वमार्ग सर्वस्वं, (११९) गवपिहाराष्टकं (१२०) राजभोगभावना (१२१) बाटिका समर्पण भाव निरूपणं (१२२) स्वतन्त्र लेख (१२३) फल-विवेक (१२४) भगवद् शास्त्र निर्णय (१२५) वाक् चक्षु मुख्यत्व निरूपणम् (१२६) सर्वा भोग्य सुधाधिका निरूपणं (१२७) चतुर्भुज स्वरूप विचार (१२८) भाव पोषकं (१२९) गोपी बचन दिन निर्वाहकं (१३०) दास्याष्टकं (१३१) श्री नृसिंह वामन जयन्त्युत्सव व्रत वैशिष्टयनि (१३२) श्री भागवत पुस्तक नित्य पूजन विधि (१३३) अष्टपदीद्वय (१३४) पदा-निद्वय (१३५) पद्यद्वय (१३६) शिक्षा पत्र (१३७) अनेक अष्ट पदिका (१३८) अनेक संस्कृत पद (१३९) सेवा पद्धति (१४०) वल्लभप्रादुर्भाव (१४१) दम्पत्योरेक गुरुशिष्यत्वे दोषाभाव विचार (१४२) विट्ठलनाथाष्टकं (१४३) गोविन्दाष्टकं (१४४) त्वदीयाष्टकं (१४५) निरूपणाष्टकं (१४६) शून्यवाद (१४७) हरिशरणाष्टकं (१४८) सर्वोत्तम की टीका (१४९) षष्ठी पूजन (१५०) मार्गानुक्रमध्यान (१५१) गोकुलेश विज्ञप्ति (१५२) गोकुलेशाष्टकं (१५३) सेव्य असेव्य स्वरूप भेद निरुपणं (१५४) ममोत्तम श्लोक की व्याख्या (१५५) निजसिद्धान्त रहस्य (१५६) श्री कल्याणराय अष्टोत्तरशत नामानि (१५७) छप्पन भोग विधान ।

हिन्दी की रचनाएँ—

(१) स्वरूप भावना (२) लीला भावना (३) भाव भावना (४) श्रीनाथ द्वार की भावना (५) श्री महाप्रभु जी के स्वरूप की भावना (६) श्री गुसांई जी के स्वरूप की भावना (७) सात बालकों की भावना (८) चरण चिह्न की भावना (९) श्री स्वामिनी जी के चरण चिह्न की भावना (१०) पुष्टि दृढ़ाव (११) छप्पन भोग की भावना (१२) भाषा शिक्षा पत्र (१३) ख्याल (१४) रेखता (१५) धौल (१६) चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता पर भाव प्रकाश (१७) दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता पर भाव प्रकाश (१८) महाप्रभु जी के प्रागट्य की वार्त्ता पर भाव प्रकाश (१९) होरी की भावना (२०) छाक की भावना (२१) चिन्तन को धौल (२२) नवगृह की भावना (२३) नित्य लीला (२४) स्नेह लीला (२५) दामोदरलीला वनमाला (२७) नवरात्रि हुलास (२८) कलि चरित्र (संदिग्ध) कांक-रौली सरस्वती भंडार बंध संख्या $\frac{६३}{\frac{१}{२}}$ । (२९) मार्ग शिक्षा (३०) दानलीला (३१) नवगृह आकार (३२) जयप्रकार (३३) दशमर्म (३४) भावनालय (३५) मार्ग स्वरूप सिद्धान्त (३६) श्री गोकुलनाथ जी के रास को प्रसंग (३७) द्विदलात्मक स्वरूप विचार (३८) धमार (३९) यमुनाजी के धौल (४०) ग्रन्थात्मक भगवद् स्वरूप निरूपण (९१) समर्पणगद्यार्थ (९२) बालकन को स्वरूप (९३) श्याम सगाई (९४) दीनता आश्रय और बधाई के पद । तथा गुजराती धौल (धवल) पद पंजाबी और मारवाड़ी भाषा में भी आपने पद किये हैं ।

यह अप्रकाशित हैं और काँकरौली सरस्वती भण्डार में इनकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं । शेष प्रकाशित हैं और यह भी उसी भण्डार में संग्रहीत हैं ।

सम्प्रदाय का कोई विषय ऐसा नहीं है जिसपर आपने कुछ लिखा न हो । इनका एक पद पंजाबी भाषा और एक पद मारवाड़ी का भी प्रकाशित हो चुका है । इन ग्रन्थों की संख्या और विविधता के कारण आपका अत्यन्त प्रतिभाशील होना तो सिद्ध है तथा आप

संस्कृत और हिन्दी में समानाधिकार से रचना करते थे, यह भी सिद्ध है। आपको अन्य बोलियों से भी अभिरुचि थी, यह भी असंदिग्ध है। गुजराती में तो आपने बहुत पद्य रचनाएँ की है।

वैष्णव को भगवान् से भी अधिक महत्व देने के कारण तथा पुष्टि दर्शन के पूर्ण पंडित होने के कारण ही आपने वार्त्ताओं का संकलन किया था और जहाँ कहीं वार्त्ता में आए हुए विषय अपनी गम्भीरता के कारण अथवा सैद्धान्तिक महत्व के कारण जन सुलभ न हो सकते थे वहाँ आपने उन पर भाव प्रकाश लिख कर मूल में, कुछ प्रसंग बढ़ाकर, कुछ का विवेचन करके उसका एक अलग संस्करण पीछे से प्रस्तुत किया, जिसकी चर्चा वार्त्ता की प्रामाणिकता वाले प्रकरण में हो चुकी है।

आपकी बहूजी का नाम 'सुन्दरवंता' था। आपकी भी कुछ रचनाएँ ब्रज-भाषा और गुजराती में मिलती हैं। बाँसवाड़ा के महाराजाधिराज महारावल श्री कुशलसिंह जी ने आपको विक्रम सम्वत् १७६२ में मिती आषाढ़ शुक्ल पड़वा को एक पत्र खिमनौर भेजा था जो 'पुष्टिभक्ति सुधा' (बम्बई से प्रकाशित मासिक) वर्ष चार के पृष्ठ ८६ पर छपा हुआ है। इससे हरिरायजी की महानुभावता, शास्त्रीय ज्ञान और सम्मान स्पष्ट प्रकाश में आ जाता है। श्री हरिरायजी पुष्टि मार्गीय साहित्य के प्राण हैं। इनके ग्रंथों के अध्ययन बिना कोई भी पुष्टि मार्ग के सम्बन्ध में अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है और न उसके निर्णय निशंसयात्मक ही हो सकते हैं।

वार्त्ता साहित्य का संकलन भी इनके वर्तमान काल में ही हुआ है और भावना वाले संस्करण के प्रणेता भी यही हैं।

———

(३) चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता से प्राप्त व्यक्तियों की सूची और विवरण

कवि–

(१) अवधूत दास, (२) कृष्णदास घघरी, (३) कन्हैयालाल, (४) कविराज भाट, (५) कृष्णदासी (६) कुम्भनदास, (७) कृष्णदास अधिकारी, (८) गोपालदास,(९)गदाधरदास (१०) गोपालदास इंटौडा, (११) गोपालदास नरोड़ा, (१२) जीवनदासजी, (१३) त्रिपुरदास (१४) धीरदास, (१५) दामोदरदास हरसानी, (१६) पद्मनाभदास (१७) प्रभुदास (१८) परमानंददास, (१९) विष्णुदास छीपा, (२०) भगवानदास, (२१) मुकुन्ददास कायस्थ, (२२) रामदास पुरोहित (२३) लघु पुरुषोत्तमदास, (२४) सूरदास, (२५) हरजीवन।

अम्मा क्षत्राणी—इनके ठाकुरजी श्री बालकृष्णजी श्रीनाथद्वारा में श्री नवनीतप्रिय-जी के पास विराजमान हैं। उनके श्री मस्तक पर पाग आदि श्रंगार नहीं धराये जाते हैं। वार्त्ता में इसके दो पुत्रों की मृत्यु का उल्लेख है जिसकी सम्प्रदाय में प्रचलित इस प्रथा से होती है। प्रसिद्ध है कि इसे पुत्र शोक से व्याकुल देखकर ठाकुरजी ने इससे कहा कि तेरा शोक मैं धारण करूंगा। तू शोक मत कर और इसी शोक में ठाकुरजी को पाग नहीं रक्खी गई जो आज तक ज्यों की त्यों चली आरही है।

भावप्रकाश के अनुसार यह कड़ा की रहने वाली थी और गदाधरदास के यहाँ जब सम्वत् १५८७ में श्री महाप्रभुजी पधारे थे, तब यह शरण में आई थी। इसके सेव्य स्वरूप बालकृष्णजी दक्षिण के एक ब्राह्मण के ठाकुर थे, जो अपने बद्रीनाथ प्रस्थान के समय महाप्रभुजी को भेंट कर गया था।

आनन्ददास विशम्भरदास

मूल वार्त्ता में इनका कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है। भावप्रकाश में आपको प्रयाग का रहने वाला बताया गया है और आप जाति के क्षत्री थे। व्याह के समय चित्रकूट चले गए थे।

अच्युतदास सनाढ्य मानसी गंगा वाले—इनके सम्बन्ध में मूल वार्त्ता में कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है। भावप्रकाश के अनुसार यह मथुराजी के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे और दीपावली के समय अपने माता-पिता के साथ प्रथम बार श्रीगोवर्द्धन के दर्शन को आए थे फिर पिताजी की अनुमति प्राप्त करके 'आन्योर' में अपने सम्बन्धियों के साथ रहने लगे थे। इसके अनन्तर वे 'पारासौली 'श्री कुण्ड (राधाकुण्ड) और कभी गोवर्धन में मानसी गंगा पर रहते थे। जब सम्वत् १५५६ में श्री महाप्रभुजी ने श्रीनाथजी को पर्वत से बाहर पधराया, तब आप शरण में आए और इन्होंने 'मानसी सेवा' के प्रति अभिरुचि दिखायी। शरण में आने के पश्चात् आप 'गोविन्द कुण्ड' पर रहने लगे थे।

भावप्रकाश और डाकौर संस्करण में आपकी वार्त्ता में जो अन्तर है, वह यह है कि डाकौर संस्करण में आपकी तीन दंडौती परिक्रमाओं का उल्लेख है। भावप्रकाश में यह उल्लेख नहीं है ।

श्री महाप्रभुजी ने इन्हें सिद्धान्त मुक्तावली ग्रंथ सिखाया था और श्री गुसांईजी स्वयं आपको नित्य गोविन्द कुण्ड पर दर्शन देने आते थे। एक समय जब श्रीगुसांईजी ने भगवानदास भीतरिया को सेवा में से अलग कर दिया था, तब वह इनके पास गया और आपने श्री गुसांईजी से विनती करके उसे पुनः अपने स्थान पर रखवा दिया था ।

अच्युतदास गौड़ ब्राह्मण—इनका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता संख्या ६२ में है। मूल वार्त्ता में इनके सम्बन्ध में केवल चार बातें लिखी हैं। एक तो इनके ठाकुरजी का नाम श्री मदनमोहनजी था, दूसरे इन्हें श्री गुसांईजी प्रणाम नहीं करने देते थे, तीसरे इन्होंने बद्रीनाथ शरीर छोड़ा था चौथे इनके ठाकुरजी को श्री गोपीनाथजी ने श्रीनाथजी के पास पधरा दिया था ।

भावप्रकाश के अनुसार यह महावन में एक गौड़ ब्राह्मण के यहाँ जन्मे थे। सात आठ वर्ष की आयु में ही शरण में आगये थे। बीस वर्ष की आयु में आपने श्री आचार्यजी से अड़ैल में ब्रह्मसम्बन्ध प्राप्त किया था। महावन के श्री नारायणदासजी ब्रह्मचारी का संग इन्हें प्राप्त था। इन्हें सेव्य स्वरूप मदनमोहनजी अड़ैल से सात कोस दूर एक गाँव में ताल के किनारे प्राप्त हुए थे। इन्होंने श्री आचार्यजी की आज्ञा से गिरिराजजी की तीन परिक्रमाएँ की थी। डाकौर संस्करण में इनकी छः दंडौती परिक्रमा का उल्लेख है। जो भावप्रकाश में नहीं है।

इनके ठाकुरजी श्रीनाथजी के पास नाथद्वारे में विराजमान हैं और श्रीनाथजी के अचल होने के कारण यही स्वरूप हिंडोला, डोल झूलता है।

अच्युतदास सारस्वत कड़ा के—इनका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता संख्या ६३ में है। इससे केवल यह पता चलता है कि यह कड़ा के रहने वाले थे और जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे और इन्हें श्रीमहाप्रभुजी ने अपनी पादुका दी थीं।

भावप्रकाश के अनुसार भी यह कड़ा के रहने वाले थे और सारस्वत ब्राह्मण थे तथा इनकी स्त्री अल्प आयु में ही मर गई थी। फिर इन्होंने व्याह नहीं किया था और तीर्थ यात्रा को निकल गए थे और जगन्नाथजी में महाप्रभुजी की कथा सुनकर उनकी शरण में आए थे। इनको महाप्रभुजी ने भक्तिमार्गीय विवेक, धैर्य और आश्रय समझाया था।

इनके प्रसंग में श्री महाप्रभुजी के निधन का उल्लेख है। इसलिए अन्तिम जगदीश यात्रा में इनके शरण आने की अधिक सम्भावना है, जिसका समय सम्वत् १५८७ के पूर्व और लगभग १५८० के समीप होना चाहिए।

ईश्वर दुबे साचोरा ब्राह्मण—इनका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता संख्या ४४ में है। मूल वार्त्ता से यह ज्ञात होता है कि यह उत्तम श्लोकदास की मृत्यु के बाद रसोई करते थे और वैष्णवों को अपने पास से घी मँगा करके देते थे।

भावप्रकाश के अनुसार आपके सम्बन्ध में भी ज्ञात है जो उत्तम श्लोक दास के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है ।

ईश्वर दुवे की वार्त्ता में सम्प्रदाय के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है । एक श्रीनाथ जी के सेवकों पर वात्सल्य भाव- दूसरे गुरू के प्रति मन में भी अभाव न आना चाहिये ।

उत्तम श्लोक दास—इनका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता सं० ४३ में है। मूल वार्त्ता में आप श्रीनाथजी के सेवकों के रसोइया लिखे गये हैं और लोग इनको महतारी कहते थे ।

भावप्रकाश के अनुसार यह गोधरा के साँचौरा ब्राह्मण थे जो किसी कायस्थ के यहाँ रसोइया का कार्य करते थे और जब श्री महाप्रभुजी आगरे आये थे तब राजघाट पर संध्या वंदन करते हुए इन्हें उनका दर्शन हुआ था। और फिर कायस्थ की नौकरी छोड़कर करके यह और इनके भाई ईश्वर दास दुवे दोनों शरण में आये थे ।

एक ब्राह्मणी (अड़ैल)—इसका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता ४६ में है। इसके ठाकुर मूसा बिलाई वारे करके प्रसिद्ध हैं और डाकौर संस्करण में इसे अडैल की रहने वाली लिखा है। भाव प्रकाश के अनुसार यह भी अडैल की रहने वाली थी और इसका पति रोगी था और पैंतालीस वर्ष की आयु तक जीवित रहा। पीछे यह महाप्रभु जी की शरण में गई और इसे नवनीति प्रिय जी के सामने ब्रह्म सम्बन्ध दिया गया और बाल-कृष्ण ठाकुर जी की सेवा दी गई ।

बेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण में इसका स्थान नहीं लिखा है ।

एक क्षत्राणी प्रयाग—इसका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता संख्या ५० में है। मूल वार्त्ता में इसके सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं लिखा है। भावप्रकाश के अनुसार यह प्रयाग की थी और इसका व्याह एक गरीब युवक से हुआ था। जिसे इसके माता-पिता ने मरवा डाला था। अड़ैल में महाप्रभुजी की शरण आई थी और इसके ठाकुरजी 'श्री बालकृष्णजी' आजकल गोकुल में विराजमान हैं ।

इस वार्त्ता में मार्ग की मर्यादा का महत्व बताया गया है। नियम यह है कि भोग ठाकुरजी के सामने रखकर विनती न की जाय तब तक ठाकुरजी भोग ग्रहण नहीं करते हैं, पर यहाँ उन्होंने हाँडी में से बिना विनती किए खाया है जो मार्ग की परिपाटी का उल्लंघन है ।

एक क्षत्राणी (सिहनद की)—इसकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता ६७ में है। मूल में इसके सम्बन्ध में कोई विशेष वृत्त नहीं है पर भावप्रकाश के अनुसार यह बाल विधवा थी और इसकी भोजाई से इसकी बनती नहीं थी। यह अलग रहने लगी थी। इसके भाई ने इसे अलग होते समय १००) दिये थे। यह पीछे से गोरजा समराई के यहाँ आने-जाने लगी और महाप्रभुजी के सिहनद पधारने पर उनकी सेविका हो गई। इसका शरणकाल निकालना कठिन है। इसके ठाकुरजी का नाम 'नवनीतप्रियजी' है। यह ठाकुरजी 'तुतरी वारे' कहलाते हैं और बम्बई में विराजमान हैं ।

एक स्त्री पुरुष क्षत्री तिनकी वार्त्ता—इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता के ६९ प्रसंग में है। श्री बेंकटेश्वर प्रेस के सम्वत् १९१५ के संस्करण में इन्हें सिहनद का निवासी बताया है। डाकौर संस्करण में यह सिहनद से आगरे आकर रहे हैं, ऐसा लिखा है। मूल

में इनके सम्बन्ध में विशेष वृत नहीं दिया है पर भावप्रकाश में लिखा है कि यह सिहनद के रहने वाले थे और बाल्यकाल से ही वैराग्य दशा वाले थे। छोटी उमर में ही सरस्वती नदी में घंटों खड़े रहते थे। महाप्रभुजी के सिहनद पधारने पर यह उनकी शरण में आए और फिर गोरजा समराई के यहाँ रहने लगे। माता-पिता की अप्रसन्नता के कारण यह फिर आगरे आ गए। इनके सेव्य स्वरूप का नाम श्री बालकृष्णजी था। इस वार्त्ता में 'स्वरूप निष्ठा' सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।

एक क्षत्री—इसकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता ७१ में है। मूल वार्त्ता में इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। भावप्रकाश में इसको पूरब का रहने वाला लिखा है और लिखा है कि इसके पिता की मृत्यु श्रीजगन्नाथ धाम में श्री जगन्नाथजी के रथ के पहिए के नीचे दबकर हुई थी और वहीं यह क्षत्री महाप्रभुजी की शरण में आया था, तथा इसका ब्राह्मण मित्र, गौड़ ब्राह्मण और सहपाठी बताया गया है। इस वार्त्ता में वैष्णव के संग का महत्व बताया गया है।

कृष्णदास मेघन—इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता के प्रसंग २ में है। मूल वार्त्ता के अनुसार यह क्षत्री थे और पृथ्वी, परिक्रमा के समय श्री महाप्रभुजी के साथ थे तथा बद्रीनाथ यात्रा में भी साथ थे। इनकी वार्त्ता में गुरू की आज्ञा सेवक का सर्वस्व है यह दिखाया गया है। तथा यदि सेवा-भाव सच्चा है तो सेवक गुरु के हृदय की बात का अनुमान कर सकता है। अन्याश्रय बाधक इस सिद्धान्त की भी व्याख्या है। भावप्रकाश में भी केवल इतना ही लिखा है कि सदैव महाप्रभुजी के साथ रहते थे और इन्होंने महाप्रभु के शरीर छोड़ने के बाद ही विप्रयोग में शरीर छोड़ दिया। इनका शरणकाल सं० १५४८ के लगभग है। सम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थों में इनका निधन-काल १५८७ वि० दिया है और लिखा है कि यह श्री महाप्रभुजी के यज्ञोपवीत के समय काशी में शरण आये थे। यह ठीक नहीं है क्योंकि वह कृष्णदास पुरुषोत्तमदास सेठ (काशी) के पिता थे। यदुनाथ दिग्विजय में इनका पम्पा-सरोवर पर प्रथम यात्रा के समय आचार्यजी की शरण आना लिखा है जिसकी पुष्टि भावसिन्धु से भी होती है। इस प्रकार काशी में शरण आने की बात अप्रमाणिक है।

श्री गोकुलनाथजी कृत 'वल्लभाष्टक' की टीका में भी आपका उल्लेख है। महाप्रभुजी के चित्र में भी कृष्णदास और माधो भट्ट तथा दामोदरदास बैठे हैं। भावप्रकाश की टीका में इनकी वार्त्ता में आठ प्रसंग हैं। मूल में केवल सात। इनकी मृत्यु वाला प्रसंग भावप्रकाश में अधिक है। श्री बद्रिकाश्रम में महाप्रभुजी के हस्तलिखित वृत्ति-पत्रक में कृष्णदास मेघन का उल्लेख इस प्रकार आया है।

> विद्वद्भिः किल कृष्णदासैक मुखैः शिष्यैरनेकै कृतः।
> सोहं श्री बदरबनान्तगमं शुक्रे शकाब्दे तथा।
> देवाम्भः पति भू मिते सह नरनारायणं वीक्षितुं।
> तत्र व्यास मुनीश संहतिरभूदाकस्मिकी मे शुभा।[1]

कृष्णदास स्वामी—इनका उल्लेख नारायणदास ब्रह्मचारी महावन वाले की वार्त्ता में है इन्होंने लिखा है कि नारायणदास की मृत्यु के बाद श्री गोकुलचन्द्रमाजी (ठाकुरजी) इनके पास रहे और यह महावन में रहने लगे। भावप्रकाश में भी इससे अधिक कुछ नहीं है।

---

१ काँकरौली का इतिहास।

कीरत चौधरी—कीरत चौधरी का नाम प्रभुदास भाट सिंहनद की वार्त्ता संख्या २६ में है। मूल में लिखा है कि भगवदीयों की निन्दा के कारण रात को इनकी खूब पिटाई हुई थी। यह सिंहनद के ही रहने वाले थे। भावप्रकाश में भी इससे अधिक कुछ नहीं लिखा है।

केशव भट्ट—इनका उल्लेख चौ० वै० वार्त्ता सं० ३२ माधोदास भट्ट की वार्त्ता में है। जिसमें यह (केशव भट्ट) माधोदास के स्वामी बताए गए हैं। वार्त्ता से यह काश्मीर के निवासी सिद्ध होते हैं। इन्होंने माधोदास को महाप्रभुजी की भेंट किया था और महाप्रभुजी की कथा भी सुनी थी। यह स्वयं आचार्य थे। वार्त्ता से यह ध्वनि निकलती है कि यह स्वयं आचार्यजी से किसी स्थान पर मिलने आये थे। भावप्रकाश में भी इससे अधिक कुछ नहीं लिखा है। शरण में आने से पूर्व यह प्रसिद्ध है कि यह निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य थे।

कृष्ण भट्ट (देखिए-२५२ के कृष्ण भट्ट) इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता ३५ में है। पुरुषोत्तम जोशी सांचौरा ब्राह्मण की वार्त्ता में इन्हें उज्जैन का निवासी और पद्मरावल का वेटा लिखा है। इसके अनुसार आप चार भाई थे और पुरुषोत्तमजी के साथ यात्रा के लिए गोकुल आए थे और वहाँ श्री गुसांईजी के सेवक हुए थे। भगवद्वार्त्ता में आपकी जन्म-जात रुचि थी। भावप्रकाश में भी इससे अधिक कुछ नहीं लिखा है। इनके वंशज इस समय राजकोट में रहते हैं। इनके ठाकुरजी बालकृष्णजी हैं और राजकोट में विराजमान हैं। इनकी दो सौ० वा० में स्वतंत्र वार्त्ता है।

कृष्णदास ब्राह्मण—इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता ८३ में लिखा है, पर उसमें इनका निवास स्थान इत्यादि कुछ नहीं लिखा है। भावप्रकाश के अनुसार कृष्णदासजी 'वायड' गुजरात में जन्मे थे और इनकी स्त्री 'चोइला' में, और दोनों प्रारम्भ से ही साधु सेवी थे। एक बार इनकी स्त्री अन्य स्त्रियों के साथ गाँव के बाहर मिट्टी खोदने गई थी और वहाँ दब गई। कुछ देर बाद वहाँ श्री महाप्रभुजी अपने संगियों सहित आ निकले और उन्होंने अपने सेवकों से मिट्टी हटवा कर उसकी रक्षा की। पीछे वे स्त्री-पुरुष सेवक होगए और उन्होंने अपने आचरण द्वारा सत्संग का उत्तम उदाहरण और सेवा की भावना का उच्चत्तम आदर्श उपस्थित किया। ग्राउस ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ में इस वार्त्ता का उल्लेख किया है और इसके भाव को ना समझ सकने के कारण इस पर हास्यास्पद टिप्पणी की है जो उनके विदेशी होने के कारण क्षम्य है।

गज्जन धावन—इनका विवरण चौरासी वै० वार्त्ता १८ में है और उल्लेख कृष्णदास की वार्त्ता २ में भी है। वार्त्ता के अनुसार यह आगरे के रहने वाले थे और जाति के खत्री थे। इनके ठाकुरजी का नाम 'नवनीतप्रियजी' था। यह महाप्रभुजी के साथ गोकुल और अडैल दोनों जगह रहे हैं। भावप्रकाश में भी इससे अधिक कुछ नहीं है। केवल यह लिखा है कि इनको व्यसन अवस्था सिद्ध होगई थी। श्री 'नवनीतप्रियजी' आज नाथद्वारे में विराजमान हैं। श्री गुसांईजी ने इनकी सेवा की थी।

गोविन्ददास भल्ला—इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता १६ में है। यह पहले धनी थे। इन्होंने अपनी स्त्री को अलग कर दिया था तथा अपनी सम्पत्ति के चार भाग कर दिए थे। पीछे से यह केसोराय के मंदिर में सेवा करने लगे थे और वहीं हाकिम को मारने

के कारण उसके आदमियों द्वारा मारे गए थे। यह अहंकारी जीव थे। भावप्रकाश के अनुसार ये थानेश्वर में सिपाहीगीरी करते थे और वहाँ के हाकिम के पास रहते थे। जब महाप्रभुजी थानेश्वर पधारे थे वे तब यह अपनी स्त्री से अलग होकर सेवक हुए थे, पीछे से महावन में आकर रहने लगे थे और वहाँ आने से पूर्व इन्होंने अपने धन के चार भाग कर दिये थे। महावन में चौबीस टके रोज की सामग्री करते थे, वह भी अहंकार सहित करते थे। इन्होंने सेवा छोड़दी थी और बाद में श्री केसोराय के मंदिर में राजाज्ञा से सेवा करने लगे थे। इनकी वार्त्ता में अहंकार को हीन बताया गया है। इनके ठाकुरजी श्री मथुरानाथजी (छोटे) आज काँकरौली के छोटे मंदिर में विराजमान हैं।

गुसांईदास सारस्वत ब्राह्मण—इनका विवरण चौरासी वैष्णव वार्त्ता ३१ में है जहाँ यह लिखा है कि यह महाप्रभुजी के सेवक थे और इनके अपने ठाकुरजी थे। वह इन्हें एक वैष्णव को देकर बद्रिकाश्रम गए और वहीं इन्होंने देह छोड़ दी। भावप्रकाश से इनके जीवन पर अधिक प्रकाश पड़ता है। इसके अनुसार यह पूरब के सारस्वत के घर जन्मे थे। चौदह वर्ष में श्रीमद्भागवत सुनकर विरक्त होगए थे और दस वर्ष तक इधर-उधर तीर्थों में घूमते-फिरते रहे। फिर एक दिन विश्रान्त घाट पर आपने महाप्रभुजी से भेंट की और सेवक होगए। आपको एक बैरागी के श्याम स्वरूप चतुर्भुज ठाकुर की सेवा आचार्यजी ने दी थी इनके नाम से प्रसिद्ध एक 'बालकृष्ण' ठाकुरजी जतीपुरा में मथुरेशजी के मंदिर में विराजमान हैं।

गरासिया राजपूत:—इसका नाम चौ० वै० वार्त्ता ३६ जगन्नाथ जोशी की वार्त्ता के चौथे प्रसंग में आया है। यह मूल वार्त्ता में जगन्नाथ जोशी के यहाँ दर्शन करने आया था और वहाँ अपने अपमान से असंतुष्ट होकर इसने एक दिन जोशीजी पर तलवार चलादी जिसे स्वयं श्रीनाथजी ने रोक लिया। पीछे से गरासिया भी सेवक हो गया। यह खेरालू (गुजरात) का रहने वाला था। भावप्रकाश में भी इसके सम्बंध में इससे अधिक कुछ नहीं लिखा हैं।

गोविन्द दुबे साँचौरा ब्राह्मण—इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता की ४१वीं वार्त्ता में है। जिसके अनुसार इनको महाप्रभुजी ने 'नवरत्न' ग्रंथ भेंट किया था। दूसरे, यह मीराबाई के यहाँ रहे थे। तीसरे, यह कड़ा के रहने वाले थे। चौथे, आप एक बार श्रीमहाभुजी के साथ रणछोड़ यात्रा को गये थे। भावप्रकाश के अनुसार भी यह साँचौरा ब्राह्मण थे और पन्द्रह वर्ष की आयु से ही वैराग्यपूर्ण अभिरुचि रखते थे। माता-पिता के वृद्ध होते हुए भी यह द्वारका गये, वहाँ से फिर गया गए, लौटते समय काशी में मणिकर्णिक घाट पर इन्हें श्री महाप्रभुजी के दर्शन हुये थे और इन्होंने काशी में सेठ पुरुषोत्तमदास के मकान पर श्री आचार्य महाप्रभुजी से ही गीता पढ़ी थी और सेवक हुये थे। महाप्रभुजी काशी अनेक बार गए हैं, इसलिए इनका शरण-काल निश्चित करना कठिन है।

गोपालदास बाँसवाडा के—इनकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता की ३३वीं वार्त्ता है। इसके अनुसार यह बाँसवाड़े के पास के रहने वाले थे और संत-प्रेमी तथा 'अतिथि देवोभव' में विश्वास करने वाले थे। भावप्रकाश के अनुसार आप बाँसवाड़ा के एक क्षत्रिय के घर जन्मे थे। इनके पिता रोजगार करते थे और उनके यह पाँचवे पुत्र थे। इनके पिता के पहले चार पुत्र मर गए थे, इसलिए उन्होंने पाँचवे पुत्र के जीवित रहने पर में उसके

मुंडन कराने की मानता मानी थी। गोपालदासजी जब ग्यारह वर्ष के हुए थे, तब इनके पिता ने इन्हें नौकरों के साथ प्रयाग मुण्डन कराने के लिए भेजा, जहाँ इन्हें श्री महाप्रभुजी के दर्शन गंगा तट पर होगए और वहीं महाप्रभुजी ने इन्हें नाम निवेदन कराया। वहाँ से लौटने पर गोपालदास ने अपने माता-पिता से सेवक होने के लिए आग्रह किया, पर उन्हें सफलता न मिली। व्याह होने के पश्चात् वे अपनी स्त्री को लेकर प्रयाग गए और वहाँ उसे नाम सुनवा लाए। इनको श्री गुसांईजी ने एक ठाकुरजी की सेवा भी दी थी।

गोपालदास आगरा के—श्री बैंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित सम्वत् १६८५ वाले संस्करण में ४५ वीं वार्त्ता (वासुदेव छकड़ा की वार्त्ता) में इन्हें 'छारछू' दरवाजे के रूपचन्द नंदा का छोटा भाई लिखा है। इसका समर्थन न तो डाकौर के संस्करण से होता है और न भावप्रकाश से। भाव-प्रकाश के अनुसार रूपचन्द नन्दा के छोटे भाई का नाम हरिचन्दा था। यह अंश इस संस्करण में लेखक की भूल से आ गया है। आगरे में 'छारछू दरवाजे' के नाम से आज भी एक मुहल्ला है, पर वहाँ गोपालदास के मकान का पता लगाना कठिन है।

गोरजा (सास बहू):—इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता की ५१ वीं० वार्त्ता में है। यह सिंहनद की क्षत्राणी थी और बहुत सरल स्वभाव की थी। इससे अधिक इसके सम्बंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

गडुस्वामी सनाढ्य:—आपका विवरण चौ० वै० वार्त्ता की ७६ वीं वार्त्ता में है। इसके अनुसार आप अपने सेवकों सहित श्री महाप्रभुजी की शरण वृन्दावन में आए थे। भावप्रकाश के अनुसार आप मथुरा में एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर जन्मे थे और वहाँ से आठ वर्ष की आयु में ही वृन्दावन आकर केशोघाट पर रहते थे। आपको आचार्य महाप्रभुजी ने 'त्रिविधि नामावली' नामक ग्रंथ भेंट किया था।

गोपालदास जटाधारी—आपका विवरण चौ० वै० वार्त्ता में ८२ वीं में है। आप श्रीनाथजी के खवास थे। घंटों खड़े खड़े पंखा करते थे। ये एक बार पृथ्वी परिक्रमा को निकले और रास्ते में ही मर गए। इनकी वार्त्ता में 'महद् अपराध' क्या हैं इसकी व्याख्या है। भावप्रकाश के अनुसार यह प्रयाग में रहने वाले किसी गौड़ ब्राह्मण की सन्तान थे और संक्राति स्नान के समय भीड़ में छूट गए थे। जहाँ से इन्हें एक नागा पकड़ ले गया और तीस वर्ष की आयु तक यह उसके साथ रहे। फिर तीर्थ यात्रा को निकले, तो विश्रान्त घाट श्री महाप्रभुजी के दर्शन करके उनके सेवक होगए और पहले श्रीनाथजी के बाग में काम करते रहे, पीछे खवासी की।

ग्यानचंद (बनिया)—इसका उल्लेख चौ० वै० वार्त्ता की ८३ वीं में है। यह वही कामी बनिया है जिसके घर कृष्णदास ब्राह्मण अपनी स्त्री को भेज आये थे। इसका नाम महाप्रभुजी ने 'ज्ञानचंद' रक्खा था।

जनार्दन चौपड़—आपका संक्षिप्त विवरण चौ० वै० ७५ वार्त्ता में है। इसके अनुसार आप गोकुल में शरण आए थे। भावप्रकाश के अनुसार इनके पिता और यह दोनों थानेश्वर के रहने वाले थे। इनके पिता उस समय के हाकिम के यहाँ नौकरी करते थे और लड़ाई से भाग गए थे। शान्ति हो जाने पर हाकिम ने जनार्दनदास को सताया तो उसके घर में आग लग गई। इसपर उसने इन्हें छोड़ दिया और इनके पिता का अपराध भी क्षमा कर दिया।

जीवदास—इनका उल्लेख चौ० वै० वार्त्ता २०–२१ में है। बीसवीं वार्त्ता में इनको महाप्रभुजी ने श्री लाड़लेशजी ठाकुर की सेवा सौंपी थी। इनके दो पुत्र थे। एक का नाम पुरुषोत्तमदास तथा दूसरे का नाम छबीलदास था। इनके साले का नाम कृष्णदास था तथा उसके दो मित्र थे एक हरिजी भाई तथा दूसरा मथुरामल्ल क्षत्री। भावप्रकाश के अनुसार यह आगरे के रहने वाले प्रतीत होते हैं। इनके ठाकुरजी का नाम लाडिलेशजी था।

जगतानन्द सारस्वत ब्राह्मण सिंहनद के—इनकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता में ४७ वीं वार्त्ता है। यह थानेश्वर के निवासी थे और काशी से विद्या पढ़ कर आए थे तथा आचार्य-पीठ से प्रवचन करते और कथा कहते थे। आचार्य महाप्रभु के थानेश्वर पधारने के समय इनकी भेंट हुई और उनके पांडित्य से प्रभावित होकर यह शरण में आए थे।

तुलसा पद्मनाभदास की बेटी—इसकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता में ५वीं वार्त्ता है और चौथी में भी इसका उल्लेख है। यह कन्नौज में रहती थी तथा वैष्णवों की सेवा करती थी और श्री मथुरानाथजी (ठाकुरजी) इससे सानुभाव जताते थे। यह स्वभाव की नम्र थी। तुलसा और पद्मनाभदास दोनों के रहने के स्थान के सम्बन्ध में कन्नौज में पता लगाने पर पता चला कि मुहल्ला पठकाना में पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की एक पुरानी गद्दी है और सम्भव है यही स्थान इनका हो। इस वंश के अन्तिम तिलकायत बाबा बिंदु माधौदास थे।

दामोदरदास सम्भल वाले खत्री—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता की संख्या तीन पर दिया हुआ है। जिसके अनुसार यह सम्भल (गंगापार एक गाँव) के रहने वाले थे और कन्नौज में राजकार्य में नौकरी के कारण रहते थे। यह धनी व्यक्ति थे और महाप्रभुजी के सेवक थे। यह स्वभाव से नम्र थे तथा अनेक सेवक और सेवकनियों के होते हुये भी सेवा के लिए जल स्वयं भरते थे। इनसे महाप्रभुजी बहुत प्रसन्न थे और इनकी तुलना अम्बरीष से करते थे। जितने वैष्णव कन्नौज होकर अड़ैल जाते थे यह उन सबका सत्कार करते थे। इनकी स्त्री भी इन्हीं के समान वैष्णव थी। इस वार्त्ता के अनुसार इनके एक पुत्र था जो मुसलमान हो गया था। इनकी मृत्यु के कुछ दिन पश्चात् ही इनकी स्त्री का भी शरीरान्त हो गया था क्योंकि वार्त्ता के अनुसार दोनों के मृत्युकृत्य एक साथ ही हुये थे। इनके ठाकुरजी का नाम श्री द्वारकानाथजी था और जो पहले एक दर्जी के ठाकुर थे। भावप्रकाश से भी इनके जीवन पर कुछ अधिक प्रकाश नहीं पड़ता है। कन्नौज में सम्भल के कई खत्री परिवार जो गदर से पहले वहां आगए थे रहते हैं। यह सम्भल में अपने घर अब भी बताते हैं। यह महाप्रभुजी के सेवक थे। उस समय कन्नौज अफगानों के अधिकार में था, इसलिए यह वहाँ के अफगान शासक के यहां कर्मचारी थे।

देवा क्षत्री कपूर—इनका उल्लेख चौ० वै० वार्त्ता संख्या २० और बाइस में है। इन दोनों वार्त्ताओं से केवल यह पता चलता है कि महावन की एक क्षत्राणी के चार सेव्य स्वरूपों में से 'श्री ललितत्रिभंगीजी' देवा कपूर को महाप्रभुजी ने दिए थे जिनकी इस दम्पति ने विधि पूर्वक यावद् जीवन सेवा की। भावप्रकाश के अनुसार पीछे से यह ठाकुर सिंहनद में एक ब्राह्मणी के यहाँ विराजमान थे।

दमोदरदास कायस्थ शेरगढ़ के—इनकी स्त्री का नाम वीरबाई था जिसने सूतिका गृह में भी ठाकुरजी की सेवा की और ठाकुरजी की आज्ञा सर्वोपरि मानी। डाकौर संस्करण सम्वत् १९५१, १९६० बैंक्टेश्वर प्रेस सम्वत् १९०५, शिला प्रेस मथुरा का लिथो सन् १८८३

अर्थात् १६४० संवत् के संस्करण में वीरबाई के पति का नाम दामोदरदास लिखा है। किन्तु भावप्रकाश तथा अन्य सभी हस्तलिखित प्रतियों में दामोदरदासजी वीरबाई के पुत्र लिखे गए हैं। डाकोर संस्करण इस सन् १८८३ के शिला प्रेस वाले संस्करण के आधार पर चला है और यह भूल यहीं से प्रारम्भ हुई है।

श्री वेंक्टेश्वर प्रेस संवत् १६८५ वाले संस्करण में भी यह ज्यों की त्यों है। संवत् १७४६ की काँकरौली विद्या विभाग की प्रसंगात्मक वार्त्ता की प्रति में वीरबाई दामोदरदास की माता है। 'संस्कृत वार्त्ता मणि माला' विद्या विभाग काँकरौली की प्रति के पृष्ठ ५६८ (सही ५६८) पर इस प्रकार लिखा है। श्री दामोदर दासस्य मातुरवृतमुदीर्थे। यत्सेव्यः कर्पूर राजो महामूर्तिः स्वयं प्रभूः।'

इनके सेव्य स्वरूप का नाम श्री 'कपूर रायजी' था जो आज बड़ौदा में श्री कल्याण-रायजी के मन्दिर में विद्यमान हैं। दूसरे स्वरूप का नाम 'नवनीतप्रियजी' था। वह भी बड़ौदा के उसी मन्दिर में विद्यमान हैं। यह ठाकुरजी आज से लगभग पचास या साठ वर्ष पहिले शेरगढ़ (कोटा) से ही बड़ौदा आए हैं। शेरगढ़ में आज भी मन्दिर है।

दिनकर सेठ—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता २३वीं में है। जिसमें इनकी कथा सुनने में अभिरुचि का उल्लेख है कि यह कथा के सामने भोजन का भी ध्यान नहीं रखते थे और महाप्रभुजी इनके आने तक कथा नहीं प्रारम्भ करते थे। इससे यह एक उत्तम श्रोता प्रतीत होते हैं। भावप्रकाश के अनुसार यह प्रयाग के एक क्षत्री के घर जन्मे थे और चार भाई थे। इन्हें बचपन से ही कथा सुनने की रुचि थी और घर से जो ले पाते थे वह सब कथा वाचकों को दे देते थे। इनके सम्बन्धी इन्हें चोर कहते थे और कथा वाचक लोग 'सेठ' कहते थे। माता पिता की मृत्यु के बाद जब यह प्रयाग छोड़ना ही चाहते थे तो इनकी भेंट श्री कृष्णदास से होगई जिन्होंने इन्हें अडैल में श्री महाप्रभुजी की कथा सुनवाई और यह उनके सेवक होगए तथा जब तक जिए तब तक कथा रुचि, ध्यान और श्रद्धा से सुनते रहे।

यह वार्त्ता सेवक की कथा में अभिरुचि की पुष्टि के लिए है।

नारायणदास ब्रह्मचारी—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता १६-२० में है। यह महावन के रहने वाले थे और इन्होंने द्रव्य का परित्याग किया था। इनके एक भतीजी थी। यह गौ सेवा बड़ी रुचि और ध्यान से करते थे। इनके सेव्य स्वरूप का नाम श्री गोकुलचन्द्रमाजी था जो पहले महावन की एक क्षत्राणी के ठाकुरजी थे और इन्हें महाप्रभुजी द्वारा प्राप्त हुए थे। इनके द्वारा यादवेन्द्रदास कुम्हार, अच्युतदास आदि सबने सेवक होने की प्रेरणा प्राप्त की थी। यह महावन से गोकुल प्रतिदिन आते थे। श्री गोकुलचन्द्रमाजी आज कामवन (भरतपुर) में विराजमान हैं।

नरहरि जोशी—इनका उल्लेख चौ० वै० वार्त्ता ३७-३८ में है। इनके सम्बन्ध में लिखा है कि यह खिरालू के निवासी थे और अडैल में अपनी माता की प्रेरणा से नाम पाने के लिए आए थे। वहाँ से जगन्नाथपुरी गए। इन्होंने अलियान गाँव (डाकौर के पास) के महीधर और फूलाबाई को नाम दिलवाया था और अलियान गाँव की आग को दबा दिया था। भावप्रकाश में नरहरि जोशी बड़े भाई और जगन्नाथ छोटे भाई लिखे गए हैं।

नरहरदास सन्यासी—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ८० में है। इसके अनुसार यह महाप्रभुजी के साथ श्री द्वारकाजी गए थे और बेना कोठारी भी आपके साथ थे। भावप्रकाश

के अनुसार इनके पिता आगरे के रहने वाले थे और आगरे में अकाल पड़ने के कारण गुजरात जा बसे थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में श्रीनरहर की भेंट एक सन्यासी से हो गई और यह सन्यासी हो गये और इन्होंने कठिन तपस्या की थी और स्त्री का मुँह न देखते थे। यह मही नदी के किनारे एक कुटी में रहते थे और गुजरात में इनकी अच्छी ख्याति हो गई थी। इनके प्रसिद्ध सेवक का नाम वेनी कोठारी था। एक तेलिन को घर में छिपा लेने के कारण इन्हें गुजरात छोड़ना पड़ा और यह वृन्दावन आ गए और वहीं महाप्रभुजी के इन्हें दर्शन हुये। यह महाप्रभु के साथ द्वारकाजी गए थे और पीछे वेनी कोठारी सहित सेवक हो गये थे।

नारायणदास चौहान ठट्टे के—इनका विवरण चौ० वै० वार्त्ता के प्रसंग ६६ में है। और भावप्रकाश में ५९ वीं वार्त्ता है। मूल वार्त्ता में लिखा है कि इन्हें बादशाह ने कैद में डाल दिया था और पाँच रुपया रोज देना होता था। एक दिन उन्होंने यह रकम गुसांईजी के सेवकों को दे दी और उसी दिन बादशाह ने इन्हें इनकी आस्था के लिए मुक्त कर दिया। इन्होंने मुक्त होने पर आचार्य महाप्रभु को ६ हजार रुपया भेंट भेजा। इनका पहला नाम नरिया था। भावप्रकाश के अनुसार यह ठट्टा ग्राम में एक लुहाणा के घर प्रगटे थे। वह लुहाणा बहुत बड़ा सेठ था। जब नारायणदास पाँच वर्ष के हुये तो उनके सारे शरीर पर फोड़े हुये। पिता ने बहुत दवादारू की, परन्तु ठीक नहीं हुए। उन्होंने एक लाख रुपए इनाम देने की भी घोषणा की। पाँच वर्ष तक फोड़े ठीक नहीं हुये तब एक बार वहाँ श्री आचार्यजी पृथ्वी-परिक्रमा करते हुये पधारे। तब नारायणदास के पिता नारायणदास को को डोली में बैठाल कर हजार रुपये भेंट लेकर आचार्यजी के पास आये। तब श्री आचार्यजी ने नारायणदास के पास डोली में जाकर अपने दोनों चरण उनके माथे पर रक्खे तब वह ठीक हो गए। इसके बाद नारायणदास श्री आचार्यजी की शरण में आए और आचार-विचार से रहने लगे। आपके पिता से आपकी नहीं बनी। आपको बादशाह ने कुल दीवानगीरी दी। भावप्रकाश में भी आपका आगे का नाम नरिया दिया है। ठट्टा सिन्ध में है और अकबर और जहाँगीर दोनों के समय में यह एक स्वतन्त्र प्रान्त था तथा यहाँ फौजदार और दीवान रहते थे। नारायणदास का नाम उन दीवानों की सूची में नहीं है जिनके नाम आइन-ए-अकबरी में हैं।

नारायणदास भट्ठ मथुरा—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ६५ में है। इनसे मदनमोहनजी ने कहा कि मैं वृन्दावन में हूँ मुझे धरती खोदकर बाहर पधराओ और इन्होंने ऐसा ही किया। पीछे गोपीनाथजी ने मदनमोहनजी को स्थापित किया और ये सेवा करते रहे। इनके मरने के बाद इनके परिवार में कोई न होने के कारण यह सेवा बंगाली लोगों को मिली। भावप्रकाश के अनुसार यह मथुरा में एक भट्ट के घर पैदा हुए थे। इनको कवित/दोहा कुछ नहीं आता था। एक बार विश्रांत घाट पर आचार्यजी पधारे तब इन्होंने उनसे पूँछा कि मैं मूर्ख क्यों हूँ। तब आचार्यजी ने इनसे ध्रुवघाट पर जाने को कहा और कहा कि वहाँ द्रव्य मिलेगा सो मत उठाना। ये वहाँ गये और द्रव्य उठाने लगे, परन्तु वरूण के दूतों ने न लेने दिया। तब इन्होंने आचार्यजी से नाम पाया।

नारायणदास अम्बाले के—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ६४ में है। यह देशाधिपति के नौकर थे तथा बहुत ही कार्य-व्यस्त सेवक थे। यह महाप्रभुजी को बहुत-सी भेंट भेजते थे। भावप्रकाश के अनुसार आपने अम्बाले में एक कायस्थ के घर जन्म लिया था। इनको जुआ

खेलने का बड़ा भारी व्यसन था। जब यह बीस वर्ष के हुए, तब पिता ने इन्हें देश से बाहर निकलवा दिया। फिर ये दक्षिण में गए और एक ब्राह्मण से कुछ विद्या प्राप्त की। विद्या प्राप्त कर लड़कों को पढ़ाने का काम करने लगे। एक बार श्री आचार्यजी के लिए कृष्णदास बाजार सामान लेने गए जहाँ आप एक लड़के को पीट रहे थे। कृष्णदास ने आपसे लड़कों को पढ़ाने का कार्य छोड़ने को कहा। यह नहीं माने। इसके बाद इन्होंने एक लड़के को मारा जिससे वह मूच्छित हो गया। तब यह श्री आचार्यजी के पास आए और नाम पाया। आचार्यजी ने उस लड़के को जीवित किया। इसके बाद नारायणदास द्वारका से चले और चार वर्ष पीछे घर आगये। पिता बहुत प्रसन्न हुए और बादशाह का सारा काम आपसे कराने लगे।

नोरबेटी (आन्यौर)— इनका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता की वार्त्ता संख्या ८० में है। नरो सद्दू पांडे की बेटी थी। इस वार्त्ता में श्रीनाथजी के प्राक्ट्य का उल्लेख है कि किस प्रकार दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, रामदास, माधोदास के साथ महाप्रभु झारखंड में थे। वहाँ से पृथ्वी-परिक्रमा कर ब्रज में आए और सद्दू पांडे के घर आन्योर में बैठे। वहाँ सद्दू पांडे ने भोजन करने के लिए कहा तो इतने में ही गोवर्द्धन पर्वत से श्रीनाथजी ने नरों से दूध माँगा। यह शब्द वैसा ही था जैसा झारखंड में सबने सुना था। नरो जब दूध देकर लौटी तब जो कुछ बच रहा था वह महाप्रभुजी ने स्वयं उससे लेकर पी लिया। भावप्रकाश से इसके जन्म काल, शरणकाल या अन्त काल किसी पर प्रकाश नहीं पड़ता। सद्दू पांडे की हवेली आज भी गिरिराज के समीप अन्योर ग्राम में है।

पार्वती-पद्मनाभदास के बेटा की बहू—चौ० वै० वार्त्ता में इनका वृत्त वार्त्ता संख्या ६ में है। पार्वती ठाकुरजी की सेविका थीं और पुरुषोत्तमदास मेहरा को जानती थी। पार्वती के हाथ सफेद हो गये, तो उसे ठाकुरजी की सेवा करते ग्लानि होती थी। उसने पुरुषोत्तमदास मेहरा को पत्र लिखा कि तुम गुसांईजी से मेरी ओर से विनती करना। गुसांईजी ने उसे सेवा करते रहने को कहा और उसका रोग ठीक हो गया। भावप्रकाश से इनके जन्म-काल, शरणकाल या अन्त काल किसी पर प्रकाश नहीं पड़ता।

पुरुषोत्तमदास क्षत्री बनारस—आपका विवरण चौ० वै० वार्त्ता सं० ९ में है। मूल वार्त्तानुसार आपको नाम देने की आज्ञा थी। यह विश्वनाथ के भी दर्शन करते थे। शंकर ने काल भैरव को आपके घर की चौकीदारी करने को कहा और एक दिन आपकी उससे भेंट हो गई। शंकर का जन्माष्टमी उत्सव देखने पुरुषोत्तम के घर जाना लिखा है। इनके पुत्र का नाम गोपालदास लिखा है। भावप्रकाश के अनुसार पुरुषोत्तमदास का दामोदरदास सम्भल वारे का संग था। यह सेठ थे। आचार्यजी पहली पृथ्वी परिक्रमा कर काशी पधारे तब इन सेठ ने मणिकार्निका घाट पर आपके दर्शन किए थे और नाम पाया। आचार्यजी ने श्री मदनमोहनजी को आपके माथे पधराया। यह घटना सम्वत् १५४४ के आसपास की होनी चाहिए।

प्रभूदास जटौला क्षत्री (सिंहनन्द के)—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता २५ में है। आपके ठाकुर मदनमोहनजी राजनकर सिकन्दरपुर में विराजमान हैं। एक बार प्रभुदास ने कच्ची रसोई का भोग नहीं लगाया जिसकी शिकायत ठाकुरजी ने महाप्रभु से की। इस पर आचार्यजी ने इनसे रसोई बनाने को कहा। महाप्रभुजी ने आपको ब्रज का दर्शन कराया।

इनकी वार्त्ता में महत्वपूर्ण बातें ये हैं—वल्लभाचार्य की भेंट रूपसनातन से हुई, श्रीकृष्ण चैतन्य समकालीन थे। भावप्रकाश के अनुसार आप सिंहनद में एक क्षत्री के घर पैदा हुए थे। जब यह तेरह वर्ष के हुए, तब इनका विवाह हुआ था, स्त्री बहुत खराब थी और उसने एक दिन प्रभुदास को मारा। तब प्रभुदास अपने गाँव से निकलकर राजनगर सिकन्दर-पुर में आए। वहाँ रामदास क्षत्री के घर उतरे। वहीं आचार्यजी आए हुए थे। इन दोनों ने इनसे नाम पाया। प्रभुदास को ब्रह्मसम्बन्ध कराके आचार्य श्री गोकुल लौट गए। फिर कुछ दिन बाद आचार्यजी के बड़े पुत्र गोपीनाथजी वहाँ पधारे और उन्होंने एक ब्राह्मण के घर श्री मदनमोहनजी थे सो लेकर दोनों के माथे पधराया। रामदास मर्यादा मार्ग का अधिकारी था, सो एक दिन प्रभुदास अर्धरात्रि के समय इनके पास से भाग आए। इनके ठाकुर सिकन्दरपुर में हैं।

पुरुषोत्तमदास आगरा राजघाट के—इनका वृत्त चौ० बै० वार्त्ता २७ में है। इस वार्त्ता में लिखा है कि एक समय श्री गुसांईजी आगरे में आए और आपके यहाँ उन्होंने रोटी की। इस दम्पत्ति ने उनकी ऐसी सेवा की जैसी कोई भगवान् की करता है और सेवा के सम्मुख महाप्रसाद नहीं लिया। भावप्रकाश के अनुसार यह दोनों स्त्री-पुरुष आगरे में राजघाट पर अलग-अलग दो क्षत्रियों के घर पैदा हुए थे। एक बार श्री आचार्यजी आगरे पधारे तब इन्होंने उनसे नाम पाया। चूँकि इन्होंने नाम पा लिया था। अतः दोनों की माँ कुए में गिर कर मर गईं।

पूरनमल क्षत्री—इनका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता २९ में है। मूल वार्त्ता के अनुसार आप पर द्रव्य बहुत था। आपने श्रीनाथजी की आज्ञा से मन्दिर बनवाया। उनका सारा द्रव्य नींव में ही चुक गया। इस पर वह नौकरी को बाहर गये। राजसी लोगों ने महाप्रभु से मंदिर बनवाने को कहा, पर ठाकुरजी ने मना कर दिया। एक बार श्री गुसांईजी के श्रीनाथ द्वार पधारने पर पूरनमल वहाँ गया। वहाँ उसने श्रीनाथजी को उत्तम सुगन्ध का अरगजा चढ़ाया और श्री गुसांईजी ने पूरनमल को उपरना दिया और फिर प्रतिवर्ष उसे प्रसादी गद्दल देते थे। श्रीनाथजी के मन्दिर बनवाने का श्रेय इसी व्यक्ति को है। भावप्रकाश में आपके बारे में यह लिखा है कि आपने अम्बालय में एक क्षत्री के घर जन्म लिया था। आपकी स्त्री का मन ठाकुरजी में न था, पर आपका मन भगवान् में रत था। अतः आपने उसे अलग कर दिया था। श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में इसके धनाढ्य होने का उल्लेख है और इससे अधिक कुछ नहीं है।

पद्मरावल (उज्जैन)—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता संख्या ३४ में है। मूल वार्त्ता में लिखा है कि एक बार द्वारका यात्रा के समय आपसे रनछोड़जी ने राजनगर में एक सेवक के घर भोजन करने को कहा और बिना जाने ही यह एक दूसरे से मिल गए। लौटती बार वे आँसवाड़ा में गोपालदास के यहाँ ठहरे और आभार प्रकट किया। इसके अतिरिक्त आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता ३३ में भी आया है। इसमें लिखा है कि यह किस प्रकार सेवक हुये। वा० ३५ के अनुसार आपके चार पुत्र थे। भावप्रकाश से इन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

पुरुषोत्तम जोशी सांचोरा ब्राह्मण—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ३५ में है। बनारस जाते समय आप पद्मरावल के लड़कों से मिले। उनमें से कृष्ण भट्ट आपके साथ

चल दिया और उस पर महाप्रभु की कृपा होने से आपका अभिमान दूर हो गया। भाव-प्रकाश के अनुसार ये दोनों स्त्री-पुरुष गुजरात में अलग-अलग सांचौरा के घर जन्मे थे। एक समय श्री आचार्यजी गुजरात पधारे, तब इन दोनों ने नाम पाया।

फूलाबाई—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्ता ३८ नरहरि जोशी की वार्त्ता में आया है। मूल वार्त्तानुसार आप अलियान गाँव के महीधर की बहिन थीं। भावप्रकाश के वृत्त में इससे अधिक नहीं दिया है।

दामोरदास की माता (बीरबाई)—आपका वर्णन चौ० वै० वार्ता ६८ में है। आपके ठाकुर कपूररायजी थे। श्री ठाकुरजी आपसे सानुभाव जताते थे। भावप्रकाश में आपके बारे में यह लिखा है कि आपने काशी में एक कायस्थ के घर जन्म लिया था। शेरगढ़ में आपके एक पुत्र दामोदरदास हुआ। एक बार आप काशी से शेरगढ़ जा रही थीं कि रास्ते में (एक छोटे से गाँव में) कुछ चोरों ने उनका सारा धन चुरा लिया। अतः वह विलाप करने लगीं। तब ही श्री आचार्यजी पृथ्वी-परिक्रमा करते हुए वहाँ पधारे और इनका धन दिलवाया। शेरगढ़ में बीरबाई को आचार्यजी ने नाम सुनाया और ब्रह्म-सम्बन्ध भी करवाया और पूरे परिवार को केवल नाम सुनाया। आचार्यजी ने आपके माथे श्री कपूररायजी पधराए थे।

बादरायण क्षत्री—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ७८ में है। आप मोरबी (गुजरात) के रहने वाले थे। इनका नाम पहले बादा था। इन्होंने पहले आछे भट्ट से नाम लिया, फिर महाप्रभुजी से। आपका नाम बादरायणदास महाप्रभुजी ने रखा। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

बूला मिश्र—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ५३ में है। मूल वार्ता में लिखा है कि आपने एक क्षत्री की स्त्री को हरिवंश पुराण के अन्तिम श्लोक सुनाए थे जिससे उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। भावप्रकाश के अनुसार यह लाहौर में सारस्वत ब्राह्मण के घर प्रकट हुए थे और विद्या प्राप्त करने काशी आए थे। पर आप बहुत मूर्ख थे। अपनी मूर्खता से लज्जित होकर इन्होंने सरस्वती की खूब आराधना की फिर सरस्वती की आज्ञानुसार भगवान की पूजा की। भगवान् ने इनको दर्शन दिया और आचार्यजी से नाम पाने को कहा। अतः अडैल आकर आपने आचार्यजी से नाम पाया और फिर अपने घर लाहौर वापिस आ गए।

बिरजो—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ८५ में है। इनका वृत्त गोपालदास की वार्त्ता (३३) में भी आया है। जिसके अनुसार आप मावजी पटेल की स्त्री थीं और पद्मारावल के साथ मावजी पटेल तथा आप अडैल गई थीं। मूल वार्त्तानुसार आप वर्ष में दो बार व्रज में श्रीगोकुल, गुसाँईजी व गोवर्द्धननाथजी के दर्शनार्थ आती थीं। भावप्रकाश के अनुसार आप उज्जैन में पैदा हुईं थीं और मावजी पटेल के साथ आपका विवाह हुआ था।

भगवानदास सारस्वत ब्राह्मणः—आपकी वार्त्ता चौ० वै० वार्ता ५९ है। आपको महाप्रभु ने अपनी पादुका दी थीं तथा आप उनका बहुत सम्मान करते थे। भावप्रकाश के अनुसार आप हाजीपुर में एक सारस्वत ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुए। आप पटना से आगे धन कमाने चले। मार्ग में श्री आचार्यजी के दर्शन हुए जो काशी से पुरुषोत्तम क्षेत्र जा

रहे थे। उनसे आपने नाम पाया और फिर अपने घर लौट आए। महाप्रभु ने आपको अपनी पादुका की सेवा दी।

भगवानदास भीतरिया—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ६० में है। इसमें लिखा है कि एक बार बाल-भोग की सामग्री कम होने पर आपको सेवा से निकाल दिया गया था। तब वह गोविन्द कुण्ड पर अच्युतदास के यहाँ गए और अच्युतदास के कहने पर गुसांईजी ने आपको शरण में ले लिया। भावप्रकाश में लिखा है कि आपने गुजरात में राजनगर के पास एक गाँव में एक सांचौरा के घर जन्म लिया था।

मथुरादास—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता ४ (पद्मनाभदास की वार्त्ता) में आया है। पद्मनाभदास ने अँगूठे के चरणोदक से एक क्षत्राणी को पुत्र होने का आशीर्वाद दिया और उसके पुत्र हुआ जिसका नाम मथुरादास रखा गया। भावप्रकाश में आपके बारे में कुछ नहीं मिलता है।

महीधर—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता ३८ (नरहरि जोशी की वार्त्ता) में आया है। जिसके अनुसार आप अलियान गाँव के थे। फूलावाई आपकी बहिन थी। भावप्रकाश में आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

माधोभट्ट (काश्मीरी)—आपकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता की ३२वीं वार्त्ता है। मूल वार्त्तानुसार आप काश्मीर में एक ब्राह्मण के घर पैदा हुए थे। आप केशवभट्ट के नौकर थे, उन्होंने फिर आपको महाप्रभु को दे दिया था। आपने एक गृहस्थ का मृत बालक जिला दिया था। आप महाप्रभु की सुबोधिनी के लेखक बताए गए हैं। एक दिन पिछली रात्रि को ये लघुवाधा को उठे तब चोरों ने तीर मारा जिससे आपकी मृत्यु हुई। इस वार्त्ता का मुख्य उपदेश सावधानी रखने का है क्योंकि भूल से शैय्या पर सुई गिर जाने से माधोदास की तीर से मृत्यु का यही उपदेश है। भावप्रकाश से आपके जन्म, मृत्यु आदि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

मावजी पटेल—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ८५ में है। आपका वृत्त गोपालदास की वार्त्ता (३३) में भी आया है। आपकी स्त्री का नाम बिरजो है। आप अपनी स्त्री सहित पद्मरावल के साथ अडैल गये थे। अनसखड़ी प्रसाद बाँटने के मनोरथ को पूरा करने के लिए आपने दो लाख रुपया दिया था। भावप्रकाश के अनुसार आपने उज्जैन में जन्म लिया और आपके पास द्रव्य बहुत था।

मानिकचन्द पांडे—इनका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता की संख्या ८० में है। यह सद्दू पांडे के भाई थे। यह सद्दू पांडे, उनकी बेटी नरो के साथ ही सेवक हुए थे। भावप्रकाश में भी इनके बारे में कुछ विशेष नहीं है।

माधोदास—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता सं० १३ व १४ में है। वा० सं० १६ में माधोदास को गदाधरदासजी ने हरि-भक्त होने का आशीर्वाद दिया। आप वेणीदास के छोटे भाई थे। आपने एक वेश्या घर में रखली थी, परन्तु बाद में आपकी बुद्धि निर्मल हो गई थी। भावप्रकाश में इससे अधिक कुछ नहीं लिखा है।

माधो दुबे—इनके सम्बन्ध में चौ० वै० वार्त्ता की संख्या ४२ में यह दिया है कि यह जिस गाँव में रहते थे उसी गाँव में रामकृष्ण और हरिकृष्ण दो भाई रहते थे। एक कथा कहता था, दूसरा मूर्ख था। मूर्ख को उसकी भावज ने ताना मारकर बाहर कर दिया। बाहर जाने से पूर्व वह इनके व राजा दुबे के पास गया और उन्होंने इसे अष्टाक्षर मंत्र दिया तथा नाम का १०८ बार जप करवाया। इसी से यह संस्कृत बोलने लगा और इतिहास पुराण का इसको ज्ञान हो गया। इसने तब अपने गाँव में कथा कही तथा जो कुछ मिला वह राजा दुबे तथा आपको दिया। उन्होंने उसे महाप्रभु को भेंट कर दिया। भावप्रकाश के अनुसार राजा दुबे और माधो दुबे दोनों भाई थे। इन्होंने एक सांचौरा के घर जन्म लिया था। इनके पिता बहुत बड़े साधू थे। अपने पिता की इच्छा पर ये उनको रनछोड़ के दर्शन कराने ले गए, जहाँ उनकी (पिता की) मृत्यु हो गई। वहीं पर श्री वल्लभाचार्यजी पृथ्वी परिक्रमा करके पधारे थे-सो ये प्रतिदिन कथा सुनने के लिए जाते थे ग्यारहवें दिन (जब इनका सूतक उतर गया) श्री आचार्यजी ने इनको नाम सुनाया और ब्रह्मसम्बन्ध करवाया इनको निरोध सिद्ध हुआ था। नाम पाने के बाद आचार्यजी को बहुत सा द्रव्य भेंट कर यह द्वारिका से अपने गाँव मसुंद में आगए।

यादवदास बनिया—आपका वर्णन चौ० वै० वार्त्ता ४६ में है। आप बाबा बेनु और कृष्णदास के मरने के बाद एक दिन जंगल में लकड़ी जलाकर स्वय भस्म हो गए ताकि किसी को उन्हें जलाने का कष्ट न करना पड़े। भावप्रकाश के अनुसार आप बाबा बेनु की खवासी करते थे। एक बार श्री आचार्यजी काशी से अड़ैल जाते हुए इस गाँव में पधारे। वहाँ आपने बाबा वेणु कृष्णदास और आपको नाम सुनाया और देवी के स्थान पर ठाकुरजी का सेवक किया।

यादवेन्द्रदास—आपके सम्बन्ध में चौ० वै० वार्ता ३० में यह मिलता है:—आप महाप्रभु तथा गुसांई जी दोनों की यात्रा में उनका सामान लेकर चलते थे तथा रसोई का काम करते थे। गुसांईजी की इच्छा जानकर आपने मंदिर की ऐसी नींव अकेले खोद दी जिसे एक महीने तक १०-१५ आदमी भरते रहे। श्रीनाथद्वार का कुँआ आपने अपने हाथ से खोदा तथा उसके खारी पानी को सोरों के जल से मीठा किया था। भावप्रकाश में लिखा है कि आप महावन में एक कुम्हार के घर जन्मे थे। आप नारायनदास ब्रह्मचारी के घर मृत्तिका के पात्र लाते थे और बाद में इन्हीं के यहाँ रहने लगे। जब श्री आचार्यजी महावन पधारे तो नारायनदास के घर उतरे और आपको नाम सुनाया।

राजा दुबे—इनकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता की संख्या ४२ में है। यह माधो दुबे के सगे भाई थे।

बड़े रामदास भीतरिया—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता ४ (पद्मनाभदास कन्नौजिया की वार्त्ता के प्रसंग ६) में आया है। आपने अपने सेव्य ठाकुरजी पद्मनाभदास को दे दिये थे और स्वयं श्रीनाथजी के दरसन को गए। बाद में आप श्रीनाथजी के भीतरिया हो गए। पद्मनाभदास से जब मुगलों ने ठाकुर छीन लिए थे तब आपको यह बात मालूम पड़ गई और आपने सात दिन तक प्रसाद न लिया।

भावप्रकाश में आपके बारे में कोई विशेष बात नहीं है। पद्मनाभदास के सम्बन्ध में इस मुगल के उपद्रव का उल्लेख किया जा चुका है कि कन्नौज के अफगान शासक का दमन बाबर के सेनानी को करना पड़ा था।

रघुनाथदास (पद्मनाभदास के नाती, पार्वती के पुत्र)—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ७ में है। आप काशी में शास्त्र पढ़ने गये और तब वहाँ से गुसांई जी के पास गोकुल गये। कुछ दिन बाद यह कन्नौज में अपने घर आये और अपनी माता पार्वती से अलग रहकर ठाकुरजी की सेवा करने लगे। भावप्रकाश में आपके बारे में कुछ विशेष बात नहीं है।

रजो क्षत्राणी—आपकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता सं० ८ में है। आप प्रति-दिन महाप्रभु के लिये पकवान बनाकर लाती थीं और आचार्यजी उसे खाते थे। आप महाप्रभु को भगवान् मानती थीं और उनकी लीला सम्बन्धो सामग्री में से उसने श्री लक्ष्मण भट्ट के श्राद्ध के लिये भी घी नहीं दिया था। रजो कोई अडैल में रहने वाली धनवान क्षत्राणी थी। इसके सम्बन्ध में इससे अधिक भावप्रकाश में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

रूप सनातन—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता संख्या २५ में है। जिसके अनुसार आप श्रीकृष्ण चैतन्य के शिष्य थे और विश्रान्त घाट पर आपकी भेंट श्री महाप्रभुजी से हुई थी। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

राणा व्यास सांचौरा (ब्राह्मण गोधरा के)—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ३९ में आया है। मूल वार्त्तानुसार आप जगन्नाथ जोशी के गुरू थे। जब वे सिद्धपुर में रहते थे तब उन्होंने एक राजपूतनी को सती होने से बचाकर उसे वैष्णव सेवा में लगा दिया और आचार्य महाप्रभु से दीक्षा दिलाई। भावप्रकाश के अनुसार जब आप बारह वर्ष के हुए, तब एक वैरागी से आपका साथ हुआ। आपने आजन्म ब्रह्मचारी होने का व्रत लिया था। एक बार ये अर्द्धरात्रि के समय घर से उठ आये और बद्रिकाश्रम, जगन्नाथराय व द्वारका गए। फिर ८ वर्ष में घर लौट आये। आपको इन्द्रियजीत होने का एवं द्रव्य का बहुत अहंकार था। आपने (वैष्णव होने के पहले ही) जगन्नाथ जोशी को नाम सुनाया। एक बार ये काशी गये और वाद विवाद में दूसरे पंडितों से हार गये अतः लज्जित होकर गंगाजी में डूबना चाहा। फिर वहाँ आचार्यजी पधारे जिनसे आपने नाम पाया और उनसे चतुश्लोकी सीखी। आचार्यजी के उपदेशानुसार आपने अहंकार त्याग दिया।

रुक्मिनी—पुरुषोत्तम की बेटी—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता १० में है। श्री गुसांईजी सूर्य ग्रहण के समय काशी आए थे और मणिकर्णिका घाट पर रुक्मनी से आपकी भेंट हुई थी जो चौबीस वर्ष बाद गंगा स्नान को आई थी। उसे भगवद् सेवा में लगे रहने से समय ही नहीं मिलता था। कार्तिक स्नान के स्थान पर आप वैष्णवों की सेवा करती रही। भावप्रकाश में इससे अधिक कुछ विशेष नहीं है।

रामदास सारस्वत राजनगर वाले—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ४० में है। आपको नटवर गोपाल की व महाप्रभु की पादुकाओं की सेवा मिली थी। आपने वैरागी होने के कारण अपनी स्त्री छोड़ दी थी, फिर रनछोरजी की आज्ञा से ग्रहण करली थी, तथा स्वयं उसे नाम दिया पीछे महाप्रभु जब राजनगर गए तब नाम दिलाया।

रामदास भीतरिया—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता ४६ में है। जब बाबा वेनु ने श्रीनाथजी के आगे कीर्तन किया तो श्रीनाथजी के कंठ से फूल की माला गिरी। तब रामदास ने एक बीड़ा प्रसादी और माला ली तथा बाबा वेनु को भी दी। भावप्रकाश के अनुसार आपने बाबा वेनु को बीड़ा देकर यह बताया कि उन पर प्रभु प्रसन्न हैं। और कोई खास बात नहीं है।

रूपचंद नंदा आगरा—आपका प्रसंग चौ० वै० वार्त्ता ४५ (वासुदेवदास छकड़ा की वार्त्ता) में आया है। आप गुसांईजी के सेवक थे और आगरे में छारछू दरवाजे में रहते थे। इनसे गुसांईजी ने पत्र भेजकर वासुदेवदास छकड़ा द्वारा बसंत पंचमी की सामग्री मंगाई थी। आपके भाई का नाम गोपालदास था। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

रामदास चौहान—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता में है। मूल वार्त्तानुसार आप गोवर्द्धन की कंदरा में रहते थे और श्री महाप्रभुजी के प्रथम श्रीनाथजी द्वारा पधारने पर कंदरा से निकले थे। भावप्रकाश के अनुसार आप बुन्देलखन्ड में एक राजपूत के घर उत्पन्न हुए। आपके पिता राजा के नौकर थे पर आप राजा से मिलने नहीं गये। इस पर राजा ने आपको अनेक दुःख दिए और जेल में डाल दिया। जेल में डालने के तीसरे दिन अर्द्धरात्रि के समय दूसरे राजा ने यह ग्राम लूट लिया और सब लोग बंदीखाने से छूट गये। आप इस डर से कि कहीं आपके पिता इन्हें फिर न ले जाय बुन्देलखंड से मथुरा और फिर ब्रज आकर गोवर्द्धन की कंदरा 'अपछरा कुन्ड' पर रहे।

पं० रामानन्द सारस्वत ब्राह्मण—आपकी वार्त्ता चौ० वै० वार्त्ता की वार्त्ता ५६ है। एक बार महाप्रभुजी थानेश्वर में आपके घर ठहरे थे। आपने सवेरे वैष्णवों के लिए कुछ अपशब्द अपनी स्त्री से कहे जिस पर आपको महाप्रभुजी ने त्याग दिया और आप बड़े दुखी रहे। पर श्रीनाथजी ने आपका त्याग नहीं किया। फिर महाप्रभुजी ने आपको एक लक्ष जन्मवाद स्वीकार करने को कहा। भावप्रकाश के अनुसार आपने थानेश्वर में एक सारस्वत ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। आपको हर एक पंडित कहता था क्योंकि आप कथा भागवत की कहते थे। एक बार आचार्यजी थानेश्वर पधारे और यह श्री आचार्यजी से वाद विवाद में हार गये। सरस्वती द्वारा यह जानने पर कि आचार्यजी भगवान् हैं, आप अपनी स्त्री सहित उनकी शरण में गए और नाम पाया।

सुतार अड़ैल—इसका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ७० में है। इसे महाप्रभु के दर्शन की लालसा रहती थी। यह घर का काम काज छोड़कर दर्शनार्थ जाता था। घर वालों से नाराज होने पर आचार्य महाप्रभु स्वयं इसके घर जाने लगे भावप्रकाश के अनुसार यह एक सुतार के घर अड़ैल में जन्मा था। जब यह २३ वर्ष का हुआ तब आचार्यजी की शरण गया और नाम पाया।

समराई (बहू) सिंहनद—चौ० वै० वार्त्ता ५१ में आपका वृत्त है। इसके यहाँ दामोदरजी की सेवा थी और ठाकुरजी इससे सानुभाव जताते थे। इनको दर्शन देने के लिए महाप्रभुजी प्रति वर्ष थानेश्वर आते थे। भावप्रकाश के अनुसार आप सिंहनद में रहती थीं। वासुदेवदास छकड़ा की वार्त्ता के अनुसार यह विधवा थी। एक बार जब आचार्यजी थानेश्वर पधारे थे तब आपने अपनी सास गोरजा तथा वासुदेवदास के पिता सहित नाम पाया था।

सद्दू पांडे—इनकी वार्त्ता चौ० वै० की वार्त्ता संख्या ८० में है। इस वार्त्ता में लिखा है कि किस प्रकार दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, रामदास माधोदास के साथ महाप्रभु भारखंड में थे। जहाँ श्रीनाथजी ने महाप्रभु से कहा कि तुम मेरी सेवा प्रचलित करो और वे वहाँ से परिक्रमा को भारखंड में रखकर व्रज में आये और सद्दू पांडे ने भोजन करने के लिए कहा। नरो आपकी बेटी थी। सद्दू पांडे का घर आन्योर में श्रीनाथजी के पुराने मंदिर के नीचे है। भावप्रकाश के अनुसार ये श्री गिरिराज के नीचे आन्योर में रहते थे।

संतदास चौपड़ा—आपका वर्णन चौ० वै० वार्त्ता ८३ में है। यह व्यापारी थे और व्यापार में हानि होने पर आगरे के सेव के बाजार में कौड़ी बेचते थे। आपने आगरे में ही अपना शरीर छोड़ा था। भावप्रकाश के अनुसार आप आगरे में एक चोपड़ा क्षत्री के घर उत्पन्न हुए जो बड़ा धनी था। अपने पिता के मरने पर एक दिन यह कन्हैयालाल क्षत्री के घर श्री आचार्यजी की कथा सुनने गये। कुछ दिनों बाद आचार्यजी आपके घर पधारे और नाम सुनाया।

सुन्दरदास—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ८४ में है। आप जगन्नाथपुरी से दस कोस पर रहते थे। आपका प्रेम कृष्ण चैतन्य के शिष्य कृष्णदास से था। जो बाद में वैष्णव हो गया। भावप्रकाश के अनुसार आप पीपरी गाँव में गंगापुत्र ब्राह्मण के घर पैदा हुए थे। एक बार श्री आचार्यजी श्री जगन्नाथजी को पधारे, तब वह पीपरी गाँव के पास तालाब पर उतरे। सुन्दरदास ने जब इनके स्वरूप को देखा तो वह मोहित हो गये और अपनी स्त्री सहित नाम पाया।

हरिवंश पाठक बनारस वाले—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता १५ में है। आपका पटरा के हाकिम से मेल था। एक बार डोल उत्सव पर काशी तीन दिन में पहुँचने के लिये आपने हाकिम से कहा। काशी से लौट आने पर हाकिम ने जब पूँछा तो आपने डोल उत्सव की बात न कहकर दूसरा काम बता दिया। इस प्रकार उन्होंने अपना धर्म गोप्य रखा। भावप्रकाश के अनुसार आप पहले गणेशजी के उपासक थे। एक बार जब श्री आचार्यजी ने काशी में 'पत्रावलंबन' लिखा तब आप दर्शन को गये और आपने अपने पूरे परिवार सहित नाम पाया। इस प्रकार आपके शरण आने की तिथि सम्वत् १५६० के आसपास ठहरती है।

वेणीदास—आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता १४ में पाया है। वार्त्ता १३ में भी आपका प्रसंग आया है। आप माधोदास के बड़े भाई थे। भावप्रकाश में इससे अधिक कुछ नहीं है।

वेनी कोठारी—वार्त्ता संख्या ८० में इसका उल्लेख है। यह नरहरि सन्यासी के प्रसंग से महाप्रभुजी की शरण आये थे। यह नरहरि के ही सेवक थे और इनको महाप्रभुजी के प्रथम दर्शन वृन्दावन में हुये थे। और यह उनके साथ द्वारका गये थे।

विशम्भरदास—यह आनन्ददास के छोटे भाई थे। जाति के क्षत्री थे और प्रयाग के रहने वाले थे इनका उल्लेख वार्त्ता ४८ में है। यह छोटे थे तभी चित्रकूट भाग गये थे जहाँ से फिर इनको इनके पिता लौटा लाए थे और इन्हें श्री महाप्रभुजी ने अपना सेवक बनाया। इनको श्री नवनीतप्रियजी के वस्त्र दिये गये थे और 'सन्यास निर्णय' ग्रन्थ सुनाया गया था। यह अड़ैल में शरण आये थे।

वेणुदास—आपकी वार्त्ता चौ० वै० की वार्त्ता ४६ है। कृष्णदासजी और आप श्री केसोरायजी के आगे कीर्तन करते थे। आपने श्रीनाथजी द्वार (गोवर्धन) में श्रीनाथजी का

दर्शन करके शरीर छोड़ दिया और इनका संस्कार यादवदास ने किया। भावप्रकाश के अनुसार आप पूर्व में काशी प्रयाग के बीच में एक गाँव था वहाँ रहते थे। आप एक सारस्वत ब्राह्मण के घर जन्मे थे। आपकी कृष्णदास से मित्रता थी और पहले आप देवी के बड़े भक्त थे। स्वप्न में आदेश मिलने पर आपने एक मन्दिर बनवाया जिसमें कल्याणराय ठाकुर की स्थापना (देवीजी की स्थापना के धोखे में) की। एक बार श्री आचार्यजी काशी से अड़ैल जाते हुए इस गाँव में पधारे और उनको नाम सुनाया।

वासुदेव छकड़ा सारस्वत--आपका वृत्त चौ० वै० वार्त्ता ४५ में है। आप बहुत तेज चलने वाले और बहुत अधिक खाने वाले थे। इन्होंने अपने बल से मथुरा के काजी के हथियार बंद आदमियों से गुसांईजी की रक्षा की। गुसांईजी आपका बड़ा ध्यान रखते थे। भावप्रकाश के अनुसार आप श्री नन्दरायजी के मुख्य खवास थे। ये सिंहनद में एक सारस्वत ब्राह्मण के घर पैदा हुए थे। आपके मन में बहुत गर्व था क्योंकि आपने पाँचसौ प्यादे सहित हाकिम को हराया था। आपने एक बोझ से भरा छकड़ा निकाल दिया था जिससे आपका नाम 'छकड़ा' पड़ गया था। एक बार श्री आचार्यजी थानेश्वर पधारे थे। उसी दिन वासुदेवदोस सिंहनद पधारे थे। कृष्णदास का वासुदेवदास से झगड़ा हो गया। अतः कृष्णदास ने वासुदेवदास के दोनों हाथ इस प्रकार पकड़े कि आपसे किसी भी प्रकार न छूटे। तब इनको गर्व नहीं रहा और आप श्री आचार्यजी की शरण आए।

---

(४) दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता से प्राप्त व्यक्ति

अजबकुंवरि व आसकरण (कवि)

आनन्ददास सांचौरा

आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता २०६ में है। गुजरात के एक संग के साथ आप गोकुल आये थे और गुसांईजी से दीक्षा ली थी।

भावप्रकाश में लिखा है कि आप गुजरात में एक सांचौरा ब्राह्मण के यहाँ जन्मे थे। आपके पिता पड़ौस के एक वैष्णव गृहस्थ के घर नौकर थे जिनके मरने पर आप उस वैष्णव के यहाँ रहे।

अचल बाई—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता संख्या १५१ में है। आप सीताबाई की वृद्ध माता थीं। एक बार गुसांईजी ने द्वारकाजी को रनछोर के दर्शनार्थ जाते हुए बड़नगर में डेरा डाला और यहीं आपने नाम पाया। आप नागर ब्राह्मणी थीं। आप पर अष्टाक्षर मंत्र का जप करना नहीं आया था। ठाकुरजी आपको सानुभाव जताते थे। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

उत्तमदास क्षत्री (गुजरात के)—आपका वृत्त २५२ वै० वार्ता २०१ में है। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। मूल वार्त्तानुसार इन्होंने गुसांईजी के दर्शन उनके रनछोरजी जाते समय किये थे और तभी दीक्षा ली थी। कुछ समय बाद परकाला लेकर गुसांईजी के दर्शनार्थ ये गोवर्धन आए और ब्रज-यात्रा को गए।

उद्धव त्रवाडी, (गुजरात के)—आपके सम्बन्ध में २५२ वै० वार्ता १५० में उल्लेख है। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। मूल वार्त्तानुसार जब गुसांईजी गुजरात आए, तब आपने दीक्षा ली। आपके ऊपर गुसांईजी बड़े प्रसन्न रहते थे। ये गुसांईजी के साथ द्वारका, गोकुल आदि कई स्थानों पर गये थे।

उजागर चौबे—आपका वृत्त १९० वीं वार्ता में आया है। गुसांईजी ब्रज-यात्रा को पीताम्बरदास के साथ चले। रात्रि को मथुरा में रहे और बाद में उजागर चौबे को बुलाकर उससे धर्म स्थापन का वचन लिया था। भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है।

किसोरी बाई—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता २०९ में है। चेचक निकलने के कारण इनका शरीर जकड़ गया था। आप हमेशा यमुनाष्टक का पाठ किया करती थीं। एक बार गुसांईजी आपके गाँव पधारे। उनके दर्शन से आपकी देह ठीक हो गई। आपको श्रीनाथजी का स्पर्श करने का अधिकार था। आपके एक बहिन थी। भावप्रकाश के अनुसार आप गुजरात में एक ब्राह्मण के घर पैदा हुई। आप दो बहिनें थीं जिनमें आप छोटी थीं। आपके पिता गुसांईजी के सेवक थे। अतः इन दोनों को भी उनकी सेविका कराया। आपका पति विवाह होते ही मर गया था।

कान्हबाई—आपका विवरण बा० वै० वार्ता १६६ में है। एक बार जब गुसांईजी महावन पधारे, तब कान्हबाई को उनके दर्शन हुए और उनसे दीक्षा ली। ये ठाकुरजी को बालक करके मानती थीं। श्री कृष्णरायजी इनसे प्रकट बातें करते थे। भावप्रकाश के अनुसार आप गोविन्द स्वामी की बहिन थीं। आपने आँतरी गाँव में एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। इनके कोई संतान न थी। पति के मरने पर ये ब्रज में आ गई और महावन में रहने लगीं।

१६६ काकाजी महाराज—श्री विट्ठलनाथ जी।

कल्याण भट्ट (खंभालिया के)—आपका वृत्त० बा० वै० वार्ता १०८ में है। जब गुसांईजी रनछोरजी का दर्शन करके गोकुल से लौटते समय खंभाइच में ठहरे, तब इन्होंने उनसे दीक्षा ली। बाद में गोकुल आए और आन्यौर में रहने लगे। आपकी बेटी का नाम देवका था। प्रसंग २ से प्रकट होता है कि उस समय दूध चार-पाँच पैसे सेर था, भावप्रकाश के अनुसार ये खंभालिया में एक गिरनारा ब्राह्मण के घर पैदा हुये थे।

खंडन ब्राह्मण—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता ८६ में है। यह ब्राह्मण जाति का था और वैष्णवों से बहुत द्वेष रखता था। एक बार कीर्तन से उठा दिए जाने पर इसने वैष्णवों को कीर्तन नहीं करने दिया। इस पर रात्रि में चार अनजान आदमियों ने इसे मारा। तब यह वैष्णवों की शरण गया। इसने गोकुल जाकर गुसांईजी से दीक्षा ली और गोवर्द्धननाथ के दर्शन व ब्रज-यात्रा करके अपने घर सिहनद आ गया। भावप्रकाश से यह विदित होता है कि यह सिहनद में एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर पैदा हुआ था। इसे अपनी पंडिताई पर बड़ा अभिमान था। हर एक से यह वाद-विवाद करता था। अतः इसे लोग 'खंडन ब्राह्मण' कहते थे।

गोपालदास बड़नगर के—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता १६४ में है। इन्होंने बड़नगर में गुसांईजी के दर्शन किए। कुछ दिनों के बाद आप गुजरातियों के साथ गोकुल आए और वहाँ इन्होंने गुसांईजी से जूठन की पत्तल माँग कर खायी। फिर इन्होंने ब्रज-यात्रा की और बड़नगर लौट गये। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

गोवर्द्धनदास, मन्नालाल—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता १६८ में है। आप मन्नालाल के भाई थे। इन्होंने गोकुल आकर गुसांईजी के दर्शन किये और इनसे दीक्षा ली थी। भावप्रकाश के अनुसार आप गुजरात में एक ब्राह्मण के घर जन्मे थे, माता-पिता के मरने पर दोनों भाई यात्रा को निकल पड़े थे।

गुलाबदास क्षत्री—आपकी वार्त्ता बा० वै० वार्त्ता २११ है। गुसांईजी मेरा उद्धार कैसे करते हैं? यह जानने के लिए आप दुराचारी हो गये थे। तब गुसांईजी ने उनके पास एक वैष्णव भेजा। गुसांईजी मेरी अब भी इतनी सुधि करते हैं, यह लिखता हुआ वह मर गया। भावप्रकाशानुसार यह पूर्व में एक क्षत्री के घर पैदा हुए थे। अपने माता-पिता के मरने पर इन्होंने अडैल आकर गुसांईजी से दीक्षा ली और फिर अपने गाँव जाकर रहने लगे।

गोपीनाथदास ग्वाल, गीयाजाट, गोविंदी—इनका प्रसंग १६० वार्त्ता में है। ये गुसांईजी के सेवक थे। गोपीनाथदास वैष्णवों की रसोई करते थे। गीयाजाट टोंक बहुत

करता था। मार्ग में सबको हँसाता था। गोविन्दी अच्छा गाती थी। भावप्रकाश में इनके विषय में कुछ नहीं है।

जसरथ, जीवनदास नबारा—आपका वृत्त भी १९० में है। गुसांईजी के सेवक थे। जसरथ गोकुल में कीर्तनया था।

झांझा मारूनी—आपका वृत्त १९० में है। भगवानदास गोखा आपका पुत्र था। आप तैलंग ब्राह्मण थे। गुसांईजी के सेवक थे।

कान्ह, केसौदास विसलनगरा, खवो तिवारी—इनका प्रसंग बा० वै० वार्त्ता १९० (पीताम्बरदास की वार्त्ता) में आप गुसांईजी के सेवक थे और वैष्णवों की रसोई करते थे। वार्त्ता और भावप्रकाश में आपके बारे में कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है।

कृष्णदास मौली—आपका प्रसंग भी बा० वै० वार्त्ता १९० में है। आप गुसांईजी के सेवक थे तथा गोकुल के कीर्तनया थे।

केशव भट्ट—आपका प्रसंग भी १९० वार्त्ता में है। आप भी गुसांईजी के सेवक थे और तैलंग ब्राह्मण थे।

चांपा भाई—आपका विवरण बा० वै० वार्त्ता २०८ में है। गुजरात में एक बार गुसाँईजी गए तब ये उनकी शरण गए। जब गुसांईजी फतेपुर सीकरी गए, तब ये भी आपके साथ थे। भावप्रकाश के अनुसार आप गुजरात में एक धनी क्षत्री के घर जन्मे थे। जन्म होते ही इनके पिता का निधन हो गया। तब इनके मामा ने इनको पाला। इनका ब्याह नहीं हुआ था। ये वैराग्य दशा में रहते थे।

वृन्दावनदास छबीलदास आगरे के—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता की १५८वीं वार्त्ता में है। ये सेवक नहीं थे पर रोज संतदासजी के घर भगवद्वार्त्ता सुनने जाते थे। जिसने नाम न पाया हो उसके हाथ का जल न लेने का प्रसंग सुनकर ये गोकुल गए और गुसांईजी से नाम पाया। आपस में इनमें बड़ा स्नेह था। हृषिकेश इनके काका थे। भावप्रकाश में आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

जनार्दन क्षत्री आगरे के—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता ११६ में है। मूल वार्त्तानुसार आगरे में रहते थे और गोकुल में आपको गुसांईजी के दर्शन हुए। कुछ दिनों गुसाई जी ने इन्हें अपनी खवासी में रक्खा परन्तु फिर आगरे आगए। स्त्री के मरने के बाद ये पुनः गोकुल आए। माधवदास कपूर से आपकी मित्रता थी। भावप्रकाश के अनुसार आपने आगरे में एक चोपड़ा क्षत्री के घर जन्म लिया था। जब ये पाँच वर्ष के थे तब से ही वैष्णवों के घर जाने लगे थे।

ताराचन्द भाई गुजरात के—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता ११७ में है। आपने गोकुल में गुसांईजी के दर्शन किए और दीक्षा ली थी। कुछ दिनों आपको गुसांईजी ने अपनी खवासी में रखा था। भावप्रकाश के अनुसार आप गुजरात में एक वैश्य के घर उत्पन्न हुए थे। जब ये दस दिन के थे तब इनके माता-पिता मर गए थे और इनको इनके काका

ने, जो वैष्णव थे, पाला। एक बार ये गोकुल में गुसांईजी के दर्शनार्थ गए थे और सेवक हुए थे।

दामोदरदास—आपके बारे में २५२ वै० वार्त्ता ११५ में मिलता है कि आप वेनीदास के छोटे भाई थे। भाइला कोठरी के घर आपको गुसांईजी के दर्शन हुए थे। बेनीदास के दो तथा आपके एक लड़का था। वार्त्ता २०६ में भी आपका प्रसंग है। भावप्रकाशानुसार आप सूरत में एक धनी वैश्य के यहाँ जन्मे थे। माता-पिता के मरने के बाद कपड़े की दूकान करने लगे थे।

देवा भाई—आपका वृत्त २५२ वै० वार्त्ता १०१ में है। आप जो कुछ कमाते थे वह गुसांईजी को दे देते थे। ये निष्ठावान् भक्त थे। गुजरात पधारते समय गुसांईजी ने आपके गाँव में डेरा डाला। तब आपने इनसे दीक्षा ली थी। भावप्रकाश में लिखा है कि आप गुजरात में एक कुणवी के घर जन्मे थे। आपके चार पुत्र थे।

द्वारकादास—आपका वृत्त २५२ वै० वार्त्ता २१५ में है। वार्त्ता बहुत छोटी है कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है। श्रीनाथजी के दर्शन आप बड़े चाव से करते थे इतनी ही विशेष बात इसमें लिखी है। भावप्रकाश के अनुसार आप व्रज में 'जखिन' नामक गाँव में गोरवा क्षत्री के घर जन्मे थे। एक बार गाएँ चराते हुए गोपालपुर आए जहाँ गुसांईजी के दर्शन किए और नाम पाया।

दामोदर झा—आपके सम्बन्ध में २५२ वै० वार्त्ता १२७ में लिखा है कि आप बड़े भारी पंडित थे। गुसांईजी ने जब अपने समाधान से आपको निरुत्तर कर दिया, तब आप उनके सेवक हो गए। आप भावप्रकाश के अनुसार गुजरात के बड़नगर गाँव में एक नागर ब्राह्मण के घर प्रकट हुए थे। आपने विद्या बहुत पढ़ी थी।

तुलसीदास सारस्वत (कवि)

देवजी भाई—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता १४१ में है। यह देवजी भाई नित्य नेम से भगवद् मंडली में अवश्य जाते थे चाहे कुछ भी क्यों न हो। एक बार ज्वर के कारण न जा सके। परन्तु वैष्णवों से आशीर्वाद मांगने पर गुसांईजी की कृपा से ज्वर उतर गया। भावप्रकाश के अनुसार आप पोरबंदर में एक धनी वैश्य के घर उत्पन्न हुए थे। माता-पिता के मरने पर आप द्वारकाजी रनछोरजी के दर्शनार्थ आए वहीं गुसांईजी से आप ने नाम पाया।

धर्मदास—आपका विवरण २५२ वै० वार्त्ता १७४ में है। प्रथम आप अन्धे भिखारी थे। एक बार गुसांईजी गोकुल से श्रीनाथजी द्वार जा रहे थे। मार्ग में आप मिले। तब उन्होंने इसे नेत्र प्रदान किए। इसने जेठ सुदी १०वीं के दिन नाम पाया और द्वादशी को ब्रह्मसम्बन्ध हुआ। गुसांईजी ने इस ब्राह्मण का पूर्व 'कृष्ण जन्म' का सम्बन्ध अपने पुत्र बालकृष्ण को बताया और कहा कि जब इसका नाम 'मुरारीदास' होगा। भावप्रकाश के अनुसार अंडीग में एक ब्राह्मण के यहाँ जन्मे थे। चेचक निकलने से आप अन्धे हो गए। जब यह पन्द्रह-सोलह साल के थे, इनके माता-पिता का देहान्त हो गया और यह मथुरा-गोवर्द्धन के मार्ग में बैठ कर भीख मांगने लगे थे।

धारबाई लाडबाई—इनकी वार्त्ता २५२ वै० वार्त्ता २२६ है। एक बार गुसांईजी जगन्नाथपुरी यात्रा के समय काशी आए। तब इन धारबाई और लाडबाई ने रथ भेंट करने का आग्रह किया। एक बार ये नौ लाख रुपया भेंट लेकर आयीं, जिसे गुसांईजी ने अस्वीकार कर दिया और गोकुलनाथजी ने भी नहीं लिया। परन्तु अधिकारी ने एक मंदिर की छत में रख दिया। जो म्लेच्छ के उपद्रव के समय टूटी और वह रुपया म्लेच्छ ले गया। भावप्रकाश में दोनों मानिकपुर में एक क्षत्री के घर पैदा हुई थीं। इनका विवाह सिरोहीं के 'रामाना' से हुआ। एक बार ये पुरुषोत्तमपुरी आयीं जहाँ गुसांईजी से दीक्षा ली। यह सुनने पर कि रामाना उन्हें मारना चाहता है, ये काशी चली आयीं। इनका उल्लेख श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में भी है।

नारायणदास पांडे—इसकी वार्त्ता संख्या (२५२ वै० वार्त्ता) १७१ है। एक बार गुसांईजी गोकुल से आन्योर पधारे तब इनके दर्शन किए और नाम पाया। अन्त तक यह श्री गुसांईजी की ही सेवा में गोकुल में ही रहे। भावप्रकाश के अनुसार आप आन्योर में एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर पैदा हुए थे। यह ब्राह्मण सद्दू पांडे के कुटुम्ब का था।

नारायणदास—आपका प्रसंग १६६वीं वार्त्ता में (दो ठगों की वार्त्ता में) आया है। आप की स्त्री का नाम वीरां है। चोरों द्वारा मारी जाने पर आपने उसे चरणोदक छिड़क कर जिला लिया। ये वैष्णव थे। भावप्रकाश में कोई बात नहीं है।

प्रेमजी लुहाणा, (लाहार के)—आपका वृत्त १५७वीं वार्त्ता में है। हालार के एक संग के साथ प्रेमजी गोकुल आए और गुसांईजी से नाम पाया। आपको वस्त्र-सेवा मिली। गुसांईजी आपके सब मनोरथ पूर्ण करते थे, ठाकुरजी आपसे सानुभाव जताने लगे लगे थे। भावप्रकाश में आपके बारे में कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है।

परमानंद सोनी—आपकी वार्त्ता संख्या ६४ में है। यह कथा में विशेष रुचि रखते थे और उसके भाव को समझते थे। गुसांईजी के जेवरों की बनवाई ये नहीं लेते थे। यह काशी के पंडितों की प्रतिभा और ज्ञान से चकित हो गए। भावप्रकाश में कोई विशेष वृत्त नहीं है।

पीताम्बरदास—आपका वृत्त १६० वीं वार्त्ता में है। मूल वार्त्तानुसार आप वैष्णवों के एक संग के साथ गोकुल श्री गुसांईजी के पास आए। नाम सुनाने एवं समर्पण कराने के बाद गुसांईजी ने इन्हें खवास के स्थान पर नियुक्त कर लिया। गुसांईजी के साथ ये ब्रजयात्रा को गए और लौटने पर सदैव गोकुल में ही रहे। भावप्रकाश में इनके बारे में यह उल्लेख है कि ये गुजरात में एक ब्राह्मण के घर जन्मे थे। जब ये बीस वर्ष के थे तब से ही आपका वैष्णवों का साथ हुआ। एक बार एक संग श्रीगोकुल जा रहा था जिसके साथ यह भी आए थे।

वृन्दावनदास—देखिए छबीलादास की वार्त्ता (१५८)।

वेदीदास—देखिए दामोदरदास की वार्त्ता (११५)।

वेनीदास क्षत्री—आपका उल्लेख २५२ वै० वार्त्ता १६१ में है। यह पूरब के एक संग के साथ श्री गोकुल आए और गुसांईजी से दीक्षा ली। गुसांईजी के मुख से इसने

सुबोधिनी की कथा सुनी और पंखा की सेवा करने लगे। यह लौटते समय ऐसी हवेली में ठहरे, जहाँ भूत थे। आपने भूतों को भगा दिया। भावप्रकाश के अनुसार यह पूर्व में एक क्षत्री के घर जन्मे थे। जब चालीस साल के हुये, तब इनके माता व पिता का देहान्त हो गया था।

वीरां—इसका वृत्त २५२ वं० वार्त्ता १६६ में है। यह नारायणदास की स्त्री थीं। वैष्णवों का वेष धारण कर दो ठग इनके घर आये और इसको मार डाला, पर नारायणदास ने आपको चरणोदक छिड़क कर जिला लिया। भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है।

बलाई (स्त्री-पुरुष गुजरात के)—आपका वृत्त २५२ वै० वार्त्ता २१६ में है। यह गुजरात के परगने में रहते थे। एक बार गुसांईजी द्वारकाजी से आ रहे थे, तब रास्ता भूलने के कारण मेवातीन के गाँव की हद में जा निकले। बलाई उन भुमियान के गाँव में कुछ कार्यवश गया हुआ था। उसने वष्णव को रास्ता बताया, उनको अपने घर ले गया तथा उनको बताया कि मैं यहाँ का मुखिया हूँ और यहाँ ठग बहुत रहते हैं। इसे गुसांईजी ने झूठन की पत्तल दी जिससे इसको दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई। इसकी स्त्री ने भी नाम पाया था। भावप्रकाश में कोई विशेष वृत्त नहीं है।

भीष्मदास क्षत्री—आपका वृत्त २५२ वै० वार्ता १७० में है। ये पूर्व के एक संग के साथ गुसांईजी तथा गोवर्द्धननाथजी के दर्शनार्थ गए। ये गोकुल में भी गए और आप गोकुल में ही रहे, जबकि अन्य लौट गए। यह बालमुकंद की सेवा करने लगे। इसने एक बड़ा मंदिर बनवाया। भीष्मदास को रमनरेती पर नित्य रास के दर्शन होते थे जिसे ये किसी से नहीं कहते थे। भावप्रकाश के अनुसार आप पूरब में एक द्रव्य पात्र क्षत्री के घर जन्में थे। जब ये बीस वर्ष के हुए, तब इनका विवाह हुआ। बाप के मरने पर ये अपने पूरे कुटुम्ब सहित यात्रा को चले और पूरब के वैष्णवों के एक संग के साथ हो लिए।

भवानी, भगवानदास गोरवा—इनका वृत्त १६० वीं वार्त्ता में है। ये गुसांईजी के सेवक थे। ये तैलंग ब्राह्मण थे। झांझा मारूनी के पुत्र थे। भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है।

मोहनदास—वार्त्ता संख्या १४० में आपका प्रसंग आया है। मूल वार्तानुसार आप हरिदास के मित्र थे। आपको अपने घर रखने के लिए हरिदास ने अपने पुत्र को मार डाला था। बाद में आप अपनी स्त्री सहित हरिदास के ही घर आकर रहे और अन्यत्र कहीं नहीं गये। भावप्रकाश के अनुसार आप अपने मित्र हरिदास के गाँव से बीस कोस पर रहते थे। एक बार गुसांईजी ने द्वारकाजी जाते समय मोहनदास के गाँव में डेरा डाला मोहनदास ने उनके दर्शन किये और दीक्षा ली तथा अपनी स्त्री को भी नाम सुनवाया और दुबारा जब गुसांईजी आये, तब हरिदास को भी नाम सुनवाया।

मुरारीदास, (खंभाइच के)—आपकी वार्त्ता संख्या १३० है। आप बड़े पंडित थे। इनकी विद्वत्ता की सराहना गुसांईजी ने की थी और यह उनके कथन से प्रभावित हुये। एक बार जब गुजरात खंभाइच को साथ अडैल आया, ये भी उस संग में थे। तब इन्होंने अपने बेटे व स्त्री सहित नाम पाया। आपने धर्म की रक्षा में घर-बार सब छोड़ दिया था। मुरारीदास के बेटे ने बीजापुर में मायावाद का खंडन किया था। भावप्रकाश के अनुसार आप

खंभाइच में एक शैव के घर जन्मे थे। यह शास्त्रों के पंडित थे और इनकी बचपन से ही कर्म-काण्ड में बहुत रुचि थी। आपके दो पुत्र थे।

मानसिंह राजा—आपका वृत्त १७७ वीं वार्त्ता में है। आप दक्षिण के रहने वाले थे और आपके १०८ रानियाँ थीं। जगन्नाथरायजी के दर्शनों के समय इसने गुसांईजी को देखा और बाद में उनसे प्रभावित होकर दीक्षा ली। परन्तु इसकी रानियाँ इसके कहने पर भी सेवक नहीं हुईं। बाद में इसने एक तेली की लड़की से विवाह किया जो गुसांईजी के दुबारा जगन्नाथजी जाने पर उनकी सेविका हो गई। यह ग्वालियर के राजा मानसिंह हैं जिनका मान मन्दिर और गूजरी महल प्रसिद्ध है। भावप्रकाश में कोई विशेष वृत्त नहीं हैं।

मधुसूदन क्षत्री—आपका वृत्त २५२ वै० वार्त्ता १२८ में है। एक बार गुसांईजी गोकुल से लाहौर जाते समय भक्तों के कहने एवं मधुसूदन के कारण पश्चिम में गये और मधुसूदन को नाम सुनाया। मधुसूदन ने आपको एक घोड़ा भेंट दिया और रोजाना कथा सुनता था। मधुसूदन गुसांईजी के साथ गोकुल आये और कुछ दिनों बाद अपने देश लौट गए। भावप्रकाश के अनुसार पश्चिम में एक क्षत्री के घर जन्म लिया था। उनके पिता राज्य के नौकर थे और घोड़ा खरीदने का काम करते थे। इनको भी घोड़ा पहिचानना बहुत अच्छी तरह से आ गया था और पिता के मरने पर ये राज्य के नौकर हो गये। एक बार घोड़ा खरीदने आप आगरे आये जहाँ गुसांईजी के दर्शन किये। गुसांईजी द्वारा सुन्दर घोड़ा माँगने पर आपने उनको अपने यहाँ आने को कहा और नाम सुनाने की बिनती की।

मलहा भण्डारी, मुरारीदास ग्वाल, मथुरनी—इनका प्रसंग १९० वीं वार्त्ता में हैं। ये गुसांईजी के सेवक थे। मलहा भन्डारी और मुरारीदास वैष्णवों की रसोई करते थे और मथुरनी गान बहुत अच्छा करती थीं।

मुकुन्ददास सेखड़—आपका वार्त्ता १७६ वीं है। इन्होंने गुसांईजी को गोकुल में ठकुरानी घाट पर पूर्ण पुरुषोत्तम के रूप में देखा तथा उनसे दीक्षा ली। यह उनका खवास था वे इससे 'मार्ग की गोप्य वार्त्ता' करते थे। भावप्रकाश के अनुसार यह पूर्व में एक क्षत्री के घर उत्पन्न हुआ था। जब यह बारह वर्ष का हुए तब मां बाप के मरने पर यात्रा को निकल पड़े और प्रथम श्रीगोकुल आये वहीं सेवक हुए था।

मन्नालाल—देखिये–गोवर्द्धनदास की वार्त्ता (१९८) इनके सम्बन्ध में गोवर्द्धनदास के साथ लिखा जा चुका है।

माधोदास कपूर—आपका प्रसंग ११६ वीं वार्त्ता में है। मूल वार्त्तानुसार आप जनार्दनदास के मित्र थे और गुसांईजी के सेवक थे। भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है।

मीराबाई—आपका प्रसंग ९८ वीं वार्त्ता में है। अजबकुंवर बाई के गांव सिंहाड में रहती थीं। यद्यपि इनके दूसरी सिंहाड थी पर ये अजबकुंवर के साथ एक ही गाँव घर में रहती थीं। एक बार गुसांईजी सिंहाड में पधारे। इन दोनों ने उनके दर्शन किये और भेंट दी मगर गुसांईजी ने भेंट न ली। तब अजबकुंवरि ने मीराबाई से सेवक होने को कहा जिस पर मीराबाई ने मना किया। पर बाद में अजबकुंवर तो सेविका हो गई। इनका वृत्त इतिहास प्रसिद्ध पुरुषों के वृत्त में दिया गया है।

माधुरीदास माली—आपका वृत्त १७३ वीं वार्ता में है। ये गोपालपुर के रहने वाले थे और श्रीनाथजी को फूलों का हार देते थे। भावप्रकाश में लिखा है कि आप गोपालपुर में एक माली के घर उत्पन्न हुये थे। पिता ने गुसांईजी के सेवक होने के कारण इन्हें भी गुसांईजी का सेवक कराया। पिता के मरने के बाद ये बगीचे के सब फल फूल श्री गोवर्द्धननाथजी के यहाँ दे देते थे और स्वयं लकड़ी बेचकर निर्वाह करते थे। गोवर्द्धननाथजी नित्य बगीची में जाकर इसे दर्शन देते थे।

मदनगोपालदास कायस्थ—आपकी वार्त्ता संख्या २३१ है। मूल वार्त्तानुसार आप गुसांईजी के सेवक थे। गुसांईजी आपसे गोप्य वार्त्ता भी करते थे और यह सुबोधिनी भी सुनते थे। उनकी स्त्री द्वारा अपने लड़के के अपने पति से गोप्य ज्वर का डोरा बांध लेने के कारण इनके ठाकुर श्री मदनगोपालदासजी रुष्ट हो गये। अतः इन्होंने गुसांईजी की आज्ञानुसार अपनी स्त्री का त्याग कर दिया और दूसरी स्त्री से विवाह किया। भावप्रकाश में आपके बारे में केवल यही लिखा है कि आप महावन में एक कायस्थ के यहाँ जन्मे थे।

रूप मंजरी—इसका वृत्त २३२ वीं वार्ता में है। यह पृथ्वीपति की लौंडी थी। इसके पास एक अनोखा गुटका था जिसकी सहायता से यह गोवर्द्धननाथजी के दर्शन करती थी। इसे नंददासजी से बहुत स्नेह था। उनसे यह भागवत सुनती थी, गाना सीखती थी और नंददास ने इसके लिये भाषा के अनेक ग्रन्थ बनाये। पृथ्वीपति इसको स्पर्श नहीं करते थे क्योंकि उसने मना कर दिया था। भावप्रकाश के अनुसार यह ग्वालियर में एक क्षत्री के यहाँ उत्पन्न हुई थी। इसके पिता गुसांईजी के सेवक थे अतः उन्होंने इसको भी गुसांईजी की सेविका किया। एक क्षत्री जो पृथ्वीपति का नौकर था, के साथ इसका विवाह हुआ था। यह बहुत रूपवान थी। इसके रूप को देखकर पृथ्वीपति ने इसे अपनी लौंडी बना लिया। इसने कह दिया था कि मैं प्राण छोड़ दूँगी इसलिये पृथ्वीपति इसे छूता नहीं था।

रेंडा उदम्बर ब्राह्मण—आपकी वार्ता संख्या ९६ है। गुजरात जाते समय गुसांईजी ने इसको नाम सुनाया था। इसके पास कुलही की सेवा थी। इसने गोकुल में 'रमन रेती' में गुसांईजी में भगवान् के दर्शन के किये। इसका गांव संजाई से चार कोस पर था जिसका नाम 'कपडवनज' था। गुसांईजी की आज्ञा से इसने विवाह किया और एक पुत्र हुआ। चाची हरिवंश के साथ पालने का प्रसंग सुनकर इसने अपना शरीर छोड़ा। गोकुलनाथजी ने इसकी स्त्री को नाम दिया था। भावप्रकाश में इनके बारे में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

रूपा राजपूत—इसका वृत्त १९० वीं वार्त्ता में है। यह गुसांईजी का सेवक था और वैष्णवों की रसोई करता था।

लीलाधरदास—२५२ वै० वा० १९० (पीताम्बरदास) में आपका उल्लेख है। आप गुसांईजी के सेवक थे और वैष्णवों की रसोई करते थे।

लाडबाई—देखिए–धारबाई की वार्त्ता (२२९) धारबाई के साथ इस पर लिखा जा चुका है।

लाड बनिया—मुरारी आचार्य (२५२ वै० वा० १३० में) की वार्त्ता में आपका उल्लेख है। यह खंभाइच में ब्रह्मपुरी में रहता था और मुरारीदास के घर नित्य आता-जाता रहता था। यह एक मुखिया का नौकर था। भावप्रकाश में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

मीराबाई—आपका वृत्त वा० वै० वार्त्ता १५१ में है। आप अचलबाई (नागर ब्राह्मणी) की पुत्री थीं। जब गुसांईजी श्रीद्वारका जाते हुए बड़नगर में पधारे थे। तब आपने उनसे दीक्षा ली थी। भावप्रकाश के अनुसार आपने एक धनी नागर ब्राह्मण के घर (बड़नगर में) जन्म लिया था। विवाह होने के थोड़े दिनों बाद आपका पति चेचक के रोग से मर गया।

संतदास—आपका प्रसंग २५२ वै० वा० १५८ (वृन्दावनदास छबीलदास, आगरे की वा०) में आया है। संतदास के घर नित्य भागवत वार्त्ता होती थी जिसे सुनने के लिए वृन्दावनदास छबीलदास जाते थे। भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है।

सहजपाल दोसी—आपका प्रसंग २५२ वै० वा० १३० (मुरारी आचार्य की वा०) में आया है। एक बार जब गुसांईजी गुजरात पधारे तब वैष्णवों के बहुत आग्रह से खंभाइच सहजपाल दोसी के घर उतरे थे, और कोई विशेष बात नहीं है। भावप्रकाश में भी आपके विषय में कुछ नहीं मिलता है।

सेरसाह—आपका प्रसंग २५२ वै० वा० १४७ (एक पठान का बेटा दिल्ली का) की वा० में आया है। यह बादशाह था। ऐतिहासिक पुरुषों के वृत में इसका विवरण दिया गया है। भावप्रकाश और मूल वा० में कोई विशेष वृत नहीं है।

हरिदास—आपका वृत २५२ वै० वा० १४० में है। मोहनदास को अपने ही घर रखने के लिए आपने अपने पुत्र को मार डाला था। भावप्रकाश के अनुसार आप गुजरात के एक गांव में एक वैश्य के यहाँ जन्मे थे। आपके एक पुत्र था। मोहनदास से आपकी बहुत मित्रता थी। एक बार गुसांईजी जब मोहनदास के गांव आए तब हरिदास ने वहाँ उनसे नाम पाया और गुसांईजी आपके घर गए जहाँ उन्होंने इनकी स्त्री और बच्चे को भी नाम सुनाया था।

उन लोगों का वृत्त जिनका उल्लेख एक बेटी, एक बहू करके वार्त्ता में हैं

इसमें संख्या श्री द्वारकादासजी परीख द्वारा संपादित भावप्रकाश वाले संस्करण के अनुसार दी गई है।

तीन तूंबा बाला वष्णव ब्राह्मण (९३)—भावप्रकाश के अनुसार सिद्धपुर में एक ब्राह्मण के घर में इनका जन्म हुआ था। जन्म होते ही इसने कृष्ण नाम का उच्चारण किया और बिल्कुल नहीं रोया। माता का दूध न पीकर गाय का दूध पीया। एक बार गुसांईजी सिद्धपुर पधारे तब इसने (१५ वर्ष की अवस्था में) नाम पाया। यह विरक्त दशा में रहता था और घर से अलग रहता था।

एक बनिया गुजरात का (९२)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजरात के एक गाँव में एक मालदार जैनी के यहाँ जन्मा था। जब १६ वर्ष का हुआ तब विवाह हुआ। इस बनिये के बेटे का एक वैष्णव के साथ हो गया था। वैष्णवों की रीति-रिवाज इसको अच्छी लगीं और एक बार जब गुसांईजी इस गाँव में पधारे तब इसने नाम पाया। इसके बाद इसका विवाह हुआ। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् यह अडैल में आया और अपनी स्त्री को सेवक करवाया। गुसांईजी ने इसको भगवत्सेवा भी पधरा दी। बाद में ये दोनों अपने देश लौट आए।

एक साहूकार मथुरा (९१)—भावप्रकाश के अनुसार यह मथुरा में एक मालदार साहूकार के घर जन्मा था। इसका पिता सर्राफे की दूकान करता था। उसके मरने के बाद ये दुकान करने लगा। इसे ठाकुरजी से मिलने की बड़ी इच्छा रहती थी। एक मथुरिया चौबे के कहने पर यह गोकुल आया और गुसांईजी के दर्शन किए। फिर इसने नाम भी पाया और गुसांईजी ने इसे भगवत् सेवा पधरा दी। नाम पाने के बाद यह मथुरा लौट आया और अपनी स्त्री को भी नाम पाने के लिए गोकुल भेज दिया। कुछ दिनों बाद श्री ठाकुरजी इससे सानुभाव जताने लगे।

एक गूजर के बेटा की बहू (८५)—भावप्रकाश के अनुसार यह 'सखीतरा' में एक के यहाँ जन्मी थी। जब यह १२ वर्ष की हुई, तब एक व्रज-वासी गूजर के लड़के से इसका विवाह हुआ। इस गूजर ने कुटुम्ब सहित नाम पाया था।

एक वैष्णव क्षत्री चंदन वाला (८६)—भावप्रकाश के अनुसार यह आगरे में एक गूजर गूजर खत्री के घर जन्मा था। इसका पिता वैष्णव था और जब गुसांईजी आगरे पधारे, तब पुत्र को भी सेवक किया। फिर यह अपने कुटुम्ब सहित गोकुल में रहने लगा।

एक क्षत्री (८८)—भावप्रकाश के अनुसार यह पूर्व में जगन्नाथरायजी के पास एक गांव में रहता था। वहाँ एक मालदार क्षत्री के घर जन्मा था। यह बचपन से कथा आदि सुनने में रुचि रखता था और घर पर आने वाले संत-महंतों की रक्षा व सेवा करता था। एक दिन कोई गरीब वैरागी इसका नाम सुनकर जाड़े में इसके यहाँ आया, पर यह उस दिन घर न था अतः वह मर गया।

कुनवी पटेल (९०)—भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है। यह गुजरात का रहने वाला किसान था जो श्री गुसांईजी की शरण अपनी धार्मिक वृत्ति की तृप्ति के लिए आया था।

एक ब्राह्मण जनेऊ तोड़ने वाला (९९)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजरात में एक गाँव में ब्राह्मण के यहाँ जन्मा था। बालकपन से ही इसे एक कर्ममार्गीय पंडित का साथ हुआ था। जब यह २५ वर्ष का हुआ, तब माँ-बाप मरे इसका विवाह नहीं हुआ था। एक बार गुसांईजी द्वारका पधारते समय इस ब्राह्मण के गांव में आए और इसको भक्ति मार्ग का महत्व बताकर नाम सुनाया।

स्त्री-पुरुष क्षत्री, सामग्री बेचकर सामग्री रखने वाला (९७)—भावप्रकाश के इन दोनों ने गुजरात के एक गांव में क्षत्रियों के घर जन्म लिया था। एक बार गुसांईजी ने द्वारका पधारते समय इस गाँव में डेरा डाला और यहाँ इन स्त्री पुरुष ने दीक्षा ली।

एक बनिया की बेटी, रामानन्दी से व्याही (१०२)—भावप्रकाश में कोई विशेष वृत्त नहीं है। इसके सम्बन्ध में कहीं कुछ ज्ञात नहीं है।

कुनवी पटेल चोखा वाला (१००)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजरात में एक कुनबी पटेल के घर जन्मा था। एक बार गुसांईजी जब द्वारका पधारे तो उन्होंने इस गाँव में डेरा डाला और पटेल को नाम सुनाया। यह निष्किंचन था। एक बार ये गुसांईजी के दर्शनार्थ गोकुल आया, तब थोड़े से चावल भेंट देने के लिए लाया था।

उपरा वारी ब्राह्मणी (११०)—भावप्रकाश के अनुसार ये अडैल में एक ब्राह्मण के यहाँ हुई थीं। जब ये २५ वर्ष की थी तब इसका पति चेचक से मर गया और यह अपने माँ-बाप के यहाँ ही रहने लगी थी। माँ-बाप के मरने पर यह गुसांईजी की सेविका हुई थी।

दो भाई पटेल, राजनगर के (वार्त्ता संख्या १०९)—इनका कोई वृत्त प्राप्त नहीं है।

एक ब्रजवासी (१०६)—भावप्रकाश के अनुसार यह आन्योर में एक सनाढ्य ब्राह्मण के यहाँ जन्मा था। इसका पिता सेवक था और इसे भी गुसांईजी का सेवक किया था। जब यह २० वर्ष का था तब माँ-बाप मर गए और ये गुसांईजी के पास रहने लगा।

स्त्री-पुरुष क्षत्री (जो हीरों की धरती पहिचानते थे) (१०५)—ये दोनों प्रयाग में क्षत्रियों के घर उत्पन्न हुए थे। एक बार मकर संक्राति के पर्व पर गुसांईजी प्रयाग पधारे जब इन्होंने दीक्षा ली थी।

एक राजा जो दो भाई सांचौरा ब्राह्मण के साथ वैष्णव हुआ था (१०४)—

भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है। इसलिए इसके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

दो भाई सांचौरा (१०३)—भावप्रकाश में कोई उल्लेख नहीं है न सम्प्रदाय में इनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात है।

एक दलाल बनिया (११४)—भावप्रकाश के अनुसार यह राजनगर में एक धनी वैश्य के घर जन्मा था। यह दलाली करता था। यह बड़ा लोभी था। जब गुसांईजी भाइला कोठारी के घर पधारे, तब इसने भी स्त्री सहित नाम पाया।

एक चोर दिल्ली का (११२)—भावप्रकाश में इसके बारे में कुछ विशेष नहीं है और न सम्प्रदाय के अन्य किसी ग्रन्थ में इस घटना का उल्लेख है।

मां-बेटा ब्राह्मण जिन्होंने गुसांईजी की सेवा की (१११)—भावप्रकाश के अनुसार ये ब्राह्मण थे और गुजरात में एक गाँव में रहते थे। जब गुसांईजी द्वारकाजी जा रहे थे तब इनके गाँव में डेरा डाला जहाँ इन्होंने दीक्षा ली थी।

दो भील द्वारका के (१२०)—इनका कोई ऐतिहासिक वृत्त ज्ञात नहीं है।

एक क्षत्राणी, आगरे की (११९)—भावप्रकाश के अनुसार यह आगरे में एक क्षत्री के घर जन्मी थी। जब यह नौ वर्ष की हुई तब विवाह हुआ। इसका पति रोगी था और जब यह ३५ वर्ष की थी तब वह मर गया। इसके बाद एक बार जब गुसांईजी आगरे पधारे इसने नाम पाया।

एक म्लेच्छ, महावन (११८)—भावप्रकाश के अनुसार यह महावन के पास एक गाँव में एक म्लेच्छ के घर जन्मा था। जब १८ वर्ष का हुआ तब माँ-बाप के मरने पर यह महावन अपने काका के यहाँ आ गया।

एक मोची (द्वारका के मार्ग के एक गांव में रहने वाला) (१२४)—इस मोची के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय बात नहीं प्राप्त हुई है।

एक सन्यासी, काशी (१२२)—भावप्रकाश में इसके बारे में कोई वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार इसे गुसांईजी के दर्शन मनिकर्निका घाट पर हुए और वहीं नाम पाया।

एक व्रजवासी का छोहरा (१२१)—भावप्रकाश के अनुसार यह गूजर के यहाँ सकारवा में जन्मा था। जब १२ वर्ष का हुआ तभी से खेती का सब काम-काज करने लगा। एक दिन इसके यहाँ एक वैष्णव भीख लेने आया जिसकी राय से वह गोपालपुर आया और नाम पाया।

ऐक वैष्णव, गुजरात का (१२६)—भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार जब गुसांईजी गुजरात पधारे, इसने नाम पाया।

एक सेठ, खरबूजा वाला (१२५)—भावप्रकाशानुसार यह आगरे में एक मालदार बनिया के यहाँ जन्मा था। रूपचन्द नंदा से इसके पिता का बहुत व्यवहार रहता था। जब गुसांईजी आगरे पधारे तब यह अपने पुत्र और स्त्री सहित उनकी शरण गया और नाम पाया। म त-पिता के मरने पर ये मन लगाकर सेवा करने लगा। इसने अपना विवाह नहीं किया था।

एक बनिया, जिसने भोग में चीले रक्खे (१३१)—भावप्रकाश के अनुसार यह राजनगर में एक मालदार वैश्य के यहाँ जन्मा था। इसका पिता वैष्णव था और उसने इसे भी गुसांईजी का सेवक किया।

एक राजा पूर्व का (१२९)—भावप्रकाश के अनुसार यह पूर्व में एक राजा के यहाँ जन्मा था। जब १८ वर्ष का हुआ तब पिता के मरने पर राजा हुआ। एक बार जगन्नाथरायजी की यात्रा को गया। गुसांईजी भी उस समय जगन्नाथपुरी में थे। वहाँ राजा ने इनके दर्शन किए और नाम पाया। इससे अधिक इसके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

एक भक्त गोकुल (१३४)—भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है।

दो भाई पटेल (१३३)—भावप्रकाश के अनुसार ये दोनों गुजरात में एक गाँव में एक पटेल कुनवी जन्मे थे जब ये ३०-३५ वर्ष के हुए, माँ-बाप का देहान्त हुआ तब ये तीर्थ यात्रा को द्वारकाजी आए जहाँ गुसांईजी से नाम पाया।

एक क्षत्री (१३२) भावप्रकाश के अनुसार यह पूर्व में एक क्षत्री के (यमुना के द्रव्य वाला) घर जन्मा था। जब यह ३० वर्ष का हुआ तब माँ-बाप के मरने पर यह दक्षिण गया जहाँ उसने गुसांईजी को पूर्ण पुरुषोत्तम के रूप में देखा और नाम पाया।

एक पटैल जिसने दरांत बेचकर भेंट रक्खी (१३८)—भावप्रकाश में इनके बारे में उल्लेख है कि यह गुजरात में एक पटेल के यहां जन्मे थे। माता-पिता के मरने पर यह घास-लकड़ी बेच कर निर्वाह करने लगा। एक बार रनछोरजी के दर्शन हेतु द्वारका जा रहे थे मार्ग में इस पटेल के गाँव में ठहरे जहाँ पटेल ने दीक्षा ली।

एक क्षत्री आगरा (१३५)—भावप्रकाश में इनके बारे में कोई वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार यह आगरे में कपड़े की दूकान करता था।

एक डोकरी, जिसने भोग में दांतिन रक्खी (१४२)—भावप्रकाश के अनुसार यह राजनगर में एक वैश्य के घर जन्मी थी। इसका पति निष्किंचन था। जब यह ६०

वर्ष की हुई तब वह मर गया। इसके पड़ौस में एक वैष्णव थे यह वहाँ नित्य कथा सुनने जाती थी। एक बार जब गुसांईजी राजनगर आए, तब इसने नाम पाया।

स्त्री-पुरुष राजनगर के (१३९)—भावप्रकाश के अनुसार ये राजनगर में रहते थे। जब गुसांईजी राजनगर गए तो पुरुष को उनके दर्शन हुए और वह उन्हें अपने घर ले गया जहाँ स्त्री-पुरुष दोनों ने दीक्षा ली।

एक डोकरी राजनगर की (१४४)—भावप्रकाश में कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार इसने राजनगर में दीक्षा ली थी। इसने काल को ८ बार लौटाया था।

एक स्त्री-पुरुष मथुरा के (१४३)—भावप्रकाशानुसार दोनों मथुरा में रहते थे। जब गुसांईजी ने मथुरा में वास किया तब ये सेवक हुए थे।

एक पठान का बेटा दिल्ली का (१४७)—भावप्रकाश के अनुसार यह दिल्ली में एक पठान के यहाँ जन्मा था। जब यह २० वर्ष का हुआ, तब एक वैष्णव का संग हुआ और उसने इसे गुसांईजी का सेवक होने का आदेश दिया।

एक विरक्त गुजरात का (१४५)—भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार यह गुजरात के एक संग के साथ गोकुल आया और नाम पाया। इसने एक बार भगवन् नाम उच्चारण करके एक वैष्णव के पुत्र को जिला दिया था।

स्त्री-पुरुष आगरे के (१४८)—भावप्रकाश में इनके बारे से कोई वृत्त नहीं है। वार्त्ता के अनुसार यह देवी का सेवक था। जब इसने देवी के चाचा हरवंश (गुसांईजी के सेवक) की सेवा करने का हाल सुना, तब वे चाचा हरवंश के साथ गोकुल आए और नाम पाया। इन कन्नौजिया ब्राह्मण के घर में सालग्राम और देवीजी थीं जो अब क्रमश: श्री मदनमोहनजी और स्वामिनी हो गये।

एक नाई गुजरात (१४२)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजरात में एक नाई के घर जन्मा था। इसका विवाह नहीं हुआ था। मूल वार्त्तानुसार एक बार जब गुसांईजी गुजरात जा रहे थे, मार्ग में इसने उनकी सींक ली और नाम पाया। सींक ली का अर्थ है हजामत बनाना।

एक श्रोता, वक्ता असारवा के (१५२)—ये दोनों राजनगर असारवा में बनियों के घर जन्मे थे। इन दोनों के घर माइला कोठारी के पास थे। माइला कोठारी इन्हें बहुत प्रेम करते थे। इन दोनों के विवाह भी हुए थे। मूल वार्त्तानुसार जब गुसांईजी राजनगर पधारे, तब इन्होंने नाम पाया था। ये दोनों अपनी स्त्री को लेकर गोकुल में रहे। पर बाद में ब्रज-यात्रा को निकल पड़े और मार्ग में भगवद्वार्त्ता करते-करते शरीर त्याग दिया।

एक साहूकार के बेटा की बहू सूरत की (१४९)—भावप्रकाश में कोई उल्लेखनीय वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार यह बहुत सुन्दर थी। एक म्लेच्छ धोखे से राजदरबार में इसे झूँठा सिद्ध करके अपने साथ ले चला। जब यह मार्ग में रोती हुई जा रही थी, गुसांईजी की दृष्टि उस पर पड़ी। तब गुसांईजी ने उसे पृथ्वीपति की आज्ञा से वापस लौटाया, ठीक न्याय किया और उसे उसके पूरे घर सहित शरण में लिया।

एक ब्राह्मण जाने देवी के किवाड़ उतारे (१५५)—इसका कोई वृत्त ज्ञात नहीं है।

एक ब्रजवासी मोची बनिया (१५४)—भावप्रकाश में कोई उल्लेख नहीं है। मूल वार्त्तानुसार यह द्वारका के मार्ग के किसी गांव में जूते की दुकान करता था। एक बार जब गुसांईजी इस गाँव में द्वारका जाते समय पधारे थे, तब इसने नाम पाया था।

एक कायस्थ आगरे का (१५३)—भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार यह सूरत के सूबा के पास दीवानगीरी करता था। एक बार किसी कार्यवश राजनगर आया जहाँ गुसांईजी के दर्शन हुए और दीक्षा ली।

एक स्त्री पुरुष ब्राह्मण गुजरात के (१५९)—भावप्रकाश में यह उल्लेख है कि ये दोनों गुजरात में ब्राह्मण के घर जन्मे थे। जब ये २५–३० वर्ष के थे, तब दोनों के माँ बाप मरे। फिर ये काशी विश्वेशर के दर्शनार्थ गुजरात से चले और काशी आए। काशी में श्री गुसांईजी के दर्शन किए और नाम पाया।

एक बीनकार (१५६)—यह भावप्रकाश के अनुसार गोपालपुर में एक सनाढ्य ब्राह्मण के यहाँ जन्मा था। बचपन में ही यह गुसांईजी का सेवक हो गया था। कुछ दिनों तक यह मथुरा अपने नाना के यहाँ, रहा पर फिर विवाह होने बाद गोपालपुर ही रहने लगा। यह बीन बहुत अच्छी बजाता था और गुसांईजी ने इसे श्रीनाथजी के आगे बीन बजाने के लिए कहा था।

एक वैष्णव जो गिरराज पर चढ़ा (१६१)—यह गुजरात में एक बनिया के यहाँ जन्मा था। इसका बचपन से ही वैरागियों का साथ था। यह वैरागियों के साथ काशी आया वहाँ इसकी इच्छा ब्रज-यात्रा की हुई और मथुरा आया। विश्रांतघाट पर उसने गुसांईजी के दर्शन किए और नाम पाया। इसके बाद कुछ दिन यह गोकुल में रहा और फिर गोवर्द्धन में आकर रहने लगा।

एक भगवदीय, तादृसी (१६०)—भावप्रकाश में कोई विशेष वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार इन्होंने गुसांईजी से गुजरात में नाम पाया। यह भगवदीय राजनगर और तादृसी धोलका में रहता था।

एक क्षत्री पूर्व का (१६३)—आपके विषय में भावप्रकाश में लिखा है कि यह पूर्व में पीपरी गाँव के पास किसी गाँव में एक मालदार क्षत्री के घर जन्मा था। यह बालपन से वैराग्य दशा में रहता था। जब यह ३० वर्ष का था, माँ-बाप की मृत्यु हुई। यह सुन्दरदास का जो महाप्रभुजी का सेवक था जिजमान था। सुन्दरदास ने इससे कहा कि तू पुरुषोत्तम-पुरी में जाकर गुसांईजी का सेवक हो। मूल वार्त्तानुसार इसने पुरुषोत्तमपुरी आकर नाम पाया था।

एक ब्राह्मण विरक्त गुजरात (१६२)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजरात में एक ब्राह्मण के यहाँ जन्मा था। बालकपन से वैराग्य दशा में रहता था। इसका विवाह नहीं हुआ था। मथुरा में इसे एक वैष्णव मिला जिसके साथ यह गोकुल आया और नाम पाया।

एक राजा जिसने स्मशान की जूंठन खाई १६५—भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार यह पूर्व का रहने वाला था इसके कोढ़ हो गया था। गुसांईजी के कहने पर इसने स्मशान में रहने वाले गुसांईजी के सेवक की झूंठन खाई, तब कोढ़ ठीक हुआ और तभी उसने दीक्षाली।

एक अन्यमार्गी १६४—भावप्रकाश में कोई वृत्त नहीं है। मूल वार्त्तानुसार इस अन्यमार्गी ने गोकुल से श्रीनाथजी द्वार आकर गुसांईजी से नाम पाया था। फिर गोकुल लौट गया। परीक्षा हेतु यह स्मशान जाकर रहने लगा। गुसांईजी को उसकी सुधि बनी रही और एक राजा को जिसे गलित कोढ़ हो गया था इसकी झूठन खाने का आदेश दिया। तब इसने गुसांईजी से क्षमा माँगी और ब्रह्मसम्बन्ध करवाया। गुसांईजी ने इसका नाम वैष्णवदास' रक्खा।

एक स्त्री-पुरुष, राजनगर के, जिनके पाँच रत्न निकले १६८—भावप्रकाश में इनके विषय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। मूलवार्त्ता में लिखा है कि जब गुसांईजी राजनगर गए तब इन्होंने नाम पाया।

एक चूहड़ा, गोवर्द्धन का (१६७) यह भावप्रकाश के अनुसार एक चूहड़ा के यहाँ जन्मा था। जब यह दस वर्ष का था तब गोवर्द्धन के रास्ते में इसे सर्प ने काट लिया। श्री गुसांईजी गोकुल से आ रहे थे तो रास्ते में इसे पड़ा देखा। तब उन्होंने उसे वेद-मंत्र पढ़कर जिलाया और दीक्षा दी। माता-पिता के मरने पर यह खेती करने लगा। मूल वार्त्तानुसार यह गोवर्द्धन में रहता था। श्रीनाथजी इसे नित्य दर्शन देते थे।

एक ब्राह्मण (१७२)—भावप्रकाश के अनुसार यह दक्षिण में भावनगर नामक गाँव के एक ब्राह्मण के यहाँ जन्मा था। माता-पिता के मरने पर ये उनकी अस्थि लेकर सोरों आए और अस्थि को गंगाजी में फेंक कर वहीं रहने लगे क्योंकि इनके घर और कोई नहीं था। जब ये आठ वर्ष के थे तब वेदमंत्र आदि एक पंडित से सीखे थे। ये उनका उच्चारण भली-भाँति कर लेते थे, पर अर्थ नहीं समझते थे।

मूलवार्त्तानुसार एक बार गुसांईजी सोरों पधारे तब वहाँ इस ब्राह्मण को भागवत का पाठ (बिना अर्थ समझे हुये) करते हुए देखकर गुसांईजी को इस पर दया आगई और नाम सुनाया। बाद में ये ठाकुरजी के निज मन्दिर में पाठ करने लगा।

एक क्षत्री वैष्णव, लक्ष रुपैया के फूल वाला (१७५)—भावप्रकाश के अनुसार यह दक्षिण में पंढरपुर के पास के किसी गाँव में एक धनी क्षत्री के यहाँ जन्मा था। जब यह ३० वर्ष का हुआ तब पिता का देहान्त हो गया। इसका विवाह नहीं हुआ था।

कबूतर कबूतरनी (१७८)—भावप्रकाश में इन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। मूलवार्त्तानुसार एक बार गुसांईजी ज; गजरात जा रहे थे तो रास्ते में महीनदी पड़ो। नदी के चढ़े होने कारण इन्होंने किनारे पर ही डेरा डाला और इन दोनों पक्षियों को नाम सुनाया।

एक सेठ राजनगर (१७९)—भावप्रकाश में इनके बारे में कोई विशेष बात नहीं है। मूलवार्त्तानुसार इसने राजनगर में नाम पाया था। मोह के कारण ये गोकुल नहीं गया और अन्त में कीड़ा हो गया।

एक पुरुष दो स्त्री (१८०) – आपकी वार्त्ता संख्या १८० है। भावप्रकाश में इसके सम्बन्ध में लिखा है कि आप वड़े मालदार क्षत्री के यहाँ पैदा हुये थे।

एक बनिया (१८१)—भावप्रकाश के अनुसार इनका जन्म किसी धनी वैश्य के यहाँ गुजरात में हुआ था।

एक ब्रजवासी (१८२)—आपके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं मिलता है।

एक विरक्त (१८४)—भावप्रकाश के अनुसार यह गोवर्द्धन में एक सनाढ्य ब्राह्मण के यहां जन्मा था। बालपन से ही यह वैरागी दशा में रहता था। इसके माँ-बाप इसे वैरागी समझकर स्नेह नहीं करते थे। सत्रह वर्ष की आयु होने पर इसके माँ बाप मर गए थे। तब यह गोपालपुर में जाकर गुसांईजी का सेवक हो गया।

एक राजा पूर्व का (१८५)—भावप्रकाश में इसका गाँव आदि कुछ नहीं दिया है।

एक कायस्थ (१८६)—भावप्रकाश के अनुसार इसका जन्म सूरत में एक कायस्थ के घर हुआ था। सूरत में जब गुसांईजी गए तब यह उनका सेवक हुआ। यह प्रतिवर्ष ब्रज की यात्रा के लिए आता था। यह अपने साथ भोजन के लिए ब्रज की मिट्टी की हांडी रखता था।

एक बनिया (१८७)—यह बनिया गुजरात में जन्मा था। जब यह १८ साल का हुआ तब माँ बाप का देहान्त हुआ। इसकी गुसांईजी से भेंट द्वारका में हुई थी और वहाँ से ये गोकुल आया और उनकी सेवा करने लगा तथा श्री गोवर्द्धननाथजी की टहल करता था।

हंस हंसिनी (१८८)—भावप्रकाश में कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है।

एक पारधी (१८९) कुछ विशेष नहीं है।

एक वैष्णव गुजरात का (१९२)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुसांईजी से द्वारका के मार्ग में किसी गाँव में मिला था।

गुजराती ब्राह्मण वैष्णव (१९३)—कोई विशेष बात नहीं है। भावप्रकाश के अनुसार द्वारका के मार्ग के किसी गाँव में रहता था।

माँ बेटी राजनगर (१९५)—आप भावप्रकाशानुसार भाइला कोठारी के घर आयी थी, वहीं दर्शन हुये थे। ये राजनगर (अहमदाबाद) की रहने वाली थीं।

एक सेठ एक विरक्त (१९७)—भावप्रकाश के अनुसार यह सेठ गुजरात में एक बनिया के यहाँ जन्मा था।

एक ब्राह्मण सगुनवारो (१९९)—भावप्रकाशानुसार यह गुजरात में एक ब्राह्मण के यहाँ जन्मे थे। इससे अधिक इनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

एक बाई को बेटा (२००)—कोई विशेष बात नहीं है। मूल वार्त्तानुसार यह गोड़वार गाँव में रहते थे।

साहूकार की बेटी बजीर की बेटी (२०२)—भावप्रकाशानुसार ये गुजराती थे।

शैवी ब्राह्मण का बेटा (२०३)—भावप्रकाश में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

वैष्णव बनिया (२०४)—यह गुजरात का था।

एक कुनबी पटेल (२०५)—भावप्रकाश में कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं है।

दो भाई कुनबी पटेल (२१०)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजराती कुनबी थे।

एक चूहड़ा (२१२)—भावप्रकाश में आपके सम्बन्ध में कुछ नहीं है।

धनी धान्या (२१३)—भावप्रकाश में आपके बारे में कुछ नहीं है।

एक क्षत्राणी घानीपूनीवाली (२१४)—भावप्रकाश के अनुसार ये प्रयाग में एक निष्किंचन क्षत्री के यहाँ जन्मी थी। इसका पति रोगी था और ५० साल बाद मर गया। उसके कई दिन बाद एक बार गुसांईजी अड़ैल से प्रयाग आए और वहाँ इसने नाम पाया।

खंभाइच के साहूकार (२१७)—भावप्रकाश के अनुसार ये खंभाइच में एक साहूकार के घर जन्मे थे। आपके पिता सर्राफे की दूकान करते थे। जब ये तीस वर्ष के हुए तो पिता के मरने पर दूकान करने लगे।

एक ब्राह्मण खंभाइच का (२१८)—भावप्रकाश में इसके सम्बन्ध में विशेष बात नहीं लिखी है।

एक क्षत्री वैष्णव (२१९)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजरात म एक मालदार क्षत्री के यहाँ जन्मा था। बालकपन से यह वैरागी दशा में रहता था। जब १५ वर्ष का हुआ, तब माँ-बाप मरे। फिर ये साधु-संतों के दर्शनार्थ घूमा करते थे।

एक क्षत्री वैष्णव, जो चाचाजी के साथ रास्ता भूला था (२२०)—भावप्रकाश में लिखा है कि ये गुजरात में एक क्षत्री के यहाँ जन्मा था। जब यह २२ वर्ष का हुआ तब एक बार चाचाजी (हरिवंशजी) गुजरात आए और इसके गाँव में भी आये। इसने उनसे नाम पाया और फिर उनके साथ गोकुल आया वहाँ गुसांईजी से नाम पाया।

आगरे की क्षत्राणी (२२१)—भावप्रकाश के अनुसार ये आगरे में एक क्षत्री के यहाँ जन्मी थी। कुछ दिन बाद ये विधवा हो गई। कुछ दिन बाद गुसांईजी आगरे आए, तब इसने उनसे नाम पाया। मूल वार्त्तानुसार इसने गुसांईजी से आगरे में नाम पाया था। इसे अष्टाक्षर का जप भी करना आता था।

एक सेठ की दस वर्ष की बेटी (२२३)—भावप्रकाश में कोई विशेष बात नहीं है। मूल वार्त्तानुसार जब यह दस वर्ष की थी। तब इसने नाम पाया था और जब यह बूढ़ी हो गई अर्थात् ४०–५० वर्ष बाद इसने भावना से बालकृष्णजी से मदनमोहनजी किए।

एक सेठ जिसके बेटे ने मानसी करी (२२२)—भावप्रकाश में आपके बारे में कुछ नहीं मिलता। ऊपर जिस बेटी की वार्त्ता है, वह इसी सेठ की पुत्री है।

एक सेठ, दासी और बेटा (२२४)—भावप्रकाश में इन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

स्त्री-पुरुष ब्राह्मण (२२५)—भावप्रकाश में कोई विशेष बात नहीं है। मूल वार्त्तानुसार इस ब्राह्मण की स्त्री को गोवर्द्धननाथजी अपने आप पकड़ कर अन्दर ले गए और निज धाम में प्रवेश करा लिया। स्त्री के वियोग में वह ब्राह्मण भी मर गया।

आगरे के सरावगी की बेटी (२२६)—भावप्रकाश के अनुसार यह आगरे में एक सरावगी के यहाँ जन्मी थी। जब यह नौ वर्ष की हुई, तब इसका विवाह हुआ था।

एक वैष्णव ब्राह्मण कपड़ा उढ़ाने वाला (२२७)—भावप्रकाश के अनुसार यह गुजरात में एक ब्राह्मण के घर जन्मा था।

एक गुजराती वैष्णव २२८—भावप्रकाशानुसार यह गुजरात में एक मालदार बनिया के यहाँ जन्मा था। माँ-बाप से इनकी नहीं बनती थी। कुछ दिनों बाद जब इसके माता-पिता मर गए और गुसांईजी द्वारका पधारे जहाँ इसने उनसे नाम पाया।

एक राजा जिसकी रानी झारी भरती थी २३७—भावप्रकाश में इनके बारे में कुछ विशेष नहीं है।

एक राजा, चार पुत्र वाला जो देखा करता था २३०—भवप्रकाश से इस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

भूधरदास—इनकी वार्त्ता संख्या २११ है। यह बराड़ी गाँव गुजरात के रहने वाले थे और श्री गुसांईजी के साथ श्री रणछोड़ के दर्शन को गए थे।

भीमदुबे—इनकी वार्त्ता १४५ है। यह गुजरात के गाँव के रहने वाले थे। इनका नागजीभट्ट से स्नेह था।

भगवानदास—आगरे के सूबे के दीवान थे और फिर ये वृन्दावन में रहने लगे थे। यह रामराय सारस्वत ब्राह्मण के जिजमान थे। उसी ने इनको सेवक कराया था। यह कवि थे।

बलदेवदास
वल्लभदास } —दो गुजराती वैष्णवों का नाम है जो वार्त्ता संख्या २०० में आए हैं।

जनार्दनदास चौपड़ा—यह आगरे के हैं। श्री गुसांईजी इनके घर पर ठहरते थे। इनका उल्लेख वार्त्ता संख्या १२३ में है।

ज्वेरचन्द—इनकी वार्त्ता संख्या २२३ है यह गुजराती वैश्य था।

जगन्नाथराय—जगन्नाथ जी।

जीवनदास—इनकी वार्त्ता संख्या १८६ डाकौर संस्करण में है। यह लाहौर के रहने वाले ब्राह्मण थे जो हरिद्वार में सेवक हुए थे।

मंगनभाई खंभात के—इनकी वार्त्ता संख्या २१२ डाकौर संस्करण में है। यह खंभात में माधवदास दलाल के घर पर सेवक हुए थे और इन्होंने एक लाख रुपया भेज दिया था।

नरहरि जोशी—इनकी वार्त्ता संख्या २१० है (डाकौर संस्करण) इन्होंने अलियान गाँव की आग खेरालू में बैठे-बैठे बुझादी थी। यह जगन्नाथ जोशी के भाई थे।

देव ब्राह्मण बंगाली—यह बंगाल के ब्राह्मण थे जो ब्रज-यात्रा को आए थे और वहीं सेवक होगए थे और बंगाल का कपड़ा बेचते थे। इसकी वार्त्ता संख्या ३० डाकौर संस्करण में है।

अलीखान—इनकी वार्त्ता संख्या ३७ है और इनका वृत्त कवियों के प्रकरण में लिखा गया है।

कृष्णभट्ट—इनकी वार्त्ता संख्या २ है। यह भी कवि हैं और इनका प्रसंग कवियों के प्रकरण में लिखा गया है।

कृष्णदास—आपकी वार्ता संख्या २४ है। वे कृष्णदास म्लेच्छ पास चाकर रहते। और वैष्णवों को नौकरी दिला देते थे। ये स्वयं किसी परगने में थे और अपने पास आने वाले वैष्णवों की सब प्रकार की सहायता करते थे। अधिक द्रव्य बांट देने पर और पकड़े जाने पर इन्हें बन्दी बनाया गया। बाद में उस म्लेच्छ ने इन्हें छोड़ दिया और किसी म्लेच्छ से लड़ते-लड़ते इन्होंने समर में अपने प्राण दिये। ताते ता समय के म्लेच्छ हूँ वैष्णव की संगति करि या प्रकार वैष्णव को स्वरूप जानते।'

भावप्रकाश में आपके बारे में यह कहा गया है—आपका निवास-स्थान पटना से १० कोस दूर एक गाँव में था। ये कायस्थ के यहाँ पैदा हुये थे। वह म्लेच्छ के यहाँ नौकर था जब कायस्थ मरा, तो ये भी म्लेच्छ के यहाँ नौकर हो गये। किसी कारणवश आप देहली गये। मार्ग में एक वैष्णव मिला उसके कहने पर आप मथुरा गये और यमुनाजी में स्नान किया और फिर गोपालपुर गये। वहाँ गुसांईजी से मिले फिर उनको दंण्डवत् कर आज्ञा मांग अपने देश वापिस आये।

देवका बेटी—इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या २३३ डाकौर संस्करण में है। यह कल्याण भट्ट की बेटी थी। इससे श्रीनाथजी ने साढ़े चार पैसे सेर दूध पिया था।

नानचन्द—इनकी वार्त्ता संख्या ६४ डाकौर संस्करण में है। यह अहमदाबाद का एक धनी वैश्य था जो बहुत से वैष्णवों को लेकर श्री गोकुलनाथजी के विवाह पर गोकुल आया था।

नरू वैष्णव—इसकी वार्त्ता संख्या ३४ है। यह द्वारका के मार्ग में गुजरात में रहता था। और वृक्ष के साथ वार्त्ता करता था।

नरसिंह दास—इनकी वार्त्ता संख्या २३१ डाकौर में हैं। इसने एक भील की हिंसा वृत्ति छुड़ाई थी।

प्रेमनिधि मिश्र—यह आगरे के सनाढ्य ब्राह्मण थे जो सदा अपरस में रहते थे और प्रतिदिन यमुना स्नान करते थे। इनकी वार्त्ता संख्या ६५ डाकौर संस्करण में हैं।

प्रेमसिंह—रानी रत्नावती आमेर वाली के लड़के का नाम है।

नाभाजी—भक्तमाल के रचयिता।

मुरारी आचार्य—खंभात के रहने वाले शैव तथा षटदर्शन के पंडित थ जो काशी यात्रा के लिए निकले थे और गोकुल में जिन्होंने श्री गुसांईजी से कुछ प्रश्न किए थे और उत्तर सुनकर गोकुल में ही रह गए थे। इन्होंने काशी में अनेक पंडितों को वाद-विवाद में जीता था।

मोतीराम कायस्थ—सूरत के सूबेदार के यहां नौकर था। एक बार वह आगरे किसी काम से सूबे के फौजदार के साथ आया था। लौटती बार वह गोपालपुर में दर्शन करना चाहता था पर दर्शन में देर थी। उसने साठ हजार रुपए देकर जल्दी दर्शन करने की इच्छा प्रगट की, पर वह न हो सका इस पर सूबेदार ने इसको दर्शन करने की अनुमति देदी और इसने साठ हजार रुपया भेंट किया। इसकी वार्त्ता डाकौर संस्करण में २३४ है।

मानकुंवरि बाई—एक सेठ की बेटी थी जो बाल विधवा थी और जिसने ठाकुरजी का स्वरूप बदल दिया था। डाकोर संस्करण में इसकी वार्त्ता संख्या १९६ है।

माधोसिंह—आमेर की रानी रत्नावली के पति का नाम है।

माधवेन्द्रपुरी—मध्व सम्प्रदाय का एक सन्यासी जो अड़ेल में रहता था।

कलहंसी—यह लीलात्मक नाम है।

गोकुल भट्ट तथा गोविन्द भट्ट—इनकी वार्त्ता प्रसंग २०७ है। भावप्रकाश में इनके पिता का नाम कृष्ण भट्ट है। आप दोनों उज्जैन में पैदा हुए थे।

वार्त्ता में आप दोनों श्री गुसांईजी के सेवक थे। गोकुल भट्ट तो अहर्निस श्री सुबोधिनी-जी देखते और गोविन्द भट्ट श्री आचार्यजी महाप्रभुन के ग्रन्थ तथा श्री सुबोधिनीजी को पाठ करते श्री गुसांईजी जब परदेश पधारते थे तब ये दोनों भाई आपके साथ जाते थे। और पुष्टि मार्ग सम्बन्धी चर्चा करते थे।

गिरधरजी—गुसांईजी के प्रथम पुत्र का नाम है। इनका जीवन-वृत्त अलग से लिखा गया है।

गोपालदास—आपकी वार्त्ता संख्या ११ है। और इनका वृत्त कवियों के प्रकरण में लिखा गया है।

गणेश व्यास—आपकी वार्त्ता संख्या १४ है। वार्त्ता के अनुसार 'गणेश व्यास एक समै ठाकुरजी की सामग्री लै द्वारका को जात है। मार्ग में बलि लेने वाली देवी को भी वैष्णव बनाते गये। राजा के यहाँ से देवी के लिये बलि इत्यादि का प्रबन्ध था। गुसांईजी यद्यपि गनेश व्यास पर बहुत क्रोध करते थे तथापि ये अपने मन में कुछ भी न लाते थे। गनेश व्यास को वास्तव में गुसांईजी के हृदय की कृपा प्राप्त थी।

भावप्रकाश के अनुसार—गनेश व्यास ने पश्चिम में एक श्री माली ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। बचपन में माँ-बाप के मर जाने से चाचा के यहाँ पले। बड़े होने पर मथुरा आये और गुसांईजी से भेंट हुई और उनके सेवक हो गये।

गोवर्धन भट्ट—इनकी वार्त्ता संख्या २१३ है। इसने अग्नि परीक्षा दी थी।

गोमती—इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या २८ में है। यह भाइला कोठारी की कन्या थी।

खुशालदास—इनकी दो० वा० वै० की २२९वी वार्त्ता है। यह धनी था और तीन लाख रुपये की सामग्री भेंट की थी।

जमुनादास—इनका उल्लेख वार्त्ता संख्या १२६ में है। यह दक्षिण के रहने वाले वैश्य थे जिसने एक फूल एक लाख रुपए में लिया था। यह धनी था क्योंकि इसने पाँच लाख का हीरा भी दिया था।

चुन्नीलाल सेठ—इनका उल्लेख वार्त्ता २१७ में है। यह एक धनी व्यक्ति था और इसने गोकुल में जाकर नाम निवेदन किया था।

गोविन्ददेव—कृष्णजी का नाम।

गोपीनाथजी—श्री गुसांईजी के बड़े भाई।

गोपीबाई—इनकी वार्त्ता संख्या २२१ है। यह वजीर की बेटी का नाम है,

चाचा हरिवंश—आपकी वार्त्ता संख्या ३ है। वार्त्ता के अनुसार चाचा हरिवंश वयोवृद्ध थे, अतः चाचा कहलाते थे। इन्हें गोसांईजी ने अडैल से गुजरात भेजा और कहा कि तुम राजनगर आसुरवा में भाइला कोठारी से मिलते रहना। वहाँ भाइला कोठारी ने बहुत रुपया जमा करके इन्हें दिया जिसकी इन्होंने हुन्डी करवाई। चाचाजी को बरास चौबा और अगर खरीदना था। खंभाइच से थोड़ी दूर 'नारायण सर' तालाब है वहीं ये ठहरे थे। वहाँ इनकी माधोदास दलाल से भेंट हुई और उसने सहजपाल दोषी की हाट बताई। लौटते समय सहजपाल ने इनके रुपये लौटाल दिये। माधोदास जीवापारिख और सहजपाल तीनों को इन्होंने नाम दिया और प्रथम सहजपाल दोषी के यहाँ गये वह सकुटुम्ब शिष्य हुआ। तत्पश्चात् वह जीवापारिख के और फिर सहजपाल के घर गये। चाचा हरिवंशजी राजनगर से फिर अड़ैल गये।

गुसांईजी ने आपको गुजरात भेजा-मार्ग में एक भीलिनी को अपना शिष्य बनाया। आपने भीलों को बताया कि वैष्णव को क्या न खाना चाहिए। आप फिर गुजरात भेजे गये मार्ग में एक राजपूत अपनी बेटी के साथ मिला उसको भी शिष्य बनाया। गुसांईजी और हरिवंशजी एक बार रात भर वार्त्ता करते रहे। हरिवंशजी गुसांईजी के शरीरान्त के बाद भी वहीं रहकर गोकुलनाथजी से सुबोधिनी सुनते थे।

भावप्रकाश के अनुसार—ये पटना के पास दो कोस पर एक क्षत्री के यहाँ पैदा हुए। आप बाल ब्रह्मचारी थे। आप काशीजी में गुसांईजी से मिले और उनके शिष्य बने थे।

चांपा भाई—आपकी वार्त्ता संख्या २०८ है वार्त्ता के अनुसार एक समय श्री गुसांईजी गुजरात पधारे तब आपकी उनसे भेंट हुई और उनके शिष्य हो गये।

भावप्रकाश के अनुसार आपने गुजरात में एक द्रव्य पात्र क्षत्री के घर जन्म लिया था। आप वैरागी थे।

चन्द्रावलीजी— यह लीलात्मक नाम है।

छज्जो—आपकी वार्त्ता संख्या ४५ है। वार्त्ता के अनुसार यह बड़ी कलह कारिणी थी। यह गुसांईजी तथा उनके बच्चों को काफी दुःख देती। गुसांईजी की आज्ञानुसार उनके एक भगवत नामक सेवक ने उसकी एकान्त में नाक काट ली और भाग गया था।

भावप्रकाश के अनुसार यह मथुरा में एक सनाढ्य के यहाँ पैदा हुई थीं और विधवा होने पर श्री गुसांईजी की शरण गई थीं।

जोतसिंह—आपकी वार्त्ता संख्या ६६ है। वार्त्ता के अनुसार आप पंढरपुर से उस ओर कहीं रहते थे तथा असीम वैभव युक्त होने के साथ-साथ यह रासाई देवी के उपासक थे। प्रोहित के मरने के बाद उनके लड़के ने राजा का दैवी विश्वास नष्ट किया। पंढरपुर ले जाकर इसकी शंका का समाधान स्वयं विट्ठलनाथजी ने किया था। पीछे से अड़ैल जाकर आपने गुसांईजी से दीक्षा ली। वहाँ से गोवर्द्धननाथजी के दर्शनों के बाद ब्रज परिक्रमा करके अपने देश आये।

भावप्रकाश के अनुसार ये दक्षिण में पंढरपुर से २५ कोस पर एक गाँव में एक ब्राह्मण प्रोहित के यहाँ पैदा हुए। श्री 'विट्ठलनाथजी' की आज्ञानुसार आप गुसांईजी के शिष्य बने थे।

जदुनाथदास—आपकी वार्त्ता संख्या ५७ है और आपका वृत्त कवियों के प्रकरण में लिखा गया है।

जीवा पारीख—आपका प्रसंग वा० वै० वार्त्ता संख्या ३ और ८ में है। मूलवार्त्ता के अनुसार आप सहजपाल दोशी तथा माधोदास दलाल के मित्र थे। आपने अपने इन दोनों मित्रों सहित चाचा हरिवंशजी से नाम पाया था। चाचा हरिवंशजी आपके घर भी पधारे थे। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

जैमलजी—मेड़ता के राजा इनका वृत्त ऐतिहासिक पुरुषों के वृत्त में दिया गया है।

जनार्दनदास--आपकी वार्त्ता संख्या २५ है। वार्त्ता के अनुसार जनार्दनदास और गोपालदास जहाँ नौकरी करते थे वहाँ पर एक बार गुसांईजी पधारे और इन्होंने भंडारी द्वारा अपने घर का सारा सामान बिकवा कर गुसांईजी को भेंट दी। बाद में दोनों परगना कमाने मुल्तान गये। ये वैष्णवों का आदर करते थे और गुसांईजी को धन भेजते थे।

भावप्रकाश में आपके बारे में यह कहा गया है कि सिहनंद में एक कायस्थ के यहाँ जनार्दनदास पैदा हुए और वहीं पर एक क्षत्री के यहाँ गोपालदास पैदा हुए। माँ-बाप के मरने पर एक म्लेच्छ के यहाँ नौकरी करते थे। साधु वैरागियों का आदर करते थे। आप दोनों की गुसांईजी से भेंट हुई और उनके शिष्य हो गये।

तसमादेवी—यह लीलात्मक नाम है।

दाउद—गौड़ देश का राजा था इसका विवरण भी ऐतिहासिक व्यक्तियों की सूची में दिया गया है।

दुर्गादास—आपकी वार्त्ता संख्या ४८ है। वार्त्ता के अनुसार आप एक वैष्णव के साथ मथुरा आये और उसी के साथ गोकुल आये। आपने श्री गुसांईजी से दीक्षा ली, भेंट चढ़ाई और गोवर्धननाथजी के दर्शनों के बाद वन-यात्रा पर गये। पुनः गुसांईजी से आज्ञा लेकर अपने देश आये और स्वर्गलोक पधारे। भावप्रकाश के अनुसार गुसांईजी ने कहा है आप गंगा-पुत्र हैं इसलिये पूज्य है आपकी भेंट नहीं ली जायगी।

दया भवैया—आपकी वार्त्ता संख्या ६३ है। वार्त्ता के अनुसार आप वैष्णव धर्म की महत्ता समझाने के लिये राजा के पास गये उन्होंने दीक्षा के लिये एक विनती पत्र गुसांईजी के पास देकर आपको अडैल भेजा। स्त्री-पुत्र के साथ आपने गुसांईजी से दीक्षा ली। फिर ये गोवर्धन गये और मूर्ति प्राप्त कर तथा भेंट समर्पित कर पुनः राजा के पास गये। राजा की इन पर कृपा थी। भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म गुजरात के एक गाँव में एक भवैया के यहाँ हुआ। बाद में आप वैष्णव हो गये थे।

पद्मारावल—आपका वृत्त चौरासी वैष्णव की वार्त्ता में है। वार्त्ता संख्या ३४ है। इससे यह प्रगट है कि यह उज्जैन या उसके आसपास के रहने वाले थे और इनको महाप्रभुजी का दर्शन उज्जैन में ही हुआ था यह घटना सम्वत् १५४९ से १५५८ तक की है। क्योंकि उज्जैन की सबसे पहली यात्रा में ब्रह्म सम्बन्ध की आज्ञा ही नहीं हुई थी इसलिए इसका सम्बन्ध सम्वत् १५४७ की यात्रा से जोड़ना अनुचित है। इस वार्त्ता में जूठन की पत्तल इत्यादि का विवरण है जो ब्रह्म सम्बन्ध के पश्चात् का ही है।

पाथो गूजरी—आपकी वार्त्ता संख्या ५८ है। वार्त्ता के अनुसार एक दिन पाथो गूजरी अपने बेटा के लिए दही भात की छाक करके ले जारही थी मार्ग में श्री गोवर्धननाथजी उसे गोविन्द कुंड से अपने मंदिर ले आये और उसकी छाक खाई। गुसांईजी ने इस पर बड़ा खेद प्रकट किया। भोग के समय श्री गोवर्धननाथजी के किवाड़ पाथो गूजरी के उराहना देने पर खुले। उस दिन से उसके लिये मंदिर में आने-जाने की कोई अटक नहीं रही। बाद में गाने के लिये इसका सारा कुटुम्ब आने लगा। भावप्रकाश के अनुसार ये भवनपुरा में एक गूजर के यहाँ पैदा हुई। बाद में इसे गोवर्धननाथजी की कृपा प्राप्त हो गई।

राय पुरुषोत्तमदास—आपका प्रसंग वा० वै० वा० ७५ (बीरबल की बेटी की वार्त्ता) में है। आपके बारे में कोई ऐतहासिक वृत्त नहीं है। बीरबल की बेटी ने आपके घर की स्त्रियों से कहकर गुसांईजी से दीक्षा ली थी। भावप्रकाश से भी आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

पेंचूँ—यह लीलात्मक नाम है।

पुरुषोत्तमदास—आपकी वार्त्ता संख्या ४९ है। वार्त्ता के अनुसार काशी में आपकी गुसांईजी से भेंट हुई। वहाँ आपने उनको सखड़ी खिलायी। गुसांईजी ने आपको सिद्धान्त रहस्य आदि पढ़ाये। बाद में ये गोवर्धननाथजी के पुजारी हो गये।

भावप्रकाश के अनुसार आप काशी के रहने वाले थे। इनकी विनय पर गुसांईजी ने आपको अपने पास रख लिया था।

नन्दरायजी—यह लीलात्मक नाम है।

निहालचन्द भाई—आपकी वार्त्ता संख्या ५५ है वार्त्ता के अनुसार आपको कृष्णभट्ट से बहुत प्रेम था। आपको गोकुल आते समय भूमिया पकड़ ले गये और लूटा। लेकिन सरदार भूमिया की माँ चाचाजी द्वारा बनाई हुई वैष्णव थी सो ये सब सब लोग छूट गये। गोकुल आकर गुसांईजी को भेंट दी और शिष्य हो गये और बाद में लौट आये।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म एक जलोटा क्षत्री के यहाँ हुआ बचपन में कृष्ण भट्ट के साथ रहते थे।

नागजी भट्ट—आपकी वार्त्ता संख्या १ है। आपका वृत्त कवियों के प्रकरण में है।

नारायणदास दीवान—आपकी वार्त्ता संख्या ५ है। वार्त्ता के अनुसार गुसांईजी ने स्वयं आपको दर्शन दिये थे। आपकी स्त्री का नाम वीराँ था। यह बहुत रूपवान थी। ये वैष्णवों का आदर करते थे। पुरी से बीस कोस चलने पर गोकुवां ग्राम में ही नारयणदास गुसांईजी से मिलकर इन्हें घर ले गये थे। भावप्रकाश के अनुसार आपने गौड़ देश में एक कायस्थ के यहाँ जन्म लिया। नौ वर्ष की आयु में आपका विवाह वीराँ के साथ हुआ। २५ वर्ष की आयु में इनके पिता का स्वर्गवास हुआ और अपने पिता के स्थान पर दीवान हो गये। राजा इनसे बहुत प्रसन्न रहता था। बाद में मुरारीदास का साथ हुआ और इसी साथ से आपको श्री गुसांईजी के दर्शन हुये और सेवक होगये।

नरसी मेहता—ठाकुरजी का नाम।

नवनीतप्रियजी— प्रसिद्ध गुजराती कवि और भक्त।

नन्दकुमार—कृष्ण।

बालकृष्णजी—श्री ठाकुरजी का नाम तथा श्री गुसांईजी के पुत्र का नाम है।

बीरबल—आपकी वार्त्ता संख्या ७५ है आपका वृत्त कवियों के प्रकरण में दिया गया है।

बाजबहादुर—आपका प्रसंग वा० वै० वार्त्ता संख्या १० (भाइला कोठारी) की वार्त्ता में है। आप लाछाबाई के कर्मचारी थे। लाछाबाई के आदेश पर यह (गुसांईजी के कारण) असारवा आया। उसने गुसांईजी को ईश्वर माना और गुसांईजी ने इसको एक सुपारी दी। लाछावाई से आकर आपने बताया कि झूंठी चुगली की गई है। इन पर वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों में लिखा गया है। लाछावाई गुजरात में प्रसिद्ध थीं।

भावप्रकाश में आपके विषय में कोई विशेष वृत्त नहीं है।

वाघ वछैला—आपका प्रसंग वा० वै० वार्त्ता १० में है। आपके बारे में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

बेनीदास छीपा—आपकी वार्त्ता संख्या ४६ है। वार्त्ता के अनुसार सहजादपुर में गुसांईजी के पधारने पर वहीं आपने दीक्षा ली थी और गुसांईजी को भेंट दी थी। पुनः गोवर्द्धननाथजी के दर्शनों के पश्चात् आप वन-यात्रा को गये और अपने अन्त-काल के समय सहजादपुर आ गये। भावप्रकाश में और कोई विशेषता नहीं है।

बाघाजी राजपूत—आपकी वार्त्ता संख्या ७४ है। वार्त्ता के अनुसार ये और इनकी पत्नी ठाकुरजी की सेवा करते और वैष्णव को खिलाकर खाते थे। आप राजद्वार में नौकरी करते थे।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म गुजरात के पास एक गाँव में हुआ। आप ही के गाँव में आपकी श्री गुसांईजी से भेंट हुई थी और उनकी आज्ञानुसार इन्होंने एक वैष्णव से सेवा की रीति सीखी थी।

भाइला कोठारी—आपकी वार्त्ता संख्या १० है। वार्ता के अनुसार आप गुसांईजी के दर्शनों के लिए पत्र लिखते थे। सो गुसांईजी इनको दर्शन देने आये थे।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म राजनगर से कुछ दूर एक गाँव में एक बनिये के यहाँ हुआ। पिता की मृत्यु के बाद उसी हाकिम के यहाँ कोठारी हो गए। राजनगर में ही आपकी गुसांईजी से भेंट हुई और अपने घर असरूवा ले गये तथा वहाँ सकुटुम्ब सेवक होगये गुसांईजी ने आपको अपनी पादुका दी।

भाना कपूर—यह आगरे के रहने वाले थे और सेव के बाजार में इनका मकान था।

भगवन्त—कुछ भी ज्ञात नहीं है।

भामिनी—इनके सम्बन्ध में अन्यत्र भी और कुछ प्रसिद्ध नहीं है।

माधौदास—आपकी वार्त्ता संख्या ८ है। वार्त्ता के अनुसार आप काबुल में रहते थे और कपड़ों कीं हाट करते थे। आपने हरिद्वार में गुसांईजी से मन्त्र लिया।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म काबुल में एक क्षत्री के यहाँ हुआ आप अविवाहित थे। आपके पिता बजाज थे। हरिद्वार में गुसांईजी से भेंट हुई और सेवक हो गये। कुछ काल तक साथ रहे फिर आज्ञा लेकर अपने घर आ गये।

मुरारीदास---आपकी वार्त्ता संख्या ४ है । वार्त्ता के अनुसार आप नारायणदास के यहाँ नौकर थे । आपने नारायणदास को अपना सम्प्रदाय इत्यादि बताया ।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म पूर्व में एक सूर्यद्विज ब्राह्मण के यहाँ हुआ था । बचपन में माँ-बाप स्वर्ग सिधार गये, बाद में एक सन्यासी का साथ हुआ और उसके साथ काशीजी आये । वहाँ पर श्री गुसांईजी से भेंट हुई और उनके सेवक हुए ।

मथुरादास क्षत्री---आपकी वार्त्ता संख्या ३९ है । वार्ता के अनुसार एक बार आपने गुसांईजी से पूछा कि आपकी सृष्टि और श्री आचार्यजी की सृष्टि में कितना अन्तर है । इस पर श्री गुसांईजी ने आपको त्याग दिया । बाद में पश्चात्ताप में प्राण देने का विचार कर ये चले । परन्तु एक बुढ़िया के संग होने पर इन्होंने गुसांईजी की कृपा पुनः पाई ।

भावप्रकाश के अनुसार आपने गोपालपुर में एक क्षत्री के यहाँ जन्म लिया । बाद में एक वैष्णव का साथ होने से गोकुल में गुसांइजी के सेवक हुये ।

मधुसूदनदास गौडिपया---आपकी वार्त्ता संख्या १६ है । वार्ता के अनुसार आप किसी और सम्प्रदाय के थे, लेकिन गोकुल आने पर गुसांईजी के दर्शन करके इसी सम्प्रदाय में आ गये । धन-हीन होने पर भिक्षा माँग कर जीवन चलाया । भावप्रकाश के अनुसार आप गौड़ देश में एक ब्राह्मण के यहाँ जन्मे थे । आप अविवाहित थे ।

माणिकचन्द हरिदास के जमाई---आपकी वार्त्ता संख्या २७ है । वार्त्ता के अनुसार स्त्री के गुसांईजी के भक्त होने के कारण आप भी गुसांईजी के भक्त हुए और दीक्षा ली ।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म नागर ब्राह्मण के यहाँ हुआ । द्वारिकाजी से लौटते समय गुसांईजी आपके यहाँ रहे और उसी समय आप गुसांईजी के सेवक हो गये ।

माधौदास कायस्थ सहारनपुर के---आपकी वार्त्ता संख्या १८ है । वार्त्ता के अनुसार पिताजी द्वारा अलग कर दिए जाने पर आपने गुसांईजी से दीक्षा ग्रहण की । बाद में ये माधौदास पर प्रसन्न हो गये और गुप्त धन इत्यादि भी बता दिया ।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म एक धनवान कायस्थ के यहाँ सहारनपुर में हुआ । आप किसी कार्यवश देहली आये वहाँ श्री गुसांईजी से भेंट हुई और उन्होंने भगवत्सेवा की आज्ञा दी, बाद में सहारनपुर आये ।

रामदास खंभाइच के---आपकी वार्त्ता संख्या ६५ है वार्त्ता के अनुसार श्री गुसांईजी के श्री नाथजी द्वार पधारते समय आपको उनके दर्शन हुए । आप गोवर्धननाथजी की सेवा करते । गुसांईजी की इन पर कृपा थी ।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म खंभाइच में एक ब्राह्मण के यहाँ हुआ आप वैराग्य दशा में रहते थे । कुछ दिनों बाद आप गुजरात के वैष्णवों के साथ गोपालपुर आए और गोवर्धननाथजी के दर्शन किए ।

रूप मुरारीदास क्षत्री---आपकी वार्त्ता संख्या ७ है । वार्त्ता के अनुसार आप बादशाह के यहाँ नौकरी करते थे । आपकी गोविन्द कुण्ड पर श्री गुसांईजी से भेंट हुई । उन्होंने इनको मन्त्र दिया । आपसे श्री गुसांईजी तथा गिरधरजी बहुत प्रसन्न थे ।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म अम्बाला में एक क्षत्री के यहाँ हुआ था। आप बादशाह के साथ शिकार को जाते थे। यह अकबर के समकालीन थे।

रूपचन्द नन्दा—आपकी वार्त्ता संख्या १७ है। वार्त्ता के अनुसार आप गुसांईजी के दर्शनों के लिए गोकुल आये और राघौदास गुजराती ब्राह्मण से मिले। गुसांईजी आपके घर आये थे और कई दिन रुके, एक बार फिर इनके घर पधारे, आप गुसाईंजी के मन के भाव भी जान जाते थे, गुसांईजी की आप पर कृपा थी।

भावप्रकाश के अनुसार आप एक धनवान क्षत्री के यहाँ आगरा में पैदा हुए। ये बालकपन में वैराग दशा में रहते थे। वासुदेवदास छकड़ा के कहने पर उन्हीं के साथ आप अडैल आये और गुसांईंजी से भेंट हुई और सेवक हो गये और बाद में आज्ञा मांग कर आगरे आ गये।

रोहिणीजी—दाऊजी की माता।

रति—कामदेव की स्त्री

राजपूत गरासिया—आपकी वार्त्ता संख्या ५३ है। वार्त्ता के अनुसार एक गांव में आपने गुसांईजी से दीक्षा ली, गुसांईजी तथा चाचाजी आपके घर पधारे थे।

भावप्रकाश के अनुसार आपका जन्म मही नदी के किनारे एक गाँव में एक राजपूत गरासिया के यहाँ हुआ। आप राजा के यहां हाँसिल बाकी लेते थे।

राघौदास—आपकी वार्त्ता संख्या २३४ है। वार्त्ता के अनुसार आपका जन्म जमुनावता में हुआ था। आप शील स्वभाव के थे। आपके पिता चतुर्भुजदास आपको श्री गुसांईजी के पास ले गये और सेवक बनाया था।

रूपा पौरिया—आपका वृत्त बा० वै० वार्त्ता संख्या १६६ में है। यह श्रीनाथजी के मन्दिर के द्वारपाल की सेवा करता था। श्री गोवर्द्धननाथजी इसको सानुभाव जताते थे। धोखे से श्रीनाथजी का घी खा लेने के कारण यह दूसरे जन्म में कुत्ता हुआ। एक बार श्री गुसाँईजी गोविन्दकुण्ड पर स्नान कर रहे थे जहाँ यह कुत्ता आया और श्री गुसांईजी के चरण स्पर्श कर मर गया। भावप्रकाश के अनुसार ये गोपालपुर में एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर पैदा हुये थे। जब ये बीस वर्ष के हुये तो माता पिता के मरने के कारण श्री गुसांईजी के सेवक हुये। श्री गुसांईजी ने इसे श्रीनाथजी की सिंघपौर की सेवा दी थी।

लाछाबाई—आपका प्रसंग बा० वै० वा० १० (भाइला कोठारी की वार्त्ता) में आया है। आप अपने भाई सहित 'धोत्रका' गाँव में रहती थी। गुजरात पर इसका राज्य था और बाज बहादुर इसका कर्मचारी था। एक बार किसी ने इससे श्री गुसांईजी की झूठी चुगली की परन्तु बाजबहादुर द्वारा गुसांईजी के महापुरुष होने का पता लगवा कर इसने उस चुगल खोर को मृत्यु की आज्ञा दी पर गुसांईजी के कहने पर उसे छोड़ दिया गया।

भावप्रकाश में आपके विषय में कुछ नहीं मिलता है।

लक्ष्मीदास दोषी—आपका वृत्त वा० वै० ५० में है। एक बार गुसांईजी गुजरात जाते समय एक गाँव में ठहरे वहीं लक्ष्मीदास ने दीक्षा ली थी। ये द्रव्यपात्र थे और आप गुसांईजी के बड़े कृपा-पात्र थे। गुसांईजी के साथ एक बार द्वारका गये थे।

भावप्रकाश में आपके बारे में कोई विशेष वृत्त नहीं है।

वीरां—आपका वृत्त वा० वै० वार्त्ता ५ (नारायणदास की वार्त्ता) में है। आप नारायणदास की स्त्री थीं। आप बड़ी रूपवती थीं तथा आने वाले वैष्णवों के ठहरने आदि का प्रबन्ध आप ही करती थीं। ये वैष्णवों से पर्दा नहीं करती थीं।

आपने गौड़ देश में एक कायस्थ के घर जन्म लिया था। जब आप नौ दस वर्ष की हुई तब नारायणदास से आपका विवाह हुआ था।

विट्ठलदास कायस्थ—आपका वृत्त वा० वै० वार्त्ता ६ में है। आप बादशाह के पास नौकर रहे थे। इन्होंने दरबार में यह प्रगट नहीं किया कि वे वैष्णव हैं। बंदीखाने में कोड़ों से देह सड़ने पर भी इन्होंने अपनी वैष्णवता नहीं प्रकट की। इस प्रकार स्वरक्षा के लिए धर्म का नाम लेना आपने उचित नहीं समझा एक बार श्री गुसांईजी श्री जगन्नाथरायजी पधारे। उनके दर्शन के लिए आप नारायणदास सहित आए और फिर विट्ठलदास नारायणदास के पास नहीं रहे। गुसांईजी के साथ ही उस देश से चले आये। भावप्रकाश में आपके विषय में लिखा है कि आप दिल्ली से दो एक कोस पर एक गाँव है वहाँ एक कायस्थ के घर पैदा हुए थे। अपने पिता के मरने पर ये यात्रा के लिए चले पहले मथुरा गए और फिर गोकुल आये गोकुल में ठकुरानी घाट पर आपने गुसाँईजी के दर्शन किए और नाम पाया आप प्रति वर्ष गुसांईजी के दर्शन के हेतु गोकुल आते थे जब इनका सारा द्रव्य समाप्त हो गया तब यह नौकरी करने के विचार से गौड़ देश को फिर आये थे।

स्यामदास आंजना कुनबी—आपका वृत्त वा० वै० वार्त्ता ४४ में है। एक बार गुसांईजी रनछोरजी के दर्शनार्थ गुजरात गये। वहाँ से लौटती समय स्यामदास ने गुसांईजी के दर्शन किये और दीक्षा ली। गुसांईजी उस गाँव से पुनः आपको लेकर रनछोरजी गए। आप गुजरात में ही रहे परन्तु बाद में आकर गुसाँईजी के पास ही रहने लगे। भावप्रकाश में कोई विशेष बात नहीं है।

हरजी कोठारी—आपका वृत्त वा० वै० वार्त्ता ९ में है। आपका विवरण कवियों के प्रकरण में आ चुका है।

हतित (राक्षस)—आपका वृत्त वा०, वै० वार्त्ता ७० में है। आप पतित के भाई थे। ये दोनों राक्षस भाई गुजरात में महीकांठा नामक स्थान में एक खोर में रहते थे। गुजरात जाते समय चाचा हरिवंश ने इनका उद्धार किया। गोकुल पहुँचने पर गुसांईजी ने इन दोनों के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाया और पाप से डरते रहने का उपदेश दिया।

भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

हरिदास खवास—आपका विवरण वा० वै० वार्त्ता १५ में है। मूल वार्त्तानुसार आप गुसांईजी की खवासी करते थे। श्री गुसांईजी ने आपको कृष्ण भट्ट के पास उज्जैन भेजा था क्योंकि आपकी 'श्री भागवत' सुनने की इच्छा थी। आपकी श्री गुसांईजी में बड़ी श्रद्धा थी। भावप्रकाश के अनुसार आपने मथुरा में एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। एक बार मथुरा में महामारी फैलने के कारण मां-बाप का देहान्त हो गया। तब यह श्री गुसांईजी की शरण गए।

हरिदास बनिया—आपका वृत्त वा० वै० वार्त्ता संख्या २६ में है। आप मेरता के निवासी थे। एक बार जब श्री गुसांईजी द्वारका जा रहे थे, इन्होंने अपने परिवार सहित मेरता ग्राम के बाहर आपसे दीक्षा ली थी। द्वारका से लौटते समय गुसांईजी आपके यहाँ रुके थे। भावप्रकाश से आपके ऊपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

नोट—इन सेवकों के सम्बन्ध में वार्त्ता में जो कुछ लिखा है उससे अधिक सम्प्रदाय में उपलब्ध सामग्री से और कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनका शरणकाल भी केवल अनुमान के आधार पर ही निश्चित किया जा सकता है। पर इसकी आवश्यकता इसलिये नहीं है कि ये सब श्री गुसांईजी के सेवक थे और उनके समकालीन थे तब फिर अनुमानित शरण-काल की कोई आवश्यकता भी नहीं रह जाती है और उसका कोई महत्व नहीं है। अनुमानित शरण-काल निकालने में कोई कठिनाई नहीं है। इनके सम्बन्ध में अन्य वृत्त इनका वंश या जन्म स्थान ठीक न ज्ञात होने के कारण नहीं जाना जा सकता है। ऐसा लगता है कि सम्प्रदाय में इनके ऐहिक वृत्त को वह महत्व नहीं दिया गया जो इनके शरण आने के पश्चात् श्री गुसांईजी की अथवा श्रीनाथजी की सेवा की। वार्त्ताकार ने भी केवल ऐसे ही आचरण को लिपिवद्ध किया है और सम्प्रदाय में भी इनका उल्लेख उसी के निमित्त बराबर होता चला आया है। वार्त्ता के उल्लेख को अन्य विरोधी प्रमाणों के अभाव में अविश्वास की दृष्टि से देखने से भी कोई लाभ नहीं है और उसका सम्प्रदाय में जो इतने दिन से उद्धरण होता चला आया है वह भी एक प्रमाण ही है कि सम्प्रदाय में इस नाम के व्यक्ति हुये थे, जिनका चरित्र स्मरणीय और अनुकरणीय माना गया है। जीवन वृत्त के क्रमिक विकास के लिए वार्त्ता के सभी उल्लेख अपूर्ण हैं।

भक्तमाल और वार्त्ता साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

लालमती देवीजी—भक्तमाल छप्पय १५, पृष्ठ संख्या ६२३।

नवलकिशोर प्रेस के सन् १६५१ के संस्करण में इनके नाम के सामने देवीजी छाप दिया गया है जो ठीक नहीं है। जिन्हें देवीजी लिख दिया गया है, वह वार्त्ता दोसौ बावन के तुलसीदासजी जलघरियां हैं जो लालमती उपनाम से कविता करते थे और जिनको श्रीगुसांईजी अपने आठवें पुत्र के समान मानते थे। इनके सम्बन्ध में वार्त्ता और भक्तमाल दोनों के वर्णन में साम्य है। दोनों ग्रन्थों में इन्हें यमुना, बंसीवट तथा व्रज का प्रेमी बताया गया है।

लक्ष्मी व० प्रेस बम्बई संवत् १६७८ के संस्करण में 'बास अटल वृक्ष विपिन दृढ़ करि सो नगरी कियो' पाठ है और नवलकिशोर प्रेस के इस संस्करण में नगरी के स्थान पर 'नागरि' पाठ है जिससे यह जलघरियाजी लालमती देवी बना दिए गए हैं। दूसरे इनको जो भक्तमालकार ने वृन्दावन में अटल बास करा दिया है, वह भक्तमालकार पाकिस्तान बनने के पश्चात् वृन्दाबन आए हैं।

माधवदासजी—(पृष्ठ ६२२)

इनके प्रसंग में जो कुछ भक्तमाल में लिखा है अर्थात् अन्त समय आगरे से वृन्दावन ले जाने की बात और फिर इनका बीच में चेतन होकर वहाँ न जाने की इच्छा प्रगट करना इत्यादि यह सब चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के संतदास और प्रभुदास भाट सिंहनंद की वार्त्ता में मिलता है।

संतदास की वार्त्ता में वृन्दावन के स्थान पर गोकुल है और प्रभुदास भाट की वार्त्ता सिंहनंद से पृथोदक। संतदास की वार्त्ता में माधवदास की तरह वे गए नही है और दोनों आगरे के हैं तथा भक्तमाल के 'जरे वास आवै प्रिय पियको न भाइयैं' की जगह 'श्री गोकुल जाइ कहा राख उठाऊँ' पाठ है। भाव दोनों का एक है। किसने कहाँ तक किससे लिया है। यह विचारणीय है। इसमें भक्तमाल और वार्त्ता दोनों की शैली के भेद पर भी विचार करना होगा।

श्री भगवंतजी—माधवदास के पुत्र (पृष्ठ संख्या ६१६)

यह २५२ वैष्णवन की वार्त्ता के रामरायहित भगवानदास हैं। जिनके पिता का नाम भक्तमाल के अनुसार माधोदास है और छप्पय में जो लिखा है उससे वार्त्ता के विवरण की सम्पूर्णतया पुष्टि होती है। छप्पय में 'अननि भजन रस रीति पुष्ट मारग करि देखी। विधि निषेध बल त्यागि पागि रति हृदय विशेषी' से इनका पुष्टिमार्गी होना भी सिद्ध है। इनके सम्बन्ध में जो कुछ वार्त्ता में है। 'वही भक्तमाल की टीका में ज्यों का त्यों है।

आलोचना—भक्तमाल के आधार पर यदि वार्त्ता का विवरण लिया गया होता तो इनके बाद के नाम को छोड़ने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है क्योंकि वार्त्ताकार को जहाँ बाप का नाम मिल गया है वहाँ उसने उसका अवश्य उल्लेख किया है।

श्री रामरायजी—(पृष्ठ ६१८)

वार्त्ता और भक्तमाल दोनों में यह सारस्वत ब्राह्मण लिखे हैं और कीर्तन प्रेमी बताए गए हैं। भक्तमाल में लिखा है कि जिस किसी ने इनसे द्रोह किया, उसकी पगड़ी नीचे गिर गई। भक्तमाल के टीकाकार ने इसका सम्बन्ध किसी सभा से जोड़ा है। वार्त्ता में यह प्रसंग है नहीं। यदि इसका व्यावहारिक अंश लें और घटना विशेष से सम्बन्ध न जोड़े, तो 'पागखसि परी' का अर्थ होगा उसे नीचा देखना पड़ा है।

यहाँ भी यदि भक्तमाल से यह प्रसंग लिया गया होता, तो वार्त्ताकार सेवक के महत्व को बढ़ाने के लिए इसे कभी न छोड़ देता।

श्री रामदासजी—(६१४)

वार्त्ताओं में चौ० वै० वार्त्ता में ५ रामदास नाम के सेवकों की वार्त्ताएं हैं। उनमें से किसी भी वार्त्ता में वृच्छवन के रामदास का उल्लेख नहीं है और न जो कुछ प्रियादासजी ने अपनी टीका में लिखा है उसका उल्लेख है। वर्त्ताओं के प्रसंग और भक्तकाल ने इस भक्त की टीका के प्रसंगों की परस्पर तुलना करने पर जो कुछ प्रियादासजी ने रामदासजी के लिए लिखा है वहीं दोसौ बावन वैष्णवन फी वार्त्ता संख्या १६० में एक तादृशी वैष्णव की वार्त्ता में है जहाँ वैष्णव ने व्याह की लग्न वैष्णव के सत्कार में निकाल दी है और वैष्णवों को व्याह की सामग्री में से भोजन कराया है। भक्तमाल में केवल इतना ही है कि इन्होंने भंडार में से ताला खोलकर वैष्णवों को एक गठरी भर सामग्री दे दी है। वार्त्ता में परीक्षा दो वार है क्योंकि उनका सम्बन्ध दो व्यक्तियों से है। यहाँ केवल रामदास की साधु-सेव की परीक्षा ली गई है।

श्री गिरधर ग्वाल—(पृष्ठ ६१३)

इनके प्रसंग की व नाम की कोई वार्त्ता नहीं है। गोपीनाथदास ग्वाल की वार्त्ता है जिसमें न वह मलपुरे का रहने वाला है और न रास में उसने दान दिया है।

कन्हरदास—(पृष्ठ ६०८)

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में किसी कान्हदास की वार्त्ता है, पर भक्तमाल के विवरण से इसके प्रसंग भिन्न हैं।

संतदास माधवदास—(पृष्ठ ६०७)

संतदास की वार्त्ता ८४ वै० वार्त्ता में है और माधोदास ८४ और २५२ दोनों में अलग-अलग है, पर भक्तमाल के संतदास माधोदास से यह दोनों भिन्न हैं। इनका इतिवृत्त वार्त्ता से बिल्कुल नहीं मिलता है।

श्री भगवानदास—(पृष्ठ ६०४)

इनके सम्बन्ध में प्रियादासजी ने अपनी टीका में लिखा है कि 'पृथ्वीपति' ने इन्हें माला, तिलक को न धारण करने की आज्ञा दी थी, पर इन्होंने उसे न छोड़ा, यह अपनी टेक के पक्के थे। इस पर बादशाह इनसे प्रसन्न हो गया। इन्होंने 'हरदेव' का मन्दिर भी बनवाया था।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि मूल छप्पय में यह 'माला प्रसंग' नहीं है। यह प्रियादासजी ने टीका में ही लिखा है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में एक पठान के

बेटा की वार्त्ता में यही प्रसंग आया है और उसमें शेरशाह पातसाह का उल्लेख है। यह हरदेव का मंदिर गोवर्द्धन में है मथुरा में नहीं।

स्वामी नारायणदास (६०१)--

जिनका उल्लेख भक्तमाल में है। वे बद्रिकाश्रम से मथुरा आए थे। वहीं केशवदेवजी के मंदिर के द्वार पर रहते थे और वहाँ जूतों की रक्षा करते थे।

वार्त्ता में कई नारायणदास नाम के सेवकों की वार्त्ताएं हैं। ८४ वै० की वार्त्ता में चार नारायणदास नामी सेवकों की वार्त्ताएं हैं और २५२ वैष्णवन की वार्त्ता में भी चार नारायणदासों की वार्त्ताएँ हैं। पर वार्त्ता का विवरण भक्तमाल की टीका से बिल्कुल नहीं मिलता है। बद्रिकाश्रम जाने का प्रसंग वार्त्ता में श्री गुसांईदास सारस्वत की वार्त्ता में है। वहाँ भी इससे भिन्न है। गुसांईदास बद्रीनाथ गए थे और नारायणदास बद्रीनाथ से मथुरा आए हैं। यह अन्तर भी पृथक् ही है।

गदाधरदास (८६७)—

भक्तमाल के गदाधरदास बुरहानपुर के रहने वाले हैं और वार्त्ता ८४ के कड़ा मानिक-पुर के दूसरे भक्तमाल की टीका और वार्त्ता के प्रसंग में बहुत अन्तर है। भक्तमाल में इनका ऊँचा लालबिहारी का मन्दिर था। वार्त्ता में यह कुछ नहीं है। भक्तमाल में दिन-भर में सब सामग्री खर्च कर देते थे, पर इनके नौकर कुछ बचा रखते थे। एक दिन इन्होंने साधु-सेवा में वह भी खर्च करवादी है और बाद में कोई इनके यहाँ दो सौ रुपये भेंट रख गया है। वार्त्ता में यह भेंट चार रुपये से आरम्भ हुई है और वनजारे के १०० रुपये तक सीमिति है जिसका उन्होंने भोग लगवा दिया था। दोनों प्रसंग भिन्न हैं।

कृष्णदास पयहारी जी (८६५)—

भक्तमाल में इन्होंने गुफा के द्वार पर आए सिंह को अतिथि मान कर अपनी टाँग काट कर देदी है। वार्त्ता में जाड़ा कृष्णदासजी ने देवी के यहाँ बकरे की बलि देने वालों को सिंह पकड़ कर दे दिया है। सिंह दोनों प्रसंगों में समान है, शेष भिन्न है।

द्वारकादास (८६३)—

भक्तमाल के द्वारकादास जी रामचन्द्र के अनन्य भक्त हैं और कील्हदेव के शिष्य हैं तथा कूकस गाँव के रहने वाले थे।

वार्त्ता (दो सौ बावन संख्या २१५) के द्वारकादास भावप्रकाश में जखिन गाँव के रहने वाले थे और मूल के अनुसार शील गाँव के रहने वाले थे और कृष्णजी के प्रेमी हैं। दोनों में यह बड़ी निष्ठा के भक्त हैं अन्यथा नाम साम्य के अतिरिक्त और कोई समता नहीं है।

कृष्णदासजी (८६०)—

भक्तमाल के कृष्णदास सुनार हैं और नृत्य अच्छा करते हैं। वार्त्ताओं में चौरासी में ६ कृष्णदास और ३ दोसौ बावन में हैं, पर किसी भी कृष्णदास के सम्बन्ध में नृत्य और नूपुर का प्रसंग नहीं है। यह प्रसंग दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में गोविंददास खवास की वार्त्ता में इसी प्रकार है। वार्त्ता में गुसांईजी का उल्लेख अधिक है।

हरिदास (८८३)—

वार्त्ता दोसौ बावन में दो हरिदास हैं जिनकी वार्त्ताओं में भक्तमाल के श्री हरिदास जी के वर्णन में से कोई भी अंश नहीं है परन्तु वार्त्ता १०३ दो सांचोरा भाई की वार्त्ता में धड़ से सिर जोड़ने की वार्त्ता है। भक्तमाल में एक ठग के बेटी के साथ सोने की बात लिखी है उस पर भी वैष्णव को क्रोध नहीं आया है। यह प्रसंग किसी वार्त्ता में नहीं है। इसके स्थान पर एक साहूकार के बेटा की बहू की वार्त्ता संख्या ४३ में कुछ सन्देह का उल्लेख है। तीसरे इनके भाई 'गोविन्द' वंशी अच्छी बजाते थे और उन्होंने बादशाह के सामने वंशी बजाने से मना कर दिया था। ऐसा प्रसंग कुम्भनदास गोविन्द स्वामी सबकी वार्त्ता में मिलता-जुलता है।

आलोचना—ग्राउस ने कृष्णदास की वार्त्ता पर ही आपत्ति की है। यदि कहीं भक्तमाल का यह प्रसंग पढ़ लिया होता, तो फिर आप ऐसा न लिखते।

वीठलदास (८८१)—

भक्तमाल के इस वीठलदास का कोई भी विवरण दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ६ से नहीं मिलता। केवल नाम साम्य है।

कल्यानसिंहजी (पृष्ठ ८८१)—इनका भी नाम साम्य वार्त्ता संख्या १०८ में कल्यान भट्ट से मिलता है।

श्री हरिवंशजी (८७९)—

इस नाम के चाचा हरिवंशजी की वार्त्ता है। पर हरिवंशजी की वार्त्ता का भक्तमाल के हरिवंश से कोई साम्य नहीं है। इसमें हरिवंशजी निष्किंचन भक्त कहे गये है। ऐसे ही २५२ वैष्णवन की वार्त्ता में एक ऐसे वैष्णव की वार्त्ता है जिसमें दरांत बेचकर भेंट रक्खी थी, वार्त्ता संख्या १३८।

आसकरनजी (८७६)—

भक्तमाल में आशकरण के विषय में निम्नलिखित उल्लेख हैं:—

(१) मोहन उप नाम लगा कर कविता लिखते थे।

(२) वे पृथ्वीराज के वंशज, भीम के पुत्र थे तथा कील्हदेव के शिष्य थे।

(३) सदाचार में चतुर।

(४) उच्चकोटि के पद रचयिता थे।

(५) सीतापति, राघासुवर के भजन का इनका दृढ़ नियम था।

प्रियादास की टीका में—

(१) मोहन जी इनके ठाकुर हैं।

(२) दस घड़ी मन्दिर में रहते थे और कोई जा नहीं पाता था।

(३) संयोग से नरवर में बादशाह आया उसकी खबर भी वहाँ तक नहीं गई।

(४) बड़े सेनापति को भेजने पर उसको भी वहाँ नहीं जाने दिया गया। इस पर बादशाह स्वयं मन्दिर में गया और जब पूजा समाप्ति हुई और तब उसने इनको ध्यान मग्न देखकर इनकी एड़ी काट दी पर इनको पता न चला।

(५) पूजा समाप्त करके, बादशाह को राजा ने विधिवत् प्रणाम किया।

(६) आशकरण की मृत्यु के बाद बादशाह ने इनके ठाकुरजी के भोग का प्रबन्ध कुछ गाँव देकर कर दिया।

वार्त्ता में आशकरण—

इस वार्त्ता में इसके बहुत से प्रसंग हैं। इन प्रसंगों में से पहला प्रसंग मिलता है, दूसरा वार्त्ता में नहीं है। तीसरा भी मिलता है क्योंकि सेवा करते थे। चौथा भी एक ही है। पाँचवें में भक्तमाल में जहाँ थे 'सीतापति राधासुवर' दोनों के भक्त बताए गए हैं। वहाँ वार्त्ता में केवल मोहन के।

प्रियादास की टीका में—

इनके ठाकुर का नाम मोहन ठीक है। वार्त्ता में भी यही है। सेवा कितनी देर करते थे, इसका वार्त्ता में उल्लेख नहीं है। वार्त्ता में बादशाह की भेंट का उल्लेख नहीं हैं और न इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके ठाकुर के लिए गाँव देने की बात है।

इससे अधिक वार्त्ता में इनके संगीत प्रेमी और दानी होने का अधिक उल्लेख है और श्री गुसांईजी के सेवक होने का तथा दक्षिण के किसी राजा के युद्ध का भी उल्लेख है जिसमें इन्होंने मानसी करते हुए युद्ध किया था। इनके तानसेन को २००० रुपये और एक घोड़ा देने का उल्लेख है तथा श्री गुसांईजी को एक लाख की हुंडी देने का।

दोनों की तुलना-

दोनों के प्रसंगों की तुलना करने से यह लगता है कि वार्त्ता में पुष्टि मार्गी तानसेन, श्री गुसांईजी सम्बन्धी वृत्त की अधिकता है। जो वार्त्ता के दृष्टिकोण के अनुकूल ही है और भक्तमाल में जो सेवा में तत्पर होने की बात कही गई है, वह वार्त्ता में मानसी के रूप में आगई है। अब रही बादशाह की बात वह भी वार्त्ता के प्रसंग में अनुकूल है।

राजा आशकरण के वृत्त को दोनों ग्रन्थों से मिलाने पर मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि न तो वार्त्ताकार ने भक्तमाल से कुछ लिया है और न उद्धरण रूप से भक्तमालकार ने वार्त्ताओं से ही कुछ लिया है। पर प्रचलित वार्त्ताओं के जो अंश भक्तमालकार को अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण लगे हैं उन्हीं का उसने उल्लेख किया है।

राजा आशकरण के प्रसंग में इसी प्रबन्ध में अन्यत्र लिखा जा चुका है कि उनके प्राप्त पदों के आधार पर भक्तमाल का यह कथन दृष्टिकोण विशेष का परिणाम है कि वे 'सीतापति' के उपासक थे। यह सीतापति शब्द साम्प्रदायिक अभिरुचि के कारण ही आशकरणजी के साथ जोड़ा हुआ लगता है।

केवलरामजी (८७५)—भक्तमाल के केवलराम कृष्ण भक्त हैं पर वार्ता में इनका कोई वृत्त नहीं है और न इस नाम के किसी सेवक का उल्लेख ही है।

कान्हरदास (८७३)—इस नाम का कोई वार्ता में नहीं है। सामान्य प्रकाशित वार्ता में नाम है। इनके पद भी हैं। ये अहमदाबाद के हैं।

वीराबाई (८७२)—चौरासी में दामोदरदास कायस्थ की माँ का नाम वीराबाई है। भक्तमाल में केवल इनके नाम का उल्लेख है।

श्री प्रेमनिधिजी(८६४)—भक्तमाल की टीका में प्रियादासजी ने इनके 'अपरस' में यमुना जल लाने और अन्धकार में भगवान के प्रकाश द्वारा तट तक पहुँचाने की बात लिखी है। यह भी लिखा है कि यह आगरे के रहने वाले थे, कथा अच्छी कहते थे। इनके घर पर भले घर की औरतों की भीड़ लगी रहती, इस पर बादशाह से किसी ने चुगली करदी। उसने इन्हें बुलाकर बंदीखाने में बंद कर दिया। रात को जब वह सोया तो उससे स्वप्न में ठाकुरजी ने पानी मांगा पर पिया नहीं और कहा कि मैं तो प्रेमनिधि के हाथ का ही पीऊँगा। इस पर बादशाह ने इन्हें छोड़ दिया और कुछ देना भी चाहा। टीका के अनुसार 'फेर मारी लात अरे सुनी नहीं बात मेरी' भी लिखा है। इनके वर्णन में जो स्वप्न में भगवान ने बादशाह के लात मारी है। ऐसे प्रसंग कई वार्त्ताओं में आए हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में प्रभुदास भाट सिंहनद वाले की वार्त्ता में त्रिपुरदास कायस्थ की वार्त्ता में तथा दोसो बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ८९ में भी इसी प्रकार की मारपीट हुई है।

इनकी वार्त्ता डाकौर और बम्बई दोनों के २५२ वैष्णवन की वार्त्ता संस्करण में वार्त्ता संख्या ६५ है। इसमें भी यही सब प्रसंग हैं। भक्तमाल के इस प्रसंग को देखकर तो यह कहना पड़ता है कि इस शैली पर वार्त्ताकार का पूरा प्रभाव है।

माधव ग्वाल (८६१)

भक्तमाल के यह माधव ग्वाल भी पुष्टि भक्त प्रतीत होते हैं क्योंकि इन्हें 'तिलक दाम सो प्रीति हरिजन अति भावैं' लिखा है। वार्त्ता में किसी माधव दास ग्वाल की वार्त्ता नहीं है।

भक्तमाल पृष्ठ संख्या ८४८ पर एक छप्पय है जिसमें आशकरण चतुरदासजी, छीतर जी, लाखैजी, अद्‌भुतदासजी आदि के नाम कील्हदेव की शिष्य परम्परा में लिखे गए हैं। इन्हीं नामों के सेवकों की वार्त्ताएं २५२ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २४७, २४८, २४९, २५० राजालाखा (२४) बम्बई संस्करण और अद्भुतदास की वार्त्ता कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में (८४) वैष्णवन की वार्त्ता में हैं।

श्री हरिदासजी (८४२)—इसमें जो वृत्त लिखा है, वह २५२ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ३ में कृष्ण भट्ट की वार्त्ता से साम्य रखता है। कृष्ण भट्ट की देह उज्जैन से गोकुल जाते हुए लहरज गाँव में छूटी थी और इनकी काशी से वृन्दावन आते हुए मार्ग में। कृष्णभट्ट को उसी दिन श्री रामदास भीतरिया ने मंदिर में दर्शन करने के लिए जाते हुए देखा। इस प्रकरण में हरिदासजी को सुन्दरदासजी ने राधावल्लभजी के दर्शन करते देखा था।

तूंवर भगवान का भक्तमाल पृष्ठ ८३९ में जो वृत्त दिया है, वैसा वृत्त कुछ हेर-फेर से प्रसाद के सम्बन्ध में ८४ वैष्णवन की वार्त्ता में सुन्दरदास माधौदास की वार्त्ता में आया है।

स्वामी श्री चतुरोनगन—(नागा चतुरदासजी) पृष्ठ संख्या ८२५।

भक्तमाल की टीका में लिखा है कि अपनी नवयुवती स्त्री अपने गुरू को भेंट करके ब्रज में आगये थे। वहां अनेक स्थानों पर घूमते-फिरते थे। सबेरे वृन्दावन में दर्शन करते थे

फिर आठ बजे प्रातःकाल मथुरा में केशवदेव के और ११ बजे वछगाँव में। और फिर गोवर्द्धन और राधाकुण्ड होकर संध्या को वृन्दावन आ जाते थे। वार्त्ता साहित्य में इनका नाम श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्त्ता में तथा कोकिलावन की बैठक के चरित्र में मिलता है। भक्तमाल में जो विवरण दिया है, वह उनकी आरम्भिक अवस्था का है। वार्त्ता के अनुसार इनको श्रीनाथजी ने टोड के घने में दर्शन दिए हैं और कोकिलावन में श्री महाप्रभुजी ने खीर खिलाई है और आशीर्वाद दिया है कि तुम्हारी १५० वर्ष की आयु होगी और मेरे नाती तुम्हें शरण में लेंगे। पीछे से 'माला प्रसंग' के अवसर पर यह शरण आए हैं। इन्होंने गोकुलनाथजी से सम्बन्धित कई पद बनाए हैं जो सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। भक्तमाल का चतुरानागा का विवरण वार्त्ता के विवरण से भिन्न है।

श्री कूवाजी—केवलदास (पृष्ठ संख्या ८२९) भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में लिखा है —

(१) इनके घर पर संत आए पर कुछ था नहीं, सो यह बनिये से कुंआ खोदने का वचन देकर सामान ले आए और इन्होंने उन्हें खूब अच्छी तरह जिमाया।

(२) कुंआ खोदने पर यह मिट्टी के नीचे दब गये और एक महीने तक दबे पड़े रहे। वहाँ से 'राम नाम' का शब्द सुनकर लोगों ने फिर आपको निकाला।

(३) आपके मिट्टी से दबने के कारण कूवड़ हो आया था और आप कुवाजी कहलाने लगे थे। कुंए से निकलने पर आपकी बड़ी पूजा हुई।

(४) कूवाजी ने एक दिन अपने अतिथि की भगवान की मूर्ति देखकर उस विग्रह से वहीं अचल होने को कहा और वह प्रयत्न करने पर भी न उठी।

(५) आपने द्वारका में गोमती और सागर संगम को पुनः स्थित कर दिया।

(६) संतों पर रोष और भाई के साथ पक्षपात करने के कारण इन्होंने अपनी स्त्री को निकाल दिया था। फिर अकाल के दिनों में उसे भोजन दिया था।

(७) भक्तमाल में कूवाजी राम-भक्त हैं।

२५२ वैष्णवन की वार्त्ता में एक 'कुम्हार की वार्त्ता' में यह प्रसंग इस प्रकार आए हैं—

(१) गुसांईजी की शरण में यह कुम्हार गुजरात यात्रा के समय आया था।

(२) चाचा हरवंशजी से धन लेकर इसने कुंआ खोदने का वचन दिया था।

(३) कुंआ खोदने पर यह मिट्टी में दब गया और श्री वल्लभ, विट्ठल का नाम लेने से वह कुछ पोली हो गई थी जिससे यह दबने से बचा रहा।

(४) चाचा हरिवंश ने आकर मिट्टी निकलवा कर इसे जीवित निकाला।

(५) प्रसंग दो में इसकी स्त्री का भाई आया और इसने लड्डू किये। जब यह पानी लेने गई तो कुम्हार ने उन्हें अतिथि वैष्णवों को दे दिए। इस पर यह रुष्ट हुई और इसे घर से निकाल दिया गया। तब इसने दूसरा पति कर लिया।

(६) अकाल में यह दोनों भूखे मर रहे थे तो इन्हें फिर इस कुम्हार ने भोजन दिया।

भक्तमाल और वार्त्ता दोनों के प्रसंगों की तुलना का परिणाम यह है—

(१) बनिए से अतिथि सत्कार के लिए इसने रुपया लिया था और कुंआ खोदा था और उसमें दब गया था। भेद यह है कि भक्तमाल में इसका नाम दिया है, वार्त्ता में नाम नहीं है। वार्त्ता में यह गुसांई जी का गुजराती सेवक है। भक्तमाल में यह राम-भक्त है

और तोते की तरह राम नाम रटता है और वार्त्ता में श्री वल्लभ 'विट्ठल' नाम लेने से मिट्टी पोली पड़ गई है जिससे यह दब कर मरने से बच गया है। भक्तमाल में यह एक मेहराव के प्रभाव से बचा है और इसके पास पानी भी रक्खा मिला था। दूसरे प्रसंग में भक्तमाल और वार्त्ता में साम्य है। दोनों में स्त्री ने अपने 'भाई' के लिए विशेष भोजन बनाया है और वैष्णवों के लिए सामान्य। भक्तमाल में यह खीर है और वार्त्ता में 'लड्डुआ'। दोनों में यह पानी भरने गई है। इतने में यह विशेष खीर अथवा लड्डू बाँट दिए गए हैं। भक्तमाल और वार्त्ता दोनों में पीछे से तकरार हुई है और इसे घर छोड़ना पड़ा है। भक्तमाल में यह अपने बच्चों को लेकर चली गई है और वार्त्ता में इसने दूसरा पति कर लिया है। दोनों में अकाल में यह फिर अपने पति के पास दया के लिए आई है और बाहर रक्खी गई है। भक्तमाल में इसे झाड़ू देना पड़ता था, पर वार्त्ता में यह नहीं है। भक्तमाल में इसके ठाकुर जी को अचल कर देने और गोमती सागर संगम को पुनः जीवित रखने का उल्लेख है जो वार्त्ता में नहीं है। वार्ता में इसका नाम न होने का कारण यह है कि सम्प्रदाय में बुरे नाम न लेने का चलन था। इसीलिए 'एक क्षत्राणी की वार्त्ता' एक कुम्हार की वार्त्ता मिलती है।

भक्तमाल पृष्ठ संख्या ८२२ पर जो एक छप्पय दिया हुआ है जिसमें छीत स्वामी यशवन्तजी, रामदास जी, गोविन्दजी, गदाधरजी, श्रीजन, भगवानजी, श्यामदासजी के नाम हैं। इन सेवकों की वार्त्ताएं भी मिलती हैं। भक्तमालों में भी इन नामों की सूची के अतिरिक्त कुछ विशेष नहीं लिखा है। प्रियदासजी ने इस पर कोई 'टीका' नहीं की है।

भक्तमाल पृष्ठ ८२३ के इसी प्रकार के दूसरे छप्पय में और २३ नाम लिखे हैं जिनमें से, कृष्णदास, दयाल, राघो, दामोदर, मोहन की वार्त्ताएं मिलती हैं।

भक्तमाल पृष्ठ ८२० पर श्री नारायणदास नर्तक के सम्बन्ध में लिखा है कि यह भगवान की मूर्ति के सम्मुख नृत्य करते थे और 'हंडिया सराय' के हाकिम के सामने भी इन्होंने माला तुलसी की देखकर ही नृत्य किया था और मीर की ओर देखा भी नहीं तथा मानसी में प्राण भेंट करके नृत्य करते ही शरीर छोड़ दिया था।

वार्त्ता साहित्य में गोविन्द स्वामी श्रीनाथजी के सामने नृत्य करते थे और कृष्णदास द्वारा लाई हुई वैश्या ने नृत्य करते-करते प्राण छोड़ दिए थे।

रतनावलीजी (पृष्ठ ८०३)

इनके सम्बन्ध में जो भक्तमाल की टीका में लिखा है, वहीं ज्यों का त्यों वार्त्ता संख्या २२७ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में लिखा है। भक्तमाल में एक प्रसंग यह अधिक है कि एक बार मानसिंह और उनके छोटे भाई माधोसिंह नाव पर जा रहे थे सो वह नाव डूबने लगी, 'तब इन्होंने पूछा क्या करना चाहिये'। छोटे भाई ने कहा कि मेरी स्त्री भक्त है, उसी का ध्यान करिए। दोनों ने कुछ देर ध्यान किया तो नाव डूबने से बच गई और मानसिंह ने घर आकर बहू का दर्शन किया।

वार्त्ता में लिखा है कि इसकी आस्था से प्रसन्न होकर मानसिंह ने दस हजार रुपया महीना भोग इत्यादि के लिए इसे राजकोष से देना आरम्भ कर दिया था। इस वार्त्ता के आधार पर वार्त्ता और भक्तमाल के प्रसंगों की एकता देखकर यह पता चलता है कि दोनों

लेखकों ने एक ही विषय और व्यक्ति को अपने-अपने ढंग से रक्खा है। भक्ति की दृष्टि से भक्त का ध्यान लाभप्रद है। 'राम ते अधिक रामकर दासा' और पुष्टि मार्ग की दृष्टि से सेवा के लिए खर्चा भी आवश्यक है।

भक्तमाल पृष्ठ ८०२ पर अजीज खाँ कौन है जिसने द्वारका पर चढ़ाई की। गुजरात के इतिहास में इसका उल्लेख नहीं है।

भक्तमाल पृष्ठ ७६६—श्री पृथ्वीराजजी–भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में लिखा है:—

(१) बीकानेर के राजा कल्याणसिंह के पुत्र भक्त और कवि, रानी को पहिचान न सके।

(२) मानसी सेवा करते थे–तीन दिन तक मन्दिर में विग्रह के दर्शन नहीं रहे।

(३) मथुरा में शरीर त्यागना।

(४) काबुल की चढ़ाई में अकबर की ओर से जाना।

(५) संस्कृत और ब्रज के पंडित।

(६) वेलि रुकमिनी श्यामलता, श्लोक, सवैया आदि के रचयिता।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २३८ पर आपकी वार्त्ता है जिसमें यही सब प्रसंग ज्यों के त्यों हैं। केवल बीकानेर पर शत्रु की चढ़ाई का उल्लेख भक्तमाल में नहीं है।

वार्त्ता और भक्तमाल दोनों में इनके काबुल की चढ़ाई का उल्लेख है। प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इस चढ़ाई को काबुल के स्थान पर 'अटक' बताया है। यहाँ विचारने की बात यह है कि यह भूल दोनों ग्रन्थों में ज्यों की त्यों है। इस सम्बन्ध में कई कल्पनाएं की जा सकती हैं। एक वार्त्ताकार ने भक्तमाल से यह प्रसंग ले लिया है। इसीलिए जो भूल भक्तमाल में है, वही वार्त्ता में है। इस प्रकार यदि प्रचलित वार्त्ताओं के आधार पर भक्तमालकार ने उस वृत्त को छंद वद्ध कर दिया है तो भी यह भूल होना स्वाभाविक ही है और यदि दोनों ने किसी और तीसरी जगह से यह वृत्त लिया है, तब भी यह भूल हो सकती है। पर इतिहास विरुद्ध कथन का प्रचलन कभी भी उचित न माना जायगा और वृत्त की प्रामाणिकता में सन्देह उत्पन्न करेगा। *

भक्तमाल पृष्ठ ७६८—में श्री नारायणदासजी के प्रसंग में भक्तमाल में जो भौजाई के ठंडा भोजन परोसने की बात लिखी है, वह बात चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ४२ में राजा दुबे माधो दुबे की वार्त्ता में रामकृष्ण हरिकृष्ण के प्रसंग में लिखी है। वार्त्ता में हरिकृष्ण के अष्टाक्षर मंत्र के प्रभाव से संस्कृत बोल लेने की बात और लिखी है।

भक्तमाल पृष्ठ ७८६—में गदाधर भट्टजी के सम्बन्ध में भक्तमाल में लिखा है कि इन्होंने चोर को चोरी किया हुआ माल उठवा दिया था—उसकी पोटरी खुद उठवाई थी। यही बात दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ११२ में 'एक दिल्ली के चोर' की वार्त्ता में है जिसमें श्री गुसांईजी ने चोरी की गठरी उठवा दी थी। पीछे सत्य बोलने के कारण वह चोर एक राजा के यहाँ दीवान हो गया है।

* ओझाजी ने इस जनश्रुति को अपने इतिहास में स्थान दिया है।

पृष्ठ ७७६ श्री गुसांई गोकुलनाथजी

मूल पर प्रियदास की टीका में जो धनी व्यक्ति के शिष्य होने के आग्रह का उल्लेख है। वह श्री गोकुलनाथजी के बचनामृत में श्री गुसांईजी के सम्बन्ध में चार सेवकों के सम्बन्ध में है। दूसरा प्रसंग इसमें कान्हा भंगी से कहकर श्रीनाथजी का वह भीत तुड़वाने का है जिसे गोकुलनाथजी ने बनवा दिया था। भक्तमाल की टीका के इस प्रसंग का विवरण श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में है। पर वहाँ भंगी का नाम कान्हा नहीं, मोहना है और यह भी लिखा है कि इस भीत के कारण मुझे 'विलछू' नहीं दीखता है।

भक्तमाल पृष्ठ संख्या ७७६ श्री गिरिधरजी

भक्तमाल में 'भ्राजमान' शब्द से यह पता चलता है कि भक्तमाल की रचना श्री गिरधरजी के समय में हुई थी।

भक्तमाल–पृष्ठ ७५६ में गोस्वामी तुलसीदास का उल्लेख है। प्रियादास की टीका में एक कवित्त में वृन्दावन में मदन गोपाल के दर्शन की बात कही गई। २५२ वार्त्ता में नन्ददास की वार्त्ता में प्रसंग यही है, पर वह स्थान गोवर्धन है।

भक्तमाल—पृष्ठ ७४३ श्री कृष्णदासजी चालक के सम्बन्ध में जो छप्पय है, उसमें २५२ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २५२ के जाड़ा कृष्णदास का उल्लेख है। उनके ग्रंथ इन्द्रकोप, पंचाध्यायी, भोजन के पद इत्यादि का उल्लेख है और आपका उपनाम गिरिराज धरन लिखा है। वार्त्ता में भक्तमाल से कई प्रसंग अधिक हैं।

(१) इनका गुसांईजी की परीक्षा लेने का विचार।
(२) श्री गुसांईजी के रोम-रोम में नवनीतप्रियजी के दर्शन।
(३) वसंत के पद।
(४) रूपसनातन से शास्त्रार्थ।
(५) सिंह पकड़ना।
(६) हितरिवंश जी से मिलाप।

वार्त्ता के सम्मुख भक्तमाल का प्रसंग अपूर्ण सा लगता है और संक्षिप्त परिचय सा लगता है।

भक्तमाल—पृष्ठ ७३१—मधुकरशाह-टीका के अनुसार ये ओड़छा बुन्देलखंड के राजा थे। इनका व्रत था कि जो कंठी, तिलक वाला होता था, उसके पैर धोकर पीते थे। दुष्टों ने एक दिन गदहे के कंठी पहना दी और माला डालदी। इन्होंने उसे भी वैसा ही सम्मान दिया।

२५२ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २४५ में (बम्बई संस्करण) यही प्रसंग इसी प्रकार से है। केवल इतना अधिक है कि श्री ठाकुरजी ने मधुकरशाह को प्रसन्न होकर दर्शन दिए थे और वर मांगने को कहा था। उस पर उसने अपना वैष्णवों में यही भाव रखने का वरदान मांगा।

भक्तमाल—पृष्ठ ७२९—जयमल—टीका में इनको मेड़ते का रहने वाला बताया है और यह लिखा है कि इन्होंने ऊपर एक बंगला बनवाया था जहाँ यह बड़े ठाठ से सेवा करते थे और मानसी सेवा करते थे।

वार्त्ता साहित्य में २५२ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २६ में हरिदास बनिया मेड़ता की वार्त्ता में है कि यह हरिदासजी के और अपनी बहिन के कारण सेवक हुआ था। पीछे गुसांईजी के रथ के आगे लेट कर इसने उनको मेड़ते बुलाया और सारे गाँव को वैष्णव कराया था। जयमल के प्रसंग में भी भक्तमाल का छप्पय और कवित्त केवल उल्लेख मात्र है। वार्त्ताकार ने पूरा इति वृत्त दिया है। इसमें नागजी भट्ट के पात्साह के पास भेजने तक की बात है।

भक्तमाल—पृष्ठ ७१२—मीराबाई–का प्रियादास ने बहुत लम्बा-चौड़ा वृत्त दिया है। इन्हें मेड़ते का बताया है और राना से व्याह बताया है साथ में गिरधारीगोपाल को भी पालकी पर ले गई है। ससुराल में मीरा ने देवी-पूजा नहीं की। इससे ससुराल वाले रुष्ट होगए। उसे एक एकान्त घर में डाल दिया और राना ने अपना दूसरा व्याह कर लिया। इधर मीरा पूजा और साधु-सेवा करती थी। ननद ने समझाया पर वह न मानी। इस पर उसे जहर दिया गया फिर राना ने मार डालने की धमकी दी। उसकी एकान्त वार्त्ता में भी सन्देह किया। एक साधु ने ईश्वर की आज्ञा कह कर भोग की इच्छा प्रकट की, पर वह मीरा की दृढ़ता और आस्था से परास्त और पराङ्मुख हो गया। फिर मीरा को देखने के लिए अकबर और तानसेन आये हैं। उसकी रूप सनातन से भेंट हुई है और अन्त में वह राना के अत्याचार से तंग आकर द्वारका चली गई है।

वार्त्ता साहित्य में मीरा का उल्लेख ८४ वैं० वार्त्ता में गोविन्द दुबे, कृष्णदास अधिकारी, रामदास पुरोहित की वार्त्ता में भी है और दो सौ बावन की वार्त्ता में अजबकुंवरिबाई की वार्त्ता में है। गोविन्द दुबे की वार्त्ता संख्या ४१ में यह लिखा है कि गोविन्द दुबे मीरा के यहाँ टिक गए थे सो श्री गुसांईजी के एक श्लोक से चल पड़े। रामदासजी पुरोहित से जब मीरा ने ठाकुरजी के पद गाने की बात कही है, तब उन्होंने उसका घर छोड़ दिया है। कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में इन्होंने मीरा द्वारा भेंट की हुई मोहरें नहीं ली हैं। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ९८ में अजबकुंवरिबाई की वार्त्ता में लिखा है कि यह और मीराँबाई दोनों एक साथ एक गाँव घर में रहती थीं। भक्तमाल में टीकाकार ने मीरा पर अधिक ध्यान दिया है जिससे यह प्रतीत होता है कि इनसे वह अधिक प्रभावित था। वार्त्ता में तो मीरा के उल्लेख मात्र हैं, कोई विवरण नहीं है, न वार्त्ता है, क्योंकि मीरा संप्रदाय सेविका न थी। वार्त्ता के अनुसार अजबकुंवरिबाई के साथ मीरा ने श्री गुसांईजी के दर्शन किए थे। भक्तमाल में मीरा को देखने अकबर गया था। इस हिसाब से यह घटना सम्वत् १६६१ से पूर्व की होनी चाहिए। गुसांईजी का प्रथम द्वारका जाने का संवत् १६०० है। इसलिए यह भेंट उस समय ही हो सकती है।

भक्तमाल–पृष्ठ ६९६—श्री नंददास—भक्तमाल में केवल एक छप्पय है और प्रियादास की कोई टीका नहीं। इसके अनुसार वे रामपुर ग्राम के रहने वाले और चन्द्रहास के बड़े भाई हैं। सुकुल शब्द से वंश का बोध होता है। वार्त्ता में इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनाएं मिलती हैं:—

(१) नंददासजी तुलसीदास के भाई और सनौढ़िया ब्राह्मण थे। तुलसीदासजी बड़े और नंददासजी से छोटे थे। नंददास बहुत विद्वान् थे। दोनों रामानंदीन के सेवक थे।

(२) नंददास को लौकिक विषय में बड़ी प्रीति थी, नाच बहुत देखते थे।

(३) द्वारका जाते यह मथुरा गये, वहाँ से सिंहनद में एक सुन्दरी के प्रतिदिन दर्शन करते थे और उसके पीछे-पीछे गोकुल तक आये, पर वे इन्हें इस पार ही छोड़ गये। श्री गुसांईजी ने इन्हें दैवी जीव जानकर बुला भेजा और दर्शन करते ही इनकी बुद्धि निर्मल हो गई।

(४) नंददासजी कवि थे।

(५) गोवर्धन में कीर्तन करते थे।

(६) तुलसी का इनको पत्र लिखना और इनका उत्तर।

(७) परासौली में इनकी तुलसीदास से भेंट और श्रीनाथजी की मूर्ति के रघुनाथ रूप में दर्शन।

(८) गुसांईजी की आज्ञा से नंददासजी ने अपनी भाषा-भागवत रास पंचव्यायी को छोड़कर सब जमुनाजी में डाल दी थी।

(९) गिरिराज के समीप ही इनका बादशाह अकबर से मिलना और रूप मंजरी से भेंट तथा उसका देहावसान।

वार्त्ता और भक्तमाल के विवरण की तुलना

भक्तमाल में यह रामपुर के निवासी हैं। वार्त्ता में इनका निवास स्थान नहीं लिखा है। इनका वंश शुक्ल है और यह चन्द्रहास के बड़े भाई हैं। वार्त्ता में यह तुलसीदास के छोटे भाई हैं।

डाक्टर दीनदयालु गुप्त ने अपने 'अष्टछाप' में सोरों जिला एटा को रामपुर कवि की जन्म-भूमि नहीं कही जा सकती है ऐसा माना है। आपने नंददास की जन्म-तिथि संवत् १५९८ के लगभग मानी है और निधन तिथि संवत् १६४३ से पूर्व। पहले के लिए जो आधार आपने लिया है, वह उतना सबल नहीं है। पर निधन तिथि के सम्बन्ध में आपका निष्कर्ष मान्य है।

वार्त्ता में इनके तुलसीदासजी के भाई होने का जो उल्लेख है, उसका समर्थन श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत की संवत् १७९६ की एक हस्तलिखित प्रति से होता है, इसलिए वार्त्ता का कथन प्रामाणिक है। इसी प्रकार तुलसीदास के प्रकरण में भक्तमाल की टीका में जो उन्हें वृन्दावन के मदनगोपाल की मूर्ति का राम के स्वरूप में दर्शन होता है, वह भी वचनामृत की इस प्रति से असत्य है और अप्रामाणिक प्रतीत होता है। इस प्रति में लिखा है कि जिस समय श्री गुसांईजी गोकुल में थे, उस समय उनके पाँचवें पुत्र श्री रघुनाथजी का व्याह था। व्याह के समय इनकी आयु पन्द्रह वर्ष की थी। श्री रघुनाथजी का जन्म संवत् १६११ में है। इसलिए विवाह संवत् १६२५ निकलता है। वार्त्ता के अनुसार श्री गोस्वामी तुलसीदास को रघुनाथजी के स्वरूप में श्री गुसांई ने उनके इष्टदेव के दर्शन कराए थे। वचनामृत की इस संवत् १७९६ की प्रति से भी इसकी पुष्टि होती है। अतः संवत् १६२६ में श्री गोस्वामी तुलसीदास अपने भाई से मिलने ब्रज आए थे तभी उनको गोवर्द्धननाथ के

दर्शन राम-रूप में हुए थे ।[1] भक्तमाल में जो कुछ तुलसीदास के सम्बन्ध में लिखा है वह वचनामृत की इस प्रति और वार्त्ता के अंतःसाक्ष्य के सम्मुख प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता । जब रामभक्त हिन्दी साहित्य के सर्व श्रेष्ठ कवि और संत के सम्बन्ध में भक्त माल के टीकाकार श्री प्रियादास का यह हाल है तो अन्य मार्गी कवि और संतों के सम्बन्ध में तो उनकी जानकारी और भी परिमित रही होगी। जब तक उनके कथन की ओर किसी समकालीन साक्ष्य से पुष्टि न हो जाय, तब तक उसे प्रामाणिक मानना तथा ऐतिहासिक उद्धरण के रूप में देना उचित न होगा ।

आलोचना—अपने इस अध्ययन में मैंने अष्टछाप के कवियों को इसलिए छोड़ दिया है कि उनके जीवन वृत्त और काव्य के सम्बन्ध में डाक्टर दीनदयालु गुप्त का वैज्ञानिक विस्तृत अध्ययन प्रकाशित हो चुका है परन्तु नंददास के वृत्त का सम्बन्ध तुलसीदासजी से होने के कारण मुझे यहाँ इस पर विचार करना पड़ा है ।

गोविन्द स्वामी (पृष्ठ ६५२)

प्रियादासजी की टीका में लिखा है कि आप स्वामी कहलाते थे, तथा श्रीनाथजी के साथ खेलते थे। आपने श्रीनाथजी के मंदिर में उनके दांव न देने के कारण गिल्ली मारी थी जिस पर आपको साधु ने मंदिर से निकाल दिया था ।

(२) श्री गोविन्द स्वामी कुण्ड के पास जाकर बैठे और कहा कि तुमने मुझे भले धक्का दिलवाया है, पर जब इधर से निकलोगे तो मैं बदला लूंगा । इस पर श्रीनाथजी को चिन्ता हुई और उन्होंने भोग नहीं खाया और श्री गुसांईजी से गोविन्द स्वामी को बुलाने को कहा ।

(३) तीसरे कवित्त में श्रीनाथजी ने गोविन्द स्वामी को शौच से लौटने पर अंकरौरियों से मारा है और गोविन्द स्वामी ने भी । गोविन्द स्वामी के देर तक न लौटने पर उनकी माता वहां आगई और यह दोनों छिप गए ।

(४) चौथे कवित्त में लिखा है कि एक दिन जिस समय भोग के थाल जा रहे थे, गोविन्द स्वामी मार्ग में बैठे थे । वे उन्हें मांगने लगे, तब थाल ले जाने वालों ने थाल पटक दिए और इस अनीति का विरोध किया । तब गोविन्द स्वामी ने कहा यह छोकरा खाकर पहले चल देता है तब फिर मैं इसे बन में ढूँढ नहीं पाता हूँ और मुझे कष्ट होता है । इसलिए ही मैं पहले मांगता हूँ ।

---

१. 'नाथ' शब्द के उल्लेख वाले प्रचलित दोहों से भी श्रीनाथजी में राम के दर्शन हुए की पुष्टि हो जाती है। सम्प्रदाय कल्पद्रुम (१७८६) में वे दोहे इस प्रकार हैं—

दो०—आज की छवि कहा कहों भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे धनुष बान लेहो हाथ ॥
मुरली मुकुट दुराय के धनुष बान लिये हाथ ।
अपने जनके कारने नाथ भये रघुनाथ ॥

वार्त्ता के अनुसार—

(१) यह आंतरी ग्राम के रहने वाले थे।

(२) कवि थे, पद बनाते थे। इनके पद श्री गुसांईजी को अधिक पसन्द थे। यह महावन में रहते थे पर वृन्दावन से गोकुल श्री गुसांईजी से मिलने आए थे।

(३) यह पहले सेवक करते थे, पर पीछे से अपने सब सेवकों को श्री गुसांईजी के सेवक करा देते थे।

(४) यमुना में स्नान नहीं करते थे। श्री यमुनाजी को यह स्वामिनी का स्वरूप मानते थे।

(५) श्रीनाथजी इनके साथ खेलते थे और यह उनके एकांत सखा थे।

(६) पगड़ी अच्छी बांधते थे और एक दिन मंदिर में यह श्रीनाथजी की पगड़ी सम्हालने लगे तो फिर भीतरियों ने आपत्ति की।

(७) एक दिन मंदिर में श्रीनाथजी ने इनके तीन कंकड़ी मारीं और इन्होंने उन्हें हाथ से लौटा दिया। वम्बई संस्करण २५२ वैष्णवन की वार्त्ता में आठ कांकरी मारीं लिखा है।

(८) श्रीनाथजी इनको घोड़ा वनाकर इन पर चढ़ते थे।

(९) श्रीनाथजी इन्हें भोग से पहले भोजन दिला देते थे।

(१०) यह कटु वात भी कह देते थे।

(११) महावन में गोकुलनाथजी इनके पद सुनने जाया करते थे।

(१२) एक बार यह केशोराय के दर्शन करने गए थे।

(१३) इनके एक लड़की थी और बहन का नाम करनबाई था।

वार्त्ता के भावप्रकाश वाले संस्करण से तो भक्तमाल के प्रसंग में और वार्त्ता में केवल ये बातें एकसी हैं:—

(१) श्रीनाथजी के साथ खेलते थे।

(२) श्रीनाथजी इनको पहले भोग दिला देते थे।

(३) भोजन इन्होंने पहले मांगा था।

(४) यह कवि, स्वामी और पद-रचना करने वाले संगीतज्ञ थे।

भेद—

(१) मन्दिर में श्रीनाथजी के गिल्ली मारने का उल्लेख भावना वाली प्रति में नहीं है। मूल बम्बई संस्करण में है।

(२) अंकरौरी का खेल वार्त्ता में नहीं है।

(३) इनकी माता का उल्लेख वार्त्ता में नहीं है। उसके स्थान पर बहिन और बेटी का है। वार्त्ता में इनकी बहन का नाम कान्हबाई है।

(४) भक्तमाल में इनके पाग अच्छी बांधने का उल्लेख नहीं है और न गोकुलनाथ जी के पद सुनने महावन आने का।

(५) भक्तमाल में कांकरी मारने का उल्लेख नहीं है। डाक्टर दीनदयाल गुप्त ने भी इनके सम्बन्ध में वार्त्ता में जो लिखा है, उसे स्वीकार कर लिया है और श्री गिरधरलालजी के वचनामृत के आधार पर इनकी निधन तिथि श्री गुसांईजी के लीला प्रवेश के समय सम्वत्

१६४२ विक्रमी मानी है। डाक्टर दीनदयालु ने भक्तमाल के इस अंकरौरियों की मारा-मारी के प्रसंग को जिसका वार्त्ता में उल्लेख नहीं है, कोई महत्व नहीं दिया है। भक्तमाल की टीका का यह प्रसंग वार्त्ता में क्यों नहीं है, इस पर विचार करना आवश्यक है जबकि वार्त्ता में भक्तमाल से कहीं अधिक प्रसंग दिये हैं। पहला कारण तो यह लगता है कि यह कांकरी वाला प्रसंग ही तो अंकरौरियों की मारा-मारी में नहीं बदल गया है, पर उसमें जंगल में शौच से लौटने का उल्लेख भी है। भक्तमाल और वार्त्ता के इस प्रसंग में जब भेद दिखाई दिया, तब एक बार तो इसे नवीन प्रसंग मान लेने की इच्छा हुई। पर इस उलझन के सुलझाने के लिए सम्प्रदाय की सेवा-प्रणाली में एक ऐसी विधि मिल गई जिससे कांकरी वाले प्रसंग की पुष्टि हो गई और इस भ्रम के लिए स्थान न रह गया। फिर भी अंकरौरियों की मारा-मारी या तो भक्तमाल की अपनी विशेषता है या मूल। विशेषता इसलिए नहीं है कि सम्प्रदाय में अन्यत्र इसका उल्लेख कहीं देखने को नहीं मिला है। कांकरी के लिए तो आज भी सेवा में मिश्री के टुकड़ों को कांकरी के रूप में सुधार कर श्रृंगार होते समय भोग में रक्खा जाता है।

भक्तमाल—पृष्ठ ६५०-५१ में एक छप्पय में १६ कवियों के नाम दिए हैं और लिखा है, 'हरिजस प्रचुर कर जगत में, ये कविजन अतिसय उदार'। इनमें से निम्नलिखित कवियों का उल्लेख वार्त्ता साहित्य में भी मिलता है—

(१) ब्रह्मदास, वार्त्ता संख्या २३६ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में लिखा है कि यह गोरवा क्षत्री थे और गोपालपुर में रहते थे तथा मानसी सेवा करते थे।

(२) चतुरबिहारी—वार्त्ता संख्या २४८ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के भाव प्रकाश के अनुसार आगरे के रहने वाले थे और संतदास के साथ से वैष्णव हुए और फिर गोकुल में ही रहने लगे थे।

(३) गोविन्द—वार्त्ता संख्या २४७ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता—इनका विवरण गोविन्द स्वामी के प्रसंग में दिया जा चुका है।

(४) गंगा (गंगाबाई) वार्त्ता संख्या ६५ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के अनुसार यह महावन की रहने वाली थी। इसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि यह श्री गुसांईजी से पद सुनकर तुरन्त पद बनाकर सुनाया करती थी और संवत् १७२६ में श्रीनाथजी के मेवाड़ पधारने पर उनके साथ वहां गई थी।

(५) प्रियदयाल (दयाल बनिया) वार्त्ता संख्या ११४ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के अनुसार यह अहमदाबाद का रहने वाला था। यह दलाली करता था। वार्त्ता में यह कवि नहीं बताया गया, पर इसके पद मिलते हैं।

(६) आसकरन—वार्त्ता संख्या १२३ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता के अनुसार यह कवि थे। इनका विवरण अन्यत्र लिख चुके हैं।

(७) भीष्म (राना भीम) वार्त्ता संख्या १८३। वार्त्ताओं में राजा भीम और भीष्मदास क्षत्री वार्त्ता संख्या १७० दोसौ बावन दोनों के विवरण दिए हैं। पर भीष्मदास क्षत्री कवि नहीं है, राजा भीम के कवि होने का स्पष्ट उल्लेख है। इसलिए इन्हें ही भक्तमाल के 'भीष्म' मानना उपयुक्त होगा। यह गुजरात के रहने वाले थे।

भक्तमाल-पृष्ठ संख्या ६४६ मैं १४ भक्तों की सूची एक छप्पय में दी है। उसमें से पुष्टि मार्गीय भक्त केवल श्री ब्रह्मचारी गोविंदजी हैं। इनका विवरण ८४ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ४१ में है जिसके अनुसार ये मीराबाई के यहाँ अटक गए थे। बैठक चरित्र में द्वारिका की बैठक के चरित्र (बैठक संख्या ६०) में गोविंददास ब्रह्मचारी सम्पूर्ण नाम का उल्लेख है जो वार्त्ता में गोविंद दुबे सांचोरा ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है।

पृष्ठ ६४८ पर भक्तमाल में २६ भक्तों की सूची है जिनमें से निम्नलिखित केवल पुष्टि भक्ति के भक्त हैं :—

(१) श्री द्वारिकादासजी इनकी वार्त्ता संख्या २१५ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में है।

(२) श्री नरहरिजी। नरहरि नाम के तीन व्यक्ति ८४ वैष्णवन वार्त्ता में हैं। वार्त्ता संख्या ३८, ७१, ८० है। भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में कोई विशेष निर्देश न होने से यह निर्णय करना कठिन है कि इनमें से कौन-सा नरहरि वार्त्ता के नरहरि के समान है।

(३) श्री नरहरियानंद—वार्त्ता संख्या ८० चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के नरहरि संन्यासी हैं जो वेना कोठारी के साथ द्वारका गए थे।

(४) श्री मुकुन्दजी ८४ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २४।

(५) श्री माधवजी—इस नाम के वार्त्ता में कई व्यक्ति हैं।

(६) श्री रूपाजी—रूपा पौरिया की वार्त्ता २५२ वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १६६।

(७) श्री भगवानजी वार्त्ता संख्या १०१ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता।

(८) श्री बालजी–बादरायणदास ७६ तथा बैठक चरित्र में मौरवी की बैठक का चरित्र।

(९) श्री कान्हरदासजी—दोसौ बावन मूलवार्त्ता।

थानाइत शब्द से इनका पुष्टि मार्गी होना ठीक नहीं है। नाम साम्य के कारण ही इनकी वार्त्ताओं का उल्लेख किया गया है।

भक्तमाल–पृष्ठ संख्या ६४० में जो १८ परार्थ परायन भक्त 'ये कामधेनु कलियुग के' की जो सूची है, उसमें वार्त्ता के केवल दो नामों का साम्य है।

(१) सूरजदास (२) कुम्भनदास। यह दोनों अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि हैं।

भक्तमाल–पृष्ठ संख्या ६३० पर १८ भक्तों की जो सूची है, उसमें कटहरिया नाम के वैष्णव की वार्त्ता दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या २३५ है। यह कवि भी था। इसके पद प्रसिद्ध हैं।

भक्तमाल—पृष्ठ ६१३ पर जिन १४ भक्तों की सूची है 'वृन्दावन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियो' में केवल श्री हृषीकेशजी का नाम वार्त्ता संख्या १३७ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में है। यह आगरे के रहने वाले थे और इन्होंने श्री गुसांईजी को एक घोड़ा भेंट किया था। इनका वृन्दावन से कोई सम्बन्ध न था। भक्तमालकार ने इनका जो वृन्दावन से सम्बन्ध जोड़ा है, उस सम्बन्ध में निवेदन यह है कि हृषीकेश नाम के अन्य भक्त किसी

भी और वैष्णव सम्प्रदाय में नहीं है। इस पर भी जब इनका नाम वृन्दावन की माधुरी के साथ जोड़ दिया गया है तो इसे भक्तमालकार की भूल ही कहा जायगा। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

भक्तमाल—पृष्ठ संख्या ५७५ श्री बालकृष्ण (कृष्णदास) जी भक्तमाल में कृष्णदास जी के सम्बन्ध मे प्रियादासजी की टीका में इस प्रकार लिखा है :—

(१) प्रेमरस राशि ग्रंथ बनाया था।

(२) आप दिल्ली किसी वस्तु को लेने को गए, वहाँ अच्छी जलेबी देखकर आपने उन्हें श्रीनाथजी को (मानसी भोग रक्खा और खाया)।

(३) संसार की लज्जा छोड़कर एक भक्तिनी का राग सुनकर उसे यह श्रीनाथद्वार ले आए और जब वह श्रीनाथजी के सम्मुख नाची, तभी उसने शरीर छोड़ दिया।

(४) सूरदास ने कहा कि आप ऐसा पद बनाइए जिसमें मेरी छाया न हो। इस पर कृष्णदास ने कहा कि कल सुनाऊँगा। इस पर कृष्णदास के पलंग पर श्रीनाथजी ने वह पद बना कर रख दिया।

(५) कुंए में गिरकर कृष्णदास की देह छूटी।

(६) इनको श्रीनाथजी ने गोवर्धन के नीचे जाते देखा, उस पर इन्होंने अपना गढ़ा धन बता दिया।

वार्त्ता—संख्या ८१ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में कृष्णदास के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रसंग प्राप्त हैं:—

(१) मीराबाई की भेंट लौटा देना।

(२) बंगालियों को सेवा से निकाल देना।

(३) कृष्णदास ने परासौली में नृत्य किया।

(४) कृष्णदास के कीर्तन के पद को श्री ठाकुरजी ने पूरा किया।

(५) आगरे से श्रीनाथद्वार में एक वेश्या ले आए जिसका शरीर गिरराज पर नृत्य करते ही छूटा।

(६) गंगाबाई से प्रेम।

(७) कृष्णदास ने श्री गुसांईजी को गिरिराज पर आने की मनाही करदी।

(८) बीरबल का कृष्णदास को बंदीखाने में डालना और गुसांईजी द्वारा इनकी मुक्ति।

(९) रूद्र कुण्ड पर कुंए में गिरकर इनकी मृत्यु और पूंछरी की ओर एक पीपल पर यह प्रेत हो गए।

(१०) गोपीनाथ ग्वाल की गुसांईजी से इनके उद्धार करने की विनती।

(११) गुसांईजी द्वारा उद्धार और धन बताया।

वार्त्ता और भक्तमाल की तुलना—

(१) वार्त्ता में भक्तमाल के प्रेमरस रास नामक ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं है।

(२) भक्तमाल में मीरा के यहाँ जाने का उल्लेख नहीं है, न बंगालियों को सेवा से अलग करने का ही उल्लेख है। न परासौली के नृत्य का, न गंगाबाई के प्रेम का, न इसके गुसांईजी को गिरिराज पर आने की मनाई का, और न बीरवल की कैद का और न गोपीनाथ ग्वाल का गुसांईजी से उद्धार करने की प्रार्थना का।

(३) वार्त्ता में जहाँ आगरे से वेश्या लाने की बात लिखी है, वहाँ भक्तमाल में दिल्ली से उसे लाना लिखा है और जलेबी की बात अधिक लिखी है।

(४) सूरदासजी द्वारा ऐसा पद बनाने की बात जिसमें उनकी छाया न हो तथा श्रीनाथजी द्वारा सहायता में भी थोड़ा सा भेद है। वार्त्ता में पद का एक चरण श्रीनाथजी ने पूरा किया है। भक्त माल में सब पद श्रीनाथजी ने बनाकर पलंग पर रख दिए हैं।

(५) कुंए में गिरकर मरने का प्रसंग दोनों में एक सा है।

(६) वार्त्ता में प्रेत और उससे उद्धार की कथा है और भक्तमाल में श्रीनाथजी द्वारा गिरिराज की तरहेटी में बलवीर के पीछे जाने की।

(७) दोनों में गढ़ा हुआ धन बताया गया है।

डाक्टर दीनदयालु गुप्त ने श्री हरिराय जी के भावप्रकाश में कृष्णदास अधिकारी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसे स्वीकार कर लिया है और इनका जन्म संवत् १५५२ और निधन संवत् १६३८ के आस-पास माना है, जो मान्य है। डाक्टर गुप्त ने भक्तमाल और वार्त्ता के प्रसंगों में जो भेद है, उनका उल्लेख तो कर दिया है। पर उनका निराकरण नहीं किया है। वार्त्ता में जो प्रसंग अधिक हैं, वे वार्त्ताकार की जानकारी और विशेषता है। जहाँ दोनों में भेद है, उनमें आगरा और दिल्ली में अन्तर है। वह विचारणीय है। वार्त्ताकार ने आगरा लिखा है और भक्तमालकार ने 'दिल्ली'। जहाँगीर के समय में, वार्त्ता की रचना के समय में, दिल्ली की अपेक्षा आगरे की प्रसिद्धि राजधानी होने के कारण अधिक थी जिससे आगरे की बात दिल्ली की अपेक्षा अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। अन्य वार्त्ताओं में भी गोकुल से सामग्री लेने सेवक लोग आगरे ही अधिक आया करते थे। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि दिल्ली जाने पर कोई प्रतिबंध था अथवा यह प्रसंग दिल्ली का हो नहीं सकता है। पर सम्भावना आगरे के पक्ष में अधिक है। दिल्ली की अपेक्षा यहाँ गुसांईजी के सेवक भी अधिक थे। यहाँ बीरवल, टोडरमल, रूपचंद नंदा, सेठ ज्ञानचंद के यहाँ श्रीगुसांईजी स्वयं आया-जाया करते थे और उनके सेवक भी। इस प्रकार दिल्ली के स्थान पर आगरे को ही अधिक महत्व किया जायगा और भक्तमाल की अपेक्षा वार्त्ता का कथन ही मान्य ठहरेगा।

अब जलेबी वाला प्रसंग लेकर उसकी परीक्षा करना भी आवश्यक है। यह जलेबी वाला प्रसंग रामानंद पंडित सारस्वत ब्राह्मण थानेश्वर वालों की वार्त्ता संख्या ५७ में चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में है, जो न जाने कैसे भक्तमाल में कृष्णदास की टीका में प्रियादास जी ने लिख दिया है। रामानंद पंडित की वार्त्ता के प्रसंग पर दृष्टिपात करने से भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास की भूल का पता चल जायगा। रामानंद पंडित की वार्त्ता में लिखा है कि श्री महाप्रभु जी ने इसका त्याग कर दिया था और यह मारा-मारा फिरता था। जहाँ बाजार में जो चीज अच्छी देखता था, वह वहीं खाने लगता था, पर खाता था श्रीनाथ जी को अर्पण करके। इसी प्रकार इसने यह जलेबी भी खायी थी जिसकी सूचना श्रीनाथ जी

ने श्रीमहाप्रभु जी को इस वार्त्ता में इस प्रकार दी थी कि आज मुझे रामानंद पंडित ने जलेबी खिलायी है। भक्तमाल में यह प्रसंग इसी ढंग से ले लिया गया है और थानेश्वर के बाजार की जगह दिल्ली का बाजार हो गया है और रामानंद के स्थान पर बेचारे कृष्णदास अधिकारी का नाम बिना सोचे-समझे लिख दिया गया है। जो कृष्णदास जी श्रीनाथ जी के मंदिर के मुख्य अधिकारी थे, जिन्होंने एक बार गुसांई जी का मंदिर में आना रुकवा दिया था। जिनको नाभादास ने 'नाथ सेवा में आगर' लिखा है वे किस प्रकार बजार में खा लेंगे। ऐसा काम तो कोई पुष्टि मार्गी न करेगा। रामानंद पंडित के प्रसंग में ही उसका ठीक होना न्याय संगत इसलिए है कि वह विकल अवस्था में था और महाप्रभुजी द्वारा परित्यक्त था और उसका आचरण भी पुष्टिमार्ग के अनुकूल न था। भक्तमाल में यह दोनों बातें सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखदी गई हैं। जैसे दिल्ली वैसे ही जलेबी ।

सूरदास जी के छायाहीन पद के सम्बन्ध में जो उल्लेख है, उसमें अन्तर अवश्य है, पर मूल भाव एक ही है।

इसी प्रकार प्रेत की आशंका से और धन बताना भी दोनों में समान ही हैं। वार्त्ताकार ने वहाँ श्रीनाथजी को खेलते लिखा है। भक्तमाल की टीका में ग्वाल का श्रीनाथजी को प्रणाम कहते हुए चले जाना तथा धन बताना लिखा है।

वार्त्ता और भक्तमाल के वर्णन की शैली में जो अन्तर है, वह धार्मिक भावना के कारण दिखाई देता है। प्रियादास के लिए प्रेत-योनि से उद्धार महत्वपूर्ण है और वार्त्ताकार के लिए गुरू के अपराध से श्रीनाथजी भी उद्धार नहीं कर सकते हैं, ऐसा दिखाना है। इसलिए श्री गुसांईजी से अपने उद्धार की प्रार्थना करायी गई है। अन्तर केवल शैली का है।

भक्तमाल— पृष्ठ ५७३ पर एक छप्पय में भक्तमालकार ने श्री गुसांईजी के सातों बालकों के नाम दिए हैं जिन्हें वार्त्ता का समर्थन प्राप्त है। भक्तमालकार ने भी इनके लिए 'विभु' शब्द का प्रयोग किया है।

भक्तमाल–पृष्ठ संख्या ५७० पर त्रिपुरदास कायस्थ के सम्बन्ध में टीकाकार प्रियादास ने जो कुछ लिखा है, वह इनकी वार्त्ता संख्या २८ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के अनुकूल है। केवल वार्त्ता में इनके अटक जाने का प्रसंग और मालिक के कैद भेजने का प्रसंग और है।

भक्तमाल–पृष्ठ ५६९ पर श्री गुसांई विट्ठलनाथजी का एक छप्पय में उल्लेख है जिसमें लिखा है 'वल्लभ सुत बल भजन के कलियुग में द्वापर कियो'।

भक्तमाल— पृष्ठ ५५९ पर केशव भट्ट काश्मीरी के सम्बन्ध में भक्तमाल की टीका में लिखा है कि:—

(१) यह पंडित थे, शास्त्रार्थ में लोगों को परास्त कर देते थे।

(२) इनका कृष्ण चैतन्य से नदिया में शास्त्रार्थ हुआ था जहाँ इन्होंने गंगाजी के स्वरूप पर १०० पद तुरन्त बना कर सुनाए थे। (यह केवल नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित भक्तमाल में है)।

बम्बई वाले संस्करण में केवल यह है कि इन्होंने विश्रामघाट पर यंत्र बाधा दूर करदी थी। बैठक चरित्र में विश्रामघाट की बैठक-चरित्र में भी केशव भट्ट का नाम है। केशव भट्ट का उल्लेख माधो भट्ट की वार्त्ता में भी है। (वार्त्ता संख्या ३२) चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता जिसमें केशव भट्ट ने माधो भट्ट को महाप्रभुजी की भेंट किया था।

भक्तमाल—पृष्ठ ५५६ में परमानन्ददास की 'सारंग' छाप का उल्लेख है। और

(१) कन्नौज के निवासी थे और वहीं आपका जन्म था और आप कीर्तन बहुत अच्छा करते थे।

(२) अडैल में महाप्रभुजी के यहाँ सेवक हुए।

(३) कन्नौज में श्री वल्लभाचार्य आपके यहाँ ठहरे थे।

(४) 'हरि तेरी लीला की सुधि आवे' वाला इनका पद सुनकर महाप्रभुजी तीन दिन तक बेहोश रहे थे।

(५) गोकुल में परमानन्ददासजी महाप्रभुजी के साथ थे।

(६) श्री गिरिराज पर श्री परमानंददासजी महाप्रभुजी के साथ गए और अनेक पद बनाए।

भक्तमाल—में जिस छाप का उल्लेख है, वह इनके संग्रह के पदों कांकरौली में भी नहीं देखने को मिली है।

डाक्टर दीनदयालु गुप्त ने अपने अध्ययन में परमानंददासजी के सभी हस्तलिखित संग्रहों को देखकर जो विवरण दिया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और खोज का एक स्वतंत्र विषय बन सकता है। उसमें भी यह उल्लेख नहीं है। आपने इनकी जन्म तिथि अगहन सुदी सप्तमी संवत् १५५० और निधन तिथि संवत् १६४० के पूर्व निश्चित की है। वार्त्ता और भक्तमाल दोनों इस विषय में मौन हैं।

भक्तमाल में परमानन्द जैसे उच्चकोटि के भक्त के विषय में जो वृत्त दिया है, उससे केवल यह निष्कर्ष निकलता है कि या तो भक्तमालकार की जानकारी अल्प थी या साम्प्रदायिक महत्व के कारण कृष्ण भक्त कवियों का इसमें उनकी गरिमा के योग्य उल्लेख नहीं हुआ है।

सूरदासजी भक्तमाल—पृष्ठ संख्या ५५७—सूरदास की वार्त्ता संख्या ८७ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रसंग प्राप्त हैं:—

(१) आगरा मथुरा के बीच गऊघाट पर इनकी महाप्रभुजी से भेंट।

(२) देशाधिपति का इनके पदों से प्रभावित होना।

(३) चौपड़ वाले पर व्यंग और 'मन तू समय सोच विचार' वाला पद।

(४) गोकुल और श्रीनाथद्वार निवास और पद रचना।

(५) परासौली में शरीर त्याग।

डाक्टर दीनदयालुजी ने ८४ वैष्णवन की वार्त्ता के भावप्रकाश वाले संस्करण के वृत्त के अनुसार सूरदास का सुन्दर जीवन वृत्त अपने अध्ययन में प्रस्तुत कर दिया है और

सूर सम्बन्धी कई विवादों का अन्त कर दिया है। केवल एक विषय में इस लेखक को उनका मत मान्य नहीं है, वह सूर की जन्मान्धता का विषय है। भक्तमालकार ने लिखा है :—

"प्रतिबिंबित दिविदिष्टि हृदय हरि लीलाभासी' और हरिरायजी भी इनको जन्मांध मानते हैं, तब फिर न जाने क्योंकि सभी बाह्य प्रमाणों के विरुद्ध आपने उन्हें जन्मांध मानने में संकोच किया है। बाह्य और अन्त: दोनों प्रमाण जब सूर की जन्मांधता के विरुद्ध नहीं हैं तब तो उन्हें जन्मांध ही मानना पड़ेगा। सूर का काव्य उनके नेत्रों का विषय न होकर बुद्धि और मन का विषय है।

श्री वल्लभाचार्य—

भक्तमाल में विष्णु स्वामी की परम्परा में इनको स्थान दिया गया है और "तेहिं मारग वल्लभ विदित पृथु पद्धति परायन" कहा गया है।

(२) टीकाकार प्रियादास ने पृथु पद्धति पर बल दिया है।

(३) बैठक चरित्र तथा निजवार्त्ता दोनों में सालिग्राम वाले साधु का प्रसंग है।

वार्त्ता साहित्य में—निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता, चौरासी में महाप्रभुजी के अनेक प्रसंग हैं। भक्तमाल में विष्णु स्वामी परम्परा दी है। वार्त्ता में केवल महाप्रभुजी को विल्वमंगल का उत्तराधिकारी बताया है।

वार्त्ता और भक्तमाल दोनों में से किस ग्रंथ में श्री महाप्रभुजी के सम्बन्ध में प्रामाणिक वर्णन मिलेगा, यह किसी से भी छिपा नहीं है।

भक्तमाल और वार्त्ता के समान उद्धरणों की तुलना

भक्तमाल—पृष्ठ संख्या ३९२ में भक्तदास कुलशेखरजी के प्रसंग में लिखा है कि कथा सुनकर राजा को घटनाओं के सत्य होने का भान सा हुआ और वह लंका की ओर भागा।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ४ पद्मनाभदास की वार्त्ता में भी महाभारत सुनकर ऐसे ही आवेश का उल्लेख है।

भक्तमाल पृष्ठ संख्या ४००

(२) भक्तमाल में श्री कर्माबाई के प्रसंग में लिखा है कि कर्माबाई ने जब आचार-विचार से जगन्नाथजी को खिचड़ी रक्खी, तब जगदीशजी को बहुत पसन्द आई और वे उसे खाकर झट से भाग आए और पंडों ने देखा कि उनके मुख में खिचड़ी लगी थी।

(३) पृष्ठ संख्या ४१७ भक्तमाल में दो बाईयों की कथाएँ लिखी हैं जिन्होंने संतों को रोकने के लिए अपने पुत्रों को विष दे दिया था।

पहले प्रसंग में एक राजा के यहाँ 'भक्तकूप' नाच के एक महात्मा कुछ साधु लोगों के साथ आए। राजा इन्हें तेरह महीने तक रोके रहा जब ये जाने लगे तो इसे ऐसा लगा कि उसके प्राण न रहेंगे। इस पर उसकी रानी ने संतों को रोकने के लिए अपने पुत्र को विष दे दिया। तब उसे महात्मा ने रामनाम का कीर्तन करके जिलाया। और वे संत वहीं रह गए।

दूसरी बाई के प्रसंग में यह है कि वह हरि विमुखों के यहाँ व्याही थी और उस घर में संत का कोई नाम न लेता था। इसलिए उसने अपनी दासी से कहा कि जब संत आवें तब मुझे बताना। जब दासी ने यह सूचना दी तो उसने अपने पुत्र को विष दे दिया और पति से कहा कि इसको जिलाने का उपाय यह है कि तुम आस-पास से किसी महात्मा को बुला लाओ। संत बुलाए गए और चरणामृत से बालक जी उठा।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १४० में हरिदास मोहनदास की वार्त्ता में लिखा है कि एक समय मोहनदास हरिदास के घर आए और कुछ दिन सत्संग करने के पश्चात् जब वे जाने लगे तो हरिदास ने अपनी स्त्री से कहा कि यदि तू उन्हें रोकना चाहती है तो रोकने का एक ही उपाय है कि अपने पुत्र को विष दे दे, जिससे यह सहज दयालु संत रुक जायँगे। स्त्री ने ऐसा ही किया और उस बालक को मोहनदास ने चरणामृत से जिलाया और जब वे चलते वक्त रोने लगे तो पूँछा कि तुम लोग लड़का मरने पर तो रोए नहीं, अब क्यों रोते हो ? इस पर उस दम्पति ने कहा कि आपके चले जाने के बाद हमें भगवद् वार्त्ता कौन सुनावेगा। उनका ऐसा प्रेम देखकर मोहनदास फिर उनके पास ही आकर रहने लगे और जीवन-भर कहीं और नहीं गए।

भक्तमाल में पहले में संत ठहर गए हैं और दूसरे में चरणामृत से जिलाया गया है। विष देने की बात दोनों में है। वार्त्ता में गुणानुवाद से जिलाने की बात नहीं है, पर भक्तमाल के पहले अंश में संतों के ठहर जाने की बात भी एक ही वार्त्ता में आ गई है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ३० एक सेठ की बेटी लाहौर में रहती थी। वार्त्ता में भी यह जो भक्तमाल की दूसरी बाई के प्रकरण में लिखा है, वही बात लिखी है। वार्त्ता में उसने पुत्र को नहीं, पति को जहर देकर चाचा हरिवंश को घर में बुलाकर सारे परिवार को वैष्णव करवाया। वार्त्ता में उसने चाचा हरिवंश के रहने से ही इस उपाय का सहारा लिया है।

(४) भक्तमाल पृष्ठ संख्या ४२३ पर सदाव्रती महाजन की कथा में लिखा है कि इसके यहाँ एक धूर्त साधु का वेष बनाकर आ गया और कई दिन तक वहीं रहा। पीछे से चलते समय इसने आभूषण के लोभ से उसके लड़के को मारकर धूल में गाढ़ दिया। जब सायंकाल तक बच्चा न मिला तो खोज की गई और एक दूसरे साधु ने जहाँ वह गढ़ा हुआ था, वह स्थान बता दिया। लोग इस साधु को ही पकड़ने लगे, तब उसने उस संत का नाम बताया जिसने बच्चे को मारा था। इस पर आपने कहा कि यदि इस व्यक्ति से छुटकारा चाहते हो तो फिर कभी भी इस सम्बन्ध में किसी संत का नाम न लेना। इसके बाद जिस संत ने मारा था, उसे यह लोग अपनी बेटी व्याहने को राजी होगए और आग्रह करके व्याह दी। पीछे से इनके गुरु ने इनका बच्चा जिला दिया।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १९३ में 'एक वैष्णव गुजराती ब्राह्मण जाने ठग वैष्णव को स्वांग धरि के आयो, की वार्त्ता में यह प्रसंग इस प्रकार मिलता है—

(१) इसमें यह ब्राह्मण है, सदाव्रती महाजन नहीं।

(२) दूसरे बालक डेढ़ वर्ष का है।

(३) इसमें भी मारकर गाढ़ दिया गया है।

(४) वार्त्ता में वह जेबर लेकर भाग रहा था कि इसको वह ब्राह्मण मिल गया और उसे प्रसाद देने के आग्रह से ले आया। घर में आकर बच्चे को ढूंढ़ा तो पास बाड़े में धूल खुदी

देखकर उसे सरकाया तब बच्चा दिखाई पड़ा। उस ब्राह्मण ने बच्चे से कहा, 'उठ' जै श्रीकृष्ण कर, और बच्चा जी उठा। इस पर ठग ने उनकी वैष्णवता से प्रभावित होकर ठगी करना छोड़ दिया और गुसांईजी की शरण में चला गया।

भक्तमाल में बेटी व्याहने की बात तथा गुरूजी की जिलाने की बात अधिक है।

(५) पृष्ठ संख्या ४४२ पर श्रीधर जी के प्रसंग में लिखा है कि आगरे से घर जाते समय जंगल में ठगों ने इन्हें अकेला समझा और पूंछा कि आपके साथ और कौन है। इस पर इन्होंने कहा कि श्रीरघुनाथ जी हैं। जब ठग इनको मारने का उपाय करने लगे तो उन्हें भी श्री रघुवीर दिखाई पड़े और जब इन्हें यह पता चला कि श्रीराम जी ने इनके लिए कष्ट किया है तो इन्होंने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १०५ एक क्षत्री प्रयाग के हीरान की धरती पहचानते की वार्त्ता में लिखा है कि जब यह घर जाने लगा तो ग्यारह ठग इसके साथ लग गए और उन्होंने इसे मारना चाहा। पर इसने स्नान करके गुसांई जी का स्मरण किया तो वे डर गए और गुसांईजी के सेवक हो गये। वार्त्ता और भक्तमाल दोनों में ठग हैं और मारने की इच्छा है। पर एक में रघुनाथ जी ने रक्षा की है, दूसरे में श्री गुसांई जी की भावना ने।

(६) पृष्ठ संख्या ४६४ पर भक्तमाल में एक भेष निष्ठ राजा की कथा है जिसमें लिखा है कि एक दिन भांड़ों ने देखा कि यहाँ तो कंठी, माला वालों की पूछ है तो उन्होंने भी हंसी के लिए साधुओं का भेष बनाया और इनको भी अपने चरण धुलाने पड़े। जब इन्हें राजा ने भेंट दी तो इन्होंने न ली और फिर इसी वेष में रहने लगे।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ६२ 'एक राजा भवैया का' वार्त्ता में यह प्रसंग इस तरह आया है—भवैया को राजा के सेवकों ने पता दिया कि वह वैष्णव के वेष से ही रीझेगा तब उन्होंने वैष्णवन का भेष बनाया और वही स्वांग किया। स्वांग के उपरान्त गौ-हत्या, ब्रह्म-हत्या, स्त्री-हत्या और बालक-हत्या, चार हत्याओं ने इनका पीछा किया और कहा जब तुम वैष्णव वेष उतारोगे तब हम तुम्हें लगेंगीं—इस पर उसने कहा कि यदि मैं न उतारूँ तो तुम क्या करोगे। उत्तर मिला जब तक तुम इस वेष में हो तब तक हम कुछ न कर सकेंगे। इसलिये उसने वह वेष नहीं उतारा और वैष्णव हो गया।

दोनों में साम्य इतना है कि दोनों में वैष्णव का भेष बनाया गया है और दोनों में राजा को वैष्णव पर आस्था है और दोनों बनावटी वेष से ही फिर असली वेषधारी हो गए।

निष्कर्ष:—समस्त भक्तमाल में जिन भक्तों का उल्लेख है और उनसे सम्बन्ध रखने वाली जिन बातों का उल्लेख है, उनमें ऊपर लिखी छः घटनाएं ही ऐसी हैं जिनमें और वार्त्ता के प्रसंगों में एक ऐसा साम्य है जो भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से बहुत कुछ मिलता है। शेष प्रसंग दोनों के अपने-अपने अलग हैं और भक्तमाल में जिन पुष्टि भक्तों का उल्लेख है, उनके सम्बन्ध में भक्तमाल के उल्लेख और वार्त्ता के उल्लेख की तुलना अलग की जा चुकी है। भक्तमाल को कई विद्वान् वार्त्ताओं से अधिक प्रामाणिक मानते हैं और वार्त्ताओं के कथन को भक्तमाल का उल्लेख देकर अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। इस सम्बन्ध में भक्तमाल में भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर जी को श्री रघुनाथजी का सेवक लिखा है जो किसी भी प्रकार उनकी भागवत् निष्ठा से

मेल नहीं खाता है। ऐसे ही वार्त्ता के तुलसीदास जलघरिया को भक्तमाल के टीकाकार ने लालमती देवी बना दिया है और वृन्दावन में अटल वास करवा दिया है जिसका सम्प्रदाय के प्रचलित व्यौहार और इतिहास दोनों से समर्थन नहीं होता है। ऐसे ही राजा आशकरण जो पुष्टि मार्गीय भक्त थे तथा मानसी सेवा करते थे और जिनके पद उनकी निष्ठा के साक्षी हैं, उन्हें कील्हदेव का शिष्य लिख दिया गया है। श्री गोकुलनाथ जी के प्रसंग में गोकुल के मोहना मेहतर का नाम कान्हा भंगी हो गया है। ऐसे ही भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी को गोवर्धननाथ के दर्शन के स्थान पर वृन्दावन में मदन-गोपालजी के दर्शन करा दिए गए हैं जिसका अन्यत्र कहीं भी उल्लेख नहीं है।

अन्य शेष प्रसंगों की परीक्षा करने पर तथा वार्त्ता और भक्तमाल की तुलना करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होती कि जहाँ वार्त्ताकार के दृष्टिकोण विशेष की दृष्टि से प्रसंग का उल्लेख मात्र वार्त्ता में है। वहाँ भक्तमालकार का वृत्त सुनी-सुनाई बातों का संग्रहमात्र है जिन्हें उसने इतिहास की कसौटी पर भी नहीं कसा है और न उसके प्रक्षिप्त अंश को सुधारने की चिंता की है।

भक्तमालकार ने अपनी इस माला के उद्देश्य में लिखा है:—

श्री गुरुदेव आज्ञा दई भक्तनि को जस गाइ।
भव सागर के तरन को नाहिन और उपाइ॥

तथा

सब संतन निर्णय कियो श्रुति पराण इतिहास।
भजिवे को दोऊ सुघर कै हरि कै हरिदास॥

इस विचार से इसमें तो हरिदसों का उल्लेख मात्र ही इष्ट है और जो इति वृत आगया है, वह उनके स्मरण की पुष्टि के लिए है। वह ऐतिहासिक भी है और प्रचलित भी। और इन दोनों में प्रचलित का ही अधिक सहारा लिया गया है, यह इसके वृत्त से प्रगट है। वार्त्ताकार वृत्त के सहारे स्मरण कराना चाहता है, सिद्धान्त को हृदयंगम कराना चाहता है। इसलिए एक दृष्टिकोण विशेष से सब वृत्तों में से कुछ वृत्त छांट लेता है।

भक्तमाल में भी लेखक ने छप्पय में विवरण दिया है। टीकाकार ने फिर अपनी जानकारी के अनुसार उसे कवित्तों में बांधा है जो स्वयं मूल के रूप में ही हैं। पीछे से भक्तमाल के जो संस्करण हुए हैं, उनमें भी सम्पादकों ने अपने अध्ययन से उन इति वृत्तों को पूर्ण करने की चेष्टा की है, पर मूल ज्यों का त्यों न देकर जहां छप्पय और कवित्त दोनों हैं, वह छप्पय की संख्या देदी है और कवित्त दे दिए हैं। फिर उन पर गद्य में टीका लिखदी है।

इस सम्बन्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत उत्तरार्द्ध भक्तमाल पर भी विचार कर लेना उचित होगा क्योंकि भारतेन्दु जी पुष्टि मार्गी भक्त थे और उन्होंने वार्त्ताओं के आधार पर अपने भक्त माल की रचना की थी और अपनी जानकारी के भक्त और जोड़कर उसे ससामयिक रूप देने की चेष्टा की है। इस प्रकार भक्तमाल में उत्तरकालीन नाम बराबर जुड़ते चले आ रहे हैं और प्राचीन नामावली का संरक्षण होता चला आ रहा है।

इतिवृत्त के सम्बन्ध में इन वृत्तों को तब तक ऐतिहासिक महत्व देना उचित न होगा, जब तक इन्हें जिस सम्प्रदाय से इस उल्लेख का सम्बन्ध हो उसके अन्य ग्रंथों का समर्थन प्राप्त न हो।

इस अध्ययन में वार्त्ता के जिन कवियों का उल्लेख भक्तमाल में भी है, उनका भक्तमाल सम्बन्धी उल्लेख उनके वृत्त के साथ जोड़ दिया गया है क्योंकि भक्तमाल से उनके जीवन वृत्त पर जो प्रकाश पड़ता है, उसे भी ऐतिहासिक साक्ष्य की कसौटी पर कसना आवश्यक है तथा इसके आधार पर उनके जीवन वृत्त को संकलित करने में वार्त्ता से प्राप्त सामग्री की जो सहायता मिल सकती है उसका भी उपयोग करना आवश्यक है। इस प्रकार प्राप्त सभी सामग्री से उन कवियों के जीवन वृत्त को एक साथ इकट्ठा करने में सहायता मिली है जिनका उल्लेख न तो साहित्य के इतिहास ग्रंथों में ही तथा और कहीं मिलता है। इन कवियों के जीवन वृत्त इस संकलन के पश्चात् भी अधूरे ही हैं और सम्प्रदाय में भी इनके सम्बन्ध में लिखित साहित्य द्वारा अधिक प्रकाश नहीं पड़ता है। मौखिक किंवदंतियों को इस अध्ययन में इसलिए छोड़ दिया गया है कि उनकी प्रामाणिक पुष्टि का कोई साधन अन्यत्र प्राप्त नहीं है और उनकी स्वीकृति से भ्रम फैलने की सम्भावना अधिक है। हस्तलिखित पुस्तकों में, सम्प्रदाय के मंदिरों में, कीर्तन संग्रहों में जहाँ कहीं इनमें किसी के भी कोई पद या अन्य रचना प्राप्त हो सकी है उसे प्रामाणिक मानकर स्वीकार कर लिया गया है। पर ऐसे पद को भी स्वीकार नहीं किया गया है जिसकी सौ वर्ष से अधिक की हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं है।

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के भक्तमाल में जिन व्यक्तियों का उल्लेख है उनसे सम्बन्ध रखने वाले छप्पयों का संग्रह यहाँ आरम्भ में इसलिए दे दिया गया है कि उससे वार्त्ता और भक्तमाल की तुलना को समझने में सहायता मिलेगी और दोनों की शैली का भेद प्रगट हो जायगा।

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में प्राप्त अन्य नामों को जिनका भक्तमाल में उल्लेख नहीं है यहां नहीं लिखा गया है। उन्हें ऐतिहासिक पुरुषों की सूची में अथवा अन्य जीवनियों में स्थान दिया गया है। समस्त भक्तमाल में सत्रह दोहे हैं, एक कुँडलिया है और एक सौ छियानवे छप्पय हैं। इसका रचना-काल लगभग सम्वत् १६६६ है और प्रियदास जी की टीका का समय फाल्गुन कृष्णा सप्तमी संवत् १७६६ है। विद्वान् इसका रचना काल यही प्रामाणिक मानते हैं। नाभादास जी को गोस्वामी की पदवी संवत् १६५२ के कान्हरदास के भंडारे पर मिली थी इसलिए इस ग्रंथ की रचना उन्होंने इससे पूर्व अवश्य करली होगी। इसके सवा सौ वर्ष बाद इस पर प्रियादास की टीका लिखी गई है। भक्तमाल में प्राप्त वार्त्ता साहित्य के व्यक्तियों की सूची इस प्रकार है :—

(१) वल्लभाचार्य ३६८, (२) रामदास ४५०, (३) केशव भट्ट ५५६, (४) विट्ठलनाथ ५६६, (५) त्रिपुरदास कायस्थ ५७०, (६) रूप सनातन ५६१, (७) श्री जीव गुसांई ६१०, (८) मीराँबाई ७१२, (९) गु० गोकुलनाथ ७७६, (१०) संतदास ७४४, (११) मथुरादास ८१७, (१२) परमानन्द ३६७, (१३) विट्ठल सुत, (१४) कृष्णदास, (१५) नारायण भट्ट, (१६) परमानन्ददास ५५६, (१७) सूर ५५७, (१८) हरिदास ६०१, (१९) माधवदास,

(२०) आसकरन ८७६, (२१) कल्याणसिंह ६०५, (२२) कृष्णदास ६८०, (२३) गिरधर जी ७३६, (२४) गोकुलनाथ ७७६, (२५) गोविंद स्वामी ६५२, (२६) घनश्याम ५७३, (२७) चतुर्भुज ७०७, (२८) हरिवंश ८७६, (२९) कृष्णदास ६१६, (३०) जैमल ७२६, (३१) तुलसीदास, (३२) नंददास ६६६, (३३) नारायणदास ७६८, (३४) नरसी मेहता ६७३, (३५) प्रेमनिधि ८३४, (३६) मुरारी ७५१, (३७) मधुकर शाह ७३१, (३८) रत्नावती ८०३, (३९) लाखा ६६७, (४०) रामराय ६१८।

और कवियों की सूची भी इस प्रकार है। शेष का उल्लेख भक्तमाल में नहीं है।

भक्तमाल में आए हुए कवियों की सूची :—

अ, आ

(१) आसकरन जी

क, ख

(१) कृष्णदास जी
(२) कान्हरदास
(३) केशव भट्ट—छप्पय संख्या ७५

ग, घ

(१) गदाधर भट्ट जी
(२) गदाधरदास जी
(३) गोविंद स्वामी
(४) गोकुलनाथ जी

च, छ, ज, झ, त, थ, द, ध, न

(१) चतुर्भुज जी
(२) जगन्नाथ पारीक
(३) छीत स्वामी
जाड़ा कृष्णदास
तुलसीदास
नंददास

प, फ

(१) परमानंद जी
(२) प्रेमनिधि
(३) पृथ्वीसिंह

ब

(१) बिट्ठलेश सुत
(२) बालकृष्ण जी
(३) बिट्ठलनाथ गुसांईजी

भ, म

(१) मुरारीदास जी
(२) मथुरादास जी
(३) मीराबाई
(४) माधवदास जी

य, र, ल, व

(१) रामराय जी
(२) रामदास जी
(३) रामदास जी
(४) व्यास जी (श्री हरिवंश जी के शिष्य)
(५) रत्नावली

ह

(१) हरिवंश जी
(२) हितहरवंश जी

स

(१) सूरदास
(२) स्यामदास
(३) विष्णुदास

क्ष, त्र, ज्ञ

(१) त्रुपुरदास जी

भक्तमाल और चौरासी वैष्णवों की वार्ता के कुछ उद्धरण

भक्तमाल का रचना-काल

भक्तमाल में दोहा—	१७
कुंडलियाँ—	१
छप्पय—	१९६
कुल	२१४

रचना-काल—१६४९ के लगभग, सम्वत् १६३१ के पीछे—१६८० के पहिले। प्रियादास की टीका १७६९ फाल्गुन कृष्णा सप्तमी।

संवत १६५२ में कान्हरदास के भंडारे पर नाभादास को गोस्वामी की पदवी मिली।

लक्ष्मण भट्ट २१५

श्री रामानुज पद्धति प्रताप 'भट्ट लक्षमन' अनुसराये।
सदाचार मुनि वृत्ति भजन भागौत उजागर।
भक्तिनि सों अति प्रीति भक्ति दसधा को आगर।
संतोषी सुठि सील हृदै स्वारथ नहिं लेसी।
परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी।
श्री भागवत बखान के नीर क्षीर बिबरन करयौ।
श्रीरामनुज पद्धति प्रताप 'भट्ट लक्षमन' अनुसरयौ।

वल्लभाचार्य

हिय में स्वरूप सेवा करि अनुराग भरे ढरे और जीवनि की जीवनि को दीजिये।
सोई लै प्रकास घर-घर में बिलास कियो, अति ही हुलास, फल नैननि को लीजिये।
चातुरी अवधि नेकु आतुरी न होति किहूँ चहूँ दिसि नाना राग भोग सुख कीजिये।
'वल्लभ जू' नाम लियो 'पृथु' अभिराम रीति गोकुल में धाम जानि सुनि मन रीझियें।

बम्बई संस्करण में एक यह पद और दिया है:—

गोकुल देखिवे को गयो एक साधु सूधो गोकुल मगन भयौ रीति कुछ न्यारिये।
देखे आइ नाहिं प्रभु फेरि आय पास आयो चिंता सो मलीन देखि कही जा निहारिये।
वैसोई स्वरूप वैसेई सुधि बोल्यौ आनि लीजियो पिछानि कही सेवा नित धारिये।

दूसरे पद में गोकुल की बैठक का चरित्र रह गया है।

रूप सनातन छप्पय ३६८

संसार स्वाद सुख बात ज्यों, दुहुँ 'रूप' सनातन त्यागि दियौ।
गौड़ देश बंगाल हुते सबही अधिकारी।
हय गय भवन भंडार विभौ भूभुज उनहारी।
यह सुख अनित्य बिचारि वास वृन्दावन कीन्हौ।
यथा लाभ संतोष कुंज करवा मन दीन्हौ।
ब्रज भूमि रहस्य राधा कृष्ण भक्त तोष उद्धार कियौ।
संसार स्वाद सुख बात ज्यों दुहूँ 'रूप सनातन' त्याग दियौ।

इस पर प्रियादास जी ने सात कवित्त लिखे हैं।

जिसका आशय है कि ये दोनों भाई श्री कृष्ण चैतन्य की आज्ञा से वृन्दावन आकर बसे थे और इन्होंने ही वृन्दावन के वैभव को उत्कर्ष पर पहुँचाया। वहाँ वृन्दादेवी के मन्दिर की स्थापना की। रूपजी नंदगाँव में रहते थे। यह कीर्तन में बेसुध हो जाते थे। इन्होंने गोविन्ददेव की स्थापना की और राजा मानसिंह से कहकर लाल पत्थर का बड़ा मंदिर बनवाया।

इनका वृत्त ऐतिहासिक पुरुषों के वृत्त में दिया गया है।

रामदास

डाकौर के—मीराबाई के पुरोहित—चौहान राजपूत।

रामदास रस रीति सों, भली-भाँति सेवत भगत।
सीतल परम सुशील बचन कोमल मुख निकसै।
भक्त उचित रबि देखि, हृदै बारिज निभि बिकसै॥
अति आनन्द मन उमंगि संत परिचर्य्या करई।
चरण धोय, दंडौत विविध भोजन विस्तरई॥
'वृन्दावन' निवास विस्वास हरि जुगुल चरण उर जगमगत।
श्री रामदास रस रीति सों भली-भांति सेवत भगत॥

कवित्त

द्वारिका के ढिग ही डाकौर एक गाँव रहै, रहै रामदास भक्त भक्ति या को प्यारियै।
जागरन एकादशी करे रनछोर जू के भयौ तन वृद्ध, आज्ञा हुई नहिं धारियै॥
बोले भरिमाय, तेरौ आयवौ सह्यौ न जाय चलों घर धाय टेर ल्यावौ गाड़ी भारिये।
खिरकी जुमंदिर पांछे तहां ठाढ़े करौ, भरौं अंकवारी मोको वेगि ही पधारिए॥

केशव भट्ट   ९२ भक्तमाल—छप्पय ४३६

केशव भट्ट नर मुकुट मणि जिनकी प्रभुता विस्तरी ।
कास्मीरि की छाप पाप तापनि जग मंडन ।
दृढ़ हरि भक्ति कुठार आन धर्म विटप विहंडन ।
मथुरा मध्य मलेच्छ, बाद करि बरबट जीते ।
विदित बात संसार सब सन्त साखि नाहिन कुरी ।
केशौ भट्ट नर मुकुट मणि जिनकी प्रभुता विस्तरी ।

(२) केशव भट्ट का चैतन्य का समकालीन होना और शास्त्रार्थ तथा बोध ।
(३) विश्रांत घाट की बाधा दूर करना ।
(४) इन पर टीका में पाँच कवित्त हैं ।

श्री त्रिपुरदास जी

भक्तमाल में भी वही प्रसंग है । इसमें लिखा है कि नाभादास के मूल में इनका नाम नहीं था। पीछे प्रियादास जी ने आपकी टीका लिखी है—इसमें भी उन्हें शेरगढ़ निवासी लिखा है । भक्तमाल में वार्त्ता के पहले दो प्रसंग नहीं हैं ।

कायथ त्रिपुरदास भक्ति सुख राशि भर्यौ कर्यौ ऐसो पन सीत दगला पठाइए ।
निपट अमोल पट हियें हित जटि आवै तातें अति भावै नाथ अंग पहिराइए ।।
आयो कोऊ काल नरपति ने बिहाल कियौ भयौ ईश ख्याल नेकु घर में न खाइए ।
वही ऋतु आई, सुधि आई आंखि पानी भर आई एक द्वाति दीठि आई पेचि ल्याइए ।।

श्री विट्ठलनाथ गौसांई

'विट्ठलनाथ' ब्रजराज ज्यों, लाल लड़ाय कै सुख लियौ ।।
राग भोग नित बिबिधि रहत परिचर्या ततपर ।
सज्या भूषन बसन रचित रचना अपने कर ।।
वह गोकुल वह नंद सदन दीच्छित को सोहै ।
प्रकट बिभौ जहाँ घोस देखि सुरपति मन सोहै ।।
'बल्लभ' सुत बल भजन के, कलियुग में द्वापर कियौ ।
'विट्ठलनाथ' ब्रजराज ज्यों लाल लड़ाय कै सुख लियौ ।।

जीव गुसांई (रूप सनातन के भतीजे थे)

श्री रूप सनातन भक्ति जल जीव गुसांई सर गम्भीर ।।
वेला भजन पक्क कषाय न कबहूँ लागी ।
वृन्दावन दृढ़ वास जुगल चरननि अनुरागी ।।
पौथी लेखन पान अघट अक्षर चित दीनों ।
सद ग्रंथनि कौ सार सवै हस्तामलक कीनौ ।।
सन्देह ग्रंथि छेदन समर्थ रस रास उपासक परम धीर ।
श्री रूप सनातन भक्ति जल जीव गुसांई गम्भीर ।।

इनका उल्लेख मात्र वार्त्ता में है ।

श्री मीराबाई जी

लोक लाज कुल–शृङ्खला तजि, 'मीरा' गिरिधर भजी ।।
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलिजुगहिं दिखायौ ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ ।।
दुष्टनि दोष बिचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ ।
बार न बाँको भयौ, गरल अमृत ज्वों पीयौ ।।
भक्ति निसान बजाय कै, काहू तैं नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल शृङ्खला तजि, 'मीरा' गिरिधर भजी ।।

पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—

ये मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसाने वाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं। जन्म सं० १५७३ चौकड़ी नामक गाँव में। विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराजजी के साथ। विवाह के उपरान्त थोड़े दिनों में पति स्वर्ग सिधारे। आरम्भ से कृष्ण-भक्ति में लीन। विष देने तथा उसका कुछ प्रभाव न होने की कथा। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये द्वारका और वृन्दावन के मंदिरों में घूम-घूम कर भजन गाया करती थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिख कर भेजा था:—

स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषन दूषन-हरन गोसाईं ।
————————————लिखिये समझाई ।।

इस पर गोसांईजी ने उत्तर में यह पद लिख कर भेजा:—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
— —कहौं कहाँ लो ।। [वि० प०]

पर मीराबाई की मृत्यु द्वारका में सं० १६०३ में हो चुकी थी। अतः यह जन श्रुति किसी की कल्पना के आधार पर ही चल पड़ी है। इष्टदेव की उपासना प्रियतम या पति के रूप में की। इनके पद कुछ तो राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में। चार ग्रन्थ कहे जाते हैं। नरसीजी का मायरा, गीत गोविन्द टीका राग गोविन्द, राग सोरठा के पद।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार इनकी रचनाओं की प्रामाणिकता बहुत संदिग्ध है। मीरा की अभी तक की प्रकाशित रचनाओं में बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग की 'मीराबाई की शब्दावली' सबसे अधिक मान्य है। माता-पिता का वियोग अल्प काल में सहन करना पड़ा। श्री कृष्ण की भक्ति रैदास जैसे सतुगुरू मिलने से और भी बढ़ी। ननद ऊदाबाई तथा सास ने भक्ति मार्ग छोड़ने को कहा। भक्तमाल के टीकाकार श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद ने यह लिखा है कि गनगौर की पूजा न करने पर सास ने पति से शिकायत की, पति ने दूसरी शादी की और इस संसार से चल दिये। पर इस बात की किसी प्रकार पुष्टि नहीं होती। दोसौ बावन वैष्णव की वार्त्ता का प्रमाण देते हुए मीराबाई गोकुलनाथ की समकालीन थीं। तुलसीदास तथा मीराबाई के पत्र-व्यवहार के प्रमाण से मीराबाई सं० १६१६ के बाद भी वर्तमान थीं।

मीराबाई का उल्लेख रा० कु० वर्मा ने टाड आदि बारह लेखकों के अनुसार दिया है। समझने की बात है कि अकबर सन् १५५२ ई० में पैदा हुआ और सन् १५५६ ई० में तख्त पर बैठा और गोसांई तुलसीदास सन् १५३३ ई० (सं० १५८९ विक्रमी) में पैदा हुए। यदि मीराबाई के देहान्त का समय सन् १५४६ ई० में मान लिया जावे तो अकबर की उम्र उसय चार वर्ष की होती है और गोस्वामी जी की १४ वर्ष की, जोकि न तो अकबर की साधु-दर्शन की उमंग उठने की अवस्था मानी जा सकती है और न गोसांई जी की भक्ति और कीर्ति की प्रसिद्ध का समय कहा जा सकता है। इसलिये हमको भारतेन्दु श्री हरिशचंद्र जी का अनुमान कि मीराबाई ने सं० १६२० और १६३० विक्रमी दर्मियान शरीर त्याग किया, ठीक जान पड़ता है। जैसा कि उन्होंने उदयपुर दरबार की सम्मति से निर्णय किया था। और कवि-वचन-सुधा की एक प्रति में छापा था। वेणीमाधवदास के अनुसार गोसांई जी की जन्म तिथि संवत् १५५४ है। मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार मीराबाई ने सं० १६०३ में अनन्त यात्रा की, उस समय तुलसीदास जी ४८ वर्ष के होंगे। अतएव यह पत्र व्यवहार सम्भव है। अकबर के पैदा होने का समय (१५४२) है। मीरा की मृत्यु के समय आप ४ वर्ष के होंगे। अतः छोटी आयु में मिलने की इच्छा असम्भव है। यदि नाभादास के अनुसार अकबर तानसेन के साथ मीरा से मिलने आया सत्य है तो मीरा की मृत्यु संवत् १६३० के पीछे भारतेन्दु के अनुसार हो सकती है। अन्त में आप भारतेन्दु, डा० सर मानियर विलियमस का प्रमाण देते हुये १६२०-१६३० के बीच मानते हैं।

रसाल जी के अनुसार आपका जन्म सं० १५७३ में हुआ था।

श्री गोकुलनाथ जी

गुसांई, गोकुलनाथ जी (श्री १०८ वल्लभाचार्य जी के पोते, श्री विट्ठलनाथ के पुत्र) के पास एक धनी ने लाखों रुपये भेंट देने के लिये लाकर विनय किया कि 'मुझे शिष्य कीजिये'। आपने उससे पूंछा कि 'किस वस्तु में तुम्हारी विशेष प्रीति या आसक्ति है।' उसने उत्तर दिया कि 'किसी में नहीं'। आपने कहा कि 'जब तुममें प्रीति का बीज ही नहीं, तो मैं तुम्हें शिष्य नहीं कर सकता, यदि किसी में प्रेम होता तो उसे मोड़ कर श्री शोभाधाम के चारणों में लगा दिया जाता'।

'कान्हा' नामक एक भंगी मन्दिर के बाहर झाड़ू लगाया करता था और सामने से 'श्रीनाथ' जी का दर्शन कर प्रेम में मग्न हुआ करता था।

सबकी दृष्टि बालक (ठाकुर जी) पर न पड़े इसलिये आपने एक भीत (दीवार) खिचवा दी। दर्शन न पाने से कान्हा विकल हुआ। श्रीठाकुर जी ने उसे तीन रात बराबर स्वप्न में आज्ञा की कि 'गोकुलनाथ से कह कि यह भीत गिरवादें'। कान्हा जी आपसे तो विनय नहीं कर सके, पर किसी से कह दिया। जब गोसांई जी ने उससे पूंछा, तब उसने सब वार्त्ता कही। आप प्रेम में डूबे, कान्हा को कृपा-पात्र जान हृदय से लगा लिया और नई भीत गिरवा दी क्योंकि उससे स्वप्न का प्रमाण मिला। प्रेम की ग्राहकता की जय, प्रेमियों की जय।

चौपाई

'कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौ एक प्रेम कर नाता॥' [मानस]

संतदास

बिमलानंद प्रबोध बंश संतदास सीवां घरम ।
गोपीनाथ पद राग भोग छप्पन भुजाये ।
पृथु पद्धति अनुसार देव दम्पति दुलराये ।
भगवत भक्त समान ठौर द्वै को बलगायो ।
कवित्त सूर सो मिलन भेद कुछ जात न पायो ।
जन्म करि लीला जुगति कहसि भक्ति भेदी मरम ।
विमला नंद प्रबोध बंस संतदास सीवो घरम ।

श्री मथुरादास जी

कीरतन करत कर सुपने हूं मथुरादास न भंड्यो ।
सदाचार, संतोष, सुहृद, सुठि, सील, सुभासै ।
हस्तक दीपक उदय, मैटि तम, वस्तु प्रकासै ।
हरि कौ हिय बिस्वास नंद नंदन बल भारी ।
कृष्ण कलस सो नेम जगत जानें सिरधारी ।
(श्री) वर्धमान गुरूवचन रति, सौ संग्रह नहि छंडयौ ।
कीरतन करत कर सुपने हूं मथुरादास न मंडयौ ।

चौरासी के भक्त जिनका भक्तमाल में उल्लेख है

(१) परमानन्द जी (६१) छप्पय (४३७)

ब्रज बधू रीति कलियुग विषैं परमानन्द भयो प्रेमकेत ।।
पौगंड बाल, किशोर गोप लीला सब गाई ।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलौ जु सखाई ।।
नैनन नीर प्रवाह रहत रोमांच रैन दिन ।
गद्गद् गिरा उदार श्याम शोभा भीज्यो तन ।।
'सारंग' छाप ताकी भई श्रवण सुनत आवेस देत ।
ब्रज बधू रीति कलियुग विषै परमानन्द भयो प्रेमकेत ।।

इस पर कोई टीका का कवित्त नहीं है ।

श्री विट्ठलेस सुत

(श्री) विट्ठलेस सुत सुहृद श्रीगोवरधन धर ध्याइयै ।।
श्री गिरिधर जू सरस सोल, गोविन्द जु साथहि ।
बाल कृष्ण, जसबीर, धीर, श्री गोकुलनाथहि ।।
श्री रघुनाथ जु महाराज, श्री जदुनाथहि भजि ।
श्री घनश्याम जु, पगे प्रभु अनुरागी सुधि सजि ।।
ए सात, प्रगट विभु, भजन जगतारन तस जस गाइयै ।
(श्री) विट्ठलेस सुत सुहृद श्री गोवरधन धर ध्याइयै ।।

कृष्णदास जी ६६

कृष्ण छाप है—आपकी कविता निर्दोष व अनोखी होती थी—पंडित लोग आदर करते थे।

(२) 'प्रेमरस राशि' नामक ग्रंथ बनाया।
(३) दिल्ली में जलेबी का भोग लगाया।
(४) वारांगना को श्रीनाथ जी के मंदिर में ले आए।
(५) सूरदास से भेंट हुई और नये पद बनाकर सुनाए।
(६) कुंए में गिर कर मरे।
(७) धन बताया सो मिला।

श्री नारायण भट्ट

'ब्रज-भूमि उपासक' भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियौ ।।
गोप्य स्थल मथुरा मंडल जिते 'बाराह' बखाने।
ते किए 'नारायण' प्रगट प्रसिद्धि पृथ्वी में जाने ।।
भक्ति सुधा को सिंधु सदा सतसंग सभाजन।
परम रसज्ञ अनन्य, कृष्ण लीला कौ भाजन ।।
ज्ञान समारत पच्छ कों नाहिंन कोउ खंडन बियौ।
'ब्रज-भूमि उपासक' भट्ट सो रचि पचि एकै कियौ ।।

८४ वार्त्ता में इनका उल्लेख इस प्रकार नहीं है।

उत्तरार्द्ध-भक्तमाल—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत

नाभाजी महराज ने, भक्त माल रस जाल।
आलबाल हरि प्रेम की, विरची होइ दयाल ।।
ता पाछें अबलों भए, जे हरि पद रत सन्त।
तिनके जस बरनन करत, सोइ हरि कहं अति कंत ।।
कबहूं कबहूँ प्रसंग बस, फिर सों प्रेमी नाम।
एहैं या नव ग्रंथ में, पूरव कथित ललाम ।।
भक्त माल जो ग्रंथ है, नाभारचित विचित्र।
ताही को एहि जानियो, उत्तर भाग पवित्र ।।

भारतेन्दु जी ने अपने ग्रंथ के उपक्रम में लिखा है कि नाभाजी ने जो भक्तमाल बनाई है, उसके पीछे जो भक्त हुए हैं उनको मैं भक्तमाल में स्थान दे रहा हूँ। कभी-कभी प्रसंगवश इसमें दूसरे भक्तों के नाम आ जायेंगे। इस भक्तमाल में निम्नलिखित भक्तों के नाम मिलते हैं :—

(१) विष्णु स्वामी (२) श्री वल्लभ (३) श्री गोपीनाथ विट्ठल (४) श्री गिरधर (५) गोविन्दराय (६) रुक्मिनी (७) बालकृष्ण (८) मुरलीधर (६) दामोदर (१०) माधवेन्द्र (११) नरसिंह (१२) हरिदास व्यास (१३) मोनीदास (१४) गोविन्ददास (१५) ललित मोहनी (१६) चतुरमोहनी (१७) रखीचरन (१८) राधाप्रसाद (१६) गरीबदास (२०) श्री बल्लभदास (२१) श्री देवकीनन्दन (२२) पीताम्बर (२३) पुरुषोत्तम

(२४) श्री बालकृष्ण (२५) श्री हरिराय (२६) दाऊजी (२७) गिरवर (२८) श्री मुकुन्द (२९) श्री स्यामा बेटी (३०) श्री रनछोर (३१) विट्ठलनाथदयाल (३२) गोविन्दलाल (३३) सूर (३४) श्री कुम्भनदास (३५) परमानन्ददास (३६) श्री कृष्णदास अधिकारी (३७) गोविन्द स्वामी (३८) श्रीदास (३९) श्री नन्ददास (४०) तुलसीदास (४१) श्री छीत स्वामी (४२) दामोदरदास (४३) कृष्णदास (४४) दामोदरदास खत्री (कन्नौज के) (४५) मथुरानाथ (४६) पद्मनाभदास (४७) रघुनाथदास खत्री (४८) छत्राणी रजो (अडेल की) (४९) पुरुषोत्तमदास (५०) रुक्मिनि मोहन (५१) गोपालदास (५२) रामदास ठाकुर (५३) गदाधरदास (५४) बेनिदास (५५) माधवदास (५६) श्रीनवनीतप्रिया (५७) हरिवंश पाठक (५८) गोविन्ददास भल्ला (५९) केशवराय (६०) अम्मा छत्राणी (६१) श्री बालकृष्ण ठाकुर (६२) गज्जन छत्री (६३) धावन छत्री (६४) ब्रह्मचारी नरायनदास (६५) महावन की छत्राणी (६६) जियदास (६७) पुरुषोत्तमदास (६८) छबीलदास (६९) कृष्णदास (७०) श्री ललितत्रिभंगीलाल (७१) दिनकरदास रसिकाई (७२) मुकुन्ददास कायस्थ (७३) छत्री प्रभुदास जलोटिया (७४) प्रभुदास भाट (७५) पुरुषोत्तमदास (आगरा के) (७६) त्रिपुरदास (७७) पूरनमल क्षत्री (७८) यादवेन्द्रदास कुम्हार (७९) गोसांईदास सारस्वत (८०) गोपालदास (८१) माधवभट्ट (कश्मीर के) (८२) गोपालदास (८३) पदमरावल (८४) सांचोरे ब्राह्मण (८५) गुपालदास (८६) पुरुषोत्तम जोसी (८७) जननी नरहर जगन्नाथ (८८) नरहर जोसी जगन्नाथ (८९) सांचौरा राना व्यास (९०) रामदास सारस्वत (९१) श्री नटवर (९२) गोविन्द दुबे सांचोर (९३) श्री ठाकुर (९४) श्री रनछोर (९५) राजा माधो दुबे (९६) राम कृष्ण (९७) हरिकृष्ण (९८) जननी श्लोकोत्तमदास (९९) ईश्वर दुबे सांचौर (१००) वासुदेव (१०१) सीहनन्द वैष्णव (१०२) बाबा बेनू (१०३) कृष्णदास (१०४) गिरवरधर (१०५) जगतानन्द सारस्वत (१०६) आनन्ददास क्षत्री (१०७) विसम्भरदास (१०८) अकिंचन ब्राह्मनी (१०९) समराई (११०) दासी कृष्णा (१११) श्री वूला मिश्र (११२) मीराबाई (११३) प्रोहित रामदास (११४) गोवर्द्धननाथ (११५) रामदास चौहान (११६) गोपाललाल (११७) रामानन्द (११८) विष्णुदास छीपा (११९) जनजीवन (१२०) भगवानदास सारस्वत (१२१) अच्युतदास सनौढ़िया (१२२) गौड़दास (१२३) मदनमोहन (१२४) नरायनदास (१२५) नरायनदास भाट (१२६) नरिया नरायनदास (१२७) सीहनद की क्षत्राणी (१२८) दामोदरदास कायस्थ (१२९) एक सुतार (१३०) अन्य मारगी (आदमी) (१३०) लघु पुरुषोत्तमदास (१३२) श्रीनाथ भाट (कविराज) (१३३) गोपालदास टोरा (१३४) जनार्दनदास क्षत्री (१३५) गढुस्वामी ब्रह्म सनोड़िया (१३६) कन्हैयालाल क्षत्री (१३७) नरहरदास गौड़ (१३८) वादरायनदास (१३९) नरो बेटी (१४०) मानिकचन्द्र (१४१) संन्यासी नरहरदास (१४२) गोपालदास जटाधारी (१४३) कृष्णदास बनिया (१४४) सन्तदास छत्री (१४५) सुन्दरदास (१४६) माधवदास (१४७) विरजी पटेल (१४८) मावजी पटेल (१४९) गोपालदास रोड़ा (१५०) हरिवंश काका (१५१) गंगाबाई (१५२) श्री तुलसीदास (१५३) भट्ट नागजी (१५४) कृष्ण भट्ट (१५५) माधोदास कायस्थ (१५६) हिसारवास कायस्थ (१५७) विट्ठलदास (१५८) निहालचंद (१५९) श्री रूपमुरारी (१६०) रूपचन्द (१६१) नन्दा खत्री (१६२) राजा लाखा हरिदास (१६३) गोस्वामी विट्ठलनाथ (१६४) कृष्णदास कायस्थ (१६५) नरायनदास (१६६) ज्ञानचन्द्र (सहारनपुर) (१६७) ब्राह्मणी (सहारनपुर) (१६८) जनार्दन प्रसाद

(१६९) गोपालदास (१७०) मानिकचन्द्र (१७१) मधुसूदन दास (१७२) गनेस व्यास (१७३) जदुनाथ दास (१७४) गोपीनाथ ग्वाल (१७५) रामराय (१७६) माधुरीदास (१७७) श्री ललित (१७८) भट्ट गदाधर गंग ग्वाल (१७९) कृष्ण जीवनदास (१८०) लक्षीराम (१८१) जन हरिया (१८२) घनश्याम (१८३) गोविन्दा (१८४) रामकृष्ण (१८५) नागरीदास (१८६) नागरीदास (वृन्दावन के) (१८७) चैतन्य कृष्ण (१८८) अलीखां पठान की सुता (१८९) सेख (१९०) नवी (१९१) रसखान (१९२) मीर (१९३) अहमद (१९४) निरमलदास (१९५) कबीर (१९६) ताज खां बेगम (१९७) तानसेन (१९८) कृष्णदास (१९९) बीजापुर के राजा की लड़की (२००) पीरजादी वीवी रास्ती (२०१) नानक (२०२) हरिदास (२०३) करनपुर (२०४) शिवानन्द के लड़के सेन वंशी (बंगाल के) (२०५) परमानन्द (२०६) नाभाजी (२०७) बनमाली (२०८) नरायनदास (२०९) कृष्णदास (बंगाल) (२१०) प्रियादास (२११) ललित लालजीदास (२१२) गुमानीलाल (आगरे वाले) (२१३) तुलसीराम (आगरे वाले) (२१४) प्रतापसिंह (२१५) लालाबाबू (बंगाल) (२१६) कुन्दनलाल अग्रवाल (२१७) गिरधरिनदास (२१८) श्री रामानुज (२१९) दयालसिंह (२२०) कविवरदास अमीर (२२१) मायाराम (२२२) हरिदास (२२३) गुलाबसिंह (२२४) रामकुमारी (२२५) बसुचन्द (२२६) रणजीतसिंह (२२७) कुन्दनलाल (२२८) श्याम सखा (२२९) तुकाराम (२३०) चोखा महार (२३१) सावन्ती माली (२३२) नामदेव (२३३) गोरा कुम्हार (२३४) रामदास (२३५) कृष्णाबाई (२३६) साखू बाई (२३७) दामाजी (२३८) दत्तावधूत (२३९) ज्ञानेश्वर (२४०) अमृतराव (२४१) नारायन (२४२) शालग्राम (२४३) भट्ट जी महाराज (२४४) तुलाराम (२४५) रघुनाथदास (२४६) विसुनाथ (२४७) युगुलानन्य (२४८) सुप्रियादास (२४९) राधिकादास (२५०) ब्रह्मदत्त (२५१) रामसखा (२५२) हरिहर प्रसाद (२५३) लक्ष्मीनरायन (२५४) अवधदास (२५५) रामचरन (२५६) रामप्रसाद (२५७) सीताराम (२५८) गल्लू (२५९) रामनिरंजन (२६०) रामदास (हापुड़) (२६१) जागो भट्ट (२६२) मांजी नागर (२६३) श्री हरिभाऊ।

उनइस सै तैंतीस वर, सम्बत भादों मास।
पूनौ सुभ ससि दिन कियो, भक्त चरित्र प्रकास॥
जे या सम्बत लों भए, जिन को सुन्यौ चरित्र।
ते राखे या ग्रन्थ में, हरि जन परम पवित्र॥
प्राननाथ आरति हरन, सुमरि पिया नन्द नन्द।
भक्तमाल उत्तर अरध, लिखी दास हरिचन्द॥
जो जग नर ह्वै अवतर्‌यौ, प्रेम प्रकट जिन कीन।
तिनहीं उत्तर अरध यह, भक्तिमाल रच दीन॥

इससे यह प्रतीत होता है कि यह सम्वत् १९३३ में भादों के महीने, सोमवार के दिन लिखी गई थी। इसमें उस समय तक के कई भक्तों के चरित्र का उल्लेख किया गया है। इसका मूल आधार २५२ की वार्त्ता तथा ८४ की वार्त्ता ही है।

भक्तमाल साहित्य की भी इस प्रकार एक परम्परा होगई। कुछ भक्त हैं जिनका उल्लेख नाभादास जी ने किया। कुछ ऐसे भक्त हैं जिनका उल्लेख उसमें प्रियादास जी ने

जोड़ा है और पीछे से भारतेन्दु आदि ने पुराने वैष्णवों के अतिरिक्त अपने समय के कुछ अन्य भक्तों का चरित्र उसमें जोड़ दिया है। मेरी समझ में यह भक्तमाल साहित्य 'नाम' और 'गुण' दोनों प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करने के लिए रचा गया था। भक्तों के लिए भक्तों के चरित्रों का अध्ययन और मनन भगवद् भजन के तुल्य है और भगवान को भी वही प्रिय है जिसे उनके भक्त प्रिय हैं। भक्तमालों की रचना में लेखक के निजी दृष्टिकोण और रुचि का बहुत बड़ा हाथ रहा है, यह बात इन भक्तमालों की रचना से प्रगट है। प्रसिद्ध और मान्य होते हुए भी बहुत से नामों और वृत्तों का छूट जाना इनमें अनिवार्य है। इसलिए इन ग्रन्थों का उपयोग समर्थन के लिए ही होना चाहिए, खंडन के लिए नहीं। इनमें किसी वृत्त का न होना ऐतिहासिक अभाव नहीं, लेखक की रुचि की प्रतिकूलता या उसकी रुचि के अभाव का ही द्योतक मानना पड़ेगा। भक्तमाल में मूल बातों को ही रक्खा जाता है और उन्हीं भक्तों को जिनसे लेखक प्रभावित है अन्यथा माला के बड़े हो जाने की सम्भावना है और सबके सब को ध्यान में न रखने की सम्भावना है। इसमें चोटी के वृत्त हैं, पर उन्हीं के जिनको लेखक इसमें रखना चाहता है, सबके नहीं। साम्प्रदायिक अभिरुचि का इनकी रचना में बहुत बड़ा हाथ रहा है।

---

८४ वार्त्ता के प्राप्त सामाजिक वृत्त और उसकी आलोचना

नोट:—इस प्रकरण में वार्त्ताओं की संख्या डाकौर संस्करण के अनुसार दी गई है।

मुगल का उपद्रव इत्यादि—वार्त्ता संख्या ४ में मुगल के उपद्रव का उल्लेख है। वह बाबर के समय का है क्योंकि सम्वत् १५८३ में बाबर ने जब दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया था, तब जौनपुर, इटावा और कन्नौज में अफगान लोग अपनी अपनी अलग सत्ता बनाकर बैठ गए थे और इनका दमन करने के लिए बाबर को सेना भेजनी पड़ी थी। कन्नौज उस समय नासिरखाँ लोहानी और मारुफ के अधिकार में था। इसी प्रकार दामोदरदास संभल वाले का राजद्वार का चाकर होना लिखा है। वह इन्हीं अफगान महाशय के समय की घटना है और उनके बेटे का मुसलमान होना भी संवत् १५८० के लगभग की घटना है।

दीवान और मोहरें—वार्त्ता संख्या ६६ में नारायणदास दीवान ठट्ठे (थट्ठा) का उल्लेख है। यह घटना बाबर के शासन की है क्योंकि सन् १५१६ ई० (सम्वत् १५४३) में जब बाबर ने कन्धार के शासक शाह अरगन को परास्त करके उस पर अपना अधिकार कर लिया था, तब यह शाह अरगन साहब सिंध की ओर भाग गए थे और इन्होंने थट्ठे पर अधिकार कर लिया था। यह नारायणदास इन्हीं के दीवान रहे होंगे और खिलत और घोड़ा यह सब तो इस काल में मिलता ही था। इनका कैद में रहना भी उचित ही है और कोड़े की सजा भी दिल्ली के सुल्तानों के समय में प्रचलित थी। इसलिए इसको भी असत्य नहीं कह सकते थे। अब छः हजार मोहरों की थैली जो इसने महाप्रभुजी को भेजी थी उसमें मोहर शब्द पर विचार करना है और 'रुपया' जुर्माने पर विचार करना है, इन दोनों शब्दों में से एक भी असत्य नहीं है। सिकन्दर लोधी और बाबर तथा हुमायूं के समय की चाँदी और सोने की मुद्राएँ प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं सिंध में अलग सिक्का था और मोहरें कम चलती थीं तथा चाँदी के सिक्के अधिक चलते थे। और पठानों की एक टकसाल मुल्तान में थी। यह रुपए वही होंगे और मोहरें भी।

सलाम—इसी वार्त्ता में सलाम करके खड़े होने का उल्लेख है। अकबर ने कोर्निस की प्रथा चलाई थी और औरंगजेब ने तसलीम पर सलाम यह मुसलमानी अभिवादन था जिसका प्रचार इस देश में मुसलमानी शासन के साथ ही हो गया था। हिन्दू एक दूसरे से एक दूसरे प्रकार का अभिवादन करते थे पर मुसलमान से उन्हीं की सभ्यता के अनुसार अभिवादन करने में अपना कल्याण समझते थे।

दण्ड-विधान—

चौरासी वार्त्ता में निम्नलिखित प्रकार के दण्ड-विधानों का उल्लेख है:—

(१) जुर्माना (२) कैद (३) कोड़े लगवाना (४) गधे पर बैठाना (५) मुँह काला करना (६) अग्नि परीक्षा (७) प्राण-दण्ड।

अतिथि सत्कार—अनेक वार्त्ताओं में अतिथि सत्कार का उल्लेख है जिसमें अपने घर आने पर वैष्णव को प्रसाद लिवाया जाता था और कृष्णदास ब्राह्मण की वार्त्ता में तो इसका आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है जिसे ग्राउस जैसे अंग्रेज व आजकल के बहुत से अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दू भी समझ नहीं सकते हैं ।

कासिद-पत्र, खत—सिकन्दर लोदी और बाबर के समय से लेकर औरंगजेब के समय तक डाक चौकियों द्वारा पत्र लेजाने की व्यवस्था का उल्लेख इतिहास में मिलता है। हरकारे के लिए फारसी शब्द 'कासिद' है जिसका उल्लेख वार्त्ता संख्या तिरासी में है। पत्र और खत, वार्त्ता तीन और चार में आए हैं।

हुण्डी—इसका उल्लेख कई वार्त्ताओं में है और समकालीन इतिहास से यह सिद्ध है कि हुण्डी के द्वारा रुपया भेजने की प्रथा नितान्त भारतीय है और इसका प्रचलन पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व इस देश में था और औरंगजेब के समय तक रहा है। आज भी हुण्डी का चलन बन्द नहीं है ।

वास्तुकला, स्थापत्य—वार्त्ता में लिखा है कि पूर्णमल क्षत्री अम्बाले वाले ने श्रीनाथ जी का मंदिर बनवाया था और आगरे के हीरामन उस्ता ने उसका मानचित्र बनाया था। मुगलकालीन स्थापत्य से पूर्व इस देश में और विशेष कर उत्तर भारत में दो प्रकार की वास्तुकलाएँ चल रही थीं। एक को हिन्दू वास्तुकला कह सकते हैं और दूसरी को मुस्लिम। हिन्दू वास्तुकला की यह विशेषता थी कि उसमें लम्बे और पतले खम्भे होते थे और इसके नमूने मेवाड़ में पाये जाते हैं। इसमें हिन्दू देवी-देवताओं के चित्र या पौराणिक दृश्य भित्ति पर खोदने की प्रथा थी। डाक्टर आशीर्वादीलाल ने लिखा है कि 'ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग का हिन्दू-स्थापत्य इस्लामी विचारों के प्रभाव से मुक्त रहा। मुगलों के आगमन से पहले हमारे शिल्पियों पर इस्लामी कला का प्रभाव नहीं पड़ा।' इस दृष्टि से श्रीनाथजी के मंदिर का जो मानचित्र हीरामन उस्ता ने बताया होगा, वह हिन्दू स्थापत्य के अनुसार ही बना होगा। मुस्लिम स्थापत्य की उन दिनों मुख्य ये विशेषताएं थीं—(१) गुम्बज, (२) ऊँची मीनारें, (३) मेहराव, (४) भूमिगृह। दोनों में चौक सामान्य था। हिन्दू मंदिरों की छतें पट होती थीं जिन्हें तोड़कर गुम्बज बनाने में मुसलमानों को कठिनाई नहीं हुई थी। इसके अतिरिक्त कला की कुछ प्रांतीय विशेषताएँ भी थीं। आगरा प्रान्त में पत्थर पर काम करने वाले कुशल कारीगर थे जिन्होंने मथुरा के मंदिरों का निर्माण किया था। मूलतः स्थापत्य की दृष्टि से यह मंदिर भी हिन्दू कला का नमूना ही रहा होगा। इसके शिखर के सम्बन्ध में बहुत दिन तक विवाद रहा है और श्री महाप्रभुजी ने सदा शिखर का विरोध किया था पर पीछे से इस मंदिर पर शिखर बन ही गया था।

सम्राट् अकबर के समय में मुगल कला का विकास हुआ था और सम्राट् के घर में, आबघर, पानघर, गायघर, तोशाखाना, फर्राशखाना, कुतुबखाना इत्यादि अनेक स्थान नियत थे। इसी प्रकार श्रीनाथ जी के मंदिर में भी फूलघर, शाकघर, वस्त्रालय, भोजनालय, दूधघर, जलघर, इत्यादि विभाग थे।

यात्राएं और मार्ग—

इनका उल्लेख ऐतिहासिक प्रसंग में कर चुके हैं। यहाँ केवल इतना लिखना पर्याप्त होगा कि सिकन्दर लोदी, शेरशाह ,बाबर और अकबर सब ने इनकी सुरक्षा पर ध्यान

दिया था और शाहजहाँ के समय तक यह यात्राएं सुरक्षित थीं। इन पर विश्राम-गृह और सरायों की राजकीय व्यवस्था थी। सिकन्दर लौदी ने जो प्रबन्ध आरम्भ किया था उसमें सुधार ही होता गया था। राज-मार्ग में चोर और डाकुओं का भय नहीं के बराबर था क्योंकि राज-मार्ग की सुरक्षा भंग करने वाले को प्राण-दंड तक दिया जाता था, अंग-भंग होना तो साधारण सी बात थी।

वस्त्र—

चौरासी वार्त्ता में बागा, परकाला, दुलीचा, कवाय, फरगुल आदि वस्त्रों का उल्लेख है जिन पर अन्यत्र लिखा गया है। 'दुलीचा' कालीन को कहते थे। परकाला ढीले रुई भरे कोट को और बागा छोटे कोट को कहते हैं। दुलीचा देशज शब्द है। कवाय और फरगुल का उल्लेख वार्त्ता अट्ठाईस में है। दुलीचे की चर्चा तीसरी में और बागे का तेरहवीं और छत्तीसवीं वार्त्ता में है।

पात्र—

पात्रों में इसमें रूपा के कटोरा अर्थात् चांदी के कटोरा, थार, झारी, बंटा का उल्लेख है। ये पात्र आज भी सभी घरों में काम में आते हैं। झारी के व्यवहार पर देखने में कुछ मुसलमानी प्रभाव लगता है, पर यह पात्र इसी रूप में देश के मंदिरों में दक्षिण भारत में बहुत पहले काम में आता रहा है। डबरा, संस्कृत 'द्रर्भ' शब्द से बना है। इसका अर्थ है बड़ा कटोरा।

मिठाई-पकवान—

इन वार्त्ताओं में जलेबी और बूरे का उल्लेख है। शक्कर के लिए बयाना और आगरा उन दिनों प्रसिद्ध ही थे और जलेबी भी सारे भारतवर्ष में बनती है और पन्द्रहवीं व सोलहवीं शताब्दी में अवश्य रही होगी। पकवान बनाना एक कला है जिसमें पुष्टि मार्ग ने 'छप्पन भोग' और 'कुनवारे' के समय विशेष योग्यता प्राप्त की थी।

पान-बीड़ा

पान, सुपारी, तथा इलायची भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अंग हैं। अतिथि सत्कार में जो कुछ नहीं कर सकता है, वह अपने अतिथि को पान देकर उसका सम्मान करता है। आइनेअकबरी में, कपूरी, बिल्हारी ककेर, बंगला और जसवार इत्यादि अनेक प्रकार के पानों के नामों का उल्लेख है और बीड़ा के सम्बन्ध में लिखा है कि एक पान पर सुपारी और कत्था तथा दूसरे पर चूना लगाकर और लपेट कर उन्हें गोल करके रेशम में लपेट कर उसमें मुरक, केसर डालकर के बीड़ा बनाया जाता है। बीड़ा का उल्लेख तीसरी वार्त्ता में है, अट्ठारहवीं वार्त्ता में है और अन्य वार्त्ताओं में भी है।

सखडी, अनसखडी—इससे यह पता चलता है कि भोजन में कुछ को सब स्थानों पर स्वीकार करने योग्य माना गया था और कुछ को विशेष पर। आज भी कच्ची, पक्की का भेद वैसा ही चलता है। कच्चा सम्बंधियों के यहां खाया जाता है और पक्का सब जगह।

पंखा—पंखा मुसलमानों की एक विशेष शान थी। कुछ दिल्ली के शासकों ने जहाँ हिन्दुओं को घोड़े पर चढ़ने से मना किया था वहाँ पंखे के प्रयोग से भी मना कर दिया था। मुसलमानों में तो पंखे का जुलूस भी निकलता है। कुछ संतों की कब्र पर गर्मी के दिनों में फूल के पंखे चढ़ाए जाते हैं। ऐसा लगता है कि सिकन्दर लौदी के समय से आगे चलकर इसके

प्रयोग में कोई राजकीय बाधा न थी। पंखा करना एक सेवा थी और प्राय: लूले, लंगड़े, अन्धे इस काम को किया करते थे। दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में कई लोग श्री गुसांई जी की पंखे की सेवा करते थे, ऐसा लिखा है।

उत्सव—पहिली वार्त्ता में उत्सव शब्द का उल्लेख है। भारतीय सामाजिक जीवन में धन की दृष्टि से इतनी विषमता है कि साधारण व्यक्ति के लिए, कृषक के लिए, पर्व या उत्सव के दिन ही प्रसन्न होने का, अपने को भूलने का अवसर आता है। इसलिए हिन्दू सामाजिक जीवन में और धार्मिक जीवन में पर्व, मेला और उत्सव को स्थान दिया गया है। इस दिन साधारण दिन से अलग विशेष भोजन का प्रबन्ध होता था, और है। विशेष प्रकार के वस्त्र और परिधान धारण किये जाते थे, और हैं और मनुष्य जांति-पांति तथा श्रेणी के भेद को भूलकर एक दूसरे से मिलता है। इन उत्सवों में होली, दिवाली, दशहरा आदि विशेष महत्व के दिन हैं जिनको अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ तक मनाया करते थे। पीछे से शाहजहाँ ने इनको मनाना बन्द कर दिया और औरंगजेब ने तो हिन्दुओं को भी इन्हें मनाने से वर्जित कर दिया। सिकन्दर लोदी के समय में भी उत्सवों की यह पुरातन परम्परा ज्यों की त्यों चली आ रही थी, पर उसके शासन में भी इनके मनाने पर रोक लगी हुई थी। पुष्टि मार्ग के आचार्यों ने तो उत्सवों को समारोह के साथ मनाना प्रारम्भ कर दिया था और उनकी उत्सव सूची भी अलग है।

गऊ की सेवा—हिन्दू धर्म में गऊ का बड़ा महत्व है और भारतीय जीवन में इसका विशेष स्थान है। मुसलमानों ने हिन्दुओं का अपमान करने के लिए ही इस पशु का वध करना आरम्भ किया था। सम्राट् अकबर ने अपने महल में जहाँ गजशाला, अश्वशाला, ऊँटों के रहने का स्थान बनवाया था, वहाँ एक सुन्दर गौशाला, जिसे आइनेअकबरी में 'गौ-खाना' लिखा है, बनवाई थी। महाप्रभु जी ने ब्रज में श्रीनाथ जी की सेवा का प्रबन्ध करने के अतिरिक्त गौ-सेवा पर भी बल दिया था और गोवरधन और गोकुल में गायों के लिए सुन्दर खिड़क बनवाये थे। सम्राट् अकबर ने गोपालपुर और गोकुल की भूमि को गौचारण के लिए प्रदान किया था। गोमांस का निषेध कर दिया था और गौ-हत्या बन्द करवा दी थी। गौ की सेवा का उल्लेख अट्ठारहवीं वार्त्ता में है, तथा अन्य वार्त्ताओं में भी है। हरजी ग्वाल की पोखर गिरिराज का महत्वपूर्ण स्थान है और गौचारण और गोचर भूमि का वर्णन ब्रज साहित्य की अपनी विशेषता है।

दंडवत—यह भारतीय प्रणाम करने की विधि है। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या चार में है।

कौड़ी बेचना—कौड़ी मुगलों के समय में चलती थी और अकबर के समय में एक पैसे में पचास कौड़ियाँ मिलती थीं। संतदास आगरे वाले सेव के बजार में कौड़ी बेचते थे। इसका उल्लेख वार्त्ता साहित्य में है।

डोंगी और नाव—सिकन्दर लौदी के समय से लेकर औरंगजेब के समय तक यमुना में बड़ी-बड़ी नावें चलती थीं। व्यापार नावों से होता था। यात्राएं नावों से होती थी। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान ही नहीं है। अकबर और औरंगजेब ने अपनी नावों के नाम अलग-अलग रख छोड़े थे।

कथा, वार्त्ता, कीर्तन, जप—कथा कथन के द्वारा धार्मिक उपदेश देने की प्रथा प्राचीन है। तीर्थ स्थानों में ये कथाएं बहुतायत से होती थीं और आज भी हैं। 'वार्त्ता' पुष्टि सम्प्रदाय की अपनी वस्तु है। कीर्तन की सेवा भी पुरानी है, पर शास्त्रीय संगीत के रूप में मंदिर में इसको स्थान देने का श्रेय पुष्टि मार्ग के आचार्यों को है। जप और तप की महिमा हिन्दू शास्त्रों में साधना की श्रेणियां हैं। जप से चित्त पर अनुशासन होता है और ध्यान के लिए भूमिका तैयार होती है। नाम-जप का उल्लेख वार्त्ता संख्या बयालीस में है तथा और वार्त्ताओं में भी है।

स्नान—शारीरिक शुद्धि का साधन स्नान है। यह हिन्दू धर्म में आवश्यक है और पुष्टि मार्ग में तो बिना स्नान किये सेवा सम्बन्धी कार्य हो ही नहीं सकते। भारत में गंगा, यमुना, सरयू, कावेरी, नर्मदा, सतलज, जैसी सुन्दर और पुण्य-सलिला नदियां हैं जिनमें स्नान करने का महत्व धर्म ग्रंथों में लिखा गया है। पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के लिए उससे पूर्व स्नान करना आवश्यक है और सम्प्रदाय में 'सेवा में नहाना' एक मुहाविरा हो गया है। अत्याचारी सिकन्दर लोधी ने हिन्दुओं के धर्म पर प्रहार करने की दृष्टि से उनका नदियों में स्नान करना बंद कर दिया था और इस पर भी कर लगा दिया था जिसका महाप्रभु जी ने विरोध किया था और सम्राट् अकबर ने मथुरा में जमुना स्नान पर से यह कर उठा दिया था। 'स्नान' शब्द चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या पाँच, सेंतालीस में आया है और अन्य वार्त्ताओं में भी इसका प्रयोग मिलता है। वार्त्ता में ब्रह्म सम्बन्ध से पूर्व सभी को स्नान करना पड़ा है।

सालन—शाक को कहते हैं। अनेक प्रकार के शाकों का उल्लेख आइनेअकबरी में है जिनमें से सबके सब आज भी मिलते हैं। इनको मसाले के साथ बनाने को सालन कहते हैं। संस्कृत शब्द है 'स-लवण', उसी का रूपान्तर सालन है। कुछ लोग मांस को भी सालन कहते हैं क्योंकि प्रायः मांसाहारियों के घर में वही एक भाजी बनती है।

वेश्या रखना—वेश्याएं समाज का कलंक हैं। इनकी स्थिति समाज में बहुत दिन से है। अकबर ने इनको नगर के एक भाग में रहने की आज्ञा दी थी और इनके मुहल्ले का नाम शैतानपुरा रक्खा था। इनके लिए एक दरोगा की नियुक्ति की थी जो इनके मित्रों की सूची रखता था। मुगल दरबारों में जश्न के समय इन वारवनिताओं का प्रवेश होता था। हुमायूं ने इन्हें मंगलामुखी माना है। औरंगजेब ने इन्हें विवाह करने पर विवश किया था और व्याह न करने पर देश से निकाल दिया था। वेश्याओं के रूप, और गुण पर रीझ कर काम-वासना की शांति के लिए इनके प्रेम-पाश में फंसने की प्रथा बहुत पुरानी है। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या चौदह में है।

न्यारा होना—सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा हिन्दू पारिवारिक संगठन का मेरुदंड है और इसके सम्बन्ध में शास्त्रों में अनेक नियम और उपनियम हैं, पर आपस में न पटने पर अलग हो जाना और बटवारा करा लेना भी शास्त्रोक्त ही है। इसी हिन्दू प्रथा का इसमें उल्लेख है। यह उल्लेख वार्त्ता संख्या चौदह में है।

दरबार—फारसी शब्द है। दरबार उस स्थान को कहते हैं जहाँ सम्राट् या राजा अपने कर्मचारियों और प्रजा से मिलता है। यह शब्द सोलहवीं शताब्दी तक हिन्दी साहित्य की

सम्पत्ति होगया था क्योंकि तुलसी ने इसका प्रयोग रामचरित मानस में किया है—'गए भूप दरबार'। मुसलमान शासकों की बैठकें ही दरबार थीं जहाँ उनके राजकीय वैभव का उत्कर्ष दर्शनीय होता था। मुगलों में अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब सभी ठाठ से दरबार करते थे जिसकी शान से कई विदेशी यात्री प्रभावित हुए थे और शाहजहाँ के समय में 'तख्ते ताऊस' तो उस समय दरबार की शोभा का प्राण था। दरबार कचहरी सा भी होता था। दिल्ली और आगरे के किले के 'दरबारे आम' और 'दरबारे खास' सुन्दर और प्रसिद्ध स्थान हैं।

बंदीखाना—वार्त्ता अट्ठाईस में और बासठ में इसका उल्लेख है। सिकन्दर लोदी के समय में तथा हुमायूं के समय में बंदीखाने में रखने की प्रथा थी। यों तो ये बंदीखाने औरंगजेब के समय में भी थे। उसने शाहजहाँ को किले में ही बंदी कर रक्खा था, पर ग्वालियर और रोहतास के किलों का प्रयोग इस काम के लिये वार्त्ता काल में बहुतायत से हुआ है। साधारण बंदीखाने बहुत बुरे थे और उनमें रहने वालों को बहुत ही कष्ट होता था। डाक्टर बनारसी प्रसाद सक्सैना और डाक्टर परमात्माशरण दोनों का यही मत है। यहाँ भोजन की व्यवस्था भी बुरी थी। साधारणतया किसी को बंदीखाने में नहीं रखा जाता था। पर, यदि उससे जुर्माना वसूल करना होता था तो फिर उसको रखना आवश्यक हो जाता था।

मुगदर—इस शब्द का प्रयोग अट्ठाइसवीं वार्त्ता में है और इसका अर्थ मोटे डन्डे से है जो एक तरफ मोटा और मूंठ को तरफ पतला होता था। पहलवान लोग हाथों को पुष्ट करने के लिए इसी प्रकार की भारी जोड़ी का प्रयोग करते हैं। यह गदा का ही रूपान्तर है।

पोरिया—द्वारपाल को कहते हैं। पुराने किलों में प्रथम द्वार को सिंह द्वार या सिंहपोर कहते हैं और इसी प्रकार 'गजपोर' और 'अश्वपोर' भी होते थे। पौरी, पौरि या पौली सभी शब्द पुरम् से बने हैं। दक्षिण भारत के द्वार गोपुरम् कहलाते हैं। इनके रक्षक पौरिया कहलाते हैं।

खवास—चाकर को कहते हैं। यह अरबी शब्द है। मुगलों में जो चाकर कपड़े पहनाता था तथा व्यक्तिगत काम करता था, उसे खवास कहते थे। उन्हीं की देखा-देखी यह शब्द हिन्दू घरों में प्रवेश पा गया। सत्रहवीं शताब्दी में तो कविता में भी इसका प्रयोग मिलता है 'उग्रसैन की करत खवासी'। वार्त्ता में भी यह शब्द इसी अर्थ में आया है। इसी से सेवा करने के अर्थ में खवासी करना क्रिया बनी है। वार्त्ता संख्या इकतालीस में चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में तथा दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में यह शब्द अनेक बार आया है।

लौंडी—दासी। यह हिन्दी शब्द है और परिचारिका के अर्थ में आता है। बारहवीं शताब्दी में इस देश में यह प्रथा थी कि मुसलमानों के यहाँ बहुत से लड़के और लड़कियाँ गुलामों की भाँति काम करते थे। अकबर ने पराजितों के प्रति होने वाले इस अत्याचार को रोका था और औरंगजेब ने इस प्रथा का अन्त कर दिया था।

श्राद्ध के दिन एक समय खाना तथा ब्राह्मण भोजन—श्राद्ध के दिन एक समय खाना शास्त्र सम्मत और प्रथा दोनों के अनुकूल है। श्राद्ध के दिन पिण्डदान और जलदान में इतना विलम्ब हो जाता है कि उस दिन फिर दूसरे समय के भोजन के लिए अवकाश ही नहीं

रहता है। ब्राह्मणों को भोजन कराना पितृ-पक्ष में पुनीत कार्य माना गया है। और श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराने से पितरों की तृप्ति होती है, यह एक पुराना विश्वास है। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या साठ रजो क्षत्राणी की वार्त्ता में हैं, पर इस वार्त्ता में श्री आचार्य महाप्रभुजी ने रजो की आज्ञा से दूसरी बार भी भोजन कर लिया है।

नाक रगड़ना—दैन्य का सूचक है और इसी का उल्लेख वार्त्ता संख्या अट्ठाईस में है।

महामारी—इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या इक्कीस में है जिसमें कृष्णदास चौपड़ा के घर के सब लोगों की देह छूट गई थी और पीछे से वह भी मर गए थे। डाक्टर बेनीप्रसाद जी ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ जहाँगीर' में इस महामारी का उल्लेख किया है और स्वयं सम्राट् ने भी तुजुक जहाँगीरी में किया है। सम्राट् ने लिखा है कि हाथी का शिकार करके पश्चात् सन् १६१८ (सम्वत् १६७५) में अहमदाबाद में ऐसी बीमारी हुई जैसी आगरे में सन् १५६० (सम्वत् १६४७) में हुई थी। इसमें बहुत से मनुष्य मर गये थे जिसका रोकना कठिन था। इसके अनुसार यह महामारी जिसका चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या इक्कीस में उल्लेख है इससे भी पहले की है क्योंकि सम्वत् १६४७ में श्री महाप्रभु जी विद्यमान नहीं थे अथवा कृष्णदास चौपड़ा सम्वत् १६४७ तक विद्यमान रहे थे। इस सम्बन्ध में सम्प्रदाय के अन्य किसी ग्रंथ से कोई सहायता नहीं मिलती है। इस दूसरी महामारी के पाँच वर्ष पश्चात् तुलसीदास जी का शरीर 'बाहुपीर' से छूटा था।

दंडौती परिक्रमा—परिक्रमा करना पूजा और सेवा का एक अंग है और यह दंडौती परिक्रमा एक साधना है और शारीरिक तप भी। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या इकसठ में हैं। श्री गिरिराज की ऐसी परिक्रमा आजकल प्रतिदिन होती है। इसमें श्री गिरिराज के चारों ओर लेट कर दंडवत करते हुए परिक्रमा की जाती है जो विशेष कष्ट साध्य है। इसमें कम से कम दस दिन लगते हैं।

दंडौती धार—ग्वालियर और धौलपुर से मिला हुआ जो क्षेत्र है, उसे 'दंडौती धार' कहते हैं और यहाँ के ब्राह्मण 'दंडौतिया ब्राह्मण' कहलाते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यह दंडौती परिक्रमा करने में बड़े कुशल होने के कारण ही इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। इसका दंडौती धार नाम अशुद्ध है। वार्त्ता साहित्य में मूल से यह दंडौती धार के नाम से प्रसिद्ध है।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता से प्राप्त सामाजिक वृत्त तथा उसकी आलोचना

वास्तुकला—मंदिर, सतघरा, चौंतरा, अटारी, भीत, भोंयरा, मंदिर इन वार्त्ताओं में गोकुल के मंदिरों का उल्लेख है और वार्त्ता संख्या एकसौ पन्द्रह और दोसौ अड़तीस में चौंतरा का उल्लेख है। पहली वार्त्ता में यह चौंतरा एक स्मृति का रक्षक था और दूसरी में वह रास करने के लिए एक ऊंचा स्थान है। इसी प्रकार गोकुल में भी छोंकर के वृक्ष के नीचे श्री महाप्रभुजी के बैठने का चबूतरा था जहाँ अब बैठक बन गई है। मथुरा में सतघरा नामक सातों बालकों की हवेली का उल्लेख श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में है वहाँ श्री गुसांई जी के परदेश जाने पर श्रीनाथ जी ने कुछ दिन निवास किया था। यह एक बहुत बड़ा सात चौक का मकान था और जिसका प्राचीन रूप आज सुरक्षित नहीं है। भीत शब्द का प्रयोग वार्त्ता संख्या दोसौ चौआलीस में है जिसमें श्रीनाथ जी ने एक चूहडे को आज्ञा दी है कि वह गोकुल में जाकर श्रीगोकुलनाथ जी से कहे कि मंदिर में अधिकारी ने जो दीवाल खड़ी

करदी है उसको वे गिरवा दें क्योंकि श्रीनाथ जी को मंदिर से 'बिलछू' नहीं दीखता है। इस पर गोकुलनाथ जी ने वह दीवाल गिरवा दी और बिलछू पूर्ववत दीखने लगा था। श्रीगोकुलनाथ जी का समय संवत् १६९७ तक है। इसलिए यह घटना इससे पूर्व की है।

अटारी—इसका उल्लेख भी श्रीनाथ जी के प्राकट्य की वार्त्ता में है। अटारी दूसरी मंजिल पर बने छत से पटे कमरे या कोठे को कहते हैं।

भोंयरा—तहखाने को कहते हैं। हिन्दू स्थापत्य पर यह मुसलमानी प्रभाव है। तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में दिल्ली के सुलतानों के काल में मुसलिम स्थापत्य यहाँ फैल गया था। भोंयरा उसकी एक विशेषता थी। यह शब्द वार्त्ता संख्या एकसौ नवासी, राजा भीमसेन की वार्त्ता में आया है।

वस्त्र—दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में ओढ़नी वार्त्ता संख्या एक में उपरना, वार्त्ता संख्या ६६, ब्राह्मण स्त्री-पुरुष की वार्त्ता में, धोती, वार्त्ता संख्या दोसौ सत्ताईस में, मुखवस्त्र, वार्त्ता संख्या तेहत्तर में है, जिसका तात्पर्य मुँह पौछने से है और ऐसे वस्त्र से है जो मुंह पोंछने के काम आता है, जैसे—रूमाल और अंगोछा।

गद्दल—इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या १९६ मानकुंवरबाई की वार्त्ता में है। यह रुई भरा बड़ा कोट है जिसका गला वृन्दावनी के ढंग का होता है।

गादी—गद्दी या रूई के गद्दे को कहते हैं। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ तीस में है जब गोकुलदास ने एक लाख की हुण्डी चुपचाप से गद्दी के नीचे रखदी थी।

पोशाक—यह शब्द वस्त्रों के लिए वार्त्ता संख्या एक में आया है जब केशोराय को जरी का बागा पहने देख गोविंद स्वामी ने पूंछा है कि आपने बीमारों के वस्त्र क्यों पहन रक्खे हैं।

जरी—कामदार वस्त्र के लिए वार्त्ता संख्या एक और दोसौ छब्बीस में आया है। अकबर के समय से लेकर औरंगजेब के समय तक आगरा और दिल्ली जरी, कलाबत्तू और जरदोजी के काम के लिए भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध रहे हैं।

मखमल—इस वस्त्र का उल्लेख वार्त्ता संख्या दो सौ सैंतीस में है। मखमल भारतीय वस्त्र नहीं है। पर अकबर के समय में बुरहानपुर के मार्ग से यह आगरे आती थी और इस पर जरी का काम होता था। इस वार्त्ता में मखमल के किसी वस्त्र का उल्लेख नहीं है केवल टाट के खुरदरे पन के साथ इसकी चिकनाहट की तुलना की गई है।

मलमल—इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या तीस में है और बंगाल अहमदाबाद में यह कपड़ा इतना महीन बनता था कि विदेशी इसे देख कर मुग्ध हो जाते थे। इस वार्त्ता में भी एक बंगाली ही ढाका से एक मलमल का थान लेकर आया था।

बागा—एक प्रकार का कोट है इसका उल्लेख अनेक वार्त्ताओं में है। वार्त्ता संख्या तीस और दोसौ में इसका उल्लेख है। अकबर ने अपनी रुचि के अनुसार इसमें कुछ परिवर्तन किया। यह घेरदार और चाकदार दो प्रकार का होता है। इसमें बटन की जगह तनी लगती हैं।

भोजन (पाक-कला)—पाक-कला में पुष्टि मार्ग ने जो उन्नति की है वह अद्वितीय

है। प्रत्येक भोग और उत्सव पर विविध प्रकार की सामग्री सुचारू रूप ने पका कर भोग में रक्खी जाती हैं। प्रसिद्ध है कि जैनी अपना रुपया मंदिर बनाने में लगाते हैं और पुष्टि मार्गीय भोग में। एक रुपये का पत्थर कर देता है और दूसरा सरस भोजन। कुनवारा और अन्नकूट के भोग तो नेत्रों के लिए शृङ्गार हैं। उनके प्रकार और सजाने की विधि दोनों सराहनीय हैं। इन सब से बढ़कर है शुद्धता का ध्यान। भोग की सामग्री बनाने और सजाने दोनों में इसका विशेष ध्यान रक्खा जाता है। पाक कला का उत्कर्ष वास्तव में पुष्टि मार्ग में चरम उत्कर्ष पर है। प्रत्येक मन्दिर में 'दूध घर' शाकघर, पान घर, जल घर, इत्यादि उसी प्रकार होते हैं जैसे मुगलों के महल में थे या उससे भी बढ़ कर हैं। इनके लिए अलग-अलग कर्मचारी नियत होते हैं। 'कुनवारे' का उल्लेख दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या पैंतीस में है और अन्नकूट का श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में।

इन वार्त्ताओं में वार्त्ता संख्या सत्तावन और दोसौ आठ में दालबाटी का उल्लेख है जो ब्रज में वर्षा ऋतु में सर्वत्र बनती है। वार्त्ता संख्या छियासठ और उनसत्तर में चोखा (चना) का उल्लेख है। वार्त्ता दो में बाँसौधी (रबड़ी) और वार्त्ता छियालीस में तवा-पूरी और छप्पन में सुपारी तथा अनेक वार्त्ताओं में ताम्बूल और बीड़ी का उल्लेख है। पुष्टि मार्ग के भोग एक कला कृति है।

आभूषण—

मुन्दरी—अँगूठी को कहते हैं इसक उल्लेख वार्ता संख्या एक सौपिचासी में है जिसमें अद्‌भुतदास ने गरम तेल की कढ़ाई में से यह अँगूठी निकाल ली थी। इनका चलन इस देश में इतना था कि जब सर टामस रो ने जहाँगीर को देखा तो उसकी सारी उंगलियों पर रत्नजटित अंगूठियां थीं जिनकी आभा के सामने इसकी दृष्टि नहीं ठहरी थी। इसके अतिरिक्त स्वर्ण मेखला, कंठी, अनेक प्रकार के हार, कुण्डल, कड़ा, कंठा, सेहरा, तिलक शृङ्गार में काम में आते थे। पंखा भी शृङ्गार की सामग्री है। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या एकसौ बानवे में है।

पात्र—झारी, कसेंडी, बंटा, तिष्टी, तबकड़ी—बार्त्ताओं में वार्त्ता संख्या छप्पन और तेहत्तर में झारी का उल्लेख है। वार्त्ता संख्या तेहत्तर में तिष्ठी का उल्लेख है। वार्त्ता संख्या दोसौ तैंतीस मे कसेंडी में दूध लेने का उल्लेख है। कसेंडी छोटी सी कटोरी है। 'तबकड़ी', अरबी शब्द है जिसका अर्थ है छोटी रकाबी या तश्तरी। आरती—पीतल या अन्य धातु की बनी बत्ती या कपूर जलाकर आरती उतारने का पात्र है। परधी-दीप स्तम्भ है।

इसके अतिरिक्त वार्त्ता चालीस, सरसठ और दोसौ सात में पत्तल और दोनों के प्रयोग का उल्लेख है। ढाक और लहसोड़े के पत्तों की सुन्दर पत्तल बनाना एक कला है। ब्रज में ग्वालियर की पत्तलें प्रसिद्ध हैं।

जड़ाऊ मौजा—सोने के फुल बूट से हैं।

जूता जोड़ी—इसे जोड़ा, या जोड़ी भी कहते हैं। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या छियालीस में है।

सूतन—पायजामा ।

पिछौरा—दूकूल ।

पाग, फेंटा—पगड़ी, साफा ।

कंचुकी—स्त्रियों का स्तन वस्त्र है ।

कुलह, कुलह जड़ाऊ—मुगलों के साफे के बीच की टोपी को कहते हैं । यह कई प्रकार की जड़ाऊ व सादा होती है । श्रीनाथजी को यह मुगल बादशाहों की भेंट है ।

टिपारा, टिपारा जड़ाऊ—टोपी ।

किरीट, मुकुट—अनेक प्रकार की टोपियाँ, टोप ।

भोग—(१) ग्वाल भोग, (२) गोपीवल्लभ भोग, (३) राजभोग, (४) मध्याह्न भोग, (५) संध्या भोग ।

जूठन—जहाँ भोग रखने का नियम है, वहाँ अनेक वार्त्ताओं में जूठन की पातर रखने और चर्वित ताम्बूल देने का भी उल्लेख है । वह स्वास्थ्य की दृष्टि से अहितकर है ।

सामाजिक श्रेणियां या वर्ग—(१) पातसाह, राजा, रानी, राजकुमार । (१) पृथ्वीपति, दिल्लीपति, पातशाह, अकबर बादशाह का उल्लेख कई वार्त्ताओं में है । इस दृष्टि से सर्व श्रेष्ठ शासक और अधिकारी यही सिद्ध होता है ।

(२) राजा और राजकुमार—इन वार्त्ताओं में राजा लाखा, राजा जोधसिंह, पूरव को एक राजा, एक राजा-रानी, एक राजा, एक राजा का बेटा, लक्षरण वाला एक राजा, राजा भीम, एक राजा पर्वतसेन, एक राजा, रत्नावतीराणी, दक्षिण का राजा पृथ्वीसिंह, दुर्गावती, मधुकरशाह, जैमल राजा का उल्लेख इस प्रकार है —

वार्ता संख्या पन्द्रह में मेडते के योग्य शासक राजा जैमल का उल्लेख है । वार्त्ता-संख्या चौबीस में राजा लाखा नाम के राजा ने अपनी रानी के लिए परदे में दर्शन करने का प्रबन्ध करवाया है । वार्त्ता एकसौ सत्रह में राजा जोतसिंह नाम के पंढरपुर के एक राजा का गुसांई जी का शिष्य होना लिखा है । वार्त्ता-संख्या एकसौ बत्तीस, एकसौ इकसठ, एकसौ उन्हत्तर, एकसौ बानवे, दोसौ एक और दोसौ अट्ठाइस में भी अन्य राजाओं का उल्लेख है । इन वार्त्ताओं में इन राजाओं के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है और वार्त्ता के विवरण से इनके सम्बन्ध में इनके राजा होने के अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञात नहीं है । वार्त्ता के आधार पर केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि यह धनी, सम्पन्न वर्ग के लोग थे और इनके पास अपनी जमीन या जमींदारी थी । राजा भीम की वार्त्ता एक सौ नौवासी है और इनके वृत्त में केवल इनका और इनकी रानी का नाम दिया है । पर्वतसेन की वार्त्ता एकसौ चौरानवे है । इसके भी केवल नाम का ही उल्लेख है । पृथ्वीसिंह की वार्त्ता दोसौ इकतालीस है और मधुकर शाह की दो सौ पैंतालीस । वार्त्ता दोसौ इकतालीस में पृथ्वीसिंह को बीकानेर का और काबुल की मुहिम पर जाने वाला लिखा है और मधुकर शाह की वार्त्ता संख्या दोसौ पैंतालीस में ओड़छे का राजा तथा वैष्णव लिखा है । रानी रत्नवती और दुर्गावती की वार्त्ताओं की संख्या दोसौ सत्ताइस और दोसौ बयालिस है । रानी रत्नावती आमेर के राजा मानसिंह के भाई माधोसिंह की रानी लिखी है और दुर्गावती गढ़े की रानी । इस प्रकार दोसौ बावन वैष्णवन

की वार्त्ता में बादशाह अकबर को छोड़कर पन्द्रह राजाओं और दो रानियों का उल्लेख है। वार्त्ता संख्या सत्तर में एक गांव का ठाकुर ही राजा लिखा गया है।

(३) राज कर्मचारी—तीसरे वर्ग में वे लोग आते हैं जो राज्य में कर्मचारी थे। जैसे—बीरबल, राजा मार्नासह, अलीखान, पठान, गोधरा के देसाई, नारायणदास जीवन (थट्ठे) के, नारायणदास (बंगाल) के देशाधिपति के चाकर, हाकिम, इत्यादि।

(४) चौथे वर्ग में व्यापारी व धनी लोग हैं जो लाखों रुपए की हुँडी भेजते थे।

(५) पांचवें वर्ग में निर्धन अथवा साधारण श्रेणी के लोग हैं।

हुक्म—राजा या हाकिम के हुक्म का उल्लेख वार्त्ता संख्या नौ, दोसौ सत्रह और दोसौ इक्कीस में है। वार्त्ता नौ में नारायणदास बंगाल वाले को दाऊद किर्रानी ने हुक्म दिया है कि जब तक तुम्हारे गुरु यहाँ रहें, तब तक तुम उनकी सेवा करो। वार्त्ता दोसौ सत्रह में भी यह शब्द इसी अर्थ में आया है, पर यहाँ यह राजाज्ञा नहीं है, एक निष्किंचन का हुक्म है। वार्त्ता दोसौ इक्कीस में यह एक राजा का हुक्म है। इससे यह प्रतीत होता है कि बादशाही फरमान की भाँति सूबे के मनसबदार, फौजदार, परगने और सरकार के हाकिम भी आज्ञाएं निकालते रहते थे।

वजीर—इस शब्द का उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ उन्तीस में है। मुगल शासन में यह पद अत्यन्त गौरवपूर्ण होता था। सम्राट् के पश्चात् यही सर्व श्रेष्ठ अधिकारी होता था, पर यहाँ वार्त्ताकार ने इसे किसी राजा के प्रधान मंत्री के अर्थ में लिख दिया है जिससे भ्रम फैल सकता है, पर इस वार्त्ता में इन्हीं को प्रधान कहा गया है। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि वार्त्ताकार ने वार्त्ताओं को लिपिबद्ध करते समय राजकीय शब्दों के प्रयोग में सावधानी से काम नहीं लिया है और इनका ऐसे शब्दों का प्रयोग भ्रमपूर्ण है।

सरकार—यह शब्द वार्त्ता संख्या उनसठ में आया है। इसका अर्थ शासन है।

परगना—इस शब्द का प्रयोग वार्त्ता संख्या दस में है। इसमें लिखा है कि कायस्थ विट्ठलदास ने गौड़ देश में जाकर परगना इजारे पर लिया था। मुगल कालीन शासन व्यवस्था में देश सूबा, सरकार, परगना और गांवों में विभक्त था, यह सत्य ही है।

नजराना—'नजर'। यह भी मुगल काल की एक विशेषता है। अकबर के पश्चात् जहाँगीर, नूरजहाँ और शाहजहाँ ने तो बहुमूल्य भेंट लेने में अति करदी थी। विदेशी पर्यटकों ने लिखा है कि जितनी बड़ी भेंट होती थी, वैसा ही काम बनता था। सरल प्रकृति के औरंगजेब ने भी मोटी-मोटी रकमें भेंट में ली थीं। वार्त्ता संख्या नौ में लिखा है कि बादशाह दाऊद प्रति वर्ष नारायणदास के घर जाकर नजराना लेता था।

सिपाही—वार्त्ता संख्या साठ और एकसौ चौदह में इस शब्द का प्रयोग है। कोतवाल के कर्मचारी को सिपाही कहते थे। इस वार्त्ता में सेठानी ने वैष्णव को सिपाहियों के पहरे में रुपया न देने के कारण बैठा दिया है। सिपाहियों का काम पहरा देना भी था।

पगार—यह शब्द वार्त्ता संख्या चौंसठ और दोसौ अठारह में आया है। इसका अर्थ है 'वेतन' है। अकबर के समय में वेतन भोगी कर्मचारी राज्य में नियत थे और उसका अनुकरण और लोग भी करते थे।

कचेरी—इस शब्द का उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ तेरह में है। यहाँ यह किसी राजा के न्यायालय या दरबार के अर्थ में आया है। वार्त्ता में जैमल की कचेरी का उल्लेख है।

न्याय—अपराधी के विरुद्ध सरकार में, अधिकारी, काजी या हाकिम के पास न्याय के लिए प्रार्थना करने की प्रथा और प्रबन्ध सिकन्दर लोदी के समय से औरंगजेब तक बराबर इतिहास में मिलता है। वार्त्ता संख्या दोसौ बारह में लिखा है कि मगनभाई खंभात वाले ने गोवर्धन भट्ट के पाँच हजार रुपए रख लिए थे, इस पर उन्होंने राजद्वार में इनके विरुद्ध याचिका उपस्थित की थी। इसी वार्त्ता में मगनभाई के हाथ में उनके सत्य की परीक्षा के लिए गर्म लोहा पकड़ाया गया था और उनके हाथ नहीं जले थे। अकबर के शासन काल में इस प्रकार के दण्ड प्रचलित थे। इसका समर्थन श्री वाहिद हुसेन की पुस्तक से प्राप्त है।[1] इसी प्रकार के अन्य सामाजिक दण्ड, गदहे पर बैठाल कर निकालना, औरतों के कपड़े पहनाकर नगर में घुमाना भी उस समय प्रचलित थे। चोर को प्राण दण्ड या हाथ पांव काटने की भी राजाज्ञा थी। कैद और बंदीखाने का उल्लेख वार्त्ता संख्या पैंसठ, दोसौ बारह, और एकसौ उनहत्तार में है। श्री गुसांई जी ने साहूकार के बेटा की बहू का न्याय किया था जो सम्राट् अकबर को मान्य हुआ था। सम्राट् जहाँगीर और शाहजहाँ अपने कठोर न्याय के लिए प्रसिद्ध थे। वार्त्ता संख्या इक्यासी दोसौ वा० वैष्णवन की वार्त्ता में गदहे पर बैठाकर घुमाने का उल्लेख है।

जातियां—वार्त्ता साहित्य के अनुसार देश में फैली हुई अनेक जातियों और गोत्रों के नाम मिलते हैं। ब्राह्मणों में सारस्वत, कनौजिया नागर, गौड़, सनौढ़िया के अतिरिक्त सांचोरा, पांडे, दुबे और भट्ट ब्राह्मणों का उल्लेख इन वार्त्ताओं में है। क्षत्रियों में, राजपूत तथा अनेक खत्रियों के नाम तथा गोत्रों का उल्लेख इन वार्त्ताओं में है। जैसे—देवा कपूर, निहालचन्द जलोटा, संतदास चोपड़ा, हृषीकेश, आगरे वाले इत्यादि। बनियों में भाइला कोठारी, रूपचन्द नंदा, चुन्नीलाल सेठ, राजनगर के बनियों और बड़े तथा छोटे अनेक व्यापारियों का उल्लेख है। शूद्रों में बलाई, गोवर्धन का चूहडा, इत्यादि। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य जातियों का उल्लेख उनके स्थान (बंगाली, गुजराती) या कर्म के कारण भी हुआ है, जैसे—कूंजरी, सुनार, लुहार, धीमर, कायस्थ, कुनबी, पटेल, पृथ्वीपति, रसखान, अलीखान, ताज इन मुसलमान हरिजनों के नाम तो पुष्टि मार्ग में गर्व के साथ लिए जाते हैं।

व्यापार और मुद्रा—इन मुद्राओं में मोहर, रुपये, पैसे और कौड़ियों का उल्लेख है जो श्री गुसांईजी को उनके सेवकों ने समय-समय पर भेंट की थीं। मोहरें लाठी या गोले में भर कर अडैल भेजी गई हैं। रुपयों की हुण्डियाँ कराई गई हैं जिनमें एक-एक सेवक ने एक लाख या इससे अधिक रुपये की हुण्डियाँ भेजी थीं। हुण्डियों का उल्लेख वार्त्ता संख्या सात, सत्तासी और दोसौ तीस में है। बाजार शब्द का उल्लेख वार्त्ता संख्या उन्नीस और एकसौ इक्यासी में है। हाट शब्द दूकान के लिए कृष्णदास की वार्त्ता में तथा अन्य वार्त्ताओं में आया है। वार्त्ता संख्या तेरह में लिखा है कि कृष्णदास खत (रुक्का) लिखाकर व्यापारियों को रुपया उधार दे दिया करते थे। व्यापारी शब्द, वार्त्ता संख्या अट्ठारह और एक सौ त्रेसठ में आया है। अनेक व्यापारी उस समय इस देश में विविध वस्तुओं का व्यापार

१ एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ड्यूरिंग मुस्लिम रूल।

करते थे। ऐतिहासिक इतिवृत्त से पता चलता है कि इस वार्त्ता-काल के भीतर आने वाले समय में कपड़ा, नमक, चीनी, नील, पिरोजा और शोरे का बड़ा भारी व्यापार होता था और अकबर, जहाँगीर शाहजहाँ सब सम्राट् कुछ न कुछ व्यापार करते थे।

ताकड़ी—शब्द वार्त्ता संख्या दोसौ नौ में आया है। इसका अर्थ है तराजू और व्यापार में इसकी आवश्यकता नाज तौलने तथा अन्य वस्तुओं के तौलने के लिए पड़ती थी।

दलाल और दलाली—उन दिनों दलाल थे। यह माधोदास की वार्त्ता संख्या दोसौ पैंसठ से विदित है और दलाली एक सम्भ्रात पेशा था। हर व्योपार के अलग दलाल होते थे क्योंकि घोड़ों के दलाल हृषीकेश क्षत्री आगरे वाले ने श्री गुसांई जी को एक घोड़ा दिया था। ऐसे कपड़ा, जवाहिरात, सोने, चांदी सबके दलाल बड़े नगरों में होते थे। राज्य में भी इन्हीं के द्वारा माल लिया जाता था।

जहाज—वार्त्ता संख्या दोसौ सैंतालिस में एक सौदागर उसके पड़ोसी और एक बनिये का उल्लेख है जिसका लड़का जहाजों से व्यापार करता था और उसके जहाज डूब जाने की खबर पाकर उसके मां-बाप बड़े दुखी हुए थे।

मार्ग और सवारियां—अनेक मार्गों का उल्लेख वार्त्ताओं में है जिनके द्वारा श्री गुसांईजी बद्रिकाश्रम, उज्जैन, द्वारका, अडैल, जगन्नाथपुरी पधारते थे। इसके अतिरिक्त सवारियों के लिए गाड़ा (बैलगाड़ी) रथ, पालकी, घोड़ा और हाथी का उल्लेख भी अनेक वार्त्ताओं में है। गाड़ा का उल्लेख वार्त्ता संख्या एकसौ तेरासी में है, घोड़े का वार्त्ता दोसौ अड़तालीस तथा अनेक वार्त्ताओं में है। पालकी की वार्त्ता संख्या दोसौ तेंतालीस में, रथ की श्रीनाथ जी की वार्त्ता में। जहाज और बड़ी-बड़ी नावों का उल्लेख ऊपर हो ही चुका है। माल, असबाव व बोझ के लिए के 'भारा' 'भारो' शब्द वार्त्ता संख्या एकसौ चार में है।

मार्ग की रक्षा—यद्यपि राज्य की ओर से मार्ग पर ठहरने के लिए सरायें, कुंए और वृक्ष लगे थे और लूट-मार करने वालों को कठिन दंड दिया जाता था। इस पर भी राज्य के किसी न किसी भाग में इस प्रकार की अव्यवस्था कभी कभी फैल जाती थी और भवैया या बटमार लोग माल लूट लिया करते थे। इसलिए इकट्ठे 'संग' या 'साथ' में चलने का प्रचलन था। भवैया का उल्लेख वार्त्ता संख्या बावन और त्रेपन में है तथा मार्ग में लूट-पाट करने का उल्लेख वार्त्ता संख्या एकसौ त्रेसठ में है।

भूमि, भूमिकर, पटेल, देसाई, पटवारी—सम्राट् सिकन्दर लोदी, शेरशाह, अकबर सबने भूमि की नाप-जोख करा कर भूमि कर निर्धारित किया था। इसकी दर में समय-समय पर भूमि के अनुसार भेद रहा है। शेरशाह के समय यह कर द्रव्य रूप में भी दिया जा सकता था और माल के रूप में भी। शेरशाह ने 'मुखिया' नाम की संस्था का उत्तर भारत में अन्त कर दिया था, पर गुजरात में पटेल और देसाई बने रहे थे। अकबर के समय में कानूनगो और पटवारी नियुक्त थे जो इस कर को एकत्र करने में सहायता करते थे। पटवारी के विषय में अबुल फजल ने लिखा है कि पटवारी लेखपाल होता था और यह अन्न की उपज का लेखा रखता था। इसके वेतन भोगी कर्मचारी होने में सन्देह है। राजा टोडरमल ने इस व्यवस्था में जो सुधार किए थे, वे अंग्रेजों के समय तक चलते रहे थे। उत्तर प्रदेश के गांव का मुखिया और पटेल एक ही पद था।

अन्य कर—वार्त्ता संख्या उनसठ में 'महसूल' शब्द आया है। अकबर और शेरशाह दोनों के समय में बहुत से अन्य कर लगते थे। इस वार्त्ता में महसूल भूमि कर के लिए आया है। बंगाल के कपड़े पर आगरे में चुंगी ली जाती थी और ऐसी अनेक वस्तुओं पर चुंगी जहाँगीर ने हटादी थी। इसका उल्लेख वार्त्ताओं में है।

टहल, नौकर, लौंडी, पौरिया, भीतरिया, खवास, खवासिनी—टहल शब्द वार्त्ता संख्या साठ में सेवा के अर्थ में आया है। नौकर शब्द वार्त्ता संख्या उन्नासी में वेतन भोगी कर्मचारी के अर्थ में आया है। पौरिया शब्द द्वारपाल के अर्थ में है। खवास और खवासिनी शब्द वार्त्ता संख्या दोसौ सत्ताईस और तीस में आये हैं। मुगल शासन में और उससे पूर्व इस देश में उच्च वर्ग के लोगों के पास बहुत नौकर और गुलाम होते थे। इसी के फलस्वरूप यह शब्द वार्त्ता में आये हैं।

डाक—सिकन्दर लोदी, शेरशाह, हुमायूं, अकबर और औरंजेब सभी ने डाक-व्यवस्था को सुरक्षित रक्खा था और परगने के हाकिमों को इसकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध करने का आदेश था। भारी डाक गाड़ियों से जाती थी और हल्की और जरूरी हरकारे ले जाया करते थे। वार्त्ता संख्या तेरह में खत शब्द का प्रयोग है और दोसौ एक में पत्र का। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उन दिनों डाक की व्यवस्था थी और दूर देश के समाचार बराबर मिला करते थे।

शिकार और शिकारी—सभी सम्राट् और राजवर्ग के लोग तथा राजपूतों का यह एक वीरता पूर्ण आमोद था। इसकी अकबर के राज्य में बड़ी सुन्दर व्यवस्था थी। सम्राट् जहाँगीर तो यात्रा के समय बीच-बीच में शिकार खेलते जाते थे। गुजरात में भी इसने कई दिन शिकार में बिताये थे। वार्त्ता में भइय्या रूप मुरारीदास बादशाह के शिकार के हाकिम थे।

खेमे, राउटी, डेरे—मुगलों को इन कपड़ों के घरों में रहने का अच्छा अभ्यास था। हुमायूं ने एक बहुत बड़ा कालीन और डेरा बनवाया था। अकबर के यहाँ फार्शखाना अलग ही था। वार्त्ता में भी श्री गुसांईजी ने अपनी ब्रज यात्राओं में या तीर्थ यात्राओं में इन डेरों का प्रयोग किया है। मुगल डेरा एक सुसज्जित नगर ही होता था।

व्रत—दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में व्रत का कई स्थानों पर उल्लेख है। आत्म-शुद्धि का यह साधन प्राचीन है और वार्त्ता साहित्य के प्रचार के समय इसकी मान्यता अधिक थी, यह इससे प्रगट है कि ब्रह्म सम्बन्ध प्राप्त करने वाले को व्रत करना पड़ता है। एकादशी, नरसिंह चतुर्दशी, जन्माष्टमी के व्रतों का इनमें उल्लेख है। वार्त्ता संख्या पन्द्रह में जैमल ने दूसरी एकादशी करने वाले को दंड देने की मेड़ते में घोषणा की थी।

वन और वृक्ष—छोकर, नीम, पीपल, फरास और टेसू ब्रज के अपने वृक्ष हैं। अलीखान पठान मुगल शासन में वन के कर्मचारी थे और वृक्षों की रक्षा का ध्यान रखते थे। इनकी सूची अन्यत्र दी गई है। वनों का उल्लेख ब्रज के पुराने स्थानों के प्रसंग में किया गया है।

कथा वार्त्ता—यह वैष्णव समाज में प्रतिदिन होती थी। वार्त्ता साहित्य ही कथा साहित्य है।

परदा और चिक—परदा या टेरा वैष्णव सेवा सामग्री का एक अंग है। पर स्त्रियों के परदा करने का उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ चौबीस और सत्ताईस में है। यह प्रथा इस

देश में अलाउद्दीन के समय से बढ़ी है और मुसलमानों की देखा-देखी उच्च वर्ग और राज कर्मचारियों में इसका प्रचार प्रचुर मात्रा में होगया था यह इन वार्त्ताओं से प्रगट ही है। चिक तुर्की शब्द है और इसका प्रयोग मुस्लिम शासन की विशेषता है।

लेन-देन--अनेक वार्त्ताओं में से वार्त्ता संख्या तेरह में 'कागज' रुक्का लिखाकर रुपया देने की चर्चा है और वार्त्ता संख्या दोसौ तेंतीस में कटोरा रहन रखकर दूध लेने की बात लिखी है। इसी प्रकार ऋरण बढ़ जाने के काररण श्री गुसांईजी के परदेश जाने का उल्लेख भी इन वार्त्ताओं में है। इससे ऋरण, ब्याज और बन्धेज सभी प्रथाओं का चलन वार्त्ता में उस काल का मिलता है।

विवाह—अनेक वार्त्ताओं में विवाह का उल्लेख है। भावसिंधु में श्री गुसांईजी के दूसरे व्याह का उल्लेख है। यह एक सामाजिक बंधन है और वार्त्ता के उल्लेख से यह पता चलता हैं कि इसमें जाति-पांति का बंधन मान्य था। परिरणय का उल्लेख वार्त्ता संख्या सत्तानवे में हैं।

अमल, व्यसन और वेश्या—उन दिनों वेश्याएं नगरों में रहती थीं। इसका उल्लेख कई वार्त्ताओं में है। कृष्णदास जी श्रीनाथ जी के दरबार में वेश्या ले आए थे तथा वार्त्ता संख्या एकसौ पाँच में तो माधोदास की प्रेमिका एक वेश्या को उसके आचररण के काररण शररण में लिया था। इसी प्रकार वार्त्ता संख्या बारह में अफीम के व्यसन और अमल का उल्लेख है।

संगीत और वाद्य, नृत्य और अभिनय—शास्त्रीय संगीत की उन्नति के लिए यह काल अत्यन्त महत्व पूर्ण है। अकबर स्वयं कलाविदों का आदर करने वाला था। राजपूताने में प्रत्येक राज्य में संगीतज्ञों का संरक्षण था। ग्वालियर इसका गढ़ था। आगरे में एक नए ढंग के संगीत का विकास हो रहा था। इधर पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्तन की सेवा ने इसकी श्रीवृद्धि के लिए नित्य प्रति नियमित रूप से प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। भारतीय संगीत ने हिन्दू मुसलमान के भेद को मिटाने में जो कार्य किया है, वह न कबीर कर सके और न दीनइलाही। इसकी गरिमा में मुहम्मद गौस, तानसेन, हरिदास और अष्टछाप के सभी कवि तथा अन्य लोग एक भाव से बद्ध होते चले गए। ताल स्वर शब्द का प्रयोग वार्त्ता संख्या एक में है। नृत्य के लिये नांच तमाशा वार्त्ता संख्या चार में है। अभिनय के लिए रासधारियों का उल्लेख वार्त्ता संख्या तीन में है और रास मंडल के चौंतरे का भी उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ अड़तीस में है। रास ब्रज-मंडल की एक कला है और ब्रज यात्राओं के काररण इसमें वृद्धि हुई थी।

कवि—अनेक कवियों का उल्लेख तथा साहित्य की समृद्धि वार्त्ता साहित्य की अपनी विशेषता है।

जादू, टोना और अंध विश्वास—इनका उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ दो और अकबर की वीवी ताज की वार्त्ता में भावसिंधु में है।

मशाल—इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या पैंसठ में है और श्रीनाथ जी की वार्त्ता में भी है। प्रकाश का यह साधन उस समय प्रचलित था और गांवों में आज भी है।

मजूरी—गुरमी को या काम करने वाले को दिया गया पारिश्रमिक है, जो धन और अनाज दोनों प्रकार से दिया जाता था। इसका उल्लेख वार्त्ता संख्या एकसौ सत्ताइस में है।

मुल्ला—यह शब्द धर्माधिकारियों और काजियों के लिए आया है। औरंगजेब के समय में इनके पास मंदिर तुड़वाने का काम था और इस्लाम विरोधी आचरण की सूचना देना भी इन्हीं का काम था। श्रीनाथ जी के प्राकट्य की वार्त्ता में इस शब्द का उल्लेख है। अकबर के समय में इनकी शक्ति क्षीण हो गई थी।

बुहारी—घर साफ करने के लिए प्रयोग में आने वाले साधन का नाम बुहारी है और इसके अनेक रूप आगरा, बंगाल, बिहार, गुजरात और सिंध में प्रचलित हैं।

सूत कातना—चर्खा भारतीय व्यापार की धुरी है और इस व्यवसाय का उल्लेख कई वार्त्ताओं में है।

तीर्थ यात्रा—बद्री, केदार, काशी, पुरी, द्वारिका, उज्जैन, प्रयाग, मथुरा की यात्राएं इन दिनों संघ द्वारा होती थीं। अकेले जाने की न तो प्रथा थी और न वह सुरक्षित ही था।

कुंआ व बावड़ी—कृष्णदास की मृत्यु कुंए में गिरकर हुई थी। यादवेन्द्रदास कुम्हार कुंआ खोदता था और बावड़ी का उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ चौबीस में है जहाँ दामोदरदास गांव में बावड़ी पर सों रहे है उस समय नदियां, कूप और बावड़ी तथा कुण्ड यही जल प्राप्त करने के साधन थे।

यों तो बापी शब्द पुराना है, पर बावड़ी मुसलमानी शासन की विशेषता है।

दूध—डेढ़ आने सेर का उल्लेख वार्त्ता संख्या दोसौ तैंतीस में है। यह एक सेर कितना बड़ा था, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। अन्यथा इस काल में दूध तो और भी सस्ता था। वार्त्ता का यह कथन इस दृष्टि से प्रामाणिक न ठहरेगा।

वार्त्ता साहित्य से प्राप्त ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सूचनाएं और उनकी परीक्षा

वार्त्ता साहित्य में तत्कालीन इतिहास और संस्कृति की झलक—

वार्त्ता साहित्य के माध्यम से जो ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है, उसका विशेष सम्बन्ध पुष्टि मार्ग से है और वे सब प्रासंगिक उल्लेख मात्र है। इस प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री को हम दो भागों में बांट सकते हैं—

(१) वह ऐतिहासिक सामग्री जिसका विशेष सम्बन्ध केवल पुष्टि मार्ग के इतिहास से है।

(२) ऐसी सामग्री जिसका सम्बन्ध पुष्टि मार्ग के इतिहास से भी है, पर जिसका देश की राजनीतिक और धार्मिक अवस्था में एक असाधारण महत्व है। इस प्रकार वार्त्ताओं में जो उल्लेख और विवरण हैं, उनसे निम्न प्रकार की सामग्री प्राप्त होती है—

(१) पुष्टि मार्ग के आचार्यों के नाम और उनके विषय में महत्वपूर्ण उल्लेख।

(२) सेवकों के नाम और उनके स्थान तथा कार्य।

(३) तत्कालीन उन महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख जिनका सम्बन्ध पुष्टि मार्ग से रहा है अथवा जिनका प्रभाव किसी न किसी प्रकार से उसके विकास और ह्रास पर पड़ा है

(४) तिथियां।

(५) स्थानों के नाम। महाप्रभुजी तथा श्री गुसांईजी की यात्राओं के आधार पर उस समय के राजमार्गों की सूचना।

(६) ऐसे व्यक्तियों के नाम जो पुष्टि मार्ग के अनुयायी नहीं थे और उनके सम्बन्ध की सूचनाएँ।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता—इसमें श्री आचार्य महाप्रभुजी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली निम्नलिखित सामग्री प्राप्त है:—

वार्त्ता १–(१) इसके अनुसार श्री महाप्रभुजी के सिद्धान्त रहस्य श्री सुबोधिनीजी, शृंगार रस मंडन आदि ग्रंथों की रचयिता होने की सूचना मिलती है।

(२) ब्रह्म सम्बन्ध की आज्ञा।

(३) श्री विट्ठलनाथ और गोपीनाथजी दोनों के नामों का उल्लेख।

(४) दामोदरदास हरसानी का प्रथम शिष्य होना।

वार्त्ता २–(१) इस वार्त्ता में वल्लभाष्टक ग्रंथ का उल्लेख है।

(२) महाप्रभुजी की पृथ्वी परिक्रमा की सूचना है।

(३) गज्जन धावन वैष्णव और कृष्णदास मेघन दो वैष्णवों का उल्लेख है।

वार्त्ता ३–(१) इसमें दामोदरदास सम्भल वारे को राज द्वार का चाकर बताया है।

वार्त्ता ४–(१) इसमें श्री गोकुलनाथजी का नाम आदर पूर्वक लिखा गया है जिसके आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि वे इस ग्रंथ के रचयिता नहीं थे।

(२) कन्नौज में इस वार्त्ता के अनुसार मुगलों के उपद्रव की सूचना मिलती है क्योंकि वे इनके ठाकुर उठा ले गए थे। इतिहास के अनुसार यह घटना सम्वत् १५८४ की है।

(३) गोकुलनाथजी कृत, सर्वोत्तम की टीका ग्रंथ का उल्लेख है।

(४) अडैल और कन्नौज दो ऐसे स्थानों के नामों का उल्लेख जो आज भी विद्यमान हैं।

वार्त्ता ५–(१) पुरुषोत्तमदास मेहरा नाम के एक व्यक्ति का उल्लेख है।

वार्त्ता ६–(१) रघुनाथदास के काशी में शास्त्र पढ़ने का प्रसंग है।

(२) काशी से यह गोकुल गए हैं।

वार्त्ता ७–(१) श्री महाप्रभुजी के पिता का नाम इस वार्त्ता में लक्ष्मण भट्ट दिया हुआ है।

(२) रजो क्षत्राणी महाप्रभुजी की सेविका थी।

वार्त्ता ८–(१) श्री पुरुषोत्तमदास क्षत्री का नाम है, उनके पुत्र गोपालदास का नाम है।

(२) काल भैरव का उल्लेख है जिनकी तुलसी ने भी वंदना की है।

वार्त्ता ९–(१) रुक्मिणी का पुरुषोत्तमदास क्षत्री की बेटी होना मिलता है।

(२) काशी में मणिकर्णिका घाट का उल्लेख है जो आज भी वर्तमान है।

वार्त्ता ११–(१) निबन्ध, रहस्य ग्रंथ और सुबोधिनी आदि श्री महाप्रभुजी के ग्रन्थों का उल्लेख है।

वार्त्ता १२–(१) रामदास के सेवक होने का उल्लेख है।
(२) नवनीतप्रिय ठाकुरजी के नाम का उल्लेख है।

वार्त्ता १३–(१) मदनमोहन ठाकुर और माधोदास, वेणीदास गदाधरदास सेवकों का उल्लेख है।
(२) कड़ा नामक स्थान का उल्लेख है।

वार्त्ता १४–(१) महाप्रभु के सेवक वेणीदास माधवदास के साहस का उल्लेख है।

वार्त्ता १५–(१) पटना, बनारस दो स्थानों का नाम आया है।
(२) केशोराय के मंदिर में सेवा करना।
(३) गोविन्ददास भल्ला का नाम।

वार्त्ता १६—(१) अम्मा क्षत्राणी कड़ा (मानिकपुर) की थीं।

वार्त्ता १७—(१) गज्जन धावन का नाम वार्त्ता संख्या दो में भी आ चुका है। यह आगरे के थे।

वार्त्ता १८—(१) इस वार्त्ता में श्री महाप्रभुजी, श्री गुसांईजी तथा रघुनाथजी तीनों का उल्लेख है।
(२) श्री गोकुलचन्द्रमा ठाकुर जी का उल्लेख है।
(३) कृष्णदास स्वामी और नारायणदास ब्रह्मचारी के नामों का उल्लेख है।
(४) महावन नामक स्थान का नाम आया है।

वार्त्ता १९—(१) इसमें चार ठाकुरजी और चार सेवकों के नाम इस प्रकार हैं—

ठाकुरजी	सेवक
(१) नवनीतप्रियजी	गज्जन धावन, आगरा।
(२) गोकुलचन्द्रमाजी	नारायणदास सारस्वत, महावन।
(३) ललित त्रिभंगीजी	देवा क्षत्री कपूर, आगरा
(४) लाडलेजी	जीवदास क्षत्री।

वार्त्ता २०-२१ (१) देवा क्षत्री और जीवदास क्षत्री के नाम और उनके ठाकुरजी का उल्लेख है।

वार्त्ता २२—(१) दिनकर सेठ का नाम है जो कथा में अभिरुचि के लिए प्रसिद्ध थे।

वार्त्ता २३—(१) मुकुंदसागर नामक अप्राप्य ग्रंथ का उल्लेख है।
(२) उज्जैन नामक नगरी का उल्लेख है।
(३) मुकुंददास कायस्थ कवि थे, इसका प्रमाण है।

वार्त्ता २४—(१) श्री महाप्रभु जी की विश्रांत घाट पर श्रीकृष्ण चैतन्य के शिष्य रूप-सनातन से भेंट।
(२) राजनगर (अहमदाबाद) सिकन्दरपुर में मदनमोहन ठाकुर का विराजमान होना।
(३) कृष्ण चैतन्य और महाप्रभु जी का समकालीन होना।

(४) सीहनंद (दिल्ली के पास कुरुक्षेत्र) नामक स्थान, जगन्नाथपुरी का उल्लेख।
(५) प्रभुदास जलोटा का नाम।

वार्त्ता २५—(१) प्रभुदास भाट और कीरत चौधरी के नाम।
(२) प्रथोदक तीर्थ का उल्लेख।

वार्त्ता २६—(१) पुरुषोत्तमदास, आगरा।
(२) राजघाट, जमुना के किनारे किले के सामने वाला आगरे का घाट।

वार्त्ता २७—(१) त्रिपुरदास कायस्थ।
(२) शेरगढ़, अटक।

वार्त्ता २८—(१) पूरनमल क्षत्री ने निज द्रव्य से श्रीगिरिराज पर श्रीनाथजी का मंदिर बनवाया।

वार्त्ता २९—(१) यादवेन्द्रदास कुम्हार।

वार्त्ता ३०—(१) गुसांईदास सारस्वत ब्राह्मण।

वार्त्ता ३१—(१) माधो भट्ट, काश्मीर के।
(२) केशव भट्ट सुबोधिनी जी के लेखक।
(३) लघुवाधा गाम।

वार्त्ता ३२—(१) गोपालदास, पद्मरावल, बिरजो, मावजी पटेल के नाम।
(२) अडैल, उज्जैन, रणछोड़जी, वांसवाड़ा।

वार्त्ता ३३—(१) इसके सब नाम वार्त्ता तेतीस में आ गए हैं।

वार्त्ता ३४—(१) पुरुषोत्तम जोशी, कृष्ण भट्ट, चाचा हितहरिवंश।
(२) गोकुल, उज्जैन, बनारस।
(३) पद्मरावल के चार लड़के थे।

वार्त्ता ३५—(१) जगन्नाथ जोशी, गरासिया राजपूत।
(२) खिरालू (गुजरात)।

वार्त्ता ३६-३७(१) जगन्नाथ जोशी के भाई नरहरि जोशी।
(२) खेरालू, अलियान गांव, पटना जगन्नाथपुरी।
(३) महीधर और फूलबाई नामक सेवक।

वार्त्ता ३८—(१) राणा व्यास जगन्नाथ जोशी के गुरु थे।
(२) माधोदास।
(३) सिद्धपुर।

वार्त्ता ४९—(१) रामदास सारस्वत, राजनगर (अहमदाबाद के थे)।
(२) इनके ठाकुर का नाम नटवर गोपाल था।

वार्त्ता ४०—(१) नवरत्न ग्रन्थ।
(२) गोविन्द दुबे साचौरा, मीराबाई।
(३) रणछोड़ (द्वारका)—मीरा का स्थान।

वार्त्ता ४१—(१) रामकृष्ण, हरिकृष्ण, राजा दुबे माधो दुबे। रामदास, जगन्नाथ जोशी।
(२) सिद्धपुर, अडैल, द्वारका।
(३) सांचोरा ब्राह्मण।

वार्ता ४२—(१) उत्तम श्लोकदास श्रीनाथ जी के सेवकों का रसोइया था। इसका उपनाम 'महतारी' था।

वार्ता ४३—(१) ईश्वरदास दुबे सांचोरा उत्तमश्लोकदास के पीछे रसोइया था। इसे भी लोग 'महतारी' कहते थे।
(२) हरिदास का नाम इस वार्ता में आया है।

वार्ता ४४—(१) वासुदेव छकड़ा, रूपचंद नंदा तथा उनके भाई गोपालदास।
(२) आगरा, अडैल, मथुरा, सीहनंद, छारछू दरवाजा (आगरा) विश्रान्त, जन्म-स्थान (मथुरा)।
(३) इसने अपने बल से मथुरा के काजी के उत्पात से श्री गुसांईजी की रक्षा की थी।

वार्ता ४५—(१) वेणुदास, कृष्णदास यादवदास (बनिया) भीतरिया रामदास।
(२) केशोराय (मथुरा) आन्यौर, श्रीनाथद्वार (गोवर्धन)।

वार्ता ४६—(१) जगतानंद कथा वाचक थानेश्वर में रहते थे।
(२) एक श्लोक की कथा महाप्रभु जी ने तीन प्रहर कही।

वार्ता ४७—(१) आनन्ददास विशम्भरदास (प्रयाग के)।

वार्ता ४८—(१) अडैल की एक ब्राह्मणी जिसके ठाकुर मूसा बिलाई वाले कहलाते हैं।

वार्ता ४९—(१) एक क्षत्राणी कोई नाम नहीं है। यह प्रयाग की थी।

वार्ता ५०—(१) गोरजा, समराई (स्त्रियां)।
(२) सीहनंद, थानेश्वर, सरस्वती नदी।

वार्ता ५१—(१) श्री गोकुलनाथ जी का जन्म अडैल में हुआ था।
(२) इसमें घनश्याम जी के जन्म का भी उल्लेख है।
(३) गोकुलनाथ जी का नाम श्रीवल्लभ भी था।
(४) कृष्णदासी, श्री रुक्मिणी बहू के नाम।
(५) श्रीनाथद्वार, अडैल।

वार्ता ५२—(१) बूला मिश्र पुरोहित थे।

वार्ता ५३—(१) रामदास मीराबाई के पुरोहित थे जिन्होंने उसे 'रांड' कहा था।

वार्ता ५४—(१) रामदास चौहान श्रीनाथ जी की स्थापना के समय वर्तमान थे।

वार्ता ५५—(१) रामानंद सारस्वत थानेश्वर के।

वार्ता ५६—(१) विष्णुदास छीपा गोकुल में द्वारपाल थे।

वार्ता ५७—(१) जीवनदास क्षत्री कपूर सीहनंद के निवासी थे।
(२) अडैल, सीहनंद नाम के स्थानों का उल्लेख।

वार्ता ५८—(१) भगवानदास सारस्वत ब्राह्मण।

वार्ता ५९—(१) भगवानदास, अच्युतदास।
(२) गोविंद कुण्ड, पूंछरी नामक स्थान।

वार्ता ६०—(१) अच्युतदास सनाढ्य गोवर्धन पर मानसी गंगा के समीप रहते थे।

वार्ता ६१—(१) अच्युतदास गौड़ (महावन के)।

वार्त्ता ६२—(१) अच्युतदास सारस्वत (कड़ा के)।
(२) काशी, बनारस और कड़ा।
वार्त्ता ६३—(१) नारायणदास अम्बाले के रहने वाले थे।
वार्त्ता ६४—(१) नारायणदास भट्ट वृन्दावन के थे।
(२) इनके बाद मदनमोहन जी की सेवा बंगालियों को मिली।
वार्त्ता ६५—(१) नारायणदास चौहान ठट्ठ सिंध के रहने वाले थे। यह कुल कुल्ला दीवान थे। इन्हें राजकोष से कैद भोगनी पड़ी थी।

वार्त्ता ६६—(१) सीहानंद की क्षत्राणी।

वार्त्ता ६७—(१) दामोदरदास कायस्थ व उनकी स्त्री बीरबाई शेरगढ़ के रहने वाले थे। भावप्रकाश में बीरबाई इनकी माता का नाम है।
(२) इनके ठाकुरजी का नाम कपूरराय था।
वार्त्ता ६८—(१) स्त्री, पुरुष क्षत्री सीहनंद के।
वार्त्ता ६९—(१) महाप्रभुजी की माता का नाम इल्लमागारू था।
वार्त्ता ७०—(१) एक क्षत्री पूरब का (पटने के पास का)।
वार्त्ता ७१—(१) लघु पुरुषोत्तमदास क्षत्री।
वार्त्ता ७२—(१) कविराज भाट (मथुरा में विश्रान्त घाट पर कवित्त पढ़ता था)।
वार्त्ता ७३—(१) गोपालदास इटौरा वाले को बम्बई संस्करण में 'ठौरा' वाले लिखा है, जो भूल है।
(२) यह कवि थे।
वार्त्ता ७४—(१) जनार्दन चौपड़ा क्षत्री (थानेश्वर के)।
वार्त्ता ७५—(१) गुंडू स्वामी वृन्दावन के सनाढ्य ब्राह्मण थे।
(२) महाप्रभुजी वृन्दावन गए थे, तब इनको नाम दिया गया था।
वार्त्ता ७६—(१) कन्हैया शाल या लाल क्षत्री आगरे के रहने वाले थे।
वार्त्ता ७७—(१) नरहरिदास गौड़िया (बंगाली)।
वार्त्ता ७८—(१) बादरायणदास सपत्नीक द्वारका यात्रा में श्री महाप्रभुजी के साथ थे।
वार्त्ता ७९—(१) सद्दू पांडे गिरिराज जी के समीप अन्योर में रहते थे।
(२) मानिकचंद पांडे, नरो बेटी।
(३) आन्योर, गोवर्धन पर्वत।
(४) इस वार्त्ता का वृत्त श्रीनाथ जी मंदिर से सम्बन्धित है।

वार्त्ता ८०—(१) नरहरिदास और वेना कोठारी दोनों महाप्रभुजी के साथ द्वारका गए थे।
वार्त्ता ८१—(१) गोपालदास जटाधारी श्रीनाथ जी की खवासी करते थे।
वार्त्ता ८२—(१) कृष्णदास ब्राह्मण निर्धन थे।
वार्त्ता ८३—(१) संतदास चौपड़ा आगरे में सेव के बाजार में कौड़ी बेचते थे। सेव का बाजार आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है यहाँ दर्जियों और कपड़े वालों की दूकानें हैं।
(२) गौडदास, रुनकता, गोकुल, मथुरा आदि स्थानों का उल्लेख है। रुनकता सूरदास का निवास स्थान है जो आगरे से दस मील दूर है।

वार्त्ता ८४—(१) सुन्दरदास उड़ीसा में जगन्नाथपुरी से दस कोस पर रहने वाले थे।
(२) इनका प्रेम श्री कृष्ण चैतन्य से था और उनके शिष्य का कृष्णदास से था।

वार्त्ता ८५—(१) मावजी पटेल व बिरजो उज्जैन के रहने वाले थे।
(२) यह प्रति वर्ष उज्जैन से गोकुल आते थे।

वार्त्ता ८६—(१) गोपालदास नरोड़ा के कवि थे।

वार्त्ता ८७—(१) सूरदास गऊ घाट पर रहते थे।
(२) सूरदास और महाप्रभु जी की भेंट।
(३) कीर्तन की सेवा।
(४) देशाधिपति ने इनके पद सुने।
(५) परासौली में शरीर त्यागा।
(६) कुंभनदास, गोविंद स्वामी चत्रभुजदास, रामदास की उपस्थिति।
(७) चौपड़ का व्यंग।

वार्त्ता ८८—(१) परमानंद दास कन्नौज के रहने वाले उच्च कोटि के कवि थे।
(२) इनकी कविता में बड़ी शक्ति थी।
(३) महाप्रभुजी कन्नौज में इनके घर ठहरे थे।

वार्त्ता ८९—(१) कुंभनदास गोवर्धन के समीप जमुनावतो गांव के रहने वाले थे।
(२) कीर्तन सुन्दर करते थे।
(३) म्लेच्छ के उपद्रव के समय यह श्रीनाथजी को 'टोंड के धने' में ले गए।
(४) देशाधिपति ने इन्हें सीकरी बुलाया था।
(५) राजा मानसिंह ने इनका कीर्तन सुना।
(६) वृन्दावन के हरिवंश से भेंट।
(७) गोपालपुर, पूंछरी सीकरी, जमुनावतो, परासौली।

वार्त्ता ९०—(१) कृष्णदास गायों की सेवा करते थे और इन्हें सिंह ने खा लिया था।

वार्त्ता ९१—(१) श्री कृष्णदास अधिकारी शूद्र थे।
(२) इन्होंने बंगालियों को सेवा से निकाल दिया था तथा टोडरमल व बीरबल से आगरे में भेंट की थी।
(३) गंगाबाई से इनका प्रेम था।
(४) आगरे से यह एक वेश्या ले आए थे।
(५) बीरबल, गिरधरजी, काकजी, अवधूतदास, हरिशंकर व्यास, मीराबाई, रूप-सनातन कायस्थ, श्यामसुन्दर मृदंग वाला, सूरदास, गोपीनाथ, ग्वाल के नाम इनकी वार्त्ता में आए हैं।
(६) रुद्रकुण्ड, पारसौली, ध्रुव घाट।
(७) कुंए में गिरकर मौत।
(८) गुसांईं जी का इन्हें बीरबल को जेल से मुक्त कराना।
(९) इनका गुसांईजी को श्रीनाथ द्वार आने से मना करना।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक वृत्त की आलोचना

इस वार्त्ता के आधार पर जो ऐतिहासिक वृत्त प्राप्त हुआ है उसमें से अधिकांश का सम्बन्ध भी महाप्रभुजी से है अथवा श्री गुसांईजी से और महाप्रभुजी के इक्यानवे सेवकों से। शुद्ध इतिहास की दृष्टि से भी यह प्राप्त सामग्री महत्वपूर्ण है और साम्प्रदायिक दृष्टि से तो यह बहुमूल्य है ही। इस सामग्री के अनुसार श्री महाप्रभुजी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली निम्नलिखित घटनाओं का उल्लेख इन वार्त्ताओं में है :—(१) उनके ग्रन्थों के नाम, (२) उनके पुत्रों के नाम, (३) उनके इक्यानवे शिष्यों के नाम, (४) उनकी विविध यात्राएँ, (५) सेव्य स्वरूपों के नाम, (६) उन स्थानों के नाम जहाँ इन यात्राओं में श्री महाप्रभुजी ने विश्राम किया था, (७) प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम जिनसे महाप्रभुजी से भेंट हुई थी, जैसे रूप सनातन, श्रीकृष्ण चैतन्य, (८) श्रीनाथजी के मंदिर के बनवाने वाले के नाम का उल्लेख (९) अन्य इतिहास प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के नाम, जैसे—मीराबाई, टोडरमल, बीरबल, देशाधिपति, राजा मानसिंह इत्यादि।

इनमें से जिस सामग्री का सम्बन्ध पुष्टि मार्ग के इतिहास से है। इसका समर्थन पुष्टि-मार्ग के अन्य ग्रंथों द्वारा किया जायगा और नं० ७ और ८ का अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से। देशाधिपति का नाम सूरदास तथा कुम्भनदास आदि अष्टसखाओं की वार्त्ताओं में आया है और इस अध्ययन में अष्टछाप के कवियों का अध्ययन इसलिए नहीं किया गया है कि उस विषय का अध्ययन डाक्टर दीनदयालु गुप्त कर चुके हैं। शेष पर ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रकरण में इतिहास के आधार पर विचार किया गया है। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता से केवल इस बात का समर्थन मिलता है कि यह महानुभाव पुष्टि मार्ग के समर्थक, पोषक और उसके प्रति सहानुभूति रखने वाले थे।

स्वयं सम्राट् अकबर जिन्हें इस ग्रंथ में पादशाह या दिल्लीपति या देशाधिपति कहकर सम्बोधन किया गया है। उसके प्राप्त फरमानों से यह सूचित है कि वे श्री विट्ठलनाथ जी का आदर करते थे और उसने इन्हें गोकुल तथा अन्य गांव माफी में दिए थे। इनका किया हुआ न्याय बादशाह ने स्वीकार किया था। इनको खिलत दी थी और घोड़े की सवारी, इत्र, दमामा, पंखा आदि सबके प्रयोग करने का अधिकार दिया था। बादशाह के फरमान के शब्द सम्मान सूचक हैं और इनकी पुनरावृत्ति शाहजहां के शासन काल में हुई है।

कुंभनदास की वार्त्ता में म्लेच्छ के उपद्रव में श्रीनाथ जी के 'टोड के घने में' विराजने का उल्लेख है। यह म्लेच्छ का उपद्रव अकबर के शासन काल में आदिलशाह सूर और हेमू के विद्रोह के समय ही आगरे और दिल्ली के बीच अशांति का समय है जो सम्वत् १६१४ की घटना है क्योंकि उसके पश्चात आगरे के साथ शासन व्यवस्था का घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और मथुरा में कोई अशांति न हो सकती थी।

सूर और अकबर की भेंट कब हुई? इसके लिए डाक्टर दीनदयालु गुप्त ने केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया और श्रीराम शर्मा आदि के आधार पर यह निश्चय किया है कि अकबर सूरदास जी से या तो सन् १५७७ ई० (संवत् १६३४) की अजमेर यात्रा से लौटकर मिला हो अथवा सन् १५७९ सम्वत् १६३६ की अजमेर यात्रा से लौटते हुये मथुरा में उनसे मिला हो। सन् १५७९ ई० में मिलना अधिक संगत जंचता है क्योंकि अकबर ने उसी साल धार्मिक

आचार्यों की बहसें सुनीं थीं और अपने दरबार में भी भिन्न-भिन्न मतों के आचार्यों को बुलाया था।[1]

कुंभनदासजी का जो पद है 'भक्तन कहा सीकरी सों काम' उसके सम्बन्ध में जो निर्णय डाक्टर दीनदयालुजी ने किया है वह सम्वत् १६३८ के पक्ष में है। क्योंकि फतेपुर सीकरी में संवत् १६३८ में बादशाह के काबुल से लौटने के बाद एक बड़ा जश्न हुआ था और वार्त्ता में जो डेरों का उल्लेख है वह उसी ओर संकेत करता है क्योंकि संवत् १६६२ के पश्चात् अकबर ने फतेपुर सीकरी के स्थान पर आगरे के किले को अधिक महत्व देना आरम्भ कर दिया था। डाक्टर दीनदयालु का यह मत मान्य है।

अकबर के पाँच फरमान—इनसे उसकी पुष्टि-मार्ग के प्रति उदारता प्रगट होती है—

फरमान—१

फरमान अतीये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

"चूंकि दुआगोय ला कलाम विट्ठलराय कसवे गोकुल में रहता है इसलिये चाहिए कि खलायक पनाह के नौकरों में से व गैरों में से कोई भी दुआगोय ला कलाम व उसके मुतेलकीन व लवाहकीन के साथ किसी किसम की मुजामहत न करे और किसी भी वजह से कोई भी चीज न मांगें। छोड़ देवें कि दुआगोह अपने ठौर ठिकाने खातिर जमा से रहकर हमारे दौलत की बढ़ती व इकबाल की तरक्की के वास्ते दुआ करता रहे तहरीर २६ जमादी उलसानी सन् ९८५ हिजरी मुताबिक सन् १५७७ ईस्वी व सम्वत् १६३४ विक्रमी।

फरमान—२

अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाज़ी

इस वक्त में हमने हुक्म फरमाया कि विट्ठलराय ब्रिरहमन जो बिला शुबह हमारा शुभचिंतक है इसकी गायें जहाँ कहीं होंवे चरें। खालसा व जागीरदार कोई उनको तकलीफ न देवे न रोके टोके व चरने से मुमानियत न करें—छोड़ देवें कि उसकी गायें चरती रहें और वह आजादी से गोकुल में रहें। चाहिए कि हुक्म के मुताबिक तामील करें और कहामत रक्खें और हुक्म के खिलाफ न करें—तहरीर तारीख ३ मुहर सफर सन् ९८९ हिजरी मुताबिक सन् १५८१ ईस्वी सम्वत् १६३८ विक्रमी।

फरमान—३

तरजुमा हुक्म खानखाना मुरीद खां बहादुर सिपहसालार

मौजूदा व आइन्दा होने वाले आमिलान परगना को मालूम रहे चूंकि मौजे सावी वगैरह में गायों की चरागाह है और गोरधन की गायें चरती हैं चाहिये कि कोराक निगहबानी व गांवशुमारी पूंछी बावत रोक टोक न करें क्योंकि ये जान बूझ कर बख्शे गए हैं। हुक्म आली के मुताबिक तामील कर पूरा करें और कभी हर साल नया परवाना न मांगें। तहरीर रोज आजर आजरमाह इलाही सन् ३३ जुलूसी मुताबिक शहर मोहर्रम उलहराम सन् ९९७ हिजरी (संवत् १६४६ विक्रमी)

फरमान—४

तरजुमा फरमान बादशाह अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

इस मुबारिक वक्त में फरमान जारी हुआ कि गुसांई विट्ठलराय साकिन गोकुल

---

१ अष्टछाप, डा० दीनदयालु गुप्त।

मोजे जतीपुरा मुत्तलिस व परगने गोवरधन में जिमींदारों से रुपया देकर जमीन खरीद कर मकानात व बागात दो गायों के खिड़क व मंदिर गोवरधननाथ के कारखाने तैयार कराकर रहता है इसलिये हुक्म जारी हुआ कि ऊपर लिखे मोजे को गुसांई मज़कूर के कब्जे में नसलन बाद नसलन माफ व वागुजाश्त छोड़ा गया—इसलिये मौजूदा व आइन्दा होने वाले हाकिम, आमिल मुहिम्मों के मुतसद्दी, क्रोड़ी जागीरदार व जिमींधार इस बड़े हुक्म की तामील कर मौजे मज़कूर को मय ज़मीन ज़र खरीद के उसके कब्जे में नसलन बाद बाद नसल रहने देवें और अबवाब ममनुआ तकलीफ दीवानी व मतालबात सुलतानी व माल वजाहत व कुल अवारिजात व सरदरखती वहाँ के दावत मुजाहमन होकर एतराज़ न करे और हर साल नया फरमान न मांगे व इसके खिलाफ न करें ताके मारफत आगाह यानी ईश्वर को पहचानने वाला गुसांई बादशाही मेहरबानियों से मशकूर होकर इस सलतनत के हमेशा कयाम की दुआ करता रहे तहरीर तारीख ९ खुरदादमाह इलाही सन् ३८ जुलूसी मुताबिक सन् १५९४ ईस्वी व संवत् १६५१ विक्रमी।

फरमान—५

तरजुमा फरमान अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाज़ी

इस वक्त में यह फरमान आलीशान सादिर हुआ कि मोजे गोकुल मय गुज़र घाट मुतेलिके परगने महावन ठाकुर द्वारे के खर्च के वास्ते गुसांई विट्ठलराय को नसलन बाद नसल मुकररिर कर सुपुर्द किया गया। इसलिये हुक्म दिया जाता है कि मुहिम्मों के मुतसद्दी जागीरदार क्रोडी आमिल व चौधरी लोग इस हुक्म की तामील कर इस मोजे को मय गुजर घाट गुसांई मजकूर के कब्ज़े में रहने देवें, जरा भी बदला-बदली न करें और इल्लत माल व वजहात व कुल तकलीफ दीवानी व मतालवात सुलतानी से माफ व आजाद समझ कर रोक न करें और हर साल फरमान व परवाना न मांगे कि गुसांई मज़कूर सुल्तानी इनायतों से बेफिकर और फारीगउलवाल होकर सल्तनत के हमेशा कयाम की दुआ करता रहे। तहरीर तारीख १५ खुरदाद माह इलाही सनु ३८ जुलूसी मुताबिक सन् १५९४ ईस्वी व सम्वत् १६५१ विक्रमी–

इन पांच शाही फरमानों में से प्रथम फरमान में बादशाह अकबर की इस सम्प्रदाय के प्रति तथा अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति उदार नीति का समर्थन मिलता है। इसमें स्पष्ट आदेश है कि कोई भी गुसांई जी व इनके सेवकों के साथ छेड़-छाड़ (मुजाहमत) न करे। यह फरमान अकबर के शासन काल के ग्यारहवें वर्ष में संवत् १६३४ विक्रमी का है

दूसरा फरमान पन्द्रहवें वर्ष का है जिसमें श्री गुसांईजी की गायों को सर्वत्र चरने की स्वतंत्रता दी गई है। इसी के साथ के अन्य फरमान भी हैं जिनमें ब्रज में गोवध का निषेध किया गया है।

तीसरी फरमान खानखाना मुरीद खां का है जो संवत् बादशाह अकबर के तेईसवें वर्ष का है जो ऊपर के फरमानों की पुष्टि करता है और सम्वत् १६४६ विक्रमी में दिया गया है।

चौथा फरमान बादशाह अकबर के शासन काल के अड़तीसवें वर्ष का है जिसमें जतीपुरा गांव को श्री विट्ठलनाथजी व उनके पुत्र, पौत्रों आदि के लिए सुरक्षित कर दिया गया है। और पांचवे फरमान में गोकुल का गांव माफी में दिया गया है।

इससे यह स्पष्ट प्रगट होता है कि ये फरमान केवल अकबर की उदार नीति के ही परिचायक नहीं हैं, उसके व उसके कर्मचारियों के पुष्टि सम्प्रदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध के भी द्योतक हैं। फरमान चार और पांच में तो केवल एक सप्ताह का ही अन्तर है। इस प्रकार अकबर बादशाह की सम्प्रदाय के प्रति सजग सहानुभूति थी। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता है। यह फरमान इसका सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार के फरमान शाहजहाँ बादशाह के सम्वत् १६९० विक्रमी व नवाब इसहाक आजमखां व नवाब मुकरमतखां के जो शाहजहाँ के कर्मचारी थे संवत् १७०४ विक्रमी के हैं और दाराशिकोह के संवत् १६९५ के हैं। और सम्वत् १७१४ विक्रमी में दाराशिकोह ने एक फरमान श्री गिरधरलालजी को दिया था और सम्वत् १८२१ और स० १८२३ के तीन फरमान बादशाह शाहआलम के भी हैं।

इन सब फरमानों के आधार पर यह निश्चय किया जाता है कि यद्यपि औरंगजेब की नीति और कुछ हद तक शाहजहाँ की नीति भी मंदिरों के विरुद्ध थी; पर शाहजहाँ ने वल्लभ सम्प्रदाय के साथ उदारता से काम लिया है और औरंगजेब के बाद के शासकों ने भी उसी नीति का पालन किया है। यहाँ तो इन फरमानों के आधार पर केवल यह सिद्ध करना है कि तत्कालीन शासन व्यवस्था से वल्लभ सम्प्रदाय का किस प्रकार का सम्बन्ध था और उसके प्रति उनकी क्या नीति थी। औरंगजेब के कारण ही श्रीनाथ जी को मेवाड़ पधारना पड़ा था जिसका उल्लेख अन्यत्र विस्तार से किया जायगा।

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में से दो और ऐतिहासिक सूचनाएं मिलती हैं। एक वार्त्ता संख्या चार में कन्नौज में मुगल के उपद्रव का उल्लेख है। दूसरे, वार्त्ता संख्या छियासठ में लिखा है कि नारायणदास ठट्ठे में कुल कुल्लो दीवान थे। इन दो घटनाओं की इतिहास के आधार पर परीक्षा की जावे तो पहली घटना मई, सन् १५४० सवत् १५९७ विक्रमी की है, जब कन्नौज में गंगा के किनारे बादशाह हुमायूं और शेरशाह की सेनाओं ने कई महीने तक पड़ाव डाल रक्खे थे। अथवा संवत् १५८४ पन्द्रह से चौरासी में जब हुमायूं ने कन्नौज के अफगान शासक का दमन किया था। उस समय की अशांति का इसमें उल्लेख है। दूसरी, दीवान का सम्बन्ध मुगल शासन व्यवस्था से है। बादशाह अकबर के समय से और उससे पूर्व शेरशाह के समय में भी सूबों में दीवान रहते थे। कुल कुल्ला दीवान का भी उल्लेख है। 'दीवन ए कुल' के सम्बन्ध में डाक्टर बनारसीप्रसाद ने अपने 'हिस्ट्री आफ शाहजहाँ आफ दिल्ली' पृष्ठ संख्या २७४ पर इस प्रकार लिखा है—'वकील के पश्चात् सबसे अधिक शक्तिशाली हाकिम दीवान होता था जिसे वजीर या दीवान-ए-कुल भी कहते थे। वह अर्थ विभाग का स्थायी अध्यक्ष होता था। सभी विभागों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व उस पर होता था और प्रत्येक सरकारी कागज पर उसके हस्ताक्षर होते थे। उसके दो अन्य सहायक 'दीवाने तान' और 'दीवान-ए-खालसा' होते थे।' 'दीवान-ए-तान' जागीरों की देखभाल करता था और दीवान-ए-खालसा सरकारी जमीन की[1]।

सर यदुनाथ सरकार ने भी अपने 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन' में दीवान को 'चांसलर आफ एक्सचेकर' लिखा है और 'दीवान-ए-कुल' को 'दीवान-ए-आला' करके लिखा है तथा इसके कर्तव्य और उत्तरदायित्व का विस्तृत वर्णन किया है। इन दो उद्धरणों से तथा अन्य प्रामाणिक

---

१. शाहजहां आफ दिल्ली, डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना।

समकालीन व्यक्तियों के उद्धरणों से यह निश्चित है कि मुगल कालीन शासन व्यवस्था में दीवान का पद एक गौरवपूर्ण पद था और जहाँ सूबा या 'राज्यपाल' के पद पर अधिकतर मुसलमानों को नियुक्ति होती थी, वहाँ दीवान के पद पर अधिकतर हिन्दू नियुक्त होते थे [१]। नारायणदास ठट्ठे के दीवान थे। यह घटना अकबर के राज्यकाल की ही है क्योंकि जहाँगीर व शाहजहाँ के समय में ठट्ठा मुल्तान के सूबे का ही एक अंग था। डाक्टर बेनीप्रसाद के जहाँगीर में और डाक्टर डी० पन्त की 'कमर्शियल पालिसी आफ दी मोगल्स' दोनों पुस्तकों में यह बात स्पष्ट लिखी है। डाक्टर पंत ने लिखा है कि ठट्ठे में उस समय 'शतरंजी' (दरियाँ) और 'छींटें' अच्छी बनती थीं और मछली, मछली का तेल और नावों के बनाने के लिए भी यह प्रांत प्रसिद्ध था [२]।

अकबर के समय में ठट्ठे प्रान्त की आय, ६, ६२, ५१, ३६६ दाम प्रति वर्ष थी। इसके पश्चात् फिर शाहजहाँ के समय तथा औरंगजेब के समय यह प्रांत स्वतंत्र सूबा था और इसकी आय घटती-बढ़ती रही है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में भी एक दूसरे नारायणदास गौंड देश के पातशाह दाऊद के दीवान लिखे हैं वार्त्ता संख्या पांच में यह निश्चय ही दूसरे व्यक्ति हैं।

मीराबाई और रामदास पुरोहित

इसमें सन्देह नहीं है कि मीराबाई और श्री महाप्रभुजी दोनों समकालीन थे, पर मीरा ने कभी पुष्टि मत में दीक्षा ली हो, इसका उल्लेख न तो वार्त्ता में ही है और न मीरा पर लिखे गए आज तक के किसी लेख या ऐतिहासिक इतिवृत्त में है। चौरासी और दोसौ बावन दोनों वार्त्ताओं में इसके विरुद्ध प्रमाण मिलते हैं। रामदास पुरोहित की वार्त्ता के अनुसार रामदास ने मीरा की भेजी हुई भेंट इसलिए अस्वीकार करदी थी कि उसे 'महाप्रभुन ऊपर ममत्व नाहीं'। इसी प्रकार गोविंद दुबे सांचोरा ब्राह्मण के बहुत दिन तक मीरा के यहाँ टिक जाने पर श्री महाप्रभुजी ने स्वयं पत्र लिख कर उन्हें बुलावा भेजा है और आचार्यजी के पत्र पाने के पश्चात् श्री गोविंद दुबे तुरन्त चल दिए हैं और उन्होंने पीछे फिर कर देखना भी मुनासिब नहीं समझा है, 'फिर पाछे न देखो'। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में लिखा है कि श्री महाप्रभुजी की सेवक न होने के कारण कृष्णदास ने मीरा की भेंट अस्वीकार करदी थी।

वार्त्ता के इन उद्धरणों के आधार पर यह निश्चित सा ही है कि मीरा ने सम्प्रदाय में दीक्षा नहीं ली थी। हां, इनकी देवरानी अजबकुँवरिबाई ने गुसांईजी से दीक्षा ली थी। गोविन्द दुबे की वार्त्ता से इतना तो प्रगट ही है कि यद्यपि मीराबाई ने सम्प्रदाय में दीक्षा नहीं ली थी फिर भी सम्प्रदाय के लोगों का मीरा के घर पर आना और भगवद् वार्त्ता करने रुक जाना यह सिद्ध करता है कि वह आदर्श भक्त थी।

मीराबाई के जीवन वृत्त पर बहुत दिन से बहुत कुछ लिखा जा रहा है और निम्नलिखत ग्रन्थ मेरे देखने में आए हैं–(१) मुँसी देवीप्रसाद कृत मीराबाई की जीवनी,

---

१ सर यदुनाथ सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन।

२ डाक्टर बेनीप्रसाद, जहाँगीर, डाक्टर डी० पंत, कमर्शियल पालिसी आफ दी मोगल्स।

जैन प्रेस से प्रकाशित। (२) मीरा स्मृति ग्रन्थ, बंगीय परिषद्, कलकत्ता। (३) मीरा, महावीरसिंह गहलौत। (४) मतवाली मीरा लेखक—श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी प्रयाग, (५) मीरा लेखक—श्याम पांडे इन्दौर (६) श्री मीराबाईजी लेखक—रूपकला बाँकीपुर, (७) मीराबाई की शब्दावली लेखक श्री वालेश्वर प्रसाद प्रयाग। (८) मीरा एक अध्ययन—पद्मावती शबनम। (९) डाक्टर श्रीकृष्णलाल-मीरा। (१०) भुवनेश्वर मिश्र-मीरा की प्रेम—साधना। (११) बजरत्नदास-मीरा माधुरी। (१२) गुजराती-एन०एन० मेहता-मीराबाई। (१३) गुजराती—आनन्दशंकर ध्रुव नरसी और मीरा। (१४) भवेरी-गुजराती साहित्य नामार्ग सूचक स्तम्भो। (१५) राजस्थानी भाषा और साहित्य-मोतीलाल मनोरिया। (१६) वीरविनोद-कविराजा श्यामलदास।

इन सब ग्रन्थों में कहीं भी मीरा के पुरोहित रामदास का उल्लेख नहीं है, पर अलियानवास ब्रजपुरा (मारवाड़) निवासी मेडतिया चौहानों की कुल गुरुओं की परम्परा में सातवीं पीढ़ी में एक रामदास का उल्लेख है। पुरोहित कल्याणराय की बही सम्वत् १५६७ विक्रमी में यह जात के भाट हैं। मीरा के ससुराल पक्ष उदयपुर के राणा के कुल गुरुओं की सूची उदयपुर से प्राप्त न हो सकी। इसलिए इन रामदास पुरोहित का पता ठीक से नहीं चल सका है।

मीरा के जन्म, मृत्यु और पति के सम्बन्ध में ऐसी बातें लिखी हैं जिनमें परस्पर विरोध है और बहुत से कथनों को इतिहास का समर्थन प्राप्त नहीं है तथा राजपूताने के इतिहास के प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा भी तिथियों के सम्बन्ध में निश्चित मत नहीं दे सके हैं।

वार्त्ताओं के आधार पर मीरा के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष निश्चित किये जा सकते हैं —

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के प्रसंगों के अनुसार मीरा श्री महाप्रभुजी के समकालीन तथा शिष्य रामदास, गोविंद दुबे, कृष्णदास अधिकारी, हित हरिवंश, हरीराम व्यास की समकालीन ठहरती हैं। कृष्णदास अधिकारी का समय डाक्टर श्री कृष्णलाल ने संवत् १५५४, १६३४ तक माना है और हित हरिवंश का संवत् १५५९ से १६४० तक माना है। इसलिए मीरा का विद्यमान काल भी संवत् १५५९ से १६४० तक ठहरता है। वार्त्ता के अनुसार जब कृष्णदास अधिकारी मीरा के घर गए थे, तब वहाँ हित हरिवंश के साथ हरीराम व्यास भी थे। वे व्यास जी पहले ओछड़े नरेश के राजगुरु और शास्त्रार्थी थे। सम्वत् १६२२ में यह हित हरिवंश से शास्त्रार्थ करने आऐ थे और पीछे इनके शिष्य हो गये थे। इस वार्त्ता में व्यास जी को वैष्णव लिखा है। इसलिए व्यासजी मीरा के यहाँ १६२२ संवत् के पश्चात् या उसके आसपास ही गए होंगे। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में अजबकुंवरिबाई की वार्त्ता में लिखा है कि वह मेड़ते में रहती थी, हरिदास बनिये का घर उनके घर के सामने था तथा इस गाँव के राजा जैमल की 'वैन' गुसांई जी की शरण में आई थी और उसी के प्रभाव से फिर सारे गाँव ने दीक्षा ली थी।

इस उद्धरण से यह सिद्ध होगया कि मीराबाई जी कम से कम संवत् १६२२ तक तो अवश्य वर्तमान में थीं। ग्वालियर में एक ज्योतिषी परिवार है जो अपना सम्बन्ध जोधण-

और मेड़ते से बताता है और जिसके यहाँ मीरा की जन्मपत्री है और इसी परिवार के पंडित बनवारीलाल ने श्री आर० एस० देव बनेडा पुरोहित को लिखा था कि मीराबाई का जन्म सम्वत् १५५७ बैसाख शुक्ल ३ को प्रातःकाल हुआ था। श्री हरिविलास शारदा और गहलौत महावीरसिंह जी ने इन्हें रायदूदा के पौत्र रतनसिंह की पुत्री माना है। इनकी माता का नाम कुसुमकुँवर अथवा वीरकुँवर था। बदनौराधीश ठाकुर गोपालसिंह मेडतिया ने अपने 'जयमल वंश प्रकाश' में भी मीरा के पिता का नाम रतनसिंह लिखा है। इनके पति का नाम भोजराज प्रसिद्ध है तथा ननद का ऊदाबाई। मीरा के पदों के आधार पर उन्हें विधवा कहना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता, यद्यपि सभी इतिहासकारों ने उन्हें विधवा मान लिया है। वार्त्ता के अनुसार यह सम्वत् १६२२ तक मेडते में रही हैं। फिर वहाँ से यह श्री द्वारका या वृन्दावन गई हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में मीरा का अन्त-काल सम्वत् १६०३ सर्वथा भ्रमपूर्ण और एक त्रुटि है।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक तथ्य और उनकी आलोचना

वार्त्ता संख्या १—(१) नागर्जा भट्ट गोधरा के देसाई थे।
(२) गोधरा के हाकिम ने इन्हें देशाधिपति के पास पट्टे के लिए भेजा था।
(३) श्री गुसांईजी के साथ यह द्वारका गए।
(४) खंभाइच, गोधरा, द्वारका, गागासादी गाँव।

वार्त्ता संख्या २—(१) कृष्ण भट्ट उज्जैन के रहने वाले थे।
(२) इनके लड़के का नाम गोकुल भट्ट था।
(३) उज्जैन, तापीपुर, गोकुल, गोधरा लहरज का ताल।

वार्त्ता संख्या ३—(१) चाचा हरिवंश, माधोदास दलाल, जीवा पारीख, सहजपाल, गोकुलनाथ, गिरधरजी के नाम।
(२) चाचा हरिवंश का गुजरात में अधिक प्रभाव था।
(३) गोकुलनाथजी को गुजरात बुलाया गया था।

वार्त्ता संख्या ४—(१) मुरारीदास गौड़ देश में नारायणदास दीवान कुल कुल्ला के चाकर थे। यहाँ दाऊद बादशाह था।
(२) मुरारीदास के कारण नारायणदास सेवक हुए थे।
(३) गौड़ देश-पुरुषोत्तमपुरी नामक स्थान।

वार्त्ता संख्या ५—(१) श्री गुसांई जी की जगन्नाथ यात्रा।
(२) दाऊद से भेंट कोकुवा गाँव में।
(३) सत्या बेटी की जगन्नाथ यात्रा।
(४) नारायणदास की स्त्री का नाम वीरां।

वार्त्ता संख्या ६—(१) विट्ठलदास नारायणदास के भाई थे।
(२) इन्हें परगने की वसूली के रुपए खर्च कर लेने पर सजा मिली थी।

वार्त्ता संख्या ७—(१) रूपमुरारीदास देशाधिपति के चाकर थे।
(२) शिकार के रक्षक थे।
(३) देशाधिपति का गिरिराज पर ठहरना।
वार्त्ता संख्या ८—(१) माधोदास से रूपमुरारी की कावुल में भेंट।
वार्त्ता संख्या ९—(१) हरिजी कोठारी ने सहस्र नाम ग्रंथ बनाया था।
वार्त्ता संख्या १०—(१) गुसांईजी की फतेपुर सीकरी में बीरवल से भेंट।
(२) गुजरात में लाछाबाई का अमल था और बाजबहादुर उसका नौकर था।
(३) इसमें शंकरभाई, बीरवल, बाघ बहेला झब्बोजी गरासिया, लाछाबाई के नाम है।
(४) फतेपुर सीकरी, धोलका, असरूवा, द्वारका स्थानों के नाम हैं।
वार्त्ता संख्या ११—(१) गोपालदास कवि थे और इन्होंने वल्लभाख्यान ग्रंथ बनाया था।
वार्त्ता संख्या १२—(१) मानिकचंद आगरे के रहने वाले थे। यह भी कवि थे।
(२) गुसांईजी प्रति वर्ष आगरे आते थे।
वार्त्ता संख्या १३—(१) पृथ्वीपति का देश आगरा।
(२) दिल्ली में बंगाल का कपड़ा बिकता था जिस पर चुंगी लगती थी।
वार्त्ता संख्या १४—(१) गणेश व्यास की द्वारका यात्रा।
" " १५—(१) हरिदास श्री गुसांईजी के खवास थे।
" " १६—(१) मधुसूदनदास का सेवक होना।
" " १७—(१) मानिकपूर और रूपचंद नंदा आगरे के थे।
" " १८—(१) माधोदास फूलों की सेवा करते थे।
वार्त्ता संख्या १९—(१) यह बाप बेटे बादशाह के नौकर थे।
(२) टोडरमल ने इन्हें कैद दी थी।
(३) बीरबल के कहने से यह माफ कर दिए गए और एक परगने का काम इन्हें फिर मिल गया।
(४) यह हिसार के रहने वाले थे।
वार्त्ता संख्या २३—(१) कृष्णदास म्लेच्छ के चाकर थे और पटने के आसपास के रहने वाले थे।
" " २५—(१) जनार्दनदास मुन्सरिम थे और गोपालदास तहसीलदार थे। मुल्तान में नौकर थे।
" " २६—(१) हरिदास बनिया और जैमल मेरता के।
(२) गोधरा के नागजी भट्ट ने मेरता के जैमल के यहाँ दीवानगीरी करली थी।
(३) यह पातशाह के पास भेजे गये थे।
" " २७—(१) माणिकचंद मेडते के हरिदास के दामाद थे।
" " ३३—(१) गोविंददास गुसांईजी की खवासी करते थे, मथुरा के सनाढ्य ब्राह्मण थे।
" " ३७—(१) अलाखाने-तवीसा-महावन के, हाकिम थे वन विभाग के।
" " ४६—(१) बेनीदास छीपा सहजादपुर (टांडा) के रहने वाले थे।
" " ५५—(१) निहालचंद उज्जैन के रहने वाले थे।
" " ५६—(१) ज्ञानचंद आगरे के थे।

ग-

वार्त्ता संख्या ५७–(१) जदुनाथदास जौनपुर के थे और श्री गुसांईजी जौनपुर गए थे। यह धारू देश के चाकर थे।

,, ,, ६५–(१) गंगाबाई महावन की थी।

,, ,, ६६-११८–(१) पंढरपुर के राजा जोतसिंह।

,, ,, ७०–(१) महीकांठा स्थान की सूचना।

,, ,, ७४–(१) वाघाजी राजपूत गुजरात के राजद्वार में चाकर थे।

,, ,, ७५–(१) बीरबल की बेटी आगरे में रहती थी। राय पुरुषोत्तमदास के घर के लोगों द्वारा इसका शरण में आना।

(२) पृथ्वीपति की भेंट।

,, ,, ७६–(१) गोपीनाथदास ग्वाल-गुसांई जी के परम कृपापात्र।

,, ,, ८७—(१) गोपालदास गोवर्धननाथ जी की रसोई करते थे।

,, ,, ६८—(१) मीराबाई और अजबकुंवरि बाई।

,, ,, १०७—(१) भगवानदास कवि थे।

,, ,, १०८—(१) कल्याण भट्ट खंभालिया के।

,, ,, ११३—(१) तानसेन गवैया।

,, ,, ११६—(१) जनार्दनदास क्षत्री आगरे के।

,, ,, १२३—(१) राजा आशकरण नरवर के।

,, ,, १४७—(१) एक पठान का बेटा दिल्ली का।

(२) शेरसाह बादशाह का नाम।

,, ,, १४६—(१) गुसांईजी का न्याय साहूकार के बेटा और बहू।

,, ,, १५१—(१) सीताबाई बडनगर की थी।

,, ,, १६६—(१) कान्हबाई महावन की थी।

,, ,, १७२—(१) गुसांईजी की सोरों यात्रा का वर्णन है।

,, ,, १७७—(१) राजा मानसिंह दक्षिण का।

,, ,, १८३—(१) राजा भीम।

,, ,, १६०—(१) चौबीस वनों के नाम, स्थानों के नाम तथा ठाकुरों के नाम।

,, ,, २०७—(१) गोविंद भट्ट, और गोकुल भट्ट उज्जैन के।

,, ,, २०८—(१) फतेपुर में श्रीगुसांई के ठहरने व बीरबल के प्रसंग के कारण महत्व पूर्ण है।

,, ,, २०६—(१) लाडबाई धारबाई मानिकपुर की थी और सिरोही में व्याही थी।

(२) इसमें म्लेच्छ के उपद्रव का उल्लेख है तथा गोकुलनाथजी का उल्लेख है।

,, ,, २३१—(१) मदनगोपाल कायस्थ महावन के थे।

,, ,, २३२—(१) रूपमंजरी—नंददास पृथ्वीपति।

,, ,, २३३—(१) जाडादास और रूप सनातन की भेंट। यह कवि थे।

,, ,, २३४—(१) राघवदास चतुर्भुजदास के बेटा। गिरधर जी को तिलकायत के का समय इसमें मिलता है।

वार्त्ता संख्या २३८—(१) पृथ्वीसिंह कल्याणसिंह के बेटा—वार्त्ता में काबुल से मथुरा आना, फिर शरीर छोड़ना ।
(२) पृथ्वीपति का इन्हें दिल्ली बुलाना सन्देहास्पद है ।
,, ,, २४१—(१) नंददास तुलसी के भाई । नंददास की अकबर से भेंट । रूप मंजरी की मृत्यु ।
,, ,, २४४—(१) छीत स्वामी की अकबर से भेंट ।
,, ,, २४५—(१) रसखान ।
,, ,, २५०—(१) घनश्यामजी के जन्म से पूर्व की घटनाएं ।
(२) भगवानदास आगरे के सूबे के दीवान थे ।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक वृत्त की आलोचना

इस प्राप्त वृत्त से जिसकी सूची ऊपर दी गई है, निम्नलिखित सूचनाएं प्राप्त होती हैं—

(१) श्री गुसांईजी के सेवकों के नाम ।
(२) उन स्थानों के नाम जहाँ के ये सेवक थे ।
(३) उन स्थानों के नाम जहाँ ये सेवक हुए थे ।
(४) उन स्थानों के नाम जहाँ श्री गुसांईजी गए थे ।
(५) सेवकों के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं ।
(६) कुछ इतिहास प्रसिद्ध पुरुषों के नाम, जैसे-शेरशाह, अकबर, टोडरमल, बीरबल इत्यादि ।
(७) श्री गुसांईजी के कुछ ग्रन्थों के नाम तथा इनके सेवकों के ग्रन्थों के नाम ।
(८) कुछ के कवि होने की सूचना ।
(९) कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना ।
(१०) श्री गुसांईजी के सात बालकों से सम्बन्ध रखने वाला विवरण ।

इसमें जिन सेवकों के नाम मिले हैं, उनकी सूची इस प्रकार है —

(१) अजबकुंवरि बाई (२) आशकरण (३) अचलबाई (४) आनन्ददास (५) अलीखान की बेटी (६) पैंतालीस ऐसे सेवक जिनके नाम नहीं दिए गए हैं। 'एक ब्राह्मण' इत्यादि से जिनके प्रसंग लिखे गए हैं। (५१) कल्याण भट्ट (५२) कान्हबाई (५३) कृष्णराय (५४) केशवभट्ट (५५) किशोरी बाई (५६) कटहरिया (५७) कृष्ण भट्ट (५८) कुंभनदास (५९) कल्याणदास (६०) खंडन ब्राह्मण (६१) गोपालदास (६२) गोपीनाथदास ग्वाल (६३) गीया जाट (६४) गोविंदी (६५) गोपालदास बडनगर (६६) गोवरधनदास (६७) गोकुल भट्ट (६८) गोविंदी भट्ट (६९) गुलाबदास (७०) गोविंद स्वामी (७१) गंगाबाई (७२) चाचा हरिवंश (७३) चांपा भाई (७४) चतुरबिहारी (७५) चतुर्भुजदास (७६) चतुर्भुजदास का बेटा (७७) कुंभनदास (७८) छबीलदास (७९) छीत स्वामी (८०) जनार्दनदास (८१) जाडा कृष्णदास (८२) जनभगवानदास (८३) जीवनदास (८४) जोतसिंह (८५) झांझा (८६) ताराचन्द भाई (८७) तुलसीदास जलघरिया (८७) तानसेन (८९) देवजी भाई (९०) दामोदर झा (९१) दामोदरदास (९२) देवाभाई (९३) द्वारकादास (९४) दया भवैया (९५) धरमदास (९६) धारबाई (९७) धोंधी (९८) नारायणदास दीवान (९९) नारायण-

दास पांडे (१००) नंददास (१०१) प्रेमजी लुहाणा (१०२) परमानन्द सौनी (१०३) पीताम्बरदास (१०४) पृथ्वीसिंह बेटा कल्याणसिंह (१०५) पुरुषोत्तमदास (१०६) वाधाजी राजपूत (१०७) बेनीदास (१०८) वीरा (१०९) बलाई (११०) ब्रह्मदास (१११) वृन्दावनदास (११२) बेनीदास (११३) भगवानदास (११४) भवानी (११५) भाईला कोठारी (११६) राजा भीम (११७) भीष्मदास (११८) भगवानदास (११९) मोहनदास (१२०) मेहा धीमर (१२१) मुरारीदास (१२२) मुरारी आचार्य (१२३) मधुसूदन (१२४) माधोदास (१२५) माधुरीदास (१२६) मुकुंददास (१२७) मानसिंह राजा (१२८) माणिकचन्द (१२९) यादवेन्द्रदास (१३०) रूपा पोरिया (१३१) क्रोंडा उदम्बर (१३२) रामदास (१३३) रूपा राजपूत (१३४) रूपमंजरी (१३५) राघवदास (१३६) रसखान (१३७) रामराय (१३८) रूपमुरारी (१३९) लाड बनिया (१४०) लाडबाई (१४१) लीलाधरदास (१४२) संतदास (१४३) सीताबाई (१४४) सहजपाल दोसी (१४५) सगुनदास (१४६) हित भगवानदास (१४७) हरिजी कोठारी (१४८) हरिदास खवास (१४९) हृषीकेश (१५०) हरिदास मेरता के।

(२) स्थानों के नाम—

आगरा, अडैल, अन्यौरा, अडीग, अरिंग, अलियान, आमेर, ओडछा, इटावा, उज्जैन काशी, कामवन, काबुल, खंभात, जौनपुर, खंभालिया, गोकुल, गोपालपुर, गुजरात, गिरिराज, गढ़ा, गोलवाड़, चित्रकूट, जगन्नाथ, द्वारका, दिल्ली, धौलका, नरवर, नन्दगांव, नर्मदा किनारे, जामनगर, परासोली, पंढरपुर, बद्रिकाश्रम, बराड़ीगाम, बीकानेर, वृन्दावन, मानसीगंगा, मानिकपुर, महावन, मथुरा, मारवाड़, राजगनर, रमनरेती, रावल, लाहौर. वडनगर, सूरत, महीकांठा। सेजाईगाम, हरिद्वार, मेडता, सहजादपुर, सोरों।

सेवकों के सम्बन्ध में सूचनाएं—ऊपर के विवरण में ही लिखदी गई हैं। इनमें से कितने ही देशाधिपति के चाकर थे।

इतिहास प्रसिद्ध पुरुषों के नाम—आशकरण, अकबर, अलीखान, अजबकुंवरिबाई, औरंगजेब, कृष्णचैतन्य, जैमल, जोतसिंह, तुलसीदास, तानसेन, बाजबहादुर, बीरबल, पृथ्वीसिंह, पर्वतसेन, राजा भीम, रूपसनातन, रसखान, लाछाबाई-दाऊद बादशाह-दुर्गावतीरानी, मीराबाई, शेरसाह, टोडरमल, मधुकरशाह ओडछे के।

ग्रन्थों के नाम—पुष्टि प्रवाह मर्यादा, भक्तिवर्धिनी, यमुनाष्टक अंतःकरण प्रबोध, श्रीकृष्ण प्रेमामृत, नवरत्न, निबन्ध, विवेकधैर्यआश्रय ग्रन्थ, व्रतचर्या, वल्लभाष्टक, वल्लभाख्यान, महाप्रभुजी के स्वरूप को ग्रन्थ, सिद्धान्तरहस्य, श्यामलता, रुक्मिणी वेलि, सहस्रनाम ग्रन्थ।

कवि होने की सूचना का विवरण कवियों के विवरण में दिया गया है।

कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना—

(१) श्री गुसांईजी की अकबर से भेंट वार्त्ता—१५।

(२) बीरबल का आतिथ्य, वार्त्ता—१०—२०८।

(३) बीरबल की बेटी का शरण में आना, वार्त्ता—११।

(४) अकबर की काबुल पर चढ़ाई, वार्त्ता—२३८।

(५) लाडबाई धारबाई की वार्त्ता में 'म्लेच्छ को उपद्रव' का उल्लेख तथा मंदिर तोड़ने की सूचना ।

(६) द्वारका यात्राएं, वार्त्ता -४४ तथा अन्य वार्त्ताओं में ।

(७) बादशाह दाऊद गौड़ देश के से और श्री गुसांईजी से भेंट, वार्त्ता-५ ।

(८) लाछाबाई का गुजरात पर अमल, वार्त्ता—२२९ ।

(९) शेरशाह का उल्लेख, वार्त्ता-१४७ ।

(१०) दक्षिण के राजा मानसिंह, वार्त्ता-११७ ।

(११) राजा भीम—१८३ ।

(१२) पृथ्वीसिंह की काबुल यात्रा, वार्त्ता—२३८ ।

(१३) गिरधरजी का तिलकायत होना, वार्त्ता—२३४ ।

(१४) रूपमुरारीदास अकबर के शिकार के अफसर थे, वार्त्ता-७ ।

(१५) मानसी गंगा पर अकबर का डेरा पड़ा था, वार्त्ता—७ ।

(१६) वार्त्ता २५२ में भगवानदास आगरे सूबे के दीवान थे ।

(१७) वार्त्ता संख्या उन्नचास (दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में एक कूंजरी की वार्त्ता में लिखा है, 'फिर वे कूंजरी अपनो द्रव्य लेके श्री गोकुल में आयके रही दिन कूं दुकान मांड के बैठे रात कूं गाम बहार आयके रहे कारण जो गोकुल में बड़ी जात कूं रात में रहने को पृथ्वीपति अकबर बादशाह को हुकुम न हतो ।'

(१८) मधुकर शाह ओड़छे के राजा थे, वार्त्ता-२४५ ।

(१९) वार्त्ता दोसौ इक्तीस से साठ साल पीछे औरंगजेब का उपद्रव अर्थात् लाडबाई का समय ।

वार्त्ता की इन ऐतिहासिक सूचनाओं के आधार पर इतिहास समर्थित तथ्यों की पुष्टि होती है । वार्त्ता के अनुसार अकबर शिकार खेलने जाता और उसके यहाँ शिकार रक्षक एक व्यक्ति था । इतिहास के अनुसार भी इस कथन का समर्थन होता है । एस० एम० जफ़र साहस ने अपनी 'कलचरल ऐसपैक्ट्स आफ मुस्लिम रूल' नामक पुस्तक में शिकार के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

Shikar or chase afforded another pleasure and past time.... Almost all the Sultans and Badshahs of Delhi had a great craze for it. They maintained large establishments of Shikar. The Shikar Deptt. was under a separate officer called Amir-i-Shikar or Master of the Hunt who was often an officer of high rank, under him were Arizan-i-Shikar, Khasdaran, Mehtaran. A piece of land measuring twelve Kosa was acquired near Delhi to serve as a state, preserve, where all kinds of beasts were collected.

अर्थात् शिकार मनोविज्ञान का दूसरा साधन था । दिल्ली के सभी सुल्तानों और बादशाहों को शिकार का बहुत शौक था । शिकार के लिए एक लम्बी-चौड़ी सामग्री का संग्रह रहता था । शिकार विभाग का अध्यक्ष अलग होता था । जिसे 'अमीर-ए-शिकार' कहते थे जो प्राय: एक उच्च अधिकारी होता था और उसके नीचे अरीजा-ने-शिकार, खास दारान्

ग्रौर मेहतरान नामक पदाधिकारी होते थे । दिल्ली के ग्रासपास बारह कोस जमीन को शिकार के लिए सुरक्षित रक्खा गया था, जहाँ नाना प्रकार के पशु इकट्ठे किए गए थे ।[1]

डाक्टर ईश्वरीप्रसाद ने ग्रपने इतिहास में लिखा है—

'उसमें (ग्रकबर में) विस्मयकारी शारीरिक शक्ति थी । उसे शिकार का बड़ा शौक था । उसे भयंकर जंगली जानवरों के शिकार में बड़ा ग्रानन्द ग्राता था । भयंकर से भयंकर सिंह चीते या हाथी के शिकार से जरा भी नहीं डरता था ग्रौर कितना भी थकने पर वह शिकार का पीछा नहीं छोड़ता था ।'[2]

इन सबसे बढ़कर प्रमाण ग्रब्बुलफजल की ग्राइनेग्रकबरी में है जहाँ वह बादशाह के शिकार, शिकारगाह ग्रादि का विस्तृत वर्णन करते हुए लिखता है कि एक बार मथुरा के जंगल में एक बड़ी ग्रसाधारण घटना हुई । शुजात खाँ चीते के शिकार में बहुत ग्रागे बढ़ गए ग्रौर फिर उन्हें यकायक डर लगा । बादशाह ग्रपने स्थान पर ग्रटल खड़ा रहा ग्रौर उसने सिंह की ग्रोर क्रोध पूर्ण दृष्टि से देखा, वह भयभीत हुग्रा तथा थोड़ी देर में मार डाला गया ।

इसी शिकार के प्रकरण में ग्रब्बुलफजल ने लिखा है कि ग्रकबर ग्रागरे से तीस-चालीस कोस की दूरी पर चीतों का शिकार करता था । विशेषतः बारी (बाड़ी) सीमावली, ग्रलापुर सूनम, भटिन्डा, भटनीर पाटन (पंजाब) झुनझुनू, नागौर, मेडता, जोधपुर, जैसलमेर के जिलों में उसके शिकार के लिए स्थान नियत थे ।

इस वार्त्ता में लिखा है कि रूपमुरारी शिकार के ग्रफसर थे ग्रौर बाज हाथ में लिए खून से लथपथ कपड़ों से श्री गुसांईजी के सम्मुख ग्राए थे । ग्रब्बुलफजल ने ग्राइनेग्रकबरी में स्पष्ट लिखा है कि ग्रकबर बाज तथा ग्रन्य चिड़ियों का शिकार के लिये, प्रयोग करता था ग्रौर उन पर बहुत से काश्मीरी ग्रौर हिन्दुस्तानी मनसबदार ग्रौर ग्रहदी तथा ग्रन्य कर्मचारी रहते थे । सब बाजों में बादशाह सलामत को 'बाशा' जाति का बाज ग्रधिक प्रिय था ।[3]

मेरे ग्रनुमान में श्री रूपमुरारीजी कोई बड़े कर्मचारी न होकर इन बाज-रक्षकों में से ही थे । तभी तो उनके शरीर में खून के दाग थे ।

बीरबल का ग्रातिथ्य, कृष्णदास को दंड देना इत्यादि—

वार्त्ताग्रों के विवरण के ग्राधार पर एक बार श्री गुसांईजी को भाइला कोठारी के ग्राग्रह पर गुजरात ग्रौर द्वारका जाने की इच्छा हुई ग्रौर वे फतेहपुर सीकरी गए । वहाँ बीरबल ने उन्हें चार दिन तक टिकाया ग्रौर ग्रपने डेरे के पास ही उनका डेरा लगवाया था । इस घटना में एक ऐतिहासिक तथ्य है, पर इसका समर्थन ग्रौर कहीं से प्राप्त नहीं है । ग्रकबर का दिया हुग्रा पहला फरमान १६३४ संवत् विक्रमी का है । इसलिए यह घटना इसके ग्रास-पास की ही है ।

कृष्णदास ग्रधिकारी ने (संवत् १६३६) श्री विट्ठलनाथ जी को मंदिर में ग्राने से मना कर दिया था जिस पर ग्रकबर ने उन्हें जेल में बन्द कर दिया था ग्रौर श्री गुसांईजी

१. एस० एम० जफर, कलचरल ग्रासपैक्ट ग्राफ मुस्लिम रूल ।
२. डा० ईश्वरीप्रसाद, मिडावैन इंडिया ।
३. ग्रब्बुलफजल, ग्राइने ग्रकबरी भाग १ व २ ।

ने उन्हें छुड़ाया था । इस घटना के आधार पर भी यह घटना सम्वत् १६३४ के पूर्व की ही ठहरती है । श्री गुसांई जी ने कई बार गुजरात यात्रा की थी । इनमें से संवत् १६३१ और सम्वत् १६३८ की यात्राओं का आरम्भ गोकुल से ही हुआ था । इस प्रकार यह घटना सम्वत् १६३१ की प्रतीत होती है । डाक्टर देवीदत्त पन्त ने अकबर कालीन राज मार्गों का जो उल्लेख अपनी पुस्तक 'कार्मशियल पॉलिसी आफ मोगल्स' में किया है उसके अनुसार ब्रज से द्वारका जाने का मार्ग-गोकुल से मथुरा-आगरा-फतेहपुर सीकरी-बयाना-बंदरसीदरी-अजमेर-मेरता-बागरा-रोहा-अहमदाबाद-बड़ौदा-भडौंच, सूरत होकर था ।

काबुल की चढ़ाई

इस चढ़ाई का उल्लेख अकबर सम्बन्धी सभी ऐतिहासिक ग्रंथों में है और इसको फतह करने का श्रेय राजा मानसिंह को है । बादशाह स्वयं इस चढ़ाई में गए थे । वार्त्ता संख्या दोसौ अड़तीस में जो पृथ्वीसिंह बेटा कल्यानसिंह का उल्लेख है । उसका नाम इतिहास ग्रंथों में मिलता है । यह पृथ्वीराज या पीथल संवत् १६३८ में काबुल भेजे गये थे । उस समय इनकी आयु बत्तीस वर्ष की थी । इनकी मृत्यु संवत् १६५७ में विश्राम घाट पर प्रसिद्ध है । इस प्रकार इस घटना को इतिहास का समर्थन प्राप्त है ।

लाडबाई धारबाई की वार्त्ता में म्लेच्छ का उपद्रव—

इस वार्त्ता में श्री गोकुलनाथ जी का उल्लेख है जिससे इस घटना का समय निर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं होती है । श्री गोकुलनाथजी का जन्म संवत् १६०८ का है और उनकी स्वधाम पधारने की तिथि संवत् १६९७ है । ईसवी सन् के हिसाब से सन् १५५१—१६४० तक आप विद्यमान थे । इस समय दिल्ली के सिंहासन पर शाहजहाँ बादशाह था । संवत् १६८७-१७१५ तक उसका शासनकाल था । इस समय केवल नए मन्दिर बनवाने की आज्ञा नहीं थी, पर पुराना कोई मंदिर तोड़ा गया हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है । इसलिए इस म्लेच्छ के उपद्रव का औरंगजेब के शासन काल में होना माना जायगा ।

सर यदुनाथ सरकार ने अपने औरंगजेब[1] नामक ग्रंथ में लिखा है कि मथुरा दारा शिकोह की जागीर थी और वह हिन्दुओं का मित्र था तथा उसने मंदिरों को जागीरें दी थीं । इस कारण औरंगजेब के राज्यारोहण के प्रथम वर्ष में दारा की हार के पश्चात् मथुरा, अलीगढ़ आदि जिलों में बड़ी अशांति फैली थी और मुसलमानों ने ही नहीं वरन् हिन्दुओं ने भी खूब लूटमार की थी । अखबारात अलमगीरी[2] के अनुसार मथुरा के फौजदार अब्दुलनवी खां ने सन् १६६६ अर्थात् संवत् १७२३ में केशोराय मथुरा के प्रसिद्ध मंदिर को तोड़ा और दारा शिकोह का दिया हुआ देहरा नष्ट कर दिया । इसके पश्चात् सन् १६६९ अर्थात् संवत् १७२६ में सभी मंदिरों को तोड़ने की आज्ञा दी गई थी । इसलिए यह म्लेच्छ का उपद्रव संवत् १७२३ अर्थात् सन् १७२६ के बीच की घटना है जिसका उल्लेख लाड़बाई धारबाई के धन के कारण उनके प्रसंग में किया गया है । श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता के अनुसार श्रीनाथ जी के मेवाड़ पधारने की तिथि है मिती आसोज सुदी १५ शुक्रवार संवत् १७२६ और बहुत सम्भव है कि यह घटना संवत् १७२६ की ही हो क्योंकि यही वर्ष मंदिर तोड़ने के लिए प्रसिद्ध है ।

---

१ सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब ।

२ अखबारात आलमगीरी ।

लाड़बाई धारबाई का इस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है और न उनका उस समय वर्तमान रहना ही सिद्ध है अथवा आवश्यक है। उस समय तिलकायत श्री गिरधर जी विराजमान थे। उनके पुत्र दाऊजी और भाई गोविंद जी भी उपस्थित थे।

गौड़ देश के दाऊद पादशाह से श्री गुसांईजी की भेंट—

वार्त्ता संख्या चार के अनुसार अपने दीवान नारायणदास कायस्थ की गुरू में आस्था देखकर दाऊद खां का श्री गुसांईजी के दर्शन की इच्छा प्रगट करना और दर्शन करना लिखा है। बंगाल के मध्यकालीन इतिहास में तीन दाऊद खां नामी शासकों का उल्लेख है जिनमें इस वार्त्ता से सम्बन्ध रखने वाले दाऊद खां का पूरा नाम दाऊद खां किर्रानी है और उसका शासनकाल सन् १५६७ से सन् १५७६ अर्थात् संवत् १६३३ तक है। इसी साल विद्रोह के अपराध में अकबर के शासन काल में उसे फांसी दी गई थी, संवत् १६२१ में स्वयं अकबर ने इसे पटने के समीप घेर लिया था और फिर तैलिया गढ़ी के पास मुगल सेनानी मुनीम खां ने संवत् १६२२ में इसे हराया और वहाँ से यह उड़ीसा भाग गया और राजा टोडरमल से तुकोरी के मैदान में इसका युद्ध हुआ।

श्री विट्ठलनाथजी का विद्यमान काल संवत् १६४२ तक है। इसलिए यह घटना श्री गुसांईजी की जगन्नाथपुरी की दूसरी यात्रा के पीछे की है। आपकी अन्तिम जगदीश यात्रा संवत् १६१६ के पश्चात् की है। जब आपने सब कुछ जगदीशजी की भेंट कर दिया था और पहिली यात्रा इससे पहले की है। जिस यात्रा में दाऊद से भेंट होना लिखा है, वह विशेष रीति से नारायणदास के निमंत्रण पर गौड़ देश जाने के समय की है। इसलिए यह घटना सम्वत् १६२९ और संवत् १६३३ के बीच की है क्योंकि सन् १५७२ अर्थात् संवत् १६२९ से पहले दाऊद खाँ बंगाल का शासक ही नहीं था। सन् १५७२ अर्थात् संवत् १६२९ तक बंगाल में इसके पिता सुलेमान किर्रानी का राज्य था। यदि यह भेंट जगन्नाथ यात्रा के समय हुई मानी जाय तो फिर संवत् १६१६ में यह युवराज भी नहीं था क्योंकि इसका बड़ा भाई वाजिद अपने पिता की मृत्यु के बाद बंगाल का शासक हुआ था जिसे इसने षडयन्त्र द्वारा मरवाया था। सन् १५७४ अर्थात् संवत् १६३१ में बादशाह अकबर स्वयं इनके विरुद्ध मुनीमखाँ की सहायता को पटने पहुँच गया था। इसलिये संवत् १६२९ में ही दाऊद को थोड़ा चैन था अन्यथा उसकी मूर्खता से उसे संवत् १६३१ से कभी चैन नहीं मिला है। इसकी मूर्खता यह थी इसने अभिमान में आकर सिंहासन पर बैठकर स्वतंत्र शासक की भाँति अपने नाम के फरमान जारी कर दिए थे और 'खुतवा' पढ़वाना आरम्भ कर दिया था। अतः यह घटना संवत् १६३० के आसपास की ही हो सकती है।

लाछाबाई और बाज बहादुर

लाछाबाई नाम की स्त्री का गुजरात के इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। बाज बहादुर मालवा का शासक था जिसे रानी दुर्गावती ने दो बार हराया था फिर इसने गुजरात में शरण ली। इसकी स्त्री का नाम रूपमती था जो स्वयं बहुत उच्च कोटि की कवि थी और जिसका उल्लेख रानी दुर्गावती के अन्तर्गत किया गया है।

'मीराते सिकन्दरी' और 'तबकाते अकबरी' के अनुसार गुजरात के शासक सुलतान मुजफ्फरशाह द्वितीय के आठ पुत्र थे— (१) सिकंदर खां (२) बहादुर खां, (३) लतीफ खां

(४) चाँद खां (५) नासिर खां, इब्राहीम खां इत्यादि और इसके दो लड़कियां भी थीं जिनमें से 'रानीरूकिया' बरहानपुर के आदिलशाह को व्याही थी और दूसरी 'रानी अशिया' सिंध के युवराज फतेखां की पत्नी थी। सिकन्दर खां और दोनों लड़कियों का जन्म एक ही मां से हुआ था जिसका नाम बीबी रानी और बहादुर खां की मां का नाम लखमबाई था जो गोहिल राजपूत की कन्या थी और लाछा लतीफ खां की माता 'राजबाई' किसी राजपूत राना महीपत की बहिन थी। चांद खां, नासिर खां, इब्राहीम खां इत्यादि अन्य रखेलियों की संतानें थीं। 'मीराते सिकन्दरी' के अनुसार राज्य का सारा प्रबन्ध इस बीबी रानी के हाथ में था। मुज्जफर शाह द्वितीय का शासन काल सन् १५११ से सन् १५२६ तक रहा है, अर्थात् संवत् १५६८-१५८३ विक्रमी तक। इसके पश्चात् सन् १५२६ में इस बहादुर खां ने बहादुर शाह की उपाधि धारण करली। यह गुजरात का शासक हुआ और इसने सन् १५३७ अर्थात् संवत् १५६४ तक गुजरात का शासन किया और इस समय एक फिरंगी ने इसकी अनायास हत्या करदी। यह बहादुर शाह अपनी उदारता के कारण हातिमताई कहलाता था। इसे बादशाह हुमायूं ने चम्पानेर के युद्ध में हराया था और इसने स्वयं मांडू, ग्वालियर चित्तौर तथा अन्य स्थानों को जीता था। इसके नाम का 'खुतबा' पढ़ा जाता। इसके सिपहसालार तातारखां लोदी ने मिर्जा हिन्दाल की अध्यक्षता में हुमायूं की सेना का बयाना में बड़ी वीरता से सामना किया था और वीर-गति पाई थी।

इसकी मृत्यु के पश्चात् भी सन् १५८४ अर्थात् संवत् १६४१ तक इसके वंशज मुगल शासकों के प्रति विद्रोह करते रहे। वैराम खां के लड़के अब्दुर रहीम ने जिन्हें गुजरात की अन्तिम पराजय के पश्चात् खानखाना की उपाधि मिली थी, मुज्जफर शाह तृतीय को हरा दिया था और उसने स्वयं कच्छ के पास आत्म-हत्या करके प्राण दे दिए थे।

अतः वार्त्ता में जिस बाज बहादुर का उल्लेख है और गुजरात में जिसके अमल का उल्लेख है, वह यही बहादुर खां या बहादुर शाह ही हैं, मांडू के बाज बहादुर नहीं क्योंकि उस बाज बहादुर की मां का नाम न तो 'लखमबाई' था और न वह गुजरात का शासक था। इस सम्बन्ध में वार्त्ता में नाम की भूल है, शेष सब ठीक है।

मालवा का बाज बहादुर, आइने-अकबरी के अनुसार सुजातखां सूर का बेटा था और मालवे का प्रसिद्ध शासक था और इसको अकबर ने संवत् १६२० में हराया था तथा आधीनता स्वीकार कर लेने पर एक हजारी मनसब दिया था। रूपमती इसकी रानी थी। इन दोनों की समाधि उज्जैन में एक ताल के बीचों-बीच बनी है। इनके नाम के साथ एक प्रेम-गाथा की स्मृति जुड़ी हुई है।

शेरशाह बादशाह—

एक पठान के छोरा की वार्त्ता में, वार्त्ता संख्या एकसौ सैंतालीस दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में शेरशाह बादशाह का नाम आया है, और उसकी सहिष्णुता और न्यायप्रियता का उल्लेख है। शेरशाह का शासन काल संवत् १५६६ से १६०४ तक है। उससे पूर्व दिल्ली के सिंहासन पर हुमायूं बादशाह का शासन था। इसलिए इस मुसलमान के शरण आने की घटना का काल संवत् १५६६ और १६०४ के बीच का हो सकता है। इस घटना का उल्लेख शेरशाह से सम्बन्ध रखने वाली किसी पुस्तक में नहीं मिला है। सम्प्रदाय के इतिहास के लिए इस घटना

का जितना महत्व है, उतना और किसी प्रकार से नहीं है। इसलिये इस घटना का उल्लेख अन्यत्र न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। केवल इस आधार पर कि इसकी पुष्टि तत्कालीन इतिहास ग्रंथों से नहीं होती है, इसे सर्वथा कल्पित नहीं मान सकते।

प्रोफेसर कालिका रंजन कानूनगो ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'शेरशाह' में लिखा है कि शेरशाह के शासन में हिन्दुओं को सेना में उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर रक्खा जाता था और शेरशाह के सेना नायकों में ब्रह्मजीत गौड़ और ग्वालियर के राजा रामशाह अत्यन्त महत्वपूर्ण सेना संचालक थे। प्रोफेसर कानूनगो ने शेरशाह की मृत्यु पर लिखा है —

'इस प्रकार अपने जीवन के मध्याह्न में ही वह विजयी और लाभप्रद कार्य करने वाला दक्ष सेनानी तथा कूटनीतिज्ञ शासक उठ गया जिसके कारण पंडित हिन्दुओं के लिए सहिष्णुता, न्याय और राजनैतिक समता का वह सूर्योदय हुआ था जो अकबर के राज्यारोहण से अपनी मध्याह्न की गरिमा को पहुँच गया था।'[१]

इरसकीन ने अपने भारत के इतिहास के दूसरे खंड में शेरशाह की न्याय-प्रियता के लिए एक अन्यायी राज्य कर्मचारी का एक हिन्दू स्त्री की ओर हाथी पर से पान फेंकने का उल्लेख किया है जिसे उसने वही दण्ड दिया था।[२]

ऐसे न्यायप्रिय सर्वतोभद्र शासक के राज्य में इस सहिष्णुता के लिए यथेष्ट स्थान था। इस कारण देश की तत्कालीन परिस्थिति वार्त्ता के इस उल्लेख के प्रतिकूल नही दिखाई पड़ती है।

दक्षिण के राजा मानसिंह—

इन राजा मानसिंह के व्यक्तित्व को इतिहास की कसौटी पर कसकर यह सिद्ध करना कि यह किस समय हुए थे और इस वार्त्ता में दक्षिण से क्या अभिप्राय है। इसका भी निराकरण करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सर्व प्रथम आमेर के राजा मानसिंह का उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि मुगुलकालीन इतिहास में जितनी इनकी प्रसिद्ध है, उतनी अन्य किसी की नहीं। ये अकबर के समकालीन थे और इन्होंने काबुल तथा बंगाल और दक्षिण भारत में अद्भुत राजनैतिक कौशल का परिचय दिया था। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में आइनेअकबरी में लिखा है कि बादशाह जहाँगीर के राज्यारोहण के नवे वर्ष में प्राकृतिक रीति से इनका देहावसान दक्षिण में हुआ और इनकी पन्द्रह सौ रानियों में से साठ रानियाँ इनके साथ सती हो गई। इस प्रकार मानसिंह का समय है ईसवी १५७७–१६१२ तथा संवत् १६३४–१६६९।

इस प्रकार यह राजा मानसिंह गुसांईजी के समकालीन थे और बिहार, बंगाल, काबुल तथा दक्खिन के अनेक युद्धों के कुशल विजेता सेनानी और अकबर के कृपा-पात्र थे। इन्होंने उड़ीसा का प्रान्त संवत् १६४७ में मुगल राज्य में मिलाया था और जगदीश यात्रा भी की थी।

इनको छोड़कर इतिहास में दो अन्य राजा मानसिंह के नाम से मिलते हैं। एक राजा मानसिंह ग्वालियर के तथा दूसरे झालाबाड़ गुजरात के। इनमें से ग्वालियर के राजा मानसिंह का समय सन् १५३० अर्थात् संवत् १५८७ के आसपास है क्योंकि बादशाह हुमायूं ने चम्पानेर

१. कालिका रंजन कानूनगो, शेरशाह।
२. इरसकीन।

और बयाना युद्ध से पूर्व इसके यहां कुछ दिन के लिए शरण ली थी। 'मीराते सिकन्दरी'[1] के अनुसार तीसरा मानसिंह झालावाड़ का राजा था और इसने गुजरात के शासक बहादुर शाह के समय में बीरमगांव मंडल, बधवाना का प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था। इसका समय भी सन् १५३२ अर्थात् संम्वत् १५९९ के आसपास है। ग्वालियर का राजा और झालावाड़ के राजा मानसिंह दोनों समकालीन व्यक्ति थे।

वार्त्ता में आए हुए 'दक्षिण' शब्द पर ध्यान देने से यह प्रतीत होता है कि जिस राजा मानसिंह का इसमें उल्लेख है, वह गोकुल के दक्षिण प्रदेश का रहने वाला था। जयपुर किसी प्रकार भी गोकुल के दक्षिण में नहीं कहा जा सकता है। इसलिए यह मानसिंह जयपुर के राजा मानसिंह नहीं हो सकते हैं।

उस समय गोकुल से जयपुर जाने के लिए जो मार्ग प्रचलित था, वह वही था जो आगरे से अजमेर के लिए निश्चित था। वह दक्षिण में नहीं, पश्चिम में है। इसके प्रतिकूल ग्वालियर और झालावाड़ दोनों गोकुल से दक्षिण में हैं। इसलिए प्रथम दृष्टि में सहज ही यह कहने को जी चाहता है कि यह दक्षिणी राजा मानसिंह ग्वालियर या झालावाड़ नरेश में से कोई एक थे।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने मृगनयनी उपन्यास के आमुख में लिखा है कि मानसिंह तोमर ईसवी १४८६ से १५१६ अर्थात् सम्वत् १५४३ से सम्वत् १५७३ तक ग्वालियर का राजा रहा है। फरिश्ता के इतिहास लेखक ने मानसिंह को योग्य और वीर शासक बतलाया है। अंगरेज लेखकों ने मानसिंह के राज्य-काल को स्वर्ण-युग के नाम से पुकारा है। इस काल में ग्वालियर की स्थिति बड़ी विकट थी। इसके चारों ओर उपद्रव था। बहलोल लोदी ने पहले ग्वालियर पर आक्रमण किए, फिर सिकन्दर ने कम से कम पांच बार चढ़ाई की थी और हर बार उसे हार माननी पड़ी थी। अन्त में संवत् १५६१ में उसने आगरे को बसाया और वहाँ से पहले ग्वालियर पर घेरा डाला तथा नरवर पर चढ़ाई की। नरवर पर राजसिंह का दावा था। इसलिए उसने सिकन्दर का ग्वालियर के विरुद्ध साथ दिया। ग्यारह महीने घिरे रहने पर भी नरवर वालों ने हिम्मत न हारी और डटकर लोहा लिया। जब खाने को घास और पेड़ों की छाल भी नहीं मिली, तब आत्म-समर्पण किया और सिकन्दर ने नरवर के सब मंदिर तोड़ डाले। परन्तु वार्त्ता में इस राजा की एकसौ आठ रानियों का उल्लेख है और यह लिखा है कि वह श्री गुसांईजी की जगदीश यात्रा के समय उनकी शरण में आया था। जयपुर के राजा मानसिंह की पन्द्रहसौ रानियों का उल्लेख आइनेअकबरी में है, पर इन दोनों के सम्बन्ध में इस प्रकार का कोई वृत्त ज्ञात नहीं है। दूसरे, अपने अन्त समय में राजा मानसिंह दक्षिण के सूबेदार थे। इसलिए रानियों के हिसाब से तथा दक्षिण के सूबेदार के हिसाब से इसका सम्बन्ध जयपुर के राजा मानसिंह की ओर झुकता दिखाई पड़ता है। परन्तु वार्त्ता का यह कथन कि इनके कोई संतान नहीं थी, जयपुर के मानसिंह के पक्ष में नहीं है। अपने पुत्र जगतसिंह को इन्होंने अकबर के समय में अपना नायब बनाया था तथा इनकी मृत्यु के समय भी भाउसिंह नामक एक पुत्र जीवित था।

ग्वालियर के राजा मानसिंह की आठ रानियों का उल्लेख तो मिलता है और तेली के स्थान पर अहीर कन्या से उसके व्याह करने का प्रकरण मिलता है। भूल यह लगती है कि

१ मीराते सिकन्दरी।

आठ की जगह रानियों की संख्या एकसौ आठ हो गई है अन्यथा यह दक्षिण का राजा ग्वालियर का मानसिंह ही था।

ग्वालियर के किले के भीतर के मानमंदिर और गूजरी महल इस मानसिंह की ही देन है और इसके सौन्दर्य को देखकर श्री वृन्दावनलाल ने इन्हें 'काल के होठों की मुस्कान' कहा है। मानमंदिर को बाबर ने सन् १५२७ अर्थात् संवत् १५८४ में देखा था। इसलिए वे इससे पूर्व बन चुके थे। वृन्दावनलालजी ने, मानमंदिर और गूजरी महल दोनों का निर्माण काल संवत् १५६४ लिखा है। इसी मानसिंह का विवाह ग्वालियर से दक्षिण पश्चिम की ओर ग्यारह मील दूर राई गांव की गूजर कन्या मृगनयनी से हुआ था जिसमें सौन्दर्य, साहस और शक्ति का अपूर्व मिश्रण था। एक किवदंती है कि मानसिंह के दोसौ रानियाँ थीं परन्तु वर्माजी को गाइड ने 'एट' आठ रानियों की सूचना दी थी। रानियों के सम्बन्ध में यह लगता है कि विक्रम की सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में सैंकड़ों और हजारों रानियां रखने की कुछ प्रथा ही इस देश में चल पड़ी थी। मालवा के सुलतान नसीरुद्दीन के पन्द्रह हजार बेगमें थीं और सत्रहवीं शताब्दी में आमेर मिर्जा राजा मानसिंह के साथ भी कई सौ रानियों में से साठ रानियां सती हुई थीं।

संवतों की एकता के आधार, पर रानियों की अधिकता के आधार पर, तथा तेली की लड़की से व्याह करने के आधार पर, यही लगता है कि वार्त्ता के राजा मानसिंह ग्वालियर के राजा मानसिंह ही हैं और वह तेली कन्या गूजर कन्या मृगनयनी ही है।

'दक्षिण' शब्द का अर्थ 'पंढरपुर' इतिहास के अनुसार ठीक नहीं जचता है। आगरे-फतेहपुर होकर जो मार्ग सूरत को जाता था, वह ग्वालियर होकर ही था और यही दक्षिण पथ था। इसलिए केवल 'दक्षिण' शब्द के आधार पर पंढरपुर की कल्पना ठीक नहीं है। इस सम्बन्ध में एक और बात विचारणीय है। वे हैं श्री गुसांईजी की जगदीश यात्राएँ। जबकि यह राजा उनकी शरण आया था। श्री गुसांईजी की पहली जगदीश यात्रा संवत् १५६५ के आसपास की है और अन्तिम यात्रा—जब आपने अपना सब कुछ श्री जगदीशजी को भेंट कर दिया था, संवत् १६१६ की है। पहली यात्रा में श्री गोपीनाथजी साथ थे। ग्वालियर और झालावाड़ दोनों प्रदेशों के राजा मानसिंह उस समय वर्तमान थे। प्रतिकूल इसके संवत् १६१३ सन् १५५६ अकबर के राज्यारोहण से पूर्व जयपुर के राजा मानसिंह का कोई महत्व ही इतिहास में नहीं है।

श्री राखालदास वंद्योपध्याय के और सर यदुनाथ सरकार के बंगाल के इतिहास से यह पता चलता है कि पहली बार संवत् १६५१ में प्रथम जयपुर के राजा मानसिंह को बंगाल का सूबेदार बनाकर भेजा गया था। इससे पूर्व संवत् १५९०+५७=१६४७ में राजा मानसिंह बिहार के सूबेदार थे और उस समय संवत् १६४७ में ही उन्होंने उड़ीसा के विद्रोह का दमन किया था और प्रथम बार जगदीश यात्रा की थी। बिहार प्रांत में इस प्रकार योग्यता पूर्वक शान्ति स्थापित करके और उपद्रवियों का दमन करके अप्रैल सन् १५९० (संवत् १६४७) में राजा मानसिंह ने उड़ीसा विजय के लिये प्रस्थान किया। और कटक से (राजा मानसिंह ने) जगन्नाथपुरी के प्रसिद्ध मदिर की तीर्थ यात्रा की और उसके पश्चात् पिप्पली के समीप खुरदा पर धावा करने के लिए डेरा डाला।[1]

१. श्री राखालदास वंद्योपाध्याय 'हिस्ट्री आफ बंगाल', सर यदुनाथ सरकार 'बंगाल का इतिहास' जिल्द-२ पृष्ठ २०७-२०९, सन् १९४८ संस्करण।

सर यदुनाथ सरकार के ऊपर के प्रामाणिक उद्धरण से यह स्पष्ट है कि संवत् १६४७ से पूर्व जयपुर नरेश मानसिंह श्री जगदीश नहीं गये थे। इसलिए जगदीश यात्रा में इन मानसिंह का शरण आना सम्भव नहीं है। ग्वालियर और झालावाड़ के मानसिंह की जगदीश यात्राओं के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। इसलिए अधिक संभावना यही दीखती है कि इन्हीं दो में से किसी एक मानसिंह से वार्त्ता के 'दक्षिण के राजा मानसिंह' की संगति बैठ सकेगी और जयपुर के स्वनामधन्य राजा मानसिंह को इन दोनों से अलग रखना पड़ेगा। वल्लभ सम्प्रदाय में यह राजा मानसिंह भी सेवक और हितैषी प्रसिद्ध हैं। पर इनका इस वार्त्ता से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है। कथा का झुकाव ग्वालियर के मानसिंह की ओर ही अधिक है और ग्वालियर रियासत में महाप्रभुजी की दो बैठकें भी हैं तथा झालावाड़ में ऐसी कोई वस्तु भी नहीं है। और वहाँ के शासक का वैष्णव होना प्रसिद्ध है।

राजा भीम गुजरात के

इनके सम्बन्ध में भावप्रकाश में इनको गुजरात का बताया है। यह कवि थे तथा श्री गुसांईजी की शरण आये थे। गुजरात के इतिहास में जिन राजा भीमों का उल्लेख है उनकी संख्या ग्यारह है। इसमें प्रथम राजा भीम कन्नौज के शासक थे जिनका विक्रम की नवीं शताब्दी में गुजरात पर नाम मात्र का अधिकार था। दूसरे भीम भी दसवीं शताब्दी के गुजरात के शासक हैं। तीसरे भीम पन्द्रहवीं शताब्दी संवत् १५०० के हैं जो जगत् के राजा थे जिन्हें महमूद बघर्रा ने पकड़ लिया था और अहमदाबाद में उसकी आज्ञा से जिनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए थे और एक-एक अंग नगर के एक-एक फाटक पर लटकवा दिया गया था। चौथा भीम ईडर के राजा भान का पुत्र था जिसने संवत् १५७० में गुजरात से सुल्तान मुज्जफर में द्वितीय के समय विद्रोह किया था और साबरमती नदी के दोनों ओर के प्रदेश को अधिकार में कर लिया था। सुल्तान मुज्जफर द्वितीय को जब इस विद्रोह की सूचना मिली थी तो उसने मालवे की चढ़ाई स्थगित करदी और ईडर पर अपसे प्रसिद्ध सेनानी ऐनुलमुल्क को ईडर को विध्वंस करने के लिए भेजा। ईडर के राजा भीम ने प्रबल प्रतिरोध किया और सेनानी के भाई को मार डाला और ऐनुलमुल्क को हरा दिया। इस पर सुल्तान स्वयं ईडर की ओर गोधरा, मुगसर होता हुआ गया था और उसने ईडर के सभी मंदिर नष्ट कर दिए और प्रजा की लूट लिया। राजा सामना न कर सका और समीपवर्ती पहाड़ियों में जा छिपा। राजा भीम को जब इस सत्यानाश की सूचना मिली तो उसने सुल्तान मुज्जफर से संधि करली।

पाँचवा भीम मनके का राजा था और इसने संवत् १५८३ में मुज्जफर की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र लतीफ़ खां की सहायता की थी। चित्तौर के आसपास का सारा वन प्रदेश इसके अधिकार में था। छठे राजा भीमपाल के राजा प्रसिद्ध हैं जिन्होंने बहादुरशाह से संवत् १५८४ में लोहा लिया था और जो सुल्तान मुज्जफर के पुत्र लतीफ खां के पक्ष में लड़े थे और जिन्होंने वीरगति पाई थी। इनका रायसिंह नाम भी लिखा हुआ है।[१]

छठे भीम, जिनका उल्लेख महत्व पूर्ण है वे गागरून के सूबेदार थे। जिन्हें मेदनीराय के विरुद्ध युद्ध करने के लिए संवत् १५७६ में मांडू भेजा गया था और वे वहाँ से भाग गए

१ तवकाते अकबरी में।

थे। शेष राजा भीमों का विवरण अनावश्यक है क्योंकि वे श्री गुसांईजी के समकालीन नहीं थे और न उनका ऐतिहासिक महत्व ही ऐसा है कि मुगल-कालीन शासन व्यवस्था में उनका उल्लेख किया जाय।

अब यहाँ विचार यह करना है कि इन उल्लिखित राजा भीमों में से कौन सा राजा भीम श्री गुसांईजी की शरण आया होगा। श्री गुसांईजी का जन्म संवत् १५७२ है और तिरोधान समय संवत् १६४२। इसलिए उनके समकालीन केवल दो ही भीम ठहरते हैं। एक मनके के राजा भीम और दूसरे पाल के राजा भीम। इन दोनों भीमों के सम्बन्ध में इतिहास में इनका कहीं भी वैष्णव होना नहीं लिखा है। इस कारण यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इनमें से कौनसा भीम श्री गुसांईजी का सेवक हुआ था।

इसके पश्चात् जहाँगीर के शासनकाल में भी मेवाड़ के राना करन के पुत्र का नाम भी भीम था जो अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध था और जिसने शाहजहाँ के विद्रोह के समय उसका साथ दिया था और यह भीम संवत् १६८० में जौनपुर के पास मारा गया था। इसलिए यह अन्तिम राना भीम गुसांईजी के सेवक नहीं हो सकते।

पृथ्वीसिंह (संवत् १६०६–१६५७ वि०)

भावप्रकाश में इन पृथ्वीसिंह को बीकानेर के राजा कल्याणसिंह का बेटा लिखा है और वार्त्ता में यह रुक्मिनी वेलि और स्यामलता दो काव्य ग्रंथों के ग्रंथकार बताये गये हैं और इनका बादशाह अकबर की ओर से लड़ाई में काबुल जाना लिखा है। जहाँ से लौटकर इनकी मृत्यु मथुरा में हो गई थी।

इस वार्त्ता में अन्य वार्त्ताओं के समान अलौकिक बातें तो लिखी ही हैं पर यह भी लिखा है कि इन पृथ्वीसिंहजी को बादशाह ने दिल्ली बुलाया था। यहाँ विचारणीय यह है कि अकबर की राजधानी आगरा थी फिर उसने पृथ्वीसिंह को दिल्ली क्यों बुलाया? यह या तो वार्त्ताकार की भूल है अथवा सम्राट् उन दिनों दिल्ली में रहे हों और उन्होंने पृथ्वीसिंह जी से वहीं मिलना उचित समझा हो। दिल्ली और आगरा में ऐतिहासिक भूल है जरूर, पर यह कोई ऐसी भूल नहीं है जिसके कारण पृथ्वीसिंह के अस्तित्व और सम्प्रदाय में उनकी निष्ठा के विषय में सन्देह उत्पन्न किया जाय।

बीकानेर के इतिहास के अनुसार ये बीकानेर के राज्य के संस्थापक थे। राव बीकाजी और पृथ्वीराज के पिता श्रीराव कल्याण उनकी पाँचवी पीढ़ी में हुए थे। इन राव कल्याणमल के तीन पुत्र थे, रायसिंह, पृथ्वीराज और रामसिंह। ठकुर पृथ्वीराज की जन्मतिथि के विषय में बीकानेर राज्य के भूतपूर्व शिक्षा संचालक ठाकुर रामसिंह अपनी 'बेलि क्रिसन रुक्मिणी' की भूमिका में संवत् १६०६ मार्ग शीर्ष लिखा है। इनके दो विवाह हुए थे। पहली स्त्री का नाम 'लालदे' था और दूसरी का 'चम्पादे'। चम्पादे स्वयं सुन्दर कविता करती थीं। पृथ्वीराजके देश-प्रेम और स्वाभिमान के सम्बन्ध में कई कथाएं प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि एक बार इन्होंने महाराणा प्रताप को अकबर की आधीनता करने से विमुख कर दिया था। दूसरी कथा का उल्लेख स्वयं वार्त्ता में है कि इन्होंने अपनी मृत्यु के विषय में अकबर को पहले से कह दिया था और उससे कुछ दिन पूर्व मथुरा आकर शरीर छोड़ा था। यह घटना संवत् १६५७ की बताई जाती है। यह बड़े स्पष्ट वक्ता और देश प्रेमी प्रसिद्ध थे। सम्राट् अकबर के यह अत्यन्त

कृपापात्र थे और वह उनसे बड़ा स्नेह करता था और इन्हें अपना अंतरंग मित्र समझता था तभी तो इसने उनकी समता बीरबल से की है।

पीथल सूं मजलिस गई तानसेन सूं राग,
रीझ बोल हंसि खेलवो गयो बीरबल साथ।

यह दोहा बीरबल की मृत्यु के अवसर पर लिखा गया प्रतीत होता है पर इसकी पहली पंक्ति से अकबर की दृष्टि में इनका क्या मूल्य था यह स्पष्ट प्रगट होता है। यह उच्च कोटि के कवि थे और इनका बनाया ग्रंथ 'वेलि क्रिसन रुकमणी' शृङ्गार रस का एक उत्तम ग्रंथ है। वार्त्ता में इनके स्यामलता नाम के एक और ग्रंथ का उल्लेख है। मिश्र बन्धुओं ने इनके प्रेम दीपका, दशरथ रावउत, वसुदेव रावउत, गंगालहरी आदि ग्रंथों का भी उल्लेख किया है। भाषा कथा काव्य दोनों के सौष्ठव की दृष्टि से वेलि एक उत्तम ग्रंथ है।

बादशाह अकबर और श्री गुसांईजी की भेंट।

वार्त्ता संख्या अड़तलीस बीरबल की बेटी की वार्त्ता में बादशाह अकबर और गुसांईजी की भेंट लिखी है और यह लिखा है कि अकबर ने श्री गुसांईजी को ऐसा घोड़ा भेंट किया जो एक घन्टे में दस कोस जाता था और उसके खर्च के लिए गोकुल और गोपालपुर ग्राम दिए।

इस वार्त्ता में दो बातों को भद्दे ढंग से मिलाया गया है। एक घोड़ा देने की वार्त्ता और दूसरी गोपालपुर और गोकुल देने की वार्त्ता। यह दोनों बातें अलग अलग हैं। गोकुल और गोपालपुर देने का समर्थन शाही फरमानों से है और जो व्यक्ति दो गांव दे सकता है उसके लिए एक अच्छा घोड़ा देना क्या बड़ी बात है इसलिए इसमें सन्देह करना उचित नहीं है। पर जिस ढंग से लेखक महोदय ने यह दोनों प्रसंग इस वार्त्ता में मिला दिये हैं उस पर खेद है।

वार्त्ता संख्या तिरेसठ में कई बार अकबर को दिल्ली का शासक लिखा है जो ऐतिहासिक भूल है। वार्त्ताकार ने श्री गुसांईजी को भी उन दिनों दिल्ली प्रवास में दिखाया जो कल्पना मात्र लगती है। इसकी ऐतिहासिक मान्यता संदिग्ध है।

गिरधरजी की (राघोदास की वार्त्ता)–तिलकायत—

इस वार्त्ता में श्रीगिरधरजी का अपनी बैठक में गद्दी तकियों पर विराजना लिखा है। जिसका अर्थ है कि उस समय गद्दी पर तिलकायत रूप से थे। श्रीगिरधर का समय संवत् १६६२–१७१६ तक है और कांकरौली के इतिहास के अनुसार इनकी तिलकायत का समय संवत् १६७० है। अतः राघोदास का समय भी इसी के आसपास होना चाहिए।

गोकुल में मुसलमानों का न रहना—

वार्त्ता संख्या उन्नचास में यह उल्लेख है कि गोकुल में किसी मुसलमान को रहने की अकबर बादशाह की आज्ञा न थी। इस में यदि कोई तथ्य है तो फिर यह बात संवत् १५६१ के पश्चात् की ही होगी क्योंकि संवत् १५६१ के शाही फरमान द्वारा ही गोकुल माफी रूप से श्री गुसांईजी को मिला था।[१]

१. गोकुल में अभी २०-२५ वर्ष पूर्व तक न कोई मुसलमान रहता था, न कोई भंगी रात्रि को। (सपादक)

लाडबाई धारबाई वार्त्ता—

इसमें साठ वर्ष पीछे औरंगजेब बादशाह की जुलमी नीति लिखी है। इससे सन् १६६९ में से ६० निकालने सन् १६६० में लाड़बाई धारबाई का वर्तमान रहना निश्चत होता है अर्थात् धन भेंट करने की घटना संवत् १७१७ की है इससे पूर्व की नहीं। वार्त्ता में जिस प्रकार इसका उल्लेख है उससे उस समय इनके वर्तमान रहने की आवश्यकता नहीं है। यह तो केवल धन देने का उल्लेखमात्र है तथा उसके अपरिग्रह का उदाहरण है।

राजकीय राज्यमार्ग जिनका विविध वार्त्ताओं में उल्लेख है

(१) अकबर कालीन राज्य मार्ग—(१) सूरत से आगरा (बुरहानपुर होकर) सूरत, बुरहानपुर, ग्वालियर, धोलपुर, आगरा।

(२) दूसरा मार्ग सूरत से आगरा (अहमदाबाद होकर)—

सूरत, बरोच, बरौदा, अहमदाबाद, रोहा, बागरा, मेरता, अजमेर, बन्दरसींदरी, बयाना, फतेहपुर सीकरी, आगरा।

(३) आगरा से बंगाल (बनारस और पटना होकर)—

आगरा, इटावा, इलाहाबाद, बनारस, मुगलसराय, पटना, बंगाल।

(४) आगरा से अवध (अयोध्या-फैजाबाद)।

आगरा, कन्नौज, लखनऊ, अयोध्या, फैजाबाद जौनपुर, इलाहाबाद, (यहाँ से आगरा बंगाल मार्ग पर मिल जाते हैं) इटावा-आगरा।

(५) बंगाल से लाहौर और लाहौर से पेशावर इस मार्ग को शेरशाह ने बनवाया था, उसने मार्ग के सहारे पेड़ व ठहरने के लिये स्थान भी बनवाये। यह मार्ग आज ग्रांड ट्रंक रोड के नाम से विख्यात है।

(६) आगरा से अजमेर—

मन्धाकर (सिकन्दरा), फतेहपुर, खनवाजूना, करशा, बसावर, टोडा, कालावाली, खरादी, दीसा, हन्सामहल, सौगानीर, नेऊता भाक, (इन्मज़ाबाद के पास) सकून-काज़्विज, अजमेर, (दरगाह)।

(७) काश्मीर का मार्ग—

लाहौर, शहादरा, अमीनावाल, तलवन्दी, गुनाकोर, डिकरी, जयपुर खेरी (भीममेर दर्रा के पास) राजोरी, पीर पंजाल, लाहा, थाना (रतन पंजाल के चरणों में) बेहराम गाला, पुशियाना, हीरापुर, फुश, खानपुर, श्रीनगर (काश्मीर की राजधानी)।

(८) दक्षिणी मार्ग—

आगरा, गोलकुंडा (बुरहानपुर और दौलताबाद होकर)—सूरत (गोआ और बीजापुर होकर) मसौली पट्टम।

(२) जहांगीर कालीन राज्य मार्ग—

(१) आगरा, रुनकता, बेडेगसरी, (जमालपुर), अकबरपुर, होडल, पलवल, फरीदाबाद, देहली, पानीपत, करनाल, थानेश्वर, शाहबाद, अम्बाला, सिरहिंद, फिलौरकीसराय, राहतास, रावलपिन्डी, हस्नाअब्दाल, अटक, पेशावर, अलीमस्जिद, डाका, अलीबोगन,

जलालाबाद, बुद्धाचारबाग, निमला, सुरखाव, डोबा केमरी (विक्रमी), काबुल, टालीखान और काबुल से काशगर तक ।

(२) लाहौर से काश्मीर–लाहौर, गुजरात, भीमबार, पिकली, कनौवा, काश्मीर ।

(३) सूरत से अजमेर और सूरत को वापिस बड़ौदा होकर–सूरत, बियारत, बागलां, नरमपुर, नानदरबार, टोलनेरे, चोपरे, ब्रामपुर (बुरशनपुर), बुरगांव, मानुडू, चित्तौर, अजमेर, रामसर, टोडा, रणथम्बोर, सुल्तानपुर, उज्जैन, हासिनपुर, धार, दोहद, बालिसनौर, अहमदाबाद, नडियाद, बड़ौदा, बरोच, सूरत ।

(३) शाहजहां कालीन राज्य मार्ग ।

(१) सूरत, बारडोली, नवापुर, नौनपुर, पटना, देऊगांव, दौलताबाद, औरंगाबाद, नांनडेर, सन्तपुर, सतनगर, गोलकुन्डा ।

(२) कलकत्ता, सूकसागर, बेरहमपुर (बंगाल में), मुरशिदाबाद, राजमहल, मौनघर, पटना, मुजफ्फरपुर, चापर, बक्सर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, फर्रुकाबाद, रामपुर, मुरादाबाद, अमरोहा, नजीबाबाद, लालडोंग, बल्लासपुर, नूरपुर, जम्बू, काश्मीर ।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य मार्ग नहीं थे। पर इनका प्रयोग सबसे अधिक होता था और इन पर सुरक्षा की व्यवस्था सबसे अधिक थी ।

वार्ता के वृक्षों की सूची और केवल बृज में पाये जाने वाले वृक्षों का विवरण

(१) अगस्त (२) आम (३) अमलतास (४) अशोक (५) अकोल (६) अरनी (७) अरूआ (८) इमली (९) इन्द्रजौ (१०) इंगर (११) कैथ (१२) कचनार (१३) करील (१४) कदम्ब (१५) कटैया (१६) कटेरी (१७) खजूर (१८) खिरनी (१९) खंधार (२०) गोंदी (२१) गूलर (२२) गांगर (२३) छोंकर (२४) जामुन (२५) झाऊ (२६) नीम (२७) नीम चमेली (२८) नौसात (२९) ढांक (३०) धौ (३१) पीपल (३२) पापड़ी (३३) पारस पीपल (३४) पसेइ (३५) पोली (३६) पीलूखान (३७) फरास (३८) बायविरंग (३९) बबूल (४०) बहेरा (४१) बरायन (४२) बड़ (४३) बरना (४४) बेल (४५) बेर (४६) मौलश्री (४७) महुआ (४८) रेमजा (४९) रीठा (५०) सहजना (५१) सहोर (५२) सहतूत (५३) सेयल (५४) सिरस (५५) हिंगौट (५६) हींस ।

अकोल—पीले फूल का छोटा सा वृक्ष । संस्कृत अंकोल ।

अरनी—एक लता जिसके फूल की सुगंध मीठी होती है और फूल नुकीला होता है ।

अरूआ—लम्बी पत्ती का झाड़ ।

इन्द्रजौ—चरन पहाड़ी का एक विशेष वृक्ष है ।

इंगर—पीलू का दूसरा नाम है ।

करील–ब्रज की कांटेदार झाड़ी जिसके आपसे आप कुंज या झुरमुट आपसे आप बन जाते हैं और जो गर्मी में फूलती है । और जिसमें अत्यन्त कडुआ फल लगता है और सुन्दर लाल फूल लगता है ।

कदम्ब—ब्रज का पुष्प, बड़ा पेड़ और गेंद के से फूल ।

कटैया—बड़ा पेड़ कांटेदार फूल सफेद ।

कटेरी—पीले फूल का जंगली झाड़ ।

खंदार—पीलू जैसा वृक्ष पर देखने में अधिक सुन्दर और झाड़ न होकर वृक्ष के रूप में बढ़ने वाला ।

गोंदी—चिपकदार फल का झाड़ ।

गांगर—बरसाने में बहुतायत से मिलने वाला एक झाड़ ।

छोंकर—(शंकर) यह वृक्ष कभी-कभी बहुत बड़ा हो जाता है। दशहरे में इसकी पूजा होती है । इसके फल को सेंगरी कहते हैं । यह ब्रज का विशेष वृक्ष है ।

नीम चमेली—नीम की पत्ती का सा पेड़ जिसमें फूल के लगते हैं ।

नौसात—लाल रंग के फूल का पतझड़ के समय फूलने वाला वृक्ष ।

धौं—संस्कृत (धव)—यह जलाने के काम में आता है ।

सिरस—इसकी पत्ती शीशम की सों होती है। अप्रैल में सुहावनी सुगंध वाला कोमल फूल खिलता है जो हाथ में लेते ही मुरझा जाता है ।

हिंगोट—छोटा सा झाड़, जिसमें कड़े फूल लगते हैं। इसकी जड़े जमीन पर फैली रहती हैं ।

हींस—अत्यन्त पुष्ट कांटेदार लता ।

षट्ऋतु वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक तत्व और उनकी आलोचना

षट्ऋतु वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक तत्व और उनकी आलोचना

(१) रामदास भीतरिया का नाम और निवास स्थान ।
(२) वल्लभाचार्य जी से पूर्व गिरिराज पर श्रीनाथ जी के मंदिर की स्थिति ।
(३) छत्तीस राग-रागनियों के नाम ।
(४) छत्तीस बाजों के नाम ।
(५) वल्लभाचार्य जी का जीवन वृत्त ।
(६) संवत् १६२३ में श्री विट्ठलनाथ जी का परदेश यात्रा पर जाना ।
(७) दो महीना सात दिन श्रीनाथजी का सतघरे में रहना ।
(८) श्री गुसांई जी के छः बालकों का जन्म स्थान अडैल था ।
(९) सातवें बालक घनश्याम जी का जन्म संवत् १६२८ में गोकुल में हुआ था ।
(१०) संवत् १६२७ में गोकुल में हवेली बनवाई और नवनीतप्रियजी का मंदिर विट्ठलनाथ जी ने बनवाया जिसकी नीव यादवेन्द्रदास कुम्हार ने खोदी थी ।
(११) गोपालपुर के सात मंदिर ।
(१२) ठाकुरों के नाम और अष्ट सखाओं की कीर्तन की सेवा ।

आलोचना

(१) इसमें से यादवेन्द्रदास, चतुर्भुजदास, अष्टछाप के कवि तथा इनके ठाकुर थे सब ऐतिहासिक तथ्य है । इसका विरोध कहीं से नहीं मिलता है और सम्प्रदाय के अन्य साहित्य तथा कीर्तन के पदों से इन नामों की पुष्टि होती है, अतः यह असंदिग्ध है ।

(२) दूसरे संवत् १६२७ में गोकुल के मंदिर की भी पुष्टि सम्प्रदाय में प्राप्त अन्य इतिवृत्त से होती है । अडैल से श्री विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से संवत् १६२८ में ही ब्रज आए हैं और तभी श्री घनश्यामजी का जन्म हुआ है । इस वर्ष हवेली का बनना भी न्याय संगत ही है ।

(३) यादवेन्द्रदास कुम्हार के मंदिर की नीव खोदने का प्रसंग चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या तीस भावप्रकाश की पच्चीसवीं वार्त्ता में है । इसमें लिखा है कि उस दिन फागुन वदी सप्तमी थी इसने ही रूद्र कुण्ड के पास एक कुंआ खोदा था और सोरों से गंगाजल लाकर उसका जल मीठा किया था ।

(४) गोपालपुर में सात मंदिर बनने की घटना संवत् १६३८ के लगभग की है क्योंकि इसके पश्चात् आपने सात स्वरूपों का इकट्ठा अन्नकूट किया है और दोलोत्सव किया है ।

(५) ठाकुरजी के नामों और अष्टछाप के नामों की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है ।

प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। इन स्वरूपों के आज भी यही नाम प्रचलित हैं।

श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक वृत्त की आलोचना

(१) सम्वत् १४६६ श्रावण वदी तृतीया आदित्यवार श्रवण नक्षत्र सूर्योदय काल में ऊर्ध्व भुजा का प्राकट्य।

(२) आन्योर के ब्रजवासी को दर्शन, मिती श्रावण सुदी नागपंचमी संवत् १४६६ के दिन।

(३) संवत् १५३५ पर्यन्त ब्रज में भुजा की पूजा।

(४) संवत् १५३५ वैशाख वदी ग्यारस वृहस्पतिवार (पाठांतर) रविवार के दिन शतभिषा नक्षत्र, मध्यान्ह काल, अभिजित नक्षत्र में श्री गोवर्द्धननाथजी के मुखारविन्द का प्राकट्य।

(५) संवत् १५४६ तक दूध दही आरोगे।

(६) संवत् १५४६ फाल्गुन सुदी ११ वृहस्पतिवार को श्री आचार्य महाप्रभु जी का झारखन्ड में जाना।

(७) मथुरा में आचार्य जी द्वारा यंत्र बाधा दूर करना। कृष्णदास वासुदेवदास को दिल्ली भेजना और सिकन्दर लोदी के कान तक उसके सेवक रुस्तमअली की करतूत पहुँचाना।

(८) संवत् १५५२ श्रावण सुदी १३ बुधवार को चतुरानागा को टोड के घने में दर्शन देकर श्रीनाथजी फिर गिरिराज पधारे।

नोटः—यह ध्यान रखना चाहिए कि संम्वत् १५४६ और सम्वत् १५५२ के बीच मथुरा के आसपास की परिस्थिति सुरक्षित नहीं रही होगी। तभी श्रीनाथजी को टोड के घने में छिपना पड़ा।

(९) संवत् १५५६ में चैत सुदी द्वितीया को अम्बाले के पूर्णमल को मंदिर बनवाने का स्वप्न।

(१०) पूर्णमल का गिरिराज आना और श्री महाप्रभुजी से मिलकर मंदिर बनवाने की इच्छा प्रगट करना तथा स्वीकृति प्राप्त करना।

(११) हीरामणि उस्ता को मंदिर बनवाने का स्वप्न।

(१२) संवत् १५५६ बैशाख सुदी तृतीया आदित्यवार को रोहिणी नक्षत्र में नवीन मंदिर की नींव पड़ना। एक लाख कुछ हजार रुपया मंदिर में लग गया और वह पूरा न हुआ और रुपया चुक गया। फिर बीस वर्ष बाद संवत् १५७६ में मंदिर पूरा कराया गया।

(१३) रामदास चौहान राजपूत ने सेवा की।

(१४) संवत् १५७६ बैशाख शुदी तृतीया अक्षय तृतीया के दिन नए मंदिर में पाटोत्सव तथा माधवेन्द्रपुरी मुखिया, कृष्णदास अधिकारी, कुंभनदास को कीर्तन की सेवा सौंपी।

(१५) संवत् १५७६ से लेकर चौदह वर्ष १५९० तक बंगालियों ने सेवा की।

(१६) संवत् १५८७ में आषाढ़ सुदी द्वितीया उपरान्त तृतीया के दिन मध्याह्न समय श्री आचार्यजी महाप्रभु काशी में हनूमान घाट पर स्वधाम पधारे।

(१७) संवत् १५८७ में श्री गोपीनाथजी का तिलकायत होना। लाखों रुपये के पात्र और आभूषण श्रीनाथजी की भेंट।

(१८) गोपीनाथजी के पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी का तिरोधान।

(१९) श्री गुसांईजी विट्ठलनाथ का तिलकायत, बंगालियों को सेवा से निकालना और गुजराती ब्राह्मणों की नियुक्ति।

(२०) माधवेन्द्रपुरी का दक्षिण चंदन के लिये जाना और वहाँ ही हिमगोपाल की सेवा के लिए श्रीनाथजी की आज्ञा से ठहर जाना।

(२१) माधवेन्द्रपुरी का महाप्रभु का गुरू होना।

(२२) श्याम पखावजी और ललिता बीन वाली गांठौली का उल्लेख।

(२३) गुलाल कुण्ड के मार्ग में गायों का खिड़क श्री विट्ठलनाथजी द्वारा निर्मित तथा चार ग्वालों की नियुक्ति–कृष्णदास, गोपीनाथदास, गोपाल और गंगा ग्वाल।

(२४) हरजी ग्वाल, शोभा गूजरी (बरौली की), लच्छो गूजरी (पैंठ्यों की)।

(२५) संवत् १६२३ फागुन वदी ७ गुरुवार के दिन सतधरा में श्रीजी को पाट बैठाया और गिरधरजी का सब कुछ भेंट करना। नृसिंह चतुर्दशी के दिन फिर गिरिराज आना उसी समय पूर्णिमा के दिन गुसांईजी गुजरात से लौटे थे।

(२६) रूपमंजरी ग्वालियर की बेटी का नंददास का साथ और श्रीनाथजी का उसके साथ चौपड़ खेलना तथा वीन सुनना तथा रूपमंजरी ग्रन्थ का उल्लेख।

(२७) अकबर की बीबी ताज का उल्लेख और गिरिराज पर उसकी मृत्यु तथा वृन्दावनदास जवेरी की बेटी का उससे मेल।

(२८) शतरंज का मंदिर में प्रवेश।

(२९) दिल्ली बादशाह के लौट जाने का उल्लेख।

(३०) अटारी ढाइवे की आज्ञा, मोहना भंगी द्वारा।

(३१) गिरधरजी का तिरोधान-माला प्रसंग के समय।

(३२) दामोदरजी की तिलकायत।

(३३) कटार बांधने का शृङ्गार दामोदरजी द्वारा।

(३४) विट्ठलरायजी द्वारा पातशाह की शरण लेना और झगड़ा शांत होना-टिपारे का शृंगार।

(३५) गिरधरजी का लाहौर पधारना। वहाँ से बारह दिन में डोल उत्सव के समय गिरिराज आना।

(३६) गोकुलनाथजी का वसंतोत्सव चैत वदी ११ को काश्मीर से लौटने के पश्चात्।

(३७) गुसांईजी का मेवाड़ होकर द्वारका जाना अजबकुंवरिबाई और मीरा भेंट अजबकुंवरि का सेवक होना।

(३८) आगरे के यवन द्वारा मंदिर ध्वंस होना और मसजिद बनाना तथा इसका साम्प्रदायिक वर्णन।

(३९) गिरधरजी ने देशाधिपति के परवाने पर हस्ताक्षर न किए और नयी गोविन्द घाटी बनाई तथा इन्हें गोरवा क्षत्रियों ने वरछी और ब्राह्मणों ने भालों से मार डाला।

(४०) गिरधरजी ने गोविन्दजी से कहा कि त्रयोदशी के दिन श्रीनाथजी गिरराज छोड़ना चाहते हैं। यहाँ से आगरा जायेंगे और गंगाबाई को साथ ले चलना। व्रजवासियों के गाली देने से रथ चलेगा।

(४१) मिती आसोज सुदी १५ शुक्रवार संवत् १७२६ के पिछली पहर रात्रि को रथ गिरराज से आगरे के लिए चला और बूढ़े बाबू महादेव आगे-आगे मशाल लेकर चले।

(४२) दो जलधरियों का अद्‌भुत पराक्रम तथा उसका साम्प्रदायिक भाषा में वर्णन और मंदिर विध्वंस।

(४३) अट्‌ठारहवीं बार यवन सेना का गिरिराज आना, मसजिद बनना।

(४४) आगरे में अन्नकूट के पश्चात् दंडौती धार को जाना, वहां से कृष्णपुर।

(४५) हलकारों द्वारा साम्प्रदायिक वर्णन जो झूंठ है।

(४६) व्रजरायजी की सत्ताईस दिन सेवा फिर गोविन्दजी की सेवा तथा व्रजराज को निकालना-बादशाह का उल्लेख।

(४७) संवत् १७२६ आश्विन सुदी १५ (पूर्णमासी) को शुक्रवार अश्विनी नक्षत्र श्रीनाथजी गिरिराज से उठे और संवत् १७२८ फाल्गुन वदी ७ शनिवार स्वांति नक्षत्र में सिहाड पहुँचे।

(४८) दंडौतीधार से श्रीनाथजी कोटा बूंदी पधारे, तहाँ अनिरुद्धसिंह हांडा बूंदी के राजा हते। वहाँ कृष्णविलास और पट्टशिला में चार महीने रहे।

(४९) कोटा से पुष्कर जी होकर जोधपुर पधारे।

(५०) पुष्कर जी से जोधपुर जाते समय किशनगढ़ में ठहरे, जहां रूपसिंह के बेटे मानसिंह ने वसंत ऋतु में वहीं ठहराया।

(५१) जोधपुर से पहले वीसलपुर गांव में एक वैरागी को दर्शन।

(५२) जोधपुर में राजा जसवंतसिंह जिसकी ननसाल कमायूं में थी।

(५३) जोधपुर से चांपासेनी—(चोखा गांव) में।

(५४) (१) एक चतुर्मास दंडौती धार के कृष्णपुर में।

(२) एक चतुर्मास दंडौती धार कोटा कृष्ण विलास में।

(३) एक चतुर्मास दंडौती धार चांपासेनी।

(४) एक चतुर्मास दंडौती धार मेवाड़।

(५५) दो वर्ष चार महीना सात दिन श्रीनाथ जी रथ में विराजे।

(५६) हिन्दू मुलतान दंडौत धार, बूंदी कोटा, ढूंडार तथा मारवाड़। बांस वाड़ा, डूंगरपुर तथा शाहपुरा में होकर निकले।

(५७) उदयपुर के राजा राजसिंह से श्री गोविन्दजी की भेंट तथा श्रीनाथ जी के मेवाड़ पधारने की स्वीकृति।

नोट—यहाँ भी प्रसंग को श्री गुसांईजी का वरदान कहकर अलौकिक रूप दिया है।

(५८) रास्ते में एक गांव में अजबकुँवरि बाई के स्थान पर मंदिर बना ।

(५९) यह मंदिर गोपालदास उस्तां ने बनवाया था ।

(६०) बादशाह का राजसागर पर डेरा करना और राना का नाहर मगरे पर ४०,००० फौज लेकर आना तथा श्रीनाथ जी का बटरा गांव में पधारना ।

(६१) नीले कमल संसार में नहीं होते, ऐसे लिखा है ।

(६२) रायसागर से बादशाह की फौज खैमनौर गयी। वहां से उदयपुर तथा श्रीनाथजी बाटरा से सिहाड़ ।

नोटः—(१) यहाँ लिखा है कि मंदिर से भौंरे निकले जिन्होंने फौज को काटना आरम्भ किया इससे बारह लाख फौज भाग गई ।

(२) दूसरी एक रंगी चंगी बेगम रास्ता भूल गई थी । उसको राणा ने बादशाह के डेरे तक पहुँचा दिया था । इस पर बादशाह और राना का मिलाप लिखा है ।

(६३) हरिरायजी खेमनौर रहते थे ।

(६४) सूरजपोर के निर्माण का उल्लेख ।

(६५) माधवदास देसाई मांगरौल का सम्वत् १७४२ के दो चैत की साल श्रीनाथ जी द्वार आया और उसने आभूषण भेंट किये।

तिथियों की परीक्षा

आलोचना—

(१) प्रथम तिथि सम्वत् १४६६ श्रावण वदी तृतीया आदित्यवार । श्रीनाथ जी के प्राकट्य की यह तिथि सम्प्रदाय में मान्य है । परन्तु डा० पिल्ले के इंडियन इफीमेरिस के अनुसार उस दिन सोमवार पड़ता है, रविवार नहीं । अतः जहाँ तक दिन का सम्बन्ध है वह इस गणना के अनुसार ठीक नहीं है ।

(२) दूसरी तिथि नागपंचमी सम्वत् १४६६ है । इसमें वार नहीं लिखा है । इसलिये इसकी परीक्षा नहीं हो सकती है ।

(३) तीसरी तिथि सम्वत् १५३५ है। इसमें भी तिथि या वार कुछ नहीं दिया है ।

(४) चौथी तिथि सम्वत् १५३५ वैशाख वदी ११ वृहस्पतिवार या रविवार में मुखार विन्द का प्राकट्य लिखा है । यही सम्वत् और वार श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य की तिथि है । इस दिन पिल्ले की गणना के अनुसार मंगलवार पड़ता है, गुरुवार या रविवार नहीं । सम्प्रदाय में अन्य स्थानों पर इस दिन शनिवार की मान्यता है । इस तिथि का वार ठीक नहीं है ज्योतिष्याचार्य चक्रधर जी बद्रिकाश्रम के तीर्थ पुरोहित ने वल्लभीय सुधा वर्ष ५ अंक ३-४ संवत् २०१०-११ में आचार्यजी की दो जन्म कुंडलियां प्रदर्शित की हैं जिनमें उन्होंने सम्वत् १५३५ वैशाख कृष्ण १० को रविवार बताया है । रविवार को दसमी उपरांत एकादशी आती है । शुद्ध एकादशी सोमवार की थी ।

(५) पांचवी तिथि संवत् १५४९ है । जब तक श्रीनाथजी की केवल दूध की ही सेवा होती थी । इसमें भी वार नहीं है ।

(६) छठी तिथि भी संवत् १५४६ ही है, पर इस तिथि के साथ मिती और वार सब दिया हुआ है। पिल्ले की पुस्तक के अनुसार गणना करने पर यह तिथि और वार सब शुद्ध ठहरते हैं। इस दिन बृहस्पतिवार पड़ता है।

(७) इन तिथियों के पश्चात् एक ऐतिहासिक वृत्त और लिखा गया है जिसमें ऐसे यंत्र का उल्लेख है कि जिसके द्वारा मथुरा में प्रत्येक हिन्दू मुसलमान हो जाता था और प्रत्येक हिन्दू को विश्रान्त घाट पर स्नान करने में कठिनाई थी। इस वार्त्ता के लेखक ने लिखा है कि श्रीमहाप्रभु जी ने अपने दो सेवकों को दिल्ली भेज कर यह बाधा दूर करवा दी थी।

समस्त वर्णन में लेखक का ध्येय श्रीमहाप्रभु जी की अलौकिक शक्ति पर केन्द्रित है। और इस धुन में उसने इस घटना के वृत्त को भी उसी ढंग से लिखा है। ध्यान से इस वृत्त को पढ़ने से यह पता चलता है कि यह घटना पुष्टिमार्ग के इतिहास में और श्री महाप्रभुजी के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना है। दूसरा इसका महत्व इसलिये और बढ़ जाता है कि ऐसी घटना उस समय घटी जब ब्रज प्रदेश के अध्याय में श्रीनाथ जी को पास बैठाकर श्रीमहाप्रभु जी शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के इतिहास में एक नये अध्याय की रचना करने जा रहे थे। इस पुस्तक में इस घटना का उल्लेख मात्र है। इसका सम्वत् और वार तिथि कुछ नहीं दी है। इस वृत्त में लिखा है कि जब श्रीमहाप्रभु जी यमुना स्नान करने गये तो उनको विश्रान्त पर इस उपद्रव की सूचना मथुरा के चौबों ने दी और यह भी कहा कि कुछ दिन पूर्व यहाँ सिकन्दर लोदी का रुस्तमअली नाम का हाकिम आया था और हम लोगों ने उसका उपहास किया। इस पर उसने चिढ़ कर यह यंत्र बाधा यहाँ पिछले पांच दिन से खड़ी करदी है और दो दिन से तो यमुना स्नान करने वालों को बड़ा कष्ट है।

इस वृतान्त में यह बात सच लगती है कि मथुरा के चौबों ने रुस्तमअली से अच्छी भीख जिसे वे भेंट कहते हैं, न मिलने पर उसका उपहास किया हो और वह चिढ़ गया हो। क्योंकि, मथुरा के घाट पर दान लेने वाले चौबे लोग दान न मिलने पर यात्री के साथ आज भी अत्यन्त अनुचित और अपमान जनक व्यवहार करते हैं और अपनी प्यारी ब्रज की बोली में मां, बहन की गाली सहज में दे देते हैं। इन लोगों को रुस्तमअली से शाही कर्मचारी होने के नाते पुष्कल भेंट की झूंठी आशा बंध गयी होगी और इन्होंने निराश और विमुख होने पर उसे खरी-खोटी सुनाई होगी, तथा उसकी हंसी उड़ाई होगी। पीछे से अपने-अपने अपमान का बदला लेने के लिये उसने दिल्ली से कोई ऐसी बड़ी कैंची या कतरनी बनवा कर भेज दी होगी जिसे टांग देकर रस्सी खींच कर चलाने से खड़ी चोटी वालों की चोटी का कुछ भाग कट जाता होगा। हिन्दू के लिये शिखा का बहुत महत्व है और शिखा सूत्र दोनों में हस्तक्षेप करने वाली उनके धर्म का अपमान करने वाला है। पर इस वार्त्ता का यह उल्लेख है कि उस यंत्र के जिसके दाढ़ी नहीं होती थी उसके चोटी काट कर दाढ़ी हो जाती थी, विश्वास के योग्य नहीं है। यह भले ही हो कि एक आध लम्बी चोटी वाले की चोटी काट कर रुस्तम अली के आदमियों ने उसे रस्सी से दाढ़ी के रूप में किसी की ठोड़ी के नीचे बांध दिया हो।

इस वर्णन में आगे लिखा है कि श्री महाप्रभुजी ने स्वयं इस यंत्र और आज्ञा की अवज्ञा की और दूसरों को जो यमुना स्नान करना चाहते थे, उनकी अवज्ञा के लिये प्रोत्साहित किया।

जिन लोगों ने इस प्रकार श्री महाप्रभुजी की प्रेरणा पर अपने अधिकारों के लिये अवज्ञा की थी, उनको कुछ भी यंत्र बाधा नहीं हुई। पर, फिर विधिवत यंत्र बाधा होने लगी और चौबे लोगों ने श्री महाप्रभुजी से उसके दूर करने का उपाय करने को कहा। पहले लिखा जा चुका है कि वार्त्ताकार का एक मात्र दृष्टिकोण इस घटना को प्रधानता देना उतना नहीं है जितना कि महाप्रभुजी की अलौकिक शक्ति को। इसके लिये उनके अदम्य साहस और इस मानवीय अधिकारों के विरोध पर प्रकाश न डाल कर वह उनके व्यक्तित्व के अलौकिक रूप को प्रधानता देना चाहता है। यदि यह घटना सत्य है तो महाप्रभुजी ने उस समय बड़े जीवट से काम लिया और उनका यह कार्य मानव अधिकारों की रक्षा के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। पर वार्त्ताकार का इस ओर ध्यान नहीं है। वह तो उनके अपूर्व व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालना चाहता है और एक चमत्कार से भरे यंत्र के स्थान पर दूसरे चमत्कार पूर्ण यंत्र के अविष्कार का श्रेय श्री महाप्रभुजी को देना चाहता है, जिससे दाढ़ी की चोटी हो जाती थी। मेरे विचार में यह घटना जिस रूप में लिखी गयी है सर्वथा अशुद्ध है और श्री महाप्रभुजी के व्यक्तित्व को, जिसे इसकी आवश्यकता नहीं है, चमत्कारी का रूप देना चाहती है। तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार सिकन्दर लोदी का शासन अत्यन्त हिन्दू विरोधी था और उसने मथुरा के मंदिरों को तोड़ कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवा दी थीं और यमुना स्नान करने पर पाबन्दी लगा दी थी तथा नाइयों को यह आज्ञा दे रक्खी थी कि वे हिन्दुओं की हजामत न बनावें।[1]

सिकन्दर लोदी का शासनकाल सम्वत् १५४६ से १५७२ तक है और यही श्री महाप्रभुजी के उत्कर्ष का भी समय है। सम्वत् १५४६ में जब उनको झारखंड में श्रीनाथजी के दर्शन की आज्ञा हुई थी, उस समय सिकन्दर के शासन का तीसरा वर्ष था और जब संवत् १५५६ में मंदिर की नीव पड़ी, तब सिकन्दर के शासन का दसवां वर्ष था और वह अपनी नीति के उत्कर्ष पर था। जब संवत् १५७६ में नये मंदिर का उत्सव हुआ, उस समय सिकन्दर की मृत्यु हो चुकी थी और इब्राहीम लोदी उत्तर भारत का शासक था और इसके समय सिकन्दर की अपेक्षा अधिक शांति थी। प्रोफेसर एस० ए० हलीम, अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने प्रयाग में सन् १९३८ में हुई भारतीय इतिहास कांग्रेस में एक लेख पढ़ा था जिसका शीर्षक था 'सुल्तान सिकन्दर लोदी का चरित्र'[2] जो उस कांग्रेस के उस वर्ष के विवरण में प्रकाशित हो चुका है। उसमें उन्होंने लिखा है कि मथुरा के घाटों पर सिकन्दर के शासन में राज्य की ओर से कर्मचारी नियुक्त थे जो जमुना में स्नान नहीं करने देते थे और बाल नहीं बनवाने देते थे। प्रोफेसर हलीम ने इसका उल्लेख 'तबकातेअकबरी' की अलीगढ़ विश्वविद्यालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया है। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद और डाक्टर हलीम तथा आशीर्वादीलाल के आधार पर यह तो सिद्ध हो गया है कि संवत् १५४९ के आस-पास मथुरा में हिन्दुओं को यमुना में स्नान करने की स्वतंत्रता प्राप्त न थी। 'तारीखे दाउदी' में भी इसी प्रकार का उल्लेख है। ऐसा लगता है कि इस ऐतिहासिक तथ्य का आधार लेकर श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता के लेखक ने इस आपत्ति को दूर करने के लिये आचार्य महाप्रभुजी के द्वारा किये गये प्रयत्न का उल्लेख किया है। परन्तु आचार्य

१ डाक्टर ईश्वरीप्रसाद, मिडील इंडिया।
२ एस० ए० हलीम।

महाप्रभुजी को इसमें कितनी सफलता प्राप्त हुई थी इसका भारत के राजनीतिक इतिहास लेखकों ने कोई उल्लेख नहीं किया है। इतिहास से यह सिद्ध है कि सम्वत् १६२० में जब बादशाह अकबर मथुरा पधारे थे तब यमुना में स्नान करने वालों से एक कर लिया जाता था जो सेना के सिपाहियों के उस समय के वेतन का आधा भाग होता था। अकबर ने इसे अमानुषिक समझ कर सदा के लिये बन्द कर दिया था। अब श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता के इस कथन को अप्रामाणिक और साम्प्रदायिक ही मानना पड़ेगा कि मथुरा के यंत्र के प्रतिकार के लिये श्री महाप्रभुजी ने दिल्ली में दूसरा यंत्र खड़ा कर दिया। सिकन्दर जैसा कठोर, निर्दयी, कट्टर और हिन्दू धर्म विरोधी शासक इसे कभी सहन नहीं कर सकता था।

इसमें तथ्य की बात यह लगती है कि सम्भव है कि श्री महाप्रभुजी के प्रभाव से उसने कर देने वालों को यमुना में स्नान करने की आज्ञा दे दी हो, जिसकी इससे पहले आज्ञा न होगी। यहाँ यह स्वीकार करना आवश्यक है कि सिकन्दर लोदी के अत्याचार पूर्ण शासनकाल में श्री महाप्रभुजी ने हिन्दुओं के अधिकार की जो रक्षा की और श्रीनाथजी की स्थापना की थी। वह उस समय की परिस्थिति के विचार से अत्यन्त साहस पूर्ण और महत्वपूर्ण कार्य था जिसके करने के लिये एक दृढ़ निश्चय और प्रतिभा पूर्ण असाधारण व्यक्तित्व की आवश्यकता थी। वार्त्ताकार ने अपने धार्मिक विश्वास के कारण इस घटना को अत्यन्त असाधारण रूप देने की चेष्टा की है और उसके ऐतिहासिक आधार की सर्वथा अवहेलना करदी है। वार्त्ताकार का यह लिखना है कि 'किसी के मजहब पर निगाह मत करना' सर्वथा इतिहास के विरुद्ध है। वार्त्ता का सारा वर्णन वल्लभाचार्य के महत्व को प्रदर्शित करने के लिये बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। इस दशा में इसके वर्णन अप्रामाणिक ठहराये जायेंगे।

श्री आचार्यजी की निज वार्त्ता में दिल्ली जाने वालों में केशव भट्ट का नाम मिलता है। भक्तमाल में इस घटना का उल्लेख केशव भट्ट काश्मीरी केसाथ प्रस्थान है। विश्रान्त विजय के चिह्न के लिये केशव भट्ट काश्मीरी ने अपना एक मन्दिर और महाप्रभु ने बैठक स्थापित की थी वे आज भी हैं।

(८) संवत् १५५२ में श्रावण सुदी १३ बुधवार को चतुरानागा को श्रीनाथजी का दर्शन देना है। चतुरानागा का स्थान टोंड का घना था। गणना के अनुसार इस मिती को बुधवार के स्थान पर सोमवार पड़ता है। इसलिये इस तिथि में वार की भूल है।

श्रीनाथ जी के संवत् १५५२ में टोंड के घने में जाने से यह प्रतीत होता है कि उन दिनों मथुरा में अशान्ति थी और सिकन्दर लोदी के हाकिम उस प्रदेश में मन्दिरों को नष्ट कर रहे थे।

इतिहास के अनुसार उन दिनों मथुरा में आगरे के हाकिम का ही अधिकार था और सिकन्दर ने आगरे को अपनी राजधानी बनाया था।

(९) संवत् १५५६ चैत्र सुदी २ को पूर्णमल क्षत्री अम्बाले वाले को मन्दिर बनवाने का स्वप्न हुआ और एक महीने के भीतर उसने उसका नक्शा बनवा लिया और अम्बाले से आकर वैशाख सुदी ३ आदित्यवार को मन्दिर की नीव डलवाई। जिन की गणना के अनुसार उस दिन शनिवार पड़ता है और अंग्रेजी सन् १४९९ की १४ अप्रैल पड़ती है। इस तिथि में भी एक दिन का अन्तर है।

इसलिए यह नहीं पता चलता है कि ऐसी तिथियों में वारों की भूल क्यों है ।

(१०) इससे यह पता चलता है कि एक लाख से ऊपर रुपया लगने पर भी वह मंदिर पूरा न हुआ और फिर बीस वर्ष बाद और रुपया लगने पर पूरा हुआ । श्री गिरिराज पर जिस मंदिर के भग्नावशेष अब पड़े हैं, उनको देखकर यह कुछ अधिक ही लगता है । पर इसको असत्य कहने का कोई प्रमाण नहीं है । अवश्य ही यह मंदिर बहुत बड़ा और ऊँचा रहा होगा । सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि यह मंदिर दो मील दूर तक गिरिराज जी के भीतर-भीतर बनवाया गया था जिसके अवशेष आज भी बने हुए हैं ।

(११) संवत् १५७६ में वैशाख सुदी ३ अक्षय तृतीया के दिन इब्राहीम लोदी के शासनकाल में श्रीनाथजी की स्थापना इस नये मंदिर में हुई अर्थात् संवत् १५७६ में श्री महाप्रभुजी भी व्रज में विराजमान थे । इब्राहीम उस समय अपने आधीन जौनपुर और कड़ा माणिकपुर के शासकों के दमन में व्यस्त था और इधर उसके दाहिने हाथ के समीप ही आगरे से लगभग पचास मील दूर गिरिराज पर एक नये मंदिर की स्थापना हो रही थी ।

(१२) संवत् १५७६ में माधवेंद्रपुरी जो आचार्यजी के विद्या गुरू थे तथा कृष्णदास अधिकारी और कुंभनदास वर्तमान थे और उनमें कुंभनदास की आयु इक्यावन वर्ष की थी । डाक्टर दीन दयालु गुप्त ने इनकी आयु एकसौ चौदह वर्ष मानी है और निधन संवत् १६३९ में माना है ।

इसी प्रकार कृष्णदास अधिकारी का जन्म सम्वत् १५७६ में चौदह वर्ष निकालने से सम्वत् १५६२ ठहरता है । इस समय वे चौदह वर्ष से अधिक के नहीं थे । डाक्टर दीन दयालु गुप्त ने न मालूम किस पुस्तक के आधार पर श्रीनाथजी का नये मंदिर में प्रवेश संवत् १५६६ में मान लिया है जिससे उनकी तिथियों में दस वर्ष का अन्तर आ गया है । श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्ता नाथ द्वारा प्रकाशित तथा बम्बई से प्रकाशित प्राकट्य वार्ता में भी यह सम्वत् १५७६ ही लिखा है । डाक्टर दीन दयालु गुप्त ने कृष्णदास को सम्वत् १६३८ के पूर्व तक विद्यमान माना है । इस प्रकार इनकी आयु की छियहत्तर वर्ष ठहरती है ।

(१३) रामदास चौहान ने श्रीनाथ जी की सेवा की । इस वार्त्ता के इस कथन का समर्थन चौरासी वैष्णव की वार्त्ता संख्या पचपन रामदास चौहान की वार्त्ता से होता है ।

(१४) चौदह वर्ष तक बंगाली लोगों ने सेवा की, संवत् १५७६ से लेकर १५९० तक । इसकी पुष्टि दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में कृष्णदास की वार्त्ता से होती है । कृष्णदास की वार्त्ता में लिखा है कि इन्होंने अवधूतदास के कहने से श्री गुसांईजी की आज्ञा लेकर बीरबल व टोडरमल की मदद से इनको निकाल दिया और इनकी झोंपड़ी जलवा दी थी । इस प्रसंग में श्री गुसांईजी को अडैल से गिरिराज आना पड़ा था और इन बंगालियों को मदनमोहन की सेवा दी थी । ऐसा लगता है कि यह घटना संवत् १६१३ के बाद की है । कांकरौली के इतिहास में प्रोफेसर कंठमणि शास्त्री ने भी इसका संवत् १५९० का उल्लेख किया है । जिस समय यह झगड़ा हुआ है, उस समय तिलकायत श्री गोपीनाथ जी थे । कांकरौली के इतिहास का यह उल्लेख नए शोध के अनुसार अप्रामाणिक सिद्ध हो चुका है क्योंकि श्रीगोपीनाथ जी का निधन संवत १५९९ सिद्ध है ।

(१५) संवत् १५८७ में आषाढ़ सुदी २ उपरान्त ३ को श्री महाप्रभु जी ने हनुमान घाट काशी में गंगा लाभ किया । इस तिथि को सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त है और इसमें वार

दिया नहीं है। इसलिये इसकी गणना द्वारा पुष्टि नहीं हो सकती है। इसी समय बाबर की मृत्यु हुई है और हुमायूं गद्दी पर बैठा है।

(१६) श्री गोपीनाथजी को तिलकायत पद और उनके द्वारा आभरण भेंट संवत् १५८७। इसका समर्थन सम्प्रदाय कल्पद्रुम से होता है।

(१७) श्री गोपीनाथजी के पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी का तिरोधान सम्प्रदाय कल्पद्रुम द्वारा समर्थित है। परन्तु संवाद के अनुसार यह संवत् १६१५ वि० है।

(१८) श्री गोपीनाथ जी के शरीरांत के पश्चात श्री विट्ठलनाथ जी का तिलकायत होना। इसका संवत् १६२० विक्रम है। सम्प्रदाय के इतिहास की यह एक महत्वपूर्ण घटना है। किन्तु प्राकट्य वार्त्ता का यह संवत् अशुद्ध है। संवाद एवं अन्य प्रामाणिक आधारों के अनुसार यह सम्वत् १५९९ वि० है।

(१९) संवत् १६२३ फागुन वदी ७ गुरुवार के दिन सतघरा (मथुरा) में श्रीनाथ जी का पाटोत्सव। इस तिथि में गणना के अनुसार गुरुवार के स्थान पर बुधवार होना चाहिये।

(२०) रूपमंजरी और नंददास का मेल व रूप मंजरी का ग्वालियर का होना। इसका समर्थन दोसौ बावन वैष्णव की वार्त्ता से होता है। श्रीयुत ब्रजरत्नदास ने भी श्री नंददास कृत रूपमंजरी ग्रंथ के आधार पर अपनी नंददास ग्रंथावली में यह स्वीकार किया है कि 'वार्त्ता की रूपमंजरी ही इस आख्यानक काव्य की नायिका है, नंददास की सहचरी है। अकबर रूपी अपने अयोग्य पति को त्याग कर वह नंददास के यहां श्री कृष्ण भगवान से नित्य मिलने आती थी। नंददास जी वहां निपट निकट गायन करते थे। अकबर के इसी रहस्य की जिज्ञासा करने पर नंददास और रूपमंजरी दोनों ने कुछ न कहकर शरीर त्याग दिया था। (नंददास ग्रंथावली, प्रथम संस्करण, संवत् २००६ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रकाशित)

अब प्रश्न यह रह जाता है कि क्या रूपमंजरी ग्वालियर की बेटी थी। भावप्रकाश में इसके पिता का नाम नहीं दिया है। इसलिये यह कहना कठिन है कि वह किसकी लड़की थी। ग्वालियर के प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता श्री भालेराव का मत है कि इस प्रकार के किसी नाम का उल्लेख ग्वालियर राज्य के सुरक्षित पत्रों में नहीं है। यह सम्भव है कि यह कोई धार्मिक राजपूत वारविलासिनी की कन्या रही हो। यह निश्चय है कि यह कोई राजवर्ग की कन्या नहीं थी।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५७ अंक २–३ में श्री परशुराम चतुर्वेदी ने नंददास की 'रूपमंजरी' शीर्षक एक लेख लिखा है जिसमें आपने यह सिद्ध किया है कि यह नंददास की कोई प्रेमिका थी जिसके रूप का वर्णन उन्होंने इस ग्रन्थ में किया है और इसके रूप की प्रशंसा जी खोलकर की है। आपने लिखा है कि 'इस आख्यानक की एक अन्य विशेषता इस बात में भी है कि इसका रचयिता इसे अपने आत्म-चरित्र के रूप में लिखता है। रूपमंजरी स्वयं उसी की प्रेमपात्री है जिसका सौन्दर्य वर्णन वह जी खोलकर करता है और फिर उसके भी प्रेमपात्र कृष्ण की ओर उसी के सहारे अग्रसर होता है। रचना के अन्त में वह स्पष्ट कह देता है कि रूपमंजरी एवं गिरधर जी की रसभरी लीला को वह निज हित कह रहा है। उसका अपना सिद्धान्त यह जान पड़ता है—

जदपि अगम ते अगम अति निगम कहत है जाहि ।
तदपि रंगीले प्रेम ते निपट निकट प्रभु आहि ।।

इस प्रकार रूपमंजरी के व्यक्तित्व को सर्वथा कल्पित नहीं कह सकते हैं ।

अलीखान पठान की बेटी—

(२१) अकबर की बीबी ताज की गिरिराज पर मृत्यु । ताज की वार्त्ता भावसिन्धु में है और उसके द्वारा भी इस वार्त्ता के इस कथन की पुष्टि होती है । ताज के सम्बन्ध में कवियों के वृत्त में लिखा गया है ।

(२२) इससे श्रीनाथ जी के मंदिर में चौपड़ बिछाने के प्रसंग पर ऐतिहासिक प्रकाश पड़ता है ।

(२३) 'दिल्ली' शब्द यहाँ विचारणीय है ।

(२४) प्राचीन मंदिर का विस्तृत इतिहास न नाथद्वारे में है और न कांकरौली में । इसलिये इस अटारी के गिराने की पुष्टि कहीं और से करना सम्भव नहीं है । हां, इसके गिराने क उल्लेख अवश्य है ।

(२५) गिरधर जी का तिरोधान माला प्रसंग के समय । श्री गोकुलनाथजी का जो जीवन चरित्र श्री मगनलाल गांधी, बी० ए० मौड़ासा निवासी ने लिखा है, उसमें माला प्रसंग का समय संवत्१६७३-१६७७ दिया है । इस विचार से श्री गिरधरजी का तिरोधान समय भी संवत् १६७७ ही होना चाहिये । इसी समय वे जहाँगीर की आज्ञा से पुनः गोकुल आये थे । सम्प्रदाय कल्पद्रुम में आपका निधन 'संवत् पूर्ण-शास्त्र ऋतु इंदु के' गिरधर करत श्रृंगार ।लीन भये मथुरेश मुख विहंसत समय विचार । अर्थात् सम्वत् १६६० दिया है जो अशुद्ध है ।

(२६) दामोदर जी को तिलकायत पद । यह गिरधर जी के दूसरे पुत्र थे । इनका जन्म समय संवत् १६३२ है और तिलकायत पद का समय सम्वत्१६७७ ठहरता है । इसमें लिखा है कि श्री विट्ठलराय और इनके भाई में आपस में झगड़ा था जिसके लिये उन्होंने राज्य की शरण ली थी । इस प्रसंग का समर्थन इतिहास में है और सम्प्रदाय में भी ऐसे उल्लेख हैं ।

(२७) गिरधर जी का लाहौर पधारना ।

(२८) गोकुलनाथ जी का काश्मीर जाना—सम्वत् १६७६ में यह घटना हुई है ।

(२९) गुसांईजी का मेवाड़ जाना और अजबकुँवरि का शरण आना यह दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में अजबकुँवरिबाई का वार्त्ता एक में है ।

(३०) इसमें यवनों का मंदिर तोड़ने का साम्प्रदायिक ढंग से वर्णन है ।

(३१) गिरधरजी के पुत्र दाऊजी (दामोदरजी) के समय बादशाह का उपद्रव—और इनके चाचा गिरधर जी द्वारा गोविन्द घाटी बनाना व उनकी मृत्यु । यह घटना संवत् १७२३ की है जब औरंगजेब ने मथुरा में केशोराय के मंदिर को तोड़ा था और दाराशिरोह के दिये हुये घेरे को नष्ट किया था ।

(३२) श्रीनाथ जी का गिरिराज से आगरे पधारना । संवत् १७२६ आसौज सुदी १५ शूक्रवार को गिरिराज से रथ का चलना । यह तिथि गणना के अनुसार शुद्ध है, उस दिन

शुक्रवार पड़ता है। इस समय औरंगजेब के शासन का ग्यारहवाँ वर्ष था और उसने सारे देश के मंदिरों को तोड़ने की आज्ञा दे दी थी। यह तिथि सब प्रकार से ठीक है। इससे पूर्व संवत् १७२३ में वह केशोराय के मंदिर को मथुरा में नष्ट कर ही चुका था।

अब्दुलनबी खां साहब इस बार संवत् १७२६ में मथुरा के मंदिरों को नष्ट करने वाली सेना के अध्यक्ष थे और मथुरा के हाकिम भी थे।

(३३) दो जलघरियों का पराक्रम ठीक हो सकता है, पर मंदिर संवत् १७२६ के आसपास नष्ट हो गया था और गिरिराज पर मस्जिद बन गयी थी।

(३४) ब्रजराय जी और गोविन्दराय जी का झगड़ा।

(३५) श्रीनाथ जी की यात्रा का विवरण। दंडौती धार से कोटा बूंदी, पुष्कर से कृष्णगढ़, जोधपुर (बीसलपुर) उदयपुर यह भी एक ऐतिहासिक घटना है। इन स्थानों पर श्रीनाथ जी की बैठकें हैं।

(३६) बादशाह का उदयपुर पर चढ़ना श्रीनाथ जी के लिये। यह घटना संवत् १७३७ में हुई है और मेवाड़ को औरंगजेब ने संवत् १७३८ में जीत लिया है।

(३७) इससे नौ वर्ष पूर्व फाल्गुन सुदी ७ शनिवार को संवत् १७२८ में नाथद्वारा के मंदिर में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा। यह तिथि पिल्ले के अनुसार अशुद्ध है, इस दिन मंगलवार पड़ता है। परन्तु अन्य सांप्रदायिक समकालीन ग्रंथों द्वारा समर्थित है।

निष्कर्ष—इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मेवाड़ पहुँच करके श्रीनाथजी नौ वर्ष तक वहाँ कुशल से बैठे रहे और संवत् १७३५ में जब जोधपुर के राजा जसवंतसिंह का स्वर्गवास हो गया तब औरंगजेब ने मेवाड़ और मारवाड़ पर अपनी दृष्टि उठाई। मेवाड़ में इस समय राना राजसिंह और जयसिंह शासक थे। और मारवाड़ में अमरसिंह, इन्द्रसिंह और अजीतसिंह के नाम प्रसिद्ध हैं।

श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता की आलोचना

इस ग्रंथ में बारह तिथियां दी हुई हैं जिममें आठ तिथियों के वार भी दिये हुए हैं। शेष तीन में केवल तिथि दी हैं और एक में केवल संवत् का उल्लेख मात्र है।

जिन तिथियों में वार भी दिये हैं, उनमें से संवत् १४६६ श्रावण सुदी तृतीया आदित्यवार को ऊर्ध्व भुजा का प्राकट्य लिखा है, यह दिन पिल्ले के अनुसार ठीक नहीं है। इस दिन गणना के अनुसार सोमवार पड़ता है। दूसरी तिथि संवत् १५३५ वैशाख वदी ११ को बृहस्पतिवार या रविवार लिखा है इस दिन भी उसी गणना के अनुसार बृहस्पतिवार की जगह मंगलवार पड़ता है। इसलिये इस तिथि का वार भी ठीक नहीं है उसी गणना के अनुसार तीसरी तिथि संवत् १५४९ फाल्गुन सुदी ११ को बृहस्पतिवार लिखा है, गणना के अनुसार इस दिन बुधवार पड़ता है। चौथी तिथि संवत् १५५६ बैशाख सुदी ३ को आदित्यवार लिखा है, इस दिन भी शनिवार होना चाहिये। पांचवीं तिथि संवत् १६२३ फागुन वदी ७ को गुरुवार लिखा है, इस दिन बुधवार पड़ता है। छठी तिथि संवत् १७२८ फागुन वदी को शनिवार लिखा है, इस दिन सोमवार पड़ता है। शेष दो तिथियों के तिथि और वार गणना के अनुसार ठीक है, अर्थात् संवत् १५५२ में श्रावण शुक्ला १३ के दिन बुधवार लिखा भी है और उस

दिन बुधवार पड़ता भी है और संवत् १७२६ को आषाढ़ सुदी १५ को शुक्रवार लिखा भी है और गणना के अनुसार शुक्रवार ही पड़ता है। इस प्रकार आठ में से छः तिथियों के वार अशुद्ध हैं। केवल दो के ठीक हैं। और जिन तिथियों के वार नहीं दिये हैं, उन तिथियों की जांच नहीं हो सकती। पिल्ले की गणित का समर्थन अन्य प्रमाणों और ग्रहलाघव 'तथा ज्योतिष केदार' से नहीं होता है।

अगले प्रसंग 'श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के गिरिराज पधारने और श्रीनाथजी कहां प्रकट भये हैं सो खोजने, मिलिनो, सेवा का प्रकार बांधना, सब साम्प्रदायिक है। इनके विषय में सन्देह करना उचित नहीं है।

इससे आगे श्रीनाथजी भैंसे पर चढ़ कर संवत् १५५२ श्रावण सुदी १३ बुधवार को 'टोड़ के घने में चतुरानागा को दर्शन देने गये हैं। इस प्रसंग की तिथि ठीक है। टोड़ के घने में पधारने का हेतु इतिहास की दृष्टि से कुछ और है। संवत् १५५२ में ही सिकन्दर लोदी ने मथुरा में उपद्रव किया था और उसके आस पास का क्षेत्र सुरक्षित न था। इसलिये श्रीनाथजी को गिरिराज से वहाँ कुछ समय के लिये हटना पड़ा होगा जिसका यह साम्प्रदायिक वर्णन है। भावना वाले श्री द्वारकेशजी ने यवन की फौज अडींग आने का कारण बताया है। इसमें मंदिर बनवाने का प्रसंग और तिथि है।

श्रीनाथजी का पाटोत्सव श्री आचार्य महाप्रभुजी द्वारा सम्पूर्ण हुआ। यह मंदिर कितना बड़ा रहा होगा, कितना ऊँचा रहा होगा, यह इसकी लागत से ही जाना जा सकता है। पर गिरिराजजी पर जहाँ एक मंदिर है, उससे कुछ दूर पर उसके सामने एक टूटे मंदिर के अवशेष अब भी पड़े हैं जिसकी लम्बाई व चौड़ाई देखकर यह नहीं लगता कि यह बहुत बड़ा मंदिर रहा होगा। इसमें जो ईंटें लगी हैं वह शाहजहाँनी ईंट : छोटी ईंट, लाखौरी ईंट से पाँच गुनी बड़ी है और मुगल कालीन स्थापत्य में शाहजहाँ से पूर्व सभी इमारतों में वही मिलती है। यह सम्भव है कि यह बहुत ऊँचा न रहा हो और कई खण्ड का रहा हो।

इसके अनन्तर इसमें महाप्रभुजी के स्वधाम पधारने का संवत् दिया हुआ है पर दिन नहीं लिखा है और श्री गोपीनाथजी के गद्दी पर बैठने का एक उल्लेख मात्र है। ऐसे ही उल्लेख इनके पुत्र पुरुषोत्तमजी के शरीर छोड़ने और श्री गुसांईजी के गद्दी पर बैठने और गोपीनाथजी के स्वधाम पधारने का है। ये सम्प्रदाय के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं, पर इनका उल्लेख मात्र है और संवत् भी नहीं दिया है। यही हाल दामोदरजी के गद्दी पर विराजने का है और भैया-बदों के झगड़े के वर्णन का है वह वार्त्ता श्री गोकुलनाथजी कृत कदापि नहीं है।

कुछ वर्ष पूर्व प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डाक्टर धीरेन्द्र वर्माजी को अपनी ब्रजय-त्रा में इस पुस्तक की नवलकिशोर से प्रकाशित एक लीथो की प्रति सन् १८८४ ईसवी, अर्थात् संवत् १९४१ की मिल गई थी जिसके आधार पर आपने हिन्दुस्तानी में 'सूरदास जी के इष्ट देव श्रीनाथ जी का इतिहास' शीर्षक एक लेख लिखा था जो पीछे से इसी शीर्षक से आपके निबन्धों के संग्रह 'विचार धारा' में छपा है। आपने इस ग्रंथ में संवत् १९४१ की प्रति के आधार पर उन सब सम्वतों और घटनाओं का उल्लेख किया है जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। आपकी प्रति की तिथियां, वार और संवत् सब वही हैं जो मैंने लिखे हैं। आपने अपने

लेख के अन्त में यह इच्छा प्रकट की है—'इस वार्त्ता में दी हुई तिथियों और उल्लेखों को कहां तक मान्यता प्राप्त है, इस सम्बन्ध में मुगल काल के इतिहासज्ञों को ध्यान देना चाहिये।' इतिहासज्ञ न होते हुए भी इस लेख में इस पुस्तक की तिथियों पर विचार किया गया है और गणित के विशेषज्ञों से सहायता लेकर इनके वार आदि की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में यही कहना पड़ता है कि यह बहुत बाद की रचना है।

श्री महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्त्ता से प्राप्त ऐतिहासिक वृत्त और उसकी आलोचना

श्री महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता से जो विवरण प्राप्त होता है, उसका सम्बन्ध श्री महाप्रभुजी के जीवन वृत्त से है और उसमें लेखक का उद्देश्य शुद्ध इतिवृत्त न लिखकर श्री महाप्रभुजी के जीवन को आदि से अन्त तक अलौकिक दिखाना है। इस कारण उस सबके सत्य होते हुए भी उसमें से अधिकांश सामग्री को इतिहास की कसौटी पर कसना कठिन है। श्री महाप्रभुजी के जीवन के सम्बन्ध में 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' तथा 'यदुनाथ दिग्विजय' आदि ग्रंथों से इस वार्त्ता से प्राप्त सामग्री का समर्थन होता है। इसमें जो सामग्री संकलित है उसकी पुष्टि निजवार्त्ता, और घरूवार्त्ता से भी होती है, पर सब प्रसंग ज्यों के त्यों नहीं हैं और न क्रम एक है। दोनों की तुलना करके यह देख लिया गया है कि दोनों ग्रंथों से प्राप्त सामग्री में कहीं विरोध तो नहीं है। ऐसी दशा में फिर उसकी ऐतिहासिक आलोचना आवश्यक हो जाती है। पर दोनों ग्रन्थों की प्राप्त सामग्री अक्षरशः एक है और कांकरौली के इतिहास में तथा अन्य जीवनी लेखकों ने अधिकांश में श्री महाप्रभुजी की जीवनी लिखने में इसी का सहारा लिया है।

श्री महाप्रभुजी के जन्म संवत के विषय में यहां संक्षेप में यही लिखना आवश्यक है कि बड़ौदा ओरियंटल इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर और पुष्टि मार्गीय साहित्य के अद्वितीय विद्वान् प्रोफेसर गोविन्दलाल भट्ट आचार्यजी का जन्म संवत् १५३० में मानते हैं[1]। भट्ट जी को संम्प्रदाय में प्रचलित तिथि अमान्य है। श्री आचार्य महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्त्ता में दी हुई तिथि के सम्बन्ध में संप्रदाय में बहुत विवाद हो चुका है और अन्तिम रूप से संवत् १५३५ मान्य निर्धारित किया गया है।

शेष में जन्म स्थान चम्पारण्य, माता का नाम एललमागारू, पिता का नाम श्री लक्ष्मण भट्ट, भाई का नाम रामकृष्ण केशवपुरी, विद्यानगर के राजा का नाम कृष्णदेव, ओड़छा के राजा का नाम रामचन्द्र अथवा ग्वालियर के राजा का नाम रामभद्र नारायण इस ग्रंथ से प्राप्त होता है श्री महाप्रभुजी की यात्राओं का वर्णन भी वही है जो निजवार्त्ता घरूवार्त्ता में है।

इसमें सबसे महत्वपूर्ण घटना है—विद्यासानगर के राजा कृष्णदेव राय की सभा का शास्त्रार्थ। इसकी ऐतिहासिकता सिद्ध करना आवश्यक है। इस घटना का सन् संवत् भी निश्चित करना है। विजय नगर का ही पुराना नाम विद्यानगर है। इसमें कृष्णदेव राजा

१. नवीं अखिल भारतीय ओरियंटल कांफ्रेंस का विवरण।

का उल्लेख है। विजय नगर के इतिहास में श्री महाप्रभुजी के समय में जो राजा विजयनगर की गद्दी पर आसीन थे, उनके नाम विजयनगर के राजाओं की इस सूची से प्रकट हो जायेंगे : –

संगम वंश

(१) देवराय द्वितीय	संवत्	१४८९ – १५०४
(२) मल्लिकार्जुन	,,	१५०४ – १५२२
(३) विरूपाक्ष	,,	१५२२ – १५४३

सालुव वंश

नरसिंह राय	संवत्	१५४३
धर्मराय	,,	१५६२

तूलुवा वंश

नर्श नायक	संवत्	१५६२
वीर नरसिंह	,,	१५६३
कृष्णदेव राव	,,	१५६६
अच्युत	,,	१५७६
सदाशिव	,,	१५९९

श्री महाप्रभुजी का समय है संवत् १५३० से १५८७। इस कारण राजा कृष्णदेव राय अवश्य ही उनके समकालीन थे। विजयनगर का राज्य राजा कृष्ण राय के समय संस्कृति, साहित्य, कला, राजनैतिक प्रबन्ध, सेना आदि सबकी दृष्टि से अपने चरम उत्कर्ष पर था। अनेक विदेशियों ने इस नगर की इसके राजप्रसाद की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[1]

जिस समय राजा कृष्णदेव अपने उत्कर्ष पर था, उस समय श्री महाप्रभुजी आयु में छत्तीस वर्ष के होंगे और यह शास्त्रार्थ संवत् १५६६ और १५७७ के बीच में ही हुआ होगा तथा कनकाभिषेक की भी तिथि इसी के बीच में होनी चाहिये अन्यथा ऐतिहासिक संगति बैठालना कठिन होगा।

यहाँ भेद यह पड़ता है कि प्राकट्य वार्त्ताओं में इसे ब्रह्म सम्बन्ध की आज्ञा से पूर्व लिखा है और भावसिन्धु में इसका (कनकाभिषेक) का प्रयाग में होना लिखा है। संवत् १५६६ से पूर्व इस घटना का होना यदि सिद्ध हो जाय तो फिर राजा कृष्णदेव का इससे कोई सम्बन्ध न रह जायगा। संवत् (१५६५–५७=१६२२) तक अन्य कोई कृष्णदेव राजा विजयनगर का शासक हुआ ही नहीं है। इसलिए इस शास्त्रार्थ को महाप्रभु जी के आरम्भिक जीवन के साथ करने से इसे इतिहास का समर्थन न प्राप्त हो सकेगा और यह घटना नरसिंह राय के समय की ठहरेगी। कृष्णदेव राजा के समय की नहीं।

प्रोफेसर कंठमणि शास्त्री जी ने भी कांकरौली के इतिहास में भी इसका समय संवत् १५६६ के आसपास माना है। साम्प्रदायिक ग्रन्थों में जो इसका उल्लेख प्रथम यात्रा के समय दिया गया है उसके सम्बन्ध में शास्त्री जी का मत है कि 'किसी भी ग्रन्थ में कनकाभिषेक होने के ठीक संवत् का उल्लेख नहीं मिलता। संवत् का ध्यान न रखकर लेखकों ने घटना का ही ध्यान रक्खा है। वैष्णवों की भावुक दृष्टि प्रथम अथवा द्वितीय यात्रा में स्थान पर

१. रावर्ट सेवले 'फारगाटन एम्पायर'।

शास्त्रार्थ और भक्ति प्रचार करते रहने पर भी वल्लभाचार्य को इस सम्मान से रहित देखना नहीं चाहती थी। अत: जब कनकाभिषेक की घटना घटी ही थी, तो वे उससे उनको प्रथम यात्रा में ही क्यों वंचित रखने लगे ? फलत: सम्मान प्रदर्शनार्थ एवं अपने आचार्य के लिए सामाजिक उत्कर्ष प्रख्यापन के लिए घटना पर ध्यान दिया गया और संवत् को गौण समझ लिया गया।'

कनकाभिषेक नामक एक ग्रन्थ भी कांकरौली से प्रकाशित हुआ है और शास्त्री जी स्वयं इसकी तिथि के सम्बन्ध में निश्चित नहीं हैं।

यहाँ यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका सम्बन्ध तीसरी यात्रा (संवत् १५६६) से ही न्याय संगत है और उससे पूर्व के सभी उल्लेखों को कोई ऐतिहासिक आधार प्राप्त नहीं है। कनकाभिषेक का संवत् १५६६ से पूर्व होना अनिश्चित है और तृतीय यात्रा १५६६ में ही इसकी अधिक से अधिक सम्भावना है। यदि भावसिन्धु का कथन सत्य मान लिया जाय तो फिर इसका समय कुछ और पीछे हट जायगा। यहाँ यह देखना आवश्यक होगा कि संवत् १५६६ और संवत् १५७७ के बीच में किस वर्ष दो ज्येष्ठ पड़ते थे क्योंकि भावसिन्धु में उस वर्ष दो जेठ होने की सूचना है। इंडियन ३ फीमेरिक्स इस विषय में इस प्रकार सहायता देता है।

ओड़छे और ग्वालियर के राजा का नाम

इस ग्रंथ में ओड़छे के राजा का नाम रामचन्द्र लिखा है बुन्देलखण्ड के इतिहास में संवत् १५३५-४९ तक के जिन राजाओं का उल्लेख है उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१)	मलखानसिंह	संवत्	१५३५—१५६८
(२)	रूद्रप्रताप	,,	१५६८—१५८८
(३)	भारतीचंद	,,	१५८८—१६११
(४)	मधुकरशाह	,,	१६११—१६४९
(५)	रामसिंह	,,	१६४९—१६६९

इन राजाओं में से मलखानसिंह और रूद्रप्रताप दो ही श्री महाप्रभु जी के समकालीन हो सकते हैं। इनमें से रूद्रप्रताप ने ही ओछड़े की नीव डाली थी और किला बनवाया था। ओछड़ा नगर की नींव वि० सं० १५८८ वैशाख सुदी पूर्णिमा सोमवार को पड़ी थी और किला संवत् पंद्रहसौ अठावन में बन कर तैयार हुआ था। अत: यह सिद्ध होता है कि श्री महाप्रभु जी ओड़छे के राजा रूद्रप्रतापसिंह के समय में अपनी तृतीय यात्रा के समय आए थे। 'प्रताप वंशार्णव' नामक काव्य संस्कृत में भारत जीवन-यंत्रालय से सन् १९०४ में प्रकाशित हुआ है और जिसका प्रकाशन सागर निवासी पंडित श्री रामजैत तेलंग सेक्रेटरी ओड़छा दरबार ने कराया है, उसमें भी यही क्रम दिया है। इस प्रकार यह नाम भी इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है और इसके लिखने में भी भूल की गयी है। यह नाम राजा रूद्रप्रताप शाह होना चाहिए रामसिंह या रामचन्द्र नारायण नहीं। ओड़छे के राजाओं की 'प्रताप वंशार्णव' और बुन्देलखण्ड के इतिहास दोनों की सूची में संवत् १३१४ से लेकर पाँचवे राजा का नाम रामसिंह है जिसका शासन काल संवत् १४१२ से १४५१ तक है जिसके वर्तमान काल से श्री महाप्रभु जी का समकालीन सिद्ध नहीं होता है। इसी प्रकार ग्वालियर के राजा का नाम भी ठीक नहीं है। ग्वालियर में उस समय तोमर वंशी राजाओं

का अधिकार था जिन्होंने बहलोल लोदी व सिकन्दर लोदी से लोहा लिया था।

बहलोल लोदी के समय में ग्वालिर का राजा कीरतसिंह तोमर था जिस पर संवत् १५३५ में बहलौल लोदी ने चढ़ाई की थी। इसके पीछे मानसिंह तोमर ग्वालियर का राजा हुआ जो पीछे श्री गुसांईजी का सेवक हो गया था। इसलिये ग्वालियर के राजाओं के नाम का उल्लेख करने में भी वार्त्ताकार ने भूल की है। मुगल शासन काल में ग्वालियर का किला एक बड़ी जेल का काम देता था। जितने सम्भ्रांत पुरुषों को दण्ड दिया जाता था, वे सब इसी किले में रक्खे जाते थे।

ग्वालियर में पंडित भालेराव के संग्रह में 'गोपाचल' नाम का एक हस्तलिखित काव्य है, जिसमें मुगल शासकों के समकालीन राजाओं का उल्लेख है। उससे भी इस कथन की पुष्टि नहीं होती है।

बिल्वमंगल और विष्णुस्वामी वृन्दावन के

(१) बिल्वमंगल कई हुए हैं। बिल्वमंगल काशी में प्रसिद्ध हुए थे जो अन्तिम जन्म में कवि जयदेव नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

(२) बिल्व मंगल द्राविड देशीय थे जो विष्णु स्वामी मत के आचार्य हुए हैं।

(३) उत्कल देशीय विल्वमंगल जो गोविन्द दामोदर स्तोत्र के रचयिता प्रसिद्ध है सम्प्रदाय प्रदीप के ग्रन्थ के अनुसार द्राविड देशीय वही विष्णु स्वामी मत के आचार्य हुए हैं जिनकी भेंट श्री महाप्रभु जी से हुई होगी।

श्री विष्णु स्वामी के लिए लिखा है कि यह दक्षिण के राजा के पुत्र थे और जन्म से ही भगवद् भक्त थे। इन्होंने जो भाष्य किया था, उसे मायामत वालों ने नष्ट कर दिया था और श्री वल्लभाचार्य के प्रादुर्भाव से सात वर्ष पूर्व इनके अन्तिम आचार्य का शरीर छूट गया था तथा यह वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड के पास इमली पर रहते थे। विष्णु स्वामी का समय विक्रम संवत् ६०० से पूर्व माना जाता है। श्री वल्लभाचार्य से पूर्व सात सौ आचार्य इस मत के हुए हैं। इनके द्वारा भी भक्ति का प्रतिपादन होता है।

कृष्ण चैतन्य भेंट

प्राकट्य वार्त्ता के अनुसार ओड़छे से चलने के पश्चात् यह भेंट मार्ग में हुई थी। इस विवरण से सहसा यह धारणा होती है कि कृष्ण चैतन्य मथुरा आरहे थे और मार्ग में भेंट हो गई। पर श्री चैतन्य चरितामृत से वार्त्ता के इस कथन की पुष्टि नहीं होती है। उसमें यह भेंट प्रयाग में ही लिखी है और भावसिन्धु में जगदीश में। म० प्र० प्राकट्य वार्त्ता का जगदीश की भेंट सम्बन्धी कथन भी प्रामाणिक नहीं है। इसमें भी घटना को ही प्रधानता दी गई है, समय और स्थान को नहीं।

भाव सिन्धु में से प्राप्त ऐतिहासिक वृत्त

(१) संवत् १५३० माघ सुदी ४ ब्रह्ममहूर्त के समय दामोदरदास जी को प्राकट्य।

(२) दस बरस के कृष्णदास मेघन घर छोड़ के आए थे। दो बरस पीछे सं० १५३५ की साल वैशाख वदी ११ ब्रह्ममहूर्त समय योगाभ्यास साधत हते।

(३) कृष्णदास को पम्पासरोवर पर दर्शन भयो। इनका पुराना नाम गढ़मल था।

(४) कृष्णदेव राजा ने अड़ैल में सुवर्ण स्नान कराया। उस साल लौंध का महीना था। दो जेठ पड़े थे।

(५) दामोदरदास सम्भल वारे, पद्मनाभदास कन्नौजिया के ठाकुर द्वारिकाधीश और श्री मथुरानाथ जी थे।

(६) रजोबाई की वार्त्ता के अनुसार श्री महाप्रभुजी के ससुर का नाम जैंकिशन था।

(७) श्री गोपीनाथ जी के प्राकट्य के समय तथा श्री गुसांईजी के प्राकट्य के समय रजोबाई श्री महालक्ष्मी जी की चाकरी करती थी।

(८) नारायणदास ब्रह्मचारी महावन के थे।

(९) संतदास चौपड़ा, रूपचंद नंदा, गज्जनधावन आगरे के रहने वाले थे।

(१०) सेव का बाजार, छारछू दरवाजा और गोकुलपुरा आगरे के मुहल्लों के नाम इस पुस्तक में दिए हैं।

(११) श्यामदास सुनार की बनाई खड़ाऊँ, पट्टा आज भी नाथद्वारे में सुरक्षित हैं।

(१२) चांदबाई उदयपुर के राणा की कन्या थी और जोधपुर में व्याही थी। यह अनुपम सुन्दरी थी।

(१३) गोकुल में यशोदा घाट को पेड़ों चांदबाई ने बनवाया था।

(१४) चांदबाई और जहांगीर की मथुरा में भेंट।

(१५) चांदबाई की हवेली घनश्याम जी के बांटे में आई।

(१६) (१) रानी दुर्गावती गढ़ा में रहती थी। पुरुष के वस्त्र धारण करती थी।
(२) गढ़े में श्री गुसांईजी ने विष्णुताल पर डेरे लगाए थे।
(३) अड़ैल से आप गढ़ा पधारे थे।
(४) भव्य स्वागत— सोमवती के दिन संवत् १६२० के आसपास।
(५) संवत् १६२० में पद्मावती बहूजी से व्याहे।
(६) इसके पश्चात् रानी की मृत्यु।
(७) रानी के हाथी का नाम 'गुरदार' था।

(१७) रूपमुरारीदास हिंसा करावनवारेन में नौकर हते।
(१) ताज अकबर की स्त्री थी।
(२) रूप मुरारीदास पृथ्वीपति के साथ काबुल गये और वहां माधोदास से मिले।

(१८) अकबर द्वारा श्री गुसांईजी का चित्र उतरवाना।

(१९) (१) ताज अकबर की स्त्री थी।
(२) अकबर, जहांगीर, शाहजहां सब जन्माष्टमी के दिन गोकुल में दर्शन को जाया करते थे।
(३) ताज का शरीर गोवर्द्धन में छूटा। उस साल अकबर ने गोपालपुर रुद्र-कुण्ड पर डेरे किये थे।
(४) ताज ने आगरे में गोकुलपुरा बसाया तामें सब भगवदीय रहन लगे।

भाव सिन्धु से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री की आलोचना

(१) संवत् १५३० माघ सुदी ४ को दामोदरदास की उत्पत्ति का समर्थन उनकी वार्त्ता के भावप्रकाश से होता है।

(२) संवत् १५३५ में कृष्णदास मेघन बारह वर्ष के थे, अर्थात् इनका जन्म संवत् १५२३ का था। इनके गढ़मल नाम की पुष्टि 'भक्त नामावली' से होती है।

(३) विद्यानगर के राजा के कनकाभिषेक का उल्लेख सम्प्रदाय के प्रायः सभी ग्रंथों में मिलता है। यह घटना संवत् १५६६ की है।

(४) श्री द्वारकाधीश और मथुरेश जी के सम्बन्ध में जो उल्लेख है, उसको सम्प्रदाय के सभी ग्रंथों का समर्थन प्राप्त है।

(५) श्री महाप्रभुजी के ससुर के नाम का समर्थन निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता से प्राप्त है। किन्तु सम्प्रदाय कल्पद्रुम में यह नाम मधुमंगल मिश्र लिखा हुआ है और गुजराती वल्लभचरित्र में श्री कृष्ण भट्ट तथा सरयूदास कृत 'वल्लभ कल्पद्रुम' में भी श्री कृष्ण भट्ट है। अतः यह प्रामाणिक नहीं है।

(६) रजोबाई की भूतल स्थिति संवत् १५७२ तक तो अवश्य थी।

(७) चांदबाई जोधपुर में व्याही थी और मेवाड़ की कन्या थी। चांदबाई और जहाँगीर की भेंट चांदबाई की हवेली घनश्याम जी के हिस्से में आई। उसने गोकुल में यशोदा घाट बनवाया था, इत्यादि।

बादशाह जहाँगीर का समय है संवत् १६६१ से संवत् १६८५ तक और इसका मेवाड़ से झगड़ा संवत् १६७१ तक चला है। जब राणा अमर और युवराज कर्णसिंह ने संधि करली थी। यह झगड़ा संवत् १६६६ से प्रबल रूप में प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार चांदबाई अमरसिंह की कन्या हो सकती है। मेवाड़ के इतिहास की वंशावली और जोधपुर के इतिहास द्वारा यह सिद्ध होता है कि जोधपुर में इस समय गजसिंह राजा था जिसके पिता सूरसिंह थे और चाचा राजा कृष्णसिंह ने कृष्णगढ़ बसाया और दलपति ने रतलाम बसाया था। राजा सूरसिंह का जहाँगीर के यहाँ विशेष सम्मान था। जहाँगीर ने इसके मनसब को बढ़ा कर एक हजारी कर दिया था। इसकी मृत्यु संवत् १६५२ में हो गयी थी। इसके बाद इसका पुत्र गजसिंह हुआ था। संवत् १६५२ से १६८९ तक गजसिंह ने जोधपुर शासन किया था। जोधपुर की ख्याति में सूरसिंह की १७ रानियों के नाम दिये हैं और महाराज गजसिंह की रानियों के नाम भी दिये हैं।

इसका मथुरा में रहना संवत् १६६६ के आसपास होना चाहिए। श्री घनश्याम जी का विद्यमान काल संवत् १६२८-१६६६ है और बंटवारे में संवत् १६३५ में उनके भाग में कामवन स्थित ठाकुर मदनमोहन जी का स्वरूप आया था। संवत् १६४२ में श्री गुसांई जी के तिरोधान होने के पश्चात् यह सम्भवतः सातवें घर की सेवक हुई होगी तभी इनकी मथुरा की हवेली घनश्याम जी के बाँटे में आई अथवा यह श्री गुसांई जी के तिरोधान के पश्चात् पन्द्रह वर्ष तक विद्यमान थीं और इनकी भेंट जहाँगीर से अजमेर जाते समय मथुरा में हुई होगी। डाक्टर वेणीप्रसाद जी ने अपनी पुस्तक में बादशाह का आगरे से अजमेर जाने का जो मार्ग दिया है उसमें मथुरा शहर भी आ जाता है। श्रीयुत गौरीशंकर ओझा जी अपने इतिहास में राजसिंह

की दो रानियों के नाम दिये हैं जिनमें एक 'काश्मीरदे' और दूसरी 'कुसुमदे' थी। जिन्होंने जोधपुर में गांगेवाल तालाब और काँगड़ी तालाब बनवाये थे।

बाँकीदास कृत 'ऐतिहासिक बातें' में लिखा है कि उसकी एक पुत्री चन्द्रकुंवर बाई का विवाह बाँदोगढ़ के स्वामी राजा अमरसिंह के साथ हुआ था। कहीं इन्हीं चन्द्रकुंवर बाई को वार्त्ताकार ने चाँदबाई तो नहीं बना दिया। इससे पहले १६३५ में यदि इसकी मथुरा में हवेली घनश्याम जी के हिस्से में आ जाती है तो फिर मथुरा में इसकी जहाँगीर से भेंट सत्य नहीं हो सकती है जो संवत् १६७० के आसपास की घटना है। श्री घनश्याम जी केवल संवत् १६६६ तक वर्तमान थे। श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृत में चान्दबाई का उल्लेख है।

रानी दुर्गावती सम्बन्धी उल्लेख

(१) रानी दुर्गावती गढ़ा की रानी थी। यह वास्तव में वीर और कुशल सेनानी थी इसमें सन्देह नहीं है।

(२) इसका वर्तमान काल (१५४८ ई०) संवत् १६०५ से संवत् १६२१ तक है।

(३) श्री गुसांई जी ने संवत् १६०० में ही तिलकायत का भार संभाला था और उनकी वह यात्रा जिसमें वे अड़ैल से माँडवा व गढ़ा आये थे। संवत् १६२० के पूर्व की है। इस यात्रा में आप गढ़ा से फिर मथुरा पधारे थे। सम्भावना तो ऐसी लगती है कि सम्भवतः संवत् १६१६ के आसपास आप प्रयाग से कड़ा, मानिकपुर, कालपी होते हुए गढ़ा आये थे और संवत् १६२० तक वहाँ रहे थे।

(४) गढ़ा में रानी के भव्य स्वागत की बात में सन्देह करना भी उचित नहीं है क्योंकि यह घटना मध्य प्रदेश के इतिहास की सुप्रसिद्ध घटना है।

(५) गढ़ा में बैठक का स्थान विष्णुताल है।

(६) गढ़ा में आपके विवाह की बात भी इतिहास की एक घटना है जिसे सम्प्रदाय के इतिवृत्त का समर्थन प्राप्त है।

(७) दुर्गावती का विवरण ऐतिहासिक पुरुषों के वृत्त में लिखा गया है। आयनेअकबरी के अनुसार इसके पास चार हजार हाथियों की सेना थी जिसमें एक हजार हाथी अकबर के सेनानी आसिफ खाँ को उसकी वीरगति के पश्चात् प्राप्त हुए थे जिसमें से उसने बादशाह को केवल दो सौ भेजे थे।

(८) 'शुक्ल अभिनंदन ग्रन्थ' सन् १९५५ में गढ़े का जो ऐतिहासिक विवरण दिया है उसमें इसके हाथी का नाम 'सरमान' लिखा हुआ। 'गुरदार' नहीं। यहाँ भावसिन्धु के उल्लेख का विरोध है।

इसी ग्रन्थ में लिखा है कि रानी के पास एक सफेद हाथी था जिसे अकबर ने माँगा था किन्तु रानी ने नहीं दिया। यह प्रसंग इस दोहे में इस प्रकार कहा गया है—

अपनी सीमा राज की अमल करौ परमान।
भेजो नाग सुपेत सुइ अरू अधार दीवान॥

(९) रानी की मृत्यु संवत् १६२१ में हुई थी।

रूपमुरारी दास

अकबर के शिकार का प्रसंग अन्यत्र आयनेअकबरी के हिसाब से लिखा जा चुका है। अतः रूपमुरारी का प्रसंग इसमें वही है जो वार्त्ता में। यह घटना संवत् १५८१ के आसपास की है।

अकबर द्वारा गुसांई जी का चित्र उतरवाना

भावसिन्धु की इस घटना का समर्थन सम्प्रदाय में प्रचलित चित्र से होता है। श्री गुसांई जी का यह वह चित्र है जिसमें वे उस समत के राज सम्मान प्राप्त व्यक्ति की पूर्ण पोशाक धारण किये हुए हैं। यह चित्र मुगल शैली पर बना है और इसके चित्रकार ने इसे पूर्ण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

'ताज' अकबर की बीबी

ताज के सम्बन्ध में वार्त्ता में लिखा है उसने गोकुलपुरा नाम का मुहल्ला जो आज भी आगरे में वर्तमान है बसाया था। वहां पर गुजराती नागर ब्राह्मण की पुरानी बस्ती है तथा कुछ ऐसे मुसलमान भी रहते हैं जो सेलखड़ी और संगमरमर के ताज बीबी के रोजे बनाकर बेचते हैं। शेष इतिवृत को इतिहास की कसौटी पर कसना कठिन है। आगरा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में गोकुलपुरे का उल्लेख है। इनका जन्म सं० १६०० के आसपास है और संवत् १६७० के समीप इनका निधन रमण रेती में हुआ था जहाँ इनकी छतरी है। इनका विशेष वृत्त कवियों के वृत्त में दिया गया है।

वार्त्ता साहित्य के गद्य की परीक्षा

वार्त्ता साहित्य में ब्रज भाषा गद्य का जो रूप मिलता है, उसकी परीक्षा के लिए यह आवश्यक है कि ब्रज भाषा गद्य की परम्परा का संक्षेप में उल्लेख करके उस काल के अन्य उपलब्ध गद्य से और उसके पीछे के भी जो ब्रज भाषा गद्य के रूप प्राप्त हैं उनसे भी इस गद्य की तुलना की जाय और इस तुलना के आधार पर इसकी प्राचीनता अथवा अप्राचीनता सिद्ध की जाय। इसके अतिरिक्त शब्द प्रयोग, वाक्य प्रयोग, वाक्यांश प्रयोग, और व्याकरण की कसौटी पर भी इन ग्रंथों की भाषा को कस कर यह निर्णय किया जाय कि जिस रूप में ये ग्रन्थ आज प्राप्त हैं, उस रूप में ये भाषा और शैली के आधार पर कहाँ तक प्राचीन ठहराये जा सकते हैं। इस परीक्षा से इनके सम्बन्ध में फैले और फैलाये गये भ्रमों का कुछ अंश तक अवश्य निवारण हो जायगा। इस काल की पुष्टि संम्प्रदाय के बाहर की ब्रज भाषा गद्य के रूप में प्राप्त करने में कठिनाई है। इस कारण उसे तुलना के क्षेत्र से इच्छा रखते हुये भी बाहर रखना पड़ा है। दूसरे, ब्रज भाषा गद्य के विकास का वास्तविक श्रेय पुष्टि सम्प्रदाय को ही है। इसलिए सम्प्रदाय में उपलब्ध गद्य के रूपों को इस अध्ययन में प्रधानता देनी पड़ रही है। ब्रज भाषा गद्य की परम्परा के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के आचार्यों ने जो अब तक लिखा है उस सामग्री का उपयोग भी इसमें कर लिया गया है।

मिश्र बन्धुओं ने खोज रिपोर्ट के आधार पर श्री गोरखनाथजी के एक गद्य ग्रन्थ का उद्धरण दिया है और, फिर उसी उद्धरण को अन्य विद्वानों ने ज्यों का त्यों प्राचीन हिन्दी गद्य के उदाहरण के रूप में उद्धृत कर दिया है। श्री गोरखनाथजी का समय मिश्र बन्धुओं ने संवत् १४०७ के आस पास बताया है। अतः ब्रज भाषा गद्य का यह नमूना विक्रम संवत् की पन्द्रहवीं शताब्दी का है। इस गद्य का उद्धरण इस प्रकार हैः—

'सो वह पुरुष सम्पूर्ण तीर्थ अस्नान करि चुकौ अरु सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मण को दे चुकौ अरु सहस्र यज्ञ करि चुकौ, अरु देवता पूजि चुकौ, अरु पितरन को संतुष्ट करि चुकौ, स्वर्ग लोक प्राप्त करि चुकौ, जा मनुष्य के मन छन मात्र ब्रह्म के बिचार बैठौ।'

(महात्मा गोरखनाथ, संवत् १४०७ के लगभग, उत्तर प्रारम्भिक हिन्दी) प्रौढ़ माध्यमिक हिन्दी (संवत् १६००–१६४८।)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी जमे के सिषर पर शब्दायमान करत है त्रिविध वायु बहत है हे निसर्ग स्नेहाद्र सषी कूं संबोधन, प्रियाजू नेत्र कमल कूं कछुक मुद्रित दृष्टि होय कै बारम्बार कछू सखी कहत भई यह मेरौ मन सहचरी एक क्षण ठाकुर को तजत नांहीं।

गंगाभाट—(१६२६)

इतनौ सुनके पातशाह जी श्री अकबर शाहजी ने आदसेर सोना नरहरदास चारन को दिया इनके डेढ़ सेर सोना हो गया।

गोस्वामी गोकुलनाथ जी (संवत् १६१८)

तब दामोदरदास ने विनती कीनी जो महाराज आप याको अङ्गीकार कब करोगे तब श्री आचार्य महाप्रभु जी ने दामोदर सो कह्यौ जो यासो अब वैष्णव को अपराध पड़ैगो तो हम याको लक्ष जन्म पीछे अङ्गीकार करेंगे।

महात्मा नाभादास जी (संवत् १६६० के आस पास)

तब श्री महाराजकुमार प्रथम वशिष्ट महाराज के चरन छुई प्रनाम करत भए। फिर अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिर श्री राजाधिराजजू को जौहार करिकै श्री महेन्द्रनाथ दशरथ जू के निकट वैठते भए।

गोस्वामी तुलसीदास (१६६६)

संवत् १६६६ समये कुआर सुदी तेरसी वार शुभ दिने लिखीत पत्र आनन्द राम तथा कन्हई के अंशविभाग पूर्व मु आगे जे आग्य दुनुहु जने मागा जे आग्य में शे माना दुनुहु जने विदित तफसील अंश टोडरमल, के माह जे विभाग पदु होतरा।

बनारसीदास (संवत् १६७०)

सम्यग् दृष्टि कहा सो सुनो। संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्त करि दिखाइयतु सो सुनो।

जटमल (संवत् १६८०)

हे बात की चीतौड़ गड़ को गोरा बादल हुआ है जीनकी वार्ता की किताब हींदवी में बनाकर तैयार करी है। गोरे की आवरत आवे का वचन सुनकर आपने पावंद की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सिवपुर में जाकर दोनों मिले हुवे। उस जग आलीषान बाबा राज्य करता है मसीह वाका लड़का है सो सब पठानों में सरदार है जये से तारों में चन्द्रमा तारा है ओयसा वो है।

देवजी, पूर्व अलंकृत हिन्दी (संवत् १७६० के आस-पास)

महाराज राजधिराज ब्रजजन समाज विराजमान चतुर्दस मुवन विराज वेद निधि विद्या सामग्री श्रीकृष्ण देव, देवाधिदेव, देवकीनंदन, जदुदेव, यशोदानंदन, हृदयानंद, कंसाधिनिकंदन वंसाक्तंस, अंसावतारं जय जय।

सूरत मिश्र (संवत् १७६७)

सीस फूल सुहाग अरू बेंदा भाग ए दोऊ आप पांवड़े, सोहे सोने के कुसुम, तिन पर पैर धरि आए हैं। (कवि प्रिया टीका)

भिखारीदास जी (संवत् १७६६ के निकट)

धन पाए ते मूर्खूह बुद्धिवंत हूवै जात है। और युवावस्था पाए तें नारी चतुर हुवै जात है यह व्यंग्य है। उपदेश शब्द लक्षरणा सों मालूम होता है, औ वाच्य में हू प्रगट है।

ललित किशोरी तथा ललित माधुरी (संवत् १८००)

मलय गिरि को समस्त वन वाकी पवन सों चरन छवै जाय वाके कछू इच्छा नाहीं।

(मिश्रबन्धु विनोद भाग १, पृष्ठ संख्या, १५०, १५१, १५२)

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में पुरानी ब्रज भाषा गद्य के निम्नलिखित अंश उद्धृत किए हैं।

(१)

इस गद्य को हम संवत् १४०० के आस-पास के ब्रजभाषा गद्य का नमूना मान सकते हैं :-

श्री गुरु परमानन्द तिनको दंडवत है। हैं कैसे परमानन्द, आनन्दस्वरूप हैं शरीर जिन्हि को, जिन्हि के नित्य गाए तें सरीर चेतन्नि अरू आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरिष सो मछंदरनाथ को दंडवत करत हैं। हैं कैसे वे मछंदरनाथ ? अमर ज्योति निश्चत हैं अंतहकरन जिनके अरू मूलद्वार तें छइ चक्र जिनि नीकी तरह जानैं।.......चाहे जो हो यह १४०० के आस-पास के ब्रजभाषा गद्य का नमूना है। (शुक्ल)

(२)

'श्री वल्लभाचार्य जी के पुत्र गौसांई जी विट्ठलनाथ जी ने शृङ्गार रस मंडन नामक ग्रन्थ ब्रज भाषा में लिखा। उनकी भाषा का स्वरूप देखिये—प्रथम की सखी कहतु हैं। जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की। दासी करि जो इनको प्रेमामृत में डूबि कै इनके मंद हास्य ने जीते हैं अमृत समूह ताकरि निकुंज विषै शृङ्गार रस श्रेष्ठ रसना (रचना) कीनों सौ पूर्ण होत भई। 'यह गद्य अपरिमार्जित और अव्यवस्थित है।

(३)

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता

इसका रचना-काल सत्रहवीं शताब्दी माना जा सकता है। दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता तो और भी पीछे औरंगजेब के समय के लगभग की लिखी प्रतीत होती है। इन वार्त्ताओं की कथाएँ बोल-चाल की ब्रजभाषा में लिखी गई हैं जिसमें कहीं-कहीं बहुत प्रचलित अरबी फारसी के शब्द निःसंकोच रखे गये हैं। साहित्य, निपुणता या चमत्कार की दृष्टि से ये कथायें नहीं लिखी गई हैं उदाहरण—सो श्री नंदगाम में रहतो सो खंडन ब्राह्मण शास्त्र पढ़यो हतो....भगवद्यश सुननो होवे तो इहाँ आवो।

(४)

नाभादास जी ने भी सम्वत् १६६० के आसपास 'अष्टयाम' नामक एक पुस्तक ब्रज भाषा गद्य में लिखी जिसमें भगवान राम की दिनचर्या का वर्णन है। भाषा इस ढंग की है :—

'तब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ट महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिर ऊपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिर श्री राजाधिराज जू को जौहार करि कै श्री महोन्द्रनाथ जू दशरथ जू के निकट बैठते भए।'

(५)

संवत् १६८० के लगभग बैकुण्ठ मणि शुक्ल ने, जो ओरछा के महाराज जसवन्त-सिंह के यहाँ थे। ब्रजभाषा गद्य में 'अगहन महात्म्य' और 'वैसाख महात्म्य' नाम की दो छोटी छोटी पुस्तकें लिखीं। द्वितीय का गद्य :—

'सब देवतन की कृपा तें बैकुंठ मनि सुकुल जी श्री रानी चंद्रावती के धरम पढ़िवे के अरथ यह जसरूपं ग्रन्थ वैसाख महातम भाषा करत भए। एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा से उठि कै सुमेर पर्वत को गए।.......'

(६)

संवत् १७६० के उपरान्त की नासिकेतोपाख्यान की भाषा—

हे ऋषिश्वरो और सुनो, मैं देख्यो है सो कहूँ। कालैं वर्ण महादुख के रूप जम किंकर देखे सर्प, बीछू, रीछ, व्याघ्र सिंह बड़े-बड़े गध्रा देखे। पंथ में पापकर्मी कों जमदूत चलाइकै मुदगर अरू लोह के दंड कर मारैं देते हैं। आगे जीवन को त्रास देते देखे हैं। सु मेरौ रौम रौम खरो होत है।'

'गद्य में ग्रंथ लिखना जहाँ तक पता चलता है सबसे प्रथम महात्मा गोरखनाथ ने ही प्रारम्भ किया था।' गोरखनाथ की भाषा प्रांतीय भाषा से पूर्ण प्रभावित तथा प्राचीन ब्रज भाषा सी जान पड़ती है। इसके पश्चात् हमें कृष्णभक्ति काल में गद्य के कई ग्रंथ मिलते हैं जिनमें दोनों वार्त्ताऐं प्रधान हैं। इनकी भाषा पूर्ण रूपेण ब्रज भाषा ही है और शैली पंडिताऊ तथा समझाने वाली ही सरल है। इनके उपरान्त और भी कई पुस्तकें गद्य में लिखी गई हैं, किन्तु सबमें ब्रज भाषा तथा उसकी विशेष शैली की ही प्रधानता रही है।''''''''यह अवश्य हुआ है कि ब्रज भाषा गद्य का पूरा प्रचार प्राचुर्य न हो सका, उसे ब्रज भाषा काव्य ने दबा रखा'''''' उसका प्रयोग प्रायः टीका टिप्पणियों में संकीर्णता के साथ सीमित सा हो गया। अतः उसका वह रूप जो वार्त्ता आदि में मिलता है, वदल गया और टीकोचित रूप चल पड़ा। यह रूप जटिल, अव्यवस्थित और अनगढ़ सा होकर दुर्वोध ठहरता था, इसीलिए इसका विकास, प्रचार न हो सका और न इसका साहित्य ही बन सका।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ, संख्या ५८०-५८१)

नोट—श्री गोरखननाथ जी जिनका समय श्री राहुल जी ने तथा डाक्टर रांगेय राघव ने विक्रमी की ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त ब्रज भाषा गद्य के रूप में राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री गुसांई हितहरिवंश जी की लिखी एक चिट्ठी का उल्लेख इस प्रकार है—

श्री मुख पत्री लिखती। श्री सकल गुण सम्पन्न रसरीति वहावनि चिरंजीव मेरे प्राननि के प्रान बीठलदास जोग्य लिखति श्री वृन्दावन रजोपसेवी श्री हरिवंश जोरी सुमिरन वचनौ। जोरी सुमिरत रेहो। तिहारे हस्ताक्षर बारम्बार आवत हैं। सुख अमृत स्वरूप हैं। बांचत आनन्द उमड़ि चलै है। मेरी बुद्धि को इतनी शक्ति नहीं कि सहि सकें। पर तोहि जानत हौं। श्री स्वामिनी जू तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। हम कहा आशीर्वाद दैंहि। हम यही आशीर्वाद देत हैं कि तिहारौ आयुस बढ़ौ। और तिहारी सम्पत्ति बढ़ौ। और तिहारे सकल सम्पत्ति बढ़ौ। और तिहारे मन को मनोरथ पूरन होहु। हम नेत्रन सुख देखें। हमारी भेंट यही है। यहां की काहू बात की चिंता मति करो। तेरी पहिचानि तें मोकों श्री श्याम जी बहुत सुष देत हैं। तुम लिख्यो हो दिन दश में आवेंगे तेई आसा प्रान रहे हैं। श्री श्याम जू वेगि ले आवें चिरंजीव कृष्णदास को जोरी सुमरिना वांचनौ। कृष्णदास मोहनदास को कृष्णसुमिरन रंगा कौ दंडौत। बनमाली धर्मसाला को कृष्ण सुमिरन बांचनौ।

यह चिट्ठी संवत् १६४० के आसपास की है। गोस्वामी तुलसीदास के लिखे पंचनामें की कुछ पंक्तियां—

संम्वत् १६६९ समये कुआर सुदी तेरसी बार शुभ दिने लिखित पत्र आनन्दराम तथा कन्हाई के अंश विभाग पूर्व भू आगे जे दुनहु—जने मांगा। जे भाग्य मैं शे प्रमान माना दुनहु,

जाने विदित तफसील अंश टोडरमल के माह जे विभाग पद होत रा''''''''मौजे मदैनी मह अंश पांच तेहि मंह अंश दुइ आनन्दराम तथा लहरतारा सगरे उ तथा पितुपुरा अंश टोडरमल का तथा तमपुरा अंश टोडरमल की हुज्जती नाश्ती—

नोट—यह बोलचाल की अवधी में लिखा हुआ है ।

संवत् १६७० के लगभग के जैन कवि बनारसीदास लिखित गद्य का नमूना—

'सम्यग् दृष्टि कहां ? सो सुनो। संशय विमोह, विभ्रम तीन भाव जामें नाहीं सो सम्यग दृष्टी। संशय विमोह, विमुख कहां ? ताको स्वरूप दृष्टान्त करि दिखाइयतु है सो सुनो।'

संवत् १८५२ के लगभग जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह की आज्ञा से तैयार की हुई आइनेअकबरी की भाषा बयनिका के गद्य को नमूना है—

'अब शेख अब्दुल फजल ग्रन्थ को करता प्रभु को नमस्कार करि के अकबर बादस्याह की तारीफ लिखने को करत है अस कहै है—या की बड़ाई अरू चेष्ट अरू चिमत्कार कहां तक लिखूं। कहीं जाता नहीं। तातें याके पराक्रम अस भांति के दसतूर वा मनसूबा दुनिया में प्रगट भये ताको संक्षेप लिखित है।

काव्य संग्रहों के बीच आने वाले टीका गद्यों का कवियों द्वारा अपनी ही रचनाओं की व्याख्या में प्रयुक्त ब्रज भाषा गद्य का एक नमूना—

(१) शुजाउद्दोला के दरबारी कवि श्री हरिनाथ गुजराती के संग्रह कवित्त सं० (१८२१)—एक मर्दने एक चिरिया पकरी वा चिरिया ने पूंछ्यो जो तू मोकों पकरि लायो अब मोकों तू कहा करैगो तब वाने कही जो में तोको मारि के खाऊंगो।'

(२) तथा अन्य ग्रंथ

रामस्नेह सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरणदास के अरमभौविलास' संवत् १८४५।

(३) रसिक गोविन्द के रसिक गोविन्दान्दघन—संवत् १८५८।
(४) प्रतापशाह—व्यंगार्थ कौमुदी—संवत् १८८२।
(५) रामराज—काव्य प्रभाकर—संवत् १९०२।

संवत् १७०७ के एक इकरारनामे की प्रतिलिपि

श्री हरि

लिखित विट्ठल राइ दामोदर जी सुत श्री गोवर्द्धननाथ जी के देवालै की सेवा श्री वल्लभाचार्य करते ता पाछे श्री विट्ठलेश्वर दीक्षित करते उनके सात बालक श्री गिरधर दास जी, श्री गोविन्द जी, श्री बालकृष्ण जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री रघुनाथ जी, श्री यदुनाथ जी, श्री घनश्याम जी ज्यों छहौं भाइनि सौं चले त्यों एनके कुल सौं चलै ज्याहि या बात तें कोई घाटि बाढ़ि न करे सो श्री नाथ जी तें विमुख श्री नाथजी को अपराधी लौकिक गुनहगार यह बात महाराजा श्री जसवंतसिंह जी, महाराजा श्री जयसिंह, महाराजा श्री विट्ठलदास के आगे चुकी मिती चैत्र वदी ७ गूरौ संवत् १७०७ मुकाम शाहजहांनाबाद।

महाराजा जसवंतसिंह — अत्र साषी राजा जसवंतसिंह महाराजा

(हस्ताक्षर)

जयसिंह जी

राजा विट्ठलदास जी — (अत्र साषी राजा विट्ठलदास)

पुष्टि सम्प्रदाय का गद्य

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का ब्रजभाषा गद्य हमें श्री महाप्रभु जी वल्लभाचार्य रचित 'मार्ग सिद्धान्त' नामक ग्रंथ से जिसका श्री परीख जी ने ८४ अपराध नाम से उल्लेख किया है, इस प्रकार प्राप्त होता है—

परि-आगे तो काल कठिन है तातें तुम जो पूछोगे सो तो तुम ही करोगे। तातें आगें तो कोऊ करेंहुगो नहीं अरू पूछेहुगो नहीं। जाको श्री गिरधरलाल जी की कृपा होइगी सोई पूछेगो और सोई करेगो। या कलियुग के जीव काहां तांई पूछेंगे। काहा तांई करेगे। अष्ट उपाधि ग्रसित जीवहें। प्रातःकाल तें लेकें सो सायंकाल पर्यन्त चौरासी अपराध हैं। तब वैष्णव पूछे जो। श्री महाप्रभु जी अष्ट उपाधि को लक्षण कहो।[1]

(मार्ग सिद्धान्त, हस्तलिखित प्रति, श्री द्वारकादास के संग्रह से पृष्ठ संख्या ९७३) इसी काल का एक दूसरा हस्तलिखित ब्रज भाषा गद्य ग्रंथ मुझे श्री द्वारकादास जी के संग्रह में प्राप्त हुआ है जिसका नाम 'मूल स्थान की वार्त्ता' है और इसमें दिए हुए गद्य का रूप इस प्रकार है—

अब पद्मनाभदास जी ।। तथा कुंभनदास ।। प्रभुदास जी ।। इनकी परस्पर रहस्य वार्त्ता ।। सो आतर्थ लीला वर्णन कीनें हे सो श्री स्वामिनी जी के आभरण तें। श्री स्वामिनी जी की सहचरीन को प्रागट्य ।। श्री वृन्दावन आदि अखंडित हे ।। सो श्री महाप्रभु जी नें प्रगट कीनो हे ।। परि यह लीला आंतर्य हे ।। उहां श्री महाप्रभु जी कल्पद्रुम पर ।। परम रसावेष्टित हें ।। तिनके अंक ते अलौकिक सूर्य की आभा ।। ताहुतें विशेष आभायुक्त ।। भुवन पंक्ति गोलाकार ।। तहाँ श्रीमद जमुना जी के दोऊ तट ।। सिढ़ी रत्न खचत सुबर्ण सुबास सहित चैतन्यात्मक कोमल सौरम युक्त जो ।। श्री महाप्रभु जी के चरण ।।[2]

(मूल स्थान की वार्त्ता, हस्तलिखित, पृष्ठ ८९)

इसके पश्चात् सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के ब्रज भाषा गद्य के रूप में हमें श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का निम्नलिखित पत्र प्राप्त है जिसके द्वारा इस गद्य परम्परा पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। यहां मैं यह स्पष्ट रीति से लिख देना चाहता हूँ कि 'शृङ्गार रस मंडन ग्रन्थ' संस्कृत ग्रन्थ है और इसकी जो टीका उपलब्ध है उसके रचयिता श्री गोकुलनाथ जी हैं, श्री विट्ठलनाथ जी नहीं। इस ग्रन्थ के जो उद्धरण हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्राप्त हैं, वे किसी भ्रष्ट और अशुद्ध प्रति के आधार पर दिए गए हैं जिससे इसकी भाषा का ठीक रूप सामने नहीं आता है। श्री गट्टूलाल जी के मन्दिर में सुरक्षित श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ के १७ संस्कृत पत्रों में से एक पत्र ब्रज भाषा गद्य में लिखे हुए पत्र का उद्धरण—

---

१. मार्ग सिद्धान्त।

२. मूल वार्त्ता।

आलोचना—इस पत्र की संख्या १४ है और यह सब पत्र पुष्टि भक्ति सुधा मासिक पत्रिका जो बम्बई से प्रकाशित होती है, उसके वर्ष २, ३, ४ के अंकों में प्रकाशित हो चुके हैं।

पत्र—स्वस्ति श्री विट्ठल दीक्षितानां।

धर्यसी वैष्णवेषु सायणा कृष्णदासयोश्चाशिषः। शमिहा भवदीयं भद्रमाशास्महे। अपरंच=तुम्हारे समाचार तुम्हारे पत्र ते पाये। सदा भगवत् शरण रति रहि यहु। ऐहि के दुःख प्राप्त हू भये भगवदीच्छा, तादृशी निजकरि भगवदाधी न आयुष्य हैं, इह जानि के दुःख न करनो। स्व प्रभु चरणारविंद ऐहिके पारलौकिक जानि कर भजियहु। किमधिकं।

श्री गुसांईजी और दामोदरदास हरसानी के संवाद की प्राचीन प्रति प्रयुक्त गद्य का उदाहरण—

'तब दामोदरदास ने कही जो सो तो सांची बात है। जो श्री आचार्य जी महाप्रभुन की लीला बात तो श्री आचार्य जी महाप्रभु आप जाने। और जीवकी तौ गम्य नाहीं हैं। जा श्री आचार्य जी महाप्रभुन की बात कहें परि मों सो ही श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने कृपा करिके कह्यो हें सो प्रसंग में हूँ श्री आचार्य जी महाप्रभुन सों बात पूंछी। सो आप कृपा करके कहें हैं। सो प्रसंग तुम सो कहत हों सो आप कृपा करके सुनिए।

(इस संवाद की प्राचीन प्रतियों के चित्र अन्यत्र दिये गए हैं)।

श्री चतुर्भुजदास कृत षटऋतुवार्त्ता के गद्य का उदाहरण—

कोसी को वार्त्ता—(प्राचीन संग्रह) के गद्य का उद्धरण—

'सो वह वरदाद पूरन करिवे के लिये यह लीला आपने दिखाई और वरदान दियो ब्रह्मा जी कूं चार भुजा के ठाकुर सो ब्रह्मा जी कूं बुलाय के यहाँ कोसी में कह्यौ यह ले हो तुमने चार भुजान के ठाकुर माँग्यो सो। तब मुख्य द्वारिकाधीश को अपने ब्रह्म लोक कूं ले गये। तब ब्रह्मा जी पुष्कर में आयके यज्ञ करियो।'

(वल्लभीय सुधा, अङ्क ५–६ संवत् २०११ वि०)

इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। एक वैष्णव प्रभुदास (जतीपुरा) के पास दूसरी बहादुरपुर (बड़ौदा) के छगनलाल कीर्तनियाँ के पास है जो मथुरा जिले के केशवदेव ब्रजवासी भरावल की प्रति की प्रतिलिपि है।

श्री गोकुलनाथ जी के चौबीस बचनामृत—

प्रथम बचनामृत 'सो प्रथम तो अन्याश्रय न करनो। अन्याश्रय महाबाधक है। और आश्रय तो एक श्रीनाथ जी को ही करनो। सो आश्रय सिद्ध भये तें सर्व कार्य होत हैं। और यह लोक ने तथा परलोक में सब ठिकाने सुख पावत हैं। सो यह जानि कै आश्रय तौ एक श्री जी को ही करनो॥.......और जो अनन्य भक्त है सो तो अन्याश्रय सर्वथा नहीं करत है। जब कछु लौकिक सुख दुःख जीवकों होत हैं तब यह दृढ़ता राखत हैं। जो श्री जी करेंगे सो होएगो। मैं तो दास हूं। सुख दुःख तौ देहके प्रारब्ध सों होत हैं। सो देह को भोगे तें छुटेंगौ॥ ऐसी दृढ़ता राखनी।

(छठी आवृत्ति, संवत् १९९६ लल्लूलाल छगनलाल देसाई द्वारा प्रकाशित)

श्रीगोकुलनाथ जी स्फुट बचनामृत से उद्धृत गद्य—

'जो एक ब्राह्मण राघवदास वैष्णव हतौ सो जब लौं श्री गुसांई जी भीतर होय तब लौ

वैष्णवन आगें श्री सुबोधिनी कहैं ।। जब श्री गुसांईजी बाहिर आए सो वासूं पूछूं (पूंछू) जो ए कहा देखत हौ । तब कह्यो जे राज श्री सुबोधिनी जी । जब श्री गुसांई जी । कह्यो सो कोंन ठौर देखत हो । तव राघवदास कह्यौ । जे महाराज तौ तुमनैं कठिन अमनै सूं कठिन । समुझी तौ समुझी नहीं तो नहीं ।'

(संख्या १३, १७६६ संवत् की प्रति)

श्री गोकुलनाथ जी कृत 'श्री गुसांई जी की ब्रजयात्रा' (संवत् १६००) से उद्धृत गद्य–

'प्रथम श्री विश्रांत घाट है तहां श्री आचार्य जी महाप्रभुन की बैठक है । तहां कंस कौ मारिकै श्री कृष्ण जी ने विश्राम कियौ है वहाँ श्री ठाकुरजी स्नान करिकै श्रम निवारन किए हैं तहाँ सब मथुरा के भक्तन नै श्री ठाकुरजी की स्तुति करी है तातें श्री मथुरा जी में विश्रान्त घाट मुख्य है । तहाँ बलभद्र घाट है तहाँ कंसखार है ता पास गुहन तीर्थ हैं तहां सतघरा है– काशी के सेठ गोकुलदास जी के यहां विद्यमान श्री गोकुलनाथजी द्वारा अंकित ताम्रपत्र के गद्य का उदाररण—

स्वस्ति श्री गोस्वामि श्री गोकुलनाथ जी नां वचनात् निज सेवक जादोजी व्यास ब्राह्मण दीसावाल को नाम सुनायवे की आज्ञा दीनी । वाराणसी प्रभृति के वैष्णवन को नाम सुनाये । ठाकुर जी की सेवा और पादुका जी इनके माथे पधराए । श्री श्री संवत् १६६२ मिती मार्ग शीर्ष कृष्णा ११ सौम्यवासरे ।। श्री

श्री गोकुलनाथ जी कृत 'रहस्य भाव भावना'—(हस्तलिखित) प्रति गद्य का उदाहरण—

'अब प्रथम नित्य की भावना लिख्यते: ।। वैष्णव कों प्रातकाल होत ही भगवद् सेवा को चिंतत करनो । रात्रि को वियोग विचारनो ।। दरसन की आस राषनी ऊठत ही अपने कंठ की माला को दरसन करनो । माला भगवदीय हैं इनके दरसन ते भगवद भाव उत्पन्न होय । प्रथम श्री आचार्य जी को स्मरन करि नमस्कार—(फट गया)'

सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

श्री हरिराय जी कृत 'पुष्टि दृढ़ाव' नामक ब्रजभाषा गद्य ग्रंथ से उद्धृत गद्यांश—

जैसे श्री हनुमान जी ने मुक्तामाल को हार फोर डारयो जो रामचन्द्र जी को वामें नाम नाहीं हतो । तातें हार डार दीनो । तैसे अपने श्री प्रभुजी के गुणानुवाद गान न होत होवें तहां ते उठि जैये । ऐसो पतिव्रता को धर्म है । जैसे मीराबाई के घर कीर्तन होत हते । तहाँ श्री आचार्य जी पद गावत हुते । तब मीराबाई बोली जो अब श्री ठाकुर जी के पद गावो । तब रामदास वैष्णवन ने कही, जो दारी रांड ये कौन के पद गावत हैं । जातेरो मुख न दुखुंगो । तब सब अपुनो कुटुम्ब लेकें और गाम गयो ।

ताते सर्वथा चरणामृत लिये बिना जल न लीजिये ।

जैसे श्री आचार्य जी के सेवक त्रिपुरदास कायस्थ ने चरणामृत प्रसाद बिना जल न लीनो ।

(रामदास संपादित, लक्ष्मी वङ्केटेश्वर प्रेस, संवत् १९८८ संस्करण)

अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

श्री हरिराय जी का संवत् १७२६ का पत्र

स्वस्ति श्री हरिरायस्य परमाप्ततमेषु यादवेन्द्रभट्ट, मधुसूदनभट्ट, गोपीकान्त प्रभृतिषु नतय: ।।शमत्र।। तत्रत्यमाशासे ।।अन्यच्च।।

तुम्हारो पत्र खोपिया कासिद के हाथ समधियाने तें आयौ है सो हम तुम पास पठयो है जैसो जाने तैसो उत्तर लिखियो । हम वारो पत्र हू तुमकों पठयो है पाछे जो तुम्हारो विचार होइ सो करियो । मथुरानाथ भाई के संग ठाकुर पास है ठाकुर राणा के देश में तालाब के पास है राणा दूसरो गाँव देन कह्यो है नयौ तहाँ बैठेंगे, आज हू बैठे नाँहीं ।। किमधिकं ।। जमुना कों प्रसन्न राखियो । मेरी दिसि तें बहुत पूछियो ।

इस पत्र को श्री परीख जी ने हरिराय जी के सेवक का पत्र माना है परन्तु 'श्री हरिरदासस्य' के पश्चात् तथा 'तुम्हारो पत्र' के पश्चात् इस सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता है । यह पत्र स्वयं श्री हरिराय जी का ही है । इसका चित्र भी अन्यत्र दे रहे हैं । यह पत्र स्व० श्री वसंतराम शास्त्री से प्राप्त हुआ था ।

श्री हरिराय जी के छोटे भाई श्री गोपेश्वर जी विरचित शिक्षापत्र नामक सुप्रसिद्ध और प्रचलित गद्य ग्रन्थ की भाषा (टीका) का उदाहरण—

शिक्षापत्र की टीका—पत्र ३ श्लोक ८ की टीका—

'अन्य मार्ग के धर्म सुनिये नाहीं, अन्यमार्गीय क्रिया कछु न करिये । सो गोविंद दुबे की वार्त्ता में प्रसिद्ध है जो एक समै गोविंद दुबे मीराबाई के घर गये तहाँ मीराबाई ने आदर सम्मान करि गोविंद दुबे को राखे । सो मीराबाई भगवद भक्त हती परन्तु श्री आचार्य जु महाप्रभुन के पुष्टि मार्ग में नाहीं हती । सो यह गोविन्द दुबे की बात श्री गुसांई जी जानी जो गोविन्द दुबे मीराबाई के घर है तब श्री गुसांई जी एक श्लोक लिखे—

'भगवत्पद पद्म राग जुषो नहि युक्तितरं मरणेपि तराम्'

पत्र ३ श्लोक ११ की टीका—

यह सर्वोत्तम की टीका श्री गोकुलनाथ जी विरचित है तामें लिखे हैं जो पद्मनाभदास सरीखे भगवदीय बिरले हैं ।

काका बल्लभ जी के बावन बचनामृत से उद्धरण—

'अब आप आज्ञा करे । जो एक ब्राह्मण हुतो वानें अपनी स्त्री को श्री गीताजी पढ़ाये और कछू ब्रह्म ज्ञान हूँ सिखाये और आरवो दिन वे वार्त्ता करिवो करे । सो एक दिन वाके पिता को श्राद्ध आयो, सो ब्राह्मण भोजन कुं घर बुलायो, आप नदी पर श्राद्ध रखे कुं गयो और स्त्री को कछु खावे की रूचि भई सो वा विरियां वे ब्रह्म ज्ञान विचारके बैठी । सो श्लोक 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हुवि ब्रह्माग्नो ब्रह्मणां हुतं । आश्लोक को अर्थ विचारते मन में आइ जो में हूँ ब्रह्म और श्राद्ध हू ब्रह्म है और सामग्री हूँ । ब्रह्म हे, कर्त्ता भोक्ता सब ही ब्रह्म है, तासों में खाऊँगी तो कुछ चिन्ता नहीं है । यही विचारि के खीर को दोना भरीके खावे बैठी ।' (प्रकाशित)

गोस्वामी श्री द्वारिकेश जी भाव भावना वाले की 'भाव भावना' से उद्धरण—संवत् १७५० से १८०० के आसपास के गद्य का नमूना —

आधुनिक भक्तन को उद्धार तब ही होय जब श्री महाचार्य को दृढ़ आश्रय होय । श्री महाप्रभु जी भूलोक में प्रगट होय विचारे । भगवदाज्ञा यों है जो दैवी जीवन को उद्धार करो । नवधा भक्ति बिना प्रेम लक्षणा भक्ति नहीं होय । प्रेमलक्षणा भक्ति बिना पुरुषोत्तम की प्राप्ति नहीं होय । नवधा तो एक एक कठिन है । राजा परीक्षित सरिखो होय तब मर्यादा मार्गीय श्रवण भक्ति होय । 'पुष्टि मार्गीय श्रवण भक्ति तो याहू तें आगे है ।'

(वसंतराम हरिकृष्ण शास्त्री अहमदाबाद की प्रति से)

तुलना

८४ अपराध अथवा मार्ग सिद्धान्त नाम ग्रन्थ ।	८४ वष्णव की वार्त्ता ।	
परि	परि हमको·······	
आगे	मेरे आगे दमोदरदास की देह न छूटे ।	
तो		
काल कठिन		
हें		
तातें	पुरुषोत्तम········तातें—	
पूछोगे, करोगे	भली जानोगे सो करोगे—	
करेहु गो नहीं		
पूछेहु		
होइगी		
सोई		
करेगो		
कहां ताई		
हें		
ते		
लेके		
कहा		
मूल स्थान की वार्त्ता ।	८४	२५२
दोऊ	अम्मा क्षत्राणी ।	
कीनै	,,	
आमरणतें		
अखंडित	दूध षीवत है—	
करनो	क्षत्राणी महावन।	
सो	सो ।	
होत हैं		
पावत		
करत है		
कछु		
राखनी		
स्फुट वचनामृत	२५२	रूपचंद नंदा की वार्त्ता ।
हतो	पधारौ हते ।	
जब लौ, तब लौ		
हो		
कहै		

वासूं ।

देखत हों ।

डाकौर संस्करण की चौरासी वार्त्ता में से नारायणदास ब्रह्मचारी की वार्त्ता वैष्णव। संख्या १९ की भाषा की परीक्षा—(प्रथम पच्चीस पंक्तियाँ) (सो......बरसेगी) ।

सो—सर्वनाम (नित्य सम्बन्धी) ।

नारायणदास—संज्ञा व्यक्ति वाचक ।

के— सम्बन्ध का चिन्ह ।

सेव्य ठाकुर जी श्री गोकुल चन्द्रमा जी—(श्री आदर सूचक शब्द) ।

सो—नित्य संबंधी—सर्वनाम ।

रारायणदास श्री गोकुलचन्द्रमा जी—(क) की—संबंध का चिन्ह अवव्यय ।

नीकी—विशेषण ।

सौं—करण अपादान ।

करते—क्रिया ।

और—सुमुच्चय ।

गायन—संज्ञा बहुवचन ।

कों—संबंध का चिन्ह ।

घास—संज्ञा ।

खवावते—कृदंत भविष्य निश्चयार्थ ।

सो—सर्वनाम ।

ताको—सर्वनाम ।

तात्पर्य—अव्यय ।

जो—संम्बन्ध वाचक सर्वनाम (मूल) ।

श्री ठाकुर जी—संज्ञा ।

दूध—संज्ञा ।

आरोगत हैं—आरोगना सांप्रदायिक शब्द है । हैं—क्रिया निश्चयार्थ बहुवचन ।

जो—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम ।

मति—नहीं—(ब्रज भाषा का मुहाविरा निशेधवाचक क्रिया विशेषण ।

दूध—संज्ञा ।

में—संयुक्त परसर्ग ।

रज—धूल ।

आवै—(आवे)—भूत कालिक कृदंत ।

ऐसे—प्रकार वाचक सर्वनाम मूलक विशेषण ।

करते—कृदंत

और श्री आचार्य जी महाप्रभु—(आदर सूचक सम्बोधन) ।

जब—कालवाचक क्रिया विशेषण ।

पधारते—भूतकालिक कृदंत ।

तब—क्रिया विशेषण काल वाचक ।

नित्य विशेषण काल सूचक ।
प्रातःकाल––संज्ञा ।
श्री गोकुल में––अधिकरण ।
पधारते––भूत कालिक कृदंत ।
धोवे––भूत कालिक कृदंत, कर्म सम्प्रदान ।
बरहे, बरह—जंगल ।
जा––सम्बन्ध वाचक सर्वनाम (विकृत) ।
ठौर—संज्ञा ।
मांटी—संज्ञा स्त्रीलिंग ।
खोदते––कृदंत ।
ता—सर्वनाम एक वचन नित्य सम्बन्धी ।
निकसतौ––भूत संभावनार्थ क्रिया ।
ता—सर्वनाम (नित्य सम्बन्धी) ।
ता––सर्वनाम (नित्य सम्बन्ध) ।
ऊपर—अधिकरण ।
माटी––संज्ञा स्त्रीलिंग ।
डारि—पूर्व कालिक कृदंत ।
उठि—पूर्व कालिक कृदंत ।
आवते—भूत कालिक कृदंत ।
परि—अधिकरण (पर) ।
को—कर्म सम्प्रदान ।
........त्यागी हुते—भूत निश्चायार्थ (क्रिया) बहुवचन ।
सोवत हुतो––भूत निश्चयार्थ (क्रिया) एकवचन ।
भये हुते––भूत निश्चयार्थ (क्रिया) बहुवचन ।
भये हैं—वर्तमान निश्चयार्थ ।
बिगार भयो है—भूत निश्चयार्थ एकवचन संयुक्त क्रिया ।
कूरौ––संज्ञा—बहुवचन ।
डारि आउ—वर्तमान आज्ञार्थ ।
सोई––निश्चय बोधक सर्वनाम ।
बुहार दीनौ––भूत कालिक कृदंत ।
नाहीं—नाई—समान—विशेषण ।
जगै––(जगह) वार्त्ता विशेषता ।
साम्हे––(सामने) विशेषण ।
दर्शन दीनों––भूत कालिक कृदंत ।
आप ही—सर्वनाम ।
कहनौ—भूत कृदंत ।
बरसेंगी—भूत कृदंत ।
पाछें—काल वाचक क्रिया विशेषण ।

डाकौर संस्करण की २५२ वैष्णव की वार्त्ता की वार्त्ता संख्या १३३ रूपा पोरिया की वार्त्ता की ब्रज भाषा की व्याकरण के अनुसार परीक्षा—

सो—सर्वनाम नित्य सम्बन्धी ।
वह—निश्चय वाचक सर्वनाम ।
रूपा—संज्ञा व्यक्ति वाचक ।
पोरिया—विशेषण ।
(श्रीनाथ जी) की—स्त्रीलिंग सम्बन्ध कर्म संप्रदान ।
सिघपौर—संज्ञा ।
बैठते हते—भूत निश्चयार्थ क्रिया ।
और—समुच्चय वाचक ।
रात कुं—कर्म सम्प्रदान अव्यय परसर्ग ।
धौल—संज्ञा—गति ।
गावते हते—पुल्लिग भूत निश्चयार्थ बहुवचन ।
एक—विशेषण ।
(गोविंद स्वामी) ने—कर्त्ता का चिन्ह ।
कहीं—स्त्रीलिंग ।
जो—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम ।
तुम—मध्यम पुरुष, बहुवचन सर्वनाम ।
धौत—रा—संज्ञा जाति वाचक ।
मत—नहीं—निषेधात्मक क्रिया विशेषण ।
गाओ—आज्ञार्थ ।
तुमारो—सर्वनाम सम्बन्ध पुल्लिग ।
राग—संज्ञा ।
आछो—विशेषण (समुदाय वाचक) ।
नहीं—निषेधात्मक क्रिया विशेषण ।
है—वर्तमान निश्चयार्थ क्रिया ।
तब—काल वाचक क्रिया विशेषण ।
विन—परसर्ग समान शब्द ।
ने—कर्ता का चिन्ह ।
न—निषेधात्मक क्रिया विशेषण ।
गायो—भूत कालिक कृदंत ।
तब—काल वाचक क्रिया विशेषण ।
(श्रीनाथ जी) कुं—कर्म सम्प्रदान ।
आखी रात—सब (गुजराती) ।
(नींदन) : आई—भूत कालिक कृदंत स्त्रीलिंग
सवारे—सबेरे-संज्ञा ।
जब—काल वाचक क्रियाविशेषण ।

(श्री गुसांईजी) ने—कर्त्ता का चिन्ह ।
श्रीनाथ जू कों जगाये—भूत कालिक कृदंत ।
तब—क्रिया विशेषरण काल वाचक ।
(नेत्र लाल) देखे—भूत कालिक कृदंत-बहुवचन ।
फेर—काल वाचक क्रिया विशेषरण ।
(श्रीनाथ जी) सों-करण अपादान ।
(श्री गुसांईजी) ने पूंछी-ने कर्त्ता का चिन्ह, भूतकालिक कृदंत ।
कूं—कर्म संप्रदान ।
उजागर—गुजराती (जागरण) तद्धित ।
क्यूं—कारण वाचक (विकृत सार) ।
जो—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम ।
(नित्य धौल) गावे हैं—भूत कृदंत ।
जब—क्रियाविशेषरण काल वाचक ।
हमकूं—बहुवचन सर्वनाम, (कूं)-कर्म संप्रदान ।
नींद आवे हें—संभावनार्थ ।
सो—सर्वनाम नित्य सम्बन्ध ।
(रात्रि को) गायो नाहीं-निषेधात्मक क्रियाविशेषरण ।
जा (सुं)—करण अपादान ।
रूपाकुं—कर्म सम्प्रदान ।
को कही, कों-सम्बन्ध कही, क्रिया भूत कृदंत ।
तेनें-ते—सर्वनाम, ने-परसर्ग ।
धौल—संज्ञा ।
क्यूं—कारण वाचक सर्वनाम ।
नहीं—निषेधात्मक क्रिया विशेषरण ।
गायो—भूत का कृदंत ।
नाही करी है—स्त्रीलिंग भविष्य निश्चयार्थ ।
गाइबे—क्रियार्थक-भाव वाचक ।
की—सम्बन्ध को चिन्ह ।
नहीं—निषेधात्मक क्रिया विशेषरण ।
क्यूं—कारण वाचक सर्वनाम ।
करी—भूतकाल कृदंन ।
तब—क्रिया विशेषरण काल वाचक ।
गोविंद स्वामी ने कही, ने, कर्त्ता का चिन्ह कही, भूत कृदंत ।
जो—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम ।
मोकुं—मो—मुझे सर्वनाम, उत्तम पुरुष, विकृत रूप ।
ये—निश्चय वाचक निकटवर्त्ती सर्वनाम ।
(खबर नहीं) हती—भूत निश्चयार्थ (स्त्रीलिंग)
कर्म ते कृपा न्यारौ है—मुहाविरी ।

चुप कर रहे—भूतकाल निश्चयार्थ बहुवचन ।
नित्य धौल गाते—संभावनार्थ (भूत) ।
नींद ग्रावती—संभावनार्थ ।
जगाया—भूत कालिक कृदंत ।
ग्राज्ञाकरी—भूत कालिक कृदंत ।
मोकुं—मो सर्वनाम एकवचन (विकृत) ।
कुं—कर्म सम्प्रदान ।
भूख लगी है—वर्तमान निश्चयार्थ ।
जगाय के बीनती करी—भूत कालिक कृदंत ।
न्हाय के—पूर्व कालिक कृदंत ।
सामग्री ले के—पूर्व कालिक कृदंत ।
भीतर पधारे—भूत निश्चयार्थ ।
ग्ररोगाए—भूत निश्चयार्थ ।
फेर—काल वाचक क्रिया विशेषरण ।
(पौरिया) पर—ग्रधिकरण ।
(प्रसन्न) भये—भूत निश्चयार्थ बहुवचन ।
(रूपा पोरिया) सूं—करण ग्रपादान ।
कितने—संख्या वाचक सर्वनाम मूलक विशेषरण ।
ऐसे—प्रकार वाचक सर्वनाम मूलक विशेषरण ।
लिखे है—वर्तमान निश्चयार्थ क्रिया ।
जो—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम ।
खान भये—भूत निश्चयार्थ बहुवचन ।
खाय—वर्तमान कालिक क्रिया ।
इतना—परिरणाम वाचक विशेषरण ।
ये (बात)—निश्चयात्मक निकटवर्ती सर्वनाम ।
ऐसे—विशेषरण सर्वनाम मूलक ।
कृपा पात्र (हते)—क्रिया भूत निश्चयार्थ बहुवचन ।

नोट—इस प्रकार वार्त्ता साहित्य के गद्य की ब्रज भाषा की मान्यताग्रों के ग्रनुसार परीक्षा करने पर उसमें सर्वत्र व्यवस्थित गद्य के रूप मिलते हैं जिसके ग्राधार पर इसे ग्रप्रामारिणक कभी नहीं कहा जा सकता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी दोनों ने इसके गद्य को सुन्दर गद्य के रूप में स्वीकार किया है ग्रौर पद व्याख्या करने पर भी इसमें कहीं भी शिथिलता या भ्रष्ट प्रयोग के दर्शन नहीं होते हैं। सर्वत्र एक सी भाषा मिलती है। सत्रहवीं ग्रौर ग्रठारहवीं शताब्दी की ब्रज भाषा के जो गद्य रूप ग्राज उपलब्ध हैं, उनसे इसकी गद्य शैली की तुलना करने पर भी यह उसके मेल में दिखाई पड़ती है। संवत् १७०७ का जो श्री विट्ठलराय जी का राजा जसवन्तसिंह की साक्षी सहित प्राप्त इकरारनामा है, जिसे इसी प्रसंग में उद्धृत किया गया है उससे इसके संज्ञा, सर्वनाम, ग्रव्यय

और क्रिया रूपों की तुलना करने पर इसकी भाषा में और उस समकालीन साक्ष्य की भाषा में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता है।

वार्त्ता की भाषा शैली को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि उस समय संस्कृत शब्दों का प्रयोग ब्रज भाषा गद्य में अधिक होता था और फारसी के वे ही शब्द ग्रहण कर लिए गये थे। जिन्होंने ब्रज भाषा की प्रकृति को स्वीकार कर लिया था और जिन पर उसके व्याकरण का अनुशासन था। राजकीय व्यवस्था में उस समय फारसी की प्रधानता थी। इसलिए हाकिम हुक्कम, गुनहगार आदि शब्द जिनकी सूची अन्यत्र संलग्न है ब्रज भाषा में स्थान पा चुके थे और उनका व्यवहार वार्त्ता गद्य में हुआ है। इसी प्रकार संप्रदाय की सेवा-प्रणाली में जिन शब्दों का प्रयोग एक निश्चित अर्थ में होता था उनका उस अर्थ में प्रयोग भी इन ग्रन्थों में मिलता है। श्री महाप्रभु जी तथा श्री विट्ठलनाथ जी का प्रभाव गुजरात के निवासियों पर सबसे अधिक पड़ा था, इसलिये इस सम्प्रदाय के बीच गुजराती भाषा में व्यवहार होने वाले कुछ शब्द भी आ गये हैं जो उचित ही हैं। दूसरे गुजराती के कुछ प्रयोग ब्रज भाषा के मेल में हैं, उनका स्वीकृत हो जाना धार्मिक प्रचार और प्रसार में अनिवार्य था। इसलिए वार्त्ताओं में गुजराती शब्दों को देखकर उन्हें किसी गुजराती शिष्य की रचना कहना सर्वथा अनुचित है और यह कथन भाषा की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है तथा अप्रामाणिक ठहरता है। इस भ्रम को फैलाने का उत्तरदायित्व बम्बई और डाकौर के संस्करणों को है जिन्होंने न मालूम किस सम्पादक से, जो निश्चय ही ब्रज भाषा कम और गुजराती अधिक जानता था उससे इसका सम्पादन कराकर के इसमें शब्दों के रूपों को ही भ्रष्ट नहीं कर दिया है अपितु किसी किसी वार्त्ता में तो गुजराती वाक्यांश को भी ब्रज भाषा के बीच में डालकर समस्त भाषा को भ्रष्ट और दूषित कर दिया है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १७८ में निम्नलिखित वाक्यांश 'तुमोर घर पाछा तुमारे राक पर जावो' पूर्णतया गुजराती है पर यह केवल डाकौर संस्करण में ही है। हस्तलिखित प्रतियों में से किसी भी प्रति में यह ज्यों का त्यों नहीं है। इस वार्ता में तपासे=तलाश करना, और रजा=छुट्टी आदि शब्दों का प्रयोग है। जो पूर्णतया गुजराती भाषा में इस अर्थ में काम में आते हैं। वार्त्ता में प्रयुक्त साम्प्रदायिक शब्दों की सूची, संस्कृत शब्दों की सूची, फारसी शब्दों की सूची तथा गुजराती शब्दों की सूची यहाँ दी जा रही है जिसके आधार पर शब्दों के प्रयोग के अनुसार वार्त्ता गद्य के मर्म को समझने में सहायता मिलेगी और उस पर गुजराती प्रभाव के सम्बन्ध में फैले भ्रम का भी निराकरण हो जायगा।

ब्रज भाषा गद्य के जो नमूने इस प्रसंग में एकत्रित किए गये हैं उनके आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं कि—

(१) विक्रम की सोलहवीं शताब्दी से पूर्व ब्रज भाषा गद्य का प्रयोग साहित्य में और व्यवहार में होने लगा था, तथा—

(२) ब्रज भाषा गद्य का प्रयोग तीन रूपों में होता था :—

(१) स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में
(२) काव्य रचनाओं की टीका रूप से
(३) स्फुट टीका रूप में।

वार्त्ता साहित्य के ग्रन्थों में जिस ब्रज भाषा गद्य का रूप सुरक्षित है वह स्वतन्त्र ग्रन्थ रचना रूप में है और यह परम्परा खड़ी बोली के राष्ट्र भाषा प्रचार के पूर्व तक ब्रज में चलती रही और वल्लभ सम्प्रदाय में तो इसके पश्चात् भी चली है।

वार्त्ता का गद्य एक सुव्यवस्थित गद्य है।

———

दोसौ बावन में ब्रज भाषा के शब्द

आछी-अच्छी	गयिना	बिगार
इनको	जूनो	बीड़ा
		भवैया, भौंयरा
उराहनो	टीलना	भोंरो, भोरी
	टहेंल	भीत
कूरो		माडना
	डरप्यौ	मूंदरी
खटवा	डाल	मोड़ा—मोड़ी
खूंटना	डोकरी, डोकरा	रास
खोटो	ढगला	
खाची	तरेंटी	लष्षी
खोंट	ताती	तीर
	तुर्त	लूण
गाम	दराँत	
गाड़ा	दीसै	वसोंधी
गाँठहो	पातर	सगरौ
धौड़ान	पाछे	सरैगो
	पाडी-पड़िया	सूधि, सूधी
	पीहर	सीरी
छाँछ	पौढ़ना	
छाना		हाँसी
छानी	बंटा	हेला पाड़नो
छेलो	बताई	
	बधाई	भारो
छोरा	बधैया	
	बाटी	
छोरी	ब्रह्मरी, बूंको	

चौरासी वार्त्ता में ब्रज भाषा के शब्द

अमुकी, अवारे
उपरा
उच्छव

कौरी	खिरक		
कोरडा	खूंट		
	खूटत		
चौवार	ग्याति		
	ग्रास		
टेरा	डबरा	ताई	पोरिया
ठलाय	डरपै		पौरि
निवरी	डाकौतिया		पनही
			पर्दनी
नीडक	हुँकारी		बराजी
मोहडो	सवारे		
मेली	सदराओ		
	सांकरी		
	सोंपों		

८४ में साम्प्रदायिक शब्द

आरोगना	गजमोहन	तूंतरी टेरा, डबरा
अनसखडी		पधराना
अनोसरि	नाम निवेदन, पाट बैठारे, पवित्रा	
अनाश्रय		मणिकोठा
अष्टाक्षर		
उत्सव	झांपी	भीतरिया सेवा पधराय
उत्थापन	मणिकोठा	समर्पण
		सखडी
दूध घर		सिद्ध करवाई
		सरयो
		संघानो
बीडा		सानुभाव
बंटा		सेन आरती
		सइयां मंदिर
		सीधो

२५२ में साम्प्रदायिक शब्द

अनवर	झारी	मार्जन
अन्याश्रय	झांपी	चरणामृत
अन्यमार्गी		राजभोग
अंगीकार	ड्योढ़ी	
अरोगवाई	डोल	शयन भोग
आत्म निवेदन	तृष्टी	शाक घर

उपरना
ऊर्ध्वपुण्ड
उत्थापन

कटोरा
किशोर लीला

कुनवारा
गद्दल
गादी
गोपीवल्लभ
चोपड़ा—बही
छिवाय, छीजावे
जलघरा
जलघरिया
दूधघरिया
देशानुसंधान
धौल
निजमंदिर
निरोध सिद्धि
निष्किंचन
पधराये
पंचाक्षर
परिक्रमा
परदेश
बहिर्मुख
भीतरिया
भोग
मानसी सेवा

८४ वार्त्ता के फारसी शब्द

कौल (करो)—प्रतिज्ञा
कुलह
कवाय
खवास–नौकर
खत–चिट्ठी
खेल
खुन्स
ख्याल टृप्पा
खुशी
खांड
जुदा
जिहाज
परकाला
साह
सिरोयांव
सराय
सिपारस
सलाम
सालन
हजरत

२५२ वैष्णवन की वार्त्ता के फारसी के शब्द

इजारो	चिक	नज़र	मसकरी
इनाम	चुभना	नज़राना	मलमल
		नांच	मंज़ूरी
		नामबदनाम	मसूल (महसूल)
		नौवत	मसाल (मशाल)
कचेरी	ज़री	नौकर	मांदी
कबूल	ज़ामिन		माफ
कमती	जीन		मुद्दा
कागद	जुलमी	परगना	मुकाम
कैद	जुदी जुदी	परकाला	मुला (मुल्ला)
कमाई	जोडी	पउदा	मेंहनत
कसर		पात्साह	
		पोसाक	याद
खत	तलासी	फूंक	रस्ता
खर्च	तलवार	फरमावेंगे	रज़ाई
खजाना	तकरार	फीका	रजा
खबर	तकसीर	बागा	रोज़गार
खवास	तुरक	बखत	लचक
खवासिनी	तैयार	बहोत	
खासा	दलाल	बरोबर	वज़ीर
खिसियाना	दिवान	बाकी	बांजवी
खुशादम	दामन	बजार	बिना
खुशी	दाम	बांजवी	हरकत
खातिर		बंदीखाना	हक
शौक	सरमाय	सौदागर	हलकारा
	सलाम		हाज़िर
सिकार			हुकुम

---

८४ वैष्णवों की वार्त्ता के विशेष शब्द

अ	वार्त्ता संख्या	अन्तराय	वार्त्ता संख्या ५६
		अमुकी	३८,३
अनसखड़ी	३	अष्टोत्तर शत	४२
अनोसर	६८,५,६	अपरस	१२
अनाश्रय	३	अवन्तिका	२४
अपरसता		अष्टाक्षर मंत्र	४२
अवारे	६	अरगजा	२६
अरेदारी	५४	अंगाकरी लीनी	२३

ब्रज भाषा गद्य की विशेषताएं

ब्रज भाषा—ब्रज की बोली के लिए उसके साहित्यिक महत्व के कारण ब्रज भाषा शब्द का प्रयोग होता है। वास्तव में अवधी और खड़ी बोली की तरह यह भी एक बोली ही है। इसी प्रकार कभी-कभी अवधी को भी उसके गौरव ग्रन्थ रामचरितमानस के कारण 'अवधी भाषा' और इस ग्रन्थ को अवधी भाषा का ग्रंथ कहते हैं। इसी प्रकार मेरठ की खड़ी बोली को अब राष्ट्रभाषा कहने ही लगे हैं। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'ब्रज भाषा' शब्द का प्रयोग साहित्य में सबसे पहले संवत् १८०३ में भिखारीदास के काव्य निर्णय में आया है। इससे पहले तो 'भाषा' शब्द का अर्थ बोलचाल की भाषा ही होता था। राजस्थान में ब्रज भाषा पिंगल के नाम से प्रसिद्ध थी पर उर्दू के लेखकों ने अवश्य ब्रज भाषा के लिए भाषा (भाखा) शब्द का प्रयोग किया है।

हिन्दी की सभी बोलियों का अपेक्षा ब्रज भाषा में सबसे अधिक साहित्य है। इसके दो कारण हैं। एक तो इसमें मधुरता और स्पष्टता है और दूसरे इसको वैष्णव आचार्यों का जो समर्थन प्राप्त हुआ उसने इसकी श्री वृद्धि में अपूर्व योग दिया। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है कि 'ब्रज भाषा' का साहित्य में प्रयोग वास्तव में श्री वल्लभाचार्य के प्रभाव के कारण प्रारम्भ हुआ।

सम्प्रदाय कल्पद्रुम ग्रन्थ तथा श्री गिरधरलालजी के बचनामृतों में लिखा है कि श्रीनाथजी के मंदिर में पहले सेवा में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। एक दिन श्री गुसांईजी मन्दिर में शृंगार कर रहे थे और उनके पांच बालक वहाँ खड़े थे इतने में श्री गुसांईजी ने कहा 'मंजूषामानय' और बालक तो चुप खड़े रहे केवल पांचवे पुत्र श्री रघुनाथजी (जो आज्ञा) कहकर 'सय्या मन्दिर' में चले गये पर यह 'मंजूषामानय' का आशय तो कुछ समझे नहीं थे इसलिए वहाँ जाकर विचार करने लगे कि क्या मंगाया है और क्या लेजांय। 'इतने में श्री महाप्रभुजी ने रघुनाथजी को बोध दिया और यह शृंगार की पेटी लेकर सेवा में उपस्थित हो गये। पीछे से श्रीनाथजी ने स्वयं श्री गुसांईजी से कहा कि सेवा में संस्कृत बोलने से बालकों को कष्ट होता है और मुझे ब्रजभाषा प्रिय है आप उसी का प्रयोग कीजिए। इस प्रकार इस घटना के पश्चात् से ही वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रजभाषा का प्रयोग बढ़ा है और इसे अलौकिक मान्यता प्राप्त हुई है। यह घटना संवत् १६२६ के आसपास की है।

ब्रज भाषा को जब इन पुष्टि मार्ग के प्रवर्तकों का आश्रय मिला तब फिर इसके साहित्य का प्रचार कृष्ण भक्ति के कारण दूर दूर तक सारे देश में फैल गया और समस्त उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात बंगाल सर्वत्र इसके मधुर गीतों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी अन्य प्रांतों के कवियों ने भी ब्रज भाषा में पद रचना की। श्री नरसी मेहता और नामदेव के हिन्दी पद आज भी भक्तों के हृदय को उसी प्रकार स्पर्श करने की सामर्थ्य रखते हैं इन्होंने ही उन दिनों ब्रजभाषा को गुजरात में जन प्रिय बनाया होगा। भूषण के कवित्तों का आदर महाराष्ट्र केशरी के दरबार में होता ही था। पद्य की तरह गद्य के क्षेत्र में भी 'ब्रजभाषा गद्य' का ही प्रचार सर्वप्रथम हुआ था इसके प्रमाण अन्यत्र उद्धृत किये जा चुके हैं।

विशुद्ध ब्रज भाषा की दृष्टि से आज यह बोली ब्रज के चौरासी कोस और मथुरा के आसपास के जिलों में ही बोली जाती है पर इस का प्रचार आज भी ग्वालियर, धौलपुर,

आगरा, अलीगढ़, मैनपुरी, ऐटा, बदायूं और बरेली तक है। बुन्देलखंड की बुन्देली भी इसी का एक रूपान्तर मात्र है। बुन्देली को डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने दक्षिणी ब्रज माना है। आज व्रज भाषा बोलने वालों की संख्या लगभग डेढ़ करोड़ है।

ब्रज की बोली और साहित्यक भाषा में थोड़ा सा अन्तर है और वह स्वाभाविक है। बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनका व्यवहार बोलचाल में तो होता है पर जिनका लिखित और साहित्यिक रूप कुछ भिन्न है। जैसे बोलचाल में 'कूं' शब्द प्रति दिन बोला जाता है पर साहित्य में इसका व्यवहार नहीं के बराबर है और इसका रूप कौं, को, हो गया है। कर्म कारक में यह कूं ने साहित्यक भाषा में 'हिं' का रूप धारण कर लिया है।

साहित्यिक ब्रज पर संस्कृत, तथा अन्य भाषाओं का भी प्रभाव है। इसमें पद्य और गद्य में दूसरी भाषाओं के शब्द लिए गये हैं पर उनपर सदा ब्रजभाषा के व्याकरण और उच्चारण का अनुशासन रक्खा गया है। शब्दों के मेल के लिए विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में भिखारीदास ने अपने काव्य निर्णय में लिखा है—

भाषा ब्रज भाषा रुचिर, कहै सुभति सब लोय।
विलै संस्कृत फारसी, पै अति सुगम जो होई।।

आगे दिए हुए गद्य के अवतरणों से तथा तुलसी, सूर, नन्ददास, परमानन्ददास आदि कवियों की कविता के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता था कि ब्रज भाषा के गद्य दोनों रूपों में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग खूब होता था और उस समय की साहित्यिक भाषा संस्कृत गर्भित थी पर फारसी के शब्दों को लेने में भी गद्य लेखकों और कवियों दोनों को कोई संकोच या आपत्ति न थी। पर सभी लोग वे ही शब्द स्वीकार करते थे जिनके प्रयोग से इसकी लोक और लचक दोनों नष्ट न होने पावे और इसका स्वाभाविक माधुर्य ज्यों का त्यों बना रहे। अथवा जो शब्द नित्य प्रति की बोलचाल में स्थान पा चुके थे। भले ही वे 'कलह' सूथन 'फरगुल' जैसे शब्द रहे हों।

भारतीय संगीत में ब्रज भाषा के पदों को जो सम्मान मिला हुआ है, वह इसके माधुर्य का स्वयं सिद्ध प्रमाण है। इसके माधुर्य ने जाति धर्म और प्रांतीयतादि के सभी संकुचित बंधनों की रेखाएं मिटादी थीं और आज भी संगीत के क्षेत्र में इसका लोहा इस देश के सभी भाषा भाषी मानते हैं। इस भाषा और साहित्य के अनुसार यह स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक का हिन्दी साहित्य का इतिहास वास्तव में ब्रज भाषा साहित्य का इतिहास है। उन्नीसवीं शताब्दी में भी ब्रज भाषा का हिन्दी गद्य और पद्य दोनों पर बहुत बड़ा प्रभाव रहा है। ब्रज भाषा के माधुर्य के सम्बन्ध में पंडित पद्मसिंह शर्मा ने अपने बिहारी सतसई के संजीवनी भाष्य की भूमिका में बहुत कुछ लिख दिया है। पं० किशोरीदास बाजपेई तो इसे संस्कृत से अधिक मधुर भाषा लिखते हैं।

यहां केवल ब्रज भाषा गद्य की ही विशेषताओं के आधार पर वार्त्ता साहित्य के गद्य की परीक्षा करना इष्ट थी इसलिये पद्य सम्बन्धी सभी उन विशेषताओं को छोड़ दिया है। जिनका गद्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यों कि ब्रज भाषा गद्य की सम्यक परीक्षा तब तक नहीं हो सकती है जबतक इस भाषा की प्रकृति से पूर्णतया परिचित न हो लिया जावे क्योंकि उन उच्चारण और व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर ही इसका स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित और स्थिर है।

वार्त्ता साहित्य का महत्व और विशेषताएं

(१) पुष्टिभक्त (भक्त)—

पुष्टि भक्तों के चरित्रों की विशेष उल्लेखनीय घटनाओं का वैष्णवों के सम्मुख निवेदन करना ही वार्त्ता साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है, और यही उसका सबसे बड़ा महत्व है। श्री गुसांई गोकुलनाथजी ने अपने बचनामृतों में इसे कथा का फल कहा है। श्री हरिरायजी के भाव प्रकाश में लिखा है कि श्री गुसांई गोकुलनाथजी ने इस सम्बन्ध से कहा है कि 'वैष्णव की वार्त्ता में सगरो फल जानियो।' वैष्णव उपरांत और कछू पदारथ नहीं है। यह पुष्टि मार्ग है सो वैष्णव द्वारा फलित होइगो-—वैष्णव की वार्त्ता है सो सर्वोपरि जानियो।' वैष्णवों के चरित्रों को सिद्धांत की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानने के कारण ही वार्त्ताओं की सृष्टि हुई और यही सिद्धान्त वार्त्ता के मूल में सदैव कार्य करता है। वैष्णव के लिए वैष्णव की वार्त्ता से बढ़कर और कुछ नहीं है इसलिए वैष्णवों की वार्त्ताएं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक वैष्णव के लिए इनका पठन-पाठन श्रवण प्रतिदिन आवश्यक है। अब देखना यह है कि प्रत्येक वैष्णव के चरित्र में एक या इससे अधिक वह कौनसी महत्त्वपूर्ण घटना या घटनायें हैं जिनकी और वार्त्ताकार अपने पाठक या श्रोता का ध्यान आकर्षित करना चाहता है। उदारण के लिए श्री दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता में (वार्त्ता संख्या १ चौरासी वैष्णव की वार्त्ता) श्री गुसांई दामोदरदास को नमस्कार करन न देते यातें, जी श्री गुसांई जी अपने मन विचारे, जो श्री आचार्य जी महाप्रभु दामोदरदास के हृदे विषे सर्बदा बसत हैं। इन पास क्यों नमस्कार करन दीजे।'[1] दूसरी विशेषता यह है कि श्री महाप्रभु जी ने ठाकुर जी से वर मांगा कि उनके आगे दामोदारदास का शरीर न छूटे। इस वैष्णव की वार्त्ता की तीसरी विशेषता यह है कि इस वार्त्ता में यह दिखाया गया है कि श्री गुसांई जी दामोदरदास का कितना सम्मान करते थे और उनका कितना ध्यान रखते थे। चौथी महत्त्वपूर्ण विशेषता इस चरित्र की यह है कि श्री महाप्रभु जी इनको दूसरे तीसरे दिन अवश्य दर्शन देते थे और यदि इनको श्री महाप्रभु जी के दर्शन लगातार कई दिन तक न होते थे तो इनके पेट में पीड़ा होने लगती थी। इस वैष्णव वार्त्ता की विशेषता द्वारा वैष्णवों का ध्यान इन्हीं बातों की ओर केन्द्रित किया गया है जिससे इनके व्यक्तित्व का महत्त्व और सदाचार दोनों का स्पष्ट आदर्श समने उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार चौरासी और दो सौ बावन वैष्णव की वार्त्ता के अन्य चरित्रों की विशेषताओं की भी सूची बनाई जा सकती है जिसके आधार पर यह सिद्ध हो जायगा कि वार्त्ताकार का मुख्य उद्देश्य वैष्णव समाज के सम्मुख चरित्र विशेष की उज्जवलतम घटनाओं के उल्लेख द्वारा उनका कल्याण करता था।

(२) प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा पुष्टि सिद्धान्त—

वार्त्ता साहित्य की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें लेखक के प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा पुष्टिमार्ग के किसी सिद्धान्त का व्यावहारिक समर्थन किया है। दामोदरदास

१ श्री हरिराय जी के भावप्रकाश में।

हरसानी की वार्त्ता से ही श्री गुसांई जी के प्रश्न पर दामोदरदास जी ने कहा है कि मैं श्री महाप्रभु जी को जगदीश जी श्री ठाकुर जी तिन्हू ते अधिक करि जानत हों। [1] इस कथन से पुष्टि मार्ग के इस सिद्धान्त पर व्यवहारिक प्रकाश पड़ता है कि श्री आचार्य महाप्रभु जी ईश्वर से भी बड़े माने गए हैं। समर्पण से लीला का भेद जाना जा सकता है, पुष्टि मार्ग का यह एक दृढ़ सिद्धान्त है। इसका समर्थन चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में इस प्रकार दिखाया है[2] कि कृष्णदास ने महाप्रभु जी से पूछा था कि भक्त लीला का भेद जानने में असमर्थ क्यों रहता है। तब आपने बताया कि विधिपूर्वक समर्पण न करने और अहंकार भाव के कारण तथा सत्संग के अभाव में ऐसा होता है। श्री सूरदास की वार्त्ता में लिखा है 'जैसो अपने मार्गको प्रकाश कियों ताके अनुसार श्री सूरदास जी ने पद किए' तथा' श्री आचार्य जी के मार्ग को तो यह स्वरूप है जो माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह करनो परम कार्य है। और स्नेह के आगे भगवान के महत्त्व रहत नाहीं। तासें श्री भगवान बेर-बेर अपने भक्तन कों अपनो माहात्म्य दिखावत हैं। तामें ब्रज भक्तन के स्नेह की तो पराकाष्ठा है।'[3] सूर की वार्त्ता में जो यह उल्लेख है उससे तथा वार्त्ता के शेष अंश से यह विदित होता है कि किस प्रकार वार्त्ताकार ने इस वार्त्ता द्वारा मार्ग के सिद्धान्त को सूर के जीवन पर घटित किया है।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता की तीसरी वार्त्ता में घर में अनेक दास दासियों के होते हुए भी दामोदरदास सम्भल बारे सेवा के लिए अपने हाथ से जल भरते थे। इनको इस काम के करने में किंचित् लोक-लाज या मर्यादा बाधक न थी। इतना ही नहीं, समाज और सम्बन्धियों की आपत्ति की भी इन्होंने अवहेलना की थी। इसी वार्त्ता में श्री आचार्य महाप्रभुजी ने इनकी तुलना राजा अम्बरीष से की है और इन्हें उनसे भी बड़ा बताया है। इस प्रकार दामोदरदास के आचरणों द्वारा पुष्टि सेवा का महत्वपूर्ण उदाहरण उपस्थित किया गया है। इसी वार्त्ता में इनकी स्त्री के आचरण द्वारा पुष्टि भक्त के सबसे प्रबल शत्रु 'अन्याश्रय' का स्वरूप भी दिखाया गया है। विधर्मी पुत्र का मोह न करना यह भी पुष्टि भक्ति का एक अंग है जो इस वार्त्ता द्वारा स्पष्ट किया गया है। सामाजिक अनाचार और धार्मिक कठिनाइयों के समय ऐसे निर्भय सिद्धान्त से आचरण निर्माण में अवश्य ही बड़ी सहायता मिलती होगी।

इस प्रकार बहुत सी वार्त्ताओं में से प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा पुष्टि सिद्धान्त और आचरण के प्रत्यक्षीकरण के अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं जिनसे वार्त्ता साहित्य की विशेषताएं सिद्ध हो सकती हैं और उनके पुष्टि मार्ग में महत्वपूर्ण स्थान के विषय में निश्चय हो सकता है।

(३) सामयिक अवस्था का प्रासंगिक रूप से चित्रण—

वार्त्ताओं में श्री महाप्रभुजी और श्री गुसांईजी के परम कृपापात्र भक्तों के जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओं और विषयों का उल्लेख है। यह किसी क्रम विशेष से अपने मूल रूप में दिखाई नहीं पड़ता है। भावनात्मक संस्करण में इन प्रसंगों की जो कुछ व्याख्या की गई है उनसे उनकी संगति बहुत कुछ बैठ जाती है फिर भी जिस व्यक्ति को पुष्टि मार्गीय सिद्धान्तों

१ दामोदरदास की वार्त्ता।
२ कृष्णदास मेघन की वार्त्ता संख्या २।
३ सूरदास की वार्त्ता।

का ज्ञान नहीं है, उसे वह सब असम्बद्ध ही दिखाई पड़ती है। इन विवरणों और प्रसंगों के भीतर बहुत सी ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री के उल्लेख और उद्धरण मिलते हैं जिनसे समकालीन स्थिति का परिचय मिलता है और देश की उस तत्कालीन स्थिति का आभास मिलता है जिसका समर्थन सामयिक इतिहास से भी हो जाता है। समाज की उस समय की सामाजिक, धार्मिक, और राजनीतिक स्थिति का कुछ अनुमान हम वार्त्ता के इन उद्धरणों के आधार पर भी लगा सकते हैं। ये उद्धरण इसलिए महत्वपूर्ण अधिक हैं कि ये इन वार्त्ताओं में प्रसंगवश आ गए हैं और वार्त्ताकार का मूल उद्देश्य इनका विवरण लिखना न था जो वह अपने अनुकूल प्रसंगों का संग्रह कर लेता और प्रतिकूल परिस्थियों को तथा विरोधी उद्धरणों को छोड़ देता।

जिन उद्धरणों को इतिहास का समर्थन प्राप्त है, वे तो महत्वपूर्ण हैं ही पर अन्य भी प्रासंगिक होने के कारण केवल सत्य के ही समर्थक माने जायेंगे। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ३, दामोदरदास सम्भल बारे की वार्त्ता में लिखा है कि इनका एक लड़का मुसलमान हो गया था जिससे पता चलता है कि श्री महाप्रभुजी के समय में भी धर्म परिवर्तन जारी था। वार्त्ताकार ने यह तो नहीं लिखा है कि उसने बलपूर्वक या प्रलोभन से धर्म परिवर्तन किया था, पर इतना ही लिखा है कि वह मुसलमान हो गया था और पिता की मृत्यु के समय घर पर आया था। इसी वार्त्ता में आगे चलकर लिखा है कि दामोदरदास के ससुर ने अपनी बेटी से पूछा कि तूने घर में तो कुछ रक्खा नहीं है सो अब क्या खायेगी? इस पर उसने कहा कि 'तुम देउगे सो खाऊँगी।' इसी के आगे लिखा है कि 'क्षत्री लोगन के पास में सगे सहोदर कछू देत हैं। ऐसी ज्ञाति की रीति है।' इस उद्धरण में क्षत्री जाति के एक सामाजिक व्यवहार का उल्लेख है। इसी वार्त्ता में लिखा है कि दामोदरदास की स्त्री ने उनकी मृत्यु से पूर्व एक नाव से सारा समान अडैल भेज दिया था। इससे पता चलता है कि उस समय प्रयाग और कन्नौज के बीच यातायात की मुख्य एवं शीघ्रगामी साधन नौकाएं थीं। इस वार्त्ता के इस कथन की पुष्टि पद्मनाभदास की वार्त्ता में अडैल से कन्नौज तक जल मार्ग था तथा २५२ में नारायणदास की वार्त्ता की उस काल के इतिहास से भी पुष्टि होती है।

श्री पद्मनाभदास कन्नौज वालों की वार्त्ता में (वार्त्ता संख्या ४ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता) में लिखा है कि उस समय कन्नौज में मुगल की फौज आई और उसमें से एक मुगल इनके ठाकुरजी को भी ले गया। जहाँ से वह फिर उनको सात दिन बाद अन्न जल त्याग करके लौटा लाए। इस मुगल का नाम वार्त्ता में तो नहीं दिया है पर अन्य सूत्रों से उसका नाम—— मिलता है। वार्त्ताकार ने उन मुसलमानी नामों का बहिष्कार किया है जो अत्याचारी थे और उनके नाम पर बसे हुए नगरों और ग्रामों के नामों के नाम भी दूसरे रख लिए, जैसे—अहमदाबाद को वार्त्ताओं में सर्वत्र राजनगर लिखा है और हैदराबाद (दक्षिण) को भावनगर लिखा है। इस मुगल के कुछ पद मिले हैं जो अहमदाबाद से प्रकाशित होने वाले 'वेणुधर' मासिक पत्र वर्ष २ अंक ३-४ में प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें उक्त घटना का सब व्यौरा मिलता है। इनकी बेटी तुलसा की वार्त्ता में लिखा है कि एक गौड़ ब्राह्मण इनके यहाँ से अपने जाति व्यवहार के कारण सखड़ी (रोटी, दाल, चावल) का भोग न ले सका, इस पर उसे दुःख हुआ और उसने अनसखड़ी (पूड़ी) इत्यादि बना कर राजभोग के समय उसका सत्कार करना चाहा। पर इस समय वह सखड़ी ही स्वीकार करने पर तैयार हो गया। इस उल्लेख से पता चलता है कि गौड़ ब्राह्मण कन्नौजिया ब्राह्मणों के यहाँ रोटी दाल नहीं खाते थे। चौरासी

वष्णवन की वार्त्ता संख्या ४५ वासुदेव छकड़ा सारस्वत ब्राह्मण की वार्त्ता में लिखा है कि वह वासुदेव प्रयाग से पाँच दिन में आगरे आगया था और एक दूसरी घटना का उल्लेख है जिसमें मथुरा के चौबों के उकसाने पर वहाँ के काजी ने श्री गुसांई जी से कुछ छेड़-छाड़ करनी चाही थी, पर इन वासुदेव ने उन सबको डरा दिया। इस उल्लेख से पता चलता है कि उस समय काजी लोग मालदार आदमियों से इस प्रकार अनुचित रीति से कुछ धन कभी-कभी प्राप्त कर लिया करते थे। विश्रान्त घाट मथुरा की बैठक के चरित्र में काजी के एक ऐसे यन्त्र का उल्लेख है जिससे हिन्दुओं को त्रास मिलता था। इस बाधा को भी महाप्रभुजी ने दूर किया था। मुसलमानी अत्याचार का यह दूसरा उदाहरण है। इसी प्रकार श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता में औरंगजेब द्वारा श्रीनाथजी के तथा गोकुल के अनेक मंदिरों के ध्वंस करने का उल्लेख मिलता है जिससे उस काल के शासकों की धार्मिक नीति और अव्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ४ में नारायणदास दीवान गौड़ देश के तिनकी वार्त्ता में गौड़ देश के शासक का नाम दाऊद पातसाह लिखा है और जिसने श्री गुसाँईजी के दर्शन किये थे और प्रसादी उपरणा प्राप्त किया था। जिससे पता चलता है कि उस समय ऐसे भी मुसलमान शासक थे जो अकबर और जहाँगीर की भाँति सहिष्णु थे। सूरत के साहूकार के बेटा की 'बहू' की वार्त्ता में (दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता) में जिस न्याय का उल्लेख है उससे यह पता चलता है कि राज-दरबार में श्री गुसांईजी की कितनी प्रतिष्ठा थी इस प्रकार के अनेक उद्धरणों से वार्त्ता द्वारा ससामयिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने का उल्लेख किया जा सकता है जो आगे धार्मिक, राजनीतिक, और आर्थिक महत्व के अन्तर्गत किया जायगा।

(४) पुष्टि मार्ग के इतिहास की एक कड़ी—

वार्त्ताएं हमें पुष्टि मार्ग के आरम्भ और विकास से परिचित कराती हैं। उनमें पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक के प्रागट्य का सम्पूर्ण इतिहास है। उनके प्रचार और चमत्कारों का ब्यौरा विधि पूर्वक इनमें दिया गया है। पुष्टि मार्ग के इष्टदेव श्रीनाथ जी के प्रागट्य और मेवाड़ स्थिति पर्यन्त की एक अलग ही वार्त्ता है। अन्य स्वरूपों में श्री नवनीत प्रियजी, श्री मथुरेशजी, श्री विट्ठलनाथजी, श्री द्वारकानाथजी, श्री गोकुलनाथजी, श्री गोकुलचन्द्रमाजी, श्री बालकृष्णजी, श्री मुकुन्दरायजी, श्री कल्याणरायजी और श्री मदनमोहनजी आदि अनेक स्वरूपों का इति-वृत्तात्मक परिचय भी हमें इन्हीं ग्रंथों में मिलते है। वार्त्ता साहित्य के आचार पर हम पुष्टि मार्ग के तत्कालीन प्रधान प्रचार केन्द्रों और प्रान्तों के नाम की एक सूची प्रस्तुत कर सकते हैं। इसी प्रकार पुष्टि मार्ग से प्रभावित व सम्बन्धित जो राज्य पुरुष हो गए हैं, उनकी भी एक तालिका तैयार कर सकते हैं। इस सम्प्रदाय से जिन कवियों और संगीतज्ञों ने प्रेरणा प्राप्त की है उनके नाम और पदों का भी अच्छा सा संग्रह वार्त्ता साहित्य के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है। इस संग्रह में केवल कवियों की कृतियाँ या पद ही नहीं, उनके जीवन वृत्त के कुछ अंश भी दिए जा सकते हैं जिनका समाधान इतिहास से भी किया जा सकता है और हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए उन कवियों का काल निश्चित किया जा सकता है। इन वार्त्ताओं के आधार पर ही हम श्री गुसांईजी श्री गोपीनाथजी और उनके पुत्र पुरुषोत्तमजी, श्री गुसांईजी के सात लालजी, श्री गिरधरजी, श्री गोविंदजी, श्री बालकृष्णजी श्री गोकुलनाथजी, श्री रघुनाथजी, श्री यदुनाथ जी, श्री घनश्यामजी, उपरान्त इन सात बालकों के वंशजों के संम्वत् १७३६ तक का विवरण तैयार कर सकते हैं। श्री गोपीनाथजी की बेटी जी तथा सात

बालकों के वंशजों में प्रमुख नाम, श्री मुरलीधरजी, श्री दामोदरजी, श्री विट्ठलरामजी, श्री गिरधरजी, गोविंदजी, बालकृष्णजी, काका वल्लभजी, कल्यानरायजी, कृष्णरायजी, हरिरायजी, पीताम्बरजी, ब्रजरायजी, लक्ष्मणजी, दाऊजी और पुरुषोत्तमजी के नाम, सम्प्रदाय का सेवा प्रकार, आचार प्रणाली, भावना प्रणाली, बंगालियों का सम्प्रदाय से सम्बन्ध, विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के चतुरानागा का बृतान्त आदि सब वार्त्ता साहित्य से ही प्राप्त होते हैं। वार्त्ता के अध्ययन के अनुसार स्वयं श्री आचार्य जी ने अपने जीवन काल में ही श्री गुसांईजी को पुष्टि-मार्गीय दीक्षा का अधिकार दे दिया और श्री गुसांई जो ने अपने समय से ही श्री गिरधरजी को ब्रह्म सम्बन्ध कराने की आज्ञा प्रदान की थी। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १ में श्री नागभट्ट जी को, 'तुमें लरिका के पास जाइ नाम पांओ' की आज्ञा दी थी, और इसी पुस्तक की वार्त्ता संख्या '२८ एक क्षत्री वैष्णव जिनको आत्म निवेदन करवायो' में ता पाछें श्री गुसांई जी आप श्री गिरधर जी सों बोलाइ कह्यो, और श्रीमुख तें आज्ञा दिए, जो काल्हि या क्षत्री वैष्णव को आत्मनिवेदन करावो जो श्री श्रीनवनीतप्रिय जी के मंदिर में श्री आचार्य जी महाप्रभुन की पलिगडी के सानिध्य ,पुष्टि मार्ग की लीला सम्बन्धी दान कराओ। 'पाछें दूसरे दिन बा वैष्णव को श्री गिरधर जी ने बोहोत प्रीति से आत्म निवेदत करवाओ'। दूसरे प्रसंग की पुष्टि होती है।

ब्रह्म-सम्बन्ध की दीक्षा—वार्त्ता साहित्य में से ब्रह्म-सम्बन्ध की दीक्षा देने की तीन प्रणालियां निकलती हैं। एक श्री आचार्य जी ने और श्री गुसांई जी ने अपने सामने बिना तुलसी और ठाकुर जी के स्वरूप के आत्म निवेदन करवाया। इसे भावात्मक नाम निवेदन की संज्ञा देना इसलिये उचित होगा कि श्री गुसांई जी और श्री महाप्रभु जी दोनों पुरुषोत्तम स्वरूप माने गए हैं। यह प्रणाली अधिक नहीं चली है। इसका उल्लेख सूरदास जी की वार्त्ता में हैं और इसका स्पष्टीकरण गोपालदास बांसवाडा वाले की वार्त्ता संख्या २८ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के भावप्रकाश में है। सूरदास जी श्री आचार्य जी के भोजन के पश्चात् 'गादी दकियान पर विराजे थे' तब उपस्थित हुए थे और उस समय उनको स्नान कराकर आपने नाम सुनाया था और पीछे समर्पण कराया था। इस समय किसी मूर्ति स्वरूप का उल्लेख इस वार्त्ता में नहीं है। दूसरे सम्प्रदायिक मर्यादा के अनुसार भोजन के अनन्तर समर्पण नहीं कराया जाता है किन्तु अंतरंग लीला के जीवों के लिये इस मर्यादा का पालन श्री आचार्य जी एवं गुसांई जी ने आवश्यक नहीं समझा है। श्री नन्ददास जी की वात्त ।में भी इसी प्रकार नाम निवेदन कराया गया है। यद्यपि बम्बई संकरण में नवनीतप्रिय जी के सन्निधान का उल्लेख है। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में हरिदास बनिया की वार्त्ता में लिखा है कि श्री हरिदास जी ने राजा जयमल की बहन से पूछा कि 'तुम कौन प्रकार श्री गुसांई जी के सरिन आए हो ?' इस पर उसने कहा कि मैंने विनती पत्र लिखकर एक लौंडी के हाथ भेजा और श्री गुसांई जी ने मेरी बहुत आर्ति जानकर मुझे निवेदन को पत्र लिखि पठायो 'जिसे स्नान करके अपरस' में बांचने की आज्ञा श्री। आत्म निवेदन की यह दूसरी प्रणाली है जिसका उल्लेख वार्त्ता साहित्य में है।

ब्रह्म-सम्बन्ध की तीसरी और सामान्य प्रणाली जिसका वार्त्ता साहित्य में उल्लेख है वह है पहिले एक दिन ब्रत करना, दूसरे दिन स्नान कर कर ठाकुर जी के सम्मुख मंत्रोच्चारण तुलसी समपर्ण करना है। यह प्रणाली वार्त्ता संख्या ५ अष्टछाप (कांकरौली प्रकाशन) में

चतुर्भुजदास की वार्त्ता में विस्तार से दी हुई है अन्यथा वार्त्ताकार ने नाम निवेदन कह कर ही अपने कथन की पुष्टि की है।

वार्त्ताओं से यह बात प्रगट होती है कि जो अछूत और अस्पर्श लोग थे उन्हें केवल नाम सुनाया जाता था और उनमें भगवद् प्रेम का आधिक्य होने पर उन्हें मन्दिर में भी आने की आज्ञा मिलती थी। दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में वार्त्ता संख्या १६७ में 'एक चूहड़ा श्री गोवर्द्धन को' की वार्त्ता में इसे मंदिर में सब समय सबसे पहले दर्शन कराया जाता था। इसी प्रकार सूतकी को भी मंदिर में प्रवेश करने की आज्ञा थी जिसका उल्लेख श्री कुंभनदास जी की वार्त्ता में है। कृष्णदास की वार्त्ता के अनुसार श्रीनाथ जी मंदिर के ऊपरी भाग में विराजते थे और प्रसाद सामग्री आदि सब नीचे से बन कर आती थी क्योंकि गंगाबाई की दृष्टि इस वार्त्ता में इस आने वाले भोग पर ही पड़ी थी।

सामान्यत: समाज में यह प्रचलित है कि ब्रज में यात्रा के प्रवर्तक भट्ट नारायण स्वामी गौड़ सम्प्रदाय के हैं, पर वार्त्ता साहित्य से पता चलता है कि ब्रज यात्रा के आदि प्रवर्तक श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी हैं एवं रास के गुसांई श्री विट्ठलनाथ जी। महाप्रभु जी वल्लभाचार्य जी ने निजवार्त्ता के अनुसार १६५० से विक्रम संवत् १५६६ पूर्व तीन पृथ्वी परिक्रमाएं की थीं। इन तीनों में उन्होंने ब्रज यात्राएं की थी। अन्य साम्प्रदायिक ग्रंथों से पता चलता है कि उनकी प्रधान परिक्रमा (ब्रज) सम्वत् १५४९ द्वितीय १५५६ और तृतीय १५६० में हुई थी। बाद में कई बार आप ब्रज पधारे। १५६७ में जब सूरदास को शरण में लिया था फिर १५८५ में आपने एक और परिक्रमा की थी और इसी प्रकार श्री गोपीनाथ जी ने विक्रम सम्वत १५९५ में एक ब्रज यात्रा की थी।

श्री गुसांई जी की निजवार्त्ता की हस्तलिखित प्रति में (कांकरौली सरस्वती भण्डार) में लिखा है कि उन्होंने अडैल में एक रास करवाया था। उनका अडैल वास का समय १६१६ तक का है। इसीलिये उस समय तक रास हो चुका था। विरुद्ध इसके, श्री नारायण भट्ट ब्रज में १६०० में आए और उन्होंने १६७९ में ब्रज के महत्वपूर्ण स्थानों पर एक छोटा सा ग्रंथ लिखा। इसलिए 'ब्रजयात्रा' का श्रेय नारायण भट्ट को न होकर महाप्रभु जी को है और रास का श्री गुसांई जी को।

वैष्णव साहित्य में वार्त्ता के ग्रंथ केवल आख्यान या कथा साहित्य के आदि ग्रंथ ही नहीं माने जाते हैं वरन् इनके द्वारा भक्तजन अपनी आत्मज्ञान की जिज्ञासा और भक्ति के लिए मार्ग ढूंढ़ते हैं। इनके पठन अथवा श्रवण से अपने को शांतिप्रद सुख प्रदान करते हैं। वार्त्ता साहित्य में जिन भक्तों की कथाएं हैं, वे सब परम कृपापात्र प्रभुस्वरूप ही माने गए हैं इसलिए इस साहित्य का धार्मिक महत्व बहुत अधिक है। अनुभूतिपरक होने के कारण इसके विवरण साधना की कड़ियां और पुष्टि बोध का सुबोधमय सोपान माने जाते हैं। जब वार्त्ता का पाठक यह पढ़ता है कि यह श्री महाप्रभु जी के कृपापात्र भक्त थे तो वह गद्‌गद् हो जाता है और स्वयं उस भाग्य को अपने लिये मांगता है। इनका लक्ष्य धार्मिक है और यह जिस भाव भूमि को स्पर्श करके मन को शुद्ध करने का प्रयास करती है, वह समर्पण आदि उपायों द्वारा मानसिक निवृत्ति का साधन बनती है। अपनी विस्तार मय परिधि के भीतर छोटे बड़े, धनी-निर्धन सबको स्थान देने के कारण इनकी व्यापकता से भी पाठक पूरी तरह से प्रभावित होता है। धर्म और धार्मिक आचरण आदर्श और

व्यवहार वार्त्ता में दोनों का अपूर्व संगम है। सर्वोपरि सब वार्त्ताओं को महाप्रभु जी और श्री गुसांई जी की अखण्ड ज्योति से प्रकाश और बल मिलता हैं। इनमें उस छवि की झांकी मिलती है जिनमें माधुर्य भाव की प्रधानता है जिसमें चिन्ता को छोड़ कर भजन और सेवा श्रेयस्कर मानी गई है। वार्त्ताओं में चाहे वह ऊर्ध्वभुजा के प्राक्ट्य की घटना हो या सद्दू पांडे के खिरक में नई गाय आने की, या अनेक रोड़ियों से मारामारी खेलने की, सबके पीछे नित्य लीला के अटल विश्वास की दृढ़ भित्ति खड़ी है। भक्त की दीन आँखें, या यदि सूर की वार्त्ता को ले लें तो बन्द आंखें भी वार्त्ता की घटनाओं में वह ज्योति देख पाती हैं जिसके सामने द्वादश आदित्य का प्रकाश कुछ नहीं ठहरता है और जो मानस को भी प्रकाशित कर देती हैं और उसमें उसे वह दिखाई देने लगता है जिसे बड़े-बड़े ज्ञानी अनेक जन्म के प्रयत्नों में नहीं देख पाते हैं। वार्त्ता के श्रोताओं का ठाकुर छोटा है मृदुल है, सकुमार है, सुन्दर है, पर उसका सत्यम् और शिवं सोया नहीं है। वार्त्ता नित्य पाठ करने वालों को ज्ञान ज्योति देती है इसमें उन्हें सन्देह नहीं है। जो इन्हें पढ़ते हैं या सुनते हैं वे वैष्णव के त्याग तप, उदारता, दयालुता और बन्धुत्व की दुहाई देते सुने जाते हैं। वर्त्ताकार ने अपनी वार्त्ताओं में ऐसे भक्तों का उल्लेख किया है जो वार्त्ता करते करते देहानुसंधान भूल जाते थे, रस मग्न हो जाते थे और तीन दिन तक उस आवेश में कभी कभी पड़े रहते थे। वार्त्ता सच्चे वैष्णव के लक्षण और गुण दोनों को स्पष्ट करती है। वैष्णवों के विरोध का परिणाम बताती है और जीवन के लिए सरलतम भाषा में एक ऐसा पथ निर्माण करती है जिस पर लीक गहरी होती है, और जो देखने में छोटा और तंग लगता है, पर उस पर चलने वाले को सदैव छाया (पुष्टि) और न थकने के लिए अनुग्रह का उल्लेख है और जो कुछ दूर चलने के बाद आपसे आप चौड़ा होता चला जाता है, और जिस पर चलने वाला साधक निर्भय होकर अपनी मुक्ति का मार्ग खोज लेता है। वार्त्ताकार सिद्धहस्त लेखक थे और वे सरस वक्ता भी थे। इस प्रकार उनके भक्तों की वार्ता अवश्य मनमोहक होती होगी।

साहित्यिक महत्व

कहानी का आदि रूप—वार्त्ता का साहित्यिक महत्व कई प्रकार का है। सर्व प्रथम तो ये वार्त्ताएं आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के आदि रूप में हमारे सामने आती हैं जिनमें लक्ष और अनुभूति दोनों बातों का पूरा ध्यान रक्खा गया है। वार्त्ताकार ने अपने वृतान्त में आधुनिक कहानी के अनेक तत्वों में से इन्हीं दो तत्वों की ओर ध्यान दिया है। सभी वार्त्ताओं का चाहे वह श्रीनाथ जी के प्राक्ट्य की वार्त्ता हो, या षट्-ऋतु वार्त्ता, अथवा महाप्रभुजी के प्राक्ट्य की वार्त्ता, अथवा चौरासी और दोसौ बावन, सबका ध्यान- अनुभूति और लक्ष तथा उससे उत्पन्न होने वाले प्रभाव की ओर है। इन चौरासी और दोसौ बावन वार्त्ताओं का कथा साहित्य की दृष्टि से यदि वर्गीकरण किया जाय तो यह भी घटना प्रधान, चरित प्रधान, और अनुभूति प्रधान, ऐतिहासिक, सामाजिक धार्मिक आदि श्रेणियों में बांटी जा सकती हैं और इनमें से कई एक वार्त्ताओं में कहानी कला के एक से अधिक तत्व एक साथ प्रभाव उत्पन्न करते दिखाये जा सकते हैं। जैसे श्रीनाथजी के प्राक्ट्य की वार्त्ता में जहाँ घटनाओं की प्रधानता है वहाँ दामोदरदास हरसानी और सद्दू पांडे पूरनमल आदि के चरित्र की ओर भी संकेत है। ऐसे ही चौरासी

वार्त्ताओं में वैष्णवों की वार्त्ताओं में यदि दामोदरदास हरसानी और पद्मनाभदास कन्नौजिया, नारायणदास चौहान (८४ वैष्णवों की वार्त्ता) की वार्त्ताएं चरित्र प्रधान हैं तो जनार्दन चौपड़ा और गुडस्वामी की वार्त्ताएं घटना प्रधान हैं। वार्त्ताओं का साहित्यिक महत्व भी यह है कि संस्कृत साहित्य और अपभ्रंश साहित्य में जो चरित्रात्मक कथाओं की प्रथा भारतीय साहित्य को 'बात' और 'ख्यात' में रूप में प्राप्त हुई है वार्त्ताएं उनका हिन्दी साहित्य और ब्रज भाषा गद्य में मौलिक स्वरूप है।

जातक कथाओं और अभिभावक चरित्रों को देखने से यह पता चलता है कि यह शैली क्रमशः दिन प्रतिदिन संक्षिप्त होती चली गई थी और वार्त्ताओं तक आते-आते एकदम संक्षिप्त हो गई थी। इसमें वक्ता और लेखक दोनों को प्रसंगों के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता है।

वार्त्ताओं का जो भावनात्मक संस्करण श्री हरिरायजी कृत उपलब्ध है उसमें जातकों की वही शैली किसी अंश में अपनाई गई है जिसमें इस जन्म के साथ पूर्व जन्म का हाल जुड़ा हुआ है। इस प्रकार वार्त्ताएं कथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। वार्त्ता से पहले के जो हिन्दी ब्रज भाषा गद्य के रूप मिलते है उनमें या तो कुछ राजाज्ञायें हैं या कुछ और पत्र। इन सब में भाषा का जो रूप मिलता है उसमें रूपों की अनिश्चितता सर्वत्र दिखाई देती है और वे इतने संक्षिप्त हैं कि उनके आधार पर ब्रज भाषा गद्य के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा के अतिरिक्त सिद्धान्त निर्णय करने में भी कठिनाई होती है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १४०० के गद्य का एक नमूना दिया है और दूसरा श्री विट्ठलनाथ जी के ब्रज भाषा ग्रंथ 'शृङ्गार रस मंडन' की टीका का उल्लेख मूल रूप से किया है। इसके पश्चात् चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ताओं का गद्य रूप से उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि 'शृङ्गार रस मंडन' ग्रंथ का जो उद्धरण स्वर्गीय शुक्ल जी ने दिया है वह ग्रंथ संस्कृत में है और संवत् १६८० के पं० वैकुण्ठमणि के अगहन महात्म्य में से भी एक उद्धरण दिया है। इन सब गद्य के नमूनों को देखकर भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इन सब उदाहरणों में टीका या अनुवाद का रस है मूल का नहीं। वार्ताएँ सर्वथा मौलिक हैं।

श्री गुसांईजी के संस्कृत ग्रंथ 'शृङ्गार रस मंडन को जो आचार्य शुक्ल ने श्रीगुसांई जी कृत हिन्दी ग्रन्थ मान लिया है, वही परम्परा रमाशंकर शुक्ल रसाल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में ज्यों की त्यों मानली है। इस प्रकार इन निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता पड़ता है कि वार्त्ताओं में ही बोल-चाल की उस भाषा का प्रथम साहित्यिक प्रयोग मिलता है जिसका व्यवहार श्री गुसांई जी ने सेवा में आरम्भ किया था और जिसे उनके पीछे श्री गोकुलनाथ जी और श्री हरिरायजी ने आगे बढ़ाया और अपने वचनामृतों और वार्त्ताओं में उसे सुदृढ़ कर दिया था। इस प्रकार चौरासी और दोसौ बावन दोनों वैष्णवों की वार्त्ताओं में हमें हिन्दी ब्रज भाषा गद्य के सर्व प्रथम परिष्कृत रूप में दर्शन होते हैं। वार्त्ता के गद्य की यदि हम श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों से तुलना करें तो हमें एक ही प्रकार के गद्य के दो नमूने प्राप्त होते हैं।

प्राचीन ब्रज भाषा गद्य का व्याकरण—

पं० चन्द्रवली पांडे ने जो मुगलकालीन हिन्दी पद्य के नमूने दिये हैं उनके आधार

पर जो ब्रज भाषा काव्य व्याकरण निश्चित किया जाय तो फिर खड़ी बोली और ब्रज-भाषा में अधिक भेद न रह जायगा। इसलिए ब्रज भाषा के व्याकरण की मान्यताओं के निश्चित करने में हमें इस गद्य रूप का ही सहारा लेना पड़ता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता को भाषा की दृष्टि से अप्रामाणिक कह कर उसे अपने ब्रज भाषा के अध्ययन का आधार नहीं बनाया है पर चौरासी वैष्णवन की वार्त्ताओं को आपने भी मान्यता दी है। आपको दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता को अमान्य इसलिए मानना पड़ा है कि आपने या तो बम्बई के संस्करण देखे हैं या डाकौर के, जो दोनों शुद्ध भाषा की दृष्टि से भ्रष्ट हैं और जिनके प्रसंग भी प्राचीन प्रतियों से मेल नहीं खाते हैं। इसलिए यह संस्करण भाषा और प्रसंग दोनों की दृष्टि से अप्रामाणिक हैं। इस पर विशेष रीति से इसी प्रबन्ध में प्रामाणिकता के प्रसंग में लिखा है।

इन वार्त्ताओं में हमें ब्रज भाषा के ग्राम्य और साहित्यिक दोनों रूपों के दर्शन होते हैं और इसके आधार पर हम उसके प्राचीनतम प्रयोगों की रूप-रेखा प्रस्तुत कर सकते हैं। उच्चारण की दृष्टि से यह ब्रज मंडल के प्रतिनिधियों की बाणी है और इसके भीतर अनेक ऐसे शब्द और वाक्यांश हैं जो परिशिष्ट में संग्रह किए गये हैं जिनका व्यवहार ब्रज के बाहर होता ही नहीं है। यह देशज शब्द हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका व्यवहार गुजराती फारसी मारवाड़ी आदि में होता है और जिन्हें देखकर आचार्य शुक्लजी को इन्हें श्री गोकुलनाथजी से पीछे किसी गुजराती शिष्य की रचना होने का संदेह हो गया था।

कवि—

अनेक कवियों के जीवन वृत्त तथा उनके ग्रन्थों का इन वार्त्ताओं में उल्लेख है जिनके आधार पर उनके जीवन चरित्र की एक खोई हुई कड़ी का तारतम्य बैठाया जा सकता है। वार्त्ताओं में ऐसे अनेक कवि हैं जिनके पद वल्लभ-संम्प्रदाय में प्रचलित हैं, पर उनका हिन्दी साहित्य में प्रचार नहीं है। वार्त्ताओं के बीच में बहुत से श्लोक और पद आये हैं जिन्हें परिशिष्ट में संग्रहीत किया गया है और जिनके अनुसार उस समय की कविता के भावों का पता चलता है और जिनके सहारे कीर्तन और गीत रचना की शैली में कृष्ण भक्ति के तत्व का महत्व दिखाई देता है। इन पदों में बहुत से पद तो पुष्टि के सिद्धान्तों के समर्थन में गाये गए हैं और उसके मर्म को सरस रूप में सामने रख देते हैं। इन वार्त्ताओं के आधार या कवियों और सेवकों की जीवनियों के जो प्रसंग प्राप्त हुये है वे जिस प्रकार कथा साहित्य के प्रारम्भिक रूप की रक्षा करते हैं उसी प्रकार हिन्दी में जीवनी साहित्य के आदि रूप का भी सूत्रपात करते हैं। इन वार्त्ताओं के आधार पर महाप्रभुजी और गुसांई जी के जीवन चरित्रों का निर्माण तो हो ही सकता है पर अन्य कवियों के सम्बन्ध में जिनका उल्लेख अन्यत्र नहीं है उनका जीवन वृत्त भी सभी इतिहास लेखकों ने इन्हीं वार्त्ताओं के आधार पर लिखा है। डा० दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप के कवियों के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में इनसे सहायता ली है और श्री प्रभुदयाल मीतल ने अपने सूर निर्णय में भी वार्त्ताओं का सहारा लिया है।

वार्त्ता जन साहित्य हैं। जन साहित्य से तात्पर्य यह है कि इसमें उनकी चर्चा है जिन्हें सामाजिक संगठन में जाति और धन के कारण वह स्थान प्राप्त नहीं है श्री उच्च वर्ग के लोगों और धनिकों को है। यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि वह युग सामन्ती युग था

और उसी प्रकार के साहित्य के सृजन की प्रेरणा संस्कृत साहित्य से प्राप्त होती थी, पर वार्त्ताओं ने जिस परम्परा का स्वाभाविक अनुकरण किया है, वह इस देश की एक चलती हुई धारा थी जिसमें मानवता को प्रधानता दी जाती थी और धनियों और सम्मानितों के साथ-साथ साधारण श्रेणी के लोगों को भी उतना ही सम्मान दिया था जिसके वे अधिकारी थे। यह परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश से हिन्दी साहित्य में आई है। इसी कारण जहाँ वार्त्ता में बीरबल की बेटी की वार्त्ता है तो 'एक डोकरी धानी पूनी वारी' की भी वार्त्ता है और एक दरांत बेच कर भेंट धरने वारे की भी वार्त्ता है, और सब मिलाकर ऐसे लोगों की संख्या उन लोगों की अपेक्षा अधिक ही है। श्री महाप्रभु जी और गुसांई जी ने कभी भी किसी भी मनुष्य को इसलिए हीन नहीं समझा है कि वह निर्धन है वरन् ऐसो की चर्चा दूने उत्साह के साथ वार्त्ताकारों ने की है। जन-जीवन की ऊंची और नीची सभी श्रेणियों से सम्पर्क रखने के कारण ही वार्त्ता साहित्य जन साहित्य है। इसके जन साहित्य होने का प्रमाण एक और है कि जब अधिकांश साहित्य हिन्दी में पद्य में लिखा जा रहा था, वह जनता की बोली में लिखा गया जो पद्य की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और जीवन के निकट है। इन वार्त्ताओं में जिस किसी ने धन के बल से अपने लिये विशेष प्रकार का प्रबन्ध या रियायत चाही है, उसकी अवहेलना भी की गई है ग्वाँरियां, कुम्हार, धीमर, चूड़ा और भंगी सबको दर्शन करने का समान अधिकार दिया गया है।

वार्त्ताओं का साहित्यिक महत्व उनकी भाषा में है, उनकी शैली में है, उनके पदों में है और जीवन वृत्त के सम्बन्ध में मिलने वाली बातों के संग्रह में है।

वार्त्ताओं का दार्शनिक महत्व

वार्त्ता साहित्य का दार्शनिक महत्व मायावाद के खण्डन और पुष्टि भक्ति की स्थापना तथा शुद्धाद्वैत दर्शन की भूमिका प्रस्तुत करने में है। मायावाद के खण्डन के लिए आचार्य प्रभुजी की निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता तथा बैठक चरित्रों के आधार पर आपने पाँच बड़े-बड़े केन्द्रों में शास्त्रार्थ किये हैं। सर्व प्रथम जगदीशपुरी की राज्य सभा में, फिर उज्जैन में, तृतीय ओड़छा, विद्यानगर और काशी। इसके अतिरिक्त और अनेक स्थानों पर भी श्री महाप्रभुजी ने मायावाद का खण्डन अनेक बार किया था जिसका उल्लेख अन्य बैठकों के चरित्रों में मिलता है। निजवार्त्ता पृष्ठ २८ पर लिखा है कि काशी में जब आप सेठ पुरुषोत्तम के घर पर विराजते थे। तब बड़े स्मार्त मायावादी वहाँ झगड़ा करने को आते थे और वे सब निरुत्तर होकर जाते थे। इन सबसे व्यर्थ में परिश्रम न करने के लिए ही आपने पत्रावलम्बन ग्रन्थ की रचना की थी जिसे विश्वेश्वर की दीवाल पर पढ़कर कोई मायावादी फिर आपके पास जाने का साहस न करता था। (वार्त्ता प्रसंग १४) इसी ग्रंथ के प्रसंग १५ में लिखा है कि जगन्नाथ-पुरी में जब आपने महाप्रसाद की व्याख्या सारी रात की तब वहाँ के राजा भोज ने आपसे वैष्णव सम्प्रदाय और मायावादियों के बीच रहने वाले ब्रह्म क्लेश को मिटाने की प्रार्थना की। वहाँ के विद्वानों को एकत्र कर आपने वहाँ मायावाद का खण्डन किया और अपने चार सिद्धान्तों पर श्री जगदीश जी से पुष्टि करवाई—(१) परमार्थ का साधन भूत मुख्य शास्त्र कौन? (२) मुख्यदेव्व कौन? (३) मुख्य मन्त्र कौन? (४) मुख्य कर्म कौन? इसके उत्तर में यह लिखा मिला—(१) देवकी पुत्र भगवान श्री कृष्ण के कहे हुये वचन (गीता) एकमात्र शास्त्र है और देवकी के पुत्र एकमात्र देवता हैं। उनका नाम ही एक

मन्त्र है। उस देवता की सेवा ही एक कर्म है। इसमें प्रमाण वेद श्री गीता जी, व्याससूत्र और श्रीमद्भागवत के हैं।[1] यहीं आपने भैरवी चक्रवाले शास्त्रों को भी परास्त किया था।

'बैठक चरित्र' की २७ वीं बैठक के चरित्र से भी निजवार्त्ता के इस प्रसंग की पुष्टि होती है कि आचार्य श्री ने काशी में मायावादियों का खण्डन किया। बैठक चरित्र की ३४ वीं बैठक श्री जगन्नाथपुरी की बैठक से भी निजवार्त्ता के पुरी में मायावाद के खण्डन की अविकल पुष्टि होती है। बैठक चरित्र की ३६ वीं बैठक के चरित्र से (नासिक के तपोवन की बैठक) यह सिद्ध होता है कि वहां भी आपने मायामत का खण्डन करके भक्ति मार्ग की स्थापना की और उस प्रदेश के पंडितों को अपने पाण्डित्य से प्रभावित किया। ३८ वीं बैठक, लक्ष्मणबालाजी की बैठक में लिखा है कि बाल्यावस्था में ही आप काशी में उन ब्राह्मणों से तर्क करते थे जो आपके घर आपके पिता के आमंत्रण पर भोजन के लिए आते थे। इस समय भी आप 'मायावाद का निराकरण कर भक्ति मार्ग की स्थापना करते थे।' बैठक संख्या ४५ कृष्णानदी की बैठक में लिखा है कि यहां बहुत से मायावादी तैलंग ब्राह्मण थे वे सब इकट्ठे होकर यहां आये और निरुत्तर होकर गए'। 'आचार्य जी ने सेकड़ान पंडितन को निरुत्तर कियो।' '४६वीं बैठक श्री विद्यानगर का शास्त्रार्थ तो अत्यन्त प्रसिद्ध है ही। उसकी पुष्टि भी इस बैठक चरित्र से होती है। बैठक चरित्र ५० श्री त्रिलोकभानजी की बैठक चरित्र में भी शक्ति के उपासक मायावादियों के मत का खण्डन हुआ है एवं भक्ति मार्ग की स्थापना हुई है। बैठक चरित्र संख्या ५१ श्री तोताद्री पर्वत की बैठक के चरित्र में भी मायावाद के खण्डन और भक्तिमार्ग की स्थापना का उल्लेख है। बैठक संख्या ५४ भड़ौच की बैठक के चरित्र में लिखा है कि श्री नर्मदा जी के दर्शन देने के पश्चात् आपसे मायावादियों का शास्त्रार्थ हुआ और वे सब पराजित हुए। बैठक चरित्र की ७२ वीं बैठक सिद्धपुरपाटन की बैठक के चरित्र में भी लिखा है कि आपने वहां भी मायावादियों को निरुत्तर करके 'ब्रह्मवाद' की स्थापना की।

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि आचार्य चरण ने सर्व प्रथम कार्य मायावाद का खंडन किया है और भक्ति-मार्ग की स्थापना की है। सिद्धपुरपाटन की बैठक चरित्र में जहां अन्य बैठकों के चरित्र में भक्तिवाद की स्थापना लिखी है, वहां 'ब्रह्मवाद' शब्द का प्रयोग हुआ। इस भक्ति-मार्ग और 'ब्रह्मवाद' शब्द के अन्तर को 'पुष्टिभक्ति' के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया गया है, यहां केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भक्ति पक्ष का ज्ञान पक्ष 'ब्रह्मवाद' है।

दूसरा दार्शनिक महत्व इन ग्रंथों का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त निरूपण में है। इस सिद्धान्त में (१) ब्रह्म उसका सर्व धर्मत्व, विरुद्ध सर्व धर्माश्रयत्व, ब्रह्मसर्वकर्तृत्व, ब्रह्मगतवैषम्य, नैर्घृण्य दोषपरिहार; (२) जगत, जिसमें ब्रह्मजगत एकत्व जगत सत्यत्व, जगत संसार भेद, अविकृतपरिणामवाद, आविर्भाव तिरोभाववाद; (३) अक्षर, ब्रह्मस्वरूप; (४) जीव, जीव स्वरूप, जीव नित्यत्व, जीव ज्ञातृत्व, जीव परिमाण जीवकर्तत्य जीवांशत्व, जीव ब्रह्माभेद; (५) मोक्ष; (६) विद्या अविद्या आदि का निरूपण है। वार्त्ता में इन सिद्धान्तों की बहुत ही कम व्याख्या हुई है। गदाधरदास की वार्त्ता में (वार्त्ता संख्या ८-८४ वैष्णवन की वार्त्ता परीख संस्करण) श्री कृष्ण का पूर्ण रूप से इस प्रकार से निरूपण हुआ है……निश्चय कौन ठाकुर हैं? तब श्री आचार्य

---

१ एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतं, एकोदेवो देवकी पुत्र एव।
मंत्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥
वेदाः श्री कृष्ण वाक्यानिव्याससूत्राणिचैवहि।
समाधिभाषा व्यासस्य, प्रमाणंतच्चतुष्टयम्॥

जी कहे, जैसे— चक्रवर्ती राजा को राज तो सगरी पृथ्वी पर, और राजा देश देश के, गांव के, सोउ राजा कहावें, परन्तु चक्रवर्ती के आज्ञाकारी। तैसे ही पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण, सो सर्वोपरि और अवतार अंस कला, करिके होइ, सब श्री कृष्ण के आज्ञाकारी। ठाकुर सबकों कहिए। इसके अनुसार श्री कृष्ण जी ही परम ब्रह्म हैं।

मुरारीदास की वार्त्ता संख्या २१४ में जगत के स्वरूप के सम्बन्ध में यह लिखा है— तब मुरारी आचार्य ने श्री गुसांई जी से पूंछयो जो जगत सत्य है के असत्य है ? तब श्री गुसांई जी ने कही जो जगत सत्य है और संसार जो अहंता ममता, सो असत्य है तब मुरारी आचार्य ने कही जो जगत सत्य होवे तो एक चले जाय हैं फिर दीखे नहीं है। तब श्री गुसांई जी ने आज्ञा करी जो प्रभु में अनन्त शक्ति है सो आविर्भाव तिरोभाव शक्ति है जासूं प्रकट होवे सो दीखे और तिरोहित होवे सो न दीखे।' इसके अनुसार पुष्टि दर्शन में जिस जगत को सत्य माना गया है, उसी की व्याख्या वार्त्ता में की गई है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है आचार व्यवहार की सत्यता है। इस पर भी अनेक वार्त्ताओं में विशेष रीति से बल दिया गया है। यों तो प्रत्येक वार्त्ता ही भक्त के आचार व्यवहार का ही विवरण है, फिर भी इसमें इस पर बल दिया गया है। चाचा हरिवंश की वार्त्ता में चाचाजी ने तीन दिन तक मार्ग में फंस जाने पर भी मार्ग में अवैष्णव के फल तक ग्रहण नहीं किए और जब उस स्त्री ने नाम ले लिया तब उसको सब मार्ग की विधि बताई जिसमें क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिये यह बताया। इस प्रसंग में वैष्णव के इस आचार की रक्षाकी गई है कि वैष्णव को खाने-पीने का बहुत विचार रखना होता है।

वार्त्ता साहित्य का तीसरा दार्शनिक पक्ष है 'पुष्टि भक्ति का निरूपण' जिसमें सेवा को प्रधानता दी गई है। इसका विवेचन पुष्टि भक्ति के विवेचन में हो चुका है।

वार्त्ता साहित्य का सामाजिक महत्व

सामाजिक महत्व से तात्पर्य इतना ही है कि सिकन्दर लोदी की पैनी और क्रूर तलवार के नीचे अपनी आंखों के सामने अपनी धार्मिक और कलाकृतियों को नष्ट होती हुई देखने वाली हिन्दू जाति को जो वल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्ग ने थोड़ी बहुत सान्त्वना दी थी उसे उसने किस रूप में ग्रहण किया था और तत्कालीन राजनीतिक और धार्मिक स्थिति के बीच शरण आने वाले जिन भक्तों के चरित्र वार्त्ता साहित्य में आए हैं उन्हें किन किन बन्धनों के बीच से होकर निकलना पड़ा है तथा उस समय समाज की क्या दशा थी। हमारे बीच प्रतिष्ठा, सत्य, न्याय, कुल-मर्यादा, यातायात और व्यापार के कौने-कौने से साधन उपलब्ध थे जिनका उल्लेख वार्त्ताओं में हुआ है। इसमें से भी अधिक किस-किस रूढ़िवाद को श्री महाप्रभुजी ने अपने व्यक्तित्व और सिद्धान्त द्वारा गहरी चोट पहुँचाई थी ? उनसे भी बढ़कर वैभव के साथ पुष्टि सिद्धान्त का प्रचार करने वाले उन्हीं के सुयोग्य पुत्र और उत्तराधिकारी श्री विट्ठलनाथ जी ने उनमें से किन-किन को अपने समाज के बीच में से हटाया तथा उनके स्थान पर किन-किन अन्य उपायों का प्रचार किया। श्री विट्ठलेश का व्यक्तित्व अद्वितीय था। उनकी सूझ अनोखी थी एवं जो उनके सम्पर्क में आया वह उनसे प्रभावित हुए बिना रह न सका। वार्त्ता और इतिहास दोनों से इसकी पुष्टि होती है। सुख और शान्ति के इस अवतार ने समाज, धर्म और राजनीति के बीच जो व्यावहारिक सिद्धान्त रक्खे थे समाज ने उन पर किस प्रकार अथवा उनके एक अंश ने उन पर किस

प्रकार अमल किया है । वार्त्ताओं में से प्रत्येक वार्त्ता का एक सामाजिक महत्व है, पर विशेष रीति से कुछ वार्त्ताओं में उस समय के समाज का और सामाजिक व्यवहार का अच्छा उल्लेख मिलता है। दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता में महाप्रभु जी के इस प्रथम और सुमेरू सेवक को श्री गुसांई जी दंडवत नहीं करने देते थे। गुरूभाई का यह सम्मान श्री वल्लभाचार्य जी के योग्य उत्तराधिकारी के योग्य था। वार्त्ता ३ में दामोदरदास की वार्त्ता में उनके पास एक घोड़ा था। इसका उल्लेख है कि जिससे पता चलता है कि उन दिनों घोड़े का समाज में वही मूल्य था जो आज मोटरकार का है। इसी वार्त्ता में मध्यम या उच्च श्रेणी के व्यक्ति के लिए अपना काम आप करना समाज में बुरा माना जाता था। इसका भी आभास है। यदि बड़े आदमियों के लिए अपने हाथ से पानी भरना समाज में बुरा या अप्रतिष्ठा के योग्य न समझा जाता तो फिर इनके ससुराल पक्ष के लोग इनके और इनकी स्त्री के ठाकुर जी के लिए पानी भरने पर क्यों आपत्ति करते ? और आगे चलकर सेवा का महत्व जान कर अपनी भूल स्वीकार करते। इन्हीं दामोदरदास के बेटे के मुसलमान होने का अन्यत्र इसी प्रसंग में उल्लेख हो चुका है। वार्त्ता साहित्य द्वारा जो यह सूचना मिली, वह हमारे तत्कालीन जीवन की एक झलक मात्र है। इतिहासकार उस समय के सामूहिक धर्म परिवर्तन की करुणाजनक कहानियों का अपने ग्रन्थों में उल्लेख करते हैं।

पद्मनाभादास कन्नौजिया की वार्त्ता में एक निर्लोभी ब्राह्मण के व्यवहार की कथा है और उनके स्वाभिमान का उल्लेख है। अर्थ संकट होते हुए भी उन्होंने स्वयं महाप्रभुजी से भोग के लिए सहायता लेना स्वीकार नहीं किया। वैष्णवन की वार्त्ता संख्या १० में लिखा है कि भैंसा पानी ढोता था। वार्त्ता दस के अनुसार श्री गुसांई जी सूर्य ग्रहण के अवसर पर काशी स्नान को गए थे। इससे पर्व की मान्यता सिद्ध होती है। वार्त्ता २४ के मुकुन्ददास कायस्थ कवि, जिन्होंने 'मुकुन्द सागर' नामक ग्रन्थ बनाया, वे भी उज्जैन में ग्रहण नहाने गए थे। वार्त्ता २६ में प्रथोदक तीर्थ पर 'सींहनंद' के प्रभुदास भाट ने शरीर छोड़ना स्वीकार नहीं किया है। वार्त्ता के इस उद्धरण से 'तीर्थ में मरने से मोक्ष होती' इस विश्वास को तो उतनी ठेस नहीं लगती है जितनी भक्त की अनन्यता प्रमाणित होती है और उसे मोक्ष नहीं चाहिए ऐसा सिद्ध होता है। जो विद्वान् इसमें कबीर के प्रभाव की झलक देखते हैं वे उचित नहीं करते हैं। वार्त्ता ४० 'राणा व्यास की वार्त्ता' से पता चलता है कि उस समय भी लोग चुगली किया करते थे। वार्त्ता ४५ वासदेवदास छकड़ा की वार्त्ता में मथुरा के चौबे लोगों की मानसिक वृत्ति का जो उल्लेख है उससे यह पता चलता है कि इनमें से कुछ उसी समय से सदा शयता से दूर रहते थे और 'साहवे वक्त' की सेवा में अपने जीवन की सफलता समझते थे तथा व्यर्थ की ईर्ष्या करना इनके स्वभाव का एक अंश हो गया था। महाप्रभु जी ने तो पृथ्वी परिक्रमा के (तीर्थ यात्रा) बाद विश्रान्त घाट पर उजागर चौबे को १०० रुपये दान देकर उस सामाजिक प्रथा का पालन किया था, जो उस समय चल रही होगी और उन्हीं के सम्मानित पुत्र के साथ उन्होंने विधर्मियों से मिलकर उनसे धन दिलवाने की कुमंत्रणा की। ८४ की पचासवीं वार्त्ता में तथा २५२ की अनेकों वार्त्ताओं में स्त्रियों के सूत कातने का उल्लेख है जो कालान्तर में समाज की उच्च श्रेणियों में से बिल्कुल उठ गया और कपास ओटने की जीन और सूत की मिलों के कारण गाँवों से भी लुप्त हो गया। वार्त्ता ५२ में कृष्णा दासी थी पर गुसांई जी ने उसकी सेवा का पूरा ध्यान रखकर श्री गोकुलनाथ नाम ही स्वीकृत रक्खा। वार्त्ता मणिमाला के सुमेरू का यह आचरण समाज के कल्याण के लिए था और उससे सेवक

के स्थान को अवश्य महत्व मिला होगा। वार्त्ता ५४ में मीराबाई के पुरोहित के उसको 'रांड' 'दारी' इत्यादि कहने पर ब्रज के सामाजिक व्यवहार से अपरिचित होने के कारण पंडित रामचन्द्र शुक्ल जैसे अद्वितीय विद्वान् भी उसे 'गाली' समझ बैठे थे। ब्रज में तो इस प्रकार की गालियों को गाली नहीं समझा जाता है। पुरोहित रामदास की भाषा से और उनके व्यौहार से यदि मीरा परिचित न होती तो न सही उसके संरक्षक तो इनकी अच्छी खबर लेते ही। वार्त्ता ८३ में और अनेक वार्त्ता में 'हुँडी' का उल्लेख है जिसके द्वारा रुपये भेजे जाते थे। हुँडी का प्रचलन आज भी व्यापारियों के बीच है और उस समय भी था। इस उल्लेख से पता चलता है कि रुपया भेजने का यह सुगम साधन कम से कम ५०० वर्ष पुराना तो है ही। सूरदास और कुँभनदास जी की वार्त्ता तथा अन्य गीत-काव्य के कवियों के पदों से पता चलता है कि उस समय हमारे समाज में संगीत का बड़ा भारी सम्मान और प्रचार था, तथा इसके विशेषज्ञ और गुणीजनों को राज्य दरबारों में भी सम्मान प्राप्त था। बादशाह अकबर स्वयं इस विद्या का बड़ा प्रेमी था और उसके यहां इन गुणियों को उच्च कोटि का सम्मान प्राप्त था। कन्नौज के परमानन्ददास जी के संगीत के विषय में तो यह लिखा है कि इनके कीर्तन का पद सुन कर स्वयं महाप्रभु जी को तीन दिन तक आवेश रहा था। कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में लिखा है कि इन्होंने आगरे से एक वेश्या को लाकर भगवान के दरबार में नचा दिया। जिससे समाज में नृत्य के स्थान का भी पता चलता है। वार्त्ता ३७ में तवीके हाकिम अलीखान स्वयं पखावज अच्छी बजाते थे। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि उस समय समाज में काव्य, संगीत, नृत्य, शृंगार, मूर्तियों का शृंगार (आदि सभी ललित कलाओं को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। तानसेन की वार्त्ता संख्या ११३ में लिखा है कि 'अमल पानी' नशा करते थे जिसे इन्होंने पीछे से छोड़ दिया था।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में नागजी भट्ट की वार्त्ता में इन्हें देशाधिपति के पास पट्टा कराने के लिए भेजा गया है। पट्टा या पट्टे का समाज में आज भी प्रचलन है और उस समय भी था। यह प्रथा मुगलकाल से पूर्व से चलती चली आ रही है, वार्त्ता में इसके उल्लेख का यही महत्व है। कृष्ण भट्ट की वार्त्ता में लिखा है कि सम्प्रदाय में वसंत पंचमी के दिन उदया चतुर्थी नहीं मानी जाती थी। चाचा हरिवंश की वार्त्ता में है कि इनके किसी व्यापारी की कंसेड़ी (छोटी कलसिया) का जल पीने के कारण कृष्ण भट्ट ने आपत्ति की थी। इस वार्त्ता के अनुसार उस समय भी समाज में दलाल थे तथा अन्य वार्त्ताओं से भी इस प्रथा का समर्थन होता है——आगरे के ऋषीकेश भी घोड़ों की दलाली करते थे। इस वार्त्ता के अनुसार वैष्णव समाज में दाल, गाजर, मूली, गूलर और तरबूज नहीं खाए जाते थे। नारायणदास की स्त्री इनके साथ ही सती हो गई थी। इससे उस प्रथा का प्रचलन मिलता है जिसे आगे राजाज्ञा से रोका गया था। विट्ठलदास कायस्थ की वार्त्ता में कोड़ों की मार की सजा का उल्लेख है। रूप मुरारीदास की वार्त्ता में वे शिकार के लिए पूंछरी की ओर गए थे। पीछे तो शाही फरमान द्वारा गोवरधन और गोकुल में शिकार खेलने की मनाही करदी गई थी। गोधरा का नाम गोधरापंचमहल इसी पट्टे के फलस्वरूप प्रचलित हुआ है। हरिदास मेडता के बनिए की वार्त्ता २६ में लिखा है कि 'जैमल के दरबार में हरिदासजी सलाम करिके ठाड़े भए।' इस वार्त्ता के दूसरे प्रसंग में लिखा है कि हरिदास ने

अपने पुरोहित के साथ अपनी लड़की करदी और उन्हें योग्य वर के साथ उसकी सगाई करने का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया था। इससे पता चलता है कि उन दिनों पुरोहितों पर कितने बड़े उत्तरदायित्व का काम छोड़ दिया जाता था। पुरोहित द्वारा विवाह सम्बन्ध पक्का कराने का उल्लेख राजस्थानी के अन्य काव्य ग्रन्थों में भी है। नंददास की रूपमंजरी में भी इसकी पुष्टि होती है। वार्त्ता २२ माणिकचन्द की वार्त्ता से पता चलता है कि घर में सयानी कन्या को रखना लोकापवाद का कारण होता था। ८४ में हरिवंश पाठक की वार्त्ता में भी यही है। वार्त्ता के अनुसार पुष्टि मार्ग की चर्चा अन्य मार्गियों के आगे नहीं की जाती थी। वार्त्ता २८ से यह प्रगट होता है कि शैवों और वैष्णवों में परस्पर कितना विरोध था। इस नागर ब्राह्मण के हाथ का अन्न इसके गांव के शैव लोगों ने ग्रहण नहीं किया था। वार्त्ता ३८ में शैव और वैष्णवों का विरोध दिखाया गया है। एक कुम्हार की ३२ वीं वार्त्ता के अनुसार एक रुपया उन दिनों चार दिन के कई आदमियों के खर्च के लिए काफी था। अलीखान की बेटी की वार्त्ता से पता चलता है कि पुष्टि सम्प्रदाय में विधर्मी के लिए भी स्थान था क्योंकि स्वयं अलीखान ने श्री गुसांईजी से ठकुरानी घाट पर दीक्षा ली थी। दशहरे पर आज भी जमींदारों के यहाँ 'अश्व पूजन' होता है और उसी दिन उसका नया साज बदला जाता है। अलीखान की वार्त्ता में लिखा है कि जो घोड़ा उन्होंने श्री गुसांईजी की भेंट किया था, उसका वे 'बरस दिन के बरस दिन दशहरा को वा घोड़ा को साज पलटते।' वार्त्ता ४१ में यह दिखाया गया है कि अपने वेश्यागामी सेवक को भी गुसांईजी कभी भूलते नहीं थे। वार्त्ता ४५ में छज्जो की नाक काटली गई है। यह दंड भी ऐसा लगता है कि राजा रामचन्द्रजी के समय से बराबर दुष्ट स्त्री पुरुषों को दिया जा रहा है। वार्त्ता ४८ में वैष्णव के माला पहनने के पश्चात् भेंट करने की प्रथा का उल्लेख है। वार्त्ता बावन में स्नान के लिए गर्म जल देने के व्यवहार का उल्लेख है। वार्त्ता ५३ में लिखा है कि यह राजपूत 'राजा को हांसिल राजरीति सों सताय कै लेत' अर्थात् निर्दयता पूर्वक कर वसूल करता था। वार्त्ता ५५ में लिखा है कि 'भूमियां लोग लोगों को लूट लिया करते थे जिससे मार्ग में सुरक्षा की व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है।

वार्त्ता ६१ में बाल्यावस्था के विवाह की ओर संकेत है। वार्त्ता ६९ में एक कुंजरी (मुसलमान) को भी सेवक बनाया गया है। ७१ वीं वार्त्ता में बेटी के धन को अभक्ष बताया गया है। वार्त्ता ७३ में समाज में पतित मानी जाने वाली वेश्या की छोरी का उद्धार है। वार्त्ता ८४ में रामोपा सना से कृष्णोपासना को अधिक अच्छा बताया है। वार्त्ता ९१ में 'अतिथि देवोभव' का उदाहरण है। वार्त्ता १०८ 'कल्याण भट्ट' की वार्त्ता में लिखा है कि दूध चार पैसे सेर मिलता था। वार्त्ता ११३ में समाज में कौड़ियों का चलन दिखाई देता है। वार्त्ता ११८ में महावन का एक म्लेच्छ शरण में आया है। म्लेच्छ का अर्थ विशेषतः मुसलमान ही लिया जायगा। वार्त्ता १३६ में एक धीमर शरण में आया है। वार्त्ता १६७ में एक चूहड़ा (मेहतर) गुसांई जी की शरण आया था। २५२ की वार्त्ता में अनेक वार्त्ताएं ऐसी हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि श्री गुसांई जी अपराधी को भी शरण में ले लेते थे। यह अपराधी समाज की दृष्टि में गिरे हुए होते थे पर फिर भी इनके लिए भक्ति द्वारा उद्धार का द्वार खुला था। वार्त्ता संख्या २०२ 'साहूकार को बेटा' 'वजीर की बेटी' 'और बनिया का' पुत्र की वार्त्ता में यह दिखाया गया है कि पुष्टि मार्गीय वैष्णवों में स्त्री पुरुष के अधिकार समान थे और इतने

दिन मुसलमानों के अधीन रहने पर भी हिन्दू ललनाओं में वीरता अभी शेष थी । वार्त्ता २१३ में चोरी के लिए गधे परे बैठकर फिरना पड़ा है जो दण्ड समाज में उस समय किसी अंश में अवश्य प्रचलित रहा होगा । वार्त्ता २१४ में चरखा कातने का उल्लेख है । इस वार्त्ता का शीर्षक ही 'धानी पुनी वारी' की वार्त्ता है । वार्त्ता २१६ तथा अन्य वार्त्ताओं के आधार पर यह सिद्ध होता है कि पुष्टि मार्ग में प्रसादी माला तुलसी की होती है अन्य किसी वस्त की नहीं । वार्त्ता २१७ में न्याय में हाथ में जलता लोहा लेने की प्रथा का उल्लेख है । वार्त्ता २१८ सतसंग की महिमा प्रगट करती है । वर्त्ता २२४ में भूँठ न बोलने का आदेश है । वार्त्ता २२६ में एक चोर को फांसी की सजा दी गई है । यह प्रसंग एक शरावगी की बेटी की वार्त्ता में हैं । वार्त्ता २२८ में गुप्तदान का महत्व दिखाया है । वार्त्ता २२९ में लाडबाई धारबाई के एक लाख रूपए को श्री गुसांई जी ने बुरा द्रव्य समझ कर अस्वीकार कर दिया था जिससे पता चलता है कि कुधन का स्वीकार करना समाज और धर्म में बुरा माना जाता है । वार्त्ता २३१ में महावन के मदन गोपाल कायस्थ की वार्त्ता में एक स्त्री के रहते दूसरे व्याह हो जाने का उल्लेख है । वार्त्ता २४० में श्री गुसांई जी ने जैसा कृष्णादासी का सम्मान किया है वैसा अपने जल भरने वाले का किया है । वे उसे पुत्रों जैसा सम्मान देते थे । समाज में घरेलू नौकरों की जो दुर्दशा है उसके विरुद्ध यह एक स्वस्थ रीति है । धोंधी की वार्त्ता संख्या २४० में श्री गुसांई जी के हाथ में कड़े पहनने का उल्लेख है जिससे यह सिद्ध होता है कि बाल्यावस्था में ये जेवर पहने जाते थे । वार्त्ता २४४ में छीत स्वामी के पूर्व जीवन पर दृष्टि न रख कर चरित्र हीन को शरण दी गई है।

वार्त्ता साहित्य में से जो उदाहरण दिए गए हैं उससे स्पष्ट हो गया कि पुष्टिभक्ति में हिन्दू समाज में ऊंच नीच, बड़े छोटे की जो श्रेणियां प्रचलित थीं उनके भेद को स्वीकार नहीं किया गया है । आध्यात्मिक उन्नति का द्वार सबके लिए खुला रक्खा गया है । दूसरे इसमें स्त्री और पुरूषों के समान अधिकार दिए गए हैं । ध्यान देने की बात यह है कि भारत के सामाजिक जीवन में यह लगभग वह काल था जब लोक प्रसिद्ध कवि को तत्कालीन स्थिति के वश होकर तथा अन्य कारणों से भी 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी' की ताड़ना के लिए लिखना पड़ा था । पुष्टि भक्ति में इस पद के ढोल को छोड़ कर सभी के समान अधिकार की ही घोषणा नहीं की गई है उसका व्यवहारिक उपयोग भी किया गया है । दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता में सामान्य दृष्टि से सामाजिक व्यवहार की रक्षा की गई है। झूंठे और कृत्रिम सम्मान और मर्यादा का उलंघन करने की आज्ञा दी गई है । स्वाभिमान और टेक को महत्व दिया गया है। तीर्थों और पर्वों का सम्मान दिखाया गया है । तीर्थ स्थान पर मरने से मोक्ष मिलेगी चाहे कर्म कैसे भी रहे हों इस अंध विश्वास पर चोट की गई है । जहां इन वार्त्ताओं में सामाजिक जीवन के भद्र अंश का उल्लेख है वहां उसके अभद्र को आदर्शवादिता के पीछे छिपाया नहीं गया है । इनमें चुगली करने वाले मुसलमानों से मिल कर हिन्दुओं के विरुद्ध षडयंत्र करने वालों का भी उल्लेख है । नौका द्वारा देश में व्यापार और यातायात होता था तथा व्यापार में हुन्डियों द्वारा रुपयों का लेन-देन होता था और स्थल मार्ग में लूट मार भी हो जाया करती थी। इसका भी हाल लिखा है। संगीत साहित्य (कविता) और नृत्य तथा वाद्य का समाज में खूब प्रचार था। और सम्मान था । अनेक वार्त्ताएं इस पर प्रकाश डालती हैं । राज की ओर से छोटे छोटे राज्यों को पट्टे पर दिया जाता था। हाकिम लोग कभी कभी निर्दयता से राजस्व

वसूल करते थे। चोरी पर कभी फांसी की सजा भी दे दी जाती थी। चोर का मुह काला करके बाजार में गधे पर बैठालकर निकालते थे। दुष्टों के लिए बन्दीखाने थे। उनमें उन्हें भोजन ही मिलता था। कोड़े मारने की सजा दी जाती थी। पुरोहित का कार्य अत्यन्त उत्तरदायित्व पूर्ण था। शैव और वैष्णव आपस में मन-मुटाव रखते थे। उन दिनों की आर्थिक अवस्था ऐसी थी कि दूध चार पैसे सेर था और एक रुपए का भोजन कई आदमियों के लिए कई दिन को होता था। भवन निर्माण की कला और मंदिरों का स्थापत्य अपने ढंग से चल रहा था। उस पर मुगल शैली का प्रभाव नहीं पड़ा था इत्यादि।

इन वार्त्ताओं में से बहुत सी वार्त्ताओं में ऐसे प्रसंग मिले हैं जो आज देखने में विचित्र और और सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुचित, प्रतीत होते हैं। कई वार्त्ताओं में लिखा है कि श्री महाप्रभुजी ने अथवा श्री गुसांईजी ने भक्त को झूंठन की पातर धरी। अपने मुख का चर्वित ताम्बूल दिया। कभी-कभी उस व्यक्ति की जिसके मुंह में यह उगार दिया गया है बुद्धि निर्मल हो गई है। यह बात वार्त्ताओं में इतनी बार दुहराई गई है कि यह विश्वास करना ही पड़ता है कि ऐसी प्रथा इस समुदाय में प्रचलित थी [1]। इस प्रथा की जितनी भी निन्दा की जाय उतना ही थोड़ा है। जिस सम्प्रदाय में ललित कलाओं इतना सम्मान हो जिसके अपरस आचार में स्वच्छता का इतना ध्यान रक्खा गया हो उसमें यह 'प्रथा' का अनुकरण कहां से आगया है, यह विचारणीय है। इस विषय से अत्यन्त असंतुष्ट होकर मैंने सम्प्रदाय के एक विद्वान् से इस प्रथा के प्रचलन का कारण पूंछा और उन्होंने श्री मद्भागवत् के उदाहरण देकर इसे शास्त्रोक्त सिद्ध किया।

वार्त्ता साहित्य का राजनीतिक महत्व

इतिहास और राजनीति दोनों में भेद करना साधारण व्यक्ति के लिए कठिन होता है। इतिहास और राजनीति की आँख मिचौनी साथ-साथ चलती है। वार्त्ता साहित्य का राजनीतिक महत्व उसमें उल्लिखित राजपुरुषों के नामों और कार्यों तक ही सीमित है। चौरासी वैष्वणन की वार्त्ता संख्या ६६ में नारायणदास चौहान ठट्ठे के वासी की वार्त्ता में लिखा है कि ये पदाशाह के चाकर थे और इन्हें राजकोष के कारण जेल में रहना पड़ा था जिसमें इनकी गुरुनिष्ठा देख कर बादशाह ने इन्हें मुक्त कर दिया। इसी प्रकार ६४ वीं वार्त्ता के नारायणदास कायस्थ भी राजद्वार में नौकर थे। कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में बीरबल ने कृष्णदास को जेल में डलवा दिया था जिससे श्री गुसांईजी का तत्कालीन शासन में महत्वपूर्ण होने की सूचना मिलती है। तीसरी वार्त्ता के दामोदरदास सम्भल वाले भी राजद्वार के सेवक थे। श्री महाप्रभुजी का समय है सम्वत् १५३५ से १५८७ तक अथवा सन् १४७९ से १५३० ईसवी तक है। इस समय दिल्ली के शासन में बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी और इब्राहीम लोदी तीन शासकों ने शासन किया है। इसमें सिकन्दर लोदी अपनी कट्टरता के लिये प्रसिद्ध है। ये तीनों पुरुष इन्हीं में से किसी अधिकारी के नीचे काम करते थे

---

१. रहों सदा चरनन के आगे महाप्रसाद उच्छिष्ट जो पाऊं।
नंददास प्रभु यही मांगत हूँ श्री वल्लभ कुल को दास कहाऊं।
दासत्व सिद्धि में उच्छिष्ट ग्रहण करना सबसे सर्वोत्तम साधन है। गुरु की उच्छिष्ट जिसको गोविन्द से बढ़करमाना गया है भक्तिमार्ग में सर्वत्र ग्राह्य है। थूंक नहीं चर्वित तांबूल का महाप्रसाद-संपादक।

दामोदरदास सम्भल वाले जौनपुर के आधीन थे क्योंकि उस समय उसका कन्नौज पर अधिकार था। पर उस कट्टरता के युग में ये कर्मचारी पुष्टि-मार्ग की शरण आये। इससे इनके साहस का पता चलता है और पुष्टि मार्ग के महत्व का भी।

इसी प्रकार दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में वार्त्ता संख्या ४ में नारायणदास के यहाँ मुरारीदास नौकरी करते थे और गौड़ देश में दाऊद बादशाह का जिसके यहाँ ये कुलकुला दीवान थे। इस वार्त्ता से पता चलता है कि मुसलमान शासक के यहाँ भी हिन्दू विश्वास पात्र सेवक थे तथा उच्च पद पर आसीन थे। इस वार्त्ता के अनुसार जासूस भी रियासतों में रहते थे जो दीवान के आधीन होते थे। यह वही दाऊद खाँ हैं जिनका शासन-काल १५६५ ई० से १५८० ई० तक था और उन्होंने टोडरमल के सामने १५७५ में घुटने टेक दिये थे। नारायणदास की वार्त्ता संख्या ५ में है कि दाऊद बादशाह ने स्वयं श्री गुसांई जी के दर्शन किये थे। इसी वार्त्ता के अनुसार सत्या बेटीजी ने जेल से बहुत से कैदी मुक्त करा दिये थे। वार्त्ता ६ के विट्ठलदास कायस्थ भी राजद्वार में नौकर थे और इन्हें नारायणदास की आज्ञा से कोड़ों से पीटा गया था। वार्त्ता ७ के रूपमुरारीदास भी देशाधिपति के चाकर थे। ये देशाधिपति कदाचित् बादशाह अकबर स्वयं थे जिन्होंने श्री गुसांईजी से भेंट की थी और उनको खिलत (वस्त्र) और परगना महावन के दान द्वारा सम्मानित किया था। इस कारण रूपमुरारीदास का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्होंने भी इस भेंट में अपनी सामर्थ्य के अनुसार योग दिया था। वार्ता ८ के माधोदास काबुल में कपड़े का व्यापार करते थे, इससे यह प्रतीत होता है कि भारत का काबुल के साथ खुला व्यापार था और यहाँ के वस्त्रों की वहाँ खपत थी। भाईला कुठारी की वार्त्ता, वार्त्ता संख्या १० में बीरबल और श्री गुसांईजी की फतेहपुर सीकरी की महत्वपूर्ण भेंट का उल्लेख है जिसका परिणाम कृष्णदास अधिकारी की वार्त्ता में यह निकलता है कि श्री गुसांई जी के हलके ढंग से कहने पर भी बीरबल ने कृष्णदास को जेल में डाल दिया था। लाछाबाई और बाजबहादुर गुजरात के राजनीतिक जीवन को कुछ दिन अपने अधिकार में किये हुये थे। इनका उल्लेख भी इसी वार्त्ता में है। १९वीं वार्त्ता में चाचा हरिवंश की सहायता से श्री गुसांई जी ने बाप बेटा कायस्थ को बादशाह की जेल से मुक्त करा दिया था। बीरबल की बेटी की वार्त्ता में भी पृथ्वीपति की श्री गुसांईजी से भेंट और एक घोड़ा भेंट देने की बात कही गई है। वार्त्ता के अनुसार यह घोड़ा मोहनपुर गाँव (गोकुल के सपीप) में रहता था। इस भेंट का भी राजनीतिक महत्व है। इसी प्रकार अन्य वार्त्ताओं से भी सिंघाड़ की अजबकुंवर बाई, तानसेन, राजा आसकरन और मीरा, गुजरात के राजा भीम, रसखान, पृथ्वीसिंह और श्री गुसांईजी के न्याय की दिल्ली आगरे के शासक के द्वारा मान्यता, सब ऐतिहासिक और राजनीतिक महत्व के प्रसंग हैं। ऐतिहासिक महत्व यह है कि ये घटनाएं और व्यक्ति ऐसे हैं कि इन्हें इतिहास का समर्थन प्राप्त है। राजनीतिक इसलिये है कि यह उदार और अनुदार दानों प्रकार के मुस्लिम शासकों की धर्म नीति पर प्रकाश डालती हैं। औरंगजेब का श्रीनाथ जी तथा अन्य मन्दिरों को तोड़ने की जो घटना का उल्लेख है, उसका भी जितना ऐतिहासिक महत्व है, उतना ही राजनीतिक भी। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ ने जिस धार्मिक अनुदारता को अपनी नीति में स्थान दिया, उसी का यह विकट परिणाम था। और इसमें न माया ही मुगलों को मिल पाई और न राम ने ही उनका साथ दिया। अकबर के पीछे मुगलों की राजनीतिक और धार्मिक नीति तथा अव्यवस्था का चित्र अनेक वार्त्ताओं में संक्षेप

में मिलता है। इस समय श्रीनाथजी मेवाड़ पधार गये थे, गोपालपुर तथा जतीपुरा खाली हो गया था। इधर दिल्ली की शक्ति निरंतर क्षीण होती जा रही थी, उधर पुष्टिमार्गी लोग उदयपुर दरबार की छत्र-छाया में स्वतंत्रता से अपनी साधना के प्रयोग कर रहे थे। श्रीनाथ जी को अपने यहाँ सम्मानित स्थान देने के कारण राणा को भी औरंगजेब का कोप-भाजन बनना पड़ा था। भारत की राजनीति में इन सब घटनाओं का अपना महत्व है और इन्हीं के कारण हिन्दुओं के विरोध को उत्तेजना मिली है। वार्त्ता साहित्य में इन घटनाओं का महत्वपूर्ण उल्लेख है।

वार्त्ता का ऐतिहासिक महत्व

वार्त्ताओं का ऐतिहासिक महत्व इतना ही है कि इनमें घटनाओं और यात्राओं की सूचियां हैं। उस काल के साधारण और राजपुरुषों के नाम हैं और प्रसंगानुसार उनकी विशेषताओं का भी यथास्थान उनमें उल्लेख है। ऐतिहासिक तथ्य को इतिहास की शैली से लिखना या उसका प्रवचन करना वार्त्ताकार का उद्देश्य नहीं है, पर जो हो गया है उससे भविष्य के निर्माण में किस प्रकार सहायता ली जा सकती है। यह उद्देश्य वार्त्ताकार के सामने सदैव रहा दिखाई देता है इसलिए उनका भी थोड़ा ऐतिहासिक महत्व है। पूर्व पुरुषों या समकालीन सराहनीय व्यक्तियों की जीवनियों में जो चोटी की घटनायें हैं उनको वार्त्ताकार अपने धार्मिक दृष्टिकोण से संग्रह करने में सफल हुआ है। वार्त्ताकार की कठिनाई यह है कि जहां अधार्मिक नाम या अन्य कोई ऐसी घटना उसके सामने आई है, उसे उसने इतिवृत्त के ढंग से न लिखकर अपने ढंग से लिखा है। इस प्रकार मुसलमान के लिये 'बड़ी जाति वारो' और अहमदाबाद के लिए राजनगर शब्द का प्रयोग हो गया है। हाकिम, राजा और पातशाह व देशाधिपति इन शब्दों के प्रयोग भी निर्भ्रम नहीं है। हाकिम शब्द में छोटे बड़े सब राज कर्मचारियों का समावेश हो गया है और राजा में ठाकुर, जमींदार, सामन्त, जागीरदार सबके लिए यह शब्द काम में लाया गया है।

फिर भी चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में से निम्नलिखित महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य संकलित किये जा सकते हैं:—(१) वार्त्ता ४ पद्मनाभदास की वार्त्ता में कन्नौज में मुगल का उपद्रव, (२) गोविन्ददास भल्ला की वार्त्ता में गाँव के पठान हाकिम का केसोराय के मन्दिर के निवाड़ के पलंग पर बैठना और गोविन्ददास द्वारा उसकी हत्या, (३) वार्त्ता संख्या २५ में श्री वल्लभाचार्य और रूपसनातन की भेंट, (४) वार्त्ता सं० २७ पुरुषोत्तमदास आगरे में रहते थे। इनकी वार्त्ता में यमुना किनारे के राजघाट का उल्लेख, (५) वार्त्ता संख्या २८ में त्रिपुरदास का मुसलमान द्वारा जेल में भेजना। २९ वीं वार्त्ता में श्रीनाथ जी के मन्दिर के बनवाने वाले पूरनमल क्षत्री का नाम और श्रीनाथजी के प्राकट्य की वार्त्ता के अनुसार इस मंदिर की नींव पड़ने की तिथि संवत् १५५६ बैसाख सुदी ३ आदित्यवार के दिन रोहिणी नक्षत्र में है। तीसरी वार्त्ता में जतीपुरा में जो रुद्रकुण्ड के पास कुंआ है। उसका खोदने वाला यादवेन्द्रदास कुम्हार है वार्त्ता ३१ में माधो भट्ट काश्मीरी सुबोधिनी जी के लेखक हैं। वार्त्ता संख्या ४१ में गोविन्द दुबे की मीराबाई से भेंट है। वार्त्ता ६३ में महाप्रभु जी के संन्यास लेने का उल्लेख है। वार्त्ता ६४ में नारायणदास अम्बाले वाले और नारायणदास चौहान ठट्ठे के दोनों देशाधिपति के नौकर थे। वार्त्ता ७९ में सद्द पाँडे अन्योर वाले थे जिनका घर आज भी है और गोपालपुर बसाने का उल्लेख है। वार्त्ता ८३ में संतदास चौपड़ा की सेव बाजार की दुकान का उल्लेख है जो आज भी है।

इसी प्रकार से दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ताओं में से निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन किया जा सकता है :—

वार्त्ता (१) नागजी भट्ट गोधरा के देसाई थे।
,, (३) चाचा हरिवंश के सामने श्री गुसांई जी का तिरोभाव।
,, (४) नारायणदास दाऊद पातशाह के चाकर थे।
,, (६) विट्ठलदास पातशाह के चाकर थे।
,, (७) रूप मुरारीदास देशाधिपति के चाकर थे।
,, (१०) भाइला कोठारी की वार्त्ता में लिखा है कि श्रीगुसांई जी फतेहपुर सीकरी आ गए और बीरवल के डेरा के पास ठहरे थे। इसी में लाछाबाई और बाज-बहादुर का उल्लेख है।

,, (१३) दिल्ली में बंगाल के कपड़े पर १५० रुपया चुंगी लगती थी।
,, (२८) राजा जैमल का उल्लेख है (मेडता के)।
,, (३७) अलीखाँ तबीसा महावन के हाकिम थे।
,, (५७) जदुनाथ धारू देश के राजा के चाकर थे और जौनपुर के रहने वाले थे।
,, (६५) गंगाबाई महावन की थीं।
,, (६६) जोतसिंह राजा पंढरपुर के पास के थे।
,, (७५) बीरबल की बेटी आगरे में रहती थी।
,, (८८) सिंहाड़ की अजबकुंवरि बाई।
,, (१०३) सांचोरा में हाकिम ने चोर का सिर कटवा दिया।
,, (११३) तानसेन गवैया।
,, (१२३) राजा आसकरन नरवरगढ़ के।
,, (१७२) श्री गुसांई जी के सोरों पधारने का उल्लेख।
,, (१७७) राजा मानसिंह दक्षिण का।
,, (१७८) राजा भोज गुजरात के।
,, (१९०) ब्रज के वनों के नाम तथा वन-यात्रा।
,, (२०८) चोपाभाई की वार्त्ता।
,, (२१७) न्याय प्रणाली की सूचना।
,, (२२९) लाडबाई धारबाई।
,, (२३०) रूपमंजरी।
,, (२३२) रूपसनातन।
,, (२३८) पृथ्वीसिंह जी राजा कल्याणसिंह के बेटा।
,, (२४५) रसखान।

श्री महाप्रभुजी के प्रागट्य की वार्त्ता में निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं:—

(१) महाप्रभुजी के पूर्व पुरुषों के नाम—
अ—यज्ञ नारायण, ब—गंगाधर, स—गणपति।
द—वल्लभ भट्ट, इ—लक्ष्मण भट्ट,
(२) चम्पारण्य (मध्यप्रदेश) जिला रामपुर–हरिहर।

(३) माता का नाम इल्लमागारू ।
(४) काशी में म्लेच्छ का उपद्रव ।
(५) वैशाख वदी १० संवत् १५३५ में गर्भ स्राव ।
(६) वैशाख वदी ११ संवत् १५३५ को जन्म ।
(७) काशी में नारायण भट्ट से शिक्षा ।
(८) संवत् १५४५ में जब वल्लभाचार्य जी दस बरस के थे, तब लक्ष्मण भट्ट का शरीर त्याग ।
(९) दामोदरदास के शरण में आने का प्रसंग जिसकी पुष्टि चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता से होती है ।
(१०) विद्यानगर का शास्त्रार्थ कनकाभिषेक ।
(११) ओडछा नरेश राम भट्ट नारायण के यहां मायावाद का खण्डन और कनकाभिषेक ।
(१२) कृष्ण चैतन्य से भेंट ।
(१३) पृथ्वी-परिक्रमा ।
(१४) आचार्य जी की बद्रीनाथ यात्रा ।
(१५) गोकुल की बैठक ।
(१६) उज्जैन का पीपल का पेड़ ।
(१७) गंगासागर, जगदीश यात्रा, जगदीश का शास्त्रार्थ ।

षट ऋतु वार्त्ता में

(१) सम्वत् १६२३ में श्री गुसांईजी परदेश पधारे तब श्री ठाकुर जी २ महीना २२ दिन सतघरा में रहे ।
(२) श्री गुसांई जी के ६ बालकों का जन्म अडैल का है ।
(३) सम्वत् १६२७ में मथुरा से गोकुल पधारे । वहाँ हवेली और मंदिर बनवाया । उनकी नींव भी यादवेन्द्रदास ने खोदी ।
(४) सातवें बालक घनश्याम जी का जन्म मगसिर वदी १३ संवत् १६२८ का हैं ।
(५) श्री गुसांईजी द्वारा ब्रज-यात्रा तथा पुराने तीर्थों की महत्व स्थापना ।
(६) नवनीतप्रिय जी का गोकुल में शृङ्गार ।
(७) गोपालपुर में नन्ददास इत्यादि से बचनामृत कहे ।
(८) गोकुल में नवनीतप्रिय जी मंदिर में सात स्वरूपों की स्थापना ।
(९) गोपालपुर (जतीपुरा) में सात मन्दिर बनवाए ।
(१०) अष्ट सखाओं के वे ठाकुर जिनका कीर्तन वे उस समय या उस वर्ष करते थे, जब सातों स्वरूप इकट्ठे श्रीनाथ जी के यहां अन्नकूट आरोगते थे ।

श्री जी के	यहां	कुम्भनदास ।
श्री मथुरेश जी के	,,	सूरदास ।
श्री विट्ठलेश राय के	,,	छीत स्वामी ।
श्री द्वारिकानाथ के	,,	गोविन्द स्वामी ।
श्री गोकुलनाथ के	,,	चतुर्भुजदास ।

श्री गोकुलचंद्रमा के	यहाँ	नन्ददास ।
श्री नवनीतप्रिय के	,,	परमानन्ददास ।
श्री मदनमोहन के	,,	कृष्णदास ।

श्रीनाथ जी के प्रागट्य की वार्त्ता में—

(१) सम्वत् १४६६ श्रावण वदी तृतीया आदित्यवार सूर्य उदय-काल में उर्ध्वभुज को प्रागट्य ।

(२) आन्यौर के ब्रजवासी को नागपंचमी सम्वत् १४६६ ।

(३) सम्वत् १५३५ पर्यन्त भुजा पुजी ।

(४) सम्वत् १५३५ वैशाख वदी ११ रविवार शतभिषा नक्षत्र, मध्यान्ह काल अभिजित नक्षत्र में मुखारविन्द प्रगट भयो ।

(५) सम्वत् १५४९ तक दूध पिया ।

(६) सम्वत् १५४९ फाल्गुन सुदी ११ वृहस्पतिवार आचार्य जी को आज्ञा ।

(७) सम्वत् १५५२ श्रावण सुदी १३ बुधवार चतुरानागा का मनोरथ सिद्ध ।

(८) सम्वत् १५५६ चैत्र सुदी २ को पूर्णमल क्षत्री को मंदिर सिद्ध करवाने की आज्ञा ।

(९) आदित्यवार के दिन रोहिणी नक्षत्र सम्वत् १५५६ में श्रीनाथ जी के नवीन मंदिर की नींव दिवाई ।

(१०) सम्वत् १५४५ से १५७६ तक याही प्रकार क्रीड़ा ।

(११) सम्वत् १५८७ आषाढ़ सुदी २ को आचार्य जी निज धाम पधारे ।

(१२) सम्वत् १६१३ फाल्गुन वदी ७ को गुरुवार के दिन श्री गुसांई जी के घर सतघरा में पाट बैठाए ।

(१३) मिती आसोज सुदी १५ शुक्रवार सम्वत् १७२६ पिछली पहर रात्रि को गोवर्धन से आगरा पधारे ।

निजवार्त्ता-घरूवार्त्ता

निजवार्त्ता की प्रतियों में ये संवत् इस प्रकार हैं:—

(१) सम्वत् १५४९ श्रावण वदी ८ को श्री आचार्य जी ब्रज को पधारे ।

(२) सम्वत् १५४९ फाल्गुन सुदी ११ गुरुवार के दिन झारखण्ड में महाप्रभुजी को आज्ञा ।

(३) सोरों में कृष्णदास मेधन केशवानन्द के शिष्य ।

(४) रामदास चौहान पूंछरी पर अपसरा कुण्ड पर एक गुफा में रहते थे । उनको श्रीनाथजी की प्रथम सेवा सौंपी ।

(५) पत्रावलंवन ग्रन्थ काशी में ।

(६) सेठ पुरुषोत्तमदास को नाम देने की आज्ञा ।

(७) सिद्धपुर में गुजरात के देशाधिपति को अग्निरूप में दर्शन (महमूद बेगड़ा) हरिहर ।

(८) द्वारका में श्री द्वारकाधीश की स्थापना (द्वारका के इतिहास से सम्वत् १५६०)।

(९) ओड़छा का कनकाभिषेक घट सरस्वती पराजय।

(१०) पंढरपुर में व्याह की आज्ञा।

(११) काशी में व्याह।

(१२) कृष्ण चैतन्य को समागम संवत् १५८० (नोट–संवत् अशुद्ध है)।

(१३) गोकुलनाथ ठाकुरजी सुसराल वालों से लिए।

(१४) सम्वत् १५६८ में अडैल में श्री गोपीनाथजी को प्राकट्य (आश्विन वदी १२)

(१५) पौष कृष्णा नौमी १५७२ चरणाद्रि में श्री गुसांईजी को प्राकट्य।

(१६) देवर्षिगांव (अडैल) में १५ वर्ष आचार्यजी विराजे।

(१७) श्री गुसांईजी मधुसूदन सरस्वती के पास पढ़े।

(१८) अणुभाष्य शेष अध्याय और सीता की टीका।

(१९) श्री गुसांईजी को आचार्य पदवी प्राप्ति की आज्ञा।

(२०) नवनीतप्रिय आगरे गज्जनधावन के यहाँ से पधारे।

(२१) कन्नौज से द्वारकानाथजी का नाव में आना।

(२२) बैसाख सुदी ३ को प्रथम परिक्रमा पूर्ण भई।

(२३) सम्वत् १५५५ चैत्र शुक्ल रविवार को दूसरी परिक्रमा प्रारम्भ।

(२४) लीला में पधारने की तीन आज्ञाओं का उल्लेख।

घरूवार्त्ता में निम्नलिखित ऐतिहासिक प्रसंग हैं:—

(१) अग्निरूप का उल्लेख।

(२) सम्वत् १५८७ ज्येष्ठ वदी १० संन्यास।

(३) कुल बावन वर्ष भूतल पर विराजे।

श्री महाप्रभुजी की चौरासी बैठक चरित्रों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तत्व हैं:—

(१) जिन स्थानों पर ये बैठकें आज स्थापित हैं, वे स्थान महाप्रभुजी की पद-रज से पवित्र हुए थे।

(२) यहाँ आपने या तो श्रीमद्भागवत का पारायण किया था अन्य कोई ऐसा महत्वपूर्ण कार्य किया था जिसका अपना निजी महत्व है।

(३) इन चरित्रों के अनुसार ८४ में से ५५ बैठकों में आपने भागवत का पाठ किया है।

नोट—ऐसा लगता है कि अन्य घटनाओं के लिखने में बैठक चरित्र के लेखक ने कुछ बैठकों के चरित्रों में भागवत पारायण की बात लिखना छोड़ दिया है या उसको कम महत्व दिया है जैसे गोकुल की बैठक के चरित्र में। महाप्रभुजी का तो नियम था कि वे प्रतिदिन श्री मद्भागवत की कथा कहते थे, इसलिये प्रायः सभी बैठक स्थानों पर भागवत की कथा अवश्य हुई होगी। इस सम्बन्ध में 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ में लिखा हैं—[1]

१. सम्प्रदाय कल्पद्रुम, पृष्ठ संख्या ३४७, पद संख्या ५४।

'पारायण युग शतकरिय, चौरासी थल छाप।
पुष्टि मार्ग प्रगटाय जू, त्रिविधि तापहर आप।।'

इससे यह सिद्ध होता है कि आपने केवल ५५ ही नहीं अधिक पारायण किए थे। सम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार इनकी संख्या दोसौ हैं।

(४) ये बैठकें गोकुल से लेकर रामेश्वरम् और द्वारका तक फैली हुई हैं।

(५) इन बैठक चरित्रों के अनुसार श्री गिरिराजजी की बैठक में लिखा है कि सम्वत् १५४६ भाद्रपद वदी १२ को आपने ब्रजयात्रा की। काशी में सेठ पुरुषोत्तम के घर की बैठक में आपने पत्रावलंबन ग्रन्थ पूरा किया। काशी की हनुमान घाट की बैठक में आपने तृतीय स्कंध की सुबोधिनी सम्पूर्ण की। चम्पारण्य की बैठक में महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता के बहुत से प्रसंग हैं। जगन्नाथ-पुरी की बैठक के अनुसार आपने तीन बार श्री जगदीशजी की यात्रा की थी। अनेकों बैठकों में मायावाद के खण्डन का उल्लेख है। विद्यानगर की बैठक में आपके प्राकट्य का संवत् १५३५ दिया हुआ है। नवानगर की बैठक में जामंत कंमाची का शरण आना लिखा है। हरिद्वार की बैठक में सम्वत् १५४६ में कुम्भ को बृहस्पतिवार पर महाप्रभुजी के वहाँ पधारने का उल्लेख है। श्री व्यासाश्रम की बैठक (७६) में कृष्णदास की वार्त्ता का उल्लेख है।

इन ऐतिहासिक महत्व के उल्लेखों का पुष्टि मार्ग के इतिहास में विशेष और भारतवर्ष की धार्मिक जागृति के इतिहास में सामान्य महत्व है। वार्त्ताओं के इन विवरणों के अभाव में इनका पता लगाना कठिन था। वार्त्ता के यह उद्धरण प्रसंगात्मक हैं। इसलिए इनके सत्य होने में कोई सन्देह नहीं। इनमें कई एक की परीक्षा 'ऐतिहासिक परीक्षा' के प्रकरण में दी गई है।

वार्त्ता साहित्य का भौगोलिक महत्व

वार्त्ता साहित्य का भौगोलिक महत्व विशेषकर वार्त्ताओं में आए हुये उन स्थानों पर निर्भर है जहाँ से वैष्णव लोग अडैल और ब्रज में श्री महाप्रभुजी और श्री गुसांईजी के सेवक होने के लिए आए थे तथा ब्रज-यात्रा के लिए थे। स्वयं महाप्रभुजी और गुसांईजी ने कई बार समस्त देश में लम्बी यात्राएं की थीं और इस देश के सभी प्रदेशों में दैवी जीवों का उद्धार किया था। इन यात्राओं को वार्त्ता में आदर पूर्वक पृथ्वी-परिक्रमा कहा गया है। इन यात्राओं ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और बंगाल से लेकर गुजरात तक समस्त देश के निवासियों को एक धार्मिक एकता के सूत्र से पुन: दृढ़ कर दिया था। प्रत्येक प्रांत का पुष्टिमार्गी वैष्णव अपने दूसरे प्रान्त के तादृशी वैष्णव के लिए एक प्रकार का स्थान अपने हृदय में रखता था और हृदय से उसका स्वागत करने को हरदम तैयार रहता था। हर प्रान्त के पुष्टि मार्गी वैष्णव के लिए ब्रज में, ब्रज के स्थानों के लिए विशेष आकर्षण उत्पन्न हो गया था। उनमें से प्रत्येक की यह कामना रहती थी कि कब उन्हें ब्रज-यात्रा करने को मिले और कब वह श्री गिरिराज पर श्रीनाथजी के दर्शन कर सकें।

भौगोलिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण स्थान जो वार्त्ताओं में आता है, वह है श्री महाप्रभुजी का जन्म-स्थान 'चम्पारण्य'। इसकी वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में हिन्दी के

विद्वानों में मतभेद है और भ्रम भी है। अतः यहाँ सबसे पहले यह निश्चय किया जायगा कि यह स्थान देश में कहां है। क्योंकि यह स्थान पुष्टि मार्ग के इतिहास में किसी प्रकार भी अन्य स्थानों की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं है। श्रीमान ग्राउस महोदय ने अपने चिरस्मरणीय ग्रंथ मथुरा 'मेमायरस'[1] में बनारस के पास का जंगल लिखा है। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने अपने 'ब्रजभाषा'[2] ग्रंथ में इस स्थान को बिहार प्रान्त में माना है। कांकरौली के इतिहास में इस भूल की ओर ध्यान दिलाया है और इस स्थान को मध्य प्रदेश जिला रायपुर के अंतर्गत बताया गया है। श्री आचार्य महाप्रभु जी के प्राकट्य की वार्त्ता में 'यामिष दक्षिण में चम्पारण्य भयो, तहाँ सगरे वृक्ष चम्पा के हैं।' इसे दक्षिण में बताया है। बिहार में जो चम्पारण्य जिला है, वह काशी और मथुरा व गोकुल दोनों के पूर्व की ओर है। मध्य प्रदेश का यह चम्पारण्य या चम्पारन को श्री महाप्रभुजी की जन्मभूमि होना यदि ठीक मान लिया जाय तो फिर महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता में आए 'दक्षिण' शब्द का कोई मूल्य न रह जायगा। दक्षिण शब्द यहाँ महत्वपूर्ण है और उससे जो भ्रम फैल सकता है, वह दक्षिण भारत के सम्बन्ध में ही फैल सकता है। पर जन्म की जो परिस्थितियाँ हैं वे दक्षिण के पक्ष में नहीं हैं और इन्होंने ग्राउस महोदय से यह कल्पना करवादी है कि यह चम्पारण्य काशी के समीप का कोई जंगल है। पुष्टि मार्ग के इतिहास में जो मान्यताएं प्रचलित हैं, वे भी बिहार के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि चम्पारन (बिहार) में न तो कोई श्री महाप्रभु जी की बैठक है और न अन्य कोई ऐसा स्मारक है जो पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक के सम्मान और स्मृति में आवश्यक था। यह भी नहीं है कि बिहार में पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की संख्या कम हो। गया, पटना, हाजीपुर इत्यादि स्थानों के वैष्णव महाप्रभु जी के समय से रहते चले आ रहे हैं और 'हरिहर क्षेत्र' में उस प्रांत में भी महाप्रभु जी की बैठक है। यदि चम्पारन महाप्रभु जी का जन्म-स्थान होता तो यहाँ अवश्य एक बैठक होती। सम्प्रदाय में भी बिहार के चम्पारन को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। इसके विपरीत रायपुर जिले के राजिम कस्बे के समीप सात मील की दूरी पर जंगल में 'चम्पारन' में महाप्रभु जी की बैठक विद्यमान है। इस गाँव को भी 'चम्पाझर' कहते हैं। इस स्थान पर प्रतिवर्ष हजारों वैष्णव बहुत काल से दर्शन के लिए आया करते हैं। स्थानीय लोग जिनमें भील जनता भी सम्मिलित है वैसाख कृष्णा एकादशी के दिन उत्साहपूर्वक महाप्रभु वल्लभाचार्य की जयन्ती मनाते हैं। इसका कारण बिहार के चम्पारण्य को छोड़कर मध्य प्रदेश में रायपुर जिले के 'चम्पाझर' चम्पारन को ही श्री महाप्रभुजी का जन्म-स्थान मानना उपयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में चम्पारण्य (मध्य प्रदेश) की बैठक के दर्शन कर लेने के बाद कोई सन्देह नहीं रह जाता है। रायपुर में राजिम से चम्पारण्य तक केवल बैलगाड़ी या पैदल ही जाना होता है। राजिम तक रेल गई है। निर्जन स्थान में इस बैठक की सेवा होना ही इसकी प्राचीनता का यथेष्ट प्रमाण है। इस स्थान से दो फर्लाङ्ग दूर पर एक छोटा सा स्थान है जिसके चारों ओर चहार दीवारी खिंची हुई है और इसको लक्ष्मण भट्ट जी का बाड़ा बताया जाता है। इसकी भी सम्मान पूर्वक रक्षा की जाती है। इस बाड़े के बीच में ही एक छोटा सा कुंआ है जिसे लक्ष्मण भट्ट जी का कुंआ कहते हैं और लोग इससे ही पानी भरते हैं। महानदी इस बैठक से लगभग दो फर्लांग की दूरी पर है। यह सघन वृक्षमय स्थान आज भी लगभग

---

१ मथुरा मेमायरस, पृष्ठ २६१।

२ ब्रजभाषा, पृष्ठ १४।

एक मील के वृत्त में फैला हुआ है। श्री महाप्रभु जी के प्राक्ट्य की वार्त्ता में दो स्थानों के नाम और ऐसे हैं जिन पर यहाँ विचार करना है। एक स्थान है 'कांकरवाड' और दूसरा है 'चौड़ा नगर' है। कांकरवाड़ के सम्बन्ध में रायबहादुर लल्लूभाई प्राणवल्लभदास पारीक जज नडियाद ने अपने वल्लभचरित्र पृष्ठ संख्या १ पर इसे आंध्र देश में व्योमस्यम्भ पर्वत के समीप कृष्णा नदी के दक्षिण में स्थित बताया है। इस समय यह स्थान निजाम सरकार की सीमा में है, ऐसा श्री लल्लूभाई जी का अनुमान है। ऐसे ही चौड़ा नगर जिसे चम्पारण्य के समीप मध्य प्रदेश में ही होना चाहिए उसकी स्थिति का आज ठीक पता नहीं लगता है। मध्य प्रदेश के भूगोल विशारदों से भी मुझे इसका पता नहीं चल सका है।

वार्त्ता साहित्य में अन्य जिन स्थानों का उल्लेख है, उनमें से किसी स्थान के सम्बन्ध में इस प्रकार का सन्देह नहीं। इस प्रकार के स्थानों की आकारादि क्रम से व्यवस्थित एक सूची परिशिष्ट में उनके संक्षिप्त परिचय के सहित दी गई है। यहाँ तो केवल देश में वे स्थान किन-किन प्रान्तों में फैले हैं, इस पर विचार करके यह दिखाना है कि भौगोलिक दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से तथा साधारण खान-पान और व्यवहार की दृष्टि से भी अलग-अलग रहने वाले प्रदेशों को किस तरह पुष्टि मार्ग ने एकता के बंधन में बांध दिया था और उनको व्रज की ओर आकर्षित किया था। श्री महाप्रभुजी के प्राक्ट्य की वार्त्ता में उत्तर दिशा के सबसे महत्वपूर्ण तीर्थस्थान बद्रीनाथ जी का नाम एक बार आया है। अन्य वार्त्ताओं के अनुसार श्री महाप्रभु जी ने तीन बार श्री बद्रिकाश्रम की यात्रा की थी। श्री बद्रिकाश्रम के पुरोहित श्री चक्रधरजी के पास एक सुरक्षित बृत्तिपत्रक हैं जिस पर स्वयं महाप्रभु जी के हस्ताक्षर तैलगु में हैं और शेष अंश संस्कृत में है। वार्त्ताओं में कृष्ण दास मेघन की वार्त्ता में (वार्त्ता संख्या २ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता) में व्यास आश्रम का भी उल्लेख है। पुष्टि मार्ग के इतिहास में यह स्थान इसलिए महत्वपूर्ण है कि यहां श्री व्यास जी की अनुमति से श्री महाप्रभु जी ने भ्रमर गीत की टिप्पणी का आधा श्लोक पूरा किया था।[1]

इन यात्राओं में एक संवत् १५६८ की है, शेष के संवत् ज्ञात नहीं हैं। बद्रिकाश्रम की यात्रा आज भी सहज यात्रा नहीं है, पर उस समय में जब देश में सिकन्दर लोदी के आतंक का बोलबाला था, यह यात्रा और भी कष्टप्रद और व्यय साध्य रही होगी। पर इसने हिन्दू धर्म और भारत की भौगोलिक एकता को कायम रखा है। हिमालय के इस स्थान के दर्शन करके, वहां सुबोधिनी जी का स्थान-स्थान पर प्रवचन करके श्री महाप्रभु जी ने पुष्टि धर्म को उत्तराखण्ड में व्यापक बनाया था। श्री बद्रिकाश्रम में महाप्रभु जी की बैठक है और यह स्थान भी पुष्टि मार्ग में तीर्थ स्थान के रूप से महत्वपूर्ण है। बद्रिकाश्रम की यात्रा करते हुए अडैल से मार्ग में जो जो गांव आए होंगे और जहाँ-जहाँ वैष्णवों का यह संग उतरा होगा वहाँ के लोगों को श्री महाप्रभु जी के दर्शन लाभ और बचनामृत से लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हुआ होगा। श्री हरिद्वार की महाप्रभु जी की बैठक इस बद्रिकाश्रम यात्रा के प्रसंग में ही स्थापित हुई होगी। सुदूर दक्षिण में श्री महाप्रभु जी का विद्यासागर (विजयनगर) का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। वह भूमि आपके श्री चरणों की रज से पवित्र हुई थी और वहाँ मायावादियों के खंडन द्वारा उस प्रदेश में बढ़ते हुए दम्भ और अनाचार से रक्षा अवश्य हुई

१. 'आत्मत्वाम्द्क्तवश्यत्वात्सद्' वाकत्वात्स्वभावतः।

होगी। यह विद्यानगर आज तुंगभद्रा नदी के किनारे स्थित विजयनगर है। यहाँ भी महाप्रभु जी की बैठक है। दक्षिण में नलिन पंढरपुर, नृसिंह, लक्ष्मण बालाजी, श्रीरंग सब स्थानों पर आपके श्री चरण की छाया पड़ी थी। पूर्व में श्री महाप्रभु जी ने कई बार जगन्नाथपुरी की यात्रा की है, ऐसा उल्लेख मिलता है। जगदीशपुरी का प्रथम शास्त्रार्थ विक्रम संवत् १५४५ का प्रसिद्ध है। श्री महाप्रभु जी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथजी का वृत्तिपत्रक (संवत् १५६५) से इसकी पुष्टि होती है। जगदीश में ही इनका कृष्ण चैतन्य से मिलाप हुआ था। जगन्नाथपुरी में भी महाप्रभु जी की बैठक है। जगदीश यात्रा के समय समस्त पूर्वीय प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा के सब गाँव जो मार्ग के आसपास स्थित रहे होंगे, इनके प्रभाव से बच न सके होंगे। जगन्नाथपुरी ही नहीं अपितु श्री महाप्रभु जी ने प्राचीनकाल से चली आती हुई परम्परा के अनुसार गंगासागर की भी यात्रा की थी और वहाँ भी अपने भक्तों को श्रीमद्‌भागवत के पारायण द्वारा परिप्लावित किया था। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता संख्या ८४ सुन्दरदास माधोदास की वार्त्ता में लिखा है कि यह सुन्दरदास जगन्नाथपुरी से दस कोस पहिले पिपरी गांव में रहते थे। पिपरी गांव भावप्रकाश से लिया गया है। पिपरी गांव और सुन्दरदास की वार्त्ता दोनों इसकी पुष्टि करते हैं कि भारत के ग्रामों पर इस पैदल यात्रा का प्रभाव अवश्य पड़ा था और पुष्टि सन्देश कुछ नगरों तक ही सीमित न रहकर सारे भारत में व्याप्त हो गया था।

महाप्रभु जी ने द्वारका की यात्रा अनेक बार की थी। इसका उल्लेख अनेक वार्त्ताओं में है और यदि यह मानलें कि प्रत्येक पृथ्वी-परिक्रमा में आप द्वारका अवश्य पधारे थे तो फिर कम से कम आपका तीन बार द्वारका जाना तो निश्चित ही हो जाता है। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान इसलिए नहीं है कि बिना चारों धाम गए हुए परिक्रमा पूरी ही नहीं होती है। इस परिक्रमा में सिद्धपुर पट्टन, खेरालू, नरोड़ा (अहमदाबाद), तगड़ी इत्यादि सब स्थान आप से आप आ गए थे। इन स्थानों पर सब जगह बैठकें भी हैं।

भारतवर्ष के इन चारों धामों और चार दिशाओं की यात्राओं का उल्लेख करके यह सिद्ध किया जा सकता है कि वार्त्ता में जिन स्थानों का उल्लेख है वे सब स्थान उस समय प्रसिद्ध थे और जिन्हें सम्यक् प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हो पाई थी वे भी महाप्रभु जी के सम्पर्क से प्रसिद्ध हो गए।

महाप्रभु जी की इस यात्रा का हम उस समय के प्रचलित राजमार्गों से यदि मिलान करते हैं तो भी हमें निराश नहीं होना पड़ता है। यद्यपि पैदल यात्रा में छोटे मार्ग से जाने का प्रलोभन होता है फिर भी यात्रा के प्रसंग में जिन स्थानों के नाम आए हैं, उनकी भौगोलिक स्थिति संदिग्ध नहीं है। कुछ ग्राम अवश्य ही अब उजड़ गए हैं और उनके अब नाम ही शेष रह गए हैं। तथा पुराने नाम की जगह नया प्रसिद्ध नाम आ गया है। जैसे, आधुनिक अहमदाबाद की सीमा के भीतर, सिकन्दरपुर नरोड़ा, असारवा सब इकट्ठे हो गए हैं। वार्त्ताकार का उद्देश्य ग्राम के नामों का महत्व देना नहीं है और न वैष्णव के नाम को ही वह महत्वपूर्ण समझता है अन्यथा यदि सब वैष्णवों के नामों और ग्रामों का उल्लेख इन सब वार्त्ताओं में होता तो इस उद्धरण के आधार पर उस समय (संवत् १५५० से १७५० तक) के गाँवों और जिलों का एक छोटा सा भूगोल सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता था। वार्त्ता के उल्लेख से यह तो लाभ है कि प्रत्येक खण्ड के प्रमुख-प्रमुख स्थानों के नाम तो अवश्य मिल ही जाते हैं। पुष्टि मार्ग का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति सबके सब इन स्थानों के लिए

श्रीनाथ जी के प्राकट्य की वार्त्ता, श्री महाप्रभु जी के प्राकट्य को वार्त्ता, चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता, दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता, बैठक चरित्र और भावसिन्धु तथा निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता में आए हुए नामों का आधार लेते हैं।

ऊपर श्री महाप्रभु जी की भौगोलिक महत्व की जिन चतुर्मुखी यात्राओं का उल्लेख है वैसी ही अनेक यात्राएं श्रीगुसांईजी ने भी की थीं। आप कई बार (६ बार) द्वारका जी गए थे। इन यात्राओं में समस्त गुजरात और सौराष्ट्र प्रदेश आपसे आप आ गए हैं। इन्हीं यात्राओं में राजस्थान के मुख्य-मुख्य प्रदेश भी आ गए हैं। कई बार आप मेड़ता और मेवाड़ के मार्ग से होकर गए हैं। पूर्व में आप जगदीश गए ही हैं। गौड़ देश भी आप गए हैं, और मगध देश भी गए हैं। मध्य प्रदेश में आप रानी दुर्गावती के यहाँ भी रहे हैं। उत्तर में आपकी बद्रिकाश्रम यात्रा का उल्लेख नहीं है। पर हरिद्वार तक यात्रा करने का विवरण माधोदास काबुल वाले की वार्त्ता संख्या ८ भावप्रकाश संस्करण में मिलता है। यह काबुल में व्यापार करने वाले माधोदास हरिद्वार में श्री गुसांईजी की शरण आए थे। यह वार्त्ता काबुल से भारतवर्ष आने-जाने के साधनों और व्यापारिक सम्बन्ध की दृष्टि से अपना महत्व तो रखती ही है पर यह भी सिद्ध करती है कि उस समय इन दोनों देशों (अफगानिस्तान और भारतवर्ष) के बीच आवागमन बराबर होता था और काबुल जैसे देश में भी पुष्टिमार्गीय वैष्णव व उसके ठाकुर जी पहुँच गए थे।

दक्षिण में आप सम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार अपने दूसरे विवाह के समय गए हैं, पर वार्त्ताओं में आपकी दक्षिण यात्राओं का कोई उल्लेख नहीं है। जहां वार्त्ताओं के आधार पर आपकी दक्षिण यात्राओं की पुष्टि नहीं होती है वहां दक्षिण के अनेक सेवकों का व्रज में आकर दीक्षा लेने का उल्लेख वार्त्ताओं में है। पंढरपुर के समीप के राजा ने व्रज में आकर दीक्षा ली थी। आपको महाप्रभु जी की अपेक्षा अपने अलौकिक पिता की दक्षिण यात्राओं का लाभ जन्मसिद्ध अधिकार रूप से प्राप्त था और उन सब भौगोलिक परिस्थितियों से आपके समय में लाभ उठाया गया है जिनका प्रचार श्री महाप्रभु जी के समय में था। आपके समय में सम्राट् अकबर के राज्य शासन काल में सुरक्षा और मार्ग की व्यवस्था भी कुछ पहले से सुधर गई थी और पुष्टिमार्गियों के लिए श्री गोवर्द्धनधर और गिरिराज तथा व्रज का आकर्षण भी बढ़ गया था। आपके अलौकिक और तेजस्वी व्यक्तित्व से आकर्षित होकर हजारों प्राणी प्रति वर्ष मथुरा आते थे और यहां की भौगोलिक स्थिति से परिचित होते थे। बाहर से आने वाले इन यात्रियों को व्रज प्रदेश की जानकारी प्राप्त होती थी और उससे उनका अपने देश के सम्बन्ध में भौगोलिक ज्ञान बढ़ता था। वार्त्ताओं में इस प्रकार कई 'साथों' के व्रज में आने और परिक्रमा करने का उल्लेख है।

भौगोलिक दृष्टि से वार्त्ता साहित्य में बैठक चरित्र नाम की पुस्तकें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें कुछ थोड़े से उन्हीं महत्वपूर्ण स्थानों के नाम आए हैं जहां श्री महाप्रभु जी तथा गुसांई जी ने कुछ काल निवास किया है, पर ये नाम थोड़े होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं यदि कहीं उन सभी स्थानों के नामों की पूरी परम्परा इस समय उपलब्ध हो गई होती जिनका सम्बन्ध पुष्टिमार्ग से रहा है तो वार्त्ता साहित्य के अध्ययन में बड़ा सुभीता होता, पर जो महाप्रभु जी तथा श्री गुसांई जी से सम्बन्ध रखने वाली ८४ बैठकों के चरित्र पुस्तकाकार प्राप्त हुए हैं। उनके अनुसार उस व्यक्ति ने पहले तो व्रज प्रदेश को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित

करके उसकी यात्रा करके, वहां श्रीमद्भागवत का सन्देश और पुष्टिभक्ति का रूप समझाकर ब्रज के २२ प्रसिद्ध स्थानों पर अनेक बैठकें स्थापित करने का अवसर अपने सेवकों को दिया है। ये बैठकें चौरासी कोस में बिखरे हुए निर्जन और जन समूह से मुखरित ब्रज प्रदेश को एक साथ एक मण्डल में बांध देती थीं। इन बैठकों में आज भी ज्यों की त्यों सेवा होती है और मेरे अनुसंधान में तो यह बात आई है कि यदि गोकुल में श्री महाप्रभु जी की बैठक न होती तो आज यह बताना कठिन होता कि ठकुरानी घाट कौन सा है। ऐसे ही ब्रज के कई प्रदेश उन बैठकों के सहारे ही पहचाने जाते हैं। इन बैठकों का क्षेत्र भी यात्राओं की तरह व्यापक है और यह जहां ब्रज में घनीभूत हो गई हैं अन्यत्र समस्त देश में उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब दिशाओं में फैली है। इनसे प्राचीन तीर्थ आज पांचसौ वर्ष से अपनी जगह ज्यों के त्यों स्थित हैं क्योंकि बैठकें आज भी वहीं हैं। जिस स्थान में उस स्थान का पता नहीं है कि जहां बैठकर महाप्रभु जी ने भागवत का पारायण किया था वहां के सम्बन्ध में बैठक चरित्र में लिखा है कि वह बैठक अब गुप्त है और उसके निश्चित करने में कठिनाई है। इस प्रकार बैठक चरित्र की बैठकें एक निश्चित स्थान, और निश्चित घटना का समन्वय करती हैं। बैठकों के क्षेत्र के सम्बन्ध में इतना ही पर्याप्त है कि यदि एक उत्तर प्रदेश के सूकर क्षेत्र (सोरों) में है तो दूसरी सैकड़ों मील दूर चित्रकूट जिला बांदा में, तीसरी अयोध्या में, चौथी नैमिषारण्य जिला सीतापुर में, और पांचवी दो बैठकें सुदूर काशी में तथा चुनार, पुष्कर हरिद्वार, बद्री केदार, अडैल, मथुरा और गोकुल में। उत्तर प्रदेश से आगे महाप्रभु जी की चौरासी प्रसिद्ध बैठकों में से दो बिहार में हरिहर क्षेत्र और जनकपुर में हैं। एक जगन्नाथपुरी में है, एक गंगासागर में। तथा दो बैठकें 'चम्पारण्य' मध्य प्रदेश में हैं और दो बम्बई प्रान्त में नासिक और पंढरपुर में हैं। इससे भी नीचे सुदूर दक्षिण में पूना, नृसिंह, लक्ष्मण वाला, श्री रंगजी, विष्णु कांची और सेतुबंध रामेश्वर तक बैठक ही बैठकें हैं। गुजरात में सिद्धपुर, खेरालू, नरोड़ा, डाकौर, गोधरा, भड़ौंच, सूरत, काठियावाड़ में, मोरवी और नवानगर, खंभालिया, द्वारका, जूनागढ़, प्रभास, माधवपुर, त्रिगड़ी में बैठकें हैं। मालवा में उज्जैन में बैठक है। दिल्ली से आगे कुरुक्षेत्र में बैठक है। इस प्रकार सारे देश में बैठकों का एक जाल बिछा हुआ है और इनके सहारे भौगोलिक दृष्टि से यह देश भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बंटे होने पर भी अभिन्न है। इन बैठकों ने गंगा से लेकर कावेरी और नर्मदा से लेकर ब्रह्मपुत्र और सिन्धु सब प्रदेशों की विशेषताओं को आचार-विचार की दृष्टि से एक करने की चेष्टा की है। इन नामों का भौगोलिक महत्व है—देश की एकता का अनुभव, और भेद में अभेद की भावना की जागृति। जब साधारण वैष्णव रात्रि को सोने से पहले वार्त्ता साहित्य का पाठ करता है तथा 'भरोसौ दृढ़ इन चरनन कों' का पाठ करता है तो उसके मस्तिष्क में एक अखंड भारत की मूर्ति का ध्यान आ जाता है।

वन-यात्रा अथवा ब्रज-यात्रा

वार्त्ताओं में सबसे महत्वपूर्ण बात जो मिलती है, वह है ब्रज के प्राचीन स्थानों के महत्व की स्थापना। इसका सूत्रपात ब्रज-यात्रा द्वारा हुआ था। यह यात्रा प्रायः सभी वनों और उपवनों में होकर जाती है। इसलिए इसे वन-यात्रा भी कहते हैं। २५२ वैष्णवों की वार्त्ता में पीताम्बरदास की वार्त्ता संख्या १९० में इसका उल्लेख विस्तार सहित है। यहाँ ब्रज-यात्रा के प्राचीन और आधुनिक सभी रूपों पर विचार किया जायगा तथा उन स्थानों

का परिचय दिया जायगा जिनका सम्बन्ध ब्रज-यात्रा से है क्योंकि इन सब स्थानों का वार्त्ता साहित्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। इनके परिचय के बिना वार्त्ता के प्रसंग समझने में कठिनाई होती है और न तो उनका भौगोलिक महत्व समझ में आता है और न धार्मिक।

ब्रज-यात्रा के आरम्भ के समय और इसके आदि प्रेरक के विषय में कुछ विवाद है। गौड़ सम्प्रदाय के विद्वान् लोग ब्रज-यात्रा के आदि प्रेरक और प्रचारक के रूप में अपने सम्प्रदाय के श्री नारायण भट्ट जिनका समय विक्रम संवत् की सत्रहवीं शताब्दी है, को मानते हैं। श्री नारायण भट्ट कृत संस्कृत ग्रन्थ 'ब्रजभक्ति विलास' (सम्वत् १६०९ के लोक साहित्य प्रेस मथुरा से प्रकाशित संस्करण की भूमिका में उसी सम्प्रदाय के बाबा कृष्णदास ने अपनी भूमिका में नारायण भट्ट को ही इसके चलाने का श्रेय दिया है। 'वल्लभी सुधा' वर्ष ४ अंक १ सम्वत् २००९ कार्तिक से पौष (में श्री द्वारकादास परीखजी ने 'ब्रज-यात्रा' शीर्षक लेख में 'ब्रज मथुरा प्रकाश' श्री गुसांईजी की ब्रज-यात्रा वि० १६०० की 'ब्रज यात्रा श्लोक' दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता, कवि जगतानन्द रचित वन-यात्रा विक्रम सम्वत् १६०० की, श्री गुसांई विट्ठलनाथजी का उजागर चौबे का वृत्तिपत्रक और महाप्रभुजी व गुसांईजी की बैठक व अन्य परम्पराओं द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि नारायण भट्ट के समय ब्रज-यात्राओं का प्रचार वल्लभ संप्रदाय में हो गया था। श्री नारायण भट्ट का जन्म सम्वत् १५८८ वि० में है, उनका ब्रजागमन सम्वत् १६०२ है और ब्रजभक्तिविलास की रचना सं० १६०९ की है और यह लिखा है कि सम्वत् १६०६ के पूर्व ही उन्होंने ब्रज के तीर्थों का उद्धार कर दिया था परन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में महाप्रभुजी की पहली ब्रज-यात्रा का आरम्भ सम्वत् १५५५ विक्रमी में 'ब्रज-यात्रा श्लोक' नामक संस्कृत के आधार पर माना जाता है। निजवार्त्ता और घरूवार्त्ता के आधार पर यह यात्रा इससे भी पूर्व की है, अर्थात् सं० १५४८ विक्रमी की मानी जाती है। 'ब्रज-यात्रा श्लोक' के अनुसार दूसरी ब्रज-यात्रा का समय भाद्रपद शुक्ल द्वादशी संवत् १५६५ है। श्री महाप्रभुजी के अतिरिक्त श्री गुसांईजी ने श्री गोपीनाथ सहित सम्वत् १५९५ में एक ब्रज-यात्रा की थी। इसके पश्चात् गुसांईजी की दूसरी यात्रा सम्वत् १६०० की है जो अत्यन्त प्रसिद्ध है और उस समय उजागर चौबे को जो वृत्तिपत्रक उन्होंने लिख दिया था वह स्वयं यात्रा का पुष्टि प्रमाण है। कांकरौली विद्या विभाग में इस वृत्तिपत्रक का फोटो है। 'स्वस्ति श्रीमद्विट्ठल दीक्षितानां मथुरा क्षेत्रे तीर्थ पुराहित उजागर शर्मा मथुरास्ति।' 'विक्रमी सम्बत् १६००।' वार्त्ताओं में उल्लेख हैं कि बाहर से जो वैष्णव यहाँ आते थे वे श्री गुसांईजी की आज्ञा लेकर ब्रज-यात्रा को जाते थे। दोसौ बावन की कई वार्त्ताओं में लिखा है कि वैष्णव को ब्रज की यात्रा जरूर करनी चाहिये। वेणीदास की वार्त्ता (२५२–१५८–१६८) इन तिथियों और प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध हो गया कि ब्रज-यात्रा के प्रवर्तक श्री महाप्रभुजी और श्री गुसांईजी थे। ब्रज-यात्राओं का जब वल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलन हो गया था, उस समय नारायणभट्टजी तो बालक ही रहे होंगे।

ब्रज-यात्रा का प्रारम्भ—पुराणों के अनुसार यह प्रमाण मिलता है कि जब श्री उद्धवजी गोपियों को उपदेश देने आये तब वे ६ मास ब्रज में रहे और उन्हें इन कृष्णभक्त गोपिकाओं ने हाथ पकड़ पकड़ कर वे स्थल दिखाए जहाँ उनके उपास्य और आराध्य देव ने उनके साथ अनेक लीलाएं की थीं और उस लीला का महत्व भी बताया। 'राधाकुण्ड' और गोवर्द्धन के बीच में जो 'उद्धव कुण्ड' है वहाँ की जनश्रुति है कि उद्धवजी ने स्वयं प्रकट

होकर श्री कृष्णजी के प्रपौत्र ब्रजनाभजी को इन तीर्थों का महत्व बताया और प्रत्येक स्थान पर उनके द्वारा यथा योग्य विग्रह की स्थापना कराई। इतिहास काल में सम्वत् १५५० में जब श्री महाप्रभुजी ब्रज (गोकुल) पधारे तो वहाँ करील के कांटे थे जिन्हें काट-काट कर अनेक स्थलों को उन्होंने प्रकट किया और वहीं पर श्रीमद्भागवत का पारायण करके उसके महत्व को स्थापित किया था। श्री विट्ठलेश ने इस क्रम को आगे बढ़ाया और जब वे स्थायी रूप से गोकुल और गोपालपुर में रहने लगे तब तो उन्हें वैष्णवों के लिए इस यात्रा का सुविधा जनक प्रबन्ध करने में कोई असुविधा न हुई होगी और वे स्थान जिनके नाममात्र के अवशेष रह गए थे फिर से प्रत्यक्ष प्रकट होने लगे थे। श्री वल्लभ-विट्ठल प्रसंग से पुष्टि मार्ग में इनका महत्व और भी बढ़ गया। अनेक स्थानों पर बैठकें स्थापित हो गईं और तीर्थ यात्राएं व्यक्तिगत न रहकर सामूहिक हो गईं। उस समय देश की जो सुरक्षा की व्यवस्था थी, उसके अनुकूल ही सामूहिक यात्रा ही अधिक दिखाई देती हैं।

यात्रा का क्रम—ब्रज-यात्रा प्राय: भादों सुदी १२ को विश्राम घाट से आरम्भ होती है। इससे पूर्व इसका नेतृत्व करने वाले को गोकुल से गोविन्द घाट पर श्री महाप्रभुजी की बैठक में जाकर वहाँ से आज्ञा प्राप्त करनी होती है। यह यात्रा प्रथम दिवस मथुरा में विश्राम घाट पर नियम लेने के बाद मथुरा के अन्तर्गत दर्शनीय स्थानों की ही परिक्रमा और दर्शन करती है। इसी प्रकार जिस दिन ब्रज-यात्रा का अंतिम दिन होता है, उस दिन फिर मथुरा नगर के बाहरी ओर के स्थानों का दर्शन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार यात्रा का आरम्भ और अन्त दोनों मथुरा में ही होता है। आरम्भ में 'अंतर्गृही' परिक्रमा और अंत में बाहरी। मथुरा में जिन स्थानों और घाटों की परिक्रमा इन दोनों दिन होती है, उनके नाम इस प्रकार हैं :—

विश्राम घाट, गतश्रम नारायण का मंदिर, केसरवार, सती का बुर्ज चर्चिका देवी, योगघाट, पिप्पलेश्वर, योगमार्गवटुक, प्रयाग घाट, वेणी माधव का मन्दिर, श्यामघाट, श्यामजी का मन्दिर, दाऊजी, मदनमोहन जी, गोकुलनाथ जी के मन्दिर, कनखल तीर्थ, बिन्दुकतीर्थ. सूर्यघाट, ध्रुवक्षेत्र, ध्रुवटीला, सप्तर्षि टीला, कोटि तीर्थ, रावण टीला, बुद्धितीर्थ, बलिटीला, रंगभूमि, कंसटीला, रंगेश्वर महादेव, सप्त समुद्र कूप, शिवताल, बलभद्रकुण्ड, भूतेश्वर महादेव, पोतराकुण्ड, ज्ञानवापी, जन्मभूमि, केशवदेव मंदिर, कृष्ण कूप, कुब्जा कूप, महाविद्या, सरस्वती नाला, सरस्वती कुण्ड, सरस्वती मन्दिर, चामुण्डा उत्तर कोटि, तीर्थ, गणेश तीर्थ, गोकर्णेश्वर, गोतमर्षि की समाधि, सेनापति का घाट, सरस्वती संगम, दशाश्वमेघ घाट, अम्बरीष टीला, चक्रतीर्थ, कृष्ण गंगा, कालिंजर महादेव, सोमतीर्थ, गोघाट, घण्टाकर्ण, युक्तितीर्थ, कंसकिला, ब्रह्मघाट, बैकुण्ठघाट, धारापतन, वसुदेव घाट, असिकुण्डा, वाराह क्षेत्र, द्वारिकाधीश का मंदिर, मणिकर्णिका घाट, महाप्रभुजी की बैठक, विश्राम घाट।

इनमें अनेक स्थान अर्वाचीन हैं। दूसरे दिन यात्रा का प्रथम विश्राम मधुवन में होता है जो मथुरा से दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग चार मील है। मधुवन में कृष्ण कुण्ड है, ध्रुव जी का मन्दिर है और चतुर्भुज ठाकुर का मन्दिर तथा श्री महाप्रभु जी की बैठक है। मधुवन का आधुनिक प्रसिद्ध नाम महोली है।

तालवन-कुमुदवन—दूसरे दिन विश्राम मधुवन में ही रहता है। सब यात्री प्रातः काल से महाराज श्री के साथ तालवन होते हुए कुमुदवन पहुँचते हैं। वहां से दर्शन करके फिर मधुवन लौट आते हैं। तालवन मधुवन से तीन मील है और कुमुदवन वहाँ से दो मील है। तालवन में बलभद्रकुण्ड है और बलदेवजी का मन्दिर है। यहां धेनुकासुर का वध हुआ था। तालवन के तारसी गाँव के समीप यहां से थोड़ी दूर पाली खेड़ा गाँव है वहाँ लवणासुर की गुफा है। यह पालीखेड़ा गाँव किसी समय पाली भाषा का केन्द्र रहा था। यहाँ से खुदाई में पुरातत्व संग्रहालय को बहुत-सी वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं। कुमुदवन में कपिलमुनि के दर्शन हैं। लालकदम के नीचे ठाकुरजी की बैठक है तथा महाप्रभु जी की बैठक कृष्णा कुण्ड पर है। इसके पश्चात् यात्रा मधुवन लौट जाती है और रात्रि को वहीं पर विश्राम करती है। फिर सतोहा गाँव में होकर सन्तानकुण्ड जाती है।

सन्तान कुण्ड—तीसरे दिन यात्रा सन्तानकुण्ड पर जाती है। यहाँ श्री बलदेव जी और गिरिराजजी के मन्दिर हैं और श्रीनाथ जी की बैठक है। इस कुण्ड का आकार सुरभी कुण्ड जैसा ही है। इसमें सन्तान की कामना रखने वाले नर और नारी स्नान करते देखे जाते हैं। भादों सुदी सप्तमी को यहाँ मेला लगता है। यहाँ से चौथे दिन यात्रा बहुलावन को जाती है जो बाटी गाँव में है।

बहुला वन—यहाँ कृष्ण कुण्ड पर ही बहुलागाय का मन्दिर है और सामने श्री महाप्रभु जी की बैठक है। बहुलावन की बैठक के चरित्र में लिखा है कि किसी मुसलमान हाकिम ने इस गऊ का पूजन बन्द करने की आज्ञा दे दी थी और जब उससे बहुत कहा सुना गया तो उसने कहा कि यदि गाय चारा खाले तो मैं पूजन करने की आज्ञा दे दूंगा। इस पर श्री महाप्रभु जी ने इस गाय को अपने हाथ से घास खिला दी। बहुला गाय की मुर्ति की स्थापना का इतिहास यह है कि एक बार धर्मराज ने भगवान के एक सखा की गाय की, सिंह रूप रख कर परीक्षा ली। सिंह रूप धारी धर्मराज ने जब वन से लौटती हुई इस गाय को खाना चाहा तब उसने कहा कि मैं बच्चे को दूध पिला कर लौटने की आज्ञा चाहती हूँ। सिंह ने यह आज्ञा दे दी और वह गऊ बछड़े सहित लौट आई। इस पर धर्मराज ने अपना रूप प्रकट किया और कहा कि तूने सत्य धर्म का पालन किया है तू पूजनीय है और तबसे इसकी पूजा का इस स्थान पर क्रम चला है। यहाँ मन्दिर में एक गाय की मूर्ति है फिर प्रस्तर पट पर इस घटना की स्मृति रक्षा के हेतु, गाय, सिंह और ग्वारिया की मूर्ति खुदी हुई है।

राधाकुण्ड—पांचवें दिन बहुलावन से विहारवन और तोष गाँव होती हुई यह यात्रा फिर राधा कुण्ड पर विश्राम करती है। तोष भगवान के नृत्य कला प्रवीण सखा थे। यह उनका गाँव है और यहाँ एक तोष कुण्ड है। फिर जिरिवन गाँव (यक्षहन गांव) आता है जहां रोहिणी कुण्ड पर श्री बलदेव जी का मन्दिर है। इसके पश्चात् छठे दिन अडिंग में मुकाम रहता है। अडिंग में भगवान ने अरिष्टासुर नामक दैत्य का वध किया है जो बैल के रूप में सम्मुख आया था। फिर सातवें दिन अडिंग से मुखराई गाँव होकर सीधे राधाकुण्ड पर यात्रा विश्राम करती है। मुखराई में श्री मुखरा देवी का मन्दिर है। मुखराजी श्री राधिका जी की नानी हैं। राधाकुण्ड का परिचय हम अलग से पहले लिख चुके हैं। यहां से 'कुसुम सरोवर' पर यात्रा जाती है फिर 'ग्वाल पोखरा' रत्न सिंहासन और फिर किल्लोलकुण्ड पर विश्राम करती है।

गोवर्द्धन—किल्लोलकुण्ड से नवें दिन यात्रा श्री गोवर्द्धन होती हुई जमुनावतो गाँव को जाती है। राधाकुण्ड से गोवर्द्धन तीन मील दूर है। यहाँ शिकार खेलने की मनाही है। राधाकुण्ड से एक मील दूर पर एक बहुत ही सुन्दर नवकासी के काम का बना हुआ सरोवर है जिसे 'कुसुम सरोवर' कहते हैं। जिसे भरतपुर नरेश सूरजमल के पुत्र जवाहिरसिंह ने बनवाया था। कुसुम सरोवर पर जाट वीर सूरजमल और जवाहरसिंह की छतरियाँ है।

चन्द्र सरोवर—जमुनावतो से यात्रा १० वें दिन कुसुम सरोवर से उठकर फिर 'चन्द्रसरोवर' पर मुकाम होते हैं। चन्द्रसरोवर के सम्बन्ध में ग्राउस महोदय ने लिखा है कि यहाँ श्री ब्रह्माजी ने गोपियों के नृत्य में सहयोग दिया था और एक रात्रि ६ महीने की हो गई थी। चन्द्र सरोवर परासोली गांव में है। परासोली का अर्थ है 'परम रासस्थल'। परासोली का नाम दहसूदपुर भी है। यह भी वैसा ही जैसा ही मथुरा का नाम 'इस्लामाबाद'। यहाँ का सरोवर अठ पहलू बना हुआ है। जमुनावतो से लगभग एक मील की दूरी पर भवनपुरा गांव है जहाँ के रहने वाले एक ब्रजवासी के गाय की रक्षा एक सिंह ने की थी जिसका उल्लेख श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्त्ता में है। साधारण यात्रा यहाँ नहीं जाती है। केवल बड़ी यात्रायें ही इस गांव में जाती हैं।

पैठोगांव—चन्द्र सरोवर से यात्रा पैठों गाँव को जाती है और वहाँ चतुर्भुज नारायण, बलदेवजी, साक्षीगोपाल, लक्ष्मी कूप. ऐंठाकदेव. कृष्णकुण्ड, क्षीर सागर, बलभद्र कुण्ड तथा श्रीकृष्ण के पैठने की गुफा के दर्शन करके फिर चन्द्र सरोवर लौट आती है।

पैंठो शब्द का अर्थ है प्रवेश और यह प्रचलित है कि गोवर्द्धन धर ने गोवर्द्धन धारण करते समय इसी गुफा से ही उसके भीतर प्रवेश किया था।

आन्योर—चन्द्र सरोवर से यात्रा आन्योर जाकर गोविंद कुण्ड होकर 'पूंछरी' फिर 'सुरमी कुण्ड' पर विश्राम करती है। सुरमी कुण्ड पर यात्रा आठ दिन ठहरती है। जतीपुरा और उसके आसपास के दर्शनीय स्थानों का उल्लेख जतीपुरा शीर्षक के अन्तर्गत हो चुका है। यहां जतीपुरे और गिरिराज के सम्बन्ध में एक बात लिखना आवश्यक है। जतीपुरे में गिरिराज जी पर जहाँ आज श्रीनाथ जी का मंदिर है और उसके पीछे टूटे-फूटे भण्डार के भग्नावेष हैं। ठीक उसी के सामने मैंने थोड़ा आगे बढ़कर देखा तो वहाँ एक मुगलकालीन बड़ी ईटों का टूटा फूटा बड़ा चौंतरा सा दिखाई दिया उसके ठीक नीचे आन्योर में सद्दू पांडे का घर है। इसलिए यह अनुमान लगाने में कोई कठिनाई न हुई कि श्रीनाथ जी के प्रकट होने का स्थान यही है और यही पहला मंदिर रहा होगा जो औरंगजेब के राज्यकाल में उसी की आज्ञा से तोड़ कर गिरिराज की भूमि के बराबर कर दिया होगा। आधुनिक मंदिर छोटी ईट का बना है और निश्चय ही इसका निर्माण काल शाहजहां और औरंगजेब के पीछे का है। सम्भवतः यह वह मंदिर है जिसे जाटों का संरक्षण प्राप्त था और उन्हीं ने ही इसे बनवाया था।

परमदरा—जतीपुरा के आठ दिन के प्रवास में यात्री लोग गिरिराज के आसपास के सभी महत्वपूर्ण स्थानों को देख लेते हैं। एक दिन यात्रा श्यामढाक जाती है। दूसरे दिन बिलछू, दानघाटी और गोवर्द्धन जाती है। तीसरे दिन गुलालकुण्ड चौथे दिन 'गोविन्द स्वामी की कदंबखण्डी' और सुरभी कुण्ड, पांचवे दिन अथाव और इसी दिन श्री गिरिराज जी की परिक्रमा होती है। छठे दिन कुनवारा, सातवें दिन भोजन और आठवें दिन वहां से

यात्रा या तो डीग जाती है या 'परमदरा'। पुरानी प्रथा 'परमदरे' जाने की है। 'परमदरा' में कृष्ण कुण्ड और सुदामा जी का मंदिर है। 'परमदरा' सुदामा जी का निवास-स्थान है।

डीग—डीग प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। यहां के भवन स्थापत्य के सुन्दर नमूने हैं। यहां के ताल और महल 'सावन भादों' में इतने फुहारे लगे हैं कि उनके पास वर्षा का सा आनन्द आता है। यह महाराज भरतपुर के अधिकार में है। यहां का 'रूप सागर' सरावेर भी सुन्दर है। डीग में एक दाऊजी का मंदिर है। डीग से पहले बरहज गांव पड़ता है जहां के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि इन्द्र ने यहीं लज्जित होकर भगवान् की स्तुति की थी। परमदरा और डीग में एक एक दिन ठहरकर यात्रा 'आदिबद्री' नामक स्थान पर जाती है जो परमदरे से चार मील की दूरी पर है। इस स्थान पर नन्द आदि गोपों को श्री बद्रीनारायण का दर्शन कराया गया था। आदिबद्री से 'बूढ़ेबद्री' वहां हरकी पैड़ी, लक्ष्मन झूला, मानसरोवर, अलखनंदा, तप्तकुण्ड, केदारनाथ आदि स्थानों का दर्शन करना होता है। इसके पश्चात् 'आनन्दाद्रि' पर्वत पर जाना होता है। 'आनन्दाद्रि' का भवन गोस्वामी श्री देवकीनन्दनलाल का स्थान है। इनकी यहाँ बैठक है। श्री देवकीनन्दन-लाल जी ने ही यह स्थान बसाया था। यह अपने समय के 'चमत्कारी' पुरुषों में से थे। और इन्होंने अपने समय में भरतपुर नरेश की अनेक कामनाएं पूरी की थीं। यहां अब एक गांव है, दो बड़े-बड़े कूप हैं, बंगले हैं और संक्षेप में यह स्थान एक वैभवपूर्ण स्थान है। यहां से इन्दरौली गांव—जो इन्द्रलेखा सखी का गांव है होती हुई इंदुकुंज, कूप और कुण्ड से फिर यात्रा कामवन जाती है।

कामवन—यहां यात्रा तीन दिन ठहरती है। कामवन के लिए प्रसिद्ध है कि बनवास-काल में पांचों पाण्डव यहीं रहे थे। कामवन दूसरा वृन्दावन है। यहां श्री गोविन्ददेव जी के मंदिर में वृन्दादेवी का मंदिर है। यहां के चौरासी तीर्थ प्रसिद्ध हैं। मधुसूदन कुण्ड, यशोदा कुण्ड, सेतुबन्ध रामेश्वर, चक्रतीर्थ, लंका, पलंका कुण्ड, लुक लुक कुण्ड जिसे श्याम कुण्ड भी कहते हैं। प्रसिद्ध है कि लुक लुक कन्दरा में ही छिपकर भगवान कृष्ण पर्वत पर प्रकट हुए हैं और वंशी बजायी है। कामवन में ही चरणपहाड़ी है जो लगभग २०० फुट ऊंची है और जहां भगवान के चरणों के दर्शन होते हैं। इसमें 'महोदधिकुण्ड,' छटंकी पसेरी, रत्नाकर सागर, ललिता जी की बावड़ी, नन्द कूप, नन्द बैठक, मोती कुण्ड, देवी, कुण्ड, गया कुण्ड, गदाधर भगवान के दर्शन, प्रयाग कुण्ड, काशी कुण्ड, गोमती कुण्ड, श्रीदामा-दिपंचगोप कुण्ड, घोष रानी कुण्ड, यशोदा जी का पीहर है। गोपीनाथ जी का मंदिर, चौरासी खम्भा, श्रीकृष्ण चैतन्य सम्प्रदाय के गोपीनाथ जी, गोविन्ददेव जी, मदनमोहन जी, राधावल्लभजी के मंदिर, श्री वल्लभ सम्प्रदाय के गोकुलचन्द्रमा, नवनीतप्रिय और मदन मोहन जी के मंदिर हैं। श्वेतवराह का मंदिर, सूर्य कुण्ड, गोपाल कुण्ड, राधा कुण्ड, शीतला कुण्ड, ब्रह्मा जी का मंदिर, ब्रह्मकुण्ड, श्री कुण्ड, श्री महाप्रभु जी, गुसांई जी, गोकुलनाथ जी की बैठकें, खिसलनी शिला, काम सागर, व्योमासुर की गुफा, काठला, मुकुट, हाथ, इनके चिन्ह हैं।

भोजन थाली—यहां पहाड़ पर पत्थर की स्वतः सिद्ध अनेक थालियां सी बनी हुई हैं। भोग कटोरा, कृष्ण कुण्ड, चरण कुण्ड, गरुड कुण्ड, राम कुण्ड, राम मंदिर, अघासुर की गुफा,

कामेश्वर महादेव का मंदिर, चन्द्र मामा कुण्ड, वाराह कुण्ड, पांचों पाण्डवों का मंदिर, चारों युगों के महादेव, धर्म कुण्ड, धर्मकूप, पंचतीर्थ, मनकामना कुण्ड, इन्द्र मंदिर, विमल कुण्ड (हिंडोले का स्थान) सुनहरी कदंब खंडी, रास मण्डल का चबूतरा, कुंज में जलशय्या विहार का स्थान, जहां सखियों ने फूलों की सेज बनायी थी और जहां जावक के चिन्ह हैं आदि के दर्शन होते हैं।

छटंकी पंसेरी—दो शिलायें हैं जिनकी तौल इससे बहुत अधिक होगी। पर कहा जाता है कि मां यशोदा से जब कृष्ण के मक्खन चुराने की शिकायतें हुई तो उन्होंने कहा—

'जाको जाको खाओ सोई ले जाओरी,
गारी मत दीजौ मो गरीवनी को जायो है।' (सूरदास)

और कहा कि इन बांटों से तौल कर अपना-अपना माल ले जाओ।

बरसाना, (ऊंचा गांव) इत्यादि—कामवन से यात्रा बरसाना जाती है। यह स्थान कामवन से दस मील दूर है। कामवन से पहले 'कनवारा' गांव आता है। यहां कृष्ण जी के कान छेदे गए थे और माता यशोदा ने कुनवारे का भोग लगाया था। यहां कर्ण कुण्ड है, सुनेहरा की कदम खंडी है, जिसके चारों ओर पर्वत है जिसका नाम स्वर्णप्रस्थ है। वहां पनिहारी कुण्ड है। यहां काका वल्लभ जी की बैठक, रास चौंतरा, हिंडोला है। इसके आगे सुनेहरा गांव है और उसके आगे 'चित्र विचित्र' शिला है जहां मेंहदी के रंग के रेखाओं के चित्र हैं, छप्पन कटोरा के चिन्ह हैं, राधाजी के चरण चिन्ह, माणिक शिला और देश कुण्ड हैं। माणिक शिला के भीतर ही लाल-लाल रंग झलकता है। देहकुण्ड से ऊपर ऊंचे गांव में ललिता जी का स्थान है। 'ब्रजभक्ति विलास' के लेखक नारायण भट्ट गौडिया सम्प्रदाय वाले समय (१६०२) यहीं के रहने वाले थे। यह बलदेव जी की लीला-भूमि है। यहां मानसरोवर है, वृषभानुकुण्ड, रावती कुण्ड, पांवड़ी कुण्ड, शीतल कुण्ड, तिलक कुण्ड, ललिता कुण्ड, विशाखा कुण्ड, मुहक कुण्ड, जलविहार कुण्ड, दोहिनी कुण्ड, सूर्य कुण्ड, नौवारी और रत्नकुण्ड नामक स्थान हैं। ऊंचागांव से 'डमारोगांव' जाना होता है और फिर बरसाना में दो दिन तक यात्रा टिकती है।

बरसाना—ब्रह्मसानु, वृषभानुपुर इत्यादि का प्रचलित रूप बरसाना है। यह एक छोटी सी पहाड़ी है। इस पर्वत को उसी प्रकार ब्रह्मा जी का रूप मानते हैं जैसे गिरिराज को विष्णु का और नन्दगांव पहाड़ी को शिव का रूप माना जाता है। यहां ऊंचे पर श्री लाडिली जी का बहुत अच्छा मंदिर बना है जिस पर चढ़ने के लिए बहुत सी सीढ़ियां हैं। यहां मोरकुटी, मानगृह, संकीर्णपथ, सांकरी खोर इत्यादि प्रसिद्ध स्थान हैं। बरसाने में दूर से देखने में दो पहाड़ियां लगती हैं जिनके बीच में यह बसा हुआ है। भादों सुदी अष्टमी से चतुर्दशी तक यहां मेला होता है। बरसाने की होली की अपनी विशेषता है। ऐसी होली और कहीं नहीं होती है। फागुन सुदी अष्टमी, नवमी और दशमी को जो यहां होली लीला होती है, वह दर्शनीय है। इस दिन यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। नन्द के गांव के युवक उस दिन राधा के गांव में होली खेलने आते हैं और यहां की युवतियां उनकी अच्छी मरम्मत करती हैं। पहले दोनों गांव के लोग इकट्ठे होकर श्री लाडिली जी के दर्शन को जाते हैं। लौटते समय उस रंगीली गली से ही होली आरम्भ हो जाती है। बरसाने की स्त्रियां जिन्हें उनके पति कई महीने से दूध पिला-पिला कर लाठी चलाने का अभ्यास कराते हैं, नन्दगांव के

लालाओं पर रंग या गुलाल डालने के लिए खूब जोर का प्रहार करती हैं, और वह युवक जिस पर यह चोट की जाती है चमड़े की ढाल से अपनी रक्षा करता है। इस समय व्रजांगना का लाठी चलाना और युवक का अपनी रक्षा करना दोनों की शोभा और दांवपेंच देखते ही बनता है और द्वापर के उन दिनों का स्मरण हो आता है जब यह लीला यहां हुई होगी। इसमें कभी-कभी दोनों ओर से ऐसा आवेश देखा गया है कि यदि स्त्रियों के पति बीच बचाव न करावें तो परिस्थिति अधिकार से बाहर होने की सम्भावना रहती है। आज जहां यह होली लीला होती है वहां की धूल उठा-उठा कर व्रजभक्त दर्शक लोग अपने माथे पर लगाते हैं और अपने को धन्य समझते हैं। इस समय यदि किसी होली खेलने वाले को चोट लग जाती है तो वह इस धूल को ही उसमें भर देता है। इस अवसर पर जो गालियों का व्यवहार होता है, उसमें ही यह मारपीट आरम्भ होती है। व्रज की ही पोशाक में, व्रज की शुद्ध बोली में और राधा की निज भूमि में होने के कारण इस लीला का माधुर्य निराला है।

चिकसौली—बरसाने के गांव के पीछे चिकसौली गांव है। उसी के समीप सांकरी पोल है जहां भादों सुदी एकादशी को 'दान लीला' होती है और मटकी फोड़ी जाती है।

गहवरवन—बरसाने के समीप उसी पर्वत में गहवरवन है। शंख का चिन्ह है महाप्रभु जी की बैठक, दान गढ़, गाय के स्तनों का चिन्ह, महीभानु, वृषभानु के मंदिर, अष्टसखियों के मंदिर, मुक्ताकुण्ड और पीरी पोखर है। ग्राउस ने जहां अपने मथुरा मेमायरस में बरसाने का हाल लिखा है वहाँ तीन व्यक्तियों को इसके बसाने का श्रेय दिया है—एक रूपराम कटारा, दूसरे मोहनराम खवालिया और तीसरे लालजी तोतिया ठाकुर। बरसाने में भानोखर के समीप ही रूपराम कटारा की छतरी है। ग्राउस ने लिखा है कि सूरजभान के पुत्र रणजीत ने जब वजीर नजफअली खां के विरुद्ध डीग में युद्ध किया। उसी समय जनरल समरू की अध्यक्षता में जाटों की हार हुई और बरसाने को मुसलमानों ने बुरी तरह लूट लिया। यह घटना लगभग सम्वत् १८२५ अर्थात् सन् १८२८ की है।

प्रेम सरोवर—बरसाना और संकेत के बीच यह एक सुन्दर स्थान है। यहाँ आजकल एक संस्कृत पाठशाला है और एक अन्नसत्र है। प्रेम सरोवर में रानो चोतरा, रामबिहारी का मंदिर और श्री विट्ठलनाथ जी की बैठक महत्वपूर्ण स्थान हैं।

संकेत—बरसाने से नन्दगाँव की ओर लगभग तीन मील दूर पर यह प्रसिद्ध स्थान है जहाँ के विषय में यह प्रसिद्ध है कि यहीं नन्दगाँव के कृष्ण और बरसाने की राधा एक दूसरे से मिला करते थे और यहीं ब्रह्मा ने इनको परिणय बन्धन में बाँध दिया था। यहाँ रास मण्डल का चबूतरा, झूला का स्थान, रंगमहल, श्याम मंदिर और विह्लादेवी, विट्ठलकुण्ड और संकेत बिहारी का मंदिर आदि स्थान हैं। यहां श्री महाप्रभु जी की व श्री गुसांई जी की बैठकें है। यहीं श्रीकृष्ण चैतन्य की भी बैठक है। यहाँ यात्रा एक दिन ठहरती है।

नन्दगाँव—संकेत से रिठौरा होती हुई यात्रा नन्दगाँव पहुँच जाती है। रिठौरा श्री चन्द्रावली जी का ग्राम है। यहाँ चन्द्रावली कुण्ड है। यहां श्री चन्द्रावली जी की व श्री गुसांई जी बैठकें हैं। मार्ग में बेलकुण्ड, पानिहारी गाँव, चरण पहाड़ी, गायों के खिड़क खूंटा, रोहिणी मोहिनी कुण्ड और पनसरोवर में महाप्रभु जी की बैठक है। नन्दगाँव की बैठक के चरित्र के अनुसार यहां एक मुगल सरदार को श्री महाप्रभुजी ने अगले जन्म में शरण लेने को कहा था। नन्दगाँव में नन्दराय जी का मंदिर, राधेश्याम जी का मन्दिर, मोतीकुण्ड,

फुलवारी कुण्ड, नन्दीश्वर महादेव, यशोदानन्दन, बिहारी जी और चतुरानागा के ठाकुर हैं। नंद ग्राम या 'नन्दीगाँव' में पहाड़ पर श्री युगल के चरण चिह्नों के दर्शन होते हैं। आशकुण्ड, आशेश्वर महादेव, साक्षी गोपाल, उसासकुण्ड, छाछ कुण्ड, छिछिमारीदेवी, कृष्णकुण्ड, जलविहार कुण्ड, योगेश्वर कुण्ड, सूरज कुण्ड, भतारा कुण्ड, कुहक कुण्ड, अक्रूर कुण्ड, चीर तलाई वस्त्रवन उद्धव क्यारी, ललिता कुण्ड विशाखा कुण्ड, मोहन कुण्ड, उद्धवकुण्ड उद्धव जी की कदंब खंडी, नन्दराय जी की बैठक, नन्द पोखर, यशोदा कुण्ड, मधुसूदन कुण्ड, हाऊ बिलाऊ लेश्रो कुण्ड, पद्मतीर्थ, नृसिंह जी के दर्शन, माठ इत्यादि भी दर्शनीय स्थान हैं। नन्दगांव से यात्रा करहला जाती है।

अंजनीश्वर—नन्दगांव से अंजनीश्वर जाते समय, पूर्णमासी जी का मंदिर रुनकी, मुनकी कुण्ड, दौमन की कदंब खँडी, कजली वन, कजली कुण्ड रास्ते में पड़ते हैं।

करहला—ललिता जी का जन्म-स्थान है। इससे कुछ दूर 'पियासो' ग्राम है वहाँ श्री कृष्ण जी को प्यास लगी थी। इसलिये इसका नाम 'पियासा' की जगह 'पियासो' हो गया। करहला में गोपों ने कहा तुम 'हेला' करो, जल के लिए बुलाओ, इससे इसका नाम करहला (करहेला) पड़ा। यहाँ कंकरण कुण्ड है, कदंबखिड़ी हिंडोला को स्थान, महाप्रभु जी गुसांईजी जी और गोकुलनाथ जी की बैठकें हैं। यहाँ के रासधारी प्रसिद्ध हैं। इनमें हवेली वाले और महल वाले अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। करहला में यह एक दिन ठहरती है। यहाँ से चली यात्रा कोकिला वन को जाती है। रास्ते में पियासा गाँव आता है जहाँ तृष्णा कुण्ड और विशाखा कुण्ड हैं। यहाँ से खिरकवन को यात्रा जाती है जहाँ गायों के खिरक हैं। फिर 'कुण्डवन' जहाँ गोपियों ने ठाकुरजी को कुण्डल पहनाये हैं, वहाँ यात्रा को जाना पड़ता है। 'कुण्डलवन' से 'जाव' जहां जाववट, किशोरी कुण्ड, चीर कुण्ड, पनिहारी कुण्ड, दाऊजी के मंदिर और राधिकारमण जी के मंदिर हैं।

कोकिला वन—कोकिला वन में कृष्ण कुण्ड, पनिहारी कुण्ड, महाप्रभु जी की बैठक, चतुरानागा का स्थान है जहाँ महाप्रभु जी ने ५०० नागों को भोजन कराया था। कोकिलावन में यात्रा एक दिन ठहरती है।

कोटवन—कोकिलावन से यात्रा कोटवन जाती है जो लगभग आठ मील दूर है। यहाँ पाण्डव गंगा, बड़ी बैठेन, छोटी बैठेन, कृष्ण बलदेव के मंदिर और चार पाँच कुण्ड मार्ग में पड़ते हैं। इसके बाद चरण पहाड़ी और चरण गंगा नामक स्थान आते हैं। कुछ यात्राएं यहीं से 'कामर' जहाँ गिरधर जी की बैठक है और कुछ सीधी रासौली होकर कोटवन चली जाती हैं।

रासौली—रासौली में रास कुण्ड, रास चौंतरा और श्री गोकुलनाथ जी की बैठक है। रासौली से श्रीनाथ जी की बैठक और जलघरे को जाते हैं। वहाँ से कोटवन जहाँ यशोदा को रास मण्डल के दर्शन हुए थे। यहाँ शीतल कुण्ड है और गुसांई जी की बैठक है। यहाँ गोविन्द स्वामी को बिहार लीला के दर्शन श्री गुसांई जी ने कराये थे। यहां से यात्रा कोसी को चलकर वहाँ एक दिन ठहरती है। मार्ग में चमेली वन या मूलन वन मिलता है। चमेली वन में श्यामकुण्ड, चमेली कुण्ड हैं। चमेली वन लगभग दो मील का है। चमेली वन से 'शेषसायी' जहाँ शेषशायी का मंदिर और क्षीर सागर है।

कोसी—शेषसायी से नन्दनवन और चंदनवन होकर यात्रा कोसी जाती है। यहाँ 'द्वारका लीला' गोमती कुण्ड है। कोसी से पैगाँव को जाना होता है। वहाँ सब यात्राएं नहीं जाती हैं। वहाँ पाई सरोवर, गोपाल कुण्ड, गोपी सरोवर और चतुर्भुज राधारमण और दाऊजी के तीन मंदिर हैं। पैगाँव से गोपाल कुण्ड, मोती कुण्ड और स्वर्ण कुण्ड का आचमन करते हुए बुखराई गाँव में यात्रा जाती है। वहां कृष्ण कुण्ड, श्याम कुण्ड के जल से आचमन करते हुए बहड़ा गांव और खेलनवन लालवन होते हुए शेरगढ़ बैठती है। वहां से लोहवन में विश्राम होता है।

शेष स्थान—लोहवन से दाऊजी और दाऊजी से गोकुल मार्ग में चिन्ता हरणघाट, सामने कर्णावल जहाँ महाप्रभु जी की बैठक है और जहाँ मथुरेश जी का प्राकट्य है। वहाँ होकर महावन, रमन रेती और गोकुल और वहां से मथुरा में यात्रा सम्पूर्ण होती है। यात्रा में कम से कम चालीस दिन लगते हैं।

शेरगढ़—इसमें दाऊजी, धर्मराय गोपीनाथजी, राधारमनजी, मदनमोहनजी, राधाकृष्ण और साक्षी गोपाल के मन्दिर हैं। बलभद्र कुण्ड और राधा कुण्ड दो कुण्ड हैं।

चीरघाट—शेरगढ़ से चीरघाट मार्ग में रामघाट, गोरे दाऊजी फिर गुंजावन' जहाँ से कांकरौली के द्वारकाधीशजी की स्वामिनीजी की प्राप्ति हुई है, गुंजावन से आभूषणवन, वहाँ से निवारनवन, वहाँ से बिहारीवन, ब्रह्मघाट से अक्षयवट चीरघाट। चीरघाट पर श्री गुसांईजी की बैठक है जहाँ उन्होंने व्रतचर्या ग्रन्थ बनाया था। यहाँ कात्यायनी देवी और कदंब है। एक बावड़ी है।

वच्छवन—चीरघाट से वच्छवन मार्ग में नन्द घाट है जहाँ से नंदरायजी को वरुण के दूत उठा ले गए थे। नंदघाट से भयगांव, फिर बसई गांव फिर यात्रा बच्छवन पहुँचती है। यहाँ श्री गुसांईजी की बैठक है, ब्रह्मकुण्ड है और वत्सबिहारी चतुर्भु जजी के दर्शन हैं। यहाँ ब्रह्माजी के चार मुखों के समान चार ओर झुका हुआ पीपल का पेड़ है। जिसे 'ब्रह्मपापड़ी कहते हैं। यहीं समीप में 'सेईगांव' जो अलीखान पठान का गाँव है। यहाँ से यमुना पार करके मधुवन भांडीरवन और श्यामवन भाटवन और बेलवन जाते हैं। बेलवन में श्री गुसांईजी की बैठक है। वहाँ लक्ष्मीजी का मन्दिर है। भांडीरवन में महाप्रभुजी की गुप्त बैठक है। यहाँ सेवा नहीं होती है।

वृन्दावन—भांडीर से वृन्दावन में तीन दिन यात्रा ठहरती है। वृन्दावन का वर्णन पहले कर चुके हैं।

मानसरोवर—वृन्दावन के सामने उतरकर जहाँ महाप्रभुजी की बैठक है। यह कहा जाता है कि जहाँ राधिकाजी मान करके बैठीं थीं, यही वह स्थान है।

आलोचना—ब्रज-यात्रा तीन प्रचलित हैं–एक राम दल, दूसरी बंगालियों की, तीसरी 'बड़ी' कहलाती है, जो पुष्टि मार्गियों की है। इसमें पहली दो यात्रा केवल ग्रामों में ही ठहरती हैं और इनकी व्यवस्था बड़ी यात्रा के मुकाबिले में कुछ आकर्षक होती है। इसमें जाने वाले लोगों (यात्रियों) की संख्या भी सौ दो सौ से अधिक नहीं होती है। बड़ी यात्रा जिस स्थान पर जाती है, उस स्थान की लीला से सम्बन्ध रखने वाला रास उसी स्थान पर होता है। यात्रा की व्यवस्था में डाक, तार, अस्पताल, पुलिस सबका प्रबन्ध होता है। डेरों

के लिए अलग से बैलगाड़ियां होती हैं। दूकानदार अलग से साथ ही चलते हैं। जहाँ यह यात्रा वनों में विश्राम करती है, वहाँ ऐसा लगता है कि एक नया कस्बा बस गया हो। यात्रियों की संख्या ५००० से लेकर १५००० तक होती है। यात्रा के मूल संचालक गुसांईजी के व्यक्तित्व का प्रभाव भी इस योजना पर यथेष्ट मात्रा में रहता है। यह यात्रा पैदल ही होती है। इसलिए यात्री को ब्रज के चौरासी कोस के कण-कण का व्यक्तिगत अनुभव होता रहता है और ब्रज-रज की सच्ची अनुभूति का वह मधुर-मधुर रस पान करता रहता है। यात्रा में भाग लेने वाले चारपाई पर नहीं सोते हैं। वे ब्रज-रज में ही लेटते हैं। यदि किसी का शरीर ब्रज-यात्रा में छूट जाता है तो वह इसे अपना सौभाग्य समझता है कि उसे भगवान के लीलाधाम में इस नश्वर शरीर से छुटकारा मिल गया। श्री महाप्रभुजी ने और श्री गुसांईजी ने जब इस यात्रा का प्रचलन किया था, तब आज जो सुविधाएं प्राप्त हैं वे उस ढंग से कदाचित् प्राप्त न हो सकती रही होंगी। उनकी व्यवस्था या तो स्वयं महाप्रभुजी को या गुसांईजी को करनी पड़ती होगी और यात्रा करना अपेक्षाकृत कठिन होता होगा। फिर भी इस यात्रा का प्रचार हुआ और ब्रज में दूर-दूर से यात्री आने लगे और उन स्थानों का उद्धार होने लगा जहाँ पहले कोई न जाता था या बहुत कम लोग जाते थे और जो केवल नाममात्र को ही रह गए थे। इस यात्रा प्रसंग से एक बात और हुई है और उसका सीधा सम्बन्ध है इन स्थानों के उद्धार से। जहाँ जहाँ पुष्टि मार्गियों का साथ या संघ गया और उन्होंने किसी कुण्ड, कूप, वन, मंदिर या कदंब खंड़ी को नष्ट होते देखा है तो उसकी स्मृति की रक्षा करने की भावना उनके मन में सहज भाव से जागृत हो गई और उन्होंने तन, मन, धन से इन स्थानों के जीर्णोद्धार पर ध्यान दिया है जिससे उनकी रक्षा हो सकी है। यह काम उस दिन से आज तक बराबर चल रहा है अर्थात् किसी न किसी रूप से जारी है। अभी हाल की बात है कि ब्रज-साहित्य-मंडल ने चन्द्र सरोवर पर सूर की स्मृति की रक्षा के लिए स्तुत्य प्रयत्न किया है। ब्रज-साहित्य-मण्डल एक साहित्यिक संस्था है। प्रतिकूल इसके जिसमें धार्मिक आवेश और होता है वे उसी भाव से इन स्थानों के उद्धार में संलग्न होते हैं। लगभग तीस वर्ष पहिले की बात है कि नाथद्वार के आदरणीय वैष्णव श्री यदुनाथदास ने नाथद्वार के गोस्वामी श्री गोवर्द्धनलालजी से आज्ञा प्राप्त करके श्री द्वारकादास परीख द्वारा गिरिराज पर से 'नागफनी' के वन साफ कराने का कष्ट साध्य काम करवाया था। वैष्णव के लिए श्री गिरिराजजी विष्णु का शरीर है, गोरूप हैं, इसलिये वह नागफली लोहे के औजारों से नहीं हटायी जा सकती थी। इसलिए उसे बांस की मोटी कलमों द्वारा धीरे-धीरे उखाड़ा जाता था जिसमें श्री गिरिराजजी के शरीर में कटी हुई नागफली के कांटे न चुभ जायँ। इसलिए काटते ही समय उसे बांस से बनी टट्टियों पर रख लिया जाता था। वहाँ से नीचे लाकर उसे मिट्टी के तेल से जलाया जाता था। इस काम में उस समय सम्वत् १९८० में लगभग ९ हजार रुपए लगे थे और चार वर्ष तक सैंकड़ों आदमियों ने काम किया और इसी तरह यह काम सारे ब्रज-मण्डल के प्रसिद्ध स्थानों पर चलता रहा। इसी प्रकार जो कुण्ड मिट्टी से भर गए थे, उन सबको साफ किया गया था। ग्राउस महोदय ने अनेक कुण्डों पर ऐसे शिलालेखों का उल्लेख किया है जिनमें जीर्णोद्धार कर्त्ता का नाम लिखा है। कहने का तात्पर्य ही यह है कि श्री गुसांईजी के समय में गोवर्द्धन की मानसी गंगा के जीर्णोद्धार का जो काम जयपुर के राजा मानसिंह ने आरम्भ किया था,

वह बराबर चलता रहा है और अब भी चल रहा हैं। इस प्रकार पुष्टि धर्म के संस्थापक और उनके सेवकों ने ब्रज के प्रसिद्ध स्थानों के महत्व की रक्षा में महत्वपूर्ण योग दिया है।

पुष्टि मार्ग में नित्य लीला की बाल भावना

सम्प्रदाय में आठ समय की जो सेवा होती है, उसमें गोपीजनों के भाव की भावना इस प्रकार की जाती है—

मंगलभोग प्रात: समै उठी ब्रजवाला, गावत मंगल गीत रसाला।
करि श्रृंगार मथनिया धोवै, अपनी अपनी दह्यो विलोवे।
मंथन करें मोहन जस गावें सुमरि सुमरि हरि गुण सचुपावे।
माखन मिश्री दह्यो मलाई, आधो दूध कपूर मिलाई।
कछुक मनोरथ के पकवान, थार संजोवति सुन्दरवान।
नये बसन भूषण हरि लायक, ले चलि सुन्दरि सब सुख दायक।
अति ही सुरंग खिलोने लीने, विविध मनोरथ मन में कीने।
यहि विधि सब घर घर तें चलीं, नंद नन्दन को देखन अली।
सुख सज्या पोढ़े हरि राय, बार बार के जसुमति माइ।
फिर झांखे फिर फिर के आवे, कमल नयन को नाहीं जगावे।
ताहि समय आई ब्रजवाला, मानहु मत गयंद की चाला।
नूपुर की धुनि सुनी नंदराई, चौंकि उठे तब कुंवर कन्हाई।
निकट गई जहाँ जसुमति माइ, वदन देख कर लेत बलाइ।
बीथुरी अलक लटपटी पाग, पीक कपोल मुख अंजन लाग।
चंदन उर पर बीन गुन माला, भूषण इत उत परम रसाला।
यह शोभा निरखत ब्रजवाला, रसमसे नेन देखे नन्दलाला।
जसुमति धाई उछंगही लीनो, चूमि बदन उर सीतल कीनो।
मंगल भोग आनकै राख्यो, गिरधर लाला स्वाद सों चाख्यो।
माखन मिश्री मेल चटावे, धौरी को पय अति ही भावे।
दधी की छींट लगी तन शोभति, मानहु उडगन अंबर लोपति।
लपटानो मुख जसुति देखे, अपनो जन्म सुफल कब लेखे।
रंचक जमुना जल सों धोवे, पोंछि बदन अंचल सों जेवे।
पुनि अचवा में लवावे बीरी, सकल साज सब लाई अहीरी।
मंगल की आरती उतारी, शोभा देख रहीं सब नारी।
कनक पाट बैठे मन मोहन, लाग रही जसोमति अति गोहन।
कोऊ हरि को तेल लगावे, परसत अंग परम सचुपावे।
कोऊ अंग उबटनो करे, विविध मनोरथ मन में धरे।
कोऊ बेनी कर में धरे, ता ऊपर पुनि कंगई करे।
कोऊ कनक घट जल ले रहे, कोउ पद अंबुज ले ग्रहे।
कोऊ हरि को स्नान करावे, अंग वस्त्र करि अति सकुचावे।
कोऊ तनिया अंक पहेरावे, कोऊ सूंथनि सरस बनावे।

स्नान समय—कोऊ बागा पटुका करे, कोऊ बहु विधि भूषण धरे।
कोऊ कुल्ह सुरंग धरे शीश, पाग बंधावे गोकुल ईश।
तुम तो हो ब्रज राज लड़ैते, सब लरकिन में गुनन बड़े ते।
मोर चंद्रिका गुंजाहार, ब्रज जन के तुम प्राण अधार।
पहोप माल ले कंठ धरावे, संकेत सदन की ठौर बतावे।
श्रृङ्गार समय—रतन जटित मुरली कर दई, मोहन परम प्रीति सों लई।
सम्मुख आइ रही सब नारी, दर्पन देखी कुंज बिहारी।
तब आई वृषभान कुमार, छवि पर वारों कोटिक मार।
हट करी हरि श्रृंगार करायो, बहु विधि भूषन बसन बनायो।
मधु मेवा पकवान मिठाई, मुदित जसोमति गोद भराई।
अंजन दृग केसर की आड़, सब जुवतिन में लाडली लाल।
नखशिख लों श्रृंगार करायो, देख गोपाल परम सुख पायो।
वे तो हरि मुख कमल निहारैं, हरि राधा बिधु बदन उजारे।
मानहु मधुप कमल रस चाख्यो, के जानु प्रीति अमृत बांख्यो।
निरख निरख फूली ब्रजनारी, दर्शन देत हैं कुंज बिहारी।
शोभा निरख रहीं ब्रजनारी, हंस हंस देत परस्पर तारी।

गोपी-वल्लभ-ग्वाल

गोपी वल्लभ—भोग लै धर्यो, सो तो भुवन भुवन प्रति कर्यो।
पुरी दही संधानो शाक, मांखन बूरो बहु विधि पाक।
सब ही के मन रंजन कारन, प्रेम सहित लीनो मन भावन।
मनसा पूरण नंद कुमार, ठाड़े हैं जसुमति के द्वार।
मैया मथि मथि घैया प्यावे, बार बार उर अंतर लावे।
बेनी बढ़े लाल पय पीजे, इतना कह्यो हमारो कीजे।
घोरी को पय परम रसाल, सात घूंट जो पीवो लाल।
बदन धोय बीरा जब लीनो, तब मैया जु खिलौना दीनो।
ठाड़ी रही रोहिनी रानी, मीठी बात कहत मन मानी।
खीर सिरात [illegible] मोहिं आवे, ग्रास एक मुख भीतर लावे।
अति हित सों [illegible] भोजन कीनों, लालन मैया को सुख दीनो।
खेलत फिरत सखा संग लीने, खरिक खोर गिरि गहवर भीने।
अति प्रवीण जसोमति के पूत, सबहिन को मन लीनो धूत।
चोरी करी सबहिन सुख देत, गोपिन को सर्वस्व हरि लेत।
कर संकेत बुलाई गोपी, इन तो सब मर्यादा लोपी।
सबहिन को कीयो मन भायो, ता कारन यह ब्रज में आयो।
जसोमति रखियन को जु बुलावे, कमल नेन कौ कहुँ न पावे।
राजभोग— देखो री गोपल कहां धों खेलत, कहो माय बाबा तोहि बोलत।
भोजन को बैठे नंदराय, तुम संग भोजन करहुँ आय।
जब माता की जानी प्रीति, आय गये गिरधर महमीत।

बैठे आय कनक आसन पर, नंदराय पकरे कर सों कर ।
कनक बरन झारी जमुना जल, भरि दीनी जसुमति मति उज्वल ।
पनवारी जो यों विस्तार, तापर धर्यो कनक को थार ।
बेला छोटे मोटे धरे, चमचा रत्नजड़ित तंहां धरे ।
अगर धूप कीन्हों ता ठौर, हित सों प्रभुजी लीनो कौर ।
अती सुगंध चांवर को भात, आन धर्यो है जसुमति मात ।
ठाड़े मूंग अरु दारि बनायी, ताके पास कढ़ी ले आई ।
मिरचन के कीन्हें बहु शाक, हित सों जसुमति कीन्हें पाक ।
सिखरन भात अरु पीरो भात, खाटो मीठो बरीन को भात ।
तीन भांति की तुरई करी, पापड़ भूने अरु तिलवारी तरी ।
भुरता बैंगन चकता बरी, अरवीं सूरण सेव लै धरी ।
करेला मुरेला कंकोड़ा करे, अंडवा खंडवी गिलका धरे ।
सकरकंद को मीठो शाक, पेठा में मिश्री को पाक ।
राइता कीने इकइस भांति, संघाने की केतिक पांति ।
विलसारु कीनों जु बनाइ, जेंवत हरि को मन न अघाइ ।
भांत भांत की भाजी करी, बहुत भांति कचरियां तरी ।
बिंजन बहु विधि गिने न जाई, बारंबार जसोदा लाई ।
रोटी पुरी लीटी करी, मीसी रोटी घी सुं भरी ।
मांखन बूरा पास धरायो, लुचई ले सीखरन सों खायौ ।
सेव बहुत बूरा सों करी, सो तो जाय निकट ले धरी ।
बरा मठा के सुन्दर कीने, तिन कूड़ा अति रस सों भीने ।
मैया मोकूं सिखिरन भावे, बेला भरि भरि रौहिनी लावे ।
सुरभी घृत सों बेला भयों, सो तो जाय सिखर परि धर्यो ।
औट्यो दूध दही को बेला, मीठे आंब अरु सुन्दर केला ।
आंबन को शीरा जु कीनो, सो तो हरि जु रुचि सों लीनो ।
खरबूजा अरु पांचों मेवा, यह विधि जसुमति कीनी सेवा ।
छोंक्यो मठा परम रुचि दायक, सो तो केवल हरि जू के लायक ।
यह विध लालन भोजन कीनो, मात जसोमति को सुख दीनो ।
कर अंचवन ठाड़े आंगन में, अति सुगंध बीरा आनन में ।
श्री कर में बीरा जब लीनो, सो तो बांटि सबन को दीनों ।
थाक विचित्र कुंद की माल, लै आई पहरौं नंदलाल ।
कर मुरली अरु बेंत गहाइ, ब्रज बनिता निरखें सुखपाइ ।
आरती बहु विधि सों कीनी, सो तो देख वारनो लीनो ।
जो लों हरि भोजन कर आवे, तो लों सहचरी कुंज बनावे ।
ओली भर भर पहोप ले आवे, परम प्रीति सों सेज बिछावे ।
फूल के महल खंभ चोबारे, फूलन के कलसा अति भारे ।
फूलन की शैया ले रची, तकिया गेंदुवा फूलन सची ।
सेंज बंद फूलन के करे, रंग रंग फूल सों भरे ।

फूलन की चौकी ले करी, तापर करवा कुंजा धरी ।
अंगराग के बेला भरे, अति सुगंध बेला तह धरे ।
पुष्पमाल अति सुन्दर करी, सो तो प्यारी उर पर धरी ।
फूलन के पंखा ले आवे, सो तो कमल नैन को भावै ।
सकल पदारथ आगे धरे, विविध मनोरथ मन में करे ।
पोढ़े पिय प्यारी के संग, विविध भांति बरखत रसरंग ।
बहुत भांति पिय के संग खेली, रस मर्यादा सब ले पेली ।
श्रमकन सुभग अंग पर आई, रसभरे पोढ़े कुंवर कन्हाई ।
जालरंध्र ते सहचरी देखे, अपनो जन्म सुफल करि लेखे ।

उत्थापन—घंटा नाद भयो चहुँ ओर, शंखन की धुनि भइ सब ठौर ।
धुनि सुनि गोवर्द्धनधर जागे, मानहुँ प्रेम सिंधु में पागे ।
काकड़ी बीज खोवा और पन्ना, केला, आंव, खरबूजा घना ।
कंदमूल के भाजन भरे, सो तो कुंज सदन में धरे ।
गोप अघाने सुरभी देखी, फिर कछु मन में मनसा लेखी ।
वेणु वेंत ले चले कन्हाई, तब सहचरी परम सुख पाई ।
आगे गोधन पाछे ग्वाल, मध्य विराजत गिरधर लाल ।
गौरज मंडित मुख पर केस, शोभित है अति सुन्दर वेस ।
मणिमाला गुंजाफल गरे, गोरी राग वेणु में परे ।
ब्रज बनिता आइ चहुँ कोद, देखत श्रीमुख भयो प्रमोद ।
गोविन्द गोपन को सुख दीनो, किछुक मनोरथ मन में कीनो ।
करि सतकार चले आगे तें, करि संकेत गहे पाछे तें ।
अति बिरही सब ब्रज की बाला, घेरि लिये तब मदन गोपाला ।

संध्या भोग आरती

संध्या भोग है जाको नाम, सो तो लीनो वाही ठाम ।
नंद भुवन में ठाडे आय, प्रमुदित भई जसुमति माय ।
अति हित सों आरती उतारी, कर में लिये कनक की थारी ।
भीतर भवन पधारे लाल, आय जुरी सब ब्रज की बाल ।
कोऊ बड़े सिंगार करावे, कोऊ तेल फुलेल ले आवे ।
कोऊ मर्दन मज्जन करे, विविध मनोरथ मन में धरे ।
कोऊ जल ले स्नान करावे, अंग वस्त्र करि अति सचुपावे ।
कोऊ तनिया अंग पहरावे, बहुविधि भूषण वसन बनावे ।
सेली कंध वेणु कर लाये, हरि जू तबही खरिक में आये ।
सहज सिंगार किये अति सोभित, निरखत तन मन अतिसय लोभित ।
धोरी धूमरी गाय बुलाई, कजरी पीयरी दौरी आई ।
यह तो निज भक्तन संकेत, वे सबहिन को बोले लेत ।
विविध भाँति हरि दोहन करे, सब भाजन ले रससों भरे ।

शयन— ग्वाल भोग लीनो रस रीत, ब्रज बनिता की जानी प्रीत ।
सबहिन को कीयो मन भायो, जा कारन यह ब्रज में आयो ।
जसुमति भोजन कीनो साज, वेगि अइयो मोहन आज ।
जमुना जल सों झारी भरी, लै उठाय हरि पांछे वरी ।
दोउ भैया भोजन को आवे, जसुमति कनक थार भी लावे ।
दारिभात मिरचन को साग, हित सों रोहिन कीनों पाग ।
दूध भात अति मोकूँ भावे, डबरा भरि भरि जसुमति लावे ।
यह विधि लालन भोजन कीनो, मात जसुमति को सुख दीनों ।
कर व्यारू उठे मनमोहन, लागि रही जसुमति अति गोहन ।
ओट्यो दूध कपूर मिलाइ, डबरा भरि के रोहिन लाई ।
इच्छा भोजन करि सुख पायो, तब पानी आचवन करवायो ।
अति सुगंध बीरी मुख धरी, पुष्पमाल ले श्री कंठे धरी ।
करी आरती श्री मुख वे देख्यो, अपनो जन्म सुफल कर लेख्यो ।
रुनझुन करत अंगुरिया गहे, मात जसुमती सब सुख लहे ।
सुख सज्या पोढे हरिराय, चांपत चरण जसोदा माय ।
भांत भांति को कहानी कहें, हरि हुँकारी फिर फिर लहे ।
निस लीला कह्यो कैसे कहें, सो तो निज मन में लहे ।
नंद भुवन की लीला कहे, मनुष्य देह धरी सब सुख लहे ।
श्री गिरवरधर की लीला गावे, 'रसिक चरण' कमल रज पावे ।

(हरिराय जी कृत नित्य लीला सम्पूर्ण)

ऊपर श्री हरिराय जी कृत नित्य लीला का एक पद उद्धृत किया गया है । उसके आधार पर पुष्टि मार्ग की नित्य सेवा भावना का कुछ आभास मिलता है । प्रातःकाल से लेकर शयन पर्यन्त तक इसमें सेवा भावना को मन में स्थिर करने की एक सरस और हृदय ग्राह्य पद्धति का सहारा लिया गया है । सेवा में प्रधान भाव 'बालभाव' है किन्तु गोपीजन के सम्बन्ध से उसमें 'किशोरभाव' की भावना आप से आप आ जाती है । प्रातःकाल के चार भोग हैं और तीन आरती हैं । इसमें जिस प्रकार ब्रज में प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन ब्रजबनिताएं पहले मंगलगीत गाती हैं और वस्त्र इत्यादि सुधार कर अपनी मथनी धोकर अपना दही सुधारती हैं और श्रीकृष्ण के गुण-गान करती हुई उसे मथकर मक्खन निकलती हैं, उसी प्रकार की भावना की गई है । जैसे—ये ब्रजबनिताएं उस समय अपना सद्य नवनीत, मिश्री और दूध तथा कुछ पकवान और खिलौना व वस्त्र लेकर नंद यशोदा की कानि से श्री कृष्ण को प्रातःकाल जगाने जाती होंगी, उसी प्रकार आज अपनी बालभाव की उपासना को साकार करते हुए सेवक मंदिर की ओर प्रस्थान करता है । जैसे उस समय माता यशोदा कृष्ण को बार-बार इच्छा रहते हुए भी सोने देती होंगी, वही वात्सल्य की कल्पना इस पद में की गयी है । पीछे से जब दर्शन करने वाली गोपिकाएं आने लगती होंगी तो उनमें से किसी एक के या अधिक के नूपुरों की झनकार से बालक कृष्ण स्वयं जाग जाते होंगे, वही भाव यहाँ घंटा नाद में है ।

इस पद में 'विथुरी अलक' और 'विनगुन माला'-दो शब्द बड़े सुन्दर और सरस हैं ।

शयन से बाल बिखर ही गए हैं, पर विनगुन की माला तो श्री स्वामिनी जी की माला का अंकित चिह्न मात्र है। पीछे से भोग में रक्खी गई सभी सामग्री उसी भाव से भेंट हुई और बालक कृष्ण का श्रृङ्गार आरम्भ हो गया है। इसमें अपनी-अपनी भावना के अनुरूप सभी गोपीजन सेवा में उपस्थित रहती हैं। कोई जल, कोई वस्त्र और कोई तेल से सेवा करती है और विविध आभूषण पहनाती हैं। इतने में राधा जी भी वहां आ गई और साग्रह उनका श्रृङ्गार कराया गया है। फिर युगल की छवि की सराहना गोपीजनों ने की है और उन दोनों को अपनी अपनी छवि देखने के लिये आरसी दिखाई गयी है और दोनों की छवि पर सभी गोपीजन अनुरक्त हुए हैं। श्रृङ्गार की भावना का रहस्य भी यही है। जिस घर में गोकुल-चन्द्रमा जी ठाकुर जी विद्यमान है (कामवन) वहाँ श्रृङ्गार 'आरती' भी होती है। शेष घरों में केवल दो आरतियाँ होती हैं। जाड़े के दिनों में प्रतिदिन चार बजे प्रातःकाल मंगला आरती हो जाती हैं पर उत्सव के दिन दो घंटे पहले जागने का नियम है। श्रृङ्गार आरती इसके पश्चात् लगभग ६ बजे जाड़े के दिनों में हो जाती है। इसके पश्चात् ग्वालभोग का प्रबन्ध होता है और उसमें 'घैया' (दुग्धफेन) आवश्यक हैं। शेष वस्तुएं सब ऋतुओं के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। इस ग्वाल-भोग की भावना में भी बाल-भावना का ही प्राधान्य है। किशोर भावना की तो केवल कहीं-कहीं झलक मात्र है। इसी बाल-भाव के अनुरूप ही श्रीनाथ जी सखाओं के साथ, खिरक, खोरि, गिरि और गह्वर में खेलते फिरते हैं। उत्सव के दिनों में ग्वाल भोग के दर्शन नहीं खुलते हैं।

•

ग्वाल भोग के पश्चात् 'राजभोग' की भावना में वात्सल्य भाव की इससे अधिक गहरी भावना का रूप प्रगट किया गया है। इसमें उत्तम भोजन के लिये माता और पिता दोनों उस सुख को लूटते हुए दिखाये गए हैं जो सुर, मुनि सबके लिए दुर्लभ है और इस भोग के पश्चात् विश्राम की व्यवस्था है जहाँ गोपीजनों ने अपनी-अपनी भावना के अनुरूप फूलों की सेज सजाई है। इस पद में तो केवल नंदालय की भावना का उल्लेख है, पर 'राजभोग' की भावना में दो और भावनाओं का उल्लेख वार्त्ता साहित्य और साम्प्रदायिक साहित्य में मिलता है। जाड़े में तो माता यशोदा और रोहिणीजी राजभोग देने के पश्चात् ही बालकृष्ण को बाहर जाने देती हैं, पर उष्ण काल में इस भोग को 'छाक' के रूप में ब्रज भक्तों द्वारा वन में भेजा गया है। राजनगर के एक सेठ की वार्त्ता भावप्रकाश में इस प्रकार लिखी है— 'कि यामे यह जतायो, जो वैष्णव कों भगवत सेवा ब्रज-भक्तन के भाव सों करनी। ताते निरोध सिद्ध होई और भोग धरे पाछे समयानुसार आरोगवे की भावना करनी। सो कैसे ? जैसे सीतकाल होइ तो नंदालय में ठाकुर भोजन करत हैं। कबहुँक ब्रजभक्तन के घर न्योते हैं, तहाँ भोजन करत हैं। या प्रकार भाव विचारनो। उष्ण काल में छाक की भावना करनी। श्री यमुना पुलिन, सघन वन, स्याम ढांक आदि ठौर में ठाकुर गाय चरावत हैं। तहाँ सखा मंडली सहित प्रभु हास्य विनोद करत हैं। ता समै आपको क्षुधा लागी है। सो वृक्षन में चढ़ि कै घर की छाकहारीन को देखत हैं। कबहुक छाकहारी पेड़ों भूलि जात है। सो प्रभु आपु वेणु बजावत हैं। ता मारग अनेक छाकहारी सीस पै सामग्रीन के डला लै लैकै ता ठौर आवति है। तहाँ और हू अनेक ब्रज-भक्तन के घर की छाक आवत है। तब श्री ठाकुरजी सखान को अपनी जूठन देत हैं। तहां अनेक प्रकार के खेल होत हैं। कबहुक छीनत हैं, झपटत हैं, कबहुक हास्य विनोद करत हैं। संकेत होत हैं। या प्रकार अनेक

भावना करनी ।[1] और इसके अतिरिक्त गोपीजन और ग्वाल भी अपनी इच्छानुसार माता की आज्ञा से राजभोग के लिये अपने घरों पर आमंत्रित करते बताए गए हैं ।

इसके पश्चात् 'उत्थापन' का समय होता है जिसमें या तो नंदालय में विश्राम के पश्चात् जगने की भावना है अथवा गिरिराजजी की कंद्रा में विश्राम करके लौटने की। इसमें 'गोरज मंडित' मुख और गौरी राग की वंशी ध्वनि, संकेत, तथा 'अतिबिरही सब ब्रज की वाला, मेरि लिये नंदलाल' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस समय के भोग में फलों की प्रधानता है । यह भोग कंदरा में चार बजे के लगभग और मंदिर में साढ़े तीन बजे लग जाता है ।

इसके पश्चात् वन से लौटते हुए मार्ग ही में संध्या भोग की भावना है । इसमें फीकी चीजें अर्थात् बेसन की मठड़ी या टिकिया आती हैं। भोग के पश्चात् सन्ध्या आरती होती है और फिर स्नान और शृङ्गार के पश्चात् शयन भोग और शयन आरती होती है। गर्मी के दिनों में शयन दिए जलने से पूर्व हो जाना आवश्यक है । इसलिये यह भोग और आरती उससे पहले हो जाते हैं । जाड़े में शयन दिये बत्ती के बाद होती है । इसलिये यह और भोग दोनों कुछ देर से होते हैं । वर्षा के दिन तो उत्सव के दिन हैं । इसलिये उन दिनों का कार्य-क्रम ही अलग है । उष्णकाल में दिया बत्ती से पूर्व शयन का क्रम इस कारण से है कि दिया देखने से गर्मी अधिक लगती है । इस ऋतु में गहरे रंगीन वस्त्र और जवाहरात के आभूषण तथा जरी का बागा इत्यादि किसी भी वस्तु का प्रयोग सेवा में नहीं होता है । गोविंद स्वामी जी की वार्त्ता (वार्त्ता संख्या २४७ प्रसंग १६ दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता) में लिखा है कि केशोराय को जरी का बागा पहने देखकर गोविन्द स्वामी ने पूंछा कि महाराज अच्छे तो हो । इस पर श्री गुसांईजी ने कहा कि ऐसा नहीं कहना चाहिये तो गोविन्द स्वामी ने कहा कि इन्होंने तो बीमार आदमी के से कपड़े पहन रक्खे हैं ।

इस प्रकार नंदालय की दैनिक सेवा-भावना में बाल-भाव का वात्सल्य है, माधुर्य है और कोमलता है । साथ ही गोपीजनों के सम्पर्क के द्वारा उसमें किशोर भावना का भी साहचर्य है । इस दैनिक सेवा-भावना का पालन प्रत्येक बड़े मंदिर में तो होता है । प्रत्येक पुष्टि मार्गी वैष्णव भी अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपने घर में और जीवन में प्रतिष्ठित इसी भाव की रक्षा, पोषण और विस्तार करता है ।

इसी प्रकार 'उत्सव की,' 'त्यौहार की' 'पर्व की', ऋतुन की अलग-अलग भावनाएं और क्रियाएं सम्प्रदाय में हैं ।

---

१. राजनगर के सेठ की वार्त्ता का भावप्रकाश ।

वार्त्ता साहित्य में व्यक्तित्व की झलक

जीवनी साहित्य

वार्त्ता साहित्य की अन्य विशेषता यह है कि इसमें दिये हुये भक्तों के नाम, घटनाओं और विवरणों के आधार पर हम उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में एक निश्चित धारणा बना सकते हैं, और फिर उसकी तुलना इतिहास में प्रचलित उस व्यक्ति के व्यक्तित्व से कर सकते हैं। अपने इस प्रकार के उदाहरणों के कारण यह साहित्य हमें एक शैली विशेष पर जीवनी साहित्य की सामग्री प्रदान करता है जो अपने ढंग पर है और अपने स्थान पर बहुमूल्य है। श्रीनाथ जी के प्राकट्य की वार्त्ता से हमें श्री महाप्रभु जी के इष्टदेव के प्रकट होने के समय से लेकर के मेवाड़ पधारने तक का इतिहास मिल जाता है। श्रीनाथजी की इस वार्त्ता में ही सद्दू पांडे, गौडिया माधवानन्द, पाथोगूजरी, खेमो गूजरी, भोड़ालियां पांडे, चतुरानागा, पूरनमल क्षत्री, हीरामणि मिस्त्री का उल्लेख है और यह बताया गया है कि श्रीनाथ जी की इन लोगों ने किस प्रकार सेवा की है और पुष्टि मार्ग के संस्थापक महाप्रभु जी के साथ, उनके इस पवित्र कार्य में इन्होंने किस प्रकार का और कितना योग दिया है। इस वार्त्ता में ही श्री महाप्रभु जी के स्वधाम पधारने का उल्लेख हैं। उनके पुत्र गोपीनाथ जी के उत्ताराधिकारी होने की सूचना है। उनके पुत्र पुरुषोत्तम जी के निधन का समाचार है और फिर स्वयं श्री गोपीनाथ जी के लीला-धाम में पधारने का विवरण है तथा श्री गुसांई विट्ठलनाथ जी के गद्दी पर बैठने का प्रमाण है। श्रीनाथ जी की प्राकट्य की वार्त्ता होने के कारण इसमें इन घटनाओं का उल्लेख प्रसंगवश ही है। मूल विवरण तो श्रीनाथ जी की सेवा से ही सम्बन्धित है, पर ये घटनाएं और व्यक्ति पुष्टिमार्ग के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। अतः इनके ये उल्लेख उनके महत्व के सूचक हैं। जैसे इसमें प्रसंग ५९ में श्रीनाथ जी का रूपमंजरी के साथ चौपड़ खेलने का उल्लेख है और प्रसंग ६० में अकबर की बीबी ताज का प्रसंग है। प्रसंग ६२ में कल्याण ज्योतिषी की कथा है। प्रसंग ७६ में जलघरियां सेवा और सभा का अलौकिक पराक्रम है। इसके अनन्तर श्रीनाथ जी के मेवाड़ पधारने से पहले आगरे पधारने का महत्वपूर्ण उल्लेख है। फिर लिखा है कि दंडौतीधार से श्री जी बूंदी पधारे, वहां से पुष्कर जी, पुष्कर जी से कृष्णगढ़, वहाँ से बीसलपुर, फिर चांपासेनी (जोधपुर) से फिर मेवाड़। इस प्रसंग में औरंगजेब की चढ़ाई का भी वर्णन आ जाता हैं। गोविन्ददास द्वारा सूरजपोर (पोर = द्वार) बनवाने का भी उल्लेख है।

निजवार्त्ता, घरूवार्त्ता में श्री महाप्रभु जी और श्री गुसांई जी और उनके वंशजों के सम्बन्ध में अनेक सूत्रों के अनुसार गोपीनाथ जी लीलाधाम पधारे हैं। फिर पुरुषोत्तम जी। नाथद्वारे की नोंध तथा संवाद से भी ऐसी सूचनाएं मिलती हैं। जिनके आधार या जीवन वृत्त को संग्रह करने में सहायता मिलती है तथा उनकी अलौकिक सामर्थ्य प्रगट होती है। इन घटनाओं का उल्लेख इन महापुरुषों तथा अन्य सेवकों के जीवन वृत्त में अन्यत्र हैं और इतिहास से उनकी तुलना करके वार्त्ता साहित्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए इन

प्रसंगों की सहायता ली गई है। यहां एक प्रसंग निजवार्त्ता में से उल्लेख करना आवश्यक है। इस प्रसंग में लिखा है कि उस समय दिल्ली का शासक सिकन्दर लोदी था और उसके प्रधान रुस्तमअली ने मथुरा पर हिन्दुओं के धर्म के नष्ट करने के लिए कोई यंत्र बाधा कर रक्खी थी जिसे श्री महाप्रभुजी ने दिल्ली में बासुदेवदास और कृष्णदास को भेज कर दूर करवाया। यह घटना ही इस बात का प्रमाण है कि श्री महाप्रभु जी का व्यक्तित्व कैसा था और लोक कष्ट के प्रति उनकी क्या धारणा थी। इन्हीं वार्त्ताओं के आधार पर श्री गुसांई जी के साहस, श्री गोकुलनाथ जी के मालाप्रसंग पर उनका सत्याग्रह आदि के सम्बन्ध में मत निर्धारित कर सकते है। वार्त्ताओं में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे इन महानुभावों की विद्वता और राजनीतिक क्षेत्र में सम्मान प्रगट होता है। राजपुरुषों का शरण में आना ही उनके महत्व का सूचक है। श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता में श्री आचार्यजी के पूर्व पुरुषों की नामावली दी हुई है। इसके अतिरिक्त विद्यानगर के शासक श्री कृष्णदेव का नाम और उनका विद्या और दर्शन में प्रेम का उल्लेख मिलता है। इस वार्त्ता की विद्यानगर के कनकाभिषेक की कथा भारतीय धार्मिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है और आचार्य श्री के जीवन पर और उनके पांडित्य पर इससे तथा कनकाभिषेक से बहुत बड़ा प्रकाश पड़ता है। इसी वार्त्ता में ग्वालियर के राजा राय भद्रनारायण का उल्लेख है और ओड़छे के श्री रामचन्द्र का। इसी वार्त्ता में श्री महाप्रभुजी का दूसरे महाप्रभुजी श्री कृष्ण चैतन्य से मिलाप दिखाया गया है। इन इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों को छोड़कर इस वार्त्ता में अनेक ऐसे व्यक्तियों के नाम हैं जिनका इतिहास में उल्लेख प्राप्त नहीं है। पर सम्प्रदाय में उनकी मान्यता है। सद्दू पांडे, दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास इत्यादि। ८४ वैष्णवों की वार्त्ता और दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जिनको कवि बनाया गया है और जिनके पदों का सम्प्रदाय में प्रचलन है, पर उनका प्रचार हिन्दी साहित्य में उतना नहीं है जितना कि होना चाहिये।

'वार्त्ता के भक्त कवि' शीर्षक में हम इनके जीवन और काव्य के सम्बन्ध में वार्त्ता साहित्य में जो सामग्री मिली है, उस पर विशेष रीति से लिखा गया है। यहां यही कहना पर्याप्त होगा कि इस सामग्री के आधार पर उनमें से अनेक के नाम प्राप्त हुए हैं। उनके ग्रंथों के नामों का पता चल सका है और इसी के आधार पर यदि प्रयत्न किया जावे तो जैसा प्रामाणिक अध्ययन डाक्टर दीनदयालु जी ने अष्ट छाप का प्रस्तुत किया है, वैसा बहुत से कवियों का किया जा सकता है। इसी प्रकार षटऋतु वार्त्ताओं में श्री महाप्रभुजी और श्री गुसांई जी के जीवन के अनेक महत्वपूर्ण प्रसंग आए हैं। इस वार्त्ता में लिखा है कि श्री महाप्रभु जी के पिता श्री लक्ष्मण भट्ट जी का शरीर वालाजी की यात्रा में वहीं छूटा है। इस वार्त्ता में महाप्रभु जी की यात्राओं का भी उल्लेख है। श्री बैठक चरित्र में चौरासी प्रसिद्ध बैठकों का जो विवरण दिया है उनमें से अधिकांश में उन्हीं स्थानों का उल्लेख है जहाँ महाप्रभु जी ने या तो कोई अलौकिक चमत्कार दिखाया है या श्रीमद्भागवत का पारायण किया है। ये चमत्कार एक बलिष्ठ व्यक्तित्व के द्योतक हैं और जीवन सामग्री को क्रमबद्ध करने में लेखक की सहायता करते हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता व दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में से आनन्ददास वार्त्ता संख्या ४८, अच्युतदास वार्त्ता संख्या ६१ अच्युतदास गौड़ वार्त्ता ६२, अच्युतदास सारस्वत कड़ा वाले वार्त्ता ६३, ईश्वर दुबे सांचोरा वार्त्ता ४४, कृष्णदास मेघन वार्त्ता २, कृष्णदास स्वामी वार्त्ता १०, कीरत चौधरी

वार्त्ता २६, केशव भट्ट वार्त्ता ३२, कृष्ण भट्ट वार्त्ता ३५, कृष्णदास वार्त्ता ४६, कृष्णदासी वार्त्ता ५२, कन्हैयालाल वार्त्ता ७७, कृष्णदास ब्राह्मण ८२, गज्जनधावन वार्त्ता २, और १८, गोपालदास बेटा पुरुषोत्तमदास वार्त्ता ६, ११, गदाधरदास वार्त्ता १३, गोविन्ददास भल्ला वार्त्ता १६, गुसांईदास सारस्वत ब्राह्मण वार्त्ता ३१, गोपालादास बांसवाडा वार्त्ता ३३, गरासिया राजपूत वार्त्ता ३६, गोविंद दुबे सांचोरा वार्त्ता ४१, गोपालदास आगरा के वार्त्ता ४५, गोरजा वार्त्ता ५१, गोपीनाथ जी वार्त्ता ६५, गुडस्वामी सनाढ्य वार्त्ता ७६, गोपालदास जटाधारी, ग्यानचन्द बनिया वार्त्ता ८३, गोपालदास नरोड़ा वाले वार्त्ता ८६, जीवदास वार्त्ता २०, २१ जगतानंद सारस्वत ब्राह्मण सीहनंद के वार्त्ता ४७, जीवनदास क्षत्री कपूर सीहनंद के वार्त्ता ५८, जनार्दनदास चौपड़ा वार्त्ता ७५, तुलसा वार्त्ता ४, त्रिपुरदास कायस्थ शेरगढ़ के कवि, वार्त्ता २८, इत्यादि ६५ सेवकों के जीवन की किसी एक घटना का उल्लेख मिलता है जिससे उनके आचरण की दृढ़ता या पुष्टि मार्ग में उनके सेवा-भाव व अनन्यता या गुरु-भक्ति प्रगट होती है। इन व्यक्तियों ने जीवन को जिस दृढ़ता से पुष्टि मार्ग की कसौटी पर कसकर खरा प्रमाणित किया था इसका वार्त्ता को छोड़कर इनके सम्बन्ध का और कोई विवरण कहीं मिलता ही नहीं है। जहाँ कहीं भी इनके सम्बन्ध में जो कुछ और लिखा गया है वह सब वार्त्ता साहित्य के उद्धरण मात्र है। जैसे, सूरदास के सम्बन्ध में सभी लेखकों ने वार्त्ता का उद्धरण देकर उनका सम्बन्ध रेनुका और गऊघाट से जोड़ा है। ८४ वैष्णवन की अपेक्षा दोसौ बावन के इन व्यक्तियों की सूची और भी लम्बी है जिनके सम्बन्ध में वार्त्ता साहित्य में प्राप्त सामग्री के आधार पर उनके व्यक्तित्व का अनुमान किया जा सकता है या इतिहास से उनकी संगति बिठाई जा सकती है। दोसौ बावन में श्री गुसांईजी से लेकर बादशाह अकबर, बीरबल, टोडरमल, आशकरण, अजवकुँवर बाई, मीराबाई, जोतसिह जैमल, अलीखान, तानसेन, वाजबहादुर, लाछाबाई के अतिरिक्त श्री नागजी भट्ट पुरुषोत्तमदास, मुरारीदास, ज्ञानचन्द, रूपचन्द नंदा, हृषीकेश, दाउद (गौड़ देशी) आदि नामों का उल्लेख है और उनका वल्लभ सम्प्रदाय से सम्बन्ध दिखाया गया है। यह तो वे नाम हैं जिनके नाम दिए हैं इसके अतिरिक्त एक और बनिया, एक चूड़ा एक सेवक की न जाने कितनी वार्त्ताएँ हैं जो उनके जीवन के ऐतिहासिक अंश को छुपाते हुए भी उन्हें सम्प्रदाय के इतिहास में मान्यता प्रदान करती है। इस प्रकार वार्त्ता साहित्य से जो ऐतिहासिक और जीवन और व्यक्तित्व सम्बन्धी सामग्री हमें प्राप्त हो रही है उसके दो या तीन भाग कर सकते हैं। एक वह जिसे इतिहास का समर्थन प्राप्त है, दूसरी वह जिसका पुष्टि मार्ग में विशेष महत्व है और तीसरी वह जिसका लौकिक अंश अज्ञात है, पर पारमार्थिक अंश महत्वपूर्ण है। तभी तो इनको वार्त्ताओं में स्थान मिला है अन्यथा इस माला में इन्हें क्यों पिरोया जाता। इनके नाम न लिखने का कारण श्री हरिरायजी ने अपने भावप्रकाश में इस प्रकार दिया है—'अब जहाँ तहाँ नाम श्री गोकुलनाथजी नाहीं कहे सो माता पिता हीन नाम राखें, काहू कों फकीरा, घसीटा। सों वैष्णव सों हीन नाम श्री गोकुलनाथजी कहते नाहीं। तातें कोई वैष्णव को नाम प्रगट नाहीं किये।'

(८४ वैष्णवन की वार्त्ता पृष्ठ ४५१ एक क्षत्राणी की वार्त्ता)

यह विचारे नाम से अप्रगट होकर भी अपने आचरण और करनी द्वारा सारे वैष्णव समाज में वार्त्ताओं द्वारा प्रसिद्ध पा गए हैं और इनके व्यक्तित्व का अनुमान इनके आचरण के

के आधार पर किया जाता है। यही इनकी भावना है। वार्त्ताओं में जीवन सम्बन्धी सामग्री अधिक है, पर वह पुष्टि सिद्धान्त की ओट में छिपी है और उस रस में रंगी है। वार्त्ताएं इस दृष्टि से शुद्ध जीवनियां नहीं हैं वरन् 'धार्मिक चरित्र' हैं। इनमें व्यक्ति के नाम और स्थान को प्रधानता न देकर उसके आचरण को प्रधानता दी गई है और वह भी श्री महाप्रभु जी और श्री गुसांई जी के द्वारा प्रचारित सिद्धान्त की पुष्टि रूप से। वार्त्ताएं यह निश्चय पूर्वक सूचित करती हैं कि पुष्टि सिद्धान्त और मार्ग के पथ-प्रदर्शकों और अनुयायियों के जीवन में ऐसा कोई आकर्षण अवश्य था जिसने उनके पीछे बहुतों को चला दिया और राजा से लेकर रंक तक को प्रभावित किया। वार्त्ताओं का महत्व इस प्रकार की सामग्री के प्रस्तुत करने के कारण भारतीय सांस्कृति और धार्मिक क्षेत्र में अधिक है।

वार्त्ता द्वारा प्राप्त राजमार्गों की रूप रेखा

(१) सूरत से आगरा अहमदाबाद होकर, (२) भड़ौंच २२ कोस, छिंदाबाद या सैयदाबास ६ कोस, (३) बड़ौदा २२ कोस, (४) बड़ौदा से नड़ियाद २२ कोस, (५) अहमदाबाद ५ कोस, (६) अहमदाबाद से पानसिर, (७) मेसाना १४ कोस, (८) सिद्धपुर १४ कोस, (९) पालनपुर १२ कोस, (१०) दतवारा ११ कोस, (११) बनगांव १७ कोस, (१२) भीनमल १५ कोस, (१३) भोदरा १५ कोस, (१४) जालोर १० कोस, (१५) खंबाह १२ कोस, (१६) सुतुलाना १५ कोस, (१७) प्लावशनी १४ कोस, (१८) पिप्पर ११ कोस, (१९) भेरना १६ कोस, (२०) बरौदा १२ कोस, (२१) कोहशील १८ कोस, (२२) सिवरीबंदर १४ कोस, (२३) लड़ौना १६ कोस, (२४) चकसऊ १७ कोस, (२५) लुभाली १६ कोस, (२६) हिंडौन १० कोस, (२७) वियाना १४ कोस, (२८) फतहपुर-सीकरी १२ कोस, (२९) आगरा ।

कंधार से काबुल और लाहोर से आगरा

(१) सहरे सफा १० कोस, (२) कलात १२ कोस, (३) अवेताजी ८ कोस, (४) मंसूर ६ कोस, (५) कड़ाबाग १७ कोस, (६) सिधनऊ १७ कोस, (७) काबुल ४० कोस (८) बड़ीकाव १६ कोस, (९) निमालाबाग १७ कोस, (१०) अलीबागान १९ कोस, (११) टाका १७ कोस, (१२) खैवरी ६ कोस, (१३) पेशावर १४ कोस, (१४) नौशेरा १४ कोस, (१५) अटक १६ कोस, (१६) काला की सराय (तक्षशिला) १६ कोस, (१७) रावत १६ कोस, (१८) तेलपुरी १६ कोस, (१९) सराय आलमगीर १९ कोस, (२०) बजीराबाद १६ कोस, (२१) इनामाबाद १८ कोस, (२२) लाहौर १८ कोस, (२३) अमानतखाँ १२ कोस (२४) फतहाबाद १५ कोस, (२५) शेरादकन १५ कोस, (२६) शेरावैलूर १५ कोस, (२७) शेरादुर्राई १२ कोस, (२८) सरहिन्द १७ कोस, (२९) सरायमुगल १५ कोस, (३०) सराय शहाबाद १४ कोस, (३१) दिरौल १७ कोस, (३२) करनाल १४ कोस, (३३) गन्नौर २९ कोस, (३४) देहली २४ कोस, (३५) वादेलपुरा (वुडुरपुरा) ८ कोस, (३६) पलवल की सराय १८ कोस, (१७) कोटवरन १५ कोस, (३८) शेख की सराय १६ कोस, (३९) गोद की सराय ५ कोस, (४०) आगरा ६ कोस

आगरा से पटना

(१) फिरोजाबाद ९ कोस, (२) सराय मुरलीदास, ९ कोस, (३) इटावा १४ कोस, (४) अजीतमल १२ कोस, (५) सिकन्दरा १३ कोस, (६) संकुल (मूसागनर के पास) १४ कोस, (७) सराय शहजादा १० कोस, (८) सराय अतांखां १३ कोस, (९) औरंगाबाद ९ कोस, (१०) सराय अलमचंद ९ कोस, (११) इलाहाबाद ९८ कोस, (१२) बनारस ४६ कोस, (१३) बहादुरपुर २ कोस, (१४) खुरमाबाद २२ कोस, (१५) सहसराम ४ कोस, (१६) रोहतास, (१७) दाऊद नगर, (१८) पटना ।

सूरत से आगरा बुरहानपुर से ३३९ कोस

(१) सूरत, (२) बारडोली १४, (३) बालौर १०, (४) करकुआ ५, (५) नवपुर १५, (६) नंदुरवार ९, (७) डोल मैदान २४, (८) सिंदकेर ७, (९) तालनेर १०, (१०) चोपड़ा १५, (११) सांवली १३, (१२) तनीर १०, (१३) बलैदा, (१४) बलदेवपुरा ९, (१५) बरहानपुर ५, (१६) मंडावर ३, (१७) वालमीसराय ५, (१८) नवल की सराय ५, (१९) चैनपुर ८, (२०) छारवा ८, (२१) बिचौला ८, (२२) हिन्दीया, (२३) नौशेरा (२४) इच्छावर, (२५) सीहोर, (२६) शेखपुरा, (२७) दुराहा (२८) हाती खेरा, (२९) दिलौत, (३०) सनकरिया, (३१) सिरोज, (३२) मुगल सराय, (३३) करला बाग, (३४) अकई (३५) कोलारस, (३६) गाटे, (३७) नटवर, (३८) आंतरी, (३९) ग्वालियर, (४०) कुआरी सराय, (४१) धौलपुर, (४२) जाजऊ, (४३) आगरा।

वार्त्ता रहस्य

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता—

दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन—वार्त्ता संख्या (१) पुष्टि भक्ति, रहस्य, मर्यादा, (२) पुष्टिभक्ति, अलौकिक सामर्थ्य, व्यसन अवस्था, (६) मानसी सेवा (४) मानसी सेवा, (५) स्मरण, (६) जाति में भेद नहीं समर्पण, (७) शैव और वैष्णवों में मतभेद, (८) सेवा, (९) विरह, (१०) अहंकार, (११) अव्यावृत सेवा, (१२) अपनी सत्ता का अंगीकार, (१३) पुष्टि भक्ति, (१४) सामाजिक, (१५) व्यसन अवस्था, (१६) त्याग-भगवत् सुख, (१७) स्वरूप की विशेषता, (१८) कथा, (१९) ऐतिहासिक, ब्रज का स्वरूप, (२०) अन्याश्रय, (२१) गुरू और ईश्वर में अभेद शुद्धि, (२२) अनन्य टेक, (२३) अलौकिक सामर्थ्य, (२४) महाप्रभुजी का स्वरूप, (२५) पुष्टिमार्गीय धर्म का स्वरूप, (२६) विपरीत भावना का त्याग, (२७) मर्यादा पुष्टि का स्वरूप, (२८) अलौकिक सामर्थ, (२९) मार्ग मर्यादा, (३०) सेवा, (३१) वैष्णव महिमा, (३२) अनन्यता, (३३) मंदिर का स्थापत्य, (३४) विरुद्ध वचन, मुखरता का दोष, (३५) आचार प्रणाली, (३६) गुरू विश्वास, (३७) नित्य स्तुति, (३८) दोष देखना, (३९) गिरिराजजी का स्वरूप, (४०) स्वरूपानन्द, (४१) स्मरण, (४२) बालभाव, (४३) भगवद् आज्ञा, (४४) स्वरूपनिष्ठा, (४५) स्वरूपशक्ति, (४६) भावना प्रकार, (४७) गुरू महिमा, पुष्टि। (४८) पुष्टि, गुरू स्वरूप, (४९) दासत्व, (५०) मानसी, (५१) चरित्र, (५२) मानसी मर्यादा, (५३) वैष्णव सेवा, (५४) सतसंग, (५५) पुष्टिमार्ग, (५६) धन की गुप्तता, पुष्टि विरह ताप, (५७) भक्तबोध, पुष्टि भक्ति, (५८) पुष्टि।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता का रहस्य

वार्त्ता संख्या (१) पट्टा–राज में चाकरी, हुँडी का चलन, (२) अलौकिक भक्ति, सम्प्रदाय में उदयातिथि, (३) माधोदास कवि का उल्लेख–वैष्णव के लिये अभोज्य, (४) इतिहास–दाऊद बादशाह–जासूस, (५) इतिहास पादशाह–बंदीखाने की भोजन व्यवस्था, (६) कोड़े पड़ना–बंदी के प्रति व्यवहार, (७) इतिहास–देशाधिपति, (८) काबुल से व्यापार, (९) कवि–'सहस्त्र नाम' के रचयिता, (१०) इतिहास–बीरबल–फतेहपुर सीकरी–लाछाबाई–बाजबहादुर, (११) कवि–उगार–लेने वाले, (१२) कवि–आगरे के, (१३) चुंगी–

१५० रुपया महीना, ढाके की मलमल पर, (१४) भक्त, (१५) धन के प्रति उदासीन रहने की शिक्षा, (१६) धनहीन का सम्मान। (१७) रूपचन्द नन्दा ने गुसांईजी को घोड़ा दिया, (१८) फूलों की सेवा करते। (१९) ऐतिहासिक–टोडरमल–बादशाह।

भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण— (२०) सेवक—सिंहद्वार–खरिक–गुजराती भाषा, (२१) धनी निर्धन का भेद नहीं। (२२) भाव भक्ति, (२३) साधन से सेवा श्रेष्ट है। (२४) भक्ति।

म्लेच्छ के चाकर कृष्णदास–(२५) भक्ति, (२६) इतिहास–जैमल। (२७) पुष्टिमार्ग में श्रद्धा, (२८) शैव वैष्णव विरोध–अलौकिक (२९) यमुना महात्म्य, (३०) अलौकिक, (३१) जहर खाये पति को हरिवंश ने ठीक किया। अलौकिक, (३२) एक रुपया चार दिन चला (आर्थिक)।

गोविन्ददास—(३३) उन्मत्त नृत्यक, (३४) मूर्ति की भावना, (३५) गुसांईजी का चमत्कार, (३६) यवन की दीक्षा, (३७) शाक्त वैष्णव विरोध, (३८) गुसांईजी बालक के समान सरल हैं। (३९) भावना प्रेममय ही प्रत्यक्ष हुई, (४०) गुसांईजी की महानता वेश्यागामी को न भूले। (४१) वैष्णव का अन्याश्रय, (४२) प्रेम का रहस्य, (४३) फूल सेवा, (४४) नाक काटना, (४५) वन यात्रा का महत्व-सरजादपुर, (४६) सानुभावता, (४७) वनयात्रा, (४८) सिद्धान्त रहस्य की व्याख्या, (४९) धनाढ्य बिरक्त, (५०) सत्कर्म की सराहना और भगवद् सहायता, (५१) सत्संग महिमा, (५२) कढ़ाई से राजस्व, (५३) निर्धन का महत्व, (५४) 'भूमियों' रास्ते की लूट (सामाजिक) (५५) ज्ञानचन्द के घर गुसांई जी ठहरते थे। (५६) धारूदेश के राजा-जौनपुर (इतिहास), (५७) गोवर्धननाथजी की कृपापात्र, (५८) 'धोबी ठाकुर' का महत्व, (५९) मारवाड़ का राजा जिसने मन्दिर बनवाया था। (६०) वाद-विवाद और प्रेत उद्धार, (६१) कृष्ण लीला का महत्व, (६२) दया 'भवैया' (६३) दो बार नाम पाना-भक्त के छोटे से बड़ी उद्धार, (६४) गंगाबाई की आसक्ति, (६५) पंढरपुर के जोतसिंह राजा, (६६) पुरोहित की बुद्धिमत्ता, (६७) एक वैष्णव और तादृशी की कथा पुण्यात्मा से बुद्धिशुद्ध, (६८) मुसलमान का शरण आना-औरंगाबाद, (६९) महद् अपराध-वैष्णव दर्शन प्रभाव, (७०) बेटी का धन अभक्ष्य, (७१) वेश्या कन्या की भक्ति, (७२) वेश्या कन्या की दीक्षा, (७३) अटलनेम-ऐतिहासिक। (७४) बीरबल की बेटी-ऐतिहासिक (७५) गुसाँईजी की भक्त वत्सलता, (७६) अकिंचन भक्ति-गोपाल ने कृपा की, (७७) ज्ञानी पंडित से भिखारी वैष्णव श्रेष्ठ है, (७८) अलौकिक, (७९) वैष्णव का परिश्रम-धन त्याग और अमानी, वैष्णता के नाम पर लाभ न होना, (८०) प्रकृति का मानवीकरण, (८१) वैष्णवता को गुप्त रखने का आदेश, (८२) बालभाव, (८३) वल्लभ सम्प्रदाय और कृष्ण को राम व रामानंदी के मत से ऊँचा, (८४) एक गूजर की बहू का—सख्यभाव, (८५) गुसांई जी के स्वरूप का प्रतिपादन, (८६) सानुभावता पुष्टि भक्ति, (८७) गिरधरजी द्वारा आत्म निवेदन, (८८) वैष्णव की महत्ता, (८९) वैष्णवभक्त बचन का सच्चा व निर्भय होता है-भजन से टल गयी, (९०) मानसी और मंडली का महत्व, (९१) एक बहू ने समस्त कुटुम्ब को वैष्णव बना दिया, (९२) वैष्णव का महत्व-भाग्य के लेख को मिटाना है, (९३) दृढ़ आश्रय, (९४) जूंठन का महाप्रसाद, (९५) आरती से धर्म बढ़ता है, (९६) अतिथि देवोभव, (९७) अजब-कुँवरि बाई-इतिहास (मीराबाई) (९८) मर्यादा मार्ग (पुष्टि

की श्रेष्ठता) (९९) अहंकार वाला व्यक्ति वैष्णव नहीं हो सकता, (१००) निष्ठावान भक्त की वार्त्ता, (१०१) कृष्ण और राम की उपासना में अंतर नहीं है, (१०२) अलौकिक-मुर्दा जिला, (१०३) वैष्णव का महत्व व स्वभाव, (१०४) वैष्णव का संग शुभ होता है, (१०५) अलौकिकता (प्रत्यक्ष प्रसाद ग्रहण), (१०६) कवि-भक्त के चरित्र का वर्णन, (१०७) सेवा का महत्व, (१०८) ब्रज यात्रा, भगवद् भजन का महत्व, (१०९) वैष्णव के धर्म की प्रशंसा, (११०) गुसांईजी ईश्वर थे, (१११) गुसांईजी का व्यक्तित्व, (११२) तानसेन का जीवन वृत्त। (११३) मानसी का महत्व (११४) गुरु सेवा, वैष्णव सेवा, भगवद् सेवा पर प्रकाश, (११५) गुसांईजी का अलौकिक स्वरूप, (११६) म्लेच्छ का शरण, (११७) लौकिक कार्य को ठाकुरजी के सामने कम महत्व देना, (११८) गुसांईजी के व्यक्तित्व का महत्व, (११९) भक्ति के आचरण की दृढ़ता, (१२०) गुसांईजी का त्याग, ब्रज महत्व, (१२१) ऐतिहासिक-मानसी पूजा, तनुजा पूजा, (१२२) ब्रह्म सम्बन्ध की शक्ति, (१२३) वैष्णव पर विश्वास रखना चाहिए, (१२४) ठाकुरजी का महत्व, (१२५) गुसांईजी की विद्वता, (१२६) जूठन-विश्वास, (१२७) परम वैष्णव के आवश्यक गुणों एवं स्वभाव को प्रत्यक्ष किया गया है, (१२८) गुसांईजी का व्यक्तित्व-मायावाद खण्डन, (१२९) सेवा में बिना पूछे परिवर्तन न करना चाहिये, (१३०) गुसाँईजी में विश्वास, (१३१) वैष्णव की अनन्यता, (१३२) अन्याश्रय से हानि, (१३३) जूठन-यमुना जी का महत्व, (१३४) नीचे को शरण, (१३५) जूठन की पत्तल, (१३६) रज का महत्व, (१३७) वैष्णवता से स्नेह-सत्संग की महत्ता, (१३८) सत्संग में निष्ठा। (१३९) सेवा सामग्री का निश्चित रूप है। (१४०) महाप्रसाद का महत्व, (१४१) भक्त की अनन्यता, (१४२) वैष्णव का प्रताप-अलौकिक, (१४३) नाई की वार्त्ता, (१४४) शेरशाह-ऐतिहासिक-पठान का वैष्णव होना, (१४५) जूठन की पत्तल, (१४६) ऐतिहासिक, (१४७) उद्धव तिवाड़ी को सुबोधिनी सुनाई, (१४८) गुसांईजी का महत्व, (१४९) श्रोता वक्ता (सत्संग का प्रभाव-जूठन, (१५०) ऐतिहासिक-सूबा का पता लगे-दर्शन का महत्व। (२५१) सेवा करने वालों को लक्ष्मी की उपेक्षा नहीं, जूठन से कोढ़ ठीक किया है, (१५२) शक्ति पर वैष्णव की श्रेष्ठता, (१५३) वीनकार की कटोरी सोने की—योगक्षेमवहाम्यहम्, (१५४) वस्त्र सेवा, (१५५) जूठन की पत्तल, (१५६) निश्चिन्तन का महत्व, (१५७) तादृशी और भगवदीय का अन्तर। (१५८) गोवर्द्धन के स्वरूप की व्याख्या, (१५९) सात स्वरूपों का भान, (१६०) वैष्णव की प्रसाद में श्रद्धा, (१६१) जूठन से कोढ़ ठीक हुआ है, (१६२) वैष्णव की जूठन से कोढ़ ठीक किया, (१६६) रूपा पौरिया का कुत्ते की योनि में उद्धार, (१६४) नीच का ध्यान, (१६५) तादृशी की रत्न से तुलना।

कान्हबाई -(१६६) वैष्णव का आचार-विचार—सानुभाव, (१६७) अनधिकारी से वार्त्ता नहीं कहनी—ब्रजयात्रा करनी, (१६८) श्री गुसांई जी का महत्व, (१७१) श्री गुसांईजी की सोरों यात्रा, (१७०) खुशबूदार पान खाकर सेवा में जाना, (१७१) कृष्ण का रूप—गुसांई जी का चमत्कार, (१७२) द्रव्य को तुच्छ समझना, (१७३) गुसांई श्री को कोटि कंदर्पमय दर्शन, (१७४) गुसांईजी के व्यक्तित्व का प्रभाव।

कबूतर—(१७५) पशु पक्षी को भी शरण लेना, (१७६) मोह की निन्दा, (१७७) वैष्णव का विश्वास और कुछ न मांगना, (१७८) आशक्ति और व्यसन के भेद, (१७९)

कृष्ण की सूचना देने वाला गुसांई जी को प्रिय, (१८०) गुसांई जी ने पिछले जन्म का हाल बताया है उनका महत्व, (१८१) वैष्णव का संतोष और आस्था, (१८२) वार्त्ता का महत्व, (१८३) प्रकृति का मानवीयकरण, (१८४) अनन्याश्रय, (१८५) वैष्णव पक्षी का व्यवहार भी दूसरे ढंग का होता है, (१८६) पापी और हिंसक को शरण, (१८७) २४ महावनों के नाम तथा अन्य नाम, (१८८) ब्रज यात्रा का महत्व, (१८९) गुसांई जी का महात्म्य, (१९०) अपराधी को शरण, (१९१) जूठन का महत्व, (१९२) निष्किंचन पर दया, (१९३) वैष्णव का प्रभाव, (१९४) ब्रज यात्रा का महत्व-सात स्वरूपों का उल्लेख, (१९५) वार्त्ता करने वाले वैष्णव, (१९६) गुसांई जी के वचन को सत्य मानना, (१९७) वैष्णव सारे गांव का आचार बदल सकता है, (१९८) परकाला भेंट, (१९९) स्त्री पुरुष के समाज में समान अधिकार-स्त्री की वीरता-गुसांई जी को श्रेय देना, (२००) गुसांई जी पूर्व जन्म का हाल बता देते हैं—वैष्णव दैवी जीव हैं, (२०१) सत्संग की महिमा, (२०२) अनन्याश्रय, (२०३) अपरिचित का भोजन न करना, (२०४) ऐतिहासिक-बीरबल।

वार्त्ता का आदेश सूत कातना—(२०५) वैष्णव के तीन स्वरूपों की व्याख्या, (२०६) गुसांई जी का व्यक्तित्व, अनन्याश्रय में मृत्यु नहीं होती। (२०७) मेहतर का दीक्षित होना। (२०८) सामाजिक प्रथा, (२०९) चरखा कातना-भाव का सम्पादन, (२१०) रूपसक्ति, (२११) जूठन-प्रसादी माला-चरखा कातना।

गोप्य सेवा का महत्व, आज्ञा पालन जलता लोहा हाथ में लेना—(२१२) न्याय प्रणाली, (२१३) सतसंग की महिमा, (२१४) वार्त्ता शब्द बातचीत के अर्थ में, (२१५) अधिकारी से बात करना-गोप्य सिद्धान्त की, (२१६) गुसांई जी परमपुरुष हैं, (२१७) मानसी और साक्षात् सेवा में भेद, (२१८) 'उगार' देना-वैष्णव के सतसंग की महिमा, (२१९) ब्रह्म सम्बन्ध विधि, (२२०) विशेषानुग्रह, (२२१) अलौकिक सामर्थ, (२२२) सच्चे वैष्णव के आचरण की सराहना, (२२३) गुप्त भेंट का महत्व।

लाडबाई धारावाई राजपुरुष का सेवक—(२२४) द्रव्य का त्याग, (२२५) ब्रज यात्रा का महत्व, (२२६) सामाजिक—गुसांई जी का महत्व, (२२७) ऐतिहासिक, (२२८) ऐतिहासिक-ग्रंथों का उल्लेख, (२२९) कवि, (२३०) कवि श्री गुसांई जी पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, (२३१) कवि, (२३२) सेवा का महत्व।

पृथ्वीसिंह—(२३३) इतिहास, कल्याणसिंह जलधरिया को पुत्रवत मानना, (२३४) गुसांई जी की उदारता, (२३५) जूठी पत्तल, कवि, ब्रज, (२३६) जूठन, कवि, इतिहास। (२३७) कवि।

नन्ददास छीत स्वामी—(२३८) कवि, (२३९) ऐतिहासिक—बीरबल का उल्लेख।

रसखान—(२४०) कवि—मनुष्य पर आसक्ति, गुसांई जी में गोवर्द्धन पर के दर्शन—(२४१) कवि, गुसांई जी के रूप, (२४२) कवि कीर्तनकार, (२४३) कवि, (२४४) ऐतिहासिक—अकबर बीरबल से भेंट, (२४५) कवि, (२४७) कवि, (२४६) कवि।

वार्त्ता के इस विश्लेषण से उसकी विषय सम्बन्धी विविधता और पूर्णता का एक आभास सहज में मिल जाता है। इससे यह तुरन्त पता चल जाता है कि किस वार्त्ता में कौन से विषय और व्यक्ति की चर्चा की गई है। जिन वार्त्ताओं में इतिवृत्त को छोड़कर अन्य कोई

महत्वपूर्ण तथ्य नहीं मिल सका है उनकी संख्या ४ हैं। इस संख्या को मिलाने से २५२ संख्या पूर्ण होजाती है। यह सारिणी भी यद्यपि अत्यन्त संक्षिप्त है पर वार्त्ता के दोनों महत्वपूर्ण ग्रंथों को विषय की दृष्टि से सम्मुख उपस्थित कर देती है। इन दोनों ग्रंथों का यह विश्लेषण उनके अध्ययन को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक है।

निष्कर्ष

(१) इस प्रबंध में यह सिद्ध किया गया है कि वार्त्ता भारतीय साहित्य में बहुत पुरानी वस्तु है। वार्त्ता प्रचलित कहानी है जिससे किसी उपदेश का ध्वनित होना आवश्यक है, चाहे वह प्रकट हो या परोक्ष। सहजता उसका अपना गुण है। इसके कारण ही वह सुबोध होती है।

(२) कठिन से कठिन विषय भी वार्त्ता का विषय हो सकता है, किंतु वार्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसका विषय अत्यन्त सरलता से प्रस्तुत किया जावे।

(३) इसमें यह सिद्ध किया गया है कि—वार्त्ता का विस्तार उसके कथोपकथन से हुआ है।

(४) वार्त्ता उनके लिए बड़ा सम्बल सिद्ध हुई हैं जो अशिक्षित हैं।

(५) इनके द्वारा श्रेष्ठ वृत्तियों को जगाने में सहायता मिली है।

(६) वार्त्ता साहित्य की सबसे पुरानी प्रति संवत् १६९७ वि० की प्रति है और कांकरौली विद्या विभाग में पुष्टि मार्ग सम्बन्धी अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित हैं।

(७) वार्त्ता साहित्य के प्रसंगात्मक, संख्यात्मक और भावनात्मक तीन रूप प्रचलित हैं।

(८) वार्त्ता के वृत्तों का समर्थन सामयिक साहित्य द्वारा होता है।

(९) भगवदीयों के चरित्रों का गुण-गान ही वार्त्ता साहित्य का मुख्य विषय है। इसके अतिरिक्त, ईश्वरभक्ति, गुरु-भक्ति, वैष्णव भक्ति, दास्य-भावना, शरण-भावना, सख्य-भावना, लीला-भावना, सेवा प्रणाली, ब्रजभूमि और पुष्टि भक्ति का निरूपण भी इनमें किया गया है।

(१०) वार्त्ता साहित्य की मूल प्रवृत्ति धार्मिक ही है। इनमें सत्य, दया, अहिंसा आदि का महत्व बताया गया है।

(११) वार्त्ताएं धर्म गाथाएं हैं और उनकी शैली जातक कथा माला से प्रभावित है।

(१२) वैष्णव वार्त्ता साहित्य की शैली पर राजस्थानी 'बात साहित्य' का भी प्रभाव है।

(१३) वार्त्ता साहित्य में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। इसमें श्री गिरिराज और यमुना तथा अनेक पशु-पक्षियों में वह प्राण प्रतिष्ठा की गई है कि वे सजीव हो उठे हैं।

(१४) भगवद् अनुग्रह ही वार्त्ता साहित्य की भाव भूमि है। 'पोषण तदनुग्रहः' के अनुसार भगवान का पोषण ही पुष्टि भक्ति है। यह अनुग्रह षट् स्वरूप सम्पन्न है। इस मार्ग का रूप लोक वेद विरुद्ध भी है।

(१५) वार्त्ता का भावनात्मक संस्करण 'टीका' नहीं स्वतंत्र ग्रंथ है।

(१६) वार्त्ता की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए समकालीन साक्ष्य वर्तमान हैं और यह प्रमाण अत्यन्त प्रामाणिक है ।

(१७) वार्त्ताएं श्री गोकुलनाथ जी लिखित नहीं हैं, केवल सम्पादित अथवा रचित हैं ।

(१८) इनके आदि लेखक उज्जैन के कृष्ण भट्ट हैं जिनकी पोथी के आधार पर ही इनका विस्तार हुआ है ।

(१९) वार्त्ता के अधिकांश प्रसंग श्री गोकुलनाथजी के समय में ही प्रचलित हो गए थे।

(२०) श्री हरिराय जी को इनके भावनात्मक संस्करण प्रस्तुत करने का श्रेय है ।

(२१) वार्त्ता साहित्य में दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता को पीछे की रचना बताने का कारण डाकौर और बम्बई के प्रचलित संस्करणों की भ्रष्ट प्रतियाँ हैं जो न तो इतिवृत्त की दृष्टि से ठीक हैं और न भाषा की दृष्टि से ।

(२२) वार्त्ता साहित्य की आलोचना और आलोचक शीर्षक के अन्तर्गत इस साहित्य के प्रति किए सभी आक्षेपों का समाधान किया है ।

(२३) चौथे प्रकरण में सभी वार्त्ताओं में से कवियों के नामों और इतिवृत्त का संग्रह किया गया है और सम्प्रदाय में प्राप्त इतिवृत्त से उसकी तुलना की गई है और उनके जीवन वृत्त की पूर्त्ति की गई है । इसी प्रकरण में जिन्हें वार्त्ता में कवि नहीं बताया गया है और जिनके पद सम्प्रदाय में प्रचलित हैं, उनके भी कवि होने का उल्लेख कर दिया गया है तथा उनका जीवन वृत लिखा गया है और उनकी रचना का उल्लेख किया गया है । इनके इतिवृत्त की तुलना साहित्य के इतिहास ग्रन्थों से भी की गई है तथा भक्तमाल में प्राप्त इतिवृत से भी और दोनों में जहाँ भेद है उस पर विचार किया गया है और प्रामाणिक निष्कर्ष निकाले गए हैं । अष्टछाप के कवियों को इसमें स्थान नहीं दिया गया है ।

(२४) पांचवे प्रकरण में वार्त्ता साहित्य के विविध संस्करणों की पाठ और इतिवृत्त की दृष्टि से परीक्षा की गई है और इसके आधार पर डांकौर और बम्बई के संस्करणों की अप्रामाणिकता सिद्ध की गई है और श्री महाप्रभु जी के प्राक्ट्य की वार्त्ता और श्रीनाथ जी के प्राक्टय की वार्त्ता को पीछे की रचना सिद्ध किया गया है । इसमें यह भी सिद्ध किया गया है कि डाकौर और बम्बई के संस्करण दोनों किसी एक ही भ्रष्ट प्रति के आधार पर सम्पादित किए गये हैं ।

(२५) छठे प्रकरण में कवियों के अतिरिक्त अन्य जिन व्यक्तियों का उल्लेख वार्त्ताओं में है उनके जीवन वृत का संग्रह किया गया है और वार्त्ता के उल्लेखों के आधार पर इनका जीवन चरित्र प्रस्तुत करके उसकी समकालीन साक्ष्य से पूर्ति की गई है । इस प्रकरण की पूर्ति के लिए सम्प्रदाय के इतिहास और जनश्रुतियों का सहारा लिया गया है । इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों के वृत्त की परीक्षा अलग से की गई है । यह वृत्त हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

(२६) सातवें प्रकरण में भक्तमाल और वार्त्ता साहिप्य से प्राप्त उल्लेखों की तुलना करके दोनों की परीक्षा की गई है और यह सिद्ध किया गया है कि भक्तमाल के वर्णन वार्त्ता की अपेक्षा संक्षिप्त हैं और पुष्टि संप्रदाय से सम्बन्धित व्यक्तियों के इतिवृत्त के सम्बन्ध में

वार्ता-साहित्य

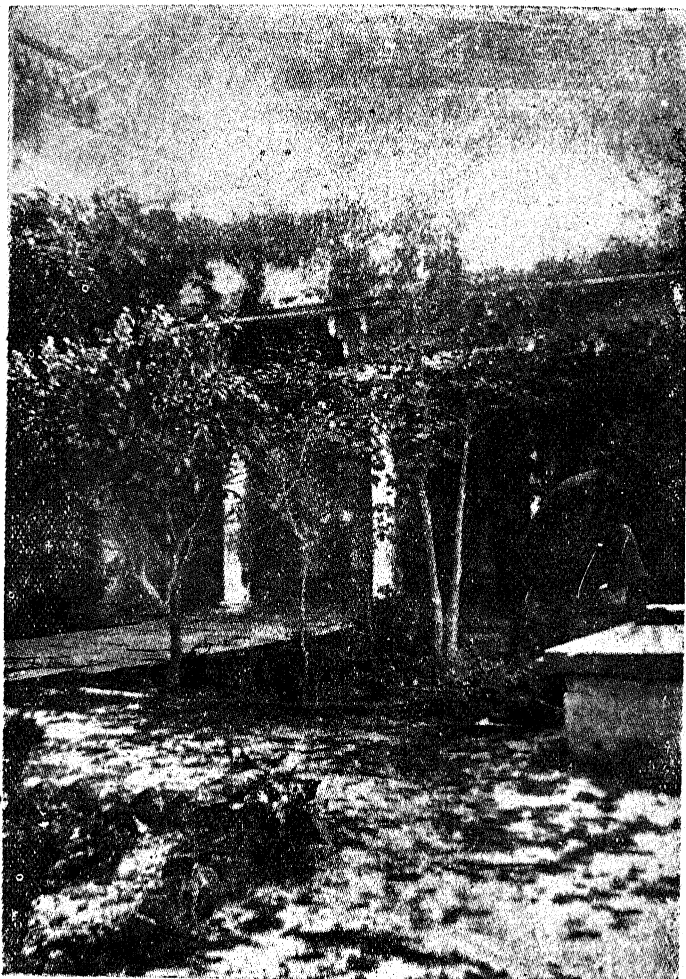
में

आये हुए स्थानों एवं प्राचीन ८४-२५२ वैष्णव वार्ता की पाण्डुलिपियों की

चित्र-सूची



अड़ैल—श्री महाप्रभुजी की बैठक का सिंहद्वार



महाप्रभु वल्लभाचार्य का निवास-स्थान अड़ैल

[श्री गोवर्धननाथ शुक्ल के सौजन्य से]



श्री महाप्रभुजी की बैठक का भीतरी भाग

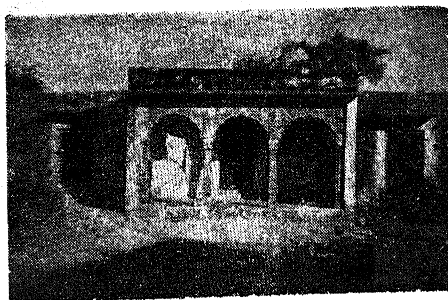
[श्री गोवर्धननाथ शुक्ल जी के सौजन्य से]



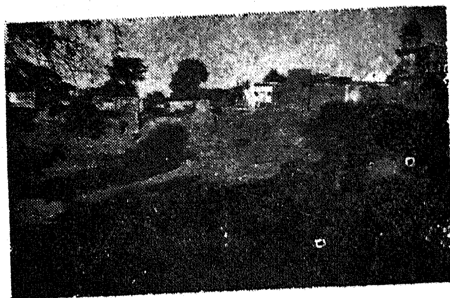
प्रयाग में परमानंददास जी का दीक्षाद्वार स्थान



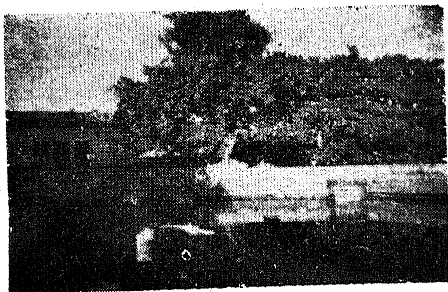
सुरभि कुण्ड ग्रौर श्यामतमाल
परमानंददास का निवास स्थान



गोबिंद स्वामी की समाधि और उनका घर
जतीपुरा



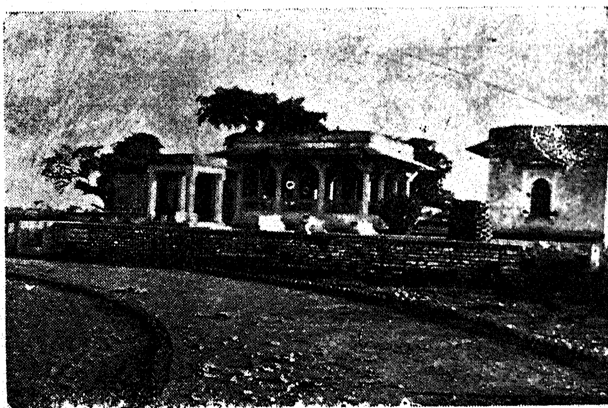
यादवेन्द्रदास कुम्हार का कुआँ रुद्र कुण्ड



हरि जी ग्वाल की पोखर



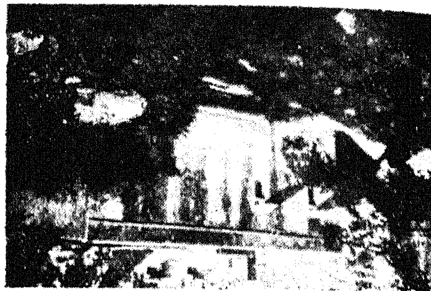
टीला तानसेन और गोविंद स्वामी जी की
संगीत सभा का स्थान



तानसेन का मकबरा गवालियर



आन्यौर—सद्दू पांडे का घर



सद्दू पांडे के घर का पृष्ठ भाग जहाँ श्री जी ने नरो बेटी से दूध माँग कर पिया।



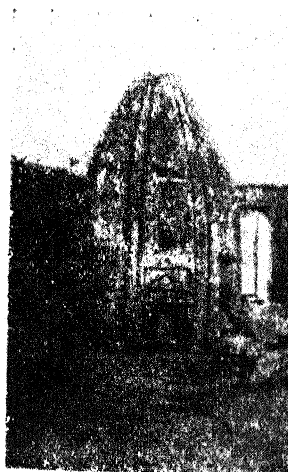
रामदास की गुफा गिरिराज



बिलछू



गुलाल कुंड की बैठक और श्याम तमाल



गोविंद स्वामी की समाधि

वचनामृत–६

सं० १७९६ वाली वचनामृत की पोथी में वि० सं० १६९३ वैसाख शुक्ल छठ का प्रसंग इसमें मूल लेखक की साक्षात् उपस्थिति की सूचना मिलती है। अतः मूल लेखक की पोथी की यह सं० १७९६ वाली प्रतिलिपि पोथी है।

वचनामृत–७

नन्ददासजी के तुलसीदास के भाई होने का उल्लेख है।

वचनामृत–८

श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृत से १७६६ की प्रति नागजी भाई का उल्लेख

वचनामृत–६

वचनामृत–१०

वचनामृत के लेखक का साक्षात् वचन

"तब मैं पूछो……"

'ठाकुर' शब्द श्री गोकुलनाथ जी परत्वे है।

सप्तम पुत्र श्री घनश्यामजी का भी उल्लेख है।

चतुर्थ पुत्र गो० श्रीगोकुलनाथजी के वचनामृत की द्वितीय पोथी

दामोदरदास हरसानी की वार्त्ता का उल्लेख—

श्रीजी ये (श्री गोकुलनाथजी ने) श्रीमुखते वैष्णवों को वार्त्ता कही है, उसका उल्लेख

वचनामृत—१२

जोधपुर की चांदाबाई का उल्लेख

भावसिंधु की यह वार्त्ता है।

वचनामृत–१३

व.
५४

प्रभुनिकै विकल है गये। कह्यो श्रीरघुनाथ
श्रीरजीनि कौ कह्यौ। तब काहू व्रजवासी नै
श्रीगुसांईजी कौ घर बताये। सो उहां श्री
आये तब श्रीगुसांईजीने श्रीरघुनाथ
सों कह्यो देखो जो तुलसीदास आवत है
तिनकौ श्रुतन्यदुतन जाय। तब श्रीरघुना
थजीनै तुलसीदासकों श्रीरामचंद्रजी के
दर्शन दीये। तब दर्शन होत मात्र साष्टांग
दंडवत कीये। ता समै श्रीरघुनाथजी व
र्ष के हते। सो पच्चीस वर्ष की बात श्रीरघु
नाथजीने तुलसीदासकौं श्रीरामचंद्रजी
के दर्शन दीये। तब दर्शन होत मात्र साष्टां
ग दंडवत कीये। ता समै श्रीरघुनाथजी व
र्ष पंद्रह के हते। सो पच्चीस वर्ष बात श्रीरघुना
थजीनै तुलसीदाससौं कह्यो। जो फलानें
फलानें दिन श्रीयमुना में नैनहम कौ सां
मिश्री समर्पी हती सो तो कौं इहां है तब
तुलसीदास विस्मय होय गये। कह्यो जो मैं
जाकौं परमतत्व जानत हतो सो तो श्रीगुसां
ईजी के घर सहज ही दर्शन भए। तब श्री

श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत की पोथी सं० १७९६ की पंचम पुत्र
रघुनाथजी ने रामचन्द्रजी के रूप में
दर्शन दिये [वि० सं० १५२६ में श्री रघुनाथजी १५ वर्ष के हते]

चतुर्थ पुत्र श्रीगोकुलनाथजी के वचनामृत की पोथी सं० १७६६ की
गो० तुलसीदासजी के गोकुल आने का उल्लेख

बचनामृत—१५

श्री गोकुल नाथजी के बचनामृत की सं० १७९६ की प्रति।

वि० सं० १८६६ के आश्विन शुक्ल शुक्र की लिखी पोथी जिसमें सूरदास जी का जन्मांध वाला पद है।

सं० १८६६ की पोथी जिसमें सूरदास के पद में सूरदास की जन्मांधता का उल्लेख है।

नाथजु ने मांगि तब रायजु ने आयं दीनी तब श्री जु ने नेत्र सो लगाये के फेरि दीनी तब रायजु ने आरे
मे धरी पाछें भोजन को पधारे श्री जु तो भोजन करि के पोढे पाछे श्री रायजु तो गोपालजु के घर पधारे
तब पोथी गोपालजु को दीनी तब पोथी बाचि बाचि के गदगद कंठ भये। पाछे नारायणदास लेखक
को बुलायो तब पोथी लिखाई सो उन दोय प्रति कीनी एक उनको दीनी दूसरी लेखक पास रही।
सो गोपालजु रायजु ने जानि नाही। सो समे हनी के आगे कहे सो वाके आंख की ओर स्नेह रहे सो वाने
आनि के कही तब उनके होय रह जो स्याये दे हू। तब आय के कही तब उन लिखि दीनी। एस प्रति
लीख सा तब री। तब इह प्रति धन ली आई चोपरा केतिन देषी तब श्री जु के आगे बात कही। तब श्री
जु चोके घेत कीयो। वे सब बुलाये। परस्पर पूछे। पाछे जानि जो रायजु के काम हे तब कह्यो जो गो
पाल रायजु प्रगट न करी जगवत राख्या मोली [illegible] सं. १७४१। सेठ पुरु सोतमदास को बेटा गोपालदा
स ने श्री मदनमोहनजु की सेवा नती नाति सौं करते। गोपालदास आपनी तन को तन करते।

कृष्णभट्ट की प्रति का इतिहास ।

[illegible]

॥श्री कृष्ण भट्ट॥ एक समै गोवर्धनदास परम भागवत तो उनसों उ होन मे कृष्ण भट्ट के घर आए
सो श्री कृष्ण भट्ट ने आगे जो कीनो ॥ भोजन करायो ॥ भोजन करि बैठे तब भट्ट जी ने कहो कछु सुनायो ॥
रात्रि दिवस वैष्णवन की वार्ता करें सो करते करते तिन दिवस तिन रात्रि बीतित भई ॥ चौथे दिवस
देह की सुधि भई तब भट्ट जी ने उनको भोजन करवायो महाप्रसाद जीवायो सो आज्ञा मांगि के
अपने देस को चले ॥ तब श्री कृष्ण भट्ट ने ये बाते लिखि सो दिन प्रति इनको पाठ करें और को उ
न जान दीवे ॥ व आवे ना सो कहे ॥ यो करते भट्ट जू को सरीर थक्यो तब गोविंद भट्ट बेटा सों कह्यो
आबा ए पोथी अरु मो घर की सो जब श्री गोकुल पठइ ओ ॥ तदउपरांत गोविंद भट्ट श्री गोकु
ल नाथ जू के सेवक ॥ सो जब श्री गोकुल आए ॥ तब श्री कृष्ण भट्ट ने श्री गोकुलनाथ जू दिखायो ॥ तब
श्री गुसांईं जी प्रसन्न होइ श्री जू ने मन कौतुक कीनो ॥ सो प्रथम नी उने वेदन आवल मने
दीयो ॥ श्री गुसांईं जी को आसन्न आयो ॥ सो गोविंद भट्ट ने वो होतन भेट पठई जीति जीति के मनो
रथ कीए ॥ सो ऐसे करते बोहोत दरस बीते ॥ तब नेत्र कल दूटे ॥ तब बीचार कीयो पोथी श्री
गुसांईं जू ने श्री भागवत सुबोधनी टीका टीपनी सब पोथी अरु भेट ये ले चले तब उनको
सो पीक हा आवल भके आगे धरी औ अरु कही औ बाप की वस्तु बेटा पावे ॥ ये वैष्णव चले सो श्री
गोकुल आए ॥ श्री गोकुलनाथ जू के आगे राखि भेट और पोथी ॥ पत्र माहा प्रभु ने बीच्यो त
ब हृदै मे धरि आयो ॥ अरु कही यह मे वेदन धित नी कहा तब पोथी श्री हस्त सों खोली ॥ तब बीच
छोटी सो परी नीकसी ॥ तब बीची ॥ बाचि के आंखि सों लगाइ अरु हृदै मे धरि आयो ॥ सो नित
ग्रंथ पाठ करते ॥ ताके पाछे और को पाठ करते ॥ एक वार्ता अथवा दोइ ॥ बाचि के पेटी मे धरि
के तारो मारि के भोजन को पधारें ॥ यो करते बहुत वरस बीते ॥ तब नेत्र को प्रकार भयो तब श्री रा
यजु सों कही के पोथी पेटी मे है सो लाओ ॥ तब श्री रायजू ने पेटी खोलि के पोथी श्री हस्त मे दीनी सो
आप नीके करि नेत्र सों लगाइ फेरि रायजू को दीनी रायजू ने पेटी मे धरी सो नित्य यो करें सो एक दि
न सुरायजू ने देखी तब नीकी लागी ॥ तब दीन के प्रात श्री गोपाल जू हते सो तब श्री रायजू ने
कहा ॥

कृष्णभट्ट—गोवर्धनदास की वार्त्ता का प्रसंग । वार्त्ता लेखन का इतिहास कृष्णभट्ट द्वारा लिखी पोथी का इतिहास ।

प्रापती थाए तो वारू छे। संपूरण। संवत १७४६ वरषे माती स्रावण सुदी ७ सुक्रे पो
थी लखी छे प्रती गोवींदासजी भट्ट नी पोथी थी लख्यु छे। श्री श्री श्री श्री।
॥ एक वैष्णव मोहनदास अरु हरीदास की वात आचार्यजी के सेवक हुते उन कों आ
पस में बोहोत प्रीत हुती ॥ १ ॥ एकवार हरीदास के घर मोंहनदास पाहुने आए सो दि
न एकांत थाडे रहे पाछे के हैं न जागे सो हों चजत हो तब हरीदासने कही प्यारे जी अब
र हो एसें करिके फेरि तिनें दीन राखे तब हरीदासनें अपनी स्त्री सों कही जो मोंह
नदास सवारें चलेंगे तब अस्त्रीने कही जो एक दीन राषी ए तो जो है तब हरीदासनें

वि० सं० १७४६ श्रा० सुदी शुक्र की लिखी पोथी जिसमें कृष्णभट्ट—गोवर्धनदास की प्रति का उल्लेख है।

यह दूसरी प्रति जिसमें सूर की जन्मांधता का उल्लेख है

सं० १६७१ की २५२ वै० की वार्त्ता अन्तिम पृष्ठ

चोरासी वैस्नव श्री आचार्यजी के हैं। सो एक दिन
श्री गोकुलनाथजी को चोरासी वैस्नव की वार्त्ता क
रत देषिके कल्यांण भट आदि वैस्नव के संग रस
मगन होइ गए। सो मुवो धनीजी की कथा कह
न की सुधि नाहीं। सो [illegible] तिहां होइ गई। तब एक
वैस्नव ने श्री गोकुलनाथजी सों बीनती करी जो म
हाराजाधिराज आज कथा कब होइगी। [illegible]

भावना वाली ८४ वै० की वार्त्ता

॥श्री कल्याय नम॥ अथ चोरासी वार्त्ता श्री गोकुल
नाथजी कृत ये ताके भाव श्री हरिराइजी श्रव क
हत हैं॥ चोरासी वैस्नव को कारण यह है जो दे
वी जीव चोरासी लक्ष जोनि में परे हैं। तिन में ते
निकासिवे के अर्थ चोरासी वैस्नव कीए। सो जी
व चोरासी प्रकार के हैं। राजसी तामसी सात्वि
की निर्गुण ए चारि प्रकार के भेद। ता में ते गुणा
मय राजसी तामसी सात्विकी रहत हैं। सो श्री गु
साईंजी उद्धार करैगे। श्री आचार्यजी विना श्री गो

सं० १६७१ की भावना वाली ८४ वै० की वार्त्ता के आरम्भ का पृष्ठ

यो॥ सो मारग मध्य चाचाजी सों माधोदास नें पूछ्यो जु तु

म्हारो संप्रदाय कहा है। तब चाचाजी नें माधोदास सों क

ह्यो जो हमारो संप्रदाय वल्लभी है सो श्री वल्लभाचार्य जी

प्रगट भए॥ तिन नमायावाद षंडन कर्‍यो॥ भक्तिमारग द्र

ढ सों स्थाप्यो॥ सो श्री वल्लभी मार्ग प्रगट कीयो॥ तिन श्री आ

चार्यजी के पुत्र श्री विट्ठलनाथजी हैं सो अडेल मध्य विराज

त हैं। जिन विष्णुस्वामि मार्ग द्रढ करिवां मार्ग मध्य सेवा

प्रकार उनको सार है। सो आपु लेकें वल्लभी मार्ग प्रगटा

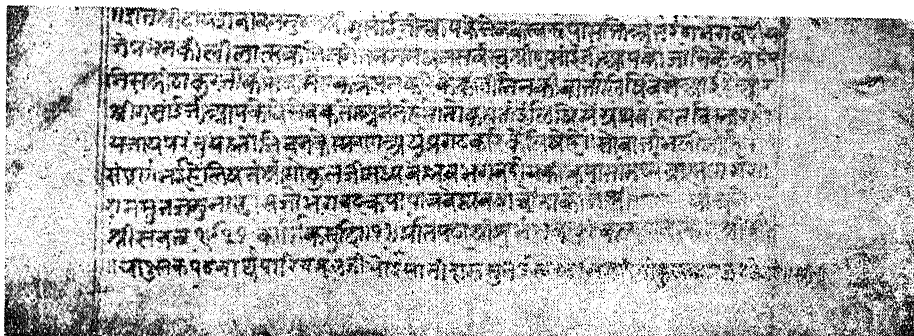
यो॥ हम सो श्री विठ्ठलनाथजी गुसांईजी के सेवक हैं। यह

बात चाचाजी के मुष की सुनि कें माधोदास इनको डेरा दे

सं० १६७१ की २५२ वै० की वार्त्ता विष्णु स्वामी सम्प्रदाय का उल्लेख

साइजा।
ई छा भई तब पहिलें श्री गिरिधरजी कों आपनें श्री अंग कों ऊ
परनां दीयो ॥ और सब बालकन सों कह्यो जो श्री गिरिधर
जी की आज्ञा में रहियो ॥ आपु यों कहि कें श्री गिरिराज की कं
दरा में होई कें लीला में पधारे ॥ इति श्री श्री गुसांईजी के से व
क दोय से बावन वैष्णव तिन की वार्त्ता श्री गोकुलना
थजी कृत संपूर्ण समाप्तः ॥ श्री शुभं भवतुः ॥ [illegible] ॥
या संसार विषे भगवदीय वैष्णवन को सत्संग भगवद
सेवा भाव बडो पदार्थ है ताकरिकें सब वस्तु की प्राप्ति हो
यगी ये पुष्टिमार्ग श्री वल्लभाचार्यजी नें प्रगट कीनो है
या समान और मारग हे नहीं ताते भगवदीयन कूं निं
तर ये भगवद्वार्त्ता को भाव विचार तर है लों यही मत
मग रूप दोय से बावन वैष्णव की वार्त्ता को प्रगट कर
ते पुष्टिमार्गी वैष्णवन के उपर श्री गोकुलनाथजी ने
सो संपूर्ण ॥ स्वस्ति श्री सिहाड मध्ये पुस्तक लिखी तु
[illegible] वासी जालनदास दीराकन जो पढे ताकुं भगवत्स
[illegible] हैः ॥ ॥ कष्टेन लिखितं पुस्तकं यत्नेन परिपाल
येत ॥ ॥ शुभं भवतु ॥ संवत १८८८ ॥ तिथौ माघ मासे
[illegible] १५ ॥ लिखीतं ॥ ॥ श्री गोपीजनवल्लभाय नमः

२५२ वै० की वार्त्ता सं० १८८८ की



'संवाद' जिसमें दामोदरदास हरसानी ने श्री गुसांई जी से अपना द्वितीय जन्म चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी के रूप में होने का स्पष्ट किया है। इसमें दामोदरदास जी का अन्तिम समय वि० सं० १६०७ और श्री गुसांई जी और कृष्णदास के बीच मनोमालिन्य होकर श्री गुसांई जी के विप्रयोग का समय वि० सं० १६०५

।।श्रीकृष्णायनमः।। यह ग्रंथकी टीका है
सो लिखत है।। यह ग्रंथ विखे यह वरनन है
सो ई आपना आगे श्रीगुसांईजी अरु
वैष्णव दामोदरदास को संवाद है श्रीगु
गुसांईजी कोइक समे श्रीयमुनाजी के तट
पर बेठि करि दामोदरदास को पूछे
जो श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के जन्म को
कारण मेरे आगे कहो अरु तुम्हारे
जन्म को कारण हू मेरे आगे कहो काहे ते
जो पाक तहे तुम सो जो दम लातुम
मारग के पोषक हो सो काहे ताते यह
रस बात सब श्रीगुसांईजी ने पूछी सो
रस बात सब श्रीगुसांईजी के आगे
कही जो यह नमित्त प्रागट्य है सो बात
जितनी दामोदरदास कही सो सब श्री
गुसांईजी ने संस्कृत करि श्लोक
करि के ग्रंथ कीनो सो ग्रंथ श्रीगोकुल
नाथजी के पास है सो ग्रंथ नलीयां के

श्री गुसांई जी, दामोदरदास हरसानी के संवाद की मूल प्राचीन प्रति

॥ श्री कृष्णाय नमः ॥ अब दोयसौ बावन वैष्णवन की वार्ता श्रीगोकुलनाथजी प्रगट
कीये ताको भाव श्री हरिरायजी कहत हैं सो लिख्यते ॥ चौरासी वैष्णव श्री आचार्यजी
महाप्रभुन के अंग रूप निर्गुण पक्ष के मुखिया हैं तिनको भाव चौरासी वैष्णवन की
वार्ता में कहि आये हैं उनके तीन तीन धर्म रूप चौरासी वैष्णव राजसी ॥ चौरासी
वैष्णव राजसी ॥ चौरासी वैष्णव तामसी अरु चौरासी वैष्णव सात्विकी हैं ॥
सो वे तीनों यूथ मिलि के दोयसौ बावन श्री गुसांईजी के अंग संबंधी जानने । श्री
गुसांईजी के अंग रूप अलौकिक सामर्थ्य रूप हैं ॥ सो एक समे श्री गुसांईजी अति प्रस
न्नता में श्री रुकमनी बहूजी सों बातें करत हुते ॥ जो इह सगरे वैष्णव मेरे अंग
को स्वरूप है ॥ तब रुकमनी बहूजी ने श्री गुसांईसों बीनती कीनी जो चाचा
हरिवंस जी तुम्हारे कौन सो अंग है ॥ तब श्री गुसांईजी ने रुकमनी बहूजी

प्रभुचरण श्री हरिराय जी के हस्ताक्षर

॥इति श्री भक्ति नामावली सम्पूर्ण॥ समापता॥ १॥ श्री॥

रानी उम्मेदकुँवरि कृत ८४–२५२ वै० के प्रसंगात्मक वार्त्ता का काव्यबद्ध रूप—भक्त नामावली

भक्तमाल की अपेक्षा वार्त्ता के वृत्त अधिक मान्य हैं। इतिवृत्त का भेद दृष्टिकोण के भेद का परिणाम है।

(२७) आठवें प्रकरण में वार्त्ता से प्राप्त सामाजिक और ऐतिहासिक वृत्त का संग्रह किया गया है और उसकी परीक्षा की गई है और महाप्रभु जी के प्राकट्य की वार्त्ता और श्रीनाथ जी के प्राकट्य की वार्त्ता के कई विवरणों को असत्य और अप्रामाणिक सिद्ध किया गया है और यह दिखाया गया है कि साम्प्रदायिक उत्साह में वार्त्ताकार ने संतुलन खो दिया है।

(२८) नवें प्रकरण में वार्त्ता साहित्य के गद्य की ब्रजभाषा गद्य की निश्चित मान्यताओं के आधार पर परीक्षा की गई है और इसके विविध रूप प्रस्तुत किये गये हैं और इसके गद्य के ग्रामीण और नागर दो प्रयोग बताये गये हैं।

(२९) दसवें प्रकरण में वार्त्ता साहित्य के साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक महत्व पर अत्यन्त संक्षेप रूप से प्रकाश डाला गया है और वनयात्रा या ब्रजयात्रा का महत्व बताया गया है। इसी प्रकरण में पुष्टि मार्ग की नित्य लीला भावना का उल्लेख किया गया है और वार्त्ता साहित्य से प्राप्त व्यक्तित्व और जीवनी साहित्य का परिचय दिया गया है तथा वार्त्ता से प्राप्त राजमार्गों की एक तालिका और वार्त्ता रहस्य शीर्षक के अन्तर्गत सभी वार्त्ताओं की विषयगत सूची दी गई है।

(३०) इस प्रकार इस अध्ययन में वार्त्ताओं से प्राप्त सभी इतिवृतों की परीक्षा करके वार्त्ता साहित्य की उपयोगिता और अनुपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

(३१) पृष्ठ संख्या बढ़ जाने के कारण परिशिष्टि को संक्षेप रूप में प्रस्तुत किया गया है।

परिशिष्ट

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता

कवि—

कृष्णदास घघरी, कृष्णदासी, कविराज भाट, कन्हैयाशाल, कुम्भनदास, कृष्णदास, गोपालदास, गदाधरदास, गोपालदास इंटौडा, गोपालदास नरोड़ा, जीवनदास क्षत्री, त्रिपुरदास, थीरदास, दामोदरदास हरसानी, पद्मनाभदास, प्रभुदास भाट, परमानंददास, भगवानदास, मुकुन्ददास कायस्थ, सूरदास, हरजीवन, रामदास पुरोहित, लघु पुरुषोत्तमदास, विष्णुदास छीपा।

८४ वैष्णवन की वार्त्ता से प्राप्त ग्रन्थों की सूची

कविराज भाट के कवित्त, गोपालदास नरोडा के चौरा, जुगल गीत, दशमस्कंध की कथा महाप्रभु द्वारा, नवरत्न, मार्ग प्रणालिका, मुकुन्द सागर ग्रंथ, रहस्य ग्रन्थ (निकुंज लीलायें) वल्लभाष्टक टीकाकार, गोना, सिद्धांत रहस्य, सुबोधिनी टीका, शृंगार रस मंडन ग्रन्थ, सर्वोत्तम की टीका, गो० ना० कृत, श्रीभागत निबंध, हरिवंश पुराण।

८४ वैष्णवन की वार्त्ता में आए हुए स्थानों की सूची

अडैल, अटक, अलियान गांव, आन्यौर, अम्बाला, आगरा, छारलू दरवाजा आगरा, सेव का बाजार आगरा, उज्जैन, करजी पर्वत, कन्नौज, काशी, कंडा, कडा, काश्मीर, खिरालू (गुजरात), गोकुल, गोविंद घाट, गंगासागर, गोधरा, गोवर्द्धन, गोविंद कुण्ड, गौडदेस, चक्रचीर्थ, जगन्नाथपुरी, जमुनावतो, झाडखंड, टोड को घनो (गांठौली के पास) ठट्ठे, थानेश्वर, द्वारिका, नरोड़ा (रोड़ा) प्रथोदर तीर्थ, पूंछरी, पटना, पारसौली, फतहपुर सीकरी, बद्रीनारायण, बद्रीनाथ, बनारस, बांसवाडा, बृन्दावन, मदार मधूसूदन, मणिकर्णिका घाट, महावन, मथुरा, महातीर्थ, मानसी गंगा, मोखी (गुजरात), राजनगर, राजघाट आगरा, रेणुका स्थल, विश्रांत, सिकन्दरपुर, सिंहनद, सिद्धपुर, सरस्वती, सौरों, श्रीनाथद्वार, शेरगढ़।

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता

कवि—

अलीखान पठान, अजबकंवरि, आसकरन (राजा), कटहरिया, कान्हदास, गोपालदास, गोविंददास खवास, ग्यानचन्द सेठ, गंगाबाई, गोबरधनदास, गोविंद स्वामी, चतुरविहारी, चतुरभुज मिश्र, चतुरभुजदासजी, छीतस्वामी, जदुनाथदास, जन, जाडा कृष्णदास, टोडरमल, तानसेन, तुलसीदास, ताज, दयाल, नागजी भट्ट, नंददास, ध्यानदास, धर्मदास, धोंधी, पर्वतसेन, पृथ्वीसिंह, बीरबल, ब्रह्मदास, बृन्दावनदास, भगवानदास भीम (राजा), भगवानदास, माणिकचंद क्षत्री, मथुरादास, मेहा धीमर, मन्नालाल, मदनगोपाल, माधवदास दलाल, सगुनदास, हृषीकेश, यादवेन्द्रदास।

अकारादि क्रम में ग्रन्थों के नाम

स्थानों के नाम

अलियाणा, अडैल, अडींग, असारवा, अयुध्या अपछरा कुण्ड, (१७६ गिरिराज के पास) आगरा, आमेर, आन्योर, आंतरी, इटाय=इटावा, उज्जैन, कदम खंडी, कपड़वन, काशी, काबुल, कुबेर, कुरुक्षेत्र, खंभात, खमालिया, खेरालू, गंगाजी के तीर, गढ़ा गाम, गामडाम, गिरिराजजी, गुलाल कुण्ड, गुजरात, गोधरा, श्री गोकुल, गोवर्द्धन पर्वत, गोपालपुर, गोविन्द कुण्ड, गोखला, गौड़ देश, गोवर्द्धन, गोलवाड, धाधाधुरधर गाम (राजनगर), चन्द्र सरोवर, चित्रकूट, चिंताहरण घाट, जगन्नाथ, जगमोहन, जसोदाघाट, जामनगर, जौनपुर, ठकुरानी घाट, दण्डकारण्य, द्वारका, दिल्ली, दानघाटी, धौलका, नर्मदा किनारे, नन्दग्राम, नारायण सर, नरवरगढ़, पंढरपुर, परासौली, परा, पुरुषोत्तम क्षेत्र, पूंछरी, पूरब देश, पोरबंदर, ब्रज, बडनगरा, बद्रिकाश्रम, बंगाल, बाराडी, बिछूल कुण्ड, बीकानेर, भावनगर, महावन, मथुरा, महानदी, मलयागिरि पर्वत, मही नदी, मानसी गंगा, मारवाड़, मेरता, मेवाड़, रमण रेती, रावत, राजनगर, राम लक्ष्मणजी का मन्दिर, राजद्वार, राधाकुण्ड, रूपालगा, लाहौर, वृन्दावन, बडनगरा, विश्रांतघाट, विलछू कुण्ड, संजाई गाम, स्यामढाक, सिंधु देश, सिंहपौरी, सीलगाम, सूरत, हालार, हरिद्वार, श्रीजी द्वार ।

———

सहायक पुस्तक सूची

अ

१—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, ले० डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ।

२—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय भाग १ व २, ले० डा० दीनदयालु गुप्त ।

३—अष्टछाप-परिचय, ले० प्रभूदयाल मीतल ।

४—अपभ्रंश प्रकाश, ले० देवेन्द्रकुमार एम० ए० ।

५—अष्टछाप पदावली, ले० सोमनाथ गुप्त ।

६—अष्टसखान की वार्त्ता, संपादक द्वारकादास पारीख, अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

७ अनुग्रह मार्ग, व्याख्याता देवर्षि रामनाथ शास्त्री ।

८—अष्टछाप (सं० १६९७) की वार्त्ता और भावप्रकाश, सं० पो० कण्ठमणि शास्त्री कांकरौली ।

९—आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, ले० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट्, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी ।

ई

१ ईश्वर दर्शन, लेखक देवर्षि रमानाथ शास्त्री ।

उ

१—उर्दू साहित्य का इतिहास, ले० ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी० ।

२—उर्दू के हिन्दू सेवक और उर्दू का इतिहास, ले० सैयद कासिम अली साहित्यालंकार नरसिंहपुर (सी० पी०) ।

क

१—कांकरौली, प्रकाशक श्री विद्याविभाग कांकरोली ।

२—काव्य और संगीत, ले० लक्ष्मीधर बाजपेयी ।

३—कल्याण-विशेषांक नारद विष्णु पुराण अंक, उपनिषद् अंक, हिन्दू संस्कृति अंक, बालक अंक, भक्त चरितांक ।

ख

१—खटऋतु वार्त्ता, ले० अष्टछाप के महाकवि चतुर्भुजदास ।

ग

१—गोविन्द स्वामी, प्रधान सम्पादक गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा ।

घ

१—घन आनन्द, लेखक विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।

२—घनानन्द सुधा, सं० श्री ब्रजभूषण शर्मा ।

३—घनानन्द कवित्त, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।

च

१—श्री चैतन्य चरितावली, ले० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ।

छ

१—छीत स्वामी, सं० गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा।
पो० श्री कण्ठमणि शास्त्री।
क० श्री गोकुलानन्द शर्मा।

ज

१—जातक, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
२—जैन-बौद्ध तत्वज्ञान ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद।
३—जन भारती वर्ष २ सम्वत् २०११ संख्या २, बंगीय हिन्दी परिषद्, १५ बंकिम चटर्जी, स्ट्रीट, कलकत्ता-१२।

त

१—तुलसीदास का घरबार, ले० रामदत्त भारद्वाज।
२—तुलसीदास-रचयिता चन्द्रबली पांडे एम० ए०।
३—तुलसीदास, ले० माताप्रसाद गुप्त।
४—तृतीय स्कन्धार्थ (संस्कृत)।

द

१—दिल्ली सल्तनत, डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव।

न

१—नाथ सम्प्रदाय, हजारीप्रसाद द्विवेदी।
२—नंददास, स० उमाशंकर शुक्ल, एम० ए०।
३—नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
४—नंददास ग्रन्थावली, ले० ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल०बी०।

प

१—प्रेम दर्शन, र० देवर्षि नारद।
२—प्रताप वंशार्णव, भारत जीवन यंत्रालय में मुद्रित।

ब

१—४१ बृहत शिक्षा पत्र, श्री हरिराय जी महाप्रभु जी।
२—ब्रह्म सम्बन्ध, ले० देवर्षि रमानाथ शास्त्री।
३—ब्रज भारती, सं० प्रभूदयाल मीतल—(पत्रिका)।
४—ब्रजभाषा व्याकरण, ले० धीरेन्द्र वर्मा।
५—ब्रजभाषा, ले० धीरेन्द्र वर्मा।
६—ब्रह्मवाद, देवर्षि रमानाथ शास्त्री।
७—बुद्ध चरित्र (काव्य)—रामचन्द्र शुक्ल।
८—ब्रज का इतिहास, श्री कृष्णदत्त बाजपेयी।
९—ब्रहत्स्तोत्र सरित्सागर गद्य पद्यात्मक—दी न्यूस प्रिन्टिग प्रेस, काला घोड़ा, बैंक हाउस लेन कोट, मुंबई।

भ

१—भक्ति और प्रपत्ति का स्वरूपगत भेद—देवर्षि रमानाथ शास्त्री।
२—भाव भावना-प्र० वसन्त राम हरिकृष्ण शास्त्री-अहमदाबाद।

३—भक्त कवि व्यास जी, रचयिता बासुदेव गोस्वामी।
४—भारत का बृहत् इतिहास—प्रो० श्रीधनेत्र पाण्डेय।
५—भागवत धर्महरि भाऊ उपाध्याय।
६—भारतीय साधना और सूर साहित्य, डा० मुंशीराम शर्मा, एम० ए० पी-एच० डी०।
७—भक्तमाल, ले० श्री प्रतापसिंह-उत्तराधिकारी-नवलकिशोर प्रेस।
८—भक्तमाल, ले० श्री गोस्वामी श्री नाभाजी।
९—भक्तमाल, श्री महाराजाधिराज रीवाधिपति श्री १०८ श्री वैंषटेश रमणसिंह देवज बहादुर जी की आज्ञानुसार।
१०—भक्त शरोमणि सूरदास, ले० श्री नलिनीमोहन सान्याल।
११—भक्तमाल सटीक—श्री नाभाजी।
१२—भावसिन्धु की वार्त्ता—प्रस्तावना ले० श्री द्वारकादास जी पारीख।

म

१—मिश्र बन्धु विनोद, ले० गणेश बिहारी मिश्र।
२—मृगनयनी, ले० वृन्दावनलाल वर्मा।
३—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०।
४—मआसिरूल उमरा, अनु० ब्रजरत्नदास बी०ए०, एल-एल० बी०।
५—मतिराम ग्रन्थावली, कृष्ण विहारी मिश्र, बी० ए०, एल-एल०बी०।
६—मध्य कालीन धर्म साधना—हजारीप्रसाद द्विवेदी।
७—मीराबाई का जीवन चरित्र, मुन्शी देवीप्रसाद कृत।
८—मध्य कालीन प्रेम साधना—परशुराम चतुर्वेदी।
९—श्री मद्वल्लभाचार्यजी (गुजराती)।
१०—मीरा एक अध्ययन, पद्मावती 'शबनम'।
११—मुगल बादशाहों की हिन्दी—चन्द्रबली पांडे।
१२—महाकवि सूरदास—आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी।

र

१—रसिक प्रिया सटीक—ले० श्री कवि कुलभूषण काव्य रसावतार श्रीकेशवदेव कवि।
२—ऋतम्भरा—ले० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या।
३—राजपूताने का इतिहास, ले० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।
४—राधा कृष्ण ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास बी० ए०।
५—राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा, पं० मोतीलाल मेनारिया।
६—राजस्थान भारतीय भाग १—अंक २-३ जुलाई-अक्टूबर १९४६ श्री सादूर्ल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर।

व

१—वार्त्ता साहित्य मीमांसा, द्वारकादास पारीख (गुजराती)।
२—विचार विमर्श, ले० श्री चन्द्रबली पाण्डेय।
३—विचारधारा, धीरेन्द्र वर्मा।

४—६६ वचनामृत (श्री १०८ वल्लभ जी महाराज के) तथा २५ वचनामृत गोकुलाधीश जी के, भक्ति ग्रन्थमाला, अहमदाबाद।
५—वैयासन्याय माला।
६—वल्लभ पुष्टि प्रकाश।
७—विविध धौल तथा पद संग्रह (गुजराती)।
८—'वल्लभीय सुधा' द्वारकादास परीख।

स

१—सूर सौरभ, ले० प्रोफेसर मुंशीराम शर्मा, एम० ए०।
२—सूर निर्णय, ले० द्वारकादास पारीख, प्रभूदयाल मीतल।
३—सूरदास, ले० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
४—सूर सुषमा, ले० नंददुलारे बाजपेयी।
५—सूरदास, ले० ब्रजेश्वर वर्मा।
६—सम्प्रदाय प्रदीप, पो० कंठमणि शास्त्री विशारद।
७—सूर और उनका साहित्य, डा० हरवंशलाल शर्मा।
६—सत्प्रकाशस्तत्त्वार्थ दीपनिबन्ध।
१०—सम्प्रदाय कल्पद्रुम, ले० गोकुलनाथ, श्री विट्ठलनाथ भट्ट जी कृत।
११—सेवा सर्वस्व, (गुजराती)।

श

१—श्री गोकुलेश जी जीवन चरित्र, गुजराती।
२—श्री शंकराचार्य का आचार दर्शन, ले० डा० रामानन्द तिवारी।
३—श्री मद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर।
४—श्री आचार्य महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्त्ता, स० श्री द्वारकादास पुरुषोत्तमदास पारीख।
५—श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्त्ता, गो० श्री हरिराय जी महाराज।
६—शुक्ल अभिनंदन ग्रन्थ, मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन।
७—श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणु भाष्यम्, काशीस्थ गोस्वामी श्री गिरधर जी।
८—श्रीमदाथर्वणनारायणोपनिषद्।
९—श्री कृष्णवतार, ले० देवर्षि रमानाथ शास्त्री।
१०—श्री सत्सिद्धान्त मार्तण्ड।
११—श्री तामसफल प्रकरण सुबोधिनी।
१२—श्री मद्भगवद् गीता और विष्णु सहस्त्रनाम, गीता प्रेस गोरखपुर।
१३—श्री मद्वल्लाचार्यजीना वंशनी वंशावली-रणछोड़दास' वर जीवनदास पटेलादी तथा शास्त्री जी कल्याण जी कानजी (गुजराती)।
१४—श्री मद्वल्लभाचार्य चरितम्।
१५—श्री विट्ठलेश चरितामृत तथा श्री प्रभु चरित्र चिन्तामणि, (गुजराती)।
१६—श्री वल्लभकल्पद्रुम, (गुजराती)।
१७—शुद्धाद्वैत सिद्धान्त प्रदीप, मगनलाल गणपतराम शास्त्री, (गुजराती)।

१८–श्री गोवर्धन लीला, रचयिता सूरदास स० श्री बृजभूषणलाल जी कांकरोली।
१९–श्री विट्ठलेश चरितामृत, ले० श्री द्वारिकादास पारीख।

ह

१—हिन्दी कथा कोष, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
२—हिन्दी साहित्य, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल।
४—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा।
५—हरिश्चन्द्र कला, खड़ग विलास प्रेस, बांकीपुर।
६—हिन्दी गद्य का साहित्य, रामचन्द्र तिवारी।
७—हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी।
८—हिन्दी गद्य का विकास, ले० प्रेमनारायण टंडन।
९—हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, आश्विन मार्गशीर्ष २०१०, अंक, ३ भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग।
१०–हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का त्रयोदश त्रैवार्षिक वर्णन सं० १९२६-२८ ई० काशी काशी नागरी प्रचारणी सभा।
११–हिन्दी साहित्य का इतिहास, श्रीयुत पं० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'।
१२–श्री हरिराय जी महाप्रभुनकौ, जीवन चरित्र (गुजराती)।
१३–हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, सं० श्यामसुन्दरदास बी० ए०, काशी नागरी प्रचारणी सभा।